विनयपत्रिका दीनकी बाप आपुहि बाचो:

लेखक

महात्मा श्री अंजनीनंदन शरणजी

॥ श्रीरूपकलादेव्यैनमः ॥

विनय-पीयूष

[सर्व सिद्धांत समन्वित विनयपत्रिकाका सबसे बृहत् तिलक]

प्रथम हिलोर

(पद १ से २४ तक)

लेखक

महात्मा श्री अंजनीनन्दन शरणजी (ज० मु० श० सीतला सहाय सावंत बी० ए० एल्‌एल्‌बी०, भूतपूर्व एडवोकेट, हाईकोर्ट, इलाहाबाद। सम्पादक, "मानस-पीयूष" और "मानसमणि")

द्वितीय संस्करण] सन् १९४७ ई० [मू० ५)

॥ श्री ॥

ॐ नमः भगवते श्रीमते रामानन्दाचार्याय
श्रीसीतारामचन्द्राभ्यांनमः।

ॐ नमः भगवत्यैऽस्मदाचार्यायै श्रीरूपकलादेव्यै
श्रीसन्तगुरुभगवच्चरणकमलेभ्योनमः।

ॐ नमोभगवते मङ्गलमूर्तये कृपानिधये गुरवे मर्कटाय
श्रीरामदूताय सर्वविघ्नविनाशकाय क्षमामन्दिराय
शरणागतवत्सलाय श्रीसीतारामपदप्रेमापराभक्तिप्रदाय
श्रीहनुमते नमोनमः।

ॐ साम्बशिवायनमः। श्रीगणेशायनमः। श्रीसरस्वत्यैनमः।
परमाचार्याय श्रीमद्गोस्वामितुलसीदासायनमः।

॥ श्रीगुरुभ्योनमः ॥

नम्र निवेदन

प्रभु श्रीसीतारामचंद्रजीकी महत्कृपासे प्रातःस्मरणीय गोस्वामी तुलसीदासजीकृत विनय-पत्रिकाके विनय-पियूष नामक सर्व सिद्धांत समन्वित सबसे बृहत् तिलकके प्रथम हिलोरका परिवर्धित द्वितीय संस्करण पीयूष धारापान करनेवाले भक्तवरोंके करकमलोंमें देनेमें बड़ी खुशी होती है।

विनय-पियूषमें विनय-पत्रिकाके १ से २४ तकके पदोंकी टीका लगभग ४२५ पृष्ठमें हुई है। इसमें शब्दार्थ, पद्यार्थ, टिप्पणीयाँ और सूचियाँ होनेसे अन्य भाषाभाषीभी सरलतासे इससे लाभ उठा सकते हैं। शुद्धता, स्वच्छता और आकर्षताकी ओर पूरा ध्यान दिया गया है। फिरभी जो त्रूटियाँ रह गयी हैं उसकेलिये दास क्षमाप्रार्थी है।

सद्गुरुदेव महात्मा श्री अंजनीनंदन शरणजीकी आज्ञा शिरसावंद्य मनाकर प्रभु श्रीसीतारामचंद्रजीने जो सेवा करायी है इससे दास कृतकृत्य हो गया है। आपका आशिर्वादही दासको आगामी कार्य-संचालनकेलिये समर्थ कर सकता है।

सद्गुरुदेव राज्यरत्न राजप्रीय प्रो. ग. य. माणिकरावजीकी तनमनधनसे सहायताके बलपरही दास प्रकाशन कार्य कर सका हैं। आपकी कृपादृष्टिही दासको पथप्रदर्शन करके ध्येयपूर्तिकी ओर अग्रसर कर सकती है।

विनय-पीयूषके प्रकाशनार्थ श्रीमंत गायकवाड सरकारने इजाजत देकर पुण्यकार्य करनेमें हाथ बँटाया है।

कबीर प्रेसके संचालक पं. मोतीदासजीने आधुनिक युद्धकालीन विपरीत परिस्थितिमें विनय-पीयूषके प्रकाशनमें शीघ्रता करके उपकृत किया है।

इन सबकी कृपाकेलिये दास उन्हें धन्यवाद देता है और उनका सदाकेलिये ऋणी हैं।

विनीत

रामचंद्रदास

प्रकाशक

गुढ़ीपाडवा

२३-३-४७

श्रीरूपकलादेव्यैनमः

भूमिका

भारतवर्षके सनातनधर्मावलंबी स्मार्त और वैष्णव तथा साधुसमाजमें इस ग्रन्थरत्नका जितना आदर और सम्मान बराबर चला आ रहा है, उसका तो कहना ही क्या? पर इधरके साहित्यिक समाजमेंभी उसे अपनानेकी चेष्टा की है। प्राचीन टीकाकार बाबा हरिहरप्रसादजी महाराज, बाबू शिवप्रकाशजी आदि तो परम भागवत वैष्णवही थे। साधुओंका तो यह अपना सर्वस्व है, जीवनधनही है, उपास्य है। हाँ, विद्वत्समाजनेभी इसे श्रीमद्गोस्वामीजीका सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ माना है। इनमेंसे कुछ विद्वानोंके विचार सूक्ष्मरीतिसे उन्हींके शब्दोंमें हम यहाँ उद्धृत करते हैं। १ इसे भक्ति और ज्ञानकी साक्षात् मूर्ति कहनाभी अत्युक्ति न होगी। २ इसमें गोसाईंजीने अपनी ग्रामीण भाषामें बड़े बड़े कठिन वेदान्तके मसले रख दिये हैं जिसके समझनेमें वेदान्तियोंकी अक्ल चकरा जाती है। ३ इसमें उत्तम काव्य, ऊँचे दरजेका सङ्गीत, सांसारिक अनुभव, आध्यात्मिक ज्ञान और ईश्वरप्रेमका पंचामृत पाया जाता है। ४ हिन्दी साहित्यका यह अनमोल रत्न है। ५ यदि संसारभरकी पुस्तकोंको एकत्र करके मुनादी कर दी जाय कि ये सब पुस्तकें कल जला दी जायेंगी, जिसे जो पुस्तक बचाना मंजूर हो वह आजही उस पुस्तकको निकाल ले, (तो) मुझे आशा है कि हिन्दूमात्रका हाथ इस पुस्तकके बचानेकेलिये ज़रूर आगे बढ़ेगा। बस, इसीसे इसकी उपयोगिता समझ लेनी चाहिये। ६ D. Grierson regards it as Tulsidas's very best work. ७ ऐसा सर्वांगपूर्ण विनयका ग्रन्थ किसी परिपूर्ण साहित्यमें एकाधही मिलेगा। संस्कृत साहित्यमेंभी इस ढंग और कोटिका ग्रन्थ बड़े तर्क वितर्कके पश्चात् प्रस्तुत किया जा सकता है। अन्य साहित्योंकी बातही क्या?

इस दासकी समझमें तो श्रीमद्गोस्वामीजीका यह ग्रन्थ पाठ करते समय ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने हमारेही हृदयंगत भावोंका चित्र खींचकर श्रीसरकारके सामने रख दिया है। हमें प्रभुके सामने उनको केवल अपने मुखसे दुहरा देना है। वे हम सरीखे महाअधम, महा-पतितको श्रीसरकारके सामने लिये चलते हैं। पगपगपर हमें निराश होतेसमय उनके पतितपावन अधमोद्धारण बिरदका सहारा देते चलते हैं। कभी कभी शिक्षाभी देते हैं जिसमें हम प्रभुके सम्मुख शीघ्र हो जायँ, डरें नहीं। यथा, " भलो मानि हैं रघुनाथ जो हाथ जोरि माथो नाइ है।" बस और करनाही क्या है? कितना सरल साधन है!

पदोंकी रचनासे ज्ञात होता है कि गोस्वामीजी सङ्गीतकलाके भारी पंडित थे। जिस रागके उपयुक्त जो पद रचा गया है उसका भावभी उसी रागके अनुरूप है। जो केवल पिंगलशास्त्रका विद्वान् है पर संगीत शास्त्रका मर्मज्ञ नहीं है, गवैया नहीं है। उसको इसमें दोष दिखाई देते हैं। वस्तुत: सगीतशास्त्रानुसार इसकी रचना हुई। उसके अनुसार इसमें दोष नहीं मिलेंगे।

उपर्युक्त उद्धरणोंसे इस ग्रन्थरत्नके शुद्ध पाठ और उसकी विस्तृत सरल व्याख्याकी आवश्यकता तो प्रेमी पाठकोंके ध्यानमें आ गयी होगी।

संवत् १९८५ में जब यह दीन श्रावणकुंज, अयोध्याजीमें संवत् १६६१ वाली श्रीरामचरितमानस बालकांडकी पोथीकी प्रतिलिपि लिख रहा था तब माघ शुक्ल ५ (वसन्तपंचमी) को उस कांडके अन्तमें महन्त श्रावणकुंजके हाथका लिखा हुआ संवत् १६६६ वाली विनय-पत्रिकाका परिचय प्रथम प्रथम दासको मिला।

सन् १९३४ ई० में श्रीरामचरितमानसका **"मानस-पीयूष"** नामक सबसे बृहत् तिलकका प्रथम संस्करण, जो दास १९२६ ई० से छपाता और प्रकाशित करता रहा था, पूरा छपकर प्रकाशित हो जानेपर दासका चित्त श्रीयुगलसरकारकी प्रेरणासे " **विनय** " की ओर गया। दासने सं० १६६६ वाली पोथीकी खोज की और उस पोथीको जाकर देखकर उससे लाला श्रीभगवानदीनजीकी (सं० १९८५ वाले संस्करणकी)

पुस्तकका पाठ संशोधन कर काशीहीमें रहकर एक पोथी लिखकर तैयार कर फिर उसकाभी मिलान सं. १६६६ वाली प्रतिसे कर लिया। इस पोथीका पाठ इतना सुंदर है कि जी फड़क उठा। कितनेही पाठ, जिनमें टीकाकारोंने सिरपच्ची किया है, उससे हल हो गये। उसमें एक खूबी (उत्कृष्टता) यह है कि हरताल और काट छाँट प्रायः नहींके बराबर हैं। पंडितोंके हाथोंसे वह अछूता बच गया है। इसमें कुल १७४ पद थे। लेखककी भूलसे १७५ संख्या हो गयी है।

उससमय हमें श्रीभागवतदासजी एवं मिरज़ापुरके श्रीबेनीजी कायस्थकी पोथियाँ भोंसला घाटपर श्रीजानकीवल्लभलालजूके मन्दिरमें श्री पं० राघोवल्लभाशरणजीसे प्राप्त हुईं। उनसे दूसरी पुस्तक (मुरादाबाद, लक्ष्मीनारायण प्रेसवाली) संशोधित कर इस दीनने इनके पाठके अनुसार शेष पदोंको (जो सं. १६६६ वाली पोथीमें नहीं थे) लिखा।

इसप्रकार उपर्युक्त तीनों पोथियोंसे इस दीनने एक पूरी स्वहस्त-लिखित पुस्तक शिवरात्रि सं० १९९१ वि० को प्रारम्भ कर चैत्र कृष्ण २ गुरुवार सं० १९९१ को तैयार कर ली।

तत्पश्चात् जब 'मानस-पीयूष' (प्रथम संस्करण) की सब पुस्तकें गीताप्रेस, गोरखपुरको काशीसे रवाना कराके यह दीन गोरखपुर गया, तब उसी यात्रामें बलरामपुर राज्यमें जाकर सं० १८७९ वि० की श्रीप्रल्हाददासजीकी हस्तलिखित पोथी देखकर अपनी हस्तलिखित पोथीमें इस दीनने उसके पाठान्तर लिख लिये। यह कार्य संभवतः १५-१६ मार्च सन् १९३५ ई० शनिवार फाल्गुन शु० १२ सं० १९९१ वि० को संपन्न हुआ। यह पोथी लक्ष्मणकुंड श्रीअयोध्याजी श्रीसरयूतटपर श्रीप्रल्हाददासजीने स्वयं किसी पोथीसे उतारी थी। प्राचीन पोथियोंमेंसे यही एक पोथी है, जिसमें प्रथम प्रथम श्रीजानकीजीवाला (प्रक्षिप्त) तीसरा पद देखनेमें आया, जो और किसी प्राचीन पोथीमें नहीं पाया जाता। इससे अनुमान हुआ कि यह पद शृङ्गाररसनिष्ठ महात्मा-ओंसे किसीका रचा हुआ है और सम्भवतः श्रीलक्ष्मणकिलापर उसकी असली प्रति होगी। परन्तु पता लगानेपरभी आजतक उसका पता न

लगा। सं० १८७९ वाली इस पोथीका पाठभी बहुत कुछ शुद्ध रहा होगा। परन्तु लोगोंने उसका पाठ भ्रष्ट कर दिया है। असली पाठ क्या था इसका पता उससे ठीक नहीं चल सकता।

इसके पश्चात् हमें सं० १८९३ की एक सुंदर हस्तलिखित पुस्तक काशीजीसे श्रीजमुनादास वैश्यके हाथकी लिखी मिली और एक सं० १९१५ वि० की श्री ६ रामसुंदरदासजी रामायणी, छावनी बाबा मणिरामजी, श्रीअयोध्याजीसे मिली।

वीरकविजी (पं० श्रीमहावीरप्रसाद मालवीय) लिखते हैं कि उन्होंने सं० १७७४ की एक हस्तलिखित प्रतिका पाठ अपनी टीकामें रक्खा है। मूल आधार वही है यद्यपि सहायता सं० १८८५ की प्रति लिपिसेभी ली है। अतएव उनकी छपायी हुई टीकाके पाठको हमने सं. १७७४ का पाठ मान लिया है। श्रीरामस्वामी कौन हैं, उनका स्थान चित्रकूटमें कहाँ है जहाँसे उनको यह पोथी मिली, इसका पता टीकासे नहीं चला। यदि कोई प्रेमी जानते हों तो लिखकर दासको अनुगृहीत करें।

हमारा अनुभव है कि प्रायः हिंदीकी छपी पुस्तकें (विशेषतः वे जो पैपापूजक प्रकाशकोंको दे दी जाती हैं) असली प्रतियोंके अनुकूल नहीं होतीं। हमने "विनय-पीयूष" में यत्र तत्र इस बातको दिखायाभी है। प्रथम तो लोग साधारणतया वही छाप दिया करते हैं कि अनेक प्राचीन पोथियोंसे संशोधित करके पाठ रक्खा है। पर वे किसी पोथीका न तो नाम देते हैं और न वस्तुतः उन्होंने प्राचीन हस्तलिखित पोथियोंको देखाही है। प्रकाशकोंका प्रायः यही शेवा है, रवैया है।

सं० १६६६ वाली पोथीका नाम 'श्रीरामगीतावली' है। इसमें केवल १७४ पद थे जिसमेंसे चार पद आजकलकी छपी हुई गीतावली रामायणमें पाये जाते हैं। प्रचलित "विनयपत्रिका" की पुस्तकमें २७८ पद हैं।

सं. १६६६ वाली प्रतिमें क्यों इतनेही (१७४) पद हैं? उसका नाम "श्रीरामगीतावली" क्यों है? क्या १०९ वा १२५ पद, जो अन्य सभी पोथियोंमें पाये जाते हैं, प्रक्षिप्त हैं? ये प्रश्न स्वाभाविकही हृदयसे उठते हैं।

इसके विषयमें इस दीनका अनुमान यह है कि संगीत कलाकुशल पूज्य कविने समयसमयपर कुछ गीतके पद रचे और फिर उनको एकत्र करके उस ग्रन्थका नाम "श्रीरामगीतावली" रख दिया। कुछ वर्षोंके बाद किसी कारणसे उन्होंने कुछ विनयके पद और लिखे, जिसमें श्रीगणेशजी, श्रीसूर्यभगवान्, श्रीदुर्गाजी, श्रीकालीजी, श्रीयमुनाजी, श्रीकाशीजी, श्रीलक्ष्मणजी, श्रीभरतजी, श्रीशत्रुघ्नजी और श्रीजानकीजीके सम्बन्धके एकभी पद नहीं हैं। अधिकसे अधिक ३ पद (३, ८, ११) शिवजीके, दो गंगाजीके (१९, २०), दो चित्रकूटके (२३, २४) और चार हनुमान्जीके (३२, ३३, ३४, ३५,) हो सकते हैं। शेष सब श्रीरामजीके संबंधके हैं। पद २७९ श्रीरामगीतावलीमें नहीं है। वह पद यह है।

"मारुति मन रुचि भरत की लखि लषन कही है।
कलिकालहु नाथ नाम सो प्रतीति प्रीति एक किंकर की निबही है॥
सकल सभा सुनि लै उठी जानी रीति रही है।
कृपा गरीब निवाजकी देखत गरीब को सहसा बाँह गही है॥
बिहँसि राम कह्यो सत्य है सुधि मैं हूं लही है।
मुदित नाथ नावत बनी तुलसी अनाथकी परी रघुनाथ सही है॥"

पद २७८ भी नहीं है, जिसमें "पवनसुवन रिपुदवन भरत लाल लखन दीन की। निज-निज अवसर सुधि किये बलि जाउं दास आस पूजि है खास खीन की॥" इस प्रकार विनय की गयी है। श्रीलक्ष्मणजी, श्रीभरतजी, श्रीशत्रुघ्नजी, श्रीहनुमानजी और अंबा श्रीजनकनन्दिनीजूने श्रीसरकारसे आपकी सिफ़ारिश की है यह बात उपर्युक्त उद्धरणोंसे स्पष्ट है। अतएव विनयपत्रिकामें इनके पद न हों यह कब उचित एवं संभव हो सकता है? इस विचारसे यह निश्चय होता है कि

पूज्य कविने स्वयं दोनोंको किसी समय एकत्र कर उस पूरे ग्रंथका नाम 'विनय-पत्रिका' रक्खा और दरबारमें पेश किया। "विनय-पत्रिका" नाम उन्हींका रक्खा हुआ है; यह " बिनयपत्रिका दीनकी बाप आपुही बाँचो " (पद २७७) से सिद्ध है।

अन्तके तीन पद तभी संगत हो सकेंगे जब श्रीलक्ष्मणजी आदिके विनयके पदभी उसमें हों जिनमें सरकारसे सुध दिलाने, सिफ़ारिश करनेके भाव भरे हों।

" मूल गुसाईंचरित " से हमारे अनुमानकी पुष्टि होती है। बाबा बेनीमाधवदासजी उसमें लिखते हैं कि ' रामगीतावली ' उन गीतोंका संग्रह है जो वे कोकिलकंठ बालकोंको गानेकेलिये बना दिया करते थे। कुछ वर्षोंबाद जब कलियुगने उनको डाँटा और उन्होंने श्रीहनुमान्‌जीसे शिकायत की तब श्रीहनुमान्‌जीने उनसे विनयावली रचनेकी सलाह दी। इसपर " श्रीरामविनयावली " रची गयी।

पं० शिवलालपाठकजीकी एक जीर्ण शीर्ण पुस्तकमें विनयपत्रिकाका नाम ' रामविनयावली ' मिलता है। इसके कुछ अंशकी नक़ल नागरी-प्रचारिणी सभी, काशीके पुस्तकालयमेंभी थी। परन्तु इस दीनको वहाँकी सूचीमें दी हुई कई पुस्तकें देखनेको नहीं मिलीं जब यह दीन वहाँ लगभग १९३५ ई० में गया था।

यहां यहभी बता देना असंगत न होगा कि प्रायः पूर्वरचित पदोंमें कलियुगकी शिकायतके पद नहीं हैं। जो पीछे रचे गये हैं उनमें हैं।

संभवतः १७४ ही पद होनेके कारण ना. प्र. सभा और गीताप्रेस एवं औरभी किसी टीकाकारने सम्वत् १६६६ वाली प्रतिकी ओर ध्यान नहीं दिया। नहीं तो उनके पास द्रव्य और जन दोनोंही आवश्यक सामग्रियाँ मौजूद थीं। वे विनयका शुद्ध संस्करण निकाल सकते थे ऐसा कुछ लोग भलेही कहें। पर इस दीनकी समझमें तो इस ओर उनका ध्यान विशेष आकर्षित न होनेका कारण एकमात्र यह है कि यह सेवा प्रभुको इस दीनसे लेनी थी। इसीसे श्रीमद्गुरुदेवद्वारा यह आज्ञा उन्होंने दी और हठात् वह सेवा इस सेवाचोरसे करा ली।

सन् १९३५ हीमें दासने क्षेत्रसंन्यास ले लिया। तबसे दास श्रीअयोध्याजीके बाहर कहीं नहीं जाता। इसलिये फिर दास विशेष खोज नहीं कर सका।

सं० १९५१ की व्यङ्कटेश्वर प्रेसकी छपी तथा उसके चोरी जानेपर सं० १९५७ की छपी (अर्थात् सं० १९५१ वालीका पुनर्संस्करण) और बाबा हरिहरप्रसादजीकी छपी टीकाभी देखनेको मिली।

सं० १९९९ कार्तिक मासमें दैवयोगसे मुझे विजयानगर (ईजा-नगर) बनारस, कोठी लीलाके व्यास श्रीगजाधरदासजीके यहाँकी एक प्राचीन हस्तलिखित पोथी (जो मुझे रामायणी बाबा श्रीरामसुन्दरदासजीसे पूर्व कभी प्राप्त हुई थी) अपने अस्तव्यस्त पड़े हुए रद्दी कागज़ोंमें मिल गयी। यह पोथीभी सुन्दर अक्षरोंमें साफ़ लिखी हुई है। यह लगभग २०० वर्ष पुरानी होगी। इसमें आदि अन्तके पन्ने नहीं हैं।

श्रीगोस्वामीजीकी हस्तलिखित वा उनके समयकी कोई पूरी पोथी न उपलब्ध होनेसे विश्वस्त हस्तलिखित पोथियोंके सिवा शुद्ध पाठकी खोजका और साधनही क्या हो सकता है? जो विश्वस्त हो उसीकी कसौटीपर अन्यकी परख करके शुद्ध पाठतक पहुँचा जा सकता है। ऐसा विचार कर इस दीनने सं. १६६६ वाली पोथीको प्रधान और सब प्रकार विश्वस्त और सुन्दर समझकर शुद्धपाठकी परखकेलिये कसौटी बनाया। विजयानगरके व्यास जिससे कथा कहते थे वह पोथी सं. १६६६ वाली को छोड़ अन्य समस्त पोथियोंसे बहुत शुद्ध प्रतीत होती है।

श्रीभागवतदासजी आदिकी पोथियोंका पाठ सं. १६६६ की प्रतिसे रुपयेमें चार आना मिलता है और विजयानगरके व्यासकी पोथीका पाठ रुपयेमें बारह, चौदह आना मिलता है। अतएव जो पद हमें श्रीराम-गीतावलीमें मिले वे हमने ज्योंके त्यों उसमेंसे ले लिये। इसके बाद जो पद इसमें नहीं हैं उसकेलिये हमने व्यासजीकी पोथीको कसौटी माना है। यह पोथी दो सौ वर्षसे उपरकी बतायी जाती है। आदि अंतके पन्ने न होनेसे संवत्‌का पता नहीं चल सकता। इसके अठारहवे पन्नेमें विनयका नववाँ पद "सिव सिव होइ प्रसन्न" है जिसपर संख्या ४०० दी हुई है। पन्ना १०३, पद २७६ (जो उसमें ६६७ है) के 'कहा न कि'

पर समाप्त होता है। चौदह, पन्द्रह पद जो इसमें नहीं हैं उनके शुद्धपाठका निर्णय करनेमें अत्यन्त कठिनाई प्रतीत हो रही है।

सं० १७७४ वाला कहा जानेवाला पाठ इन समस्त पोथियोंसे बहुत कम मिलता है। यह पोथी इन कसौटियोंपर कसी जानेपर बहुत अशुद्ध प्रतीत होती है और प्रामाणिक नहीं जान पड़ती।

उपर्युक्त दोनों प्राचीन पोथियोंके बाद बाबा हरिहरप्रसादजी और सं० १९५१ की पुस्तकोंका पाठ उत्तम साबित हुआ।

इन सब प्रतियोंसे दासने अपने पाठकेलिये फिरसे एक दूसरी स्वहस्तलिखित पोथी तैयार की। मूल पाठ सं० १६६६ काही प्रायः उन सब पदोंमें है जो उसमें मिलते हैं। चार छः स्थानोंमें जहां अर्थ नहीं लग सका वहाँ व्यासजीकी पोथीका पाठ रक्खा गया है और नीचे (फुट नोटमें) सं. १६६६ वा पाठ दे दिया गया है। अन्य लगभग १२० पदोंका पाठ विजयानगरकी पोथीके अनुसारही प्रायः रक्खा है और शेष आठदसका पाठ श्रीभागवतदास आदिसे चुना गया है। समस्त पोथियाँ, जिनकी चर्चा उपर की गयी है प्रायः उन सबोंका पाठ पादटिप्पणीमें दे दिया गया है।

माघ, फाल्गुन सं. १९९९ में बाबू शिवप्रकाशजी, श्रीबैजनाथदासजी, पं० रामेश्वरभट्टजी (तीसरा संस्करण सन् १९२५ ई०), लाला श्रीभगवानदीनजी और वियोगीहरिजीकी टीकाओंका पाठभी हमने देखा और उसकोभी पीछे हमने अपनी पोथीमें बढ़ा दिया। यह काम १ मार्च १९४३ ई० को समाप्त हुआ।

श्रीभट्टजीके तीसरे संस्करणका पाठ सं. १६६६ और व्यासजीकी पोथियोंका बहुत अंशमें मिलता है और कहीं कहीं हरिहरप्रसादजी और सं० १९५१ की पुस्तकोंसे लिया हुआ जान पड़ता है। उन्होंने यह कहीं नहीं लिखा कि किस पोथीसे उन्होंने पाठ लिया है। अनुमान होता है कि उन्होंने तीसरे संस्करणके समय सं. १६६६ वाली एवं कोई और प्राचीन हस्तलिखित पोथी अवश्य देखी है और बहुत अंशमें पाठ उन्हींके अनुसार रक्खा है। बहुतसे स्थानोंमें उनके पाठ सं. १६६६ की पोथी से मिलते हैं

जो और कहीं देखनेमें नहीं आये और बहुतोंमें व्यासजीकेही पाठ मिले। लाला श्रीभगवानदासजीका पाठ प्रायः १९५१, मुरादाबाद और डुमराँव-वाली छपी पुस्तकोंसे लिया हुआ जान पड़ता है। यही पाठ प्रायः श्रीवियोगी हरिजीका है। कहीं कहीं पाठभेद है।

हमने सन् १९४३ में मानसमणिमें बहुतसे पाठान्तरोंको दिया था और पाठकोंसे प्रार्थना की थी कि उनपर विचार करें। पर किसीने कृपा न की। पं. श्री राजबहादुर लमगोड़ाजीने अपने विचार लिखकर भेजे और इधर पं० देवदत्त शर्माजीने छपते समय 'विनय-पीयूष' देखा तो उन्होंनेभी प्रसन्नता और प्रेमपूर्वक विना कहे हुए स्वयं अपने विचार लिख भेजे। इन दोनों महानुभावोंको इस कृपाका धन्यवाद देता हूँ। दीन आशा करता है कि इस छोटीसी खोजसे लोगोंको कुछ लाभ हो।

टीकाः—सबसे पहली टीका डुमराँवनरेश श्रीयुत् महाराज जयप्रकाशजी-के भाई बाबू शिवप्रकाशजीकीही जान पड़ती है। इसका प्रथम संस्करण सं. १९४१ काशीका है। लेखकी तिथिका पता इसमें नहीं है। अंतमें यह दोहा है, "**भोजवंश अवतंस कहि जयप्रकाश महाराज। रजधानी डुमराँव है तिन सुभग समाज। तिनके लघु भाई सुहृद शिवप्रकाशजिहि नाम। तिनने यह टीका करी सकल शास्त्रको धाम॥**" मुं. नवलकिशोर प्रेस, लखनऊमें इसकी पाँचवी आवृत्ति १९०७ ई० में प्रकाशित हुई।

इस टीकाकी पूरी छाया श्रीबैजनाथदासजीकी टीकामें है। इसीके भावोंको लेकर उन्होंने विस्तृत रूपसे एक बड़ी टीका 'विनय प्रदीपक' नामकी सं० १९४७ भाद्र शुक्ल ११ को पूर्ण की जो नवलकिशोर प्रेससे प्रकाशित हुई। यदि इसमेंसे पुनरुक्तियाँ निकाल दी जायँ तो दो तिहाई पुस्तकसे अधिक न रहेगी। यह पुरानी देशीय भाषा (ठेठ हिंदी) में है।

ठाकुर बिहारीलाल सिरस्तेदार, ओड़छा राज्यने तो डुमराँववाली टीकाकोही नकल कर डाला और लक्ष्मी व्यङ्कटेश्वर प्रेसने उसे प्रकाशित किया। इनपर नालिश हो सकती थी। ऐसी धूर्त्तता प्रेसवाले प्रकाशक बहुत करते हैं।

डुमराँव और बैजनाथजीवाली टीकाओंका प्रचार इस प्रान्तमें बहुत हुआ। इनके बादकी जितनी टीकाएँ हैं, उनमें इन्हीं दोनोंके भावार्थ अपने अपने शब्दोंमें प्रायः टीकाकारोंने रख दिये हैं। पं० रामेश्वर भट्ट और वियोगीहरिजीकी टीका खास तौरपर बैजनाथजीकेही आधारपर है। कठिन स्थलोंपर लोगोंने भावार्थ कहकर या शब्दोंको ज्यों का त्यों रखकर छोड़ दिया है। उनके समझाने या उनकी व्युत्पत्ति आदिकी खोज करनेका प्रयत्न नहीं किया है। कथाएँ जो बाबू शिवप्रकाशजीने अपनी टीकामें दी हैं प्रायः वही सब टीकाकारोंने ज्योंकी त्यों अपने शब्दोंमें दी हैं।

बाबा हरिहरप्रसादजी महाराजकी टीकाकी भाषा हमारेलिये इतनी दुरूह है कि हम उसके मूलपाठको छोड़ उससे कुछभी लाभ न उठा सके। काशीराज्यके लोग उस भाषाके बोलनेवाले होंगे, यदि वे उसे प्रचलित हिन्दी भाषामें करा दें तो संभव है कि वहभी कुछ कामकी सिद्ध हो। पाठ उसका कहींसे लिया गया यह हमको पुस्तकसे पता नहीं चलता।

जो प्रेमी पाठकोंके सामने इस दीनका परिश्रम फलरूप "विनय-पत्रिका" आ रही है, उसका पाठ प्रायः प्रचलित समस्त पोथियों और पुस्तकोंसे विलक्षण और नवीन प्रतीत होगा। दासने अपने भर पाठोंपर बहुत विचार किया और खास खास स्थलोंपर उन विचारोंको "विनय-पीयूष" में लिखभी दिया है। प्राचीनतापर बहुत ध्यान दिया गया है।

यह पाठ किसी एक पोथी या पुस्तकमें कहीं आपको देखने सुननेमें न आया होगा और न आवेगा, तब इस पाठवाली पुस्तककी टीका कहाँसे मिल सकती है?

श्रीसरकारकी आज्ञा होनेपरभी इस टीकाका कार्य दासको भारी भार लगता था। दास उससे मुँह चुराताही रहा। फिरभी "मानस-पीयूष" के प्रेमियोंके विशेष आग्रहसे टीकाका लिखना संभवतः आश्विन शु० १० सं. १९९० वि. को प्रारम्भ हुआ। परन्तु पौषमें फिर स्थगित हो गया। इस प्रकार जैसे तैसे चैत्र कृ० १९९२ तक ४८ पदोंकी एक टीका तैयार हुई जो वृन्दावन श्रीहरिदेवजीके मन्दिरके स्थानाधिपति वेदान्तशिरोमणि

श्री ६ रामानुजाचार्यजी महाराज ले गये। दासका चित्त इधर सिखने पढ़नेके कामसे बराबर भागता रहा है, वृद्धावस्था है और आँखेंभी बहुत कमज़ोर हो गयी है। श्रीअवधसे बाहर जानेका नियम नहीं है और श्रीअयोध्याजीमें कोई ऐसा प्रेम नहीं जो इस कामको कर सकता। संभव था कि वह छपती जाती तो दास उसे पूरी लिख चुका होता।

श्रीवृन्दावनसे वह हस्तलिखित टीका सालभरमें लौटी परन्तु उसमें यत्रतत्र अमूल्य टिप्पण वेदान्तशिरोमणि महाराजजीके मिले। यह देखकर फिर उत्साह बढ़ा और जैसे तैसे एक साधारण टीका तैयार हुई और वृन्दावन गयी। श्रीवेदान्तशिरोमणिजीके अमूल्य टिप्पणोंके-लिये यह दीन उनका अत्यन्त कृतज्ञ है। उनको देखकर फिर हमने उपनिषदों, पुराणों, भगवद्गुणदर्पणभाष्य आदि ग्रन्थोंसे पं. रामकुमार-दासजी, वेदान्तभूषण, श्रीअयोध्याकी सहायतासे बहुत काम लिया।

दो वर्ष शरीर बहुत अस्वस्थ रहा। आशा तो यही थी कि श्रीसरकार अपने समीप लिये चलते हैं। पर फिरभी बेशर्म जिन्दगीने पीछा न छोड़ा। इसकेबाद अपूर्वभूत संसार युद्ध छिड़ गया। "मानस-पीयूष" का दूसरा बहुत बृहत् संस्करण लिखा पड़ा रह गया। "विनय-पीयूष" को कौन पूछे?

अनेक मित्रों और प्रेमियोंने हठ किया कि पूरी बृहत् टीका लिख दी जाय। पर दासका हठ यही रहा कि छपना प्रारंभ होगा तभी आगे लिखी जायगी। बाबू शारदाप्रसादजी, व्यवस्थापक 'मानस संघ', रामबन के उद्योगसे प्रयागमें छपनेका प्रबंध हुआ और छःसात मासमें पांच फर्मे छपे। छपाई अशुद्ध और खराब, आर्डरी प्रुफ अंधा, लीपापोता देखकर जी घबड़ा गया और वहाँ छपाना बंद कर दिया गया। परन्तु इसमेंभी प्रभुकी असिम कृपा देख पड़ी। उनके ढंग निराले हैं। इसतरह उन्होंने दाससे कमसे कम एक हजार पृष्ठकी टीका साफ़ लिखा ली। साथही उसके छपनेका सुयोग्य प्रबंध कर दिया।

३९ पदोंका प्रथम संस्करण "मानस-पीयूष" कार्यालय, महल्ला दारागंज, प्रयाग, के अध्यक्ष श्रीयुत् अनन्तरामजी श्रीवास्तवने दो खण्डोंमें प्रकाशित किया। परंतु वे बीमार हो जानेसे आगेके भाग अभीतक

न छपाये जा सके। इसकी माँग इतनी बढ़ी कि हमें तुरन्त उसीका दूसरा संस्करण छपानेकी आवश्यकता हो गयी।

पं. रामचंद्रदासजी और राजरत्न राज्यप्रिय प्रो. माणिकरावजी इन्होंने बड़ौदामें इसके दूसरे संस्करणके छपने और स्वयं प्रूफ़भी देख देनेका गुरुतर भार अपने ऊपर ले लिया। यह दीन उनका बहुतही कृतज्ञ है और इसकेलिये उनको हार्दिक धन्यवाद देता है। पुस्तककी शुद्धता, सुन्दरता और आकर्षता आदि सब आपही दोनों महात्माओंके परिश्रमका फल है।

हम उपर कह आये हैं कि प्रायः सभी टीकाकारोंने पद्यार्थ न देकर केवल भावार्थही लिखे हैं। कठिन शब्द ज्यों के त्यों जहाँ तहाँ वैसेही रह गये हैं। पाठान्तर यदा कदा देभी दिये गये हैं पर उनपर किसीमें कुछ विचार नहीं प्रकट किये हैं। इन विषयोंमें लाला भगवानदीनजीकी टीकाहीमें कुछ विशेषता दृष्टिगोचर होती है।

सीधा सादा अर्थ जिसमें कोई शब्द मूलकाभी न छूटे और जो व्याकरण और शुद्ध व्युत्पत्तिके अनुसार पद्यार्थ हो, जिसे अँग्रेजीमें Literal translations, paraphrase and simple meaning of what Tulsidas wrote" (रेवरेन्ड ग्रीव्ज़ साहेबके शब्दोंमें) कह सकें ऐसी टीका कोई प्रचलित पाठोंवाली "विनय-पत्रिका" परभी नहीं है और इस विनय-पीयूष का तो पाठही सबसे निराला है।

"विनय-पीयूष" में प्रथम छोटे बडे, सरल और कठिन सभी शब्दोंके अर्थ विस्तारसे शब्दार्थमें दिये गये हैं। संभव है कि विद्वानोंको इनकी आवश्यकता न हो। पर दासने तो विनयपत्रिकाका एक अबोध विद्यार्थी बनकर इसको अपने सन्तोषार्थ तैयार करना प्रारम्भ किया था। फिर मित्रोंकी राय उसमें काट छाँट करनेकी नहीं हुई। इसलिये वह विनयपत्रिकाके विद्यार्थीकेलिये हो सकता है कि उपयोगी हो। यह अवश्य है कि आद्यन्त जो इसका अध्ययन कर लेगा उसे शद्धार्थमें दिये हुए शब्दोंपर फिर कदाचित्‌ही कोई कोश देखनेकी इच्छा हो।

जो हिन्दी भाषासे अनभिज्ञ हैं और अन्य भाषाओंके विद्वान् हैं, उनका काम विशेषतर इस शद्बार्थसे चल जायगा। फिर तो पद्यार्थ और भावार्थ वे लगा लेंगे और गूढ़ विषयोंपर प्रकाश डाल सकेंगे।

दासको न तो साहित्यकाही ज्ञान है और न व्रजभाषा, अवधी भाषा आदिका। इसकेलिये तो दास लाला भगवानदीनजी आदि टीकाकारोंका-ही सदा कृतज्ञ रहेगा।

शद्बार्थके बाद पद्यार्थ है। उसके पश्चात् फिर शब्दों, वाक्यों और मुहावरोंके विशेष भाव टिप्पणियोंमें दिये गये हैं।

कठिन प्रसंगोंमें जहां जहां कठिनाइयोंका सामना पड़ा, दासकी (श्रीसीतारामकृपासे) जो समझमें आया वह लिख दिया है और भावार्थान्तर वा अर्थान्तरमें अन्य टीकाकारोंके अर्थ और भावभी दे दिये हैं। हमारा काम किसीका खण्डन करना नहीं है। सभीने जो लिखा है वह अपनी-अपनी समझके अनुसार उचित और बहुत अच्छा लिखा है। ग़लती प्रत्येक मनुष्यसे हो सकती है। हमने जो भावार्थान्तर सब टीकाकारोंके दिये हैं, वे इसलिये कि जो पाठक तुलनात्मक अभ्यास करना चाहते हों उनको सहायता मिलें। वे स्वयं विचार करें और जिसे उत्तम समझें उसे ग्रहण करें।

कथाएँ जो हमने इसमें दी हैं, वे सब प्रामाणिक दी हैं। स्वयंभी पुराणों, रामायणों, इतिहासों और पत्रिकाओं इत्यादिको पढ़कर उनसे उद्धृत की हैं और प्रमाणभी लिख दिये हैं। इसमें गणेशजी, सूर्यभगवान्, रुद्र, भैरव, गंगा, गुणनिधिद्विज आदिकी कथाएँ जो दी गयी हैं वे अबतक किसीभी प्रकाशित और अप्रकाशित पुस्तकोंमें देखने और सूननेमेंभी नहीं आयी होंगी। साथही जो कथाएँ टीकाकारोंने दी हैं उनकाभी संक्षिप्त उल्लेख कर दिया गया है।

गोस्वामीजीकी संगीत कलाकी परिचयचारुताभी स्थल स्थलपर दृष्टिगोचर करायी गयी है।

श्रीगणेशजी, सूर्यनारायण और शिववेष आदिके आध्यात्मिक रहस्यभो जो महानुभावोंने लिखे हैं, इसमें उद्धृत कर दिये गये हैं।

दास संस्कृत बिलकुल नहीं जानता। संस्कृत ग्रन्थोंको टीकाओंकी सहायतासे पढ़करही हमने मूल उद्धृत कर दिया है। छपा हुआ मूल यदि अशुद्ध है तो इसमेंभी अशुद्धिका रहना क्या आश्चर्य है!

अलङ्कार आदि हमने प्राय: पं० महावीरप्रसाद मालवीय, और वीर-कविजीकी टीकासे लिया है।

हम यह नहीं कह सकते कि यह टीका किसीकेभी कामकी होगी या नहीं। हमें सन्तोष यही है कि श्रीसरकारने जो इस शरीरसे सेवा चाही, कृपा करके जबरदस्ती ले ली और उसपर रीझे हैं। इस शरीरसे संबंध रखनेवाली श्रीमती मीरादेवीकोभी भूलना न चाहिये। शब्दोंकी सूची उसीने तैयार कर दी है।

त्रुटियोंसे पूर्ण जो कुछ हमारी एकत्र की हुई, बुरी भली, शुभाशुभ पूँजी है वह श्रीसरकारके सामने भेंट कर दी गयी है और अब आपके सामनेभी है। **गर पसन्द उफ़तद ज़हे इज़्ज़ो शरफ़।**

इस तिलकमें एक विशेषता यहभी है कि इसमें समस्त देवताओंका जहाँ जैसा स्वरूप वर्णित है वहाँ उसीके अनुसार पक्षपातरहित व्याख्या की गयी है। इसमें सब शास्त्रोंके सिद्धान्त दिये गये हैं। द्वैतवाद, अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, शैववाद सभी वादोंके अनुसार व्याख्या की गयी है। सबके मत इसमें हैं, क्योंकि यह ग्रंथ मानवमात्रकेलिये है, न कि वैष्णवमात्रकेलिये।

"बार बार माँगौं कर जोरे।
बसहुँ राम सिय मानस मोरे॥"

दीन
अंजनीनन्दनशरण

सांकेतिक अक्षरोंका विवरण

हस्तलिखित पोथियाँ	सांकेतिक अक्षर
१ सं० १६६६ की श्री भगवान् ब्राह्मणकी लिखी प्रति। रामनगर, काशी।	६६
२ सं० १८६९ की श्री चौधरी छुन्नीसिंहकी एक पोथी। रामनगर, काशी।	३९
३ श्री भागवतदासजीकी प्रतिलिपि।	भा०
४ सं० १८७८ की श्री बेनीकायस्थकी लिखी पोथी। मिरज़ापूर।	बे०
५ सं० १८७९ की श्री प्रह्लाददासकी लिखी पोथी। राज्यपुस्तकालय, बलरामपुर।	प्र०
६ सं० १८९३ की श्री जमुनादास वैश्यकी लिखी पोथी।	ज०
७ सं० १९१५ की श्री रामरतदासकी लिखी पोथी।	'१५
८ ईजानगर (विजयानगर) के व्यास की पोथी।	रा०

छपी हुई पुस्तकें

१ मूल, व्यंकटेश्वर प्रेस। सं० १९५१	'५१
२ ,, ,, सं० १९५७	
३ मुरादाबाद लक्ष्मीनारायण यंत्रालय।	मु०
४ चरखारी नरेशकी लीथोमें छपी टीका। सन् १८७६	च०
५ बाबू शिवप्रकाश (डुमराँव) की टीका। सं० १९४१	डु०
६ श्री वैजनाथजीकी लीथोमें छपी टीका। सं० १९४७	वै०
७ श्री सीतारामीय बाबा हरिहरप्रसादजीकी टीका। सन् १९०४	ह०
८ वीरकवि पं० महावीरप्रसाद मालवीयकी टीका।	७४
९ पं० रामेश्वरभट्टजीकी टीका, तीसरा संस्करण। सन् १९२५	भ०
१० लाला श्रीभगवानदीनजीकी टीका। सं० १९८५	दी०
११ श्री वियोगी हरिजीकी टीका। सं० १९८७	वि०
१२ मास्टर बिहारीलाल, टीकमढ़की टीका।	टी०
१३ पं० रामकुमारजीके खर्रे।	खर्रा, रा०, कु०
१४ डु० मु० वै० भ० दी० और वि० का समुच्चय।	आ०

पदसूचि

श्रीगणेशायनमः

॥ विनय-पीयूष ॥

श्रीरामायनमः †

१ (१) राग गौरा *

गाइऐ[1] गनपति जगबंदन । संकर-सुअन भवानी-नंदन ॥१॥
सिद्धिसदन गजबदन विनायक । कृपासिंधु सुंदर सब-लायक ॥२॥
मोदक प्रिय मुद-मंगल-दाता । विद्यावारिधि बुद्धि विधाता ॥३॥
मांगत तुलसिदास कर जोरें । बसहुं[2] राम-सिय मानस मोरें ॥४॥

(व्याख्याकारका मंगलाचरण)

जनकसुता जगजननि जानकी । अतिसय प्रिय करुनानिधानकी ॥
ताके जुग पद कमल मनावउँ । जासु कृपा निर्मल मति पावउँ ॥
जस कछु बुधि बिबेक बल मोरें । तस लिखिहहुं हिय 'हरि' के प्रेरें ॥
करइ मनोहर मति अनुहारी । सुजन सुचित सुनि लेहु सुधारी ॥

---

† ६६ में 'श्रीरामायनमः' है । ६९ में 'श्रीगणेशाय नमः' है । भा०, वे० में 'श्रीजानकीवल्लभोविजयते' है । कोष्टकांतर्गत संख्या १६६६ की पोथी की है ।

*राग बिलावल—भा०, बे०, आ० । गौरी—प्र० । गौरा–६६ । भा० में इसके बाद 'अथमङ्गलाचरण' और प्र० में 'अथश्रीगणेशजूकापद', शब्द है ।

उठा त्योंही सबसे प्रथम इसी तत्वका विकास हुआ । कुछ लोगों के मतसे 'शुश्रुषा, श्रवण, ग्रहण, धारण, ऊहापोह और अर्थविज्ञान' बुद्धिके सात गुण हैं । इस विषयपर आधुनिक विद्वानोंमेंसे तिलक महोदयने अपने गीता-रहस्यमें विस्तारसे लिखा है कि बुद्धिकेभी दो रूप हैं-एक वासनात्मिका बुद्धि जिसके गुण ऊपर लिखे गए और जिससे बाहरी वस्तुओंका ज्ञान हमें होता है और दूसरी व्यवसायात्मिका बुद्धि जिससे हम उस ज्ञानके होनेके उपरान्त निर्णय करते हैं। बिधाता=विस्तार करनेवाला, उत्पन्न वा तैयार करनेवाला। कर=हाथ। सिय=सीताजी, माधुर्य्यमें 'सिय' नाम बोला जाता है। मानस=मन, हृदय । मोरें=मेरे ।

पद्यार्थ—श्रीगणेशजीका गुण 'गाईये' जो गणोंके स्वामी, जगत्‌वंदनीय, शङ्करजीके पुत्र, श्रीपार्वतीजीको आनन्द देनेवाले, सिद्धियोंके निवासस्थान, हस्तिमुख, विघ्नोंके स्वामी, दयाके समुद्र, रूपवान् तथा प्रियदर्शन और सब प्रकारसे लायक हैं, जिनको लड्डू प्रिय हैं, जो आनन्द मङ्गलके देनेवाले, विद्याके समुद्र और बुद्धिके विधाता हैं । मैं तुलसीदास हाथ जोडकर (यह वरदान) माँगता हूं कि श्रीसीतारामजी मेरे हृदयमें बसें ।

टिप्पणी—१ 'गाईऐ' इति । (क)-इस शब्दका अर्थ टीकाकारोंने भिन्न भिन्न किया है*। इस प्रकारकी क्रियाका प्रयोग अनेक स्थलोंपर कविने किया है, यथा-'सेइअ सहित सनेह देह भरी कामधेनु कलिकासी' (२२) 'मागिऐ गिरिजापति कासी' (६) 'को जाचिये संभु तजि आन' (३) इत्यादि । इस प्रकार 'गाइऐ' के इतने अर्थ हो सकते हैं-गाइये, गान करना चाहिये, गाता हूं, (गुण) गान करें ।

(ख)—इस ग्रन्थका आरम्भ 'गाइऐ' शब्दसे किया गया है, यह साभिप्राय है । 'गाइऐ' पदको आदिमें रखनेका प्रयोजन यह है कि

*श्रीबैजनाथजी और दीनजी इसे वर्तमानकालिक क्रिया और 'गनपति'को संबोधन मानकर अर्थ करते हैं—'हे गणेशजी ! मैं आपके गुणगान करता हूँ।' भट्टजी अर्थ करते हैं-'ऐसे गणेशजीका भजन करो' और वियोगीजीका अर्थ है—'श्रीगणेशजीका गुण गान करो' ।

१—गानेके वास्तेही इस ग्रन्थका निर्माण हुआ है। २—गान देवताओंको प्रिय है—'गीतेन प्रीयते देवः सर्वज्ञः पार्वतीपतिः। गोपीपति रनंतोपि वंशध्वनी वशंगतः।' ३—गानविद्यामें गणेशजी प्रसिद्ध हैं। ४—गान सुखी लोगोंको सुखका निधान और दुःखियोंके दुःखका हरण करनेवाला है। (पं० रा० कु० च०)। यथा—'सुखिनि सुखनिवासो दुःखितानां विनोदः श्रवणहृदयहारी मन्मथस्याग्रदूतः। रतिरसभविधाता वल्लभः कामिनीनां जयति जगतिनादः सप्रभेदोपभेदः॥' (संगीत रत्नाकर)।

(ग)—'गाइऐ' पाठसे ग्रंथमें रगण गण पड़ता है जो विनाशक है—'राऽग्निर्मध्यलघुर्विनाशमनिलो देशाटनं सोन्त्यगः' इति छन्दःसंग्रहे। यह उत्तम नहीं माना जाता, इसीसे प्रायः महानुभावोंने 'गाइय' पाठ कर दिया है। परन्तु यह ग्रंथ प्रार्थना वा देवस्तुतिसंबंधी है। देवस्तुतिमें गण—अगणका विचार नहीं किया जाता। यथा—'देवता वाचका शब्दा ये च भद्रादिवाचकाः। ते सर्वे नैव निंद्याःस्युर्लिपितो गणतोऽपि वा॥'

२—'गनपति०' इति। (क) 'गनपति'का भाव कि आप शिवजीके भूतप्रेतादि गणोंमेंसे विघ्नकारक गणोंके स्वामी हैं। वे गण क्रूर स्वभाव के, उपद्रवी और विघ्नकारक होते हैं, स्वामीकी वन्दनासे वे बाधक न होंगे। (ख) 'जगबन्दन' इति। प्रथम कहा कि गणपतिका गुणगान करना चाहिये, अब बताते हैं कि क्यों और क्या गुणगान करना चाहिये। क्योंकि वे जगत्-वन्दनीय हैं, प्रथमपूज्य हैं, यथा—'प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ' (बा०)। मंगलकार्यमें इनकी जो पूजा नहीं करता उसके कार्यमें विघ्न उपस्थित होते हैं*। पुनः, 'गनपति' कहकर 'जगबंदन' कहनेका भाव यह है कि क्रूर-स्वभाव के गणोंके स्वामी होनेसे कोई यह न समझे कि आपभी क्रूरस्वभाव के

---

* पं० श्रीरामवल्लभाशरणजी बतलाते थे कि सिंधुमन्थनसमय जब मन्दराचल डूबने लगा और देवता—दैत्य घबगए तब भगवान्ने प्रकट होकर पूछा कि क्या विघ्नेशजीका पूजन नहीं हुआ? उसी समय उनका पूजन किया गया।

होंगे अतः जगवन्दन कहकर जनाया कि आप मंगलमूर्ति, सौम्यस्वभाव के और रामभक्त हैं, नहीं तो जगत्पूज्य न होते।

३—'संकरसुअन भवानीनंदन' इति। यहां 'संकरसुअन' और 'भवानीनंदन' में माता और पिता दोनोंका नाम लेकर दोनोंके पुत्र अलग अलग कहनेसे पुनरुक्तिके खयालसे दो एक टीकाकारोंने 'सुअन' को दिपदेहली मानकर 'भवानी शंकरके पुत्र और आनन्द देनेवाले' ऐसा अर्थ किया है। पर वस्तुतः जान बूझकर कविने दो शब्द अभिप्रायसे दिये हैं।—

(क) पुत्र तो शङ्करजीके हैंही पर भवानीके आनन्द देनेवाले हैं। स्कंदपुराणकी कथा है कि पार्वतीजीने गणेशजी और स्वामी कार्तिकजीसे एक बार कहा कि जो सबसे पहले पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करके आवेगा उसके साथ ऋद्धि-सिद्धिका विवाह होगा। स्कन्द (कार्तिकेयजी) अपने वाहन मोरपर चले। पर गणेशजीने सोचा कि माता तो पृथ्वीका रूप हैं, इन्हींकी परिक्रमा क्यों न कर लें। यह विचार कर माताकी परिक्रमा करके इन्होंने माताको प्रणाम किया। पार्वतीजीने ऋद्धि-सिद्धिका विवाह इनके साथ कर दिया। (श० सा०)—पार्वतीजीके आनन्दका कारण इनकी मातामें यह श्रद्धाभी हो सकती है। दूसरा आनन्दका यह कारण यह है कि भवानीने (एक कथाके अनुसार) इन्हें अपनी शक्तिसे उत्पन्न किया और दूसरी कथाके अनुसार इनके लिये बहुत व्रत-तप-आदि करनेपर इनकी उत्पत्ति हुई अतः प्रिय हुआही चाहें। पुनः (ख)—शङ्करसुवन और भवानीनन्दन कहकर जनाया कि आप माता और पिता दोनोंके पृथक्-पृथक् उत्कृष्ट गुणोंसे अलंकृत हैं। पिता 'शङ्कर' अर्थात् जगत्का कल्याण करनेवाले हैं और माता परोपकारिणी हैं, भवकी पत्नि हैं, भव (शङ्करजी) से प्रश्न कर-करके जगत्का उपकार करती हैं-यह पुराणोंसे प्रगटही है। इस तरह दो पद देकर

पद्मपुराण सृष्टिखण्डमें संजयजीके व्यासजीसे प्रश्न करनेपर कि 'प्रतिदिन की पूजामें सबसे पहले किसका पूजन करना चाहिये?' उन्होंने बताया है कि "विघ्नोंको दूर करनेकेलिये सर्वप्रथम गणेशजीकी पूजा करनी चाहिये।'

माता और पिता दोनों सम्बन्धोंसे आपकी उत्कृष्टता और कुलीनता प्रकट की, आपको कल्याणकर्ता और परोपकारी जनाया।—(वै०)। पुनः, (ग)—किसीकी माता श्रेष्ठ होती है, किसीके पिता। दोनोंके पुत्र पृथक् पृथक् कहकर आपके माता और पिता दोनोंकी श्रेष्ठता दिखाई। पुनः, (घ)—शिवजीके पुत्र और भवानीके आनन्दकर्त्ता कहनेका एक भाव यह भी है कि गणेशजीका आविर्भाव गर्भसे नहीं है। (पं० रा० कु०)

४—'सिद्धिसदन' इति। सिद्धि और बुद्धि दोनों गणेशजीकी शक्तियां हैं, इसीसे दोनोंके नाम इस पदमें लिखे गए—'सिद्धिसदन' और 'बुद्धि बिधाता'। (टि० ३ भी देखिये) (पं० रा० कु०)

श्रीगणेशजीकी उत्पत्तिकी कथा ब्रह्मवैवर्तपुराणके गणेशखण्डके अध्याय ७ में है। प्रथम षष्ठाध्यायमें पार्वतीजीका पुत्रप्राप्तिक यज्ञ करनेका वर्णन है जिसमें समस्त देवता, मुनि, महर्षि आदि आये थे। शिवजीने उस महासभामें विष्णुभगवान्से प्रार्थना की जिसे सुनकर भगवान्ने व्रतादिका उपदेश किया। व्रताराधनसे संतुष्ट हो पार्वतीजीपर कृपा करके श्रीकृष्ण भगवान्का प्रकट होना और वर देना वर्णन किया गया है। (अध्याय९ श्लो० १६) अष्टमाध्याय-पर्यंत गणेशजीका रूप वर्णन किया गया है।

ये स्मार्तोंके पञ्चदेवोंमेंसे एक हैं। वैवस्वत मन्वन्तरके इन गणेशजीका सारा शरीर मनुष्यकासा है पर सिर हाथीकासा, चार हाथ और एक दांत है, तोंद निकली हुई, सिरपर तीन आँखें और ललाटपर अर्द्धचन्द्र है।

'गजबदन' इति—हस्तिमुखप्राप्तिकी कथा इस प्रकार वर्णन की गई है—शङ्करजीके पुत्रोत्सवमें आमंत्रित सब देवताओंने आकर बालक गणेशजीको आशीर्वाद देकर विष्णु विधि शिवादि सहित सभी महासभामें सुखपूर्वक विराजमान् हुये। तदनन्तर सूर्यपुत्र शनिश्चर आए और त्रिदेवको प्रणाम कर उनकी आज्ञासे पार्वतीजीके महलमें गणेशजीके दर्शनार्थ गए—'एतस्मिन्नन्तरे तत्रद्रष्टुं शङ्करनन्दनम्। आजगाम महायोगी सूर्यपुत्रः शनैश्चरः॥ अत्यन्त नम्रवदन ईषन मुदित लोचनः।' (अ० ११–५, ६) इनको नीचे मस्तक किये हुये देख पार्वतीजी बोलीं कि हमको और हमारे

पुत्रको क्यों नहीं देखते हो ? मुख नीचे क्यों किये हो ? 'कथं मा नम्र वक्त्रस्त्वं श्रोतुमिच्छामि साम्प्रतम् । किं नपश्यसि मां माधो बालकं वा ग्रहेश्वर ॥१८॥' शनिश्चरने अपनी पत्नीसे प्राप्त शाप इसमें कारण बताया कि हमारी दृष्टि जिसपर पड़ेगी उसका नाश हो जायगा । † शापकी कथा सुनकरभी पार्वतीजीने न माना और कुतूहलसे कहा कि तुम निशंक होकर मुझको और मेरे पुत्रको देखो—(अ० १२ । २) बहुत समझानेपरभी न माननेपर शनिने धर्मको साक्षी कर ज्योंही नेत्रके कोरसे सौम्यदृष्टि शिशुके मुखपर डाली, दृष्टिमात्रसे उसका सिर कट गया—'सव्य लोचनकोणेन ददर्श च शिशोर्मुखम् ।५। शनेश्चर दृष्टिमात्रेण चिच्छेद मस्तकं मुने । विवेश मस्तकं कृष्णे गत्वा गोलोकमीप्सितम् । ७ ।' और वह छिन्न मस्तक अपने अंशी श्रीकृष्ण भगवान्में प्रविष्ट हो गया । पार्वतीजी पुत्रशोकसे मूर्छित हो गईं, कैलासपर कोलाहल मच गया, सब देवता विस्मित हो गये, सबको मूर्छित देख भगवान्ने गरुड़पर सवार हो पुष्पभद्रा नदितीर जाकर देखा कि वनमें गजेन्द्र हाथिनीसहित सो रहे हैं और उनका सुन्दर बच्चा अलग पड़ा हुआ है । तुरंत सुदर्शनसे उसका मस्तक काटकर गरुड़पर रखकर वे वहाँ आये जहाँ शिशुका धड़ गोदमें लिये हुये पार्वतीजी बैठी थीं और उस मस्तकको शिशुके धड़पर लगाया । सिरपर लगतेहीं बालक जी उठा और उसने हुंकार की—रुचिरं तच्छिरस्सम्यक् योजयामास बालकम् । २० । ब्रह्मस्वरूपो भगवान् ब्रह्मज्ञानेन लीलया । जीवयामास तं शीघ्रं हुंकारोच्चारणेन च । २१ । पार्वती बोधयित्वातु कृत्वा

† शनिश्चरकी पत्नि चित्ररथ गन्धर्वकी कन्या थी। यह बड़े उग्र स्वभावकी थी। एक बार शनि भगवद्ध्यानमें मग्न थे। उसीसमय यह श्रृंगार किये मद-माती इनके पास गई, ध्यानावस्थित होनेसे इन्होंने उसकी ओर नहीं देखा। उसीपर उसने शाप दे दिया।—'हरेः पादं ध्यायमानं पश्यन्ति मदमोहिता। मत्समीपं समागत्य सस्मिता लोललोचना ॥ २९ ॥ शशाप मामपश्यन्तिमृतुनाशाच्च कोपतः। बाह्यज्ञान विहीनञ्च ध्यान संलग्न मानसम् ॥ ३ ॥ न दृष्टाहं त्वयायेननकृतंमृतु रक्षणम्। त्वया दृष्टं च यद्वस्तु मूढ सर्वं विनश्यति ॥ ३१ ॥'

क्रोडेचतं शिशुम् । बोधयामास तां कृष्ण आध्यात्मिक बिबोधनैः ।' (अ० १२ । २२ ।)

यह कथा तो प्रामाणिक ग्रन्थसे लिखी गई है, पर इसकी उत्पत्ति और सिर कटनेकी कथा ऐसीभी सुनी जाती है कि—" एकबार जब शिवजी कहीं गये हुए थे, भवानीके शरीरपर पसीना छूटनेपर वे शरीरको मलने लगीं। जैसे जैसे शरीर मलती गईं वैसे वैसे मैल निकलता गया। उस मैलको एकत्र कर उन्होंने एक मूर्त्ति बनाई। मूर्त्ति बनतेही उसमें चेतना आ गई और वह भवानीसे बोली कि 'आपसे हमारा जन्म हुआ है, आप जो आज्ञा दें सो मैं करूँ।' माताने आज्ञा दी कि 'द्वारपर बैठो, कोई अन्दर न आने पावे।' इसके बाद शिवजी आये। गणेशजीने उनको रोका। दोनोंमें युद्ध हुआ। अंततोगत्वा शिवजीने उसका सिर काट डाला और भीतर गये। पार्वतीजीके प्रश्न करनेपर उन्होंने द्वारपालका वध कह सुनाया जिससे वह बहुत व्याकुल हो गईं। तब शिवजीने गणोंको आज्ञा दी कि प्रातःकाल जहाँ कहीं किसीका पुत्र दक्षिण मुख पड़ा मिले उसका सिर काटकर इसपर लगा दो—(श० सा० ७५६)"।

(२) पद्मपुराण सृष्टिखण्डमें पुलस्त्यजीने भीष्म पितामहजीसे गणेशजीके जन्मकी कथा इस प्रकार कही है—" एक समयकी बात है कि गिरिजाजीने सुगंधित तैल और चूर्णसे अपने शरीरमें उबटन लगवाया और उससे जो मैल गिरा उसे हाथमें उठाकर उन्होंने एक पुरुषकी आकृति बनाई, जिसका मुख हाथीके समान था। फिर खेल करते हुये भगवती-पार्वतीने उसे गंगाजीके जलमें डाल दिया। गंगाजी पार्वतीजीको अपनी सखी मानती थी। उसके जलमें पड़तेही वह पुरुष बढकर विशाल काय हो गया। पार्वतीजीने उसे पुत्र कहकर पुकारा। फिर गंगाजीनेभी पुत्र कहकर सम्बोधित किया। देवताओंने गाङ्गेय कहकर सम्मानित किया। इस प्रकार गजानन देवताओंके द्वारा पूजित हुए। ब्रह्माजीने उन्हें गणोंका आधिपत्य प्रदान किया"।

(३) 'भवानीनंदन' और 'मोदकप्रिय' के सम्बन्धमें पद्मपु० सृष्टिखण्डमें संजयप्रति व्यासद्वारा कही हुई यह कथाभी प्रसङ्गानुकूल है—"पार्वती-

देवीने पूर्वकालमें भगवान् शंकरजीके संयोगसे स्कन्द और गणेश नामके दो पुत्रोंको जन्म दिया। उन दोनोंको देखकर देवताओंकी पार्वतीजीपर बड़ी श्रद्धा हुई और उन्होंने अमृतसे तैयार किया हुआ एक दिव्य मोदक पार्वतीजीके हाथमें दिया। मोदक देखकर दोनों बालक उसे मातासे माँगने लगे। तब पार्वतीजी विस्मित होकर पुत्रोंसे बोली—'मैं पहले इसके गुणोंका वर्णन करती हूँ, तुम दोनों सावधान होकर सुनो। इस मोदकके सूंघनेमात्रसे अमरत्व प्राप्त होता है और जो इसे सूंघता वा खाता है वह सम्पूर्ण शास्त्रोंका मर्मज्ञ, सब तन्त्रोंमें प्रवीण, लेखक, चित्रकार, विद्वान, ज्ञान विज्ञान्के तत्त्वको जाननेवाला और सर्वज्ञ होता है। इसमें तनिकभी संदेह नहीं। पुत्रो! तुममेंसे जो धर्माचरणकेद्वारा श्रेष्ठता प्राप्त करके आयेगा, उसीको मैं यह मोदक दूँगी। तुम्हारे पिताकीभी यही सम्मति है"।

माताके मुखसे ऐसी बात सुनकर परम चतुर स्कन्द मयूरपर आरूढ़ हो तुरंतहीं त्रिलोकीके तीर्थोंकी यात्राकेलिये चल दिये। उन्होंने मुहूर्त्तभरमें सब तीर्थोंका स्नान कर लिया। इधर लंबोदरधारी गणेशजी स्कन्दसेभी बढ़कर बुद्धिमान् निकले। वे माता-पिताकी परिक्रमा करके बड़ी प्रसन्नताके-साथ पिताजीके सम्मुख खड़े हो गए। क्योंकि मातापिताकी परिक्रमासे संपूर्ण पृथ्वीकी परिक्रमा हो जाती है। यथा-'**सर्वतीर्थमयी माता सर्वदेवमयः पिता। मातरं पितरं तस्मात् सर्वयत्नेन पूजयेत्॥ मातरं पितरञ्चैव यस्तु कुर्यात् प्रदक्षिणम्। प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा**'॥—(पद्म. पु. सृष्टिखण्ड ४७-११-१२।) फिर स्कन्दभी आकर खड़े हुये और बोले—'मुझे मोदक दीजिये'। तब पार्वतीजी बोलीं—'समस्त तीर्थोंमें किया हुआ स्नान, देवताओंको किया हुआ नमस्कार, सब यज्ञोंका अनुष्ठान तथा सब प्रकारके संपूर्ण व्रत, मन्त्र, योग और संयमका पालन, ये सभी साधन माता पिताके पूजनके सोलहवें अंशके बराबरभी नहीं हो सकते। इसलिये यह गणेश सैकड़ों पुत्रों और सैकड़ों गणोंसेभी बढ़कर है। अतः देवताओंका बनाया हुआ यह मोदक मैं गणेशकोही अर्पण करती हूँ। मातापिताकी भक्तिके कारणही इसकी प्रत्येक यज्ञमें सबसे पहले पूजा होगी।' महादेवजी बोले—'इस गणेशकेही अग्रपूजनसे संपूर्ण देवता प्रसन्न हों'। व्यासजी कहते हैं

कि पहले गणेश पूजन कर लेनेसे यज्ञोंका फल कोटि कोटिगुना अधिक होगा। जो स्तुति वहां ६१। २६–२८ में वर्णित है वह इस तरह प्रारंभ होती है— गणाधिप नमस्तुभ्यं सर्वविघ्नप्रशान्तिद। उमानंदप्रद प्राज्ञ त्राहि मां भवसागरात्॥ विघ्नराज नमस्तुभ्यं सर्व दैत्यैकसूदन'॥

६—'गनपति जगबंदन........सब लायक' के भाव—

(क) 'गनपति'से आपका नाम, 'जगबंदन'से श्रीरामनामके प्रभावसे प्रथमपूज्य अर्थात् रामजीके स्वरूप तथा आपकी उपासना, 'शंकरसुवन' और 'भवानीनंदन'से माता पिताका नाम एवं उत्कृष्ट कुलीनता इत्यादि, 'सिद्धिसदन' और 'कृपासिंधु'से बड़े ऐश्वर्यमान होते हुयेभी परमदयालु और स्मरण-मात्रसेही मङ्गलके करनेवाले तथा सिद्धिके दाता, 'गजबदन' और 'सुंदर'से आपका रूप, 'बिनायक'से विघ्नविनाशन, 'कृपासिन्धु'से करुणागुण-संपन्न एवं उदार और शीघ्र प्रसन्न होनेवाले और 'सबलायक'से सब प्रकारसे योग्य जनाया।

(ख) 'सिद्धिसदन गजबदन बिनायक' और 'कृपासिंधु सुंदर सब लायक'में यथासंख्यसे अर्थ करनेपर यह भाव निकलता है कि सिद्धिसदन होते हुयेभी आप कृपासिंधु हैं। अतएव सिद्धियाँ प्राप्त करनेमें उपासकको कठिनाईका सामना नहीं करना पड़ता। गजबदन कहनेसे पशुत्व दोष आरोपण होता है। अतः उसके निवारणार्थ 'सुंदर' विशेषण दिया अर्थात् आपकी दिव्य भव्यमूर्त्ति है, यह जनाया।

श्रीवैजनाथजी और दीनजीका मत है कि 'गजबदन' से बड़ा मुख होनेसे बड़ी बात कहने, बड़े कार्य करने और बड़ा वरदान देनेवाला जनाया। अतः 'गजबदन' कहनेमें भाव यह है कि मेरी बिनती बखानकर श्रीरामजीसे कहिये।

बिनायक अर्थात् विघ्नोंके स्वामी होते हुये भी विघ्न न डालकर आप सब प्रकारसे लायक पुरुषोंकेसे काम करते हैं।

(ग)—'सब लायक' अन्तमें कहनेका भाव यह है कि गणोंके अध्यक्ष तथा जगत्पूज्य इत्यादि होनेके पूर्ण गुणधर्म आपमें

वर्तमान हैं, आप सब प्रकार अपने पदके सुयोग्य पात्र और अधिकारी हैं। आपको इहलोक और परलोक दोनोंहीके ऐश्वर्य देनेका सामर्थ्य है।

(घ) 'सिद्धिसदन, सबलायक'से प्रभाव और 'कृपासिंधु' से सौलभ्य गुण कहा है।

७ 'मोदकप्रिय मुदमंगलदाता।' इति। (क) मोदक मीठा होता है, 'मोदक प्रिय' कहकर आपको सात्विक जनाया। पुनः, 'मोदकप्रिय' कहकर 'मुदमंगलदाता' कहनेका भाव यह है कि लड्डूमात्र थोड़ी पूजासेही प्रसन्न हो जाते हैं। लेना थोड़ा, देना बहुत सुख। लेना प्राकृत वस्तु, देना ऐहिक और पारलौकिक दोनों सुख। (ख) 'विद्यावारिधि' का भाव कि विद्याकी प्राप्ति जिसको होती है उसे आपकी ही कृपासे। बुद्धिका विधाता कहनेका भाव कि आपके अनुग्रहबिना बुद्धिका प्रकाश वा विस्तार नहीं होता। विधाताका भाव यहभी होता है कि आप जैसी चाहें वैसी बुद्धि कर दे सकते हैं। मेरी बुद्धि ऐसी कर दीजिए कि मैं निरंतर श्रीसीतारामजीका स्मरण कर सकूँ। पुनः, भाव कि—'यह विनयपत्रिका है जो श्रीरघुनाथजीके समीप कलिसे दाद पानेकेलिये भेजी जा रही है। भक्त कविको विद्या, और बुद्धि दोनोंकी आवश्यकता है। अतः ये दोनों विशेषण साभिप्राय हैं। (ग) 'मोदकप्रिय मुदमंगलदाता' से सौलभ्यगुणयुक्त जनाया, 'विद्यावारिधि'से प्रभुकी प्राप्ति करा देनेमें समर्थ और 'बुद्धिबिधाता'से प्रभाव कहा। विद्या और बुद्धि येभी गुण हैं *। पुनः, (घ) 'हरिहरहि हरता, बिधिहि बिधिता श्रियहि श्रियता जेहि दई'। (१३५) इस प्रमाणके

---

* श्रीबैजनाथजीने गुणकी परिभाषा यह दी है—'जग व्यापक जग बसकरन जगत सराहत जाहि। जग चाहत जेहि तेहि सुकवि गुणगण कहिए ताहि॥' और इसकी व्याख्याभी इस प्रकारकी है कि 'जग व्यापक'—वह गुण जो सबमें व्यापक होते हैं जैसे शक्ति, वीर्य, तेज, शौर्य्य आदि। 'जग वशकरन' जैसे सौंदर्य, चातुर्य आदि। 'जगत सराहत जाहि'—'जैसे क्षमा, दया, शील, उदारता आदि परोपकारक गुण। 'जग चाहत जेहि' जिनकी

अनुसार श्रीसरकारकी कृपासे प्राप्त अधिकारवाले अधिकारी पुरुष होनेसे अधिकृत अधिकारमें पूर्ण होते हुये उपासकोंको स्वरूपज्ञानप्रदान और शास्त्रजन्यज्ञानके धारण करनेवाली बुद्धिको विस्तार करते हैं, यह जनाया।

८ 'गजबदन' आदि के आध्यात्मिक भाव—(क) 'गणेशजीका विशाल मस्तक उनकी महती बुद्धिका सूचक है। इसी बुद्धिके बलसे इनका क्षुद्र अधोभाग इनके विशाल ऊर्ध्वभागको सहारा देता है और परम लघु जन्तु मूषकसे वाहनका काम चलता है। इसका तात्पर्य यह है कि यदि आभ्यन्तरिक ज्ञान और बुद्धि प्रचुररूपमें प्राप्त हों तो उनके बलसे बहुत स्वल्प बाह्य सामग्रीसे कार्य उत्तमतासे चल सकता है। समाजमें कोई कोई बड़े नेता होनेकी योग्यताके साथ जन्म लेते हैं। वे इन्हीं श्रीगणेशके कृपापात्र होते हैं। श्रीगणेश अर्थात् बुद्धिमान् थोड़े परिश्रमसे बड़ा कार्य करते हैं।

(ख) 'एक बार श्रीमहादेवजीको अपने एक यज्ञमें बुलानेके लिये देवताओंको निमंत्रण भेजना था। कार्तिकेयसे यह काम अवधिके भीतर न हो सका। तब श्रीगणेशजीपर यह भार छोड़ा गया। किंतु उनका वाहन क्षुद्र मूषक था जो बहुत मंदगतिसे चलनेवाला था। अतः श्रीगणेशजीने बुद्धिसे काम किया। श्रीमहादेवजीमें सब देवताओंका वास है, ऐसा समझकर उन्हींकी तीन बार परिक्रमा करके उन्होंने सब देवताओंको वहीं निमंत्रण दे दिया। परिणाम यह हुआ कि सब देवताओंको यज्ञ और निमंत्रणकी जानकारी हो गई और सबके सब यज्ञमें संमिलित हुए।' (पं० श्रीभवानीशंकरजी। शिवाङ्क कल्याणसे।) अत: 'बुद्धिबिधाता' विशेषण सार्थकही है।

(ग) 'गजबदन' का तात्पर्य है—"विचारशक्ति पशुकी तरह एकमुखी बुद्धि। गजबदन एकमुखी विशाल बुद्धिका द्योतक है। 'विनायक'

चाह सबको है परन्तु जो दुर्लभ हैं। जैसे विद्या, कुलिनता, स्वतन्त्रता, आनन्द, ज्ञान इत्यादि। इस वंदनामें गणेशजीको शक्ति, सौंदर्य, दया, विद्या आदि चारों प्रकारके गुणोंसे युक्त दिखाया है।

(विशिष्टः नायकः विनायकः अर्थात् सर्वेश्वर) यह शब्द गणपति भगवान्‌के इशित्व और वशित्वका सूचक है। सर्व प्रथम वन्दनीय होनेका निदर्शक अप्रतर्क्य शब्द है।" (देवदत्त शास्त्रीजी)

(घ) 'मोदक प्रिय' इति। वस्तुतः यह एकही मोदक है जो देवताओंद्वारा प्रदत्त माता भवानीने धर्माचरणविशिष्ट श्रद्धालु सुत गणपतिको दिया। देखा जाय तो यह खानेका पदार्थ नहीं है, धारण करनेका है। जिसप्रकार तीन ऋणोंका सूचक (स्मारक) यज्ञोपवीत द्विजातिमात्रसे धारण किया जाता है, उसी प्रकार मातासे प्राप्त ब्रह्मांड (अंडकोश) रूपक मोदक गणपतिके धारण करनेकी वस्तु है। भाव यह है कि भवानीके सर्व सामर्थ्य-संपन्न युगल पुत्रोंसे ब्रह्मांडकी रक्षाकी आशा रखनेवाले देवोंने ब्रह्मांडनिदर्शक मोदक माँको दिया कि जननी जिसे योग्य समझे उसीको यह रक्षाभारसूचक मोदक प्रदान करें। दोनों पुत्र ललचाए, परंतु माँ जानती थी कि यह खेलने खानेकी चीज़ नहीं। यह तो शाश्वत्वदायित्व निभानेका पद है। (भार है) अतः उन्होंने परीक्षा ली और उसमें उत्तीर्ण गजाननको उसे सहर्ष सौंप दिया।

यह व्यावहारिक नियम है कि माँ बाप अपनी उपार्जित संपत्ति समर्थ पुत्रको सौंपकर सुखी और निश्चिन्त होते हैं। तदनुसार स्वोपार्जित समस्त ब्रह्मांडकी रक्षाका भार पिता माताने एकमत होकर श्रद्धालु, दयालु, सिद्धिसदन, विनायक विघ्नेश्वरको सौंप दिया। मातापिताद्वारा प्राप्त संपत्तिकोश किसे नहीं प्रिय होता ? अतः गणपतिभी स्वकीय जनक जननीसे प्राप्त मोदकसे अति प्रेम करते हैं। (देवदत्त शास्त्रीजी)

९ 'मांगत तुलसिदास कर जोरें।' इति। (क) यह उपासनाकी रीति है कि **'सब करि माँगहिं एक फलु रामचरनरति होउ'** (अ० १२९)। और शिववाक्यभी है कि **'सबकर फ़ल हरि भगति भवानी'**। (ख)–'कर जोरें'–हाथ जोड़ कर, बद्धाञ्जलियुक्त। यह परम विनम्रतासूचक मुद्रा है। इससे देव शीघ्र प्रसन्न होते हैं। यथा—**'अंजली परमामुद्रा क्षिप्रं देव प्रसादिनी'**। पुनः, भाव कि जो वर चाहते हैं वह परम दुर्लभ है, अतः हाथ जोड़कर विनय करते हैं।

१० 'बसहुँ रामसिय मानस मोरें'। यहाँ सीताराम न कहकर रामसिय कहा। प्रायः शक्तिका नाम प्रथम कहा जाता है। जैसे, गौरीशंकर, भवानीशंकर, लक्ष्मीनारायण, राधाकृष्ण। 'राम' को प्रथम कहनेका कारण चरखारी टीकाकार यह कहते हैं कि जो कोई बसनेको कहता है सो पुरुषहीसे कहता है। अतः 'बसहुँ रामसिय' कहा।

११ इस ग्रंथमें आदिमें श्रीगणेशजीका मंगलाचरण किया है। इस-तरह गोस्वामीजीने अपने अतिप्रसिद्ध बारह ग्रंथोंमेंसे छःमें गणेशवन्दना की है और छःमें नहीं की। ऐसा करके उन्होंने पूर्वाचार्य्योंकी दोनों रीतियाँ दिखाई हैं। वह यह कि कोई आचार्य गणेशवन्दना करते हैं और कोई नहींभी करते (पं० रा० कु०)।

आरम्भमें श्रीगणेशजीकी वन्दना करनेका अभिप्राय यहभी हो सकता है कि गणेशजी अद्वितीय लेखक थे। अठारहों पुराणोंके मननशील द्रुतलेखक श्रीगणेशजीही हैं। किसीभी कार्यको निर्विघ्न समाप्त करनेकी कामनासे सिद्धिदाता गणेशजीका स्मरण पूजन प्रारम्भमें किया जाता है। आस्तिक हिन्दू लेखकोंका विश्वास है (दृढ़ धारणा है) कि सिद्धिदाता श्रीगणेशजी प्रसिद्ध और अद्वितीय लेखक हैं। अतः ग्रंथारंभके पूर्व इनका स्मरण अवश्य करते हैं। ऐसा करनेसे ग्रंथसमाप्तिमें विघ्नकी संभावना नहीं रहती। (देवदत्त शास्त्रीजी)

१२ गणपति वन्दनासे कोई कविकी रामानन्यभक्तिमें शङ्का करते हैं। पर यह उन लोगोंकी भूल है। (१) प्रथम तो इस शङ्काहीमें दूषण है। क्योंकि यहाँ यह मान लिया गया है कि अनन्य उपासक अपने इष्ट देवकेसिवा किसी औरकी वन्दना नहीं करता। अनन्यताका यह अर्थ नहीं है कि वह अपने इष्टदेवको परिच्छिन्न बना देता है। अनन्य उपासक संपूर्ण जगत्को सियाराममय देखता है। वह माता, पिता, गुरुकीही नहीं, वरंच अपनेसे छोटेसे छोटे सभीकी वन्दना करता है। गणेशकी तो बातही क्या? यथा—'सो अनन्य जाके असि मति न टरइ हनुमंत। मैं सेवक सचराचर रूप स्वामी भगवंत'। (क०) 'उमा जे रामचरन रत गत

ममता मद क्रोध। निज प्रभुमय देखहिं जगत केहिसन करहिं बिरोध' (उ०)। कवि तुलसीनेभी यही किया है। यथा-'जड़ चेतन जग जीवजत सकल राममय जानि। बंदउँ सबके पदकमल सदा जोरि जुगपानि॥ देव दनुज नर नाग खग प्रेत पितर गंधर्ब। बंदऊँ किन्नर रजनिचर कृपा करहु अब सर्ब॥ सियाराममय सब जग जानी। करऊँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥' इस प्रकारकी वन्दना उनकी अनन्यताके परिपुष्टकारी भावकाही द्योतक है।

(२) गोस्वामीजीकी अनन्यताके जाज्वल्य उदाहरण उनके अंतिम शब्द हैं। वे वन्दना करके क्या माँगते हैं। 'सबहूँ रामसिय मानस मोरें'। इसी तरह जहाँ जिसकी वन्दना की है, वहाँ उन्होंने श्रीसीताराम पदप्रेमही माँगा है। सबका यथोचित आदर करतेहुएभी उन्होंने व्यभीचारकी गंधभी नहीं लगने दी। अपने इष्टको छोड़ कभी दूसरेकी भक्ति नहीं चाही। यथा—'सेए न दिगीस न दिनेस न गनेस गौरी। हितु कै न माने विधि हरिउ न हर' (२५०)। सबकी कृपा चाही है, सोभी केवल रामभक्तिकेलिये। इससे अनन्यतामें किंचित् दोष नहीं आता।

(३) वेदान्तशिरोमणि श्रीरामानुजाचार्यजी बताते हैं कि 'भगवान्के चार प्रकारके अवतार शास्त्रोंमें कहे गये हैं। आवेश, अंश, कला और पूर्ण। जिसमें उपचित पुण्य विशेष हो ऐसे जीवात्माके अंदर शक्ति आवेश होकर कार्य करनेवाला आवेशावतार। जैसे, ब्रह्मावतार, इन्द्रावतार, शिवावतार, इत्यादि। इन्हीं आवेशावताररूप अधिकारी पुरुषोंमें श्रीगणेशावतारभी है। अतः 'वसवोष्टौ त्रयः काला रुद्रा एकादशस्मृताः। तारकादश चैवांशास्त्वमेव रघुनंदनः॥' इत्यादि प्रमाणानुसार श्रीगोस्वामीजी 'गणपति, रुद्र, शक्ति और सूर्यादि देवताओंके-अंदर आवेशावतार श्रीजानकीवल्लभही तत्त्व दैवतरूपमें है ऐसा समझकर वन्दन (स्तुति) करते हुए पूर्णावतार श्रीसरकारके श्रीचरणारविन्दकी भक्ति माँगते हैं।' अतः अनन्यताका भंग न समझना चाहिये।

१३ इस ग्रन्थमें क्रमसे गणेशजी, सूर्यदेव, शिवजी, (३-१४) धात्री शिवशक्ति श्रीपार्वतीजी (१५-१६), गंगाजी (१७-२०), यमुनाजी (२१), क्षेत्रपाल—काशी, चित्रकूट (२३-२४), श्रीहनुमान्‌जी (२५-३५), समष्टिबन्दना (३६), श्रीलक्ष्मणजी (३७-३८), श्रीभरतजी (३९), श्रीशत्रुघ्नजी (४०) और श्रीजानकीजी (४१-४२) की वन्दना करके श्रीरामजीकी वन्दना की गई है। इसका कारण विशेष यह है कि गोस्वामीजी अपनी विनय श्रीरघुनाथजीके करकमलोंमें पहुँचाना चाहते हैं। महाराज राजराजेश्वरके दरबारमें वह सहसा एकदम बिना कर्मचारियोंकी कृपाके पहुँचना कैसे संभव है? यंत्रराजमें जहाँ साङ्गदेव सपरिवार श्रीरघुनाथजीका पूजन लिखा एवं किया जाता है वहाँ प्रथम द्वारपाल श्रीगणेशजीका, फिर सूर्य आदिका पूजन होता है और अंतमें प्रधान पूजन होता है *। अतः तुलसीदासजीभी उसी क्रमसे गणेशादिकी स्तुति करते हुए उनकी दयाको उत्तेजित कर उनकी कृपासे आगे बढ़ते जाते हैं और सफल मनोरथ होते हैं।

श्रीरघुवीर विहारस्थल तथा अपनेको जहां प्रभुके दर्शनका सुख मिला उस चित्रकूटको 'गृह' जानकर उसकी महिमा वर्णन की गई है।

---

* प्रमाण अगस्त्यसंहितायाम्–'श्रीरामद्वारपीठाङ्गं परिवारतया स्थिता। २। ये सूरास्तानिहस्तौमि तन्मूलाः सिद्धयो यतः। वन्दे गणपतिं भानुं तिलकस्वामिनं शिवम्। ३। क्षेत्रपालं तथा धात्रीं विधातारमनन्तरम्। गृहाधीशं गृहं गङ्गां यमुनां कुलदेवताम्। ४। प्रचण्ड चण्डो च तथा शङ्खपद्मनिधी अपि। वास्तोष्पतिंद्वार लक्ष्मीं गुरुं वागधिदेवताम्। ५। एतान् संपूज्य भक्त्याहं श्रीरामद्वारदेवतान्। महामंडूक कालाग्नि रुद्राभ्यां प्रणमाम्यहम्। ६।'। (पूर्वार्द्ध अ० १०)

२ (१९) राग बिलावल *

दीनदयाल दिवाकर देवा। करै[1] मुनि मनुज सुरासुर सेवा ॥१॥
हिम तम करि केहरि करमाली। दहन[2] दोष दुख दुरित रुजाली ॥२॥
कोक कोकनद लोक प्रकासी। तेज प्रताप रूप रस रासी ॥३॥
सारथि पंगु दिव्य रथ-गामी। हरि संकर बिधि मूरति स्वामी ॥४॥
बेद पुरान प्रगट जसु जागै। तुलसी रामभगति[3] बर मांगै ॥५॥

शब्दार्थ—दीन=गरीब, दुखी, जिसकी दशा गिरी हुई हो, पुरुषार्थहीन। दयाल=दया करनेवाले। दिवाकर=दिवा (दिवस, दिन)+कर (करनेवाला) सूर्य। देवा=देव। मनुज=मनुष्य। असुर=दैत्य, दानव और राक्षस तीनोंका बोधक है। देवताओंका विरोधी। हिम=पाला। तम=अंधकार। करि=हाथी। केहरि=सिंह। करमाली=कर (किरणोंकी)+माली (मालाका धारण करनेवाला) किरणसमूह जिसमें हो, सूर्य। दहन=जलाने, भस्म वा नाश करनेवाला। दोष=अवगुण, अपराध। दुरित=पाप। रुजाली=रुज (रोग)+आली (पंक्ति, समूह, परंपरा) रोग समूह। कोक=चकई, चकोर, चक्रवाक और चकवा, कोकके पर्यायवाची शब्द हैं। यह एक पक्षी है जो जाड़ेके दिनोंमें जलाशयोंके किनारे दिखाई देता है और वैशाखतक रहता है। अधिक गरमी पडतेही यह भारतवर्षसे चला जाता है। यह दक्षिण छोड़ सारे भारतवर्षमें पाया जाता है और प्रायः झुंडमें रहता है। लंबाई हाथ भरतक होती है। इसके शरीरपर कई भिन्न भिन्न रंगोंका मेल दिखाई

* प्र० में यहांभी 'रागु बिलावल'के पश्चात् 'अथ श्रीसूर्यका पद' है और इसीतरह आगेके पदोंमेंभी है।

१ करै—६६, भा०, बे०। प्र० में 'करै' का 'कर' और ज० में 'करि' बनाया है। कर—ह०, ७४, ५१, १५, आ०।

२ दलन—भा०, बे०। दहन—६६, प्र०, ह०, ज०, ७४, आ०।

३ भक्ति—भा०, बे०, डु०, मु०, वै०।

पड़ता है। पीठ और छातीका रंग पीला तथा पीछेकी ओर खैरा होता है। किसी किसीके बांचमें काली और लाल धारियाँभी होती हैं। पूंछका रंग कुछ हरापन लिये होता है। डैनोंपर कई रंगोंका गहरा मेल दिखाई पड़ता है। यह अपने जोड़ेसे बहुत प्रेम रखता है। बहुत कालसे इस देशमें ऐसा प्रसिद्ध है कि रात्रिमें वह अपने जोड़ेसे अलग रहता है। कवियोंने इसके रात्रिकालके इस वियोगपर अनेक युक्तियाँ बाँधी हैं। यथा—'संपति चकई भरत चक मुनि आयसु खेलवार। तेहि निसि आश्रम पींजरा राखे भा भिनुसार" (अ०)। इसीको सुरखावभी कहते हैं। कोकनद=लाल-कमल। लोक=संसार, ब्रह्मांड, प्राणी, लोग। प्रकासी (प्रकाशिन्)=प्रकाश करने, खिलाने वा सुख देनेवाले। यथा—'उयेउ अरुन अवलोकहु ताता। पंकज लोक कोक सुखदाता।' (बा०) तेज=जो देखा या सहा न जा सके, कांति, दीप्ति, प्रकाश। यथा—(भगवद्गुणदर्पणे) 'दुष्प्रेक्ष्यत्वं च येन स्यात्तत्तेजः समुदाहृतम्'। प्रताप=बल, पराक्रम आदि महत्वका ऐसा प्रभाव कि उसके कारण विरोधी या उपद्रवी लोग शांत रहते हैं। जिससे औरोंको ताप मालूम हो (पं० रा० कु० वै०)। यथा—'जाकी कीरति सुजस सुनि होत शत्रु उर ताप। जग डेरात सब आपहीं कहिये ताहि प्रताप॥' (भाषाभूषण। वै०) रूप=विना भूषणकेही शरीरका सुंदर लँगना उसका 'रूप' कहा जाता है। यथा—'अङ्गानि भूषतान्येव निष्काद्यैश्च विभूषणैः। येन भूषितवद्भाति तद्रूपमिति कथ्यते॥' (भगवद्गुणदर्पणे) 'बिनु भूषण भूषित जु तनु रूप अनूपम गौर' (वै०) रस=टि० ५ और पद १६९ में इसकी व्याख्या की जायगी। रासि (राशि)=ढेर। सारथि (सं०)=रथ आदिका चलानेवाला। पंगु=जिसके पैर होते नहीं; पंगुल। दिव्य=अलौकिक, प्रकाशमान्, आकाशसे संबंध रखनेवाले तथा खूब साफ और सुंदर। रथ=प्राचीन कालकी एक सरकारी स्वारी जिसमें चार या दो पहिये हुआ करते थे और जिसका व्यवहार युद्ध, यात्रा, विहार आदिके लिये हुआ करता था। विशेष टि० ६ में दिया गया है। गामी=चलनेवाले। मूरति (मूर्त्ति)=प्रतिमा, विग्रह,

स्वरूप। जसु (यश)=धर्मपथपर चलनेसे तथा बाहुबलसे जो ख्याति प्राप्त होती है। प्रगट (प्रकट)=प्रत्यक्ष, स्पष्ट। जागना=चमकना, जगमगाना, जोर शोरसे साक्षात् होना, प्रसिद्ध होना।

पद्यार्थ—हे दिनोंपर दया करनेवाले! हे सूर्यदेव! मुनि, मनुष्य, देवता और असुर आपकी सेवा करते हैं। आप पाला और अंधकार-रूपी हाथियोंके (नाश करनेके) लिये सिंहरूप हैं। आप किरणसमूहके धारण करनेवाले, (प्राणियोंके) दोष, दुःख, पाप और रोग समूहके भस्म करनेवाले, चकवा चकवी, कमल और लोक (मात्र) को प्रफुल्लित करनेवाले तथा तेज, प्रताप, रूप और रसकी राशि हैं। आपका सारथी पंगुल है। आप दिव्य रथपर चलनेवाले हैं। हे स्वामी! आप हरि, (विष्णु भगवान्) शंकर और ब्रह्माजीकी मूर्त्ति हैं। वेदों और पुराणोंमें साक्षात् आपका यश जगमगा रहा है। तुलसीदास आपसे रामभक्ति वरदान माँगता है।

टिप्पणी–(१) 'दीनदयाल दिवाकर देवा' इति। (क) 'दीनदयाल' अर्थात् दीनोंपर निःस्वार्थ कृपा करते हैं। मानसके 'मूक होइ बाचाल पंगु चढ़ै गिरिवर गहन। जासु कृपा सो दयाल द्रवउ सकल कलिमल दहन॥' इस सूर्यपरक सोरठेसे मिलान कीजिये। गुंगेको वाणी पाना, पंगुलको पर्वतपर चढ़नेका सामर्थ्य हो जाना, आपकी कृपासे कहा गया है। यहाँभी 'दीनदयाल' कहकर आगे 'दिवाकर' पद देकर दया दिखाते हैं। विना प्रयोजन, विना कहेही, विना स्वार्थके किसीके दुःखसे दुखी होकर कृपा करनेको 'दया' कहते हैं। यथा 'दया दयावतां ज्ञेयं स्वार्थं तत्र न विद्यते।' (भ० गु० द०)। अर्थात् दयावानोंमें उसीको दया समझना चाहिये जिसमें स्वार्थ न हो। पुनश्च यथा 'अनिर्हेतुकीय परदुःखनिवारणेक्षया दया'। रहस्य वेदान्तकी परिभाषा यह है 'स्वार्थ निर्पेक्ष परदुःखासहिष्णुत्व दया परदुःखनिर्चिकीर्षा वा' अर्थात् जिससे किसीभी स्वार्थकी संभावना न हो उसका दुःख न सह सकना अर्थात् उसके दुःखमें दुःखी हो जाना 'दया' कहलाती है। यथा 'परदुख दुखी दयाल।' अथवा दुसरेके दुःखको

निवारण करनेकी सदिच्छाको 'दया' कहा जाता है। वह निस्वार्थ दया क्या है, यह 'दिवाकर' से जनाया। दिनको करते हैं, आपके उदयसेही दिन होता है। यथा 'तहइ दिवस जहँ भानु प्रकासू'। प्रायः रात्रिमें शुभ धर्म कर्म नहीं होते। संपूर्ण धर्मादिक कर्म अर्थात् कर्मकाण्ड सूर्योदयसेही प्रारंभ होते हैं। धर्मकर्महीन सारा जगत् दीन रहता है। उदय होकर दिन करना 'दया' है। विना कहेही लोकोपकार हेतु आप ऐसा करते हैं।

महाभारत वनपर्वमें युधिष्ठिरजीने जो सूर्य भगवानकी स्तुति की है उसमें कहा है कि 'आप बिना किसीकी सहायताकी अपेक्षाके तीनों लोकोंके हितमें लगे रहते हैं। यदि आपका उदय न हो तो सारा जगत् अंधा हो जाय। धर्म, अर्थ, और कामसंबंधी कर्मोंमें किसीकी प्रवृत्तिही न हो। ब्राह्मणादि द्विजाति संस्कार, यज्ञ, मंत्र, तपस्या और वर्णाश्रमोचित कर्म आपकी कृपासेही करते हैं।' धौम्यऋषिने युधिष्ठिरजीसे सूर्य भगवान्की महिमा बताते हुए कहा हैं कि 'सृष्टिके प्रारंभमें जब सभी प्राणी भूखसे व्याकुल हो रहे थे तब भगवान् सूर्यने दया करके पिताके समान अपने किरणकरोंसे पृथ्वीका रस खींचा और फिर दक्षिणायनके समय उसमें प्रवेश किया। इस प्रकार जब उन्होंने क्षेत्र तैयार कर दिया, तब चन्द्रमाने उसमें औषधियोंका बीज डाला और उसीके फलस्वरूप अन्नकी उत्पत्ति हुई। उसी अन्नसे प्राणीयोंने अपनी भूख मिटाई। तात्पर्य कि सूर्यकी कृपासे अन्न उत्पन्न होता है।' अतएव 'दीनदयाल' और 'दिवाकर' कहा। (महाभारत वनपर्व) यथा 'पुरासृष्टानि भूतानि पीड्यन्ते क्षुधयाभृशम्। ततोऽनुकंपया तेषां सविता स्वपिता यथा। ४। गत्वोत्तरायणं तेजो रसानुद्धृत्य रश्मिभिः। दक्षिणायनमावृत्तो महीं निविशते रविः। ६। निषिक्तिश्चन्द्र तेजोभिः स्वयोनौ निर्गते रविः। औषध्यः षडसा-मेध्यास्तदन्नं प्राणिनां भुविः। ८। एवं भानुमयं ह्यन्नं भूतानां प्राणधारणम्। ९।' इससेही छओं रसोंवाली औषधियां उत्पन्न होती हैं। (यह एक कारण 'रसराशि' कहनेकाभी हो सकता है। टि० ५ देखिये।)

(ख) 'दिवाकर'का भाव कि प्रकाश करनेवाले चन्द्रमा और अग्निभी हैं। यथा 'तेजहीन पावक ससि तरनी।' (लं०) चन्द्रमा और अग्निसे अंधकार भलेही दूर हो जाय परंतु ये दिन नहीं कर सकते। यथा 'राकापति षोडस उअहिं तारागन समुदाय। सकल गिरिन्ह दव लाइये रवि बिनु राति न जाय ॥' (उ०)। किसी और प्रकार दिन नहीं होता, अतः 'दिवाकर' कहा।

(ग) 'देवा' इति। 'देव' का भाव कि आपका दिव्य रूप है, आप देवता हैं, लोग आपकी उपासना करते हैं। सूर्यदेवभी पंचदेवोपासनामें एक उपास्य देव हैं।

'दिवाकर देवा' इति। सूर्य एक होते हुयेभी कालभेदसे नाना रूप धारण करके प्रत्येक मासमें तपते रहते हैं। एकही सूर्य बारह रूपोंमें प्रकट होते हैं। मार्गशीर्षमें मित्र, पौषमें सनातन विष्णु, माघमें वरुण, फाल्गुनमें सूर्य, चैतमासमें भानु, वैशाखमें तापन, ज्येष्ठमें इंद्र, आषाढमें रवि, श्रावणमें गभस्ति, भादोंमें यम, आश्विनमें हिरण्यरेता और कार्तिकमें दिवाकर तपते हैं। संभवतः यह स्तुति कार्तिकमें लिखी गई हो, इसीसे इसमें 'दिवाकर' नामसे वन्दना की गई।

२ 'करै मुनि मनुज सुरासुर सेवा' इति। (क) मुनि सर्वदेशी हैं अर्थात् तीनों लोकोंमें हैं। यथा 'त्रिकालज्ञ सर्वज्ञ तुम्ह गति सर्वत्र तुम्हारी'। 'मनुज'से भूलोकवासी, 'सुर'से स्वर्गलोकनिवासी और 'असुर'से पातालनिवासी जनाये। इसप्रकार त्रैलोक्यनिवासीयोंसे सेवित जनाया। (ख) मुनि, मनुज आदि सब संध्योपासना करके अर्घ्य देते हैं। यही 'सेवा' है। जलाञ्जलि देना, आदित्यहृदय आदिका पाठ करना, रविवारका व्रत करना, इत्यादि सब 'सेवा' है। असुर सूर्यके रथको ठेलते हैं, यह उनकी सेवा है। (टि० ६ देखिये)। पद्मपुराण सृष्टिखण्डमें वैशम्पायनजीने व्यासजीसे प्रश्न करते हुए यही कहा है कि देवता, बड़े बड़े मुनि, सिद्ध, चारण, दैत्य, राक्षस तथा ब्राह्मण आदि समस्त मानव इनकी सदाही आराधना किया करते हैं।

३ (क) ‘हिम तम करि केहरि करमाली’ इति। सूर्यको सिंह और ‘हिम तम’ को हाथी कहा। भाव कि जैसे सिंह नखों और दाँतोंसे हाथीका मस्तक विदीर्ण करता है वैसेही सूर्य अपने किरणसमूहरूप नख और दाँतोंसे हिम और तमरूपी हाथियोंका नाश करते हैं। यहाँ परम्परित रूपक है। पुनः, पाला और अंधकार काले, वैसेही हाथी काला, सिंहके नख और दांत बहुत और चमकीले, वैसेही किरणें बहुत और श्वेत तथा तेजोमय, यह समता है। सूर्य अनन्त किरणोंका समूह है। इसीसे इनका एक नाम सहस्रांशुभी है। अतएव ‘ करमाली कहा।

पद्मपुराण सृष्टिखण्डमें बताया है कि यह तेज (सूर्य) आदिब्रह्मके स्वरूपसे जलमें प्रकट हुआ। इनका तेज न सह सकनेके कारण देवताओंने ब्रह्माजीसे प्रार्थना की कि आप ऐसी कृपा करें कि हम सूर्यका दर्शन और पूजन कर सकें। तब ब्रह्माजीने सूर्यकी स्तुति कर उनसे प्रार्थना की कि जिस प्रकार आपके अत्यन्त प्रखर किरणोंमें कुछ मृदुता आ सके वह उपाय कीजिये। आदित्यने उत्तरमें कहा कि ‘निस्संदेह हमारी कोटि कोटि किरणें संहारक हैं। आपही किसी शक्तिद्वारा इन्हें खरादकर कम कर दें।’ तब ब्रह्माजीने विश्वकर्माको बुलाया औ वज्रकी सान बनवाकर उसीपर सूर्यको आरोपित करके उनके प्रचण्ड तेजको छांट दिया। उस छँटे हुए तेजसेही श्रीविष्णु भगवान्‌का सुदर्शनचक्र, यमदण्ड, श्रीशंकरजीका त्रिशूल, कालका खड्ग, कार्त्तिकेयकी शक्ति और दुर्गाजीके विचित्र शूलोंका निर्माण हुआ। इस तरह सूर्यदेवकी एक हजार किरणें शेष रह गईं, बाकी सब छांट दी गईं।

(ख) ‘दहन दोष दुख दुरित रुजाली’ इति। अकृत्यकरणादिक निषिद्धानुष्ठान ‘दोष’ हैं। काम, क्रोध, मद, लोभ, मत्सर, मोह, द्वेष आदि दोष माने गये हैं। जन्म, मरण, दारिद्र्य आदि दुःख हैं। यथा ‘नहि दरिद्र सम दुख जगमाहीं।’ परधन, परदारापहरण आदि दुरित (पाप) हैं। कुष्ठ आदि रोग हैं। सूर्य दोषादिके नाशक हैं, यह भविष्योत्तरके

आदित्यहृदयसे सिद्ध है। यथा 'विस्फोटक कुष्टानि मंडलानि विचर्चिका। ये चान्ये दुष्टरोगाश्च ज्वरातीसारकादयः। जपमानस्य नश्यन्ति०' (वै०)। * अर्थात् चेचक, कोढ़, दाद, ज्वर, पेचिश इत्यादि दुष्ट रोग आपके जपसे नष्ट हो जाते है। सूर्य चिकित्सासे समस्त रोग दूर हो जाते हैं। Sun Bath सूर्यस्नान अर्थात् धूपसेवन एवं रविवारके व्रतसे अनेक रोग जाते रहते हैं। विज्ञानसेभी यह सिद्ध हो चुका है। पुनः, प्रातःकालकी संध्यासे रात्रिके पाप, मध्यान्हकी संध्यासे उच्छिष्ट, अभोज्य भोजन और दुश्चरितजन्य पाप और तीसरे पहरकी सन्ध्यासे दिनके पाप दूर होते हैं। 'आली' का अन्वय दोष, दुख, दुरित और रुज सबके साथ है।

महाभारत वनपर्वमें युधिष्ठिरजीके वचन हैं कि जो अनन्य चित्तसे आपकी पूजा और नमस्कार करते हैं उन्हें आधि, व्याधि तथा आपत्तियाँ नहीं सतातीं। आपके भक्त समस्त रोगोंसे रहित, पापोंसे मुक्त, सुखी और चिरजीवी होते हैं। यथा 'सर्वरोगैर्विरहिताः सर्वपाप विवर्जिता। त्वद्भावभक्तः सुखिनो भवन्ति चिरजीवितः। ३। ६७।

पद्मपुराण सृष्टिखण्डमें व्यासजीने वैशम्पायनजीसे कहा है कि यह (सूर्य) ब्रह्मके स्वरूपसे प्रकट हुआ। यह ब्रह्मकाही उत्कृष्ट तेज है। इसे साक्षात् ब्रह्ममय समझो। ये सूर्यदेव सत्वमय है। इनकेद्वारा चराचर जगत्का पालन होता है। ब्रह्माजी देवताओंसे कहते हैं कि सन्ध्याकालमें सूर्यकी उपासना करनेमात्रसे द्विज सारे पापोंसे शुद्ध हो जाते हैं। 'सन्ध्योपासनमात्रेण कल्मशात् पूततां व्रजेत् '(७५-१६)। सूर्यकी उपासना करने मात्रसे मनुष्यको सब रोगोंसे छुटकारा मिल जाता है। जो सूर्यकी प्रार्थना करते हैं वे इहलोक और परलोकमेंभी अंधे, दरिद्र, दुखी और शोकग्रस्त नहीं होते। अ० ७६ में श्रीशिवजीने स्कन्दजीसे रविवार और संक्रान्ति आदिके अवसरोंपर इनके पूजनका फल बताया है और पूजन विधिभी। 'ॐ

* ये श्लोक श्रीवैजनाथजीने 'यथा भविष्योत्तरे। आदित्यहृदये।' लिखकर दिये हैं। परन्तु वाल्मिकीय युद्धकाण्डके आदित्यहृदयमें यह श्लोक नहीं हैं।

ऱ्हां ऱ्हीं सः सूर्याय नमः' इस मंत्रके जपसे रोग दूर हो जाते हैं, कामनाएँ सिद्ध होती हैं। व्यासजीने बताया है कि चक्रवर्ती राजा भद्रेश्वरका कुष्ठ सूर्योपासनासे एक वर्षमें दूर हो गया। वे प्रतिदिन मन्त्रपाठ, नैवेद्य, फल, अर्घ्य, अक्षत, जपापुष्प, मदारके पत्ते, लाल चन्दन, कुंकुम, सिंदूर, कदलीपत्र, केलाफल आदिकेद्वारा पूजा करते थे। गुलरके पात्रमें अर्घ्य सजाकर निवेदन किया करते थे।

४ 'कोक कोकनद लोक प्रकासी' इति। चकवा और चकईका वियोग रात्रिमें रहता है। सूर्योदय होनेपर इनका विरहवियोग दूर होकर दोनोंका संयोग होता है। यथा 'चक्क चक्कि जिमि पुरनरनारी। चहत प्रात उर आरतभारी॥' (अ०) कमल रात्रिमें संपुटित रहता है, सवेरा होनेपर पुनः विकसित हो जाता है। यथा 'कमल कोक मधुकर खग नाना। हरषे सकल निसा अवसाना॥' लोकमात्र प्रकाश पाकर अपने अपने कार्यमें प्रवृत्त होता है। इसप्रकार सूर्यदेव कोक, कमल और लोकमात्रको सुखी करते हैं। मिलान कीजिये 'उयेउ अरुन अवलोकहु ताता। पंकज लोक कोक सुखदाता।' (बा०)

५ 'तेज प्रताप रूप रस रासी' इति। 'रासी' का अन्वय तेजादि सबके साथ है। सूर्यके तेजका वर्णन जटायु और संपातिके प्रसंगमें वाल्मीकीयमें आया है। मानसमेंभी कहा है 'जरे पंख अति तेज अपारा। पर्‍यो धरनि अति करत चिकारा' (कि०)। नैयायिकोंने जहां तत्त्वोंका निर्णय किया हैं वहां सूर्यको तेजका समूह वा तेजकी मूर्त्तिही निर्णय किया है। 'शरीरं आदित्य लोके', अतः तेजराशि कहा। तेजसेही रूप है, यथा 'जिमि बिनु तेज न रूप गुसाईं', अतः रूपराशि कहा। तेज और प्रतापका जहां वर्णन होता है वहां प्रायः सूर्यके तेजसे उपमा दी जाती है। यथा 'रवि सम तेज सो बरनि न जाई' (उ०), 'जबतें रामप्रताप खगेसा। उदित भयेउ अति प्रबल दिनेसा' (उ०), 'प्रताप दिनेस से०' (क०) 'जिन्हके जस प्रतापके आगे। ससि मलीन रबि सीतल लागे' (बा०), अतः तेज प्रतापकी राशि कहा।

'रसराशि' कहकर जनाया कि (क) जलकी वृष्टि सूर्यहीसे होती है। यथा 'बरषत करषत आपु जल अर्घनि हरषन भानु।' 'बरषत हरषत लोग सब करषत लखै न कोई। तुलसी प्रजा सुभाग वस भूप भानुसो होइ ॥ (दोहा०) (ख) रसके बनानेवाले सूर्यही हैं, यद्यपि रस जलतत्वका गुण है *। (ग) जहाँ सूर्यकी किरणें पड़ती हैं वहीं सब रस उत्पन्न होते हैं। छायामें अन्नादि नहीं उत्पन्न होते। उपरोक्त कारणोंसे 'रसराशि' कहा। विष्णुपुराणमेंभी यही कहा है, यथा, आदत्ते रश्मिभिर्यन्तु क्षितिसंस्थं रसं रविः। तमुत्सृजति भूतानां पुष्ट्यर्थं सस्यवृद्धये। २-११-२४। पक्षं तृप्तितु देवानां पितृणां-चैव मासिकीम्। शश्वत्तृप्तिंच मर्त्यानां मैत्रेयार्कः प्रयच्छति। २६।' इत्यादि। अर्थात् सूर्य अपनी किरणोंसे पृथ्वीमें रहनेवाले रसको खींच लेते हैं और उसी रसको प्राणियोंकी पुष्टि और अन्नकी वृद्धिकेलिये पुनः अपनी किरणोंद्वारा छोड़ते हैं। हे मैत्रेय! सूर्य पक्ष पक्षमें देवताओंकी तृप्ति, मास मासमें पितरोंकी तृप्ति और नित्यप्रति मनुष्योंकी तृप्ति करते हैं। यदि विस्तारसे देखना हो तो विष्णुपुराणके द्वितीय अंशके अ० ९, १०, ११ में देखिये। इससे गोस्वामी तुलसीदासजीके वैज्ञानिक ज्ञानका परिचय मिलता है।

६ 'सारथि पंगु दिव्य रथ गामी' इति। (क) सूर्यके सारथी अरूण हैं जो गरुड़के सगे भाई हैं। ये पंगुल हैं। पंगु होनेकी कथा इस प्रकार महाभारतमें दी हुई है कि दक्षकी दो कन्यायें कद्रु और विनता कश्यपजीकी पत्नि हुईं। दोनोंपर प्रसन्न होकर कश्यपजीने दोनोंसे वर माँगनेको कहा। कद्रूने एक हज़ार नागपुत्र माँगे और विनताने दो पुत्र माँगे जो तेज, बल, पराक्रम और शरीरमें कद्रूके पुत्रोंसे अधिक हों। दोनोंको वर देकर कश्यपजी चले गए। बहुत कालके पश्चात् कद्रुके दस सौ (एक सहस्र) और विनताके

---

* पद्मपुराण सृष्टिखण्ड अ० ७५ में ब्रह्माजीने कहा है कि हे सूर्यदेव! तुम्हीं रूप और गंध आदि उत्पन्न करनेवाले हो। रसोंमें जो स्वाद है वह तुम्हींसे आया है।

दो अंडे पैदा हुए। दासियोंने उन अंडोंको गर्म बर्तनोंमें रख दिया। पाँच सौ वर्षके बाद कद्रूके अंडोंमेंसे तो पुत्र निकले परन्तु विनताके अंडोमेंसे बच्चे नहीं निकले। लज्जित और दुखी होकर विनताने एक अंडेको फोड़ डाला तो उसमेंसे एक अर्धकाय परिपक्व अर्थात् आधे शरीरका लड़का निकला। उस समयतक उसका आधाही शरीर बन पाया था जो खूब पुष्ट था। अपनेको आधे शरीरसे रहीत देखकर उस 'अनुरूप' पुत्रने क्रोधसे माताको शाप दिया कि तू जिस कद्रुके साथ ईर्ष्या रखती है, पाँच सौ वर्षतक तू उसकी दासी होगी। परन्तु यदि तू इस दूसरे अंडेकोभी तोड़कर मेरे सरीखे अंगभंग न कर देगी तो मेरे शापसे यही तुझे मुक्त करेगा। धैर्यपूर्वक तुझे इसके जन्मकालकी प्रतीक्षा करनी चाहिये। यदि इसकी बलवान् होनेकी इच्छा करती हो तो अभी पाँच सौ वर्षतक इसकी और प्रतीक्षा करना। इस प्रकार विनताको शाप देकर वह पुत्र आकाशमें उड़ गया और सूर्यके रथपर बैठकर उनका सारथी बन गया। यह प्रातःकालकी कालिमा उसीकी झलक है। (आदिपर्व अ० १६, श्लोक ८ से २३ तक)।

(ख) 'सारथि पंगु'से आपका सामर्थ्य और दीनदयालुता दर्शित की। पंगुलको सारथी बनाया फिरभी आपका रथ अत्यन्त वेगसे चलता है। वैजनाथजी **'योजनानां सहस्रे द्वे द्वे शते द्वेच योजने। एकेन निमिषार्द्धेन क्रममाण नमोस्तुते॥'** इस श्लोकका प्रमाण देकर बताते हैं कि सूर्यका रथ अर्द्धनिमिषमें ८८०८ कोस चलता है। भा० ५, २१, १९ में कहा है कि सूर्य भूमंडलके नौ करोड़ एक्यावन लाख योजन लंबे घेरेमेंसे प्रत्येक क्षणमें दो हज़ार दो योजनेकी दूरी पार कर लेते हैं।

(ग) 'दिव्य रथ गामी' कहकर जनाया कि रथ अलौकिक है, स्वयं प्रकाशमान् है, आकाशमार्गसे चलता है और बड़ाही सुन्दर है। इस रथमें एकही पहिया है, सात हरे रंगके घोड़े जुते हैं। यह स्वर्णमय है, इसका ढाँचा वज्रका है और यह प्रतिदिन नयाही बना रहता है। यथा भविष्योत्तरे, **'हरित हय रथं दिवाकरं कनकमय वज्रेणपञ्जरं प्रतिदिनमुदय नवं नवम्'॥** (वै०) इसे हाँकनेकी जरूरत नहीं पड़ती। सवारकी इच्छानुसार

वह स्वयं चलता है। यह रथ प्रतिमास भिन्न भिन्न सात सात गणोंसे अधिष्ठित होता है, यथा 'सरथोऽधिष्ठितो देवैरादित्यैर्ऋषिभिस्तथा। गन्धर्वैरप्सरोभिश्च ग्रामणी सर्पराक्षसैः। वि० पु० २-१०-२। स्तुवन्ति मुनयः सूर्यं गन्धर्वैर्गीयते पुरः। नृत्यन्त्यप्सरसो यान्ति सूर्यस्यानु निशाचराः। २०। वहन्ति पन्नगा यक्षैः क्रियतेऽभीषु संग्रहः। बालखिल्यास्तथैवैनं परिवार्य समासते। २१।' अर्थात् वह रथ देवताओं, आदित्यों, ऋषियों, गंधर्वों, अप्सराओं और उसके ठेलनेवाले सर्पों और राक्षसोंसे अधिष्ठित (युक्त) है। सूर्यके आगे आगे मुनिगण स्तुति करते हैं, गन्धर्वगण गान करते हैं और अप्सराएँ नृत्य करती हुई जाती हैं। इसी प्रकार सूर्यके पीछे निशाचरगण जाते हैं। सूर्यके रथको साँपोंने सँभाल रखा है। (भाव कि उसमें कील काँटे आदिका काम सर्पोंसे लिया जाता है) इन सर्पोंकी देखभाल यक्षोंकेद्वारा होती है। इसी प्रकार बालखिल्य लोग सूर्यको चारो ओरसे घेरे रहते हैं।

७ 'हरि संकर बिधि मूरती स्वामी' इति। त्रिदेवकी मूर्ति कहकर आपके द्वारा उत्पत्ति, पालन और संहार प्रतिदिन दिखाते हैं। यथा 'उदये ब्रह्मरूपस्तु मध्यान्हेतु महेश्वरः। अस्तमाने स्वयं विष्णुस्त्रयो-मूर्तिर्दिवाकरः ॥' (भविष्योत्तरे) अर्थात् उदयके समय ब्रह्मारूप, मध्यान्हमें शिवरूप और अस्तसमय विष्णुरूप रहते हैं। पुनश्च यथा 'एष ब्रह्मा च विष्णुश्च शिव स्कंदः प्रजापतिः।' (वा. रा. युद्धकांड) पुनश्च, यथा विष्णुशक्तिरवस्थानं सदादित्येकरोति सा॥ वि० पु० २-११-११। सर्गादौ ऋङ्मयो ब्रह्मा स्थितौ विष्णुर्यजुर्मयः। रुद्रः साममयोऽन्ताय०। १३।' अर्थात् वह विष्णुशक्ति आदित्यमें सब दिन निवास करती है। वह ऋग्वेदमय ब्रह्मामें स्थित होकर सृष्टि कराती है। उसी विष्णुशक्तिसे यजुर्वेदमय विष्णु पालन करते हैं और वही शक्ति सामवेदमय रुद्रमें प्रविष्ट होकर प्रलयका कारण होती है।

शंकर मूर्ति इससेभी कह सकते हैं कि 'प्रलयका समय आनेपर आपके क्रोधसेही संवर्तक अग्नि प्रगट होता है और तीनों लोकोंको जलाकर आपमें स्थित हो जाता है। आपकी किरणोंसेही रंगबिरंगे ऐरावत आदि

मेघ और बिजलियां पैदा होती हैं तथा प्रलय करती हैं।' (महाभारत वनपर्व अ० ३–५८) यथा 'संहारकाले संप्राप्ते तव क्रोधविनिसृतः। संवर्तकाग्निस्त्रैलोक्यं भस्मीकृत्वाऽवतिष्ठते ॥'

ज्ञानियों और योगीयोंकी गति होनेसे विष्णुरुप कहा है। यथा 'त्वं गतिः सर्वसाङ्ख्यानां योगिनां त्वं परायणम्। अनावृतार्गलद्वारं त्वं गतिस्त्वं मुमुक्षुताम॥ 'वनपर्व अ० ३–३७।' 'त्वया सन्धार्य्यते लोकस्त्वया लोकः प्रकाश्यते। ३८।' अर्थात् आपमें परायण ज्ञानियों और योगीयोंकी गति आपही हैं। मुमुक्षुओंकी आपही गति और मुक्तिके खुले द्वार हैं। आपही समस्त लोकोंको धारण और प्रकाशित करते हैं। ये सब कार्य हरिके हैं, अतः हरिरूप कहा।

इसी तरह 'त्वं योनिः सर्वभूतानां त्वमाचारः क्रियावताम्॥ ३–३६॥' इस लक्षणसे युक्त होनेसे ब्रह्मारूप कहा। *

'हिम तम करि केहरि करमाली'से लेकर 'सारथी पंगु दिव्यरथगामी' तक सूर्य भगवान्के गुण कहकर तब कहा कि आप 'हरि संकर बिधि मूरति' हैं। इससे पाया गया कि पूर्वोक्त गुण त्रिदेवके हैं। अतएव उनमेंभी तीनोंके रूप दिखाना चाहिए। अंधकारका नाश, दोष, दुख, दुरित, रुजालीका दहन करना 'संहार' कार्य है, इसमें शंकररूप दिखाया। 'कोक कोकनद लोक प्रकासी' यह सृष्टिकार्य होनेसे यहाँ ब्रह्मारूप हुए। और, 'सारथी पंगु०' पंगुलको सामर्थ्य देना विष्णुका काम हैं। यथा 'मूकं करोति वाचालं पंगुं लङ्घयते गिरिम्। यत्कृपा तमहं वन्दे

*श्री शिवजीने स्कन्दजीको (पद्मपुराण सृष्टिखण्ड ७६। ३१–३४।) जो आदित्यमंत्र बताया है उसमेंभी 'विधि हरि संकर मूरति' होना कहा है। यथा 'ॐ नमः सहस्रबाहवे आदित्याय नमोनमः। नमस्ते पद्महस्ताय वरुणाय नमोनमः। ३१। नमस्तिमिरनाशाय श्रीसूर्याय नमोनमः। नमःसहस्रजिह्वाय भानवेच नमोनमः। ३२। त्वंच ब्रह्मा त्वंच विष्णु रुद्रस्त्वंच नमोनमः। त्वमग्निस्सर्वभूतेषु वायुस्त्वंच नमोनमः। ३३। सर्वगः सर्वभूतेषु नहि किंचित्त्वया विना। चराचरे जगत्यस्मिन् सर्वदेहे व्यवस्थिताः। ३४।'

परमानन्द माधवम् ॥' अतएव 'रूपरसराशि' और ' सारथि पंगु० 'में 'हरिमूरति' होना दिखाया ।

८ (क) 'वेद पुरान प्रगट०' इति । इसमें शब्दप्रमाण अलंकार है । वेदमें प्रगट है, यथा 'ऋचः पूर्वाह्ने दिवि देव इयते यजुर्वेदे तिष्ठति मध्यो अह्नः सामवेदेनास्तमये महीपते ।' इति श्रुतिः । विष्णुपुराणके प्रमाण ऊपर आ चुके हैं । सूर्यपूराणमें विशेषकर सूर्यकाही माहात्म्य वर्णित है । वेदमें तथा गायत्रीमें ' भर्ग ' शब्दसे सूर्यके तेजका ग्रहण है । वेद मंत्र गायत्री यह है, 'ॐभूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यम् भर्गोदेवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॥' सूर्यमण्डलको परब्रह्म कहा गया है ।

श्री राजबहादुर लमगोड़ाजी कहते हैं कि ' हिम तम करि केहरि ' यह बसन्तऋतुके सूर्यपर विशेषकर लागु है । वही 'हिम तम करि केहरि' हैं और उन्हींमें भौतिक चिकित्सा विज्ञानभी सुबह (Creative) उत्पादक, दोपहरमें (Protective) पालक, और सायंमें (Destructive) संहारक गुण बताता है ।

९ ' सरोजनी नैडूजीभी कहती हैं कि गायत्री मंत्र विशेषत: सूर्यपरही लागु होता है । सारे वेदोंका वह मूल है। यहभी विचारणीय है कि कुरानका मूल सूरा फातहा कहलाता है जिसका अर्थ समझनेसे साफ पता चलता है कि वह गायत्रीका रूपान्तरही है । सोचनेकी बात है कि वहभी 'रब्बुल आलमीन' शब्दसमूहमें 'रवि' शब्दका अपभ्रंशही है । महात्मा ईसाभी रवि अंशसेही थे। बड़ा दिन (उनका जन्मदिन) वास्तवमें मकरसंक्रान्तिका दिन था । गणनाके हेरफेरसे प्रति शताब्दिमें एक दिनका फ़र्क होता जाता है और अब संक्रान्ति १४ जानवरीको होती है । ज्योतिषियोंको पता लगाना चाहिये कि भूल कहाँ है । ईसाई धर्ममें इसीसे रविवारका बड़ा मान है और 'रैबाई' शब्द बाइबिलमें बड़ा आदरसूचक है ।'

९ 'प्रगट जस जागै' इति । यश प्रत्यक्ष जगमगा रहा है । इस कथनसे पद्मपु० सृष्टिखण्डके ब्रह्माजीद्वारा कहे हुए श्रीविष्णु और शिव

आदि देवताओंके दर्शन सब लोगोंको नहीं होते। ध्यानमेंही उनके स्वरूपका साक्षात्कार किया जाता है। किन्तु भगवान् सूर्य प्रत्यक्ष देवता माने गये हैं। पौ फटनेपर इनका दर्शन करनेसे राशिराशि पाप विलीन हो जाते हैं।' इन वचनोंका अभिप्रायभी आ जाता है।

१० 'तुलसी रामभगति बर मांगै' इति। यह उपासनाकी रीति है। सबका यथोचित आदर सम्मान करके आपके इष्टदेवकी अनन्यभक्ति माँगनी चाहिये। यथा 'सब करि मांगहिं एक फलु रामचरन रति होउ'

विशेषणोंके और भाव—(क) 'दीनदयाल'का भाव कि मैं दीन हूँ, मुझपर दया कीजिये। 'दिवाकर देवा' अर्थात् आप दिन करके जगत्को सजग करते हैं। वैसेही मेरे हृदयमें प्रकाश करके मेरे हृदयकी जड़ता हरिये। आप 'हिमतम करि करमाली' हैं। अतः ज्ञानकिरणद्वारा मेरे मोहादि तमको दूर कीजिये। 'कोक कोकनद लोक प्रकासी' का भाव कि जैसे कोकादिको सुख देते हैं वैसेही श्रीसीतारामजीसे मेरा संयोग कराके मुझे सुख दीजिये। 'सारथि पंगु' कहकर जनाया कि मेरी बुद्धि पंगु है। मैं श्रीरघुनाथजीतक पहुँचनेमें असमर्थ हूँ। आप कृपा करें कि दरबारतक मेरी रसाई हो जाय।

(ख) 'दीन दयाल दिवाकर देवा' से दया, 'हिमतम करि केहरि करमाली' से बल, सामर्थ्य और पराक्रम, 'कोक कोकनद लोक प्रकासी'से परोपकार, परायणता, 'तेज प्रताप रूप रस रासी' और 'सारथि पंगु'से तेज, प्रतापादि और सामर्थ्य, और 'हरि संकर बिधि मूरति स्वामी' से ऐश्वर्यादि गुण सूर्यमें दिखाए।

अनुप्रास (alliteration) बड़ेही सुंदर हैं। गोस्वामी तुलसीदासजीकी कलामें (alliteration Tennyson) अनुप्रास टेनिसन के काव्यसेभी सुंदर रीतिपर है। कारण कि कृत्रिमता नहीं जान पड़ती और इसीसे जी नहीं ऊबता। यह अलंकार बड़े बाहुल्यके साथ बिनयमें मिलता है। इससे हर जगह समझ लेना चाहिए। बार बार दोहराया न जायगा। (लमगोड़ाजी)

३ को जाचिए संभु तजि आन।

दीनदयाल भगत आरति हर। सबप्रकार समरथ भगवान ॥१॥
कालकूट जर[1] जरत सुरासुर निजपन लागि कियो[2] विषपान ।
दारुन दनुज जगत दुखदायक जार्‌यो[3] त्रिपुर एकही बान ॥२॥
जो गति अगम महामुनि दुर्लभ कहत संत श्रुति सकल पुरान ।
सोइ गति मरन काल अपने पुर देत सदासिव सबहिं समान ॥३॥
सेवत सुलभ उदार कलपतरु पारबतीपति परम सुजान ।
देहु कामरिपु *रामचरनरति तुलसिदास कहुँ कृपानिधान ॥४॥

शब्दार्थ—को=किससे, कौन। जाचिए (सं० याचना)=किसीसे प्रार्थनापूर्वक माँगना। संभु (शंभु)=कल्याणके उत्पन्न करनेवाले, कल्याणकी भूमि, शिवजी। तजि=छोडकर। आन=दूसरेसे। दीनदयाल= देखिये पद २। भगत (भक्त)=भक्ति करनेवाला, सेवक, उपासक। आरति (आर्ति)=दुःख, पीड़ा, क्लेश। हर=हरनेवाला। प्रकार=तरह। समरथ (समर्थ)=शक्तिमान्, योग्य। भगवान=ऐश्वर्यवाला, षडैश्वर्ययुक्त। छः ऐश्वर्य ये हैं-ऐश्वर्य, बल, श्री, यश, ज्ञान और वैराग्य। पुनः, षडैश्वर्य, यथा 'उत्पत्तिप्रलयञ्चैव जीवानामगतिं गतिम्। वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति ॥ (विष्णु पु० षष्ठं अंश) अर्थात् उत्पत्ति, प्रलय, जीवोंकी गति और अगति, विद्या एवं अविद्याको जो जाने

---

१ जर–बै०, ज०, प्र० ('जुर' का 'जर' बनाया है।) जुर–भ०, दी०। ज्वर–ह०, डु०, मु०, ५१, वै०, ७४, १५।

२ कियो–ह०, प्र०, ५१, ज०, ७४, १५, आ०। कीन्ह–भा०, बै०।

३ जार्‌यो–ह०, १५, डु०, भ०, ७४, ६९, दी०,। मार्‌यो–भा०, बै०, प्र०, ज०, ५१, वै०, मु०, वि०।

* कामरिपु रामचरनरति–बै०, आ०। रामपदनेहु कामरिपु–भा०, ह०, प्र०, ज०, ७४, १५। आधुनिक समस्त टीकाकारोंने कामरिपु रामचरनरति पाठ रखा है। इसमें (Antithesis) विरोध खूब उभर आती है। अतः यही पाठ हमनेभी स्वीकार किया है।

वह 'भगवान्' है। कालकूट=एक प्रकारका अत्यंत भयंकर विष जो समुद्र मंथनपर निकला था। जर (ज्वर)=ताप, जलन, ज्वाला। सुरासुर=सुर और असुर। पन (प्रण)=प्रतिज्ञा। लागि=लिये, वास्ते। यथा–'तुम्हहिं लागि धरिहौं नरदेहा।' (बा०)। पान कियो=पी लिया। बिष=जहर। दारुन (दारुण)=भयंकर, महाकठिन। दनुज=दनुके पुत्र, दानव। दनु कश्यपजीकी एक पत्निका नाम है। उससे जो पुत्र उत्पन्न हुए वे दनुज और दानव कहलाए। जगत=संसार। दुखदायक=दुख देनेवाला। त्रिपुर=देखिये टि० ३ में। अगम=जहाँ कोई जा न सके, दुष्प्राप्य, कठिनतासे प्राप्त होनेवाली। अगम गति=कैवल्य, मुक्ति, परमपद। यथा–'लहत परमपद पय पावन जेहि चहत प्रपंच उदासी'। (२२) गति=मृत्यु के उपरान्त जीवात्माकी उत्तम दशा। महामुनि=बड़े श्रेष्ठ मुनि, जैसे–'विश्वामित्र महामुनि आये।' दुरलभ (दुर्लभ)=कठिनतासे प्राप्त होनेवाली। श्रुति=समस्त वेदवाक्य। सकल पुरान=सब पुराण। पुराण ये हिन्दुओंके धर्म-संबंधी आख्यान ग्रंथ हैं। पुराणका लक्षण श्रीमद्भागवतमें लिखा है कि 'सर्गोऽस्याथ विसर्गश्च वृत्तिरक्षान्तराणि च। वंशो वंशानुचरितं संस्थाहेतुरपाश्रयः॥ १२७। ९॥ दशभिर्लक्षणैर्युक्त पुराणं तद्विदो विदुः॥१०॥' अर्थात् सर्ग (महत्तत्व, अहंकार, पंचतन्मात्रा, पंचमहाभूत, कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय और मनकी उत्पत्ति अर्थात् सूक्ष्म रचना), विसर्ग (जीवोंसे अनुगृहीत सूक्ष्म रचनाके वासनामय चर और अचर सृष्टिकी रचना), वृत्ति, रक्षा (अच्युत् भगवान्के अवतारकी चेष्टा), मन्वन्तर (मनु, देवता, मनुपुत्र, सुरेश्वर, ऋषि और अंशावतार श्रीहरिके ये छः प्रकार), वंश (ब्रह्मप्रसूत राजाओंकी त्रैकालिक अन्वय), वंशानुचरित (वंशको धारण करनेवाले प्रधान पुरुषोंके चरित्र), संस्था (नैमित्तिक, प्राकृतिक, नित्य और आत्यन्तिक चार प्रकारके लय), हेतु (सृष्टि आदिकी अविद्याद्वारा कर्म करनेवाला जीव) और अपाश्रय (मायामय जीवोंकी वृत्तियोंमें और जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थाओंमें जिसका व्यतिरेकान्वय हो वह ब्रह्म) इन दस लक्षणोंसे युक्त ग्रन्थोंको पुराण कहते हैं। महापुराण १८ हैं। विष्णु, नारद, श्रीमद्भागवत, गरुड़, पद्म, और बाराह ये ६

सात्विक हैं। ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, भविष्य, वामन और ब्रह्म ये राजस हैं। मत्स्य, कूर्म, लिङ्ग, शिव, स्कंद, और अग्नि ये तामस हैं। (भा० १२-७-२३, २४। पाद्मोत्तरखण्ड) उपपुराणभी १८ हैं। गुरुड़पु० अ० २२७ श्लो० १-४ में उनके नाम ये कहे गये हैं—आदिपुराण, नृसिंह, कुमारका बनाया हुआ स्कन्द, नन्दीशका बनाया हुआ शिवधर्म, दुर्वासा, नारद, कपिल, वामन, औशनस, ब्रह्मांड, वारुण, कालिका, महेश्वर, साम्ब, सौर, पाराशर, मारीच, और भास्कर। पुराणसे महापुराण और उपपुराण दोनोंका ग्रहण होता है, क्योंकि लिखा है कि 'त्यक्तानुबंधग्रहणे सामान्यस्यग्रहणम्'। त्यक्त अनुबंधके ग्रहणसे सामान्य (समस्त) का ग्रहण होता है। सोई=वही। मरनकाल=मरते समय। पुर=नगर। सदाशिव=शिवजीका एक नाम। समान=घटती बढ़ती नहीं, समानरूपसे, तुल्य, एकसी। सेवत=सेवा करनेमें। सुलभ=सुगमतासे, मिलनेयोग्य। उदार=बड़े दाता, दानशील, महान्, श्रेष्ठ, यथा—'उदारो दातृ महतो इत्यमरे॥' कलपतरु (कल्पतरु)=कल्पवृक्ष। पुराणानुसार यह देवलोकका एक वृक्ष है जो समुद्रमन्थनसमय समुद्रसे निकला था और १४ रत्नोंमेंसे एक माना जाता है। यह इंद्रको दिया गया था। हिंदुओंका विश्वास है कि इससे जिस वस्तुकी प्रार्थना की जाय उसे यह देता है। यथा, 'जाइ निकट पहिचानि तरु छांह समन सब सोच। माँगत अभिमत पाव जग राउ रंकु भल पोच॥ अ० २६७॥' इसका नाश कल्पान्ततक नहीं होता। इसी प्रकारका एक पेड़ मुसलमानोंमेंभी माना जाता है जिसे 'तूबा' कहते हैं। इसके फूल श्वेत रंगके होते हैं। पारबतीपति=पार्वतीजीके स्वामी, शिवजी। परम=सबसे बढ़चढ़कर। सुजान=चतुर, विज्ञ। देहु= दीजिये, दो। कामरिपु=कामदेवके शत्रु। कहुँ=को। कृपा=बिना किसी प्रतिउपकारकी आशाके दुसरेकी भलाई करनेकी इच्छा। कृपानिधान=कृपाके खज़ाना, भंडार वा आधार।

पद्यार्थ—शिवजीको छोड़ और किससे माँगा जाय? वे दीनोंपर दया करनेवाले, भक्तोंके दुःख हरानेवाले, सबप्रकारसे समर्थ और षडैश्वर्य-संपन्न हैं कालकूटकी ज्वालासे देवता और दैत्य जल रहे थे।

(उस समय) अपनी प्रतिज्ञा (की रक्षा) केलिये आपने विषको पी लिया। संसारको दुःख देनेवाले भयंकर दानव त्रिपुरको आपने एकही बाणसे जला दिया। सब संत, श्रुतियां और पुराण जो परमपद महामुनियोंको (भी) दुर्लभ बताते हैं वही परमपदरूपी गति सदाशिवजी सदा अपने पुरमें सबको मरते समय समानरूपसे देते हैं। सेवा करनेमें सुगम, कल्पवृक्षसमान उदार दाता (एवं श्रेष्ठ कल्पवृक्ष) और पार्वतीजीके पति हैं। हे कामदेवके शत्रु! हे दयासागर! (मुझ) तुलसीदासको श्रीरामचंद्रजीके चरणोंमें प्रेम दीजिये।

टिप्पणी—१ (क) 'को जाचिए संभु तजि आन' इति। भाव यह कि यदि मांगना हो तो इन्हींसे मांगो। ऐसा उदार, और शीघ्र प्रसन्न होनेवाला दूसरा नहीं है। श्रीरामजीके चरणोंमें प्रेम देनेवाला ऐसा रामभक्त दूसरा नहीं है। भक्त कवि आगे यही माँगते हैं।

(ख) 'को जाचिए आन' कहकर आगे 'दीनदयाल भगत आरति-हर०' इत्यादिमें इनसेही माँगनेका कारण बताते हैं। इनसे न माँगकर अन्यसे माँगनेका क्या फल होगा यह आगे पद ४ में कहेंगे। 'ते मूढ़ मांगने कबहुँ न पेट अघाहीं'। दीनदयालादि जो गुण कहे हैं इनके उदाहरण वा प्रमाण अगले अंतरोंमें देते हैं।

(ग) दीनदयाल आदि गुणोंके क्रमका भाव—दीनोंपर दया करते हैं। दयालु हृदय होनेसे भक्तोंके दुःख दूर करते हैं। दयाभी हो, दुःख दूर करनेकी इच्छाभी हो, पर सामर्थ्य न हो तो वह दया व्यर्थ है। यथा 'प्रभु अकृपाल कृपाल अलायक जहँ जहँ चितहिं डोलावों' इसीसे 'आरतिहर' कहकर 'सब प्रकार समरथ' कहा। फिर सब प्रकार समर्थ होनेका कारण बताया कि वे 'भगवान्' हैं।

(घ) 'दीनदयाल'से करुणामय, 'भगत आरतिहर'से शरणागत-पालक और भक्तवत्सल जनाया। 'सब प्रकार समरथ'से सामर्थ्य, 'भगवान'से ऐश्वर्य, 'सेवतसुलभ'से सौलभ्य, 'उदार कल्पतरु'से श्रेष्ठ दातृत्व (हानिकारक वस्तु न देनेवाले) और 'पार्वतीपति'से परोपकारत्व गुण कहे।

२ ' कालकूट जर जरत सुरासुर० ' इति । (क) इस अंतरसे शिवजीको करुणामय, आर्तिहरण, और रामनामकी महिमाके जानने-वालोंमें अग्रगण्य जनाया । (ख) ' जर जरत सुरासुर 'से विषकी विषमता कही । कालकूट ऐसा विष था कि देवता, दैत्य कोईभी न सह सके, औरोंकी क्या चली ? ' बिष पान 'से सामर्थ्य आदि दिखाया कि वह विकराल कालकूटभी आपका कुछ न कर सका । यथा ' बिषम गरल जेहि पान किय ' ' जात जरे सब लोक बिलोकि तिलोचन सो बिष लोकि लियो है । पान कियो बिष भूषन भो करुनाबरुनालय साई हियो है ॥ (क०), ' नाम प्रभाउ जान सिव नीको । कालकूट फल दीन्ह अमीको । ' (बा०) । समस्त देवताओंपर दया करके उनके कल्याणके लिये कालकूट पी गये, अत: दीनदयाल और शंभु (कल्याणकर्त्ता) कहा । (ग) ' निज पन लागि ' इति । वह ' पन ' क्या है ? यह कि हम सबमें बडे हैं, सबके रक्षक हैं । भगवान् विष्णुने कहाभी है—"दैवतै-र्मथ्यमानेतु यत्पूर्वं समुपस्थितम् ॥२३॥ तत्त्वदीयं सुरश्रेष्ठ सुराणा-मग्रतो हि यत् । अग्रपूजामिहस्थित्वा गृहाणेदं विषं प्रभो ॥२४॥ वा० रा० । १।४५। " अर्थात् देवताओंके मथन करनेसे जो कुछ पहले निकला वह यह आपके सामने है । वह आपकाही है । क्योंकि आप सब देवताओंमें श्रेष्ठ हैं । यह पहली पूजा यहां स्थित है । हे प्रभो ! इस विषको ग्रहण कीजिए ।

कालकूटकी कथा—श्रीमद्भागवत स्कंध ८, अध्याय ५ से ७ तक यह कथा इस प्रकार है कि ' छठे मन्वन्तरमें नारायण भगवान् अजित नामधारी हो अपने अंशसे प्रकट हुए । देवासुर संग्राममें दैत्य देवताओंका विनाश कर रहे थे । दुर्वासाऋषिको विष्णुभगवान्ने माला प्रसाद दिया था । उन्होंने इंद्रको ऐरावतपर सवार होकर रणभूमिकी ओर जाते देखकर वह प्रसाद उनको दे दिया । इंद्रने प्रसाद हाथीके मस्तकपर रख दिया जो उसने पैरोंके नीचे कुचल डाला । इसपर ऋषिने शाप दिया ' तू शीघ्रही श्रीभ्रष्ट हो जायगा ' । इसका फल तुरंत उन्हें मिला । संग्राममें इन्द्रसहित तीनों लोक श्रीविहीन हुए । यज्ञादिक धर्मकर्म बंद हो गये । जब कोई उपाय न समझ पड़ा तब

इन्द्रादिक देवता शिवजीसहित ब्रह्माजीके पास सुमेरु शिखरपर गये। इनका हाल देखसुनकर वे सबको लेकर क्षीरसागर गये और एकाग्रचित्त हो परमपुरुषकी स्तुति करने लगे और यह भी प्रार्थना की कि 'हे भगवन्! हमको उस मनोहर मूर्त्तिका शीघ्र दर्शन दीजिए जो हमको अपनी इन्द्रियोंसे प्राप्त हो सके। भगवान् हरिने दर्शन दिया। तब ब्रह्माजीने प्रार्थना की कि 'हम लोगोंको अपने मंगलका कुछभी ज्ञान नहीं है, आप उपाय रचिये जिससे सबका कल्याण हो'। भगवान् बोले 'हे ब्रह्मा! हे शम्भुदेव! हे देवगण! वह उपाय सुनो जिससे तुम्हारा हित होगा। अपने कार्यकी सिद्धिमें कठिनाई देखकर अपना काम निकालनेके लिये शत्रुसे मेल कर लेना उचित होता है। जबतक तुम्हारी वृद्धिका समय न आवे तबतकके-लिये तुम दैत्योंसे मेल कर लो। दोनों मिलकर अमृत निकालनेका प्रयत्न करो। क्षीरसागरमें तृण, लता, औषधि और वनस्पति डालकर सिंधु मथो, मंदराचलको मथानी और वासुकीको रस्सी बनाओ। ऐसा करनेसे तुमको अमृत मिलेगा। सागरसे पहले कालकूट निकलेगा, उससे न डरना। फिर रत्नादिक निकलेंगे। इनमें लोभ न करना'। यह उपाय बताकर भगवान् अन्तर्धान हो गए।

इन्द्रादि देवता राजा बलिके पास सन्धिकेलिये गये। समुद्र मथकर अमृत निकालनेकी इन्द्रकी सलाह दैत्यदानव सभीको भली लगी। सहमत होकर दानव, दैत्य और देवगण मिलकर मन्दराचलको उखाड ले चले। राहमें थक जानेसे पर्वत गिर पड़ा। उनमेंसे बहुतेरे कुचल गये। इनका उत्साह भंग हुआ देखकर भगवान् गरुड़पर पहूँच गये और लीलापूर्वक एक हाथसे पर्वतको उठाकर गरुड़पर रखकर उन्होंने उसे क्षीरसागरमें पहूँचा दिया। वासुकीको अमृतमें भाग देनेका लालच देकर उनको रस्सी बननेको उत्साहित किया और मंद्राचलको जलपर स्थित रखनेके लिए भगवान्ने कच्छपरूप धारण किया। जब बहुत मथनेपरभी अमृत न निकला तब अजित् भगवान् स्वयं मथने लगे।

पहले कालकूट निकला जो सब लोकोंको असह्य हो उठा। तब भग-वान्का इशारा पाकर सब मृत्युञ्जय शिवजीकी शरण गये और जाकर

उनकी स्तुति की । भगवान्‌ने कहा कि ' आप सब देवताओंमें अग्रगण्य हैं । पहली वस्तु जो निकली उसपर आपकाही हक और हिस्सा है । अतएव इस अग्रपूजा (कालकूट) को आप ग्रहण कीजिये । भगवान् शंकर करुणावरुणालय इनका दुःख देखकर सतीजीसे बोले कि ' प्रजापति महान् संकटमें हैं । इनके प्राणोंकी रक्षा करना हमारा कर्त्तव्य है । मैं इस विषको पी लूंगा जिससे इनका कल्याण हो । ' यथा ' तस्मादिदं भुञ्जे प्रजानां स्वस्तिरस्तु मे । ' (भा० ८।७।४०)

भवानीने इस इच्छाका अनुमोदन किया । शेषदत्तजीने अपने खर्रेमें इस मौकेपर ' श्रीरामनामाखिलमंत्रबीजं संजीवनं चेद्धृदये प्रविष्टम् । हालाहलं वा प्रलयानलं वा मृत्योर्मुखं वा विषतां कुतो भयम् ॥' यह श्लोक देकर यह बताया है कि श्रीशिवजी यह कहकर कालकूटको पी गये । नन्दीपुराणमें श्रीनन्दीश्वरनेभी कहा है की श्रीरामनामके परम महत्वके प्रसादसे शिवजीने हालाहल पान कर लिया । यथा ' शृणुध्व भो गणास्सर्वे रामनाम परंबलम् । यत्प्रसादान्महादेवो हालाहलमयीं पिबेत् ॥ जानाति रामनाम्नस्तु परत्वं गिरिजापतिः । ततोऽन्योन विजानाति सत्यं सत्यं वचो मम ॥' अर्थात् हे सब गणो ! रामनामके परम बलको सुनो, जिसके प्रसादसे महादेवजीने हालाहलमय कालकूटको पी लिया । श्रीरामनामका परत्व जैसा गिरिजापति जानते हैं वैसा और कोई नहीं जानता । मेरा वचन सत्य है, सत्य है । गोस्वामीजीकाभी यही मत है । यथा ' नाम प्रभाउ जान सिव नीको । कालकूट फल दीन्ह अमीको ॥ ' ' प्रजापति महान् संकटमें हैं । इनके प्राणोंकी रक्षा करना हमारा कर्त्तव्य हैं ' येही ' निज पन लागि ' सूचक वचन हैं ।

विषपानका आध्यात्मिक रहस्य—श्री वासुदेवशरणजी अग्रवाल एम. ए., एल्एल्. बी. लिखते हैं कि ' आध्यात्मिक तत्त्वोंके परिज्ञानके लिये भौतिक प्रयोगोंका आश्रय लिया जाता है । देवोंके अमृतपानके— साथ शिवके विषपानका घनिष्ठ संबन्ध है । जबतक शिवजी विष पीकर उसकी दाहक ज्वालाओंको शान्त नहीं कर देते तबतक देवता

अमृतका पान नहीं कर सकते। देखना चाहिये कि 'विष' क्या है? और शिवजीने विषको कंठमेंही क्यों रख लिया? निघंटुमें जलके १०१ नाम दिये गये हैं। उनमें दो शब्द 'विष' और 'अमृत' भी हैं। ये दोनों जलके पर्यायवाची हैं। लौकिक संस्कृतके कोषोंमेंभी विष और अमृत जलके पर्यायरूपमें पाये जाते हैं। बात यह है कि वीर्य या रेत जलकाही रूप है। रेतही कामका अधिष्ठान है। रेतसे जो शक्ति बनती है उसके दो रूप हैं। दैवी और आसुरी या अमृतरूप और विषरूप। उस शक्तिसे जब मनुष्य आत्मविनाशकी ओर प्रवृत्त होता है तब वह उसके विषरूपसे दग्ध होता है। उसीको संयमद्वारा शान्त बनाकर उसके सौम्यरूपसे जब वह अमृततत्वकी ओर बढता है तभी मानो जल या रेततत्वसे अमृतका आस्वादन करता है। विष और अमृत दोनों एकही समुद्रसे जन्म लेते हैं। विषके साथ यदि अमृतभी रहे तो विषकाही काम करेगा। अतएव विषके प्रकट होनेपर देवोंको यह आवश्यकता प्रतीत हुई कि कोई इसे पचाकर शान्त कर दे तो हमारे लिये अमृतपानका मार्ग सरल हो जाय। शिवजीके अतिरिक्त और किसी देवमें यह सामर्थ्य न था। शिवजीके विषपानका कारण उनका योग है। शिवजी योगीश्वर हैं। उन्होंने छओ चक्रोंपर पूर्ण अधिकार पा लिया है। अतएव शक्तिका जो विषाक्तरूप है उसको पचाने या भस्म करनेका सामर्थ्यभी उनको प्राप्त है। हम यह कह चुके हैं कि पांच चक्रोंका भेदन करलेनेकेबाद योगी पुनः कामके अधीन नहीं होता है। काम सर्वथा योगीके वशमें हो जाता है। अर्थात् वह कामके विकारोंको पूर्णतः जीत लेता है। जबतक यह स्थिति प्राप्त नहीं होती तबतक साधनाके मार्गमें निरंतर कामकी बाधाएँ आती हैं। काम या जलका विषस्वरूप जबतक योगीको जलाता रहता है तबतक वह अमृतका निर्बाधपान नहीं कर पाता है। शिवस्वरूप होकरही योगी कामसे अतीत हो जाता है। कामसे अतीत योगीही विषको पूरीतरह अपने वशमें कर पाता हैं। विषको जिसने अपने लिए निरापद् बना लिया है उन्हीं देवोंको अमृत पानकी सुविधा और सामर्थ्य प्राप्त होता है। विषको कंठ या पांचवें चक्रमें स्थापित करनेका रहस्य

यह है कि पांचवें चक्रमें आकरही योगी निर्भय और निरामय बनता है। यदि विष कंठसे नीचे रहे अर्थात् योगीकी साधना विशुद्धचक्रसे नीचे हो तो विष अपना प्रभाव अवश्य दिखलाता है। देवासुरोंके या विष और अमृतके आध्यात्मिक युद्धमें विषपानका सामर्थ्य रखनेवाला योगीश्वरही स्वयं विजयी होकर सबको विजय प्राप्त कराता है। '*

३ 'दारुन दनुज जगत दुखदायक०' इति। दनुज, दारुण और जगत दुःखदायकसे त्रिपुरासुरका बल कहकर 'जारयो एकही बान' से शंकरजीका सामर्थ्य दिखाया कि ऐसे विकट योद्धाकोभी एकही बाणसे जला डाला।

'त्रिपुर' इति। भा। ७। १०। में लिखा है कि एक बार जब देवताओंने असुरोंको जीत लिया तब वे महामायावी शक्तिमान् मयदानवकी शरणमें गये। मयने अपनी अचिन्त्य शक्तिसे तीन विमान लोहे, चाँदी और सोनेके ऐसे बनाये कि जो तीन पुरोंके समान बड़े बड़े और अपरिमित सामग्रियोंसे भरे हुए थे। इन विमानोंका आनाजाना नहीं जाना जांता था। महाभारतसे पता चलता है कि ये तीनों पुर (जो विमानके आकारके थे) तारकासुरके तारकाक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्माली नामक तीनों पुत्रोंने मयदानवसे अपने लिये बनवाये थे। इनमेंसे एक नगर (विमान) सोनेका स्वर्गमें दूसरा चाँदीका अन्तरिक्षमें और तीसरा लोहेका मर्त्यलोकमें था। ऋग्वेदके कौषीतमें और ऐतरेय ब्राह्मणोंमें त्रिकका वर्णन है। यथा '(असुराः) हरिणीं (पुरं) हादो दिविचक्रिरे। रजतां अन्तरिक्ष लोके अयस्मयी-मस्मिन् अकुर्वत।' (कौं० ८। ८, ऐ० १। २३)। अर्थात् असुरोंने हिरण्यमयी पुरीको स्वर्गमें बनाया, रजतमयीको अन्तरिक्षमें और अयस्मयीको इस पृथ्वीलोकमें। तीनों पुरोंमें एक एक अमृतकुंडभी बनाया गया था। इन विमानोंको लेकर वे असुर तीनों लोकोंमें उड़ा करते थे।

---

* नोट—श्री अग्रवालजीके लेखसे योगका महत्व सिद्ध होता है। परंतु प्रेमी पाठकोंने श्री प्रल्हादजी, श्री मीराबाईजी, श्री अंगद भक्तजी, श्री कल्हस्वामीजी इत्यादि अनेक भगवद्भक्तोंके चरित्र पढे हैं। ये लोग योगी न थे, वरंच प्रेमी भक्त थे। इन लोगोंपर विष अपना प्रभाव किंचित्‌भी न दिखा सका, तब भला परमभक्त भगवान् शङ्करजीका कहना ही क्या ?

अब देवताओं से अपना पुराना बैर स्मरणकर मयदानवद्वारा शक्तिमान होकर तीनों विमानोंद्वारा दैत्य उनमें छिपे रहकर तीनों लोकों और लोकपतियोंका नाश करने लगे। जब असुरोंका अत्याचार बहुत बढ़ गया तब सब देवता शङ्करजीकी शरण गये। शङ्करजीने एक ऐसा बाण तीनों पुरोंपर छोड़ा कि जिससे सहस्रशः बाण और अग्निकी लपटें निकलती जाती थीं। उस बाणसे समस्त विमानवासी निष्प्राण हो गिर गये। महामायावी मयने सबको उठाकर अपने बनाये हुए अमृतकुण्डमें डाल दिया जिससे वे सब फिर वज्रसमान पुष्ट हो गये। जब जब शङ्करजी त्रिपुरके असुरोंको बाणसे निष्प्राण करते थे, तब तब मयदानव सबको इसीप्रकार जिला लेता था। शङ्करजी उदास हो गये, तब उन्होंने भगवान्‌का स्मरण किया। भगवान्‌ने यह युक्ति की कि स्वयं गौ बन गये और ब्रह्मा को बछड़ा बनाकर बछड़े सहित तीनों पुरों में जा सिद्धरसके तीनों कूपों का सारा जल पी गये। दैत्यगण खड़े देखते रह गये। वे सब ऐसे मोहित हो गये थे कि रोक न सके। तत्पश्चात् भगवान् ने युद्धकी सामग्री तैयार की। धर्मसे रथ, ज्ञानसे सारथी, वैराग्यसे ध्वजा, ऐश्वर्यसे घोड़े, तपस्यासे धनुष, विद्या से कवच, क्रियासे बाण और अपनी अन्यान्य शक्तियोंसे अन्यान्य वस्तुओंका निर्माण किया। इन सामग्रीयों से सुसज्जित हो शङ्करजी रथपर चढ़े और एकही बाणसे अभेद्य विमानों को भस्म कर दिया। (भा० ७।१०)।

दूसरा आख्यानः—त्रिपुरोंकी उत्पत्ति और नाशका एक आख्यान महर्षि मार्कण्डेयने किसी समय धृतराष्ट्र से कहा था जो दुर्योधन ने महारथी शल्यसे (कर्णपर्वमें) कहा है। उसमें बताया है कि तारकासुरके तारकाक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्माली ऐसे तीन पुत्र थे, जिन्होंने घोर तप करके ब्रह्माजीसे यह वर माँग लिया था कि 'हम तीन नगरों में बैठ कर इस सारी पृथ्वी पर आकाश मार्गसे विचरते रहें। इस प्रकार एक हजार वर्ष बीतनेपर हम एक जगह मिलें। उस समय जब हमारे तीनों पुर मिलकर एक हो जायँ तो उस समय जो देवता उन्हें एक ही बाण से नष्ट कर सके, वही हमारी मृत्यु का कारण हो।' यह वर पाकर उन्होंने मयदानव के पास जाकर उससे तीन नगर अपने तपके प्रभावसे

ऐसे बनानेको कहे कि उनमेंसे एक सोनेका, एक चाँदीका और एक लोहेका हो। तीनों नगर इच्छानुसार आ जा सकते थे। सोनेका स्वर्ग में, चाँदीका अन्तरिक्षमें और लोहेका पृथ्वीमें रहा। इनमेंसे प्रत्येक की लम्बाई चौड़ाई सौ सौ योजन की थी। इनमें आपसमें सटे हुये बड़े बड़े भवन और सड़कें थीं तथा अनेकों प्रासादों और राजद्वारोंसे इनकी बड़ी शोभा हो रही थी। इन नगरोंके अलग अलग राजा थे। स्वर्णमय नगर तारकाक्षका था, रजतमय कमलाक्षका और लोहमय विद्युन्मालीका। इन तीनों दैत्योंने अपने अस्त्रशस्त्रबलसे तीनों लोकों को अपने वशमें कर लियाथा। इन दैत्यों के पास जहाँ तहाँ से करोड़ों दानव योद्धा आकर एकत्रित हो गये। इन तीनों पुरोंमें रहनेवाला जो पुरुष जैसी इच्छा करता, उसकी उस कामनाको मयदानव अपनी मायासे उसी समय पूरी कर देता था। यह तारकासुर के पुत्रोंके तपका फल कहा गया।

तारकाक्षका एक पुत्र 'हरि' था। इसने तपसे ब्रह्माजी को प्रसन्न कर यह बर प्राप्त कर लिया कि 'हमारे नगरोंमें एक बावड़ी ऐसी बन जाय कि जिसमें डालनेसे शस्त्रसे घायल हुए योद्धा औरभी अधिक बलवान् हो जायँ।' इस वरके प्रभावसे दैत्यलोग जिस रूप और जिस वेषमें मरते थे उस बावड़ीमें डालनेपर वे उसी रूप और उसी वेषमें जीवित होकर निकल आते थे। इस प्रकार उस बावड़ी को पाकर वे समस्त लोकों को कष्ट देने लगे। देवताओं के प्रिय उद्यानों और ऋषियोंके पवित्र आश्रमोंको उन्होंने नष्टभ्रष्ट करडाला। इन्द्रादि देवता जब उनका कुछ न कर सके तब वे ब्रह्माजी की शरण गये। ब्रह्माजीकी आज्ञासे वे सब शङ्करजीके पास गये और उनको स्तुति से प्रसन्न किया। महादेवजीने सबको अभयदान दिया और कहा कि तुम मेरे लिये एक ऐसा रथ और धनुषबाण तलाश करो जिनके द्वारा मैं इन नगरों को पृथ्वीपर गिरा सकूँ।

देवताओंने विष्णु, चन्द्रमा और अग्निको बाण बनाया तथा बड़े बड़े नगरोंसे भरी हुई पर्वत, बन और द्वीपोंसे व्याप्त वसुन्धराकोही उनका रथ बना दिया। इंद्र, वरुण, कुवेर और यमादि लोकपालोंको

घोड़े बनाये एवं मनको आधारभूमि बना दिया। इस प्रकार जब (विश्वकर्माका रचा हुआ) वह श्रेष्ठ रथ तैयार हुआ तब महादेवजीने उसमें अपने आयुध रक्खे। ब्रह्मदण्ड, कालदण्ड, रुद्रदण्ड और ज्वर ये सब ओर मुख किये हुये उस रथकी रक्षामें नियुक्त हुए। अथर्वा और अंगिरा उनमें चक्ररक्षक बने। सामवेद, ऋग्वेद और समस्त पुराण उस रथके आगे चलनेवाले योद्धा हुए। इतिहास और यजुर्वेद पृष्ठरक्षक बने। दिव्यवाणी और विद्याएँ पार्श्वरक्षक बनीं। स्तोत्र, वषट्कार और ओंकार रथके अग्रभागमें सुशोभित हुये। उन्होंने छहों ऋतुओंसे सुशोभित संवत्सरको अपना धनुष बनाया और अपनी छायाको धनुषकी अखण्ड प्रत्यंचाके स्थानोंमें रक्खा। ब्रह्माजी उनके सारथी बने। भगवान् शंकर रथपर सवार हुए और तीनों पुरोंको एकत्र होनेका चिंतन करने लगे। धनुष चढ़ाकर तैयार होतेही तीनों नगर मिलकर एक हो गये। शंकरजीने अपना दिव्य धनुष खींचकर बाण छोड़ा जिससे तीनों पुर नष्ट होकर गिर गये। इस तरह शंकरजीने त्रिपुरका दाह किया और दैत्योंको निर्मूलकर त्रिलोकका हित किया।

बाल्मीकीयसे पता चलता है कि दधीचि महर्षिकी हड्डियोंसे पिनाक बनाया गया था और भूषणटीकाकारका मत है कि भगवान् विष्णु बाण बने थे जिससे त्रिपुरासुरका नाश हुआ। यही धनुष पीछे राजा जनकके यहाँ रख दिया गया था। दधीचिकी हड्डियोंसे दो धनुष बने, शार्ङ्ग और पिनाक। वाल्मीकीय रा० बा० सर्ग ७५ के आधारपर कहा जाता है कि विष्णुभगवान्ने शार्ङ्गसे असुरोंको मारा और शंकरजीने तीनों पुरोंको जलाया।

पाठपर बिचार :– 'जार्‌यो' पाठ उत्तम है। भा० ७।१०।६८-७० में कहा है कि '**शरं धनुषि सन्धाय मुहूर्तेऽभिजितीश्वरः ।६७। ददाह तेन दुर्भेद्या हरोऽथ त्रिपुरो नृप । दिवि दुन्दुभयो नेदुर्विमानशतसंकुलाः ।६८। एवं दग्ध्वा पुरस्तिस्रो भगवान् पुरहा नृप** ।७०।' इन उद्धरणोंमें 'ददाह' और 'दग्ध्वा' शब्द आये हैं जो 'जार्‌यो' पाठका समर्थन करते हैं।

४ (क) 'जो गति अगम०' इति। कैवल्यपद, सुगति, परमपद और गति ये शब्द शङ्करजीके सम्बन्धमें प्रयुक्त हुये हैं। अतः ये पाँचो

पर्यायवाची हैं। यथा, 'जोग कोटि करि जो गति हरि सों मुनि माँगत सकुचाहीं। वेद बिदित तेहि पद पुरारिपुर कीट पतंग समाहीं।४।', 'सुख संपति मति सुगति सुहाई। सकल सुलभ संकर सेवकाई।६।', 'जो गति अगम महामुनि गावहिं। तुअ पुर कीट पतंगउ पावहिं।७।', 'देव ज्ञान वैराग्य धन धर्म कैवल्य सुख सुभग सौभाग्य सिव सानुकूलं।१०।' और 'लहत परमपद पय पावन जेहि चहत प्रपंच उदासी।२२।'।

(ख) कैवल्य परमपद दुष्प्राप्य है, यथा 'अति दुर्लभ कैवल्य परमपद। कहत संत पुरान निगम आगम बद।' पद ३० (क) देखिये।

(ग) 'महामुनि दुर्लभ', यथा 'जोग कोटि करि जो गति हरि सों मुनि मांगत सकुचाहीं।४।' यहाँ प्रथम निदर्शना अलंकार है।

(घ) 'मरनकाल अपने पुर' से जनाया कि प्राणीको मरते समय मुक्ति देना और वह भी काशीपुरीहीमें, यह अधिकार आपको प्राप्त है, जैसा कि श्रीरामतापिनी उपनिषद्‌की श्रुतिसे स्पष्ट है। पुनः इससे यहभी सूचित होता है कि काशीवासी होनाभी आवश्यक नहीं है, केवल मरणसमय वहाँ होनेसेही यह सद्‌गति प्राप्त हो जाती है। पद ४ टि० ४ देखिये।

(ङ) 'सदाशिव' को पृथक् पृथक् दो शब्द मान लेनेसे भाव यह होगा कि निरंतर जीवोंको सद्‌गति प्रदान करते हैं। गति देनेमें 'सदाशिव' नाम दिया।

५ 'देत सदाशिव सबहिं समान' पदके आदिमें 'को जाचिए०' कहकर अब यहाँ दातृत्वगुण दिखाते हैं। 'सबहिं' अर्थात् ऊँच नीच पशु, पक्षी, कीड़े, पतंगे आदि सभी जीव जन्तुओंको। यथा 'जो गति अगम महामुनि गावहिं। तव पुर कीट पतंगहु पावहिं।', 'समान' अर्थात् एकसी। यह नहीं कि ऊँचेको और, नीचेको और, पशु कीट पतंगको और, मनुष्यादिको और। इससे समद्रष्टा जनाया। 'जो' और 'सोइ' शब्दभी इसी सिद्धान्तकी पुष्टि करते हैं, यथा

'जासु नाम बल संकर कासी। देत सबहिं सम गति अबिनासी' (बा०),'अहं भवन्नाम गृणन् कृतार्थो वसामि काश्यामनिशं भवान्या मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽहं दिशामि मंत्रं तव रामनाम ॥' (अध्यात्मरामायणे) अर्थात् हे राम! मैं भवानीसहित निरंतर काशीमें वास करते हुए आपके नामको जपते हुए कृतार्थ होता रहता हूँ और वहां मरनेवालोंको उनकी मुक्तिकेलिये आपके रामनामात्मक मंत्रको देताहूँ।

६ (क) 'सेवत सुलभ' इति। सौलभ्य यह है कि मदारके पत्ते, बेलके पत्ते, धतूरेके फल फूल, वा अक्षत (चावल) और जलमात्र चढ़ा देनेसे इहलोक सुख तथा परलोक दे देतेहैं। यथा 'सेवा सुमिरन पूजिबो पाताखत थोरे'। कवितावली उत्तरकांडके निम्न उद्धरणोंसे मिलान कीजिये—

'रति सो रवनि सिंधु मेखला अवनिपति,
　　औनिप अनेक ठाढ़े हाथ जोरि हारि कै।
संपदा समाज देखि लाज सुरराजहू के,
　　सुख सब बिधि बिधि दीन्हें हैं सँवारिकै॥
इहां ऐसो सुख सुरलोक सुरनाथपद,
　　जाको फल तुलसी सो कहैगो बिचारिकै।
आकके पतौआ चारि फूल कै धतूराके द्वै,
　　दीन्हें ह्वै हैं बारक पुरारि पर डारिकै॥१६४॥'
'बारिबुंद चारि त्रिपुरारि पर डारिए तौ,
　　देत फल चारि लेत सेवा साँची मानि सो॥१६१॥'
'पात द्वै धतूरे के दै भोरे कै भवेस सों
　　सुरेसहू की संपदा सुभाय सों न लेत रे॥१६२॥'
'स्यंदन गयंद बाजि राजि भले भले भट,
　　धन धाम निकर करनिहूं न पूजै क्वै।
बनिता बिनीत पूत पावन सोहावन औ,
　　बिनय बिबेक बिद्या सुलभ शरीर ज्वै॥

इहाँ ऐसो सुख परलोक सिवलोक ओक,
ताको फल तुलसी सो सुनौ सावधान ह्वै ।
जाने बिनु जाने कै रिसाने केलि कबहुँक,
सिवहिं चढ़ाये ह्वै हैं बेल के पतौआ द्वै ।।१६३।।'

६ (ख) 'उदार कल्पतरु' इति। ऊँच नीच जोभी कल्पवृक्षके तले जाता है उसे वह कल्पतरु, जो कुछभी वह प्राणी मनमें इच्छा करता है, सब देता है। इसी तरह आपभी याचकका अभीष्ट पूरा करते हैं। अतः कल्पतरु कहा। पुनः, 'उदार कल्पतरु' विशेषण देकर जनाया कि आप उससे श्रेष्ठ हैं। वह बुरी भली सभी वस्तु देता है। परंतु आप हानिकारक वस्तु नहीं देते। कहावत है कि किसी मनुष्यने कल्पवृक्षके नीचे समस्त अभीष्ट सुख प्राप्त होनेपर विचारा कि कहीं सिंह न आकर खा ले। बस, विचार आतेही सिंह आया और उसे खा गया। शिवजीरूपी कल्पवृक्षमें यह बात नहीं है। इसीसे यहां उदार कहकर आगे 'परम सुजान' भी कहते हैं। 'परम सुजान' कहकर जनाया कि दोनोंही हृदयकी बात जान लेते हैं, परंतु कल्पवृक्ष 'सुजान' है और आप 'परम सुजान' हैं। भाव यह कि कल्पवृक्ष हृदयकी बात जानकर उसकी पूर्तिमात्र कर देता है। यह नहीं विचारता कि इससे माँगनेवालेका अनिष्ट होगा या इष्ट और अनिष्ट फलभी दे देता है। परन्तु शङ्करजी अनिष्ट फलवाली वस्तु माँगनेसेभी नहीं देते। बैजनाथजी लिखते हैं कि 'परम सुजान' से जनाया कि पूजा बने या न बने उसे नहीं देखते, केवल उसके भावको देख प्रसन्न हो जाते हैं।

(ग) 'पार्वतीपति' इति। पार्वती पर्वतकी कन्या हैं। पर्वत परोपकारी होते हैं। यथा **'संत बिटप सरिता गिरि धरनी। परहित हेतु सबन्हकी करनी।'** अतः पार्वतीजीभी परोपकारिणी हुईं। आपने शङ्करजीसे श्रीरामतत्व, श्रीरामचरित, श्रीरामनाममाहात्म्य इत्यादि पूछपूछकर जगत्‌का बड़ा उपकार किया है। यथा **'तुम्ह रघुबीर चरन अनुरागी। कीन्हिहु प्रश्न जगत हित लागी।।'** (बा०)। 'पार्वती-पति' कहकर शङ्करजीको परमपरोपकारी जनाया।

(घ) पार्वतीपति उपमेय, कल्पवृक्ष उपमान और उदारता धर्म है। 'समान' वाचक लुप्त है। अतः यहाँ वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है। वीरकविजी लिखते हैं कि यहां व्यंग्यार्थ से व्यतिरेककी ध्वनि है। कल्पवृक्षका मिलना दुर्गम है और आप सेवा करतेही भक्तों को सुलभ होते हैं। इससे श्रेष्ठ कल्पतरु हैं।

७ ' देहु कामरिपु रामचरनरति० ' इति। तुलसीदासजी श्रीरघुनाथजी के चरणोंमें प्रेमका वरदान माँगते हैं। जिसके पास जो चीज़ होती है वही माँगी जाती है। अतएव यहाँ तक अन्तराओंमें श्रीशिवजीमें रामप्रेम और दानमें उदारता दिखाकर तब वर मांगते हैं। कालकूटभक्षण, काशी में जीवों को सद्गतिकी प्राप्ति इत्यादि सबके कारण रामभक्ति, रामनाम, रामभजनही हैं। यह ऊपर उदाहरणों द्वारा दिखा दिया है। कामके रहते भजन नहीं हो सकता। इसीसे भजन के लिये जहाँ तहाँ इसके त्याग का उपदेश दिया गयाहै। यथा ' **काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरकके पंथ। सब परिहरि रघुबीरहिं भजहु भजहिं जेहि संत ॥** ' [सुं०], ' **जहाँ काम तहँ राम नहिं जहां राम नहिं काम। तुलसी कबहुँ कि होत हैं रवि रजनी इक ठाम ॥** ', '**क्रोधिहिं सम कामिहि हरि कथा। ऊसर बीज बये फल जथा ॥** ' अतः शिवजी से प्रार्थना करते हैं कि आप कामरिपु हैं। आपसे काम डरता है। अतः आप उससे हमारी रक्षा करें।

पुनः, कामदेव त्रैलोक्यविजयी है। यथा ' **काम कुसुम धनु-सायक लीन्हे। सकल भुवन अपने बस कीन्हे ॥** ' (बा०), ' **एको पुत्रस्त्रिभुवनविजयी मन्मथो दुर्निवारः ।** ' (उद्भटसागरे ३-१३)। उसको भी आपने भस्म कर दिया। इस प्रकार 'कामरिपु' सम्बोधनसे आपका अद्भुत सामर्थ्य दिखाकर यह सूचित किया कि ऐसे समर्थ होने से आप हमारी रक्षा उससे अवश्य कर सकेंगे। इस पद के प्रारम्भ में ' को जाचिये संभु तजि आन ' कह कर यहाँ तक उसके कारण कहे।

कुछ पुस्तकोंमें ' देहु रामपदनेहु कामरिपु ' पाठ है। यदि उस

पाठको शुद्ध मानें तो 'देहु रामपदनेहु' कह कर 'कामरिपु' कहने का भाव यह होगा कि रामपद-प्रेम दीजिए और उसकी रक्षा का सामर्थ्यभी दीजिये। 'देहु कामरिपु' प्रथम कहने से यह भावभी प्रकट होता है कि कामने हमको बहुत भयभीत कर रखा है। उससे इतना घबड़ाये हुये हैं कि पहले 'कामरिपु' ही शब्द मुँह से निकल पड़ा। तात्पर्य्य कि कवि आतुर है कि शीघ्र उससे रक्षा की जाय। विशेष पद ७ में देखिये।

पुनः, 'कामरिपु' सम्बोधन देकर जनाया कि मुझे निष्काम रामभक्ति की चाह है। किसी प्रकारकी कामना कभी मेरे हृदयमें न उठे, ऐसी कृपा कर दीजिये। आप कामरिपु हैं। अतः निष्काम भक्ति देनेको समर्थ हैं।

८ 'कृपानिधन' का भाव कि हममें कुछभी भक्तिभाव साधन आदि पुरुषार्थ नहीं है जिसका हम भरोसा कर सकें। एकमात्र आप की कृपाकाही अवलम्ब है। आप अपने कृपालु स्वभावसे अपनी ओरसे कृपा कीजिये। पुनः भाव कि बिना आपकी कृपाके रामभक्ति मिलती नहीं। यथा '**जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी। सो न पाव मुनि भक्ति हमारी॥**" (बा०)। अतएव 'कृपानिधान' कहकर कृपा चाहते हैं। जो कृपाका निधान है वही कृपा कर सकताहै।

आदिमें सबप्रकार समर्थ कहा, और अन्तमें कृपानिधान। कृपा गुणमें भी वही भाव है कि एकमात्र हमही जीवका दुःख हरने को समर्थ हैं। अतएव भाव यह है कि तब मैं और किसके पास जाऊँ? आपही विषय विषसे और काम क्रोध लोभरूपी त्रिपुरसे मेरी रक्षा कीजिये और रामभक्ति दीजिये।

४ (४) राग धनाश्री* (भा०,बे०)

दानि[१] कहूं[२] संकर से[३] नाहीं।

दीनदयाल दिबोई[४] भावत[५] जाचक सदा सोहाहीं॥१॥

---

* 'राग धनाश्री' शब्द ६६ में नहीं हैं। ६६ में यह पद अगले पद ५ के पश्चात् है जो 'राग कानरा' का है। १ दानि—६६, भा०, बे०, प्र०। दानी—५१, आ०, शि०, ७४। २ कहूँ—६६, भा०, बे०, ड़ु०।

मारि कै मारू थप्यो जग मैं[6] जाकी प्रथम रेख भट माहीं।
ता ठाकुर को रीझि निवाजिबो[7] कह्यो क्यों परत मोहि[8] पाहीं ॥२॥
जोग कोटि करि जो गति हरि सों मुनि मांगत सकुचाहीं।
बेद बिदित तेहि पद पुरारिपुर कीट पतंग समाहीं ॥३॥
ईस उदार उमापति परिहरि अनत जे जाचन जाहीं।
तुलसिदास ते मूढ़ माँगने कबहुं न पेट अघाहीं ॥४॥

शब्दार्थ—दानी = जो दान दे। दान = वह धर्म्मार्थ कर्म जिसमें श्रद्धा या दयापूर्बक दूसरेको धनादि दिया जाता है। खैरात। से = सदृश, समान। दिबोई = (दिबो + ई) यह बुन्देलखंडी मुहावरा है। (दीनजी) देनाही। भावत = अच्छा लगता है। जाचक (याचक) = माँगनेवाला 'को जाचिए०' पद ३ देखिये। सोहाहीं=अच्छे वा प्रिय लगते हैं। मारू (मार) = कामदेव। थप्यो (संस्थापन) = स्थापित करना, ठहराना, प्रतिष्ठित करना, प्रभावयुक्त कर देना। मैं में। जा = जिस, रेख = गणना, गिनती। भट = योधा। माहीं (मध्य, माँझ, माँह) = में। ता = उस। ठाकुर = मालिक, सर्वशक्तिमान स्वामी। यह ठेठ हिन्दीका शब्द है। रीझि (सं. रंजन) = प्रसन्न होकर। निवाजिबो = निवाजिश करना। निवाजना (फ़ारसी शब्द 'निवाख्तन' से बना है) = कृपा करना। क्यों = क्योंकर, किस प्रकार, कैसे। कह्यो परत = कहा जा सकता है। परना (पड़ना) = जाना, सकना, जा सकना। मोहि = मुझसे। पाहिं (प्रा० पाह, पास) = (किसीके) प्रति; से। यथा '**कोउ न बुझाई कहै नृप पाहीं। ये बालक अस हठ भल नाहीं**' (बा०)। जोग (योग) = उपाय, प्रयोग। कोटि =

कहुं ७४, आ० (डु०)। ३ से–६६, ह० डु०, भ०, १५। सम–भा०, बे०, ५१, आ०, ७४। सो–प्र०, ज०। ४ दिबोई–६६, भा०, बे०, ५१, ज०, आ०। देबोई–प्र०, ७४; ह०। ५ भावत–६६, भ०। भावै–औरोंमें। ६ मैं–६६ दी०, प्र०। में–भा०, बे०, डु०, बै०, वि०, भ०। मै–ह०। ७४, मु० में नहीं है। ७ निवाजब–७४। ८ मोहि–६६, पे०, भ०, ज०,। प्र०। मो–भा०, ह०, ५१, ७४, आ०(भ०)।

करोड़ों, अनेक। गति = पद ३ देखिये। सों = से। सकुचाहीं = सकुचाना, हिचकना। तेहि = उस। पद = गति, धाम, लोक। यथा 'होइ प्रसन्न दीन्हेउ सिवपद निज। ऊपर 'जो गति' और यहां 'तेहि पद' कह-कर 'गति' और 'पद' को पर्य्यायवाची जनाया। पुरारि = त्रिपुरासुरके अरि (शत्रु); शिवजी। पुरारिपुर = काशी। कीट = रेंगनवाले कीड़े, पतंग, उड़नेवाले छोटे छोटे जंतु। समाहीं = समाते हैं। समाना, प्रवेश करना; जाना। ईस (ईश) = समर्थ, स्वामी, ईश्वर। यह शब्द गोस्वामीजीने बहुत स्थलोंपर प्रायः शिवजीकेलियेही प्रयुक्त किया है, यथा 'एहि बिधि भयो सोच बस ईसा।' (बा०), 'इस सीस बससि त्रिपथ लससि०' (२०), 'ईस सीस पर बिभासि०' (१७), इत्यादि। परहरि = छोड़कर। अनत = अन्यत्र, दूसरी जगह। जाचन = माँगने। ते = वे। मूढ़ = मूर्ख। माँगने = मंगन, मँगतां, माँगनेवाले, भिक्षुक। कबहुँ = कभीभी। पेट अघाहीं = पेट भरना, तृप्त होना, भरपेट भोजन मिलना, दरिद्रताका छूट जाना। यह ठेठ हिन्दी मुहावरा है। अघाना, तृप्त होना, मनका भर जाना, इच्छा पूर्ण होना।

पद्यार्थ :—श्रीशंकरजी सरीखे दानी कहींभी नहीं हैं। वे दीनोंपर बिना कारण दया करते हैं। उन्हें देनाहीं भाता है, याचक उनको सदा अच्छे लगते हैं। जिसकी योद्धाओंमें प्रथम गणना है उस कामदेवको मारकर अर्थात् भस्म करके (जिसने फिर) उसे जगत्में (पूर्ववत्) स्थापित कर दिया, उस स्वामीका रीझकर कृपा करना मुझसे क्योंकर कहा जा सकता है? करोड़ों प्रकारके (योग, यज्ञ, जप, तप, आदि) उपाय करके (भी) मुनि लोग भगवान् विष्णुसे जिस गतिको माँगते सकुचाते हैं, उसी वेदविख्यात् धाममें पुरारि (महादेवजी) के पुर (काशी) के कीड़े पतंगे समाते चले जाते हैं, अर्थात् प्रविष्ट होते हैं। यह वेदोंमें प्रसिद्ध है। तुलसीदासजी कहते हैं कि (ऐसे) समर्थ, महादानी, उमाजीके पति महादेवजीको छोड़-कर जो अन्यत्र माँगने जाते हैं, उन मूर्ख भिखमंगोंका पेट कभीभी नहीं भर पाता। अर्थात् वे सदा कंगालही बने रहते हैं। उनको टुकड़े टुकड़ेके लाले

पड़े रहते हैं। भाव कि यदि वे शंकरजीसे माँगते तो सदाकेलिये अयाचक बन जाते। फिर कभी किसीसे माँगनेकी जरूरत नहीं पड़ती।

पूर्व पद ३ में कहा था कि 'को जाचिये शंभु तजि आन' इस-पर यह कह सकते हैं कि 'औरभी तो देवता, भगवान् दाता, इत्यादि हैं। उनसे जाकर क्यों नहीं माँगते ?' इसपर कहते हैं कि 'दानि कहूं शंकर से नाहीं'। अर्थात् ऐसा कोई दानी हैं ही नहीं तव जाकर क्या करें ? मिलान कीजिये।

'दानी जो चारि पदारथको त्रिपुरारि तिहूं पुरमें सिर टीको।
भोरो भलो भले भायको भूखो भलोई कियो सुमिरे तुलसीको ॥
ता विनु आसको दास भयो कबहूं न मिट्यो लघु लालच जी को।
साधो कहा करि साधन तैं जो पै राधो नहीं पति पारवतीको ॥' क०॥

टिप्पणी:—१ (क) 'दिबोई भावत'। भाव कि यह उनकी स्वभावसिद्ध आदत है। उन्हें देनाही अच्छा लगता है। देनेसे कभी अघाते नहीं। इससे यहभी जनाया कि उन्हें यह चाह कभीं नहीं होती कि माँगनेवाला हमें कुछ पूजा चढ़ावे। माँगे भर, देनेको तो आप सदा तत्परही रहते हैं। यथा 'चाहै न अनंगअरि एकौ अंग मांगने को देबोई पै जानिये सुभाव सिद्ध वानिसो।' (क०)।

(ख) 'सदा सोहाहीं' इति। भाव कि (१) औरोंको समय समयपर सुहाते हैं और इनको सदा सुहाते हैं। इसीसे यह भी ज्ञात हुआ कि इनके पास याचकोंकी भीड़ सदा लगी रहती है। यथा 'जिमि उदारगृह जाचक भीरा'। इसीसे आगे 'उदार' भी कहा है। (२) औरोंको याचकोंकी भीड़ देख अंकुस लगता है, (बार बार माँगनेवाले मँगतापर दानी प्रायः रुष्ट हो जाते हैं) पर इनको उनकी भीड़ और उनका माँगना अच्छा लगता है। ये उनको देखकर प्रसन्न होते हैं। (३) और दातालोंग कुछ न कुछ स्वार्थ (यश, कल्याण इत्यादि) के लिये दान देते हैं, इससे स्वार्थ सिद्धिके पश्चात् उनको याचक नहीं सुहाते और आप तो निःस्वार्थ दान देते हैं। आपका यह स्वभावही है। अतः आपको सदा सुहाते हैं। इस तरह यहाँ शंकरजीका विलक्षण दातृत्वगुण दिखाया।

२ 'मारिकै मार थप्यो जगमें जाकी प्रथम रेख०' इति। (क) श्रीरामचरितमानस (बालकांड, दोहा ८२ से ८८ तक) में इसकी कथा है। कामदेवने जब शिवजीके मनमें क्षोभ उत्पन्न कर दिया और उनकी समाधि डगी, तब उन्होंने कोप करके अपना तीसरा नेत्र खोल कामदेवको भस्म कर दिया। यथा 'चितवत काम भयेउ जरि छारा'। यह समाचार पा उसकी स्त्री रतिने सिर पीटती, विलाप करती आपके पास आ हाथ जोड़कर विनती की। उसपर करुणा करके आपने उसको अद्भुत वरदान देकर कामदेवको पुनः (बिना शरीरकेही) प्रभावशाली बना दिया। यथा' **प्रभु आसुतोष कृपाल सिव अबला निरखी बोले सही॥**
अब ते रति तव नाथ कर होइहि नाम अनंग।
बिनु बपु ब्यापिही सबहि पुनि सुनु निज मिलन प्रसंग॥'

यही भाव कविने यहाँ 'थप्यो जग मैं' से सूचित किया है। जिसने शत्रुता की उसकी स्त्री तथा उसपर तुरंतही इतनी कृपा! शत्रुकोही वरदान! बलिहारी, बलिहारी! क्यों न हो! '**सासति करि पुनि करहिं पसाऊ। नाथ प्रभुन्ह कर सहज सुभाऊ॥**'

(ख) 'प्रथम रेख भट माहीं' इति। पद ३ टि० ७ देखिये। पुनः, काम क्रोधादिका वर्णन जहां आता है वहां प्रायः इसका नाम प्रथम आता है। यथा '**काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरकके पंथ।**', '**तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ।**', '**काम क्रोध मद लोभ न जाके।**', और '**मिले रहैं मार्‍यो चहैं कामादि सँघाती**', इत्यादि। पुनः, योंभी कह सकते हैं कि कामक्रोधादि भट हैं। यथा '**सेनापति कामादि भट दंभ कपट पाखंड।**' (३०)। इनमेंसे कामही सबसे प्रथम गिना जाया करता है। ये सब भट जगत्को वशमें किये हुए हैं। इनमें काम सबका सरदार है; सो इसकोभी अपराध करनेपर शंकरजीने भस्म कर दिया ऐसा आपका सामर्थ्य है।

मदनदहनका आध्यात्मिक रहस्य और उससे शिक्षा—आरोग्य, धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका मूल कारण कामदहन अर्थात् ब्रह्मचर्यपालन या जननेन्द्रियनिग्रह है। यह कामोपभोगकी प्रवृत्ति बड़ीही प्रबल है। काम

बड़े बड़े ऋषियों, मुनियोंकोभी क्षुभित कर देता है। गीतामेंभी कामकी प्रबलताका प्रमाण मिलता है। इसका पूर्ण निग्रह शिवजीके तृतीय नेत्र खुलनेसेही होता है यह शिवजीका तृतीय नेत्र सभी मनुष्योंके अभ्यन्तरमें अप्रकट और सुप्तरुपसे स्थित है। कामका पूर्णरूपसे निग्रह करनेकेलिये इस तृतीय नेत्रका विकास कर उसे जागृत करना होगा। अपनेको शरीर, प्राण, मन, चित्त, अहंकार और बुद्धि आदि न मानकर, इनसे परे जो शुद्ध चैतन्य है उसीको अपना असली रूप जानकर उसमें नित्य स्थित रहनाही तृतीय नेत्रको खोलना है। इस ज्ञानचक्षुके उदय होनेपर काम, जो कि प्रकृतिका एक गुण है, आपही शान्त हो जायगा; क्योंकि प्रकृतिका प्रभाव शुद्ध चैतन्यपर नहीं पड़ सकता। गीतामेंभी लिखा है कि अपनेको सबसे श्रेष्ठ आत्मा मानकर कामका दमन करे। (३।४३)। ऐसी आत्मभावनाका दीर्घकालतक मनन करनेसे और व्यवहारमेंभी इसी भावनाका स्मरण रखकर तदनुसार आचरण करनेसे दिव्य ज्ञानचक्षुका विकास होता है। जो कोई इस दिव्य ज्ञानचक्षुद्वारा सर्वत्र अखंड, एकरस, महाचैतन्यको अपनेमें और दूसरोंमें परिपूर्ण देखेगा, वही कामपर विजय प्राप्त कर सकेगा। चैतन्यके प्रकाशके सामने जड़ प्रकृतिका तम ठहर नहीं सकता। संतानके हेतुसे ऋतुकालमें स्वस्त्रीसमागम गृहस्थके लिये ब्रह्मचर्यके विरुद्ध नहीं है। (शिवाङ्कसे)

श्रीमान् गौड़जी लिखते हैं कि भगवान् शंकरने कामको जलाकर उमासे विवाह किया और पुत्र उत्पन्न करके देवताओंका काम किया। यह सब कर्तव्यबुद्धिसे किया, कामेच्छाकी प्रवृत्तिसे नहीं। उसके जलायेजानेसे संसारको यही शिक्षा देनी थी। यही मैथुनीसृष्टिका रहस्य है। हमारे पुराण स्पष्ट कह रहे हैं कि नर नारीकी उत्पत्ति बुद्धिके लिये हुई, विषयभोगकेलिये नहीं।

महामहोपाध्याय पं० श्रीप्रमथनाथजी, तर्कभूषण, लिखते हैं कि 'योगनिष्ठ त्रिपुरारिने समाधिके बलसे शरीरके नवद्वारोंमें अंतःकरणको निरुद्ध कर उसे हृदयकमलरूप अधिष्ठानमें अवस्थित कर रक्खा है एवं

क्षेत्रज्ञ जिसे अविनाशी ब्रह्म कहा करते हैं उसी आत्मस्वरूप परमात्माका वे आत्मामेंही साक्षात् कर रहे हैं। इस ध्यानगम्य योगीश्वरमूर्तिको देख-कर क्षणमात्रके लिये मदन किंकर्त्तव्यविमूढ हो गया। फिर कामदेव महा-देवके पास आकर कामनाराज्यकी सृष्टि करनेमें प्रवृत्त हो गया। परंतु यह कामका राज्य था, यह प्रेमका अर्थात् निष्काम अनुरागका राज्य नहीं था। इस राज्यमें क्या कभी भक्तके साथ भगवान्का मिलन हो सकता है? कामके सम्पर्कसे प्रेम कलुषित हो जाता है, हृदय भोगमें आसक्त होता है, प्रेम सूख जाता है, भक्त कामुक हो उठता है। ऐसी अवस्थामें भक्तके साथ भगवान्का मिलन कभीभी नहीं हो सकता। इसी कारण श्रीमहादेवजीका तृतीय नेत्र प्रज्वलित हो उठा। उससे विवेक आर वैराग्य-रूप ज्योतिपुंज निकला और उसने कामको भस्मसात् कर दिया। रतिका कामसम्पर्कजनित कलुषभाव दूर हो गया। वह प्रेमरूपा भक्तिपूणताको प्राप्त हुई। इसीका नाम देवाधिदेव श्रीमहादेवकी 'मदन दहन लीला' है। इसके बादही पार्वतीके साथ शिवका विवाह, प्रेम भक्तिकेसाथ सच्चिदानन्दविग्रह श्रीभगवान् सदाशिवकी अपूर्व मिलन लीला होती हैं।'

पं० सूर्यदीनशुक्लजी मदनदहन करके पुनः बिनुवपुत्याषनेका वरदान देना कथन करनेका अभिप्राय यह कहते हैं कि 'आपने बाहरके कठिन कामदेवको भस्म कर रतिके लिये आन्तरिक कामदेवको पुष्ट किया है। इसलिये मेरीं बाहरकी कठिन विषयवासना नष्ट कर आत्मारामकी ज्ञान वैराग्यादि कामना तथा भक्तिरूपी रतिके लिये कीर्तनवंदनादि आन्तरिक कामना पुष्ट कीजिये।'

४ (क) 'ता ठाकुरको रीझि निवाजिबो०' इति। भाव कि शत्रुता करनेपरभी तो यह असीम कृपा की, तब सन्मुख जीवोंपर प्रसन्न होकर जो कृपा करते हैं उसे कौन कह सकता है? वह तो अकथनीय है। मिलान कीजिये '**निर्बानदायक क्रोध जाकर भगति अवसहि बस करी।**' (ख) 'जोग कोटि करि माँगत सकुचाहीं' इति। संकोचका कारण यह है कि इतनेपरभी वे अपनेको उस गतिकी प्राप्तिका अधिकारी

नहीं समझते। इस प्रकार उस पदको दुष्प्राप्य दिखाकर काशीमें उसीकी प्राप्ति सहजही कीटादिको होना कहकर शिवजीकी दीनदयालुता, सामर्थ्य और उदारता दर्शित की है। कीट पतंगोंको वह पद सुलभ है, तब उच्चकोटिके जीवोंका तो कहना ही क्या ? अन्यत्र मुनियोंको दुर्लभ और यहाँ जिनको कोई साधन नहीं उन कीट पतंगादिकोभी सुलभ यह उदारता है। (ग) ' समाहीं ' में भाव यह है कि उसमें समाते जाते हैं। किसीको किंचितभी रोक नहीं है। यथा ' जो गति अगम महामुनि गावहिं। तुअ पुर कीट पतंगउ पावहिं ॥ ' (१०) इस अंतरामें संकेत है कि काशी ' ज्ञान खानि अघहानिकर ' है।

"वेद विदित०" इति। ' काश्यां तु मरणान्मुक्तिः इति श्रुति। अर्थात् काशीमें मरणमात्रसे कैवल्यकी प्राप्ति होती है। केदारखण्डमें श्रीशंकरजीकी करुणा एवं भक्तिका स्वरूप इस प्रकार खींचा हुआ मिलता है। ' पेयं पेयं श्रवणपुटके रामनामाभिरामं, ध्येयं ध्येयं मनसि सततं तारकं ब्रह्मरूपम्। जल्पन्जल्पन्प्रकृतिविकृतौ प्राणिनांकर्णमूले, वीथ्यां वीथ्यामटति जटिलः कोऽपि काशीनिवासी ॥ '

भूतभावन भगवान् विश्वनाथ काशीकी गलियोंमें कहते फिरते हैं कि तुम लोग अपने कानोंद्वारा सब जगह अभिरमण करनेवाले भगवान् रामके नामका पान करो और अपने मनमें सर्वदा निरंतर तारकब्रह्म रामनामका ध्यान करो। जिससमय प्राणीका स्वास्थ्य बिगड़कर विकृत हो जाता है और जब वह इस नश्वर संसारको छोड़नेको तैयार होता है तब भगवान् शंकर उसके कर्णमूलमें मोक्षदायक ब्रह्मतारक षडक्षर राममंत्रका उपदेश करते हैं। किसी एक नियत स्थानमें बैठकर यह काम नहीं करते, किन्तु वे काशीमें गलीगलीमें घूमघूमकर मनुष्योंको रामनामका स्मरण कराते हुए मोक्षमार्गमें भेजनेका उद्योग निरंतर करते रहते हैं। आपकी जीवोंपर ऐसी ममता और करुणा है।

जीवोंको मरतेसमय उपदेश करना श्रीरामतापनी उपनिषद्सेभी प्रमाणित होता है। यथा 'मुमूर्षोर्दक्षिणेकर्णे यस्यकस्यापि वा स्वयम्। उपदेक्ष्यसि मन्मंत्र स मुक्तो भविता शिव।'

'मरणमात्रसे मुक्ति होती है' इसमें आजकलके पाश्चात्य शिक्षाप्राप्त महानुभावोंको संदेह होता है। वे अनेक शंकायें करते हैं। जैसे कि 'भला पापी और पुण्यात्माकी एकसी गति कैसे संभव है? यदि है तो अन्याय है। फिर 'ऋतेज्ञानान्नमुक्तिः' अर्थात् विना ज्ञानके मुक्ति नहीं, यह श्रुतिवाक्यभी व्यर्थ एवं मृषा हो जाता हैं?' हम आगे इन शंकाओंका समाधान कुछ विस्तारसे करेंगे, यहाँ केवल 'ऋतेज्ञानान्नमुक्तिः' इस श्रुतिवाली शंकाके विषयमें इतना मात्र कह देते हैं कि अथर्ववेदकी 'ज्ञानमार्गं च नामतः'। यह श्रुती कहती है कि श्रीरामजीके नामसे संपूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जाता है, इसलिये 'ऋतेज्ञानान्नमुक्तिः' इस श्रुतिवाक्यमें मिथ्यात्व नहीं आ सकता। श्रीरामतारकब्रह्ममंत्रका उपदेश काशीजीमें शंकरजी मरतेसमय जीवोंको देते हैं इसके प्रमाण ये हैं, 'श्रीरामस्यमनुं काश्यां जजापवृषभध्वजः। मन्वन्तरसहस्रैस्तु जपहोमार्चनादिभिः॥ ततः प्रसन्नो भगवान् श्रीरामः प्राह शङ्करम्। वृणीष्व यदभीष्टं तद्दास्यामि परमेश्वर॥ मणिकर्ण्यां मम क्षेत्रे गङ्गायां वा तटे पुनः। म्रियते देहि तज्जन्तोर्मुक्तिनातो वरान्तरम्॥ क्षेत्रेऽत्र तव देशे च यत्र कुत्रापि वा मृतः। कृमिकीटादयोऽप्याशु मुक्ताः सन्तुनचान्यथा॥ मुमोर्षोर्दक्षिणे कर्णे यस्य कस्यापि वा स्वयम्। उपदेक्ष्यसि मन्मंत्रं समुक्तो भविता शिव॥' इति श्रीरामतापनीयोपनिषत्। इसमें अत्रि और याज्ञवल्क्यजीके संवादमें लिखा है कि 'जप, होम अर्चनके द्वारा श्रीशिवजीने सहस्र मन्वन्तरपर्यन्त श्रीरामके नामका जप किया। तब प्रसन्न होकर भगवान्ने कहा कि हे महेश्वर! मैं प्रसन्न हुआ, जो चाहो वर माँगो। शिवजी बोले कि 'मणीकर्णिकारूप मेरे क्षेत्रमें या श्रीगंगाके तटपर अथवा गंगाजीके भीतर जो मरे उसे मुक्ति दीजिये, मैं केवल यही वर चाहता हूँ। भगवान् श्रीरामजीने कहा हे शिवजी! आपके इस क्षेत्रमें जहां कहींभी जो कोई कृमिकीटादि पर्यन्त जीव मरेगा वह शीघ्रही मुक्त हो जायगा, इसमें कोई संदेह नहीं। मरते समय जिस किसीके दाहिने कानमें आप स्वयं उपदेश करेंगे वह शीघ्र मुक्त हो जायगा।

यही बात भरद्वाजजीने मानसमें कही है। यथा 'आकर चारि जीव जग अहहीं। कासी मरत परमपद लहहीं॥ सोपि राममहिमा मुनिराया। सिव उपदेस करत करि दाया॥' और शिवजी स्वयं भी कहते हैं। यथा 'कासी मरत जंतु अवलोकी। जासु नाम बल करउँ बिसोकी॥'

पुन: पद्मपुराणमेंभी हमें इसका प्रमाण देखनेको मिलता है। उसके उत्तरखंड अध्याय २७०, श्लोक ४० में श्रीशिवजी स्वयं श्रीरामजीसे कहते हैं 'मुमूर्षोर्मणिकर्ण्यां तु अर्धोदकनिवासिनः। अहं ददामि ते मंत्रं तारकं ब्रह्मदायकम्॥' अर्थात् मरनेके समय मणिकर्णिका घाटपर गंगाजीमें जिस मनुष्यका शरीर गंगाजलमें पड़ा रहता है उसको मैं आपका ब्रह्मतारकमंत्र देता हूँ जिससे वह ब्रह्मको प्राप्त हो जाय। 'अर्धोदकनिवासिनः।' इन शब्दोंके अनुसार बंगाली लोग मृतप्राय प्राणीको अर्धजलमें रखकर उससे 'हरि बोल, हरि बोल,' कहलाते जहाँ तहाँ देखे जाते हैं।

६ (क) 'ईस उदार उमापति परिहरि०' इति। ईशता (सामर्थ्य) और उदारता दोनों गुण उपर टिप्पणीयोंमें दिखा आए हैं। 'उमापति' शब्द देकर आपको दृढ़प्रतिज्ञ जनाया। अर्थात् जो आप करनेकी प्रतिज्ञा कर लें उसमें कोई बाधक नहीं हो सकता। 'उमा' पार्वतीजीका उस समयका नाम है जब वे मातापिता आदिके समझानेपर नहीं मानीं और दृढ़तापूर्वक शिवजीसे विवाह होनेकेलिये तप करने चलीही गयी। 'हठ न छूट छूटै बरु देहा,' 'पुनि परिहरे सुखानेउ परना। उमहि नाम तब भएउ अपरना।' (बा०)।

इसकी कथा पद्मपु० सृष्टिखण्डमें है। श्रीपुलस्त्यजीने श्रीभीष्मजीसे कहा है कि जब पार्वतीजीने हिमाचलराजसे कहलवाया कि 'अपनी अभीष्ट वस्तुकी प्राप्तिकेलिये मैं तपस्याही करूँगी,' तब हिमवान्ने कहा, 'बेटी 'उ' 'मा' ऐसा न करो। तुम अभी चपल बालिका हो। तुम्हारा शरीर तपस्याका कष्ट सहन करनेमें समर्थ नहीं है। अब

घरकोही चलिये और वहीं इस कार्यकी सिद्धिके लिये कोई उपाय सोचिये।' पिताके ऐसा कहनेपरभी जब पार्वतीजी घर जानेको तैयार नहीं हुई तब हिमवान्‌ने मनहीं मन अपनी पुत्रीके दृढ़ निश्चयकी प्रशंसा की। इसी समय आकाशवाणी हुई 'गिरिराज! तुमने 'उ' 'मा' कहकर अपनी पुत्रीको तपस्या करनेसे रोका है, इसलिये संसारमें इसका नाम 'उमा' होगा। यह मूर्तिमति सिद्धि है। अपनी अभिलिषित वस्तु अवश्य प्राप्त करेगी।

(ख) 'ते मूढ़ मांगने०' इति। मूढ़का भाव कि वे अपनी हानि लाभ नहीं समझते।

५ (३) राग कानरा

बावरो रावरो नाहुं[1] भवानी।
दानि बड़ो दिन देत दये[2] बिनु बेद बड़ाई भानी॥१॥
निज घरकी घरबात[3] बिलोकहु हो[4] तुम्ह परम सयानी।
सिवकी दई संपदा देखत श्री सारदा सिहानी॥२॥
जिन्हके भाल लिखी लिपि मेरी सुख की नहीं निसानी।
तिन्ह रांकन्ह[5] कहुँ नाक सँवारत हौं[6] आयो नकबानी॥३॥
दुख[7]* दीनता दुखी इन्हके दुख जाचकता अकुलानी।
यह अधिकार सौंपिए औरहिं भीखि[8] भली मैं जानी॥४॥
प्रेम प्रसंसा बिनय ब्यंगि[9] जुत सुन बिधिकी बर बानी।
तुलसी मुदित महेस मनहिं मन जगतमातु मुसुकानी॥५॥

---

१ नाहुं—६६। नाहं—इ०। नाहु—६९। नाह—भा०, बे०, प्र०, ७४, ज०, १५, ५१, आ०। २ दये—६६, प्र०, ज०, १५, इ०, वै०, भ०, दी०, वि०। दिये—भा०, बे०, मु०, डु०, ७४। ३ घरबात—६६, भा०, प्र०, दी०। बरबात—इ०, ७४, ज०, ५१, भ०, मु०, वि०। ४ हो—६६, ज०, मु०। हौ—भा०, इ०, आ०। ५ रांकन्ह कहुं—६६। रांकन को—प्र०, ज०। रंकन्ह (वा, रंकन) को—औरोंमें। ६ हौं—भा०, बे०, ५९, १५, ७४। हों—६६, ज०, डु०। * ७—'दुख दीनता दुखी इन्हकें—६६, भा०, बे०, प्र०, इ०, भ०, ७४, दी०। दुखी दीनता दुखियन्हके—ज०, डु०, ५१, वै०, वि०। ८ भीख—इ०, १५, ५१, ७४, आ०। भीखि—६६, भ०। ९ व्यंग—ज०, दी०, बि०। बिंग—भा०, बे०, प्र०, ४५। व्यंग्य—५१, बै०। व्यङ्ग—मु०, ७४। ब्यंगि—६६।

शब्दार्थ—बावरा (सं० वातुल, जिसे वायुका प्रकोप हो) पागल, सनकी, जो कर्तव्याकर्तव्य न समझे और जो मनमें आया वही कर बैठे। रावरो = आपका। नाहु (नाह। सं० नाथ) = पति। दिन = नित्यप्रति। दये बिनु = जिसने पूर्व या इस जन्ममें किसीको कुछ दान नहीं दिया; बिना दिये हुएको। बड़ाई = मर्यादा। भानी (भानना) = भंग करना, तोड़ना, यथा '**सब कै सकति संभुधनु भानी**', '**नाक में पिनाक मिस बामता बिलोक राम रोक्यो परलोक भारी भ्रम भानि कै।**' (क०) घरबात=घरकी संपत्ति, गृहस्थी वा पूंजी। यथा '**कुसगात ललात जो रोटिन को घरबात घरै खुरपा खरिया।**' (क०)। बिलोकहु (सं० बिलोकन =देखो। सयानी=चतुर संपदा=संपत्ति, धन। श्री=लक्ष्मीजी। सारदा (शारदा) = सरस्वती। सिहानी = सिंहाना, ईर्ष्या करना, पानेकेलिये ललचाना, यथा '**सूर प्रभुको निरखि गोपी मनहिं मनहिं सिहाति।**' '**अवधराज सुरराज सिहाहीं। दसरथ धन लखि धनद लजाहीं।**', '**देव सकल सुरपतिहिं सिहाहीं। आज पुरंदर सम कोउ नाहीं।**' इसमें ललचाने के साथही प्रशंसाभी करनेका भाव रहता है। भाल = भौंहोंके ऊपरका भाग, ललाट। लिपि = अक्षरके अंकित चिह्न; कर्मरेख; बिधिके अंक। निसानी = चिह्नमात्र, नाम वा लेशमात्रभी। रांकन्ह (रंकन्ह) = रंकों; दरिद्रों, कंगालो। कहुं = के लिए, को। नाक = स्वर्ग, यथा '**सपने होइ भिखारी नृप रंक नाकपति होइ।**' (अ०) सँवारत=सँवारना (सं० संवर्णन) = सजाना, बनाना। हौं = मैं। नकबानी = नाकमें दम। हौं आयो नकबानी = मेरे नाकों दम आ गया, मैं परेशान हो गया, हलकान हो गया। दुख (दुःख) = कष्ट। ऐसी अवस्था जिससे छुटकारा पानेकी इच्छा प्राणीमें स्वाभाविक हो। दीनता = दुःखसे उत्पन्न अधीनताका भाव। जाचकता = मंगनपना। अकुलाना = ऊबना, घबड़ाना, यथा '**परम सभीत धरा अकुलानी।**' अधिकार = कार्यभार, प्रभुत्व। सौंपिए = सौंपना (सं० समर्पण) किसी वस्तुको दूसरेके अधिकारमें देना, सहेजना वा सुपुर्द करना। औरहिं = यह पुरानी विभक्तिका प्रयोग पूर्व कर्म, संप्रदान और संबंधकारकोंमें होता था। परन्तु यहाँपर

कर्म और संप्रदानमेंही 'को' के अर्थ में रह गया । औरकों, दूसरोंको । भीखि = भिक्षा; किसी दरिद्रिका दीनता दिखाते हुए उदर-पूर्तिकेलिये कुछ माँगना; भीख । प्रसंसा = (प्रशंसा) गुणवर्णन, स्तुति, बड़ाई । बिनय = विशेष नम्रता, विनंती । ब्यंगि (व्यंग्य) = गूढ़ और छिपा हुआ अर्थ । वह लगती हुई बात जिसका गूढ़ अर्थ हो । ताना, चुटकी । = जिसमें थोडेही अक्षरोंमें बड़ा विलक्षण अर्थ भरा हो । श्रीवैजनाथजी व्यंगकी परिभाषा यह देते हैं 'सूधो अर्थ जु बचनको तेहि तजि औरहि बैन । समुझि परै तेहि कहत हैं शक्ति व्यंजना ऐन ॥' इति काव्य निर्णये । अर्थात् जहाँ सीधे अर्थको छोड़कर हेरफेरसे दूसरा भाव प्रकट किया जाय । जुत (युत) = युक्त, सहित, मिली हुई । बानी (वाणी) = वचन; मुँहसे निकले हुए सार्थक शब्द । मुदित = आनं-दित, प्रसन्न । महेस = महा + ईश = बड़े समर्थ, महादेवजी । मुसु-कान = ऐसी मंद हँसी कि जिसमें न दाँत निकलें और न शब्द हो, मंदहास ।

नोट—१ इस पदमें ब्रह्माजीद्वारा श्रीपार्वतीजीसे उलाहनेके ढंगपर श्रीशंकरजीके अतिशय दातृत्व गुणकी प्रशंसा व्यंगसे की गई है । देखने सुननेमें तो निन्दा मालूम होती है पर हैं वस्तुतः स्तुति । इस तरह यहां व्याजस्तुति अलंकार है ।

२ इस पदमें जहाँ तहाँ अन्य टीकाकारोंके किये हुए अर्थोंसे बहुत भेद है । यह पद व्याजस्तुति अलंकारका इतना सुन्दर उदाहरण है कि शायदही कोई रसिक शिवभक्त ऐसा होगा जिसे यह पद कंठस्थ न हों । और 'बावरो रावरो नाहुं भवानी' तो जनश्रुतिही बन गयी है ।

पदार्थ—हे भवानी ! आपके पति तो बावले (से) हो गये है । * (बावलेपनके प्रमाण वा लक्षण आगे बताते हैं कि) वे बड़ेही दानी हैं,

---

* इसका अर्थ काकोक्तिसेभी कर सकते हैं । 'पागल हो गये हैं क्या !', 'पागल तो नहीं हो गये !'

नित्यप्रति देतेही रहते हैं, (यह तो प्रशंसाकी बात हैं, न कि पागलपनेकी। इसपर आगे कहते हैं कि) बिना दिये हुएको अर्थात् जिसने कभी किसीको कुछ दान नहीं दिया उसकोभी देते रहते हैं (इस तरह) उन्होंने वेदकी मर्यादा तोड़ डाली हैं आप तो परम चतुर हैं (जरा) अपने घरकी गृहस्थी (तो) देखिये। (अर्थात् घरमें तो आपके बिभूति, भाँग, धतूरा, खप्पर और स्वारीके लिये बैलही है, इतनी मात्र संपत्ति होनेपरभी मांगनेवालोंको इतना दे डालते हैं कि) शिवजीकी दी हुई संपत्तिको देखकर लक्ष्मी और शारदा सिहाती हैं। जिनके ललाटपर मेरी लिखी हुई कर्मरेखामें सुखका चिन्हमात्र नहीं हैं, उन्हीं दरिद्रोंकेलिये स्वर्ग सजाते सजाते मेरे नाकों दम आ गया है। दुःख और दीनता दुखी हो गये हैं और इन (दुःख दीनता) के दुःखसे याचकता व्याकुल हो गई है। यह अधिकार दूसरेको सुपुर्द कर दीजिये, मैंने तो अब भीख मांगनाही उत्तम समझा हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि ब्रह्माजीका प्रेम, प्रशंसा, विनय और व्यंगसे युक्त श्रेष्ठ वाणीको सुनकर महादेवजी मनही मन प्रसन्न हो रहे हैं और जगज्जननी श्रीपार्वतीजी मुस्कुरा रही है।

टिप्पणी—१ (क) 'देत दये बिनु बेद बड़ाई भानी' इति। बेदोंने यह मर्यादा बाँध दी है कि जो देवे सो पावे, जो बोवे सो काटे, बिना पाये न देना चाहिये। यथा '**करै जो करम पाव फल सोई। निगम नीति असि कह सबु कोई।**' (अ०), '**बवा सो लुनिय लहिय जो दीन्हा**' (अ०) '**हरिहुँ और अवतार आपने राखी बेद बड़ाई। लइ चिउरा निधि दई सुदामहिं जद्यपि बालमिताई**' (१६३), '**ना भुक्तक्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि। अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्॥**' (ब्रह्मवैवर्त्तपु० १।२७।७०)। इस तरह बिना पाये देनेसे, बिना कर्मफल भोगाये स्वर्ग दे देनेसे आपको निस्वार्थ दानी सूचित किया। (ख) पुनः, 'देत दये बिनु' का भाव कि यह उनकी जन्मसे स्वभावसिद्ध बान पड़ी है, यथा '**चाहै न अनंग हरि एकौं अंग मांगनेको देबोई पै जानिये सुभावसिद्ध बानी सो।**' (क०)।

(ग) 'वेदवाक्य इनकी करतूतिसे मिथ्या हो गया। यह व्यंग्यार्थ वाच्यार्थके बराबर तुल्यप्रधान गुणीभूत व्यंग्य है। (वीर)। *

'बावरो' में यहभी भाव निकलता है कि उन्हें भाँग धतूरा खिला खिलाकर मन चले लोग मनमानी संपत्ति प्राप्त कर लेते हैं, इसीसे स्वयं नंगे रहते हैं और घरमें मूँजीभाँग और राखकाही ढेर लगा रहता है।

२ (क) 'निज घर की घरबात बिलोकहु०' इससे मिलान कीजिये।

'सीस बसे बरदा बरदानि चढ्यो
बरदा घरनिउ बरदा है।
धाम धतूरो बिभूति को कूरो
निवास जहाँ सब ले मरे दाहैं।
ब्याली कपाली है ख्याली चहूँ दिसि
भाँग की टाटिन्ह के परदा है।
राँकसिरोमनि काकिन्ह भाग
बिलोकत लोकप को करदा हैं।'
'देत संपदा समेत श्रीनिकेत जाचकनि
भवन बिभूति भाँग वृषभ बहनु है।' (क०)

---

* भावार्थान्तर—१ 'वेदधर्म' में दानकी रीति यह है कि जो बड़े दानी प्रतिदिन दान देते हैं वे बिना दिये हुए याचकोंको देते हैं और जो प्रभातमें ले गया है, मध्यान्हमें आकर पुनः माँगे, तो उसे नहीं देते। शिवजीने यह वेदबड़ाई तोड़ दी। वे विचारते नहीं कि यह दुबारा लेने आया है। वे याचकोंको बराबर देते हैं चाहे जितनी बार वे माँगने आवे। (बै०)। २ वेदरीति तोड़नेकी दूसरी बात घरहीमें की है कि वेदरीति तो ऐसी है कि धर्मकार्योंमें तो पत्नि दक्षिण दिशामें रहती है। यथा 'सीमन्ते च विवाहे च चतुर्थ्यां सहभोजने। व्रते दाने मखे श्राद्धे पत्नि तिष्ठति दक्षिणे।, शयनसमय शय्यापर, बामदिशि इत्यादि समय बराबर आसन चाहिये। स्वाभाविक समाजमें पत्निको बराबर न बैठाना चाहिये, परन्तु शिवजीने प्रेममें आकर पार्वतीजीको वामांगमें मिला लिया, सदा वामाङ्गमें धारण किये रहते हैं, यह वेद एवं लोकविरुद्ध बात है।' (बै०)। ३ जैसा कर्म करे वैसा फल पावे, कर्म किये बिना फलकी प्राप्ति नहीं होती यह वेदकी बड़ाई है। इस मर्यादाका उल्लंघन किया है (रा० त० ब०)।

इसमें व्यंगसे कई भावार्थ निकलते हैं, (१) दूसरोंको इतनी संपत्ति दे दी कि श्री और शारदा सिहाती हैं और तुम्हारेलिये घरमें कुछभी नहीं, अतः उनको इस हरकतसे बाज़ रखना(रोकना) तुम्हारा कर्तव्य है। (२) घरकी संपत्ति लुटा दी, घरमें कुछ न रह गया, फिरभी घरकी पर्वा नहीं। यहभी बावलापनही सिद्ध करता है। इसतरह व्यंग्यसे अपनेको पार्वती-जीका हितैषीभी जनाते हैं। (३) देते देते घरमें कुछभी न रह गया, अब तुम्हारी बारी है, कहीं तुम्हेंभी न दे डालें। (४) लोकमें प्रसिद्ध है कि जितना ओढ़ाना हो उतना पैर पसारे, पर ये लोकमर्यादाके विरुद्ध करते हैं कि घरमें तो भूँजीभाँग नहीं और दे डालते हैं त्रैलोक्यका ऐश्वर्य, यह बुद्धिमानी नहीं है। (रा० त० ब०)। (५) अपने घरकी चीज, वस्तु देखो, कहीं तुम्हारीभी न कुछ दे डालें। (पं० रा० कु०)। इत्यादि।

(क) 'निज घरकी घरबात बिलोकहु' इति। कितना मीठा दुःख है? कितनी भावुकताकी शिकायत इसमें भरी हुई है? विद्यापतिजी श्रीमैना-जीसे कहलाते हैं '**यहि जोगियाके भाँग भुलैलक धतुर खोआई धन लेला।**' इस जोगड़ेको भाँग धतूर खिलाखिलाकर इसको बौरायकर सारी संपत्ति ले ली, घरमें भाँग धतूरा और राखही रह गयी।

(ख) 'हो तुम्ह परम सयानी' इति। भाव कि इतनेसेही तुम समझ सकती हो, अधिक कहेनेकी आवश्यकता नहीं, यथा '**बहुत बुझाइ तुम्हहिं का कहऊँ। परम चतुर मैं जानत अहऊँ॥**' (लं०)। पुनः, भाव कि वे तो बौराहा हैं पर तुम तो सयानी हो, तुम्हें तो सोचना चाहिये था, अबभी बिगड़ा नहीं है, उनको सिखा लो। 'सयानी' का भाव कि तुम धर्म-शास्त्र और वेदोंका सिद्धान्ततत्व भलीभाँति जानती हो। (वै०)

(ग) 'शिवकी दई संपदा देखत' इति। क्या संपदा देते हैं। यह कवितावलीमें देखिये।

रति सी खनि सिंधु मेखला अवनिपति
औनिप अनेक ठाढ़े हाथ जोरि हारि कै।

संपदा समाज देखि लाज सुरराज कें
सुख सब विधि दीन्हें हैं सँवारि कै ॥
इहां ऐसो सुरलोक सुरनाथ पद ॥
स्यंदन गयंद बाजि राजि भले भट
धन धाम निकर करनिहूँ न पूजै क्वै ।
बनिता विनीत पूत पावन सोहावन औ
विनय विवेक बिद्या सुभग सरीर ज्वै ॥
इहां ऐसो सुख परलोक सिवलोक ओक । (क० उ०) ।

(घ) 'श्री सारदा सिहानी' इति । जगतमें जो ऐश्वर्य है उस सबकी अधिष्ठात्री श्रीलक्ष्मीजी हैं, सो वेभी देखकर ललचा उठती हैं कि इतना ऐश्वर्य तो हमारे पासभी नहीं है जितना ये एक एक कँगलेको दे डालते हैं और सरस्वती सिहाती हैं कि ब्रह्मलोकमेंभी ऐसा ऐश्वर्य नहीं है और न मुझमें ऐसा सामर्थ्य है कि उनके दिये हुए ऐश्वर्यका बखान कर सकूं । इससे शिवजीको अपार अलौकिक संपत्तिका दाता जनाया । +

+ भावार्थान्तर—(१) 'श्री और शारदा मनहीमन प्रशंसा करती है कि धन्य हैं पार्वतीको जिन्हें ऐसा उदार पति मिला । उनकी यह प्रशंसा चाहे हँसी मजाकी, या डाहभरीही हो, कौन जाने ?' (वि०) । (२) 'लक्ष्मी और सरस्वति सराहना करती हैं । अर्थात् व्यंगभावसे हंसी उड़ाती है कि पार्वतीको अच्छेसे पाला पड़ा है ।' (भ०) । (३) 'शिवजीने आपसे इतना प्रेम किया कि अर्धाङ्ग वामाङ्गमें तुमको मिला लिया, न वेदकी मर्यादाका ख्याल किया, न लोकका [टि० १ (ग) की पादटिप्पणी देखिये] यह देख जब गंगाजीने मान किया तब उनको सिरपर बिठा लिया, इत्यादि शिवजीकी दी हुई संपदा अर्थात् तुम्हारे इस श्रेष्ठ पद प्राप्तिरूपी ऐश्वर्यको देखकर श्री और शारदा इर्ष्या करती हैं । वेभी तुम्हारेही समान अपने अपने पतियोंमें वही पद पानेकी इच्छा करती हैं । तुमको अर्धाङ्गमें मिलानेसे विष्णुको और हमको तो आफ़त हो गयी है ।' (वै०) । (४) 'सरस्वति इसलिये ईर्षा करती हैं कि शिवजीकी दी हुई संपत्तिका वर्णन हमसे नहीं हो सकता, अतः हमारी अप्रतिष्ठा होती है ।' (दी०)

पाठान्तरपर विचार—' घरबात ' प्राचीनतम पाठ है और फिरभी कई पोथियोंमें यह पाठ मिलता है। भावभी सुन्दर हैं जो उपर दिये गये हैं। यह शद्ब गोस्वामीजीने अन्यत्रभी प्रयुक्त किया है, जिसके दो एक उदाहरण शद्बार्थमें दिये गये हैं। ' बरबात ' का कोई भावभी यहाँ ठीक नहीं दीखता। टीकाकारोंने जो ' बरबात ' पाठके भाव दिये हैं वे यहाँ दिये जाते हैं, (१) घरकी श्रेष्ठ बात देखो। कौन श्रेष्ठ बात सो नहीं कहते क्योंकि तुम परम सयानी हो, आपही बूझ लो। ' बरबात ' का व्यंग्य यह है कि जिन शिवजीके घरमें राख धतूरा मात्र संपत्ति है, उनकी याचकोंको दी हुई संपत्ति देख श्री और शारदा सिहाती हैं।' (छु०)। (२) अपने घरकी सुन्दर बातही देखो कि रावण, बाणासुर आदिको जो सम्पत्ति दे दी वह इंद्रादिकों दुर्लभ है और अपने घरमें भूँजी भाँग नहीं, धतूरे और मसानकी राखके ढेर लगा रक्खे हैं। (भ०)। यही भाव वीर कविजीनेभी रखा है। (३) घरकी बात तो देखो! वह यह कि आपके पतिने देते देते सारी गृहस्थीही लुटा डाली है, घरमें आज भूँजी भाँगभी नहीं हैं।' (वि०) (४) वेदरीति तोड़नेकी दूसरी बात घरहीमें की है। क्या घरकी बात है! यह कि ' निज बरबात ' अर्थात् अपनी श्रेष्ठताकी बात देखो अथवा घर की ' बर ' (शिवजीकी बड़ी पत्नि) अपनी बड़ी बहन गंगाजीकी और अपनी बात देखो कि किस प्रकार तुम दोनोंको निकट रक्खे हैं। तुम सयानी हो स्वयं विचार लो कि भला पतिपत्निका इसतरह निकट रहना वेद या लोकरीति हैं?' (वै०)।

विज्ञ पाठक स्वयं विचार लें कि ' बरबात ' में कोई सुन्दर व्यंग्य बैठता है? ' घरबात ' का अर्थ न जानकर तथा केवल अन्य पूर्वकी टीकाओंको देखकर लोगोंने ' घर ' का ' बर ' बना लिया है।

(३) ' जिन्हके भाल लिखी लिपि मेरी०' इति। ब्रह्माजीही प्रारब्ध लिखते हैं और जो वे लिख देते हैं वह अमिट होता था, यथा ' कठिन करम गति जान बिधाता। जो सुभ असुभ सकल फल दाता॥.' (अ०), ' सुनहु भरत भावी प्रबल जो बिधि लिखा लिलार। देव

दनुज नर नाग मुनि कोउ न मेटनिहार ॥ ' (अ०), ' जरत बिलोकेउँ जबहिं कपाला । बिधिके लिखे अंक निज भाला ॥ नर के कर आपन बध बाँची । ' (लं०), ' तुम्ह सन मिटिहि कि बिधिके अंका । मातु ब्यर्थ जनि लेहु कलंका ॥ (बा०) ।

(ख) ' तिन्ह रांकन्ह कहुँ नाक सँवारत ' इति । यहभी वेद मर्यादा है कि जो जैसा शुभाशुभ कर्म करता है वैसा फल पाता हैं । विधाता कर्मानुसार फल भाग्यमें लिख देते हैं । ब्रह्माजीका कहना है कि जिसको हमने लिखा कि इसे अनेक जन्मपर्यंत दुःखही दुःख भोगना होगा, उसने यदि कभी किसी कारणसे चार अक्षत चढ़ा दिये तो ये उसे स्वर्ग दे देते हैं । भाव यह कि हमारा लिखा रद्द कर देते हैं । जिनके भाग्यमें हमने सुखका लेशमात्रभी नहीं रक्खा, उनको ये स्वर्गका राज्यतक दे देते हैं । स्वर्ग तो एकही है पर इनकी इस करतुतसे हमें नित्य नये स्वर्ग बनाने पड़ते हैं । यथा,

नाँगो फिरै कहै माँगनो देखि न खाँगो कछू जनि मांगिए थोरो ।
राँकन्हि नाकप रीझि करै तुलसी जग जो जुरै जाचक जोरो ॥
नाक सँवारत आयो हौं नाकहिं नाहिं पिनाकिहिं नेकु निहोरो ।
ब्रह्म कहै गिरिजा सिखबो पति रावरो दानि है बावरो भोरो ॥ (क०)

भाव कि एक तो वेदमर्यादा तोड़ी, दूसरे हमें जो मर्यादा दी है वहभी तोड़ देते हैं, भावीको मिटा देते हैं । अपने लिखेको मिटानेमें अपनेकोभी दुःख होता है, उसपरभी एक दिनका हो या एक रातके लिये हो तोभी अपमान सहकरभी ऐसा कर दूँ, पर यह तो नित्यहीकी इनकी बान पडी हुई है, अतः इनको सिखा दो कि ऐसा न करें ।

(ग) ' हौं आयो नकबानी ' इति । नाकों दम आ गया, क्योंकि मेरा लिखा कुछ रहनेही नहीं पाता, नित्य काटना पड़ता है और नित्य नया स्वर्ग बनाना पड़ता है ।

४ (क) ' दुख दीनता दुखी । ' इति । दरिद्रतासे बढ़कर दुःख नहीं है, यथा ' नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं । ' पापका फल दुःख

है, यथा '**करहिं पाप पावहिं दुख भय रुज सोक बियोग**'। दु:खसे 'दीनता' उत्पन्न होती है। इन दोनोंके निवासस्थान पापी हैं, दरिद्र हैं, सो शिवजी जब इनको नाकपति बना देते हैं तब इनको वहाँ-सेभी भागना पड़ता है, इनको कहीं रहनेका ठिकाना नहीं रह गया। अत: ये दु:खी और व्याकुल होकर मारे मारे फिरते हैं; यथा '**कतहुँ नहिं ठाऊँ कहँ जाऊँ कोसलनाथ दीन (बितहीन) हौं बिकल बिनु डेरे**' (२१०) दु:ख और दीनता याचकताके अंग हैं। इसीसे दु:ख और दीनताका दु:ख देखकर वह व्याकुल हो गयी। भाव कि ये तीनों आकर मुझसे शिकायत करते हैं कि हमारे रहनेका तो कहीं स्थानही नहीं रह गया, आपका दिया हुआ निवासस्थान तो छिन गया, अब हम कहाँ जाकर रहें? आपने हमें बनाया है तो रहनेको जगहभी दीजिये। हम क्या करें? व्यंग्यसे भाव यह हुआ कि संसारमें इनके दातृत्वसे कोई दु:खी, दीन, दरिद्र रहही नहीं गया, जगत्मात्र अयाचक बन गया। यह व्याजस्तुति अलंकार है।

(ख) 'यह अधिकार' इति। यह अधिकार अर्थात् ब्रह्माकी पदवी, सृष्टिरचना, कर्मरेखाका लिखना, इत्यादि। (ग) 'सौंपिअ औरहिं' इति। भाव कि मेरा लिखा रहनेही नहीं पाता तब अधिकारही किस कामका? इससे मेरा इस्तीफ़ा है। इससे यहभी सिद्ध हुआ कि इनका अधिकार शिवजीके हाथमें है; अत: कहते हैं कि दूसरेको दे दीजिये, हमें न चाहिये। यथा '**ब्रह्मेंद्र चंद्रार्क बरुनाग्नि वसु मरुत जम अर्चि भवदंघ्रि सर्वेऽधिकारी**' (१०)। (घ) 'भीखि भली मैं जानी' इति। भाव कि अभीतक तो मैं जानता था कि भीख माँगना बहुत निकृष्ट कर्म है और उसमें अनेक दु:ख हैं पर शिवजीका दातृत्व देखकर कि जिसने इनसे माँगा वह बिना परिश्रम याचनामात्रसे इन्द्र और कुबेर बन गया। मुझे यह ज्ञान हो गया कि शिवजीके द्वारका भिखमंगाही बनना उत्तम है। एक बार माँगकर सदा इन्द्रकासा सुख क्यों न भोगूँ? लिपि लिखने मिटाने और स्वर्गादि बनानेका परिश्रम क्यों करूँ? भाव कि भीख माँगकर खा लेनेसे पैर पसारकर सोनेको तो मिलेगा!

यथा 'अब सुख सोवत सोच नहिं, भीखि माँगि भव खाई।' (बा०)। यहां वाच्यार्थसे प्रकट असुंदर गुणीभूत व्यंग है।

५ 'प्रेम प्रसंसा बिनय व्यंगिजुत०' इति। (क) प्रेम और व्यंग्यसे भारी वाणी ओतप्रोत है और व्यंग्यद्वारा सारे पदमें प्रशंसाभी है। अर्थात् सीधे सीधे वचनोंमें तो बावलापन कहा गया है पर व्यंग्यसे उन्हीं वचनोंसे सौलभ्य, औदार्य्य, ऐश्वर्यादि गुण प्रकट हो रहे हैं। फिरभी लोगोंने इस पदमें प्रेम, प्रशंसा आदिके अंश अलग अलग दिखाये हैं जो नीचे दिये जाते हैं। एकसाथही प्रेम, प्रशंसा, विनय और व्यंग्यभरी वाणीका वर्णन 'सहोक्ति अलंकार' है। १ प्रेम—'निज घरकी घरबात सयानी' क्योंकि जो जिसपर प्रेम करता है वही उसका भला चाहता है। ५ प्रशंसा—'दानि बड़ो दिन देत दिये बिनु', 'सिवकी दई संपदा' क्योंकि इसमें दानकी महान् अधिकता कही गई है। ३ विनय 'जिन्हके भाल यह अधिकार सौंपिऐ औरहि।' क्योंकि जो जिस कामका अधिकारी होता है वही उसके बनने बिगड़नेकी विनंती करता है। ४ व्यंग्य—'बावरो रावरो नाहुँ' 'भीखि भली मैं जानी' यह स्पष्ट व्यंग है और आशय से इसमें अतिशय उदारता प्रतिपादित की है। भाव कि उनके याचक हमसेभी अधिक सुखी हैं। अधिकार छोड भीख मांगना कभीभी भला नहीं समझा जाता।

(ख) 'बर बानी' इति भगवान् या उनके भक्तोंकी स्तुति जिस वाणीमें हो वह श्रेष्ठही है। श्रीवैजनाथजी लिखते हैं कि थोड़े अक्षरोंमें बहुत बड़ा अर्थ, विलक्षण चातुरी, रहस्ययुक्त, श्रवणरोचक, गूढ़ आशय और स्नेहवर्धक (प्रेमकी स्फूर्ति करनेवाली) होनेसे वाणीको 'बर' कहा है।

६ 'मुदित महेस मनहिं मन०' इति। (क) मनमेंही प्रसन्न हुए, अपने आनन्दको प्रगट न होने दिया, क्योंकि अपनी प्रशंसा सुनकर प्रसन्नता प्रकट करना ऐबमें दाखिल हैं। हँसनेका कारण ब्रह्माजीकी व्यंगस्तुति है। हँसे कि कैसे चतुर हैं, घरमें झगड़ा करना चाहते हैं।

(ख) 'मुदित महेस' कहकर जनाया कि यह स्तुति वस्तुतः शिवजीकी की गयी है, पर श्रीपार्वतीजीकी ओटसे, और जब दोनों साथ बैठे थे तब की गयी हैं। (ग) ब्रह्माजीकी कर्मलिपिकोभी न्यून वा अधिक करने एवं मेटनेका सामर्थ्य होनेसे 'महेश' कहा। (च०) (घ) 'जगतमातु मुसुकानी' इति। पार्वतीजीसे साक्षात् विनय है, इससे वे प्रसन्न होकर प्रत्यक्ष मुस्कुरायी। विनयमें व्यंग्यसे पतिकी स्तुति समझकर हँसी। (ङ) 'जगतमातु' का भाव कि 'बावरो' और 'बेद बड़ाई भानी' इत्यादिके व्यंग्यको समझ गयी क्योंकि जगज्जननी हैं, इसीसे रुष्ट न होकर मुस्कुरा दी।

६ (२] राग रामकरी*

मागिऐ[1] गिरिजापति कासीं[2]। जासु भवन अनिमादिक दासीं[2]॥
औढर[3] दानि द्रवत पुनि थोरें। सकत न देखि दीन कर जोरें॥
सुख संपति मति सुगति सुहाई। सकल सुलभ संकर सेवकाई॥
गये जे[4] सरन आरति[5] कै लीन्हें। निरखि निहाल निमिष महँ कीन्हें॥
तुलसिदास जाचक जसु[6] गावै। बिमल भगति रघुपति[7] की पावै॥

शब्दार्थ :—गिरिजा = गिरि (पर्वत, हिमाचल) + जा (जायमान, पैदा) हिमाचलराजकी कन्या, पार्वतीजी। कासी = काशीमें। जासु = जिसके। भवन = घर। अनिमादिक = अणिमा आदिक। आदिक (आदि) आरंभका, प्रथम, प्रारंभमें हैं जिनके। दासी = सेवा करनेवाली; टहलनी। दासीं यह दासीका बहुवचन है। औढर (सं० अव + हिं + दार) = जिस ओर मनमें आया उसी ओर ढर पडनेवाला; जिसकी

* ६६ में सर्वत्र 'रामकरी' ही है। प्रायः औरोंमें 'रामकली' है।
१. मागिऐ (मागिये)—६६, ह० पु०, ७४, भा० बे०, प्र०। जाचिये—आ० (डु०) याचिये—मु०, ५१। २. ६६ में अनुस्वार है, औरोंमें नहीं है। ३. औढ़र—६६, ज०, ५१। अवढ़र—भा०, बे०, ७४, प्र०, ह०, वै०, ४. ७४, मु०, ५१, बै०, वि० में 'जे' नहीं है। ५. आरति—६६, ७४, भ०, मु०, डु०, दी०। आरत—भा०, बे०; ज०, प्र० १५, ह० वि०, बै० (पर टीकामें 'आरति' है। भूलमें छापेकी गलती जान पडती है)। ६ जसु—६६। जस—प्रायः औरोंमें। ७. रघुबर—प्र०।

प्रकृतिका कुछ ठीक ठीकाना न हो; मनमौजी ढरना। ढरनि – चित्तकी प्रवृत्ति, झुकाव; सहज कृपालता, दयाशीलता; दीन दशा दूर करनेकी स्वाभाविक प्रवृत्ति। औढरदानि=पात्रापात्र विचार रहित दान देनेवाला, जो ढरने योग्य नहीं उसपरभी ढरकर देनेवाला। द्रवत (सं० द्रवण)=पसीजना, पिघलना, बहुत प्रसन्न होना (च०) पुनि=बारंबार; और; फिरसे। बुँदेलखंडमें इसका प्रयोग बिना किसी अर्थकेभी होता है। जैसे कि 'मैं पुनि गयऊँ बंधु सँग लागा।' (कि०) 'मैं पुनि पुत्रबधु असि पाई'। हमारी समझमें यहाँ 'पुनि' शब्द निरर्थक नहीं है। इसका प्रयोग वैसाही है जैसा कि फारसीमें 'मजिद बरां' का। अर्थात् इतनाही नहीं वरंच इतना औरभी। थोरें=थोड़ेहीमें, ज़रामें। सुख=आनंद। न्याय और वैशेषिकके अनुसार 'सुख' आत्माका एक गुण है। यह सुख दो प्रकारका कहा गया है। एक 'नित्य सुख' जो परमात्माके विशेष सुखके अन्तर्गत है। दूसरा 'जन्य सुख' जो जीवात्माके विशेष सुखके अन्तर्गत है। यह धन या मित्रकी प्राप्ति, आरोग्य और भोगादिसे उत्पन्न होता है। सांख्य और पातंजलके मतसे 'सुख' प्रकृतिका धर्म है और उसकी उत्पत्ति सत्यसे होती है। गीतामें सुख तीन प्रकारका कहा गया है। एक 'सात्विक' जो ज्ञान, वैराग्यके द्वारा प्राप्त होता है। दूसरा 'राजस' जो विषय तथा इन्द्रियोंके संयोगसे उत्पन्न होता है (जैसे संगीत सुनने, रूप देखने, स्वादिष्ट भोजन करने और संभोग आदिसे होता है)। और, तीसरा 'तामस' जो आलस्य और उन्मादादिके कारण उत्पन्न होता है। कुछ लोगोंने सुखको मनकाभी धर्म माना है*। वेदान्तानुसार 'सुख' और 'आनंद' पर्य्यायवाची

* गीता १८, यथा 'सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ। अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति ॥ ३६ ॥ यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्। तत्सुखं सात्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् ॥ ३७ ॥ विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम्। परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसंस्मृतम् ॥ ३८ ॥ यदग्रे चानुबन्धेच सुखं मोहनमात्मनः। निद्रालस्यप्रमादोत्थ तत्तामसमुदाहृतम् ॥ ३९ ॥ न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः। सत्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिःस्यात्त्रिभिर्गुणैः ॥ ४० ॥'

होनेसे ‘ सुख ’ ब्रह्मका वाचक है । ‘ रसो वैसः ’ ‘ रसो ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति, ’ ‘ आनंदं ब्रह्मणो विद्वान्नबिभेति कुतश्चन ’ इत्यादि श्रुतियाँ इसकी प्रमाण हैं । वैजनाथजी ‘ सुख ’ से वनिता, भोजन, वस्त्र, पान, गंध, वाहन और नृत्यादि का अर्थ करते हैं । संपति = पद ५ ‘ संपदा ’ में देखिये । मति = बुद्धि । यहाँ निर्मल बुद्धिसे तात्पर्य है । भक्त इसीकी चाह करते हैं, यथा ‘ ताके जुग पदकमल मनावौं । जासु कृपा निर्मल मति पावौं ॥ ’ (बा०) । सुगति = उत्तम गति, मोक्ष । पद ३ देखिये । सुहाई (सं० शोभन । हिं० सुहाना) = सुहावनी, प्रिय लगनेवाली, सुंदर । सेवकाई = सेवा, टहल, खिदमत, यथा ‘ करहु सुफल आपनि सेवकाई । ’ (बा०) । सकल = कुल; सब; सब कुछ, सबको । सरन (शरण) = आश्रयमें, रक्षामें, पनाहकेलिये । के लीन्हें = को लिये हुए, यथा ‘ अपने बस कर लीन्हें ’, के लिये । आरति के लीन्हें = दुःख (से छुटकारा पाने, निवृत्ति) के लिये; दुःखको लिये हुए, दुःख (से पीड़ित होने) के कारण । यथा ‘ मैं तो बिगारी नाथ सो आरति के लीन्हें ’ (१४९) । दीनजी ‘ लीन्हें ’ का अर्थ ‘ सताये हुए ’ करते हैं । निरखि (सं० निरीक्षण । हिं० निरखना) = देखकर । जे = जो लोग । निहाल (फ़ारसी भाषाका शब्द है) = सब प्रकारसे संतुष्ट और प्रसन्न; पूर्णकाम । निमिष = उतना काल जितना पलक गिरनेमें लगता है, पलभर । महँ = में । बिमल=‘ वि ’ उपसर्ग शब्दके पहले लगकर ये अर्थ देता है । १ विशेष–जैसे, विकराल, विहीन । २ वैरूप्य–जैसे, विविधि । ३ निषेध या वैपरीत्य–जैसे, विक्रय (क्रय अर्थात् खरीदके विपरीत), विकच्छ (कच्छा रहित) । विमल में ‘ वि ’ निषेधका अर्थ देता है, मलरहित, निर्मल । भगति = शाण्डिल्यके भक्ति-सूत्रके अनुसार ईश्वरमें अत्यन्त अनुराग होना ‘ भक्ति ’ है । यथा, ‘ स परानुरक्तिरीश्वरे ’ । नारदभक्तिसूत्रमें भक्ति ‘ ईश्वरके प्रति परम-प्रेमरूपा और अमृतस्वरूपा ’ कही गयी है । यथा ‘ सात्वस्मिन् परम प्रेमरूपा ’, ‘ अमृतस्वरूपा च ’ ।

पद्यार्थ :—श्रीपार्वतीजीके पतिसे माँगना चाहिये*। जिनका काशी घर है और अणिमादि सिद्धियाँ जिनके घरकी दासियाँ हैं। वे अवढर दानी हैं और थोड़ेहीमें पसीज जाते हैं। वे दीन (जन) को हाथ जोड़े हुए देख नहीं सकते अर्थात् हाथ जोड़े देखतेही कृपा करके उसका मनोरथ पूरा कर देते हैं×। शङ्करजीकी सेवासे सुख, संपत्ति, निर्मलबुद्धि, शुभगति (आदि) सभी कुछ सहजही प्राप्त हो जाते हैं। जो दुःख (निवृत्ति) केलिये उनकी शरणमें गये, उनको (आपने कृपा दृष्टिसे) देखकर पलकपात्रमें कृतकृत्य कर दिया। याचक तुलसीदास आपका यश गाता है, उसे श्रीरघुनाथजीकी निर्मल भक्ति मिले (अर्थात् प्रदान कीजिये)।

---

* 'मागिअे गिरिजापति कासी' का अर्थ इसतरहभी लोगोंने किया है। १. गिरजापतिसे काशीमें माँगना चाहिये। (पं० रा० कु०)। २. गिरजा तथा काशीके पतिसे माँगिये। (पं० रा० कु०, डु०, वीर)। ३. हे गिरिजापति ! मैं आपसे काशी (वास) माँगता हूँ (अर्थात् मुझको काशी प्राप्त हो) जिसमें घरघर अणिमादिक सिद्धियाँ दासी होकर रहती हैं। (च०)' ४. बैजनाथजी, दीनजी आदिनेभी 'कासी जासु भवन' इस तरह पदच्छेद करके अर्थ किया है। पर इसमेंभी शंका हो सकती है कि काशीको किसी पदमें घर नहीं कहा है, वरंच कैलाशको घर और काशीको कचहरी कहा है। यथा 'महाकल्पांत ब्रह्मांडमण्डलदवन भवन कैलास आसीन कासी' (१०), 'सेष सर्वेस आसीन आनंदबन दास तुलसी प्रनत त्रासहारी' (११)। संभव है कि इसीसे पं० राजकुमारजीनें दुसरी प्रकार अर्थ करना उचित समझा हो। अर्थ १ में कासीको शिवजीका द्वार जनाया (पं० रा० कु०)।

× दीनजी यह भाव लिखते हैं कि ज्योंही उसके हृदयमें हाथ जोड़नेका विचार उठता है त्योंही उसे निहाल कर देते हैं। वह हाथ जोड़नेके बजाय दोनों हाथ संपत्तिके बटोरनेमें लगा देता है, हाथ जोडनेकी नौबतही नहीं आती।

टिप्पणी:—१ (क) 'गिरजापति' का एक भाव यह भी है कि रत्नगर्भा वसुंधराके सर्वोच्च आधारस्तंभकी एकमात्र कन्या एवं गृहस्वामिनी होनेके कारण उन्होंने अर्थसमस्याका उपाय रच दिया है कि ऋद्धि सिद्धिको अपनी पुत्रवधू बना रक्खा है जिससे पति चाहे जितना दान करें घटे नहीं। इसीसे 'जासु भवन अनिमादिक दासी' कहा। (ख) 'अनिमादिक' इति। अष्टसिद्धियोंमें अणिमाकी प्रथम गिनती की जाती है, अतः 'अणिमा आदि' कहकर आदिसे 'महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्तिः, प्राकाम्य, ईशित्व, और वशित्व' ये सात सिद्धियाँ सूचित की। विशेष पद १ 'सिद्धिसदन' में देखिये। (ग) 'द्रवत पुनि थोरें' इति। भाव कि बेलपत्र, अक्षत, मदारके पत्ते, जल और वह भी किंचित्‌ही चढ़ा देनेसे प्रसन्न हो जाते हैं, कोई विशेष पूजा, सेवा नहीं चाहते। विशेष पद 'सेवत सुलभ उदार' देखिये।

२ (क) 'सकत न देखि दीन कर जोरें' इति। भाव कि कुछभी न करे केवल हाथभर जोड़ दे तो तुरंत रीझ जाते हैं; यथा 'किये दूरि दुख सबन्हिके जिन्ह जिन्ह कर जोरे' (८)। यहाँ अत्यंत करुणामय स्वभाव दिखाया। (ख) 'सकल सुलभ संकर सेवकाई। इति। 'औढरदानि' से अत्यन्त सौलभ्यगुण देखकर संदेह हो सकता है कि मामूली पदार्थ दे देते होंगे, उसपर कहते हैं कि ऐसा न जानो; सुख, संपत्ति आदि सभी कुछ सुगमतासे प्राप्त हो जाता है। सुखकी प्राप्ति, यथा 'जिमि सुख लहइ न संकर द्रोही" संपत्तिकी प्राप्ति, यथा 'सिवकी दई संपदा देखत श्री सारदा सिहानी' मतिकी प्राप्ति, यथा 'बिनु संभुकृपा नहिं भो बिबेक' गति प्राप्ति, यथा 'पुरारिपुर कीट पतंग समाहीं' 'सोइ गति मरनकाल अपने पुर देत सदासिव सबहिं समान'। (ग) दीनजी 'सुख, संपत्ति, मति और सुगति' से 'अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष चारों पदार्थोंका ग्रहण करते हैं।

३ 'औढरदानि' 'सकल सुलभ संकर सेवकाई' इति। शङ्कर-स्वरूपकी महिमा अमित है। इसका अर्थही है 'कल्याण वा सुखका

करनेवाला'। बिना किसी भेदभावके समस्त जीवोंपर समान कृपाकोर रखनेके कारणही 'शङ्कर' नाम हैं और इसीसे महादेवजीको 'औढर-दानि' कहा है। इनका दान मनमौजी है, अटपटा है, बेढब है। वे उपासकसे अत्यन्त शीघ्र प्रसन्न होनेवाले हैं। ये सब बातें इस पदमें दर्शायी हैं। रघुपतिभक्ति माँगते हैं जो कल्याणरूपिणी है, अतः शङ्कर नामसे वंदना है। मिलान कीजिये 'देत न अघात रीझि जात पात आकहीके, भोलानाथ जोगी जब औढर ढरत है।' 'औढर ढरत हैं' अर्थात् बेतरह प्रसन्न होते हैं। यह अर्थ दीनजीने कवितावलीमें किया है।

४ (क) 'तुलसीदास जाचक जसु गावै' इति। दातृत्वगुण गाकर श्रीरामभक्ति माँगते हैं, क्योंकि बिना शिवजीकी कृपाके भक्ति नहीं मिलती। यथा, 'जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी। सो न पाव मुनि भगति हमारी'। (ख) रघुपतिका भाव कि सगुणरूप दशरथ-नन्दन श्रीरामजीकी भक्ति चाहते हैं, अद्वैतवादियोंके निर्गुण निराकारकी नहीं। (ग) 'पावै' का भाव कि सबको देते हैं, हमेंभी दीजिये। यहाँ बताया कि 'रघुपतिभक्तिप्राप्ति' का एक उपाय शिवजीभी है।

७ (१०)

कस न दीन पर द्रवहु उमाबर। दारुन बिपति हरन करुनाकर ॥
बेद पुरान कहत उदार हर। हमरि बेर का[1] भयेहु[2] कृपनतर[3] ॥
कवनि[4] भगति कीन्ही गुननिधि द्विज। होइ[5] प्रसन्न दीन्हेहु सिवपद निज ॥
जो गति अगम महामुनि गावहिं। तुअ[6] पुर कीट पतंगउ पावहिं ॥
देहु कामरिपु रामचरन रति। तुलसिदास प्रभु हरहु भेद मति ॥

१ का—६६, इ०, १५, डु०। कस—भा०, बे०, आ० डु०. ७४। २ भयउ–भा०, बे०। भयेउ–इ०। भयहु–७४। भयेहु–प्रायः औरोंमें। ३ कृपिन—डु०, ७४। कृपिनि—१५, इ०। कृपन—प्रायः औरोंमें। ४ कवन—इ०, ५१, ७४। ५ होइ—६६, ५१, ७४, मु०. बे०, भ०। होय–भा०, बे०। है—इ०, १५, डु०, दी०, वि०। ६ तुअ—६६, भ०। तव–भा०, बे०, प्र०, ज०, इ०, ७४, १५, ५१।

शब्दार्थ:—कस = कैसे, क्यों। द्रवहु=पद ६ में देखिये। बर = दूल्हा, पति। बिपति = कष्ट, दुःख या शोककी प्राप्ति, भारी रंज, क्लेश या शोककी स्थिति। हरन (सं० हरण) = दूर करना, मिटाना, न रहने देना। करुनाकर—करुना + आकर = करुणाकी खान। करुणा + कर=करुणा करनेवाले। करुणा = वह मनोविकार वा दुःख जो दूसरोंके दुःखके ज्ञानसे उत्पन्न होता है और दूसरोंके दुःखको दूर करनेकी प्रेरणा करता है। यथा, '**दुःख दुःखित्त्वमार्त्तानां सततं रक्षणत्वरा। परदुःखानुसंधानाद्विह्वली भवनंविभोः॥**', '**कारुण्याख्य गुणोह्येष आर्त्तानां भीतिवारकः।**' सहानुभूति और दया, तरस। हर = दुःख या क्लेशके हरनेवाले। यथा, '**दुःखानि पापानि हरतीति हरः।**' शिवजी। बेर = बार, दफ़ा। कृपन (कृपणा) = कंजूस, सूम, दरिद्र, यथा, '**तैं उदार मैं कृपन पतित मैं तैं पुनित श्रुति गावै।**' (११३) तर = एक प्रत्यय जो गुणवाचक शब्दोंमें लगकर दूसरेकी अपेक्षा आधिक्य सूचित करता है। जैसे, गुरुतर, श्रेष्ठतर, कृपनतर। बड़े, अधिक या विशेष कंजूस। कवनि = ('कः', किम्—यह संस्कृत सर्वनाम है।) कौनसी। द्विज = हिन्दुओंमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्णके पुरुष, जिनको शास्त्रानुसार यज्ञोपवीत धारण करनेका अधिकार है। मनुके धर्मशास्त्रानुसार यज्ञोपवीत मनुष्यका दूसरा जन्म माना गया है। ब्राह्मण। निज = अपना, मुख्य, वास्तविक, सच्चा। पद = धाम; यथा, '**वेद विदित तेहि पद पुरारिपुर कीट पतंग समाही।**(पद ४ देखिये) महामुनि = आत्मदर्शी मुनि। (वै०) (पद २ देखिये) तुअ = तव, तुम्हारा। पतंगउ = पतंगभी (पद ४ देखिये) 'उ, हु' कथितके अतिरिक्त 'औरभी' का सूचक है। यथा, रामहु = रामभी। '**आहो उताहो किमुत (विकल्पो) किंकिभूत (च) तु हि स्म ह वै**' (इत्यमरकोशे)

पद्यार्थ—हे उमापति ! मुझ दीनपर आप क्यों नहीं द्रवते ? आप तो भयंकर विपत्तियोंके हरनेवाले और करुणाकी खान हैं। १। वेद पुराण (तो यही) कहते हैं कि 'हर' बड़े दाता हैं, (तब) क्या

हमारीही बार आप अत्यन्त सूम हो गये ? २। गुणनिधि ब्राह्मणने कौनसी भक्ति की थी (जिससे) हे शिवजी !, आपने प्रसन्न होकर उसे अपना धाम (शिवलोक) दे दिया। ३। महामुनि लोग जिस गतिको दुर्लभ कहते हैं, वही गति आपके पुर (काशी) में कीड़े पतङ्गतक पाते हैं।४। हे कामदेवके शत्रु ! श्रीरामजीके चरणोंमें मुझे अनुराग दीजिये ; तुलसीदासजी कहते हैं कि हे प्रभो ! * मेरी भेदबुद्धिको हर लीजिये।५।

टिप्पणी—१ (क) ' कस न द्रवहु ' इति। विनय करनेमें कभी तो प्रार्थना करते हैं और कभी झगड़ा करते हैं। ' कस ' शब्दसे झगड़ना पाया जाता है। भाव यह कि जब आप करुणाकर कहलाते हैं तब मैं तो दीन हूँ मुझपरभी करुणा करके मेरा दुःख हरिये, नहीं तो करुणाकर कहलाना छोड़ दीजिये। यहाँ शिवजीसे अपना नाता ' करुणाकर ' और ' दीन ' का बताया। (ख) ' उमाबर ' सम्बोधनका भाव यह है कि आप दृढ़प्रतिज्ञ और परोपकारी है। (' **ईस उदार उमापति परिहरि** ' पद ४ देखिये)। अतः हमपरभी कृपा कीजिये। (ग) ' दारुन बिपति हरन ' इति। '**दारुन दनुज जगत दुःखदायक जार्‍यो त्रिपुर एकही बान**' ' **कालकूट जर जरत सुरासुर निज पन लागि कियो बिष पान** ' इत्यादि। ' दारुण विपति हरन ' के उदाहरण पूर्व दे आये हैं। ' दारुण विपत्ति हरण ' कहकर तब उसका कारण कहा कि आप ' करुणाकर ' हैं, इसीसे सबकी विपत्ति दूर करनेका स्वभाव है। (घ) ' बेद पुरान कहत उदार हर ' इति। जो बिना सेवाके दीनपर द्रवै वह उदार है। वेद पुराण आपकी उदारताके प्रमाण है। ये असत्य नहीं कहते, तब हमें क्यों नहीं देते ? अर्थात् हमें नहीं देते हो तो वेदोंको अप्रमाणित कर दीजिये। यथा, ' **किधों बेदन्ह मृषा पुकार्‍यो** '। शब्द प्रमाण देकर आगे ' गुणनिधि ' के उदाहरणसे प्रत्यक्ष प्रमाण देते हैं कि बिना सेवा आप प्रसन्न हुए थे।

---

* दूसरा अर्थ—१. हे प्रभो ! मुझ तुलसीदासकी। २. हे तुलसीदासके प्रभु !

२ 'कवनि भगति कीन्ही गुननिधि द्विज' इति। गुणनिधिकी कथाएँ भिन्न भिन्न प्रकारसे टीकाकारोंने लिखी हैं। किसीने रामतत्त्वबोधिनीकी तो किसीने बैजनाथजीकी टीकाकी नकल अपने शब्दोंमें कर दी है, पर किसीने प्रमाण देने या खोजनेका कष्ट नहीं उठाया। हरिहरप्रसादजी लिखते हैं कि रा० इतिहास समुच्चय वा पुराणमें कथा है। बैजनाथजी लिखते हैं कि घंटा चुरानेकेलिये वह शिवमूर्तिपर चढ़ा था, घंटा खोल रहा था। शिवप्रकाशजी लिखते हैं कि आभूषणादि चुराकर जा रहा था तब पुजारियोंने देख लिया और ऐसा मारा कि वह मर गया।

कथा इस प्रकारभी सुनी जाती है कि उज्जैनके महाकालेश्वर शिवजीके पुजारीने एक पार्षद रक्खा जिसका नाम गुणनिधि था। शिवजीका पूजन इत्यादि हो जानेपर शृङ्गार किया जाता है, फिर पूजन हो चुकनेपर शृङ्गार उतारकर शयन कराया जाता है। शिवरात्रीके दिन विशेष आभूषण, शृङ्गार आदिका अमूल्य सामान देख परिचारक गुणनिधिके जीमें पाप आया। उसने सोचा कि माल बहुत है, लेकर क्यों न चल दें। विचार आतेही उसने ताला खोला। असबाबवाले बक्सकी कुंजी ऊँचेपर आलय (ताक) में थी, अँधेरेमें चौकी न मिली तब उसने शिवलिङ्गपर पैर रखकर उसे उतारना चाहा। ऐसा करनेमें पैर फिसला और वह मर गया। शिवजीने यह समझकर कि इसने तो अपना शरीरही समर्पण कर दिया, उसे रीझकर अपना धाम दे दिया।

ये तो हुईं दन्तकथाएँ, जो टीकाओं और रामायणियोंकी कथाओंमें देखी और सुनी गयीं। खोज करते करते वे० भू० रामकुमारदासने इसकी कथा शिवपुराणमें देखी। शिवपुराण ज्ञानसंहिता अ० ७५ में गुणनिधिकी कथा मिलती है जिसका सारांश यह है कि वह महापापी था। एक जगह शिवरात्रिव्रतकी कथा हो रही थी। उसने अकस्मात व्रतके फलकी कथा सुन ली। कथा सुनकर जैसेही वह आगे बढ़ा कि उसकी मृत्यु हो गयीं। उसके समस्त पाप शिवरात्रिव्रतफलकथा श्रवणमात्रसे नष्ट हो गये और इतने मात्रसे उसे शिवलोककी प्राप्ति हो गयी।

इस तरह शिवपुराणकी कथाके अनुसार 'कवनि भगति कीन्ही०' में यह भाव व्यंजित होता है कि उसने तो पापही पाप किये, कभी आपकी शरणमेंभी नहीं आया। अकस्मात् उसके कानोंमें व्रतफलकी कथा पड़ गयी थी। उसपर आप इतनेहीपर रीझ गये थे और मैं तो दीन हो शरणमें आ कबसे विनंति कर रहा हूँ तबभी मुझपर नहीं द्रवते, सो क्यों! उपर्युक्त दन्तकथाओंके आधारपर व्यंग्यसे यह अभिप्राय है कि ऐसे दूषित कर्म करनेवाले, सिरपर पैर रखनेवाले चोरको अपना लोक दे डाला था और मैं शरणमें आया हूँ तो मेरी सुनतेभी नहीं, यह क्यों! क्या वैसेही आचरण आपको प्रिय हैं? शरणागत प्रिय नहीं हैं? व्यंग्यद्वारा इस उदाहरणसे आपकी 'औढर ढरनि' प्रमाणित करते हैं।

३ 'जो गति अगम महामुनि गावहिं।' इति। (क) इससे अपार करुणा और उदारता जनायी। (विशेष पद ३ और ४ देखिये) (ख) 'गावहिं' इति। जो बातें महर्षियोंने कही हैं वे पद्यमेंही कहीं; अतः देवताओं, मुनियों और वेदपुराणादिके संबंधमें प्रायः 'गाना' शब्दका प्रयोग आदर सूचित करनेकेलियेभी होता है। विस्तारसे कहनेके भावमेंभी इसका प्रयोग होता हैं। यथा, '**यह सब चरित कहा मैं गाई।**' '**मुनिन्ह प्रथम हरिकीरति गाई। तेहि मग चलत सुगम मोहि भाई।**' (बा०) (ग) 'कीट पतंगउ पावहिं' इति। पावहिं शब्द देकर जनाया कि बिना माँगे उनको मुक्ति मिल जाती है। कीट पतंगोंमें माँगनेकी बुद्धि कहाँ? 'कीटपतंगउ' पदसे जनाया कि जब ये मुक्ति पाते हैं तब भला जो भक्ति करते हैं उनकी सद्गतिमें संदेहकी जगह कहाँ हो सकती है?

काशीमें किस प्रकारकी मुक्ति मिलती है? इस विषयमें काशीखण्डमें लिखा है कि '**ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा पापयोनयः। कृमि म्लेच्छाश्च ये चान्ये संकीर्णाः पापयोनयः॥ कीटाः पिपीलिकाश्चैव ये चान्ये मृगपक्षिणः। कालेन निधनं प्राप्ता अविमुक्ते शृणु प्रिये॥ चन्द्रार्धमौलयः सर्वे ललाटाक्षा वृषध्वजाः अकामो वा सकामो वा तिर्यग्योनि गतोऽपि वा॥ अविमुक्ते त्यजन् प्राणांन् मम लोके**

महीयते ॥ ' अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र, म्लेच्छ आदि संपूर्ण पापयोनि अथवा वर्णसंकर जीव तथा कीड़े मकोड़े, च्यूंटियाँ, मृग और पक्षिगण तथा अन्यभी जितने जीव हैं वे सभी कालके वश हो मरनेपर मस्तकमें चन्द्रमा और ललाटमें नेत्र धारणकर वृषध्वज हो शिवका सायुज्य प्राप्त कर लेते हैं। इच्छा या अनिच्छासे पशु पक्षी आदि योनियोंमें प्राप्त हुआभी जीव इस काशीक्षेत्रमें प्राण त्याग करके मेरे लोकमें प्रतिष्ठित होता है।

पद्मपुराणमें यहभी कहा है कि काशीमें मरनेके अनन्तर क्रमशः सालोक्यादि चारों प्रकारकी मुक्तियाँ प्राप्त होती हैं। यथा, ' **काश्यां मृतस्तु सालोक्यं साक्षात् प्राप्नोति सत्तमः। ततः सरूपतां याति ततः सान्निध्य मश्नुते। ततो ब्रह्मैकतां याति न परावर्तते पुनः ॥** '

पं० श्रीमदनमोहनजी शास्त्री, काशी, लिखते हैं कि " सालोक्यादि मुक्तिकाभी क्षेत्रभेदसे तारतम्य है, जैसे काशीक्षेत्रमें सालोक्यमुक्ति, वाराणसी क्षेत्रमें सारूप्यमुक्ति, अविमुक्तिक्षेत्रमें सान्निध्यमुक्ति और अन्तर्गृहक्षेत्रमें सायुज्यमुक्ति होती है। यथा, ' **वाराणस्यां मृतो जन्तुः साक्षात्सारूप्यमश्नुते। अविमुक्ते विपन्नस्तु साक्षात्सन्निध्यमाप्नुयात् ॥** '

काशीमें मरणमात्रसे सभी जीवजन्तुओंकी मुक्ति होती हैं। मृत्यु चाहे जिस कारणसे हुई हो यह पद्मपुराण और ब्रह्मवैवर्तपुराणसेभी प्रतिपादित है। यथा, ' **सूच्यग्रमात्रमपि नास्ति ममास्पदेऽस्मिन्, स्थानं सुरैश्च विमृतस्य न यत्र मुक्तिः। भूमौ जले वियति वा भुविमध्यतो वा, सर्पाग्निदस्यु पविभिर्निहतस्य जन्तोः ॥** ' (पाद्मे) मेरे निवासस्थान इस काशीमें सुईकी नोक बराबरभी ऐसी जगह नहीं है जहाँपर मरे हुएकी मुक्ति न हो। भलेही देवताओंद्वारा या पृथ्वीपर, जलमें डूबकर, आकाशसे गिरकर, भूमिके अंदर धँसकर मरा हो अथवा साँप, अग्नि, डाकू या बिजलीके गिरने आदि किसीभी कारणसे उसका प्राण गया हो। पुनश्च, यथा, ' **जितेन्द्रियाः पापविवर्जिताश्च, शान्ता महान्ता मधुसूदनाश्रयाः। अन्येषु तीर्थेष्वपि मुक्तिभाजो भवन्ति काश्यामपि को विशेषः ॥ विशेषं शृणु वक्ष्यामि काश्याः कथयतो**

सम। कृतानि साधनान्यत्र स्वल्पान्यपि महामते ॥ भवन्ति काशीमाहात्म्यात् सिद्धान्येव न संशयः। अन्यत्र साधुसुकृतैः कृतैर्मुच्येत वा न वा ॥ अत्र साधनवैकल्ये काशी पूर्ण प्रकल्पयेत्।' 'जितेन्द्रिय; पापरहित, शान्त तथा भगवान्‌के भक्त महात्मा पुरुष तो अन्य तीर्थोंमें भी मुक्तिलाभ कर सकते हैं, काशीमें कौनसी विशेषता है ?' ऐसा प्रश्न उठाकर समाधान करते हैं कि 'साधन सम्पत्तिसे युक्त अधिकारियोंकी मुक्ति काशीसे अतिरिक्त स्थानोंमें भी हो सकती है। परन्तु काशीमें तो सभीकी मुक्ति होती है यही उसकी विशेषता है। अतएव, काशीखंडमें कहा है कि जो कर्मबन्धनोंमें बँधकर जन्ममरणरूप संसारमें भयभीत हो रहे है तथा जो श्रुतिस्मृतिके ज्ञानसे रहित हो शौच तथा आचारको छोड़ बैठे है, जिनका मोक्ष होना कहींभी संभव नहीं हैं, उनकी एकमात्र काशीमेंही मुक्ति हो सकती है। यथा, 'संसारभयभीता ये ये बद्धाः कर्मबन्धनैः। येषांक्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी गतिः ॥ श्रुतिस्मृतिविहीना ये शौचाचार विवर्जिताः। येषां क्वापिगतिर्नास्ति तेषां वाराणसी गतिः ॥ काशीमें मरनेके विषयमें काल अथवा अवस्थाका कोई विशेष विचार नहीं है। यथा, "उत्तरं दक्षिणं वापि अयनं न विचारयेत्। सर्वोऽप्यस्य शुभः कालो ह्यविमुक्तप्रिये यतः।' (काशीखण्डे) यहाँ उत्तरायण और दक्षिणायनका विचार नहीं करना चाहिये। हे प्रिय ! इस अविमुक्त क्षेत्रमें मरनेवालेकेलिये प्रत्येक शुभही है। सनत्कुमार संहितामेंभी कहा है 'रथ्यान्तरे मूत्रपुरीषमध्ये चाण्डालयोन्यथवा श्मशाने। कृतप्रयत्नोऽप्यकृतप्रयत्नो देहावसाने लभतेऽत्रमोक्षम् ॥' अर्थात् गलीकूचोंके अंदर या मलमूत्रके नालोंमें अथवा चाण्डालके घरमें या श्मशानमें प्रयत्न करनेपर अथवा अनायासही काशीमें देहत्याग करके मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

काशीमें मरनेसे मुक्ति होती है इसके प्रमाण तो इतने हो चुके। अब यह प्रश्न उठता है कि यदि 'काशीमरणान्मुक्तिः' और उपर्युक्त पुराणादिके वाक्योंको मानते हैं तो अन्य श्रुतियों स्मृतियों आदिसे विरोध

होता है ।

'ऋतेज्ञानान्नमुक्तिः ।' 'न कर्मणामनुष्ठानैर्न दानैस्तपसापि वा । कैवल्यं लभते मर्त्यः किन्तु ज्ञानेन केवलम्' इति स्मृतिः । तथा 'तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पंथा विद्यतेऽयनाय ॥' अर्थात् 'ज्ञानके बिना मुक्ति नहीं होती,' मनुष्य यज्ञादिक कर्मोंके अनुष्ठान, दान और तपस्यासेभी मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता, वह तो केवल ज्ञानसेही सिद्ध हो सकता है । उस ब्रह्मको जानकरही मनुष्य अमृत (मोक्ष) पद प्राप्त कर सकता है । उसे पानेका और कोई मार्ग नहीं हैं ।

इसका समाधान यों हैं, 'काशीमरणान्मुक्तिः' का तात्पर्य यह है कि काशीमें मरनेसे, पहले तत्त्वज्ञान होता है तब मुक्ति । इस पर पुनः प्रश्न होता है कि 'जन्य (होनेवाले) ज्ञानमें तो जीवित शरीरही कारण हुआ करता है, फिर काशीमें मर जानेके बाद तत्त्वज्ञान कैसे संभव हो सकता है ? और यदि कहें कि मरनेके पूर्वही जीवित शरीरमें शिवजीके तारक-मंत्रोपदेशसे तत्वज्ञान हो जाता है तो काशीका मरना तत्त्वज्ञानका कारण नहीं सिद्ध हो सकता ?' इसका उत्तर यों है, 'काशीमें मृत्यु हो जानेके अनन्तर अदृष्ट विशेषसे शरीरकी प्राप्ति होती है और उसकेद्वारा तत्त्व-ज्ञानकी उत्पत्ति होनेमें कोई प्रतिबंधक नहीं रह जाता, अथवा जिस प्रकार बिना शरीरकेही ईश्वरमें ज्ञान होना माना जाता हैं उसीतरह काशीमें मरे हुए जीवकीभी जीवित शरीरके अभावमेंभी ज्ञानकी प्राप्ति हो जाती है ।'

यहाँ यह शंका हो सकती है कि यदि सभी जीवोंकी मुक्ति मान ली जाय तो निषिद्ध कर्म करनेवालों और नियमपूर्वक विहितकर्म करनेवालों-में क्या विशेषता रह जाती है ? ऐसी दशामें भले बुरेका विचार छोड़कर लोग मनमाना आचरण करने लग जायँगे ! यदि बुरे कर्मोंका प्रतिकूल फल न मिले तो अत्यन्त प्रयत्नसे सिद्ध होने योग्य पुण्यकर्ममें कौन प्रवृत्त होगा ? और, 'अशनं व्यसनं वासः काश्यां येषाममार्गतः । कीकटेन समां काशी गङ्गाप्यङ्गारवाहिनी ॥' अर्थात् 'काशीमें जिन लोगोंका अशन, व्यसन अथवा निवास कुमार्गसे होता है उनकेलिये

काशी तो कीकट (मगध) के समान और गङ्गा आग बहनेवाली है ' इस शास्त्रवाक्यकी संगति कैसे होगी ?

इसका रहस्य गरुडपुराण और सनत्कुमारसंहिताके निम्न वाक्योंसे खुलता है। यथा,' वाराणस्यां स्थितो यो वै पातकेषु रतः सदा। योनिं प्रविश्य पैशाचीं वर्षाणामयुतत्रयम्॥ पुनरेव च तत्रैव ज्ञानमुत्पद्यते ततः। मोक्षं गमिष्यते सोऽपि गुह्यमेतत् खगाधिप॥ ' (गरुड़ पु०)। अर्थात् 'जो काशीमें रहकर सदा पापमें रत रहते हैं, वे मरने पर तीस हजार वर्षकेलिये पिशाचयोनिको प्राप्त होते हैं, वहीं उन्हें तत्वज्ञानकी प्राप्ति होती है (रुद्रपिशाचभी देवयोनिकेही अन्तर्गत हैं। इसलिये वेभी ब्रह्मविद्या प्राप्त करनेके अधिकारी हैं।) और फिर मुक्ति होती है। ' यही बात काशीखण्डमेंभी कही गयी है। यथा, ' कृत्वापि काश्यां पापानि काश्यामेव म्रियेत चेत्। भूत्वा रुद्रपिशाचोऽपि पुनर्मोक्षमवाप्स्यति॥' श्रीसनत्कुमारसंहितामें कहा है कि ' जो बाहरका रहनेवाला पापी पुरुष काशीमें जाकर प्राणत्याग करता है वह यहीं शिवसायुज्य प्राप्त कर लेता है और यदि वह काशीमेंही पापाचरण करता हुआ मर जाता है तो उसकाभी फिर यहाँ जन्ममरण नहीं होता; बल्कि मेरे यम नामक गण उसे कर्मानुसार फलोंमें नियुक्त करते हैं और वह रुद्रपिशाचगणोंके साथ थोड़ेही नियमित समयमें उन समस्त फलोंको भोगकर शिवजीकी कृपासे ज्ञानोपदेश पाकर पिशाचयोनिसे मुक्त होता है। यथा, ' यो वा गमिष्यत्यघकृद् बरिष्ठस्त्यक्त्वासुमत्रैव शिवं लभेत्। अत्रैव पापैः सहचेन्मृतोऽसौ न जन्ममृत्यू लभते च काश्याम्॥ कालेन मे यामगणैः फलेषु नियोजितस्तत्सकलं प्रभुज्य। अल्पेन कालेन समस्तमेव सार्धं पुना रुद्रपिशाचरुद्रैः॥ भवप्रसादेन कृतोपदेशः पिशाचयोनेरपि मुक्तिमेति '। यदि कहें कि ' अन्तःकरणकी शुद्धिकेविना काशीमें मरनेवालोंको तत्वज्ञान कैसे हो सकता है; क्योंकि तत्वज्ञान होनेकेलिये अन्तःकरणका शुद्ध होना आवश्यक है ? ' यह कहना ठीक नहीं, क्योंकि अनेक जन्मोंके संचित किये हुए पुण्यकर्मोंद्वारा जिनका चित्त शुद्ध

हो चुका है, उन्हींका काशीमें मरना संभव है। अतएव ब्रह्मपुराणमें कहा है '**अनेक जन्मसंसिद्धान् वर्जयित्वा महामुनीन्। नान्येषां मरणं तत्र यच्छन्त्येते विभीषणाः॥**' अर्थात् ये भयावह रुद्रगण अनेक जन्मोंके सिद्ध महर्षियोंको छोड़कर और किसीको काशीमें नहीं मरने देते।

कुछ लोग यह कह सकते हैं कि काशीमें तो पापियोंकीभी मृत्यु होती देखी जाती है, परन्तु जिसका चित्त शुद्ध होगा उसमें पापकी वासना हो ही नहीं सकती। ऐसी दशामें यह नियम कैसे माना जाय कि 'अनेक जन्मोंके उपार्जित पुण्योंद्वारा शुद्धचित्त महात्माओंकीही यहां मृत्यु होती है?' यह भी ठीक नहीं, क्योंकि पूर्वोक्तरूपसे अन्तःकरण शुद्ध होनेपरभी प्रारब्ध पापके कारण कंस और शिशुपाल आदिके समान पापवासना संभव है, अतः उक्त नियममें कोई बाधा नहीं आती।

'मरणावस्थामें अपानवायुसे टकराकर जब मर्म फटने लगता है उस समय व्याकुलचित्त पुरुष तो कुछभी सुन नहीं सकता और असम्भावना तथा विपरीत भावनाभी मिटायी नहीं जा सकती, ऐसी स्थितिमें तत्वका साक्षात्कार असंभव है' इस तरहकी शंकाभी नहीं करनी चाहिये; क्योंकि अपरिमित महिमाशाली श्रीविश्वनाथकी कृपासे हर तरहकी वेदना मिट जानेपर चित्तको प्रसन्न रखनेकी शक्ति प्राणीके अन्दर हो सकती है और इस तरह श्रवण आदिकेभी संभव होनेसे असंभावना तथा विपरीत भावनाकी निवृत्तिमें किसी तरहकी बाधा नहीं आ सकती। मरणकालमें बाह्य इंद्रियोंकी अपेक्षाके बिनाही केवल हृदयमात्रसे श्रवण आदिकी उत्पत्ति होती है। इसलिये काशीमरणसे जो अत्यन्त शुद्ध हो चुका है और श्रीविश्वनाथजीके प्रत्यक्ष दर्शनसे जिसकी पापराशि नष्ट हो गयी है, उसके असंभावनादि प्रतिबन्धक तो नष्ट होही जाते हैं। जैसे गुरूके प्रभावसे अनादिकालिक अज्ञान मिट जाता है, वैसेही अनादि असंभावना तथा विपरीत भावनाभी मिटही जाती है।

इस तरह काशीके अलौकिक महत्त्व तथा वहाँके मरणका मोक्षदायकत्व सिद्ध हुआ। (पं० मदनमोहनजी शास्त्री, प्रिंसिपल, मारवाड़ी संस्कृत कालेज, काशी। शिवाङ्कसे)।

४ 'देहु कामरिपु रामचरनरति' इति। पद ३ मेंभी यही पाठ कुछ पोथियोंमें मिलता है। यदि दोनों जगह यहीं पाठ हो तो पुनरुक्तिमें भाव यह है कि जो पूर्व माँगा था वह अबतक मिला नहीं, इसीसे अब उलहना देते और झगड़ते हुए पुनः उसी वरको माँग रहे हैं। इसीसे उपालंभात्मक शब्दोंमें कहते हैं कि 'कस न द्रवहु'।

यदि 'देहु रामपदनेहु कामरिपु' पाठ वहाँ ठीक मानें तब भाव होगा कि एकबार 'रामपदनेहु' प्रथम और दूसरी बार 'कामरिपु' प्रथम देकर अन्वय व्यतिरेक भावसे यह जनाया कि दोनोंका परस्पर अन्योन्य विरुद्ध सम्बन्ध है; जहाँ रामप्रेम है वहाँ काम रह नहीं सकता और जहाँ काम है वहाँ रामप्रेम नहीं रह सकता। दोनोंका प्राबल्य दिखानेकेलियेभी दोनोंको एकएक बार प्रथम कहा। प्रथम रामपदप्रेम माँगा, इससे कामका नाश स्वयं हो जायगा। यथा, 'रामभजन बिनु मिटहिं कि कामा' और यहाँ 'कामरिपु' सम्बोधन देकर पहले कामसे रक्षा चाही और तब रामपदप्रेम माँगा जिसमें स्थिरतापूर्वक रामप्रेम एकरस बना रह सके। विशेष पद ३ में देखिये।

वीरकविजी लिखते हैं कि 'कामरिपु' शब्द सव्यंग है कि हे प्रभो! अब आपने कामदेव सरीखे त्रिलोकविजयी योद्धाका विनाश किया, तब तुलसीदासकी भेदबुद्धिको दूर करना कौनसी बड़ी बात है? यह काव्यार्थापत्ति अलंकारकी ध्वनि है।

'जो गति अगम०' कहकर 'देहु कामरिपु०' कहनेका भाव यहभी हो सकता है कि वह महादुर्लभ मुक्तिभी तो मैं नहीं माँगता, मैं तो श्रीरामपदप्रेमही माँगता हूँ, तब आप क्यों नहीं देते?

५ 'प्रभु हरहु भेदमति' इति। भेदमति=भेदबुद्धि। दुःखको सुख और सुखको दुःख मानना (रा० कु०)। परमेश्वरके अतिरिक्त जो देहादिक हैं उनमें सत्यबुद्धि (रा० त० बो.)।

देहाभिमानबुद्धि, (वै०)। वैषम्यभरी बुद्धि। इत्यादि अर्थ टीकाकारोंने दिये हैं।

तुलसीग्रंथावली और विशेषतः मानस और विनय के अनेकानेक स्थलोंसे स्पष्टरूपसे यह सिद्ध है कि 'जीव और ब्रह्मका ऐक्य' यह सिद्धान्त गोस्वामीजीका नहीं है, उनका सिद्धान्त विशिष्टाद्वैत सिद्धान्तही इस पक्षमें है, वे जीवको अनेक, नित्य, ब्रह्मसे भिन्न, मायाके वशमें हो जानेवाला इत्यादि मानते हैं। यथा '**ईश्वर अंस जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी ॥ १ ॥ ज्ञान अखंड एक सीतावर। माया बस्य जीव सचराचर ॥ माया बस्य जीव अभिमानी। ईस बस्य माया गुनखानी ॥ परबस जीव स्वबस भगवंता। जीव अनेक एक श्री कंता ॥२॥**(उ.७८)**जीव धरम अहमिति अभिमाना ॥३॥ मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहि बस कीन्हे जीव निकाया ॥४॥ माया बस परिछिन्न जड़ जींव कि ईस समान**' ॥५॥

भेदबुद्धिसे 'निज पर बुद्धि,' यह अपना है यह पराया है, यह मेरा है वह तेरा है, मैं तैं, मेरा तेरा, इत्यादिवाली जो बुद्धि है वही 'भेद-बुद्धि' है। यथा '**गई न निज पर बुद्धि रहे न राम लौ लाये।**' जीव जीवमें वैषम्य देखना, सबमें निज प्रभुकोही एकसमान रमण करते हुए न देखना, राममय वा सियाराममय न देखना, किसीको शत्रु किसीको मित्र मानना, अपनेसहित सबको भगवत् विभूति न देखना, इत्यादि बुद्धिही 'भेद बुद्धि' है, जो कविको अभिप्रेत है। यथा, '**मति मोरि बिभेद करी हरिये। जेहि ते बिपरीत क्रिया करिये। दुख सो सुख मानि सुखी चरिये ॥**' (लं)

भेदबुद्धिका कारण मोह है। यथा, '**तुलसीदास प्रभु मोहजनित भ्रम भेद बुद्धि कब बिसरावहुगे।**'

६ 'तुलसिदास प्रभु' का भाव कि आप प्रभु हैं, मैं सेवक हूँ; आप समर्थ हैं मैं निस्सहाय, पुरुषार्थहीन और दीन हूँ। प्रभु अपने सेवककी और समर्थ असहायकी रक्षा करतेही हैं, रक्षा करना उनका कर्त्तव्य है। अतएव मेरी रक्षा काम और मोहसे कीजिये।

देव बड़े दाता बड़े संकर बड़े भोरे।
किये दूरि[1] दुख सबनिके जिन्ह जिन्ह कर जोरे॥ १॥
सेवा सुमिरन पूजिबो पात[2] आखत थोरे।
दीबो[3] जहं लगि संपदा[4] सुख गज रथ घोरे॥ २॥
गांव[5] बसत बामदेव[6] मैं कबहूं न निहोरे।
अधिभौतिक बाधा भई ते किंकर तोरे॥ ३॥
बेगि बोलि बलि बरजिये करतूति कठोरे।
तुलसी दलि[7] रूंध्यो चहै[8] सठ साखि[9] सिहोरे॥ ४॥

शब्दार्थ—दाता=दानी। भोरे=भोलेभाले, सीधेसाधे, जिसे छलकपट आदि न आता हो। जो कुछ विचार न करे, जो कोई जो कुछ माँगे दे दे, जैसे भस्मासुरको बरदान। सुमिरन (स्मरण) = नवधाभक्तिमें एक प्रकारकी भक्ति, जिसमें उपासक अपने उपास्यदेवको बराबर याद किया करता है, उसका नाम लिया करता है। पूजिबो=पूजन। पात=पत्ते। आखत (अक्षत) = बिना टूटा हुआ चावल जो देवताओंकी पूजामें चढ़ाया जाता है। दीबो = देना। लगि = तक। घोरें=घोड़े। गांव=पुर,

---

१ दरि—ज०, ह०, डु०, बै०। दूर—प्रायः औरोंमें। २ पात आखत—१५, ह०, डु०, भ०, ७४, दी०, बि०। पातअक्षत—५१, वै०। पाताषत—भा०, बे०, प्र०, ज०। दल अक्षत—मु०। ३ दीबोजहं—बे०, ज०। दइ जगजहं—भा०, भ०। दई जग जहं—ह०। दियो जगत जहं—आ० (भ०), ७४। देव जगत जहं—प्र०। ४ संपदा—भा०, बे०, ह०, भ०, प्र०, ज०। सबै—डु०, ५१, बै०, मु०, दी, वि०। सबहि—७४। ५ गांउ—प्र०। ६ बामदेव मैं—ह०, ज०, ७४, वै०, डु०, दी०, बि०, मु०, प्र०। मैं बामदेव—भा०, बे०, भ०। ७ दल—मु०, ७४, प्र०, ५१, डु०, वि०। दलि—औरोंमें। ८ चहै—भा०, बे०, प्र०, ज०, मु०, ७४। चहैं-भ०, डु०, वै०, दी०, वि०। ९ साखि—५१, भ०, दी०, बे० ('पि' पर हरताल देकर हाशियेपर 'क' बनाया है), बि०, मु०। साख—डु०, ७४, बै० (शाख)। साक—भा०, बे०, प्र०, १५, ह०, ज०।

(काशी) निहोरना=विनती करना। यथा–'मैं अपनी दिसि कीन्ह निहोरा। तिन्ह निज ओर न लाउब भोरा। (बा०), ' सोई कृपालु केवटहि निहोरा। जेहि जग किय तिहु पगहु ते थोरा' (अ०)। याचना करना (डु०, वै०)। अधिभौतिक=जीव वा शरीरधारियोंद्वारा प्राप्त। जो भूतोंके अधिकृत हो। बाधा=पीड़ा, कष्ट। किंकर (किं + कर, अर्थात् ' क्या करूं ' यह कहनेवाला) =सेवक। तोरे=तेरे, तुम्हारे। बेगि=शीघ्र, जल्दीसे। बोलि=बुलाकर। यथा ' अपराध छमिबो बोलि पठए बहुत हौं ढीठयो दई। (बा०), 'सकल मरम रघुनायक जाना। लिये बोलि अंगद हनुमाना' ।। (लं०), 'पुनि कृपाल लिय बोलि निषादा। (उ०)। बलि=बलिहारी जाता हूं, बलैयां लेता हूं। प्रेम, भक्ति, श्रद्धा आदिके कारण अपनेको निछावर करना, सदके जाना, कुर्बान होना, ' बलि, जाना' कहलाता है। बरजन (सं० वर्जन) =मना करना, डाँटना। करतूति=करनी, यथा, ' ऊंच निवास नीच करतूती।' (अ०) कठोरे=निर्दय, दयारहित, क्रूर। करतूति कठोरे=कठोर करनीवाले। दलना=कुचलना, चूर्ण-करना। ' जिमि हिमउपल कृषि दलि गरहीं।' (बा०)। रूंधना=वृक्षकी रक्षाकेलिये चारों तरफ बेर, बबूल, सेहुँड आदि काँटेदार पेड़ोंकी डालियोंकी बारी (घेरा) लगाना। सठ (शठ) =धूर्त्त, मूर्ख। साखि=वृक्ष। सिहोर (सं० सिंहुड़)=थूहड़, सेंहुड़, स्नुही। एक छोटा पेड़ जिसमें लचीली टहनियां नहीं होती, गाँठोंपरसे गुल्ली या डंडेके आकारके डंठल निकलते हैं। किसी जातिके सेंहुड़में बहुत मोटे, दलके लंबे पत्ते होते हैं और किसी जातिमें पत्ते बिल्कुल नहीं होते, किसीमें काँटे होते हैं, किसीमें नहीं।

पदार्थ—हे शंकरजी ! आप बड़े देवता (अर्थात् महादेव, देवोंके देव) हैं, बड़े दानी हैं और बड़े भोलेभाले हैं। जिनजिन लोगोंने (आपके सामने) हाथ जोड़े, उन सबोंके दुःख आपने दूर कर दिये। १। सुमिरन (अर्थात् शिव-शिव, हर-हर दो चार बार कह लेना यही) आपकी सेवा है और बेलपत्र और अक्षत, वहभी थोड़ेसे, (बस यही आपकी

पूजा है* (अर्थात् सेवा-पूजा तो इतनी मात्र और बदलेमें) देना (क्या है कि) हाथी, रथ, घोड़े (आदि) जहाँतक संसारमें सुख संपत्ति है वह सब । २ । हे वामदेव ! आपके ग्राममें बसते हुए मैंने कभीभी आपसे निहोरा नहीं किया (अर्थात् किसी प्रकारकीभी प्रार्थना अपने स्वार्थकेलिये नहीं की । (पर इस समय) जिनके द्वारा मुझे अधिभौतिक बाधा हुई है वे आपके किंकर हैं (अतएव आपसे बिनती करता हूँ, नहीं तो न करता) । ३ । मैं बलिहारी जाता हूं ! आप शीघ्रही उन कठोर करनी-वालोंको बुलाकर डाँट दीजिये । वे शठ 'तुलसी' को काटकर उससे सेंहुड़के वृक्षको रूंधना चाहते हैं, अर्थात् सेंहुड़की रक्षाकेलिये तुलसीकी बारी लगाते हैं । ४ ।

टिप्पणी—१ 'गोस्वामीजी शङ्करजीके दानीपनपर अत्यन्त लट्टू हो गये हैं । ऐसा जान पड़ता है कि उनके दातृत्वको देख केवल उन्हींपर अपनेको निर्भर कर दिया है । उनको छोड़ वे माँगनेकेलिये दूसरी जगह जानाही नहीं चाहते । यथा, '**को जाचिए संभु तजि आन,**' '**दानि कहूं संकर से नाहीं**' और '**माँगिये गिरिजापति कासीं । जासु भवन अनिमादिक दासी ॥**' क्योंकि '**औढरदानि द्रवत पुनि थोरें । सकत न देखि दीन कर जोरें ॥**' '**सुखसंपति मति सुगति सुहाई । सकल सुलभ संकर सेवकाई ॥**' क्यों न हो ? ऐसा होना स्वाभाविकही है, क्योंकि-'**देव बड़े दाता बड़े संकर बड़े भोरे । किये दूर दुख सबनि के जिन्ह जिन्ह कर जोरे ॥**'

इसलिये सबको उपदेश करते हैं कि केवल इन्हींकी सेवा पूजा कर जो माँगना हो माँग लो परन्तु आप शिवजीका इतना सम्मान करकेभी उनसे श्रीरामभक्तिही माँगते हैं और कुछ नहीं, यह अनन्योपासना है ।

२ (क) 'देव बड़े दाता बड़े० इति ।' बड़े' का भाव कि समस्त देवता दुःखमें आपकी शरण तकते हैं, आप सबसे बड़े हैं,

*दूसरा अर्थ-' सेवा, सुमिरन और पूजन तीनों थोड़े हैं, बेलपत्र और अक्षत मात्र ।' (पं० रा० कु०) ।

महाकल्पान्तमेंभी आप बने रहते हैं। यथा, 'देव देव त्रिपुरारी' (९) 'दाता बड़े' यह पूर्वके पदोंमें दिखा आये। (पद ४, ५, ६ देखिये।) (ख) 'संकर' पद देकर 'बड़े देव, बड़े दाता०' होनेका कारण बताया कि वे सदा कल्याण करनेमें तत्पर रहते हैं। (ग) 'भोरे' में वही भाव है जो 'बावरो रावरो नाहुं भवानी' के 'बावरो' में है। (पद ५ टि० १ का 'नोट' देखिये)। (घ) 'जिन्ह जिन्ह कर जोरे' से जनाया कि हाथ जोड़नेमात्रसे दुःख दूर कर देते हैं, हाथ जोड़नेभरकी देर है, उनकी कृपामें देरी नहीं है। इससे यहभी जनाया कि किसीको हाथ जोड़े खड़े आप नहीं देख या सह सकते। यथा 'सकत न देखि दीन कर जोरें' 'निरखि निहाल निमिष महं कीन्हें।' (पद ६ देखिये।) पुनः, 'जिन्ह जिन्ह' से जनाया कि दो चार हों तो गिनावें, वे तो नित्यही अगणित जनोंको निहाल करते हैं।

३ 'सेवा सुमिरन पूजिबो पात आखत थोरे।' इति। पहले अंतरेमें शिवजीको 'बड़े भोरे' कहा, अब दूसरे अंतरेमें 'भोरेपन' का लक्षण कहते हैं कि 'सेवा....थोरे' अर्थात् लेना तो अक्षत और पत्ते (तुच्छ वस्तुएँ) और देना त्रैलोक्यका ऐश्वर्य; यह भोलापन है। जैसे, बच्चोंको खिलौना देकर लोग अमूल्य वस्तु ले लेते हैं। यहाँ 'परिवृत्त' अलंकार है।

पाठान्तरपर विचार–पूर्वार्द्धमें 'पूजिबो' है। उसकी जोड़में 'दीबो' बहुत सुंदर है। पूजिबो, दीबोका जोड़ अच्छा निभ जाता है। पुरानी भाषाभी है। कविने 'दिबोई' 'देबोइ' 'दीबो' का प्रयोगभी अपने काव्यमें बहुत किया है। पाठभी दो प्राचीन पोथियोंका है। 'पूजिबो' के साथ 'दीबो' का अर्थभी खूब संगत है। पूजा तो 'पाताक्षत' वहभी 'थोड़े' और देना 'जहँ लगि संपदा०'। 'दियो' या 'दहै' पाठका अर्थभी उतना अच्छा नहीं बैठता।

'सुख, संपदा' के अर्थ पद ५, ६ में देखिये। दीबो पद ४ 'दिबोई' में देखिये।

४ 'गांव बसत बामदेव मैं कबहूं न निहोरे' इति। इन चरणोंके भाव कवितावलीके निम्न उद्धरणोंसे स्पष्ट हो जायेंगे।

१ 'देवसरि सेवौं बामदेव गाँउ रावरे ही
नाम राम ही के माँगि उदर भरत हौं।
दीबे जोग तुलसी न लेत काहू को कछुक
लिखी न भलाई भाल पोच न करत हौं॥
ऐते पर हू जो कोऊ रावरो है जोर करे
ताको जोर देव दीन द्वारे गुदरत हौं।
पाइ कै उराहनो उराहना न दीजै मोहि
काल कला कासीनाथ कहे निबरत हौं'॥

२ 'चेरो रामराय को सुजस सुनि तेरो हर
पायँ तर आइ रह्यों सुरसरि तीर हौं।
बामदेव रामको सुभाव सील जानि जिय
नातो नेह जानियत रघुबीर भीर हौं॥
अधिभूत बेदन बिषम होत भूतनाथ
तुलसी बिकल पाहि पचत कुपीर हौं॥
मारिए तो अनायास कासीबास खास फल
ज्याइए तौ कृपाकरि निरुज सरीर हौं॥'

३ 'जीबे की न लालसा दयालु महादेव मोहि
मालूम है तोहि मरिबेई को रहतु हौं।
कामरिपु रामके गुलामनि को कामतरु
अवलंब जगदंब सहित चहतु हौं॥
रोग भयो भूत सो कुसूत भयो तुलसी को
भूतनाथ पाहि पदपंकज गहतु हौं।
ज्याइये तो जानकीरमन जन जानि जिय
मारिए तौ माँगी मीचु सूधियै कहतु हौं॥'

उपर्युक्त उद्धरणोंमेंभी 'बामदेव' संबोधन आया है। 'गाँव' में बसने और अबतक निहोरा न करनेके कारणभी बताये गये हैं, भौतिक बाधाके करनेवालोंकी चर्चा और अब निहोरा करने, उलाहना देनेकी बातभी

प्रकट कही है। बामदेवके ग्राममें बसनेका कारण बताते हैं कि "मैं राजा श्रीरामचंद्रजीका सेवक हूं। आपका रघुनाथजीसे नेहनाता जानकर और आपका सुयश सुन यहां रहने आया, आप रामगुलामोंके कामतरु (कल्पवृक्ष) हैं।" तबभी मैंने कभी कोई कामना नहीं की। श्रीरामनामही लेकर अपना पेट पालता आया हूं। न ऊधोकी लेनी न माधव की देनी। श्रीरामनामहीका भरोसा रखकर कभी कोई प्रार्थना नहीं की, न किसीका एहसान चाहा। किसीका भला नहीं किया तो बुराभी नहीं किया। तबभी जो कोई आपका किंकर होकर मुझपर अपना जोर दिखावे तो उसे मैं कैसे सह सकता हूँ। अतएव आपसे उसकी इत्तला करता हूं, उसकी सूचना देता हूँ। यह निहोरा और उलाहनेका कारण बताया।

रोग भूतसा मुझे लगा हुआ कष्ट दे रहा है, भूतकृत है, भूतोंद्वारा है, अधिभौतिक है; अतः 'भूतनाथ' से निवेदन करता हूँ।

'मैं कबहूँ न निहोरे' का भाव कि यदि आपकेही किंकरोंद्वारा मुझे यह बाधा न हुई होती, और किसीसे हुई होती तो तबभी आपसे बिनती न करता, उलाहना न देता, पर आपके आश्रित यहां रहूं और आपकेही किंकर मुझे कष्ट दें यह सहा नहीं जाता, इससे निहोरा करता हूं। रामनाम लेता हूं, सबसे मीठा बोलता हूँ, इससे किसीको दुःख हो तो इसमें मेरा अपराधही क्या?

५ 'अधिभौतिक बाधा भई ते किंकर तोरे' इति। इसके भावार्थ कहते हुए रामतत्त्वबोधिनी, डुमराँववाली टीकासे लेकर आधुनिक टीकाकारोंतकने प्रायः एक राग गाया है। 'अधिभौतिक बाधा' का प्रायः सभीने 'कामक्रोधादिकृत कष्ट' अर्थ किया है और कामादिको शंकरजीका किंकर माना है। गोस्वामी तुलसीदासजी के ग्रंथोंमें कामादिकके शिव-किंकर होनेका प्रमाण हमें देखनेमें नहीं आया।

'ते किंकर तोरे' से स्पष्ट है कि अधिभौतिक पीड़ा देनेवाले शिव-जीके किंकर है। वे किंकर कौन हैं? यह कवितावलीसे स्पष्ट है और सब जानते हैं।

'भूत भव भगत पिसाच भूत प्रेत प्रिय
आपनो समाज सिव आपु नीकें जानियै ।
नाना बेष बाहन बिभूषन बसन बास
खान पान बलि पूजा बिधिको बखानियै ॥
रामके गुलामनि की रीति प्रीति सूधो सब
सबसों सनेह सबहीको सनमानियै ।
तुलसीकी सुधरै सुधारे भूतनाथ ही कें
मेरे माय बाप गुर संकर भवानियै ॥'

कवितावलीके इस प्रसंगके चार कवित्तोंमेंसे यह अंतिम कवित्त है जो गोस्वामीजीने अधिभौतिक बाधा होनेपर लिखे थे। तीन कवित्त ऊपर टि० ४ पृष्ठ ९० में दिये जा चुके हैं। इनसे तथा श्रीवेणीमाधोदासकृत 'मूलगुसाईं चरित' से स्पष्ट हो जाता है कि ऊपर टि० ४ में दिये हुए उद्धारणोंमें जो कहा है कि 'जो कोऊ रावरो ह्वै जोर करै ताको जोर देव दीन द्वारे गुदरत हौं' इससेभी स्पष्ट है कि आपके खास किंकरोंद्वाराही यह कष्ट हो रहा है। वह कौन हैं? यही भैरव और उनकी सेना भूतप्रेतादि।

यह सब जानतेही हैं कि गोस्वामीजीकी प्रतिष्ठा काशीजीमें नित्यप्रति दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती देख बहुतसे विद्वानोंको डाह उत्पन्न हो गया था और जब देखो तभी इनके मारने वा काशीसे निकल जानेकेलिये अनेक उपाय वे लोग करतेही रहते थे, परन्तु उनके सभी प्रयत्न असफल होते गये। आखिरको भैरवजीका प्रयोग लोगोंने किया जिससे इनको बड़ी वेदना हुई। उसीकी ओर यहां इशारा है। भैरवभी इनसे नाराज़ही रहते थे; क्योंकि ये उनको कुछ समझतेही न थे, न उनकी वंदना करते थे। *

---

* 'ते किंकर तोरे' इति। **अर्थान्तर**—१. यहाँ कामक्रोधादिही भूत हैं। भूत शिवजीके किंकर हैं अर्थात् आज्ञाके अधीन हैं। (ठु०, टी०) २. भूतोंद्वारा बाधा हुई। रामनामका प्रचार करनेमें कलियुगने मुझपर

'किये दूरि दुख सबनिके।' इत्यादि कहकर 'गाँव बसत' कहनेका भाव कि मैंने हाथी, घोड़ा आदि सुख संपत्ति न कभी माँगी

कोप किया है, उसकी सेना भूतगण मुझको सताती है, वे अर्थात् भूतगणसहित कलियुग सब आपहीके किंकर हैं। कलियुग शठ है। (बै०)। ३. कामक्रोधादिभूतोंने शरीरमें बाधा कर रक्खी है। (भ०)। ४. किन्तु इन दिनों शरीरधारियोंद्वारा कष्ट होता है, वे (पीड़ा करनेवाले) आपके दास हैं। (वीर)। ५. तुम्हारे शठ और अत्याचारी किंकर अर्थात् काशीके गुंडे मुझे कष्ट देते हैं। (दी०)। ६. काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य जो आपके दास हैं, मुझे सताने लगे हैं। (वि०)। ७. (शुक्रजी लिखते हैं कि) पंचमहाभूतोंके सत्वअंशसे मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार ये चारों अन्तःकरण हैं। उन्हींका धर्म इच्छा, द्वेषादि है। जीवात्माके यही अधिभौतिक क्लेश हैं और चैतन्यात्माकी सत्तासे अपना‌अपना काम करते हैं, इसलिये सेवक हैं। ८. डा० माताप्रसादगुप्तजीका मत है कि पहला और तीसरा प्रकारका विरोध काशीके शिवोपासकोंने, कदाचित् शिवमंदिरके पुजारियोंने किया। इस विरोधका उल्लेख शिवसे प्रार्थना करते हुए कवि, कवितावली पद १६५ 'देवसरि सेवों बामदेव' और विनयपत्रिका पद ८ 'गाँव बसत बामदेव' में करता है। शिवोपासक पुजारियोंके विरोधका कारण कदाचित् आसानीसे समझा जा सकता है। यद्यपि तुलसीदासने शिवोपासनाका विरोध नहीं किया, बल्कि रामभक्तिकी प्राप्तिकेलिये उसे एक आवश्यक साधनकेरूपमें स्वीकार किया। फिरभी उनकी रचनाओंसे रामभक्तिकी लोकप्रियता जनतामें एक बार बड़े ज़ोरोंपर बढ़ी होगी, और उस बाढ़में कुछ आश्चर्य नहीं कि बहुतसे शिवभक्तभी रामभक्तिकी ओर आकृष्ट होने लगे हों और उनके उपास्यके एकाधिपत्यसे बाहर निकलने लगे हों अथवा इन पुजारियोंको भविष्यकेलियेही इस प्रकारकी आशंका होने लगी हो, इसलिये उस शिवपुरीमें यदि उन्होंने हमारे कविको पीड़ा पहुँचानेका कोई प्रयत्न किया हो तो कुछ आश्चर्य न करना चाहिये।

और न अब माँगता हूँ। केवल आपके किंकर जो कष्ट देते हैं उनसे रक्षा चाहता हूँ और वह भी खाली मुँहसे डांट देनेको कहता हूँ, और कुछ नहीं।

६ (क) ‘ बेगि बोलि ’ से जनाया कि कष्ट अत्यंत बढ़ गया है, सहा नहीं जाता, शीघ्रता न करनेसे प्राणोंपर आ बनेगी। पुनः, भाव कि उनको खबर न होने पावे कि मैंने शिकायत की है, नहीं तो वे और कष्ट देंगे। इसके पहलेही उनको डाँट दिया जाय। (ख) ‘ करतूति कठोरे ’ इति। भूतप्रेतोंकी करनी कठोर होती है। ये क्या कठोर करनी कर रहे हैं सो आगे बताते हैं।

७ ‘तुलसी दलि रूंध्यो चहै सठ साखि सिहोरे’ इति। यहाँ ‘तुलसी’ शब्द श्लिष्ट है। तुलसीदास और तुलसीवृक्ष दोनोंका बोधक है। यथा, ‘ **आनन्दकानने ह्यस्मिन् जंगमस्तुलसीतरुः** ’। तुलसीदास तुलसीतरु-रूप हैं, तुलसीको दलना तुलसीदासको मार डालनेका उपाय करना या मारना है। प्रयोग करनेवाले सेहुँड़रूप हैं और शठ भूतप्रेतादि हैं जो उनको रूँधना चाहते हैं अर्थात् तुलसीदासको मारकर उन तुच्छ दुष्टोंको सुखी करना चाहते हैं। यहाँ ललित अलंकार है। यह तो भावार्थका स्पष्टीकरण हुआ। इसमें कठोर करतूत क्या है सो सुनिये। यह रीति है कि तुलसी, गुलाब, जुही, बेला, रसाल, पीपल, बट आदि अच्छे वृक्षोंकी रक्षा-केलिये उसके चारोंतरफ बबूल, सेंहुड़, नागफनी आदि काँटेदार कटीले कुत्सित वृक्षोंकी शाखाएँ काटकर उसकी बारी बनाते हैं जिससे पशु आदिसे वह सुरक्षित रह सके। ऐसा न करके जो अच्छे वृक्षोंको काटकर उनसे सेंहुड़ आदिकी रक्षाकेलिये बारी बनावे वह मूर्ख समझना चाहिये। इसीसे उन लोगोंको ‘शठ’ कहा कि उन दुष्टोंकी सहायता करते हैं जिनको वस्तुतः दंड देना चाहिये था और मुझको कष्ट देते हैं कि जो रामनामका प्रचार करता है, भजन करता है और जिसकी रक्षा करना उनका धर्म है। यथा, ‘ **अस कवन सठ हठि काटि सुरतरु बारि करिहि बबूरही।** ’ (कि०) मिलान कीजिये, ‘ **बबुर बहेरे को बनाय बाग लाइयत रूंधिबे को सोई सुरतरु काटियतु है** ’॥

अर्थात् इस कलिकालमें नीच लोग बबूर बहेड़ेके बाग खूब सजा-कर अच्छी तरह लगाते हैं और बागकी रक्षाकेलिये चारों ओर बारी लगानेकेलिये कल्पवृक्ष काट डालते हैं। ठीक यही भाव ‘ तुलसीदलि रूंध्यो चहै सठ साखि सिहोरें ’ का है। शठ लोग सिहोड़ेकी रक्षाकेळिये तुलसीको काटकर उससे बारी बनाना चाहते हैं। *

पाठान्तरपर विचार—शाखा और शाखी शुद्ध संस्कृत शब्द है। मोटी डाल जो जड़से निकलती है उसे शाखा कहते हैं। यथा, ‘ **वृक्षो महीरुहः शाखी बिटपी पादपस्तरुः** ’ इत्यमरकोशे। शाक=सागभाजी, तरकारी, सब्जी। शाखा तो डालीका नाम हैं, अतः वह पाठ होही नहीं सकता। ‘ साक ’ पाठ लें तो साक और सिहोरे दो चीजें हैं। इनमेंसे काँटेदार और बारीमें लगाया जानेवाला ‘ सिहोरा ’ है, न कि शाक। अतएव ‘ साखि सिहोरे ’ ही ठीक जँचता है।

---

* भावार्थान्तर—१ ये मूर्ख तुलसीदलको सिहोरेकी डालीसे रूंधना चाहते हैं अर्थात् हरिभक्तिरूपी तुलसीके वृक्षको बाधारूपी काँटोसे अवरुद्ध करना चाहते हैं अर्थात् मुझे कष्ट पहुँचाकर रामभक्तिसे हटाना चाहते हैं। (वीर) २ ये दुष्ट तुलसीदलको कुचलकर उसके स्थानपर थूहड़की डालियाँ लगाना चाहते हैं। तुलसीदासके हृदयसे भावकी भक्ति दूरकर उसके स्थानमें कामवासनाएँ आरोपित करना चाहते हैं (वि०)। ३ ‘ तुलसीको उखाड़कर सिहोरेकी शाखाको रोपना चाहते है। भावकि तुलसीरूप ज्ञान, वैराग्य, क्षमा, करुणादिको दलकर स्त्रीपुत्रादिविषयक मलिन वासनारूपी सिहोरेकी डालको हृदयमें स्थित करना चाहते हैं। (डु०)। संभवतः यह भाव विनयके ‘तिन्हहिं उजारि नारि अरि धन पुर राखहि राम गुसाई’ के आधारपर लिखा गया है। यही भाव बाबा हरिहरप्रसादजीनेभी दिया है। ४ भक्तिका प्रचार मिटाकर पापकर्मोंका प्रचार करना चाहते हैं। तुलसीसम साधुजनोंकी सिहोरेसम दुष्टोंकी रक्षा करना चाहते हैं। (वै० दी०)। ६ अतुल प्रेम, पराभक्ति सुखको उखाड़कर कटीले विषयसुखको आरोपित करते हैं। (सू० दी० शु०)

'तुलसी दल' पाठ स्पष्टही अशुद्ध है, दलकी बाडी नहीं बनती, वृक्षकी डालियोंकी बनती है।

९ [९] राग रामकरी

सिव सिव होइ प्रसन्न करि[1] दाया।
करुनामय उदार[2] कीरति बलि जाउँ हरहु निज माया ॥१॥
जलजनयन गुनअयन मयनरिपु महिमा जान न कोई।
बिनु तव कृपा रामपदपंकज सपनेहुं भगति न होई ॥२॥
रिषय[3] सिद्ध मुनि मनुज दनुज सुर अपर जीव जग माहीं।
तुअ[4] पद बिमुख पार[5] न पाव[6] कोउ कलप कोटि चलि जाहीं ॥३॥
अहिभूषन दूषनरिपुसेवक देव देव त्रिपुरारी।
मोह निहार दिवाकर संकर सरन सोक भय हारी ॥४॥
गिरिजा मन मानसमराल कासीस[7] मसाननिवासी।
तुलसिदास हरिचरनकमल हर[8] देहु भगति अबिनासी ॥५॥

शब्दार्थ.—करि=कर, करो। करुनामय=करुणायुक्त, करुणाके स्वरूप। 'मयट्' का प्रयोग बाहुल्य जनानेकेलिये किया जाता है। उदार कीरति=जिसकी कीर्ति महान् बड़ी है। 'महान् दाता हैं,' ऐसी जिनकी कीर्ति है। माया = देवताओंमेंसे किसीकी कोई लीला, शक्ति, इच्छा वा प्रेरणा। यथा, 'तेहि आश्रमहि मदन जब गयऊ। निज माया बसंत निरमयऊ॥' (बा०)। जलजनयन=कमलनेत्र, कमलके दलके समान लंबे। करुणाजल पूर्ण नेत्रवाले। गुनपद १ और १३

१ करि–६६, रा०। करु—प्रायः औरोमें। २ उदार कीरति–६६ ह०, ज०, ५१, ७४, आ०। कीरति उदार—भा० बे०। ३ रिषै–६६ ऋषी–५१, शि० वै०, मु०। रिषय—भा० ७४, रा. ज० बे०। ४ तुअ–६६, रा० भ०। तव–मा० बे०, ७४, ज०। तुव–१५। ५ पार न–६६, रा०। पार नहिं—मु०, ७४, ज०। न पार—भा०, बे०, ह० १५, आ० (मु०)। ६ पावत—७४, मु०। पावहि–ज०। ७ काशी श्मशान–ह०। ८ हर–६६. रा०, भा०, बे०, ह०, ज०। बर–५१, ७४, आ०। बरु—१५ (हाशियेपर 'हर' है।)

देखिये। अयन = घर। मयन (सं० मदन) = कामदेव। मयनरिप = पद ३, ७ 'कामरिपु' देखिये। पंकज = पंक (कीचड़) से जायमान। कमल। सपना = (सं० स्वप्न) सोनेकी अवस्था, निद्रामें अनुभव होनेवाली बात या दिखाई देनेवाला दृश्य। प्रायः पूरी नींद न आनेकी दशामें मनमें अनेक विचार उठा करते हैं जिनके कारण कुछ घटनाएँ मनके सामने उपस्थित हो जाती हैं। इसीको स्वप्न कहते हैं। यद्यपि वास्तवमें उससमय नेत्र बंद रहते हैं और इन बातोंका अनुभव केवल मनको होता है तथापि बोलचालमें इसके साथ 'देखना' क्रियाका प्रयोग होता है। अल्प कर्मोंका फलभोग स्वप्नमें होता है। रिषय सिद्ध मुनि = ऋषि – वेदमंत्रोंका प्रकाश करनेवाला, आध्यात्मिक और अधिभौतिक तत्त्वोंका साक्षात्कार करनेवाला। ये सात प्रकारके माने गये हैं। १ महर्षि (जैसे व्यास), २ परमर्षि (जैसे भेल), ३ देवर्षि (जैसे नारद), ४ ब्रह्मर्षि (जैसे वसिष्ठ), ५ श्रुतर्षि (जैसे सुश्रुत), ६ राजर्षि (जैसे ऋतुपर्ण) और ७ कांडर्षि (जैसे जैमिनि)। एक पद ऐसे सात ऋषियोंका माना गया है जो कल्पान्त प्रलयोंमें वेदोंको रक्षित रखता है। 'रिषय' (ऋषयः) बहुवचन है अर्थात् ऋषिगण। सिद्ध – जिसने योग या तपद्वारा अलौकिक लाभ या सिद्धियां प्राप्त की हो। मुनि–मननशील महात्मा; ईश्वर, धर्म, सत्यासत्यका सूक्ष्म विचार करनेवाला व्यक्ति। अपर = दूसरा। जीव = जीवधारी, प्राणी। बिमुख = जिसकी स्थिति या आचरण अनुकूल न हो; विरोधी। कलप = (कल्प) कालका एक विभाग जिसे ब्रह्माका एक दिन कहते हैं और जिसमें १४ मन्वन्तर अर्थात् ४ अरब ३२ करोड़ वर्ष होते हैं। चलि जाहीं = बीत जायँ। मोह = स्वरूपकी विस्मृति। हम कौन हैं, हमारा स्वरूप क्या है, यह भूलकर अपनेको अनात्म देह मानने लगना 'मोह' है। (पद १० देखिये)। निहार = कुहरा, पाला। '**अवश्यायस्तु निहारस्तुषारस्तुहिन हिमम्।**' (इत्यमरः) मानस = मानससरोवर। हिमालयपरकी एक प्रसिद्ध बड़ी झील जिसके विषयमें प्रसिद्ध है कि ब्रह्माजीने अपनी इच्छामात्रसेही इसका निर्माण किया था। हमारे प्राचीन ऋषियोंने इसके आसपासकी

भूमिको स्वर्गतुल्य कहा है। रामचरितमानस बालकांड दोहा ३५–३९ में इसका रूपक दिया हुआ है। मराल = हंस। मसान = मरघट; जहाँ मुर्दे जलाये जाते हैं। अबिनासी = अविनाशिनी; नाशरहित।

पद्यार्थ—हे शिवजी! हे शिवजी! प्रसन्न होकर मुझपर दया कीजिये। आप करुणामय और उदारकीर्ति हैं। मैं बलिहारी जाता हूँ। आप अपनी माया समेट लीजिये। १। आप कमलनयन, गुणोंके धाम और कामदेवके शत्रु हैं, आपकी महिमा कोई नहीं जानते। बिना आपकी कृपाके श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंमें भक्ति स्वप्नमेंभी नहीं हो सकती। २। ऋषि, सिद्ध, मुनि, मनुष्य, दनुज, देवता तथा औरभी जीव जो संसारमें हैं, वे आपके चरणोंसे विमुख होकर (भवसागर) पार नहीं पा सकते, (अर्थात् जन्ममरणसे छुटकारा नहीं पा सकते।) चाहे करोड़ों कल्प बीत जायँ। ३। आप सर्पोंका भूषण धारण करनेवाले, दूषणरिपु, श्रीरघुनाथजीके सेवक, देवदेव महादेव, त्रिपुरासुरके नाशक, मोहरूपी कुहरेके नाशके लिये सूर्यरूप, कल्याण करनेवाले और शरणागतके शोक और भय हरनेवाले हैं। ४। श्रीपार्वतीजीके मनरूपी मानससरोवरके हंस, काशीपति, श्मशानमें रहनेवाले, जीवोंके क्लेश हरनेवाले शङ्करजी! तुलसीदासको भगवान्‌के चरणकमलोंकी अविचल भक्ति दीजिये। ५।

टिप्पणी—१ 'सिव सिव होइ प्रसन्न करि दाया' इति। दया करनेकी तथा माया हरनेकी प्रार्थनाके सम्बन्धसे 'शिव' सम्बोधन दिया गया है। भाव कि आप अपने सेवकोंपर कभी क्रोध नहीं करते, आप सदा मंगलकार और कृपालु हैं, आप समस्त कल्याणोंके निधान हैं और भक्तोंके पाप और त्रिताप हरनेमें सदा लगे रहते हैं। ऐसे अपने 'शिव' नामको सार्थक कीजिये।

२ (क) 'सिव सिव' अर्थात् दो बार 'शिव' कहनेमें कोई आदरकी, कोई मायासे भयातुर होनेके कारण भयकी विप्सा कहते हैं और कोइ एक 'शिव' को दूसरेका विशेषण मानकर अर्थात् 'कल्याणकारी शिवजी' ऐसा अर्थ करते हैं। पं० श्रीरामकुमारजी अपने खर्रेमें लिखते हैं कि

' इस पदमें ऐश्वर्यलिये हुए विनय की गयी है, निस्त्रैगुण्यमें शिव पद दिया गया है और यहाँ महिम्नस्तोत्रका इशारा है।'

(ख) ' करुनामय उदार कीरति ' इति। प्रथम ' शिव शिव ' से अपना भयभीत होकर शरणमें आना और फिर 'करुनामय उदार कीरति' विशेषणोंद्वारा उनकी करुणा और दयाको उत्तेजित कर तब ' निजमाया ' हरनेको कहा। आगे जो ' मोह निहार दिवाकर संकर ' में कहा है वही यहाँ ' निजमाया ' से मोह अभिप्रेत है। ' करुणा ' और ' उदारकीर्ति ' की पूर्व पदोंमें काफी व्याख्या हो चुकी है।

(ग) ' निजमाया ' इति। ' निजमाया ' क्या है ? इसपर प्रथम हम टीकाकारोंके मत लिखते हैं (१) ' आत्मा जो सत्य है उसमें मिथ्याबुद्धि और देह जो मिथ्या है उसमें सत्यबुद्धि ' यही निजमायाका स्वरूप है। (हु०, टी०) आत्मा नित्य है, उसमें नाशत्वबुद्धि और देहादि अनित्यवस्तुओंमें नित्यबुद्धि ' माया ' है। (२) शब्द स्पर्श रूप रस गंध इन्द्रियविषयरूपमाया प्रसिद्ध है। इनकी प्रबलतासे कामक्रोधादि जीवको नाश करते हैं। (वै०) (३) तमोगुणरूपी अंधकार जो हृदयमें है, अथवा आपके पार्षदोंकी माया जो रोगरूपसे पीड़ित कर रही है। (च०) (४) वही अधिभौतिक कष्ट जिसका ज़िक्र पद ८ में हो चुका है। (दी०)

प्रत्येक देवता, दैत्य और राक्षसकी पृथक् पृथक् अपनी अपनी माया होती है। जिसका जैसा सामर्थ्य होता है, वैसीही बलवती उसकी माया होती है। श्रीरघुनाथजीकी माया परम बलवती है। इससे अधिक विशाल और बलवती किसीकी माया नहीं है। यथा, 'यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादि देवासुरा।', 'ऊमरितरु बिसाल तवमाया। फल ब्रह्मांड अनेक निकाया॥ जीव चराचर जंतु समाना। भीतर बसहिं न जानहिं आना॥ ते फल भच्छक कठिन कराला। तव भय डरत सदा सोउ काला॥' (आ), 'दैवी ह्येषा गुणमयी ममममाया दुरत्यया। मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥' (गीता ७।१४)।

श्रीमन्नारायणकी मायाका उल्लेख बालकांडमें आया है। यथा, 'श्रीपति निजमाया तब प्रेरी। सुनहु कठिन करनी तेहि केरी। निजमाया बल देखि बिसाला। हिय हँसि बोले दीनदयाला॥' बल ऐसा था कि परम भागवत देवर्षि नारदभी उसके चक्करमें आ गये। यहाँभी 'निजमाया' पद आया है।

उत्तरकांडमें वेदोंने जो स्तुति की है उसमेंभी 'तवमाया' शब्द है और किष्किंधामें हनुमान्‌जीके वाक्यमेंभी है। यथा, 'तवविषम माया बस सुरासुर नाग नर अग जग हरे। भवपंथ भ्रमत अमित दिवसनिसि काल कर्म गुननि भरे॥' (उ०) तवमाया बस फिरउं भुलाना।' (कि०) इत्यादि। इसी तरह शिवजीसे विप्रजी बिनती करते हुए कहते हैं, 'तव माया बस जीव जड़ संतत फिरहि भुलान। तेहि पर क्रोध न करिय प्रभु कृपासिंधु भगवान॥' (उ०) यह स्तुति ब्रह्मात्मक अर्थात् शिवशरीरक ब्रह्मकी वन्दना है। इसी तरह अन्य देवताओंकीभी माया है। अयोध्याकांडमें इंद्रादिकी मायाकी चर्चा है। यथा, 'लोग सोग श्रम बस गए सोई। कछुक देवमाया मति मोई।' (अ०) 'सुरमाया सब लोग बिमोहे। रामप्रेम अतिसय न बिछोहे॥' (अ०) इत्यादि। और राक्षसी माया तो लंकाकांडमें बराबर देखी जाती है।

'हरहु निजमाया' इति। वह 'निजमाया' क्या है जिससे रक्षाकी प्रार्थना करते हैं? मोह आदिही आपकी माया है जिससे रक्षा चाहते हैं। यह बात 'मोह निहार दिवाकर संकर' शब्दोंसे ग्रंथकारने स्वयं स्पष्ट कर दी है। 'हरहु' का भाव कि आपकी मायासे मैं अत्यन्त संकटमें पडा हूँ, बहुत घबड़ाया हूँ।

३ (क) 'जलजनयन गुनअयन मयनरिपु' इति। 'जलजनयन' से कमलदलसमान लम्बे, करुणाजलभरे, दयार्द्र, शीलवान् तथा दर्शकको आल्हादकर्ता जनाया। 'गुणअयन' से अमित अपार दिव्यगुणयुक्त जनाया। महिम्नस्तोत्रमें कहा है, 'असित गिरिसमं स्यात्कज्जलं सिंधुपात्रे सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी। लिखति यदि गृहित्वा शारदा

सर्वकालं तदपि तवगुणानामीश पारं न याति ॥' मानसमें भी कहा है, 'चरित सिंधु गिरिजा रमन बेद न पावहिं पार'।

'मयनरिपु' इति । स्मरण रहे कि श्रीरामपदप्रेम अर्थात् रामभक्तिवर माँगनेमें हमारे पूज्य भक्तशिरोमणि कविने प्रायः 'कामरिपु' या इसीका कोई समानार्थक विशेषण वा संबोधन श्री शिवजीकेलिये प्रयुक्त किया है। पूर्व पद ३ और ७ में 'देहु कामरिपु रामचरनरति' और आगे पद १० में 'देहि कामारि श्रीरामपदपंकजे भक्तिमनवर्त गत भेद माया।' कहा है। वैसेही यहाँ 'मयनरिपु' विशेषण दिया है, क्योंकि वे श्रीराम-भक्तिका बरदान माँगना चाहते हैं। यथा, 'बिनु तव कृपा रामपदपंकज सपनेहु भगति न होई ॥ तुलसिदास हरिचरनकमल हर देहु भगति अबिनासी ॥'

भक्ति माँगनेमें 'कामरिपु' 'मयनरिपु' और 'कामारि' विशेषणोंका प्रयोग साभिप्राय है। कारण कि कामके रहते भक्ति होही नहीं सकती। जो कामारि है वही 'निष्काम' और 'अविनाशी' भक्ति दे सकता है। (पद ३, ७ देखिये।)

(ख) 'महिमा जान न कोई'। भाव कि महिमा अपार है, कौन जान सकता है? पुनः, भाव कि यदि लोक महिमा जानते तो आपको छोड़कर क्यों दरदर माँगते फिरते। एकबार आपसेही माँगकर अयाचक न हो जाते?

(ग) 'महिमा जान न कोई' कहकर 'बिनु तव कृपा रामपद' कहनेका भाव कि यह आपकी भारी महिमा है। आप श्रीरघुनाथजीके इतने प्यारे हैं कि उन्होंने आपको अपनी भक्तिका खज़ान्ची, कोठारी वा भण्डारीही बना दिया है। श्रीमुखवचन है कि 'जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी। सो न पाव मुनि भक्ति हमारी ॥', 'संकरभजन बिना नर भगति न पावइ मोरि।' 'सपनेहुँ भगति न होइ' का साधारण भाव तो सब जानतेही हैं। दूसरा भाव यह है कि यदि कोई सोचे कि जाग्रतावस्थामें न सही, स्वप्नमेंही हम अपनेको रामभक्त देखकर अपना जी भर लेंगे तो उसपर कहते हैं कि यहभी नहीं होनेका,

यह ख्याल 'खयाली पुलाव' के समान है। स्वप्नमेंभी कभी तुम अपनेको रामभक्त होनेका सौभाग्य नहीं प्राप्त कर सकोगे। इतनेके लियेभी तरसतेही रह जाओगे।

(घ) 'रिषय, सिद्ध, मुनि और मनुज' से भूलोक, सुरसे स्वर्गलोक और असुरसे पाताललोक, इसतरह इनसे समस्त त्रैलोक्यवासी सूचित कर दिये। 'अपर जीव' से जलचर, थलचर, नभचर, यक्ष, गंधर्व आदि सब कह दिये।

(ङ) 'तुअ पद बिमुख' इति। यथा, 'सिवद्रोही मम भगत कहावा। सो नर सपनेहु मोहि न पावा॥' 'संकर बिमुख भगति चह मोरी। सो नारकी मूढ़ मति थोरी॥ संकरप्रिय ममद्रोही सिवद्रोही ममदास। ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुँ बास॥' लं० २॥

४ 'अहिभूषन दूषनरिपुसेवक' इति। (क) अहिभूषण— 'कुंडल कंकन पहिरे ब्याला', 'भुजग भूति भूषन त्रिपुरारी', 'यस्योरसि व्यालराट्' (अ० मं०) 'कालव्याल कराल भूषणधरं' (लं०) इत्यादि। मुकुट, कुंडल, कंकण, हार इत्यादि सभी आभूषण सर्पोंकेही हैं। सर्प इसप्रकार लपेटे हैं कि वे मुकुट, कुंडल आदि मालूम होते हैं। पुनः, भूषणका भाव कि विषधर सर्प आपको वैसेही हैं जैसे रत्नोंकी माला। 'अहिभूषण' से कराल, अमंगलरूप भासित होता है। इससे आगे 'दूषनरिपुसेवक' और 'देव देव' आदि विशेषण देते हैं।

आध्यात्मिक रहस्य—'अहिभूषन' के कुछ आध्यात्मिक रहस्य यहाँ लिखे जाते हैं। प्रथम स्थूल अभिप्राय यह है कि मंगल और अमंगल सब कुछ ईश्वर शरीरमें हैं। दूसरा अभिप्राय यहभी है कि संहारकारक शिवके पास संहारसामग्रीभी रहनीही चाहिये। समयपर उत्पादन और समयपर संहार, दोनोंही ईश्वरकेही काम हैं। सर्पसे बढ़कर संहारक तमोगुणी कोई होही नहीं सकता; क्योंकि अपने बालकोंकोभी खा जाना, यह व्यापार सर्प जातिमेंही देखा जाता है, अन्यत्र नहीं। तीसरा अभिप्राय किंचित् निगूढ़ है। चन्द्रमा, मंगल, बृहस्पति आदि

ग्रह जो सूर्यके चारों ओर घूमते हैं, वे अपने एक परिभ्रमणमें जिस मार्गपर गये थे, ठीक उन्हीं बिन्दुओंपर दूसरी बार नहीं जाते। किंचित् हटकर उसी मार्गपर चलते हैं, यों एकएक बारके भ्रमणका एक एक कुण्डलाकार वृत्त बन जाता है। कुछ नियत परिभ्रमणोंके बाद वे फिर अपने उस पूर्व वृत्तपर आ जाते हैं। यह नियम भिन्नभिन्न ग्रहोंका भिन्न भिन्न रूपसे है। मंगल ७६ वर्षमें फिरसे अपने पूर्व वृत्तपर आता है। और और ग्रहोंकाभी समय नियत है। यह भिन्नभिन्न मण्डलोंका समुदाय रस्सीकी तरह लपेटा हुआ ख्यालमें लाया जाय तो वह सर्पकुण्डलीके आकारकाही होता है। अतः वेदोंमें इनका व्यवहार नाग वा सर्प कहकरही किया गया है। आधुनिक ज्योतिषशास्त्रमें इन्हें 'कक्षावृत्त' कहते हैं। सूर्यको मध्यमें रखकर घूमनेवालोंमें आठ ग्रह मुख्य हैं। अतः आठही सर्प प्रधान माने गये हैं। औरभी बहुतसे तारे घूमनेवाले हैं, उनके लघु सर्प बनते हैं। ये सब ग्रह और उनके कक्षावृत्त (सर्प) ईश्वरके शरीर ब्रह्मांडमें अन्तर्गत हैं। इसलिये शिवके शरीरमें भूषणरूपसे सर्पोंकी स्थिति बतायी गयी है। तारामण्डलमेंभी अनेक रुद्र हैं और उनके आकार सर्प जैसे दिखायी देते हैं। उन सबके धारक मुख्य रुद्र भगवान शङ्कर हैं। यह चौथा अभिप्राय है। (महामहोपाध्याय पं० श्रीगिरिधरजी शर्मा, चतुर्वेदी)

४ (ख) 'दूषनरिपुसेवक' इति। दूषणरिपु कहकर अहिभूषण वा अमंगलवेष धारण करनेका कारणभी बताया कि इनके दर्शन, सेवा, उपासना, आज्ञापालन आदिके सुखकेलियेही ऐसा वेष किये हैं। यथा, '**जेहि सुख लागि पुरारि असिव बेष कृत सिव सुखद।**' पुनः भाव कि जैसे रघुनाथजीकी परम शोभा सौन्दर्यसे खरदूषणादि मोहित हो गये थे वैसेही भगवान्‌की आज्ञासे असुरोंको मोहित करनेकेलिये शिवजी यह वेश बनाये रहते हैं। यथा, '**त्वंच रुद्र महाबाहो मोहशास्त्राणि कारय** (इति पाद्मे)।' शिवजी पर हैं, देवोंके देव हैं, परम दिव्य हैं, मंगलरूप हैं और शंकर अर्थात् कल्याणकर्ता हैं। पुनः भाव कि जिनकी अलौकिक परमशोभाकी खरदूषणादि शत्रुओंनेभी मुक्तकंठसे

भूरि भूरि प्रशंसा की है उन श्रीरामजीके ये सेवक हैं। श्रीरामचन्द्रजी 'मंगलभवन अमंगलहारी' हैं तब उनके सेवक कब अमंगलरूप हो सकते हैं? सौंदर्यनिधान व्यक्तिके सेवकभी सुंदर होते हैं।

श्रद्धेय लाला श्रीभगवानदीनजी लिखते हैं कि 'दूषणरिपुके सेवक अर्थमें विचार करना चाहिये कि किसीकी प्रशंसामें यह कहना कि 'तुम अमुकके गुलाम हो' प्रशंसा होगी या निंदा? परन्तु भगवत्सेवक होना निंदा नहीं हैं। यथा, 'रामहिं भजहिं तात सिव धाता।', 'रघुकुलमनि मम स्वामि सोइ कहि सिव नायेउ माथ।' इत्यादि। श्रीसीतापति रामचन्द्रजी चराचरमात्रके स्वामी हैं। यथा 'तुम्ह त्रैलोक्य ईस रघुनाथा'। और शिवजीके संबंधमें कविने 'सेवक स्वामि सखा सियपी के' कहाभी है। तब 'सेवक' कहनेमें क्या आपत्ति पड़ेगी? सेवक हैं तभी तो उनकी भक्ति दे सकेंगे, अपने स्वामीसे हमारीभी सिफ़ारिश कर सकेंगे। भगवान् रामका सेवक होना बड़े अभिमान और गौरवकी बात है। यथा 'अस अभिमान जाइ जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे॥', 'नेमप्रेम संकर कर देखा। अबिचल हृदय भगति की रेखा॥ प्रगटे रामकृतज्ञ कृपाला। रूप सील निधि तेज बिसाला॥ संकर सोई मूरति उर राखी॥' श्री रामजी तो 'स्वारथ रहित सखा सबही के' हैं, अतः शंकरजीकेभी सखा हैं।

५ 'मोह निहार दिवाकर संकर' इति। शंकरजी सूर्य हैं, उनके वचन सूर्यकी किरणें हैं, मोह पाला है। सूर्यके उदयसे पाला बिना परिश्रम सहजही दूर हो जाता है। इसी तरह आपकी कृपासे मोह जो जीवोंको जड़ बनाकर भवप्रवाहमें डाल देता है सहजही नष्ट हो जाता है। यथा, 'सुनु गिरिराजकुमारि भ्रमतम रबिकर बचन मम।' भाव यह कि आप जीवोंको उस ज्ञानस्वरूपका बोध दे देते हैं जिससे वह भगवान्को सर्वात्मा जान लेता है। ऐसा बोध हो जानेसे शोक और भय दूर हो जाते हैं। इसीसे 'मोह निहार दिवाकर' कहकर 'सोक-भय हारी' कहा। 'मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला। तेहि ते पुनि उपजहिं बहु सूला॥' अर्थात् मोह समस्त व्याधियोंकी जड़ है। इसीसे

मूलकाही नाश यहां कहा । मूलके नाशसे वृक्ष, शाखा, इत्यादिका नाश आपही हो जायगा ।

द्वितीयाभिनिवेशसे भय होता है । अर्थात् जबतक मैं और मोर, तैं और तोर यह जीववैषम्य, भेदभाव, द्वैतबुद्धि रहती है तभीतक भय रहता है । जब '**निजप्रभुमय देखहिं जगत**' तथा जब '**मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत**' यह स्वभाव हो जाता है तब भय कहां संभव है ? न किसीसे वैरही है न विरोध। सबमें वही एक प्रभु सर्व उरप्रेरक दिख पड़ता है । तब भय कैसा ? यथा, '**बैर न विग्रह आस न त्रासा । सुखमय ताहि सदा सब आसा ।**'

६ (क) 'गिरिजा मन मानस मराल' इति। हंस मानससरोवरमें विहार करते हैं। यथा '**सुरसर सुभग बनज बनचारी। डाबर जोग कि हंसकुमारी।**' (अ०) वैसेही शिवजी सदा पार्वतीजीके हृदयमें निवास करते हैं और पार्वतीजी उनको ऐसी प्रिय हैं कि कभी इनके मनसे वे अलग नहीं होतीं । गिरिजा परोपकारिणी हैं तब उनके मनमें बसनेवाला तो उनसेभी अधिक परोपकारी अवश्यही होगा। यहाँ सम अभेद रूपकालंकार है ।

(ख) 'कासीस' इति । भाव कि काशी सहजही जीवोंको समान गति विना माँगे अपनी ओरसे देती है । यथा, '**देत सबहि समगति अविनासी**', '**मुक्तिजन्ममहि जानि ज्ञानखानि अघहानिकर । जहं बस संभु भवानि सो कासी सेइय कसन ॥**' (कि०) यह उदारता पुरीकी है, तब भला उसके स्वामी कैसे उदार होंगे, यह इतनेसेही समझ लें।

(ग) 'मसाननिवासी' कहकर परम वैराग्यवान, त्यागी, निस्पृही, महान् उदासीन और बेपर्वा जनाया। श्मशान अत्यन्त उदासीनताका स्थान है। वहांके निवासी कहकर जनाया कि किसीसे कुछ चाहते नहीं । जो उपकार करते हैं वह निःस्वार्थभावसे, करुणावश, केवल परोपकारहेतु करते हैं । अतएव हमपरभी कृपा करें । पुनः 'कासीस मसान-

निवासी ' से आपकी ईशता दिखायी कि अत्यन्त अमंगल प्रेतस्थानभी शिवजीके ध्यानके संबंधसे जीवोंको मंगलदायकही होता है ।

७ श्मशाननिवासका आध्यात्मिक रहस्य—पं० श्रीजनार्दनजी मिश्र एम० ए०, साहित्याचार्य, ' ब्रह्मका विश्वनृत्य ' इस अपने लेखमें लिखते हैं कि 'शिव संहारकर्त्ता हैं और श्मशान उन्हें प्रिय है। किन्तु वे संहार किसका करते हैं? कल्पान्तमें वे केवल ' द्यावापृथिवी ' का ही संहार नहीं करते वरन् उन बंधनोकाभी संहार करते हैं जो प्रत्येक आत्माको बाँधे रहते हैं। श्मशान क्या है और कहां है? यह वह स्थान नहीं है जहां हम लोगोंका पार्थिव शरीर जलाया जाता है। वरन् वह भक्तोंका हृदय है जो वीरान और उजाड़ हो गया है। इस स्थानसे उस स्थान वा दशाका बोध होता है जहाँ उनका अहंकार अथवा माया और कर्म जलाकर भस्म कर दिये जाते हैं। यही श्मशान है जहाँ नटराज नृत्य करते हैं। इसलिये इनका नाम श्मशानवासी नटराज है।'

८ पाठान्तरपर विचार—हरिहरप्रसादजी ' काशी शमशान ' पाठ देकर भावार्थ यह कहते हैं कि काशीसे बढ़कर श्मशान नहीं जहां ' आय देवतौ जरे '। प्राचीन हस्तलिखित पोथियोंमें अक्षर अलग अलग लिखे-जानेकी रीति देखी जाती है। इसीसे ' कासीस मसान ' और ' कासी समसान ' दोनों पढ़ लिया जा सकता है। परन्तु ' कासी शमशान ' पाठसे केवल काशीके श्मशानमें निवास होनेका अर्थ होता है। और वास्तवमें शंकरजीका निवास सर्वत्र श्मशानोंमें होना देखा सुना जाता है। तांत्रिक सभी श्मशानोंमें अभिचार प्रयोग करते देखे और सर्वत्रही सिद्धि प्राप्त करते पाये जाते हैं। श्मशानानिलय, श्मशानपति, श्मशाननिवासि, मसानि, श्मशानी ये सब शिवजीके नाम हैं। कवितावलीमें कहाभी है ' भवन मसान गथ गाठरी गरदकी।' अतएव ' कासी मसाननिवासी ' ही पाठ ठीक है।

९ ' हरिचरनकमल, हर! देहु भगति अबिनासी ' इति। (क) हरि चरन ' का भाव कि इनके चरण तथा ये स्वयं समस्त क्लेशोंके हरनेवाले

हैं। यथा 'पदकंजद्वंद्वमुकुंद राम रमेस नित्य भजामहे।' क्लेशं हरतीति हरिः' (ख) अविनासी अर्थात् जिसे पाकर फिर भगवद्भक्तका नाश नहीं होता। यथा 'ताते नास न होई दासकर। भेदभगति बाढ़ै बिहंगबर॥' (उ०) कौन्तेय प्रतिजानीहि न मद्भक्तः प्रणश्यति।' (गीता) आप जिस भक्तिको पाकर अविनाशी हो गये हैं, वही भक्ति हमेंभी देकर हमकोभी अविनाशी बना दीजिये। यथा 'नाम प्रसाद संभु अबिनासी। साज अमंगल मंगलरासी।'

(ख) पाठपर विचार–'हर' यहां संबोधन है। अन्वयभी बिलकुल ठीक और सुन्दर है। 'हर! हरिचरनकमल अबिनासी भगति देहु।' 'बर' शब्दकी आवश्यकताही नहीं है। 'बर' का काम 'देहु' से पूरा पूरा चल जाता है। प्रायः समस्त प्राचीन हस्तलिखित पोथियोंका पाठभी यही है। पुनः, देखिये कि इस पदके प्रत्येक चरणमें या तो कोई विशेषणात्मक नाम या सर्वनामके पीछे शंकरजी यह संबोधन दिख पडता है। तब यही चरण क्यों खाली रहता? अतएव 'हर' पाठही समीचीन है। (लमगोड़ाजी)

१० [७] राग धनाश्री*

देव[1] मोह तम तरनि हर रुद्र संकर सरन
हरन मम[2] सोक लोकाभिरामं।
बालससि भाल सुबिसाल लोचन
कमल काम सतकोटि लावन्यधामं॥ १॥
देव[3] कुंदेंदु कर्पूर दर[4] गौर बिग्रह रुचिर
तरुन रबि कोटि तन तेज भ्राजै।
भस्म सर्बांग[5] मर्द्धांग सैलात्मजा ब्याल
नृकपाल माला बिराजै॥ २॥

---

* ६९ में 'दंडक' है। १ मु०, ७४, ५१, बि०, वै० में 'देव' नहीं है। २ भय ह०, भ०। ३ रा०, ६६, ६९, ज०। प्रायः औरोंमें नहीं है। देव कंबु–रा०। कंबु–भा०, बे०, ज०, प्र०, १५, ५१, आ०, ह०। ४ दर गौर–औरोंमें नहीं हैं। ५ सर्बांग अर्द्धांग–भा०, बे०, प्र०, ह०, १५, ज०, ७४, आ०। सर्व्बांग मर्द्धांग रा०, ६६।

देव[६] मौलि संकुल जटा मुकुट विद्युच्छटा[७]
तटिनि बर बारि हरिचरन पूतं।
श्रवन कुंडल गरल कंठ करुनाकंद
सच्चिदानंद बंदे[८] बधूतं॥ ३॥

देव सूल सायक पिनाक[९] पानि
सत्रु बन दहन इव धूमध्वज बृषभजानं।
ब्याघ्र गजचर्म परिधान बिज्ञानघन
सिद्ध सुर मुनि मनुज सेव्यमानं॥ ४॥

शब्दार्थ–मोह = कुछका कुछ समझ लेनेवाली बुद्धि, शरीर और संसारिक पदार्थोंको अपना या सत्य मान लेनेकी बुद्धि, जो दुःखदायिनी होती है। अज्ञान। यथा, 'तुलसिदास प्रभु मोहजनित भ्रम भेद बुद्धि कब बिसरावेंगे।', 'मोहजनित मल लाग बिबिध बिधि कवनिहु जतन न जाई' (८२)। 'मोह निहार' पद ९ देखिये। तारनि (तरणि) = सूर्य, यथा 'तेजहीन पावक ससि तरनी।' (लं०) रूद्र = कूर्मपुराणमें लिखा है कि 'जब आरंभमें बहुत कुछ तपस्या करनेपरभी ब्रह्माजी सृष्टि न उत्पन्न कर सके तब उन्हें बहुत क्रोध हुआ और उनकी आँखोंसे आँसू निकलने लगे। उन्हीं आँसूओंसे भूतप्रेतादिकी सृष्टि हुई। जब सोचवशसे रोने लगे तब (रोते समय) उनके मुखसे ११ रूद्र उत्पन्न हुए। महाभारत आदिपर्व अ० १५ में कहा है कि ब्रह्माके सातवे मानसपुत्र 'स्थाणु' थे। स्थाणुके परम तेजस्वी ग्यारह पुत्र हुए। इन्हेंही ११ रूद्र कहते हैं। रूद्रकी उत्पत्तिकी कथा शतपथ ब्राह्मणमें ६।१।३ (७–१९) शांखायन ब्राह्मणमें, मार्कण्डेयपुराण और विष्णुपुराणमें प्रायः एकही ढंगपर वर्णन की गयी है।

---

६ ६६, भा०, बे०, प्र०, रा०, ज०, में है। ह०, ७४, ५१, आ० में यहाँसे अन्ततक 'देव' नहीं है। ७ विद्युत छटा–ह०, भ०, डु०, वि०, । ८ बन्देऽवधूतं–डु०, भ०, दी०, वि०। प्रायः औरोंमें 'ऽ' नहीं है। ९ पिनाकासि कर–प्रायः औरोंमें।

(टिप्पणी १ देखिये)। रुद्र उत्पन्न होतेही ज़ोर ज़ोर से रोने लगे थे, इसलिये इनका नाम रुद्र पड़ा था। रोनेका कारण यह बताया जाता है कि अविद्याग्रस्त जीवोंको उत्पन्न होते हुए देख आपको रोना आ गया। इसीलिये आप दैवी जीवोंको भागवतधर्मका उपदेश देकर उनके अविद्यारूपी अंधकारको दूर करते हैं और इसप्रकार भगवत्प्राप्तिमें उनकी सहायता करते है। परन्तु असुरोंका तो वे मोहनही करते हैं। उन्हें ऐसी प्रभुकी आज्ञा है। यथा, 'त्वंचरुद्रंमहाबाहो मोह शास्त्राणि कारय' इति पाद्मे। पुनः, रुद्रनाम इससे प्रसिद्ध है कि वे संसाररूपी दावानलसे परितप्त जीवरूपी पशुके रोगरूपी पाशको काटनेवाले हैं। इस-तरह संसारका दुःख दूर करनेके कारण रुद्रनाम सार्थक है। इनके तीन नेत्र बतलाये गये हैं और ये सब लोकोंका नियंत्रण करनेवाले तथा सर्पोंका ध्वंस करनेवाले कहे गये हैं। शिवजीने इसी रूपसे काम-देवको भस्म किया था। यथा, 'रुद्रहि देखि मदन भय माना। दुरा-धर्ष दुर्गम भगवाना।' रुद्रोंके नाम ये हैं। अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, पिनाकी, दहन, ईश्वर, कपाली, मृगव्याध, सर्प, निर्ऋति, स्थाणु और भय। (आदिपर्व)। गरुड़ पुराणमें 'अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, त्वष्टा, अपराजित, त्र्यंबक, विश्वरूपहर, शंभु, वृषाकपि, बहुरूप, कपर्दी और रैवत ये नाम हैं। पुराणोंमें नामोंमें भेद है। संभव है कि नामोंके अर्थ एकही हों अथवा कल्पभेदसे नामोंमें भिन्नता हो। महाभारतमें श्रीकृष्णजीने अर्जुनसे रुद्रोंकी उत्पत्तिकी कथा इस प्रकार कही है कि 'जब प्रलयकी रात्रि बीती थी, तब अमित तेजस्वी नारायणकी कृपासे एक कमल प्रकट हुआ तथा उन्हींकी कृपासे उस कमलमेंसे ब्रह्माका प्रादुर्भाव हुआ। ब्रह्माका दिन बीतनेपर क्रोधके आवेशमें आये हुए भगवान्के ललाटसे संहारकारी रुद्र उत्पन्न हुए। इस प्रकार ये दोनों देवता, ब्रह्मा और रुद्र, ब्रह्माके प्रसाद और क्रोधसे प्रकट हुए हैं और उन्हींके बताये हुए मार्गसे सृष्टि और संहारका कार्य पूर्ण करते हैं। समस्त प्राणियोंको वर देनेवाले ये दोनों देव सृष्टि और प्रलयके निमित्तमात्र हैं।' नारायणोपनिषद्में भी कथा कुछ इसी प्रकारकी है। पद्म पु० सृष्टीखंड

सृष्टिपरंपरा प्रकरणमें लिखा है कि मधुकैटभ वधके पश्चात् ब्रह्माने अपने शरीरके अर्द्धभागसे शुभलक्षणा भार्याको उत्पन्न किया जो इच्छानुसार रूप धारण कर सकती थी। एक बार वह सुरभिके रूपमें ब्रह्माजीकी सेवामें उपस्थित हुई। ब्रह्माजीके उससे ग्यारह पुत्र उत्पन्न हुए। पितामहसे जन्म ग्रहण करनेवाले वे सभी बालक रोदन करते हुए दौड़े। अतः रोने और दौड़नेके कारण उनकी रुद्र संज्ञा हुई। पद ११ टी० ११ देखिये।

भा० ३।१२।७-१४ में रूद्रकी उत्पत्ति और नामकरण आदिकी कथा इस प्रकार है कि जब सनकादिने ब्रह्माकी आज्ञा (सृष्टिरचनाकी) न मानी तब ब्रह्माजीको असह्य क्रोध उत्पन्न हुआ। यह क्रोध उनकी भौंहोंके बीचमेंसे तत्काल एक नील लोहित बालकके रूपमें प्रगट हो गया और रो रोकर कहने लगा 'हे जगत्पिता, बिधाता! मेरा नाम और रहनेका स्थान बताइये।' ब्रह्माजीने कहा 'रो मत। मैं तुह्मारी इच्छा अभी पूरी करता हूँ। तुम जन्म लेतेही फूटफूटकर रोने लगे थे इसलिये तुम्हारा नाम रुद्र होगा। तुम्हारे रहनेकेलिये मैंने पहलेहीसे हृदय, इंद्रियों, प्राण, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा और तप ये स्थान रख दिये हैं।' तुम्हारे नाम मन्यु, मनु, महिनस, महान्, शिव, ऋतध्वज, उग्ररेता, भव, काल, वामदेव, और धृतव्रत होंगे। धी, वृत्ति, उशना, उमा, नियुत, सर्पि, इला, अंबिका, इरावती, सुधा और दीक्षा ये ग्यारह रूद्राणियाँ तुम्हारी पत्नियाँ होंगी। तुम उपर्युक्त नाम, स्थान और स्त्रियाँ स्वीकार करो और इनकेद्वारा बहुतसी प्रजा उत्पन्न करो, क्योंकि तुम प्रजापति हो। सरन – शरण हूं, शरण्य और शरणागत, ये तीनों अर्थ यहां लगते हैं। लोकाभिराम (लोक अभिराम)=लोकके आनंददाता। सुबिसाल=बहुत सुंदर बड़े बड़े। कानतक लंबे होनेसे 'विशाल' और अत्यन्त सुंदर और विशाल होनेसे 'सुबिसाल' कहा। यथा, 'जटा मुगुट सुरसरित सिर लोचन नलिन बिसाल।' (बा०) लावन्यधाम (लावण्यधाम) =अत्यन्त सुंदरताके स्थान। कुंदेंदु=कुंदपुष्प और चंद्रमा। कुंद जुहीकी

तरहका एक पौधा है जिसमें श्वेत फूल होता है। यह कुँआरसे चैततक फूलता रहता है। प्राय: कविलोग दाँतोंकी उपमा इसकी कलियोंसे देते हैं। कर्पूर=कपूर। प्राचीनोंके अनुसार यह दो प्रकारका होता है, पक्क और अपक्क। पोतास, भीमसेन, हिमं इत्यादि इसके बहुत भेद माने गये हैं और उनके गुणभी अलग अलग हैं। आजकल यह कई वृक्षोंसे निकाला जाता हैं। ये सब वृक्ष प्रायः दारचीनी जातिके होते हैं। दर=शंख। यह उज्वल, पुष्ट और सचिक्कन होता है। इसके अन्दर तीन रेखाएँ होती हैं। रेखायुक्त होनेसे इसकी उपमा कंठकेलिये दी जाया करती है। विग्रह=शरीर। रुचिर=सुंदर दीप्तिमान, चमकदार। तरुन (तरुण)= युवावस्थाका, मध्याह्नकालका; दोपहरका। भ्राजना (सं० भ्राजन=दीपन) शोभायमान होना; शोभा पाना। यथा, 'उर आयत भ्राजत बिबिध बाल बिभूषन बीर।' (बा०) सैलात्मजा=शैल (हिमाचल)+ आत्मजा (शरीरसे उत्पन्न) गिरिजा। ब्याल=पेटके बल चलनेवाले जीवजंतु, सर्प। नृकपाल=मनुष्यकी खोपड़ी, मुंड। बिराजै=विशेष शोभित है। मौलि=मस्तक। किसी चीज़का सबसे ऊँचा भाग, सिर। संकुल=परिपूर्ण भरा; संकीर्ण, घना, समूह। जटा=एकमें उलझे हुए सिरके बहुत बड़े बड़े बाल, जैसे प्रायः साधुओंके होते हैं। बिद्युच्छटा (बिद्युत् छटा)= बिजली-कीसी चमकवाले। तटिनी=नदी। पूत=पवित्र। कुंडल=सोने चाँदी आदिका बना हुआ एक मंडलाकार मगर वा मछलीके आकारका आभूषण जिसे लोग कानमें पहनते हैं। गरल=विष। कंद=मेघ, बादल, मूल। (करुणा पद ७ देखिये)। बंदे बधूतं=बंदे अवधूतं। अवधूत-उदासीन योगीश्वर वेष। परमहंसस्वरूप। भागवतमें दत्तात्रेयजीको अवधूत कहा है। सूल (शूल)=त्रिशूल। इस अस्त्रके सिरेपर तीन फल नोकदार होते हैं। यह शिवजीका एक खास अस्त्र है। सायक=बाण, तीर। यथा, 'धीरसिरोमनि बीर बड़े बिजई बिनई रघुनाथ सुहाए। लायक ही भृगुनायक से धनु सायक सौंपि सुभाय सिधाए। (क०) पिनाक=शिवजीका धनुष जिससे त्रिपुरासुरका वध किया गया था और जो जनक महाराजके यहां रख दिया गया था। यथा 'का बापुरो पिनाक

पुराना।' (पद ३ टि० ३ देखिये)। पानि (सं० पाणि) =हाथ। सत्रु=शत्रु, रिपु। इव=समान, तरह। यह उपमावाचक शब्द है। धूमध्वज=अग्नि। परिधान=किसी वस्तुसे शरीरको चारों ओरसे छिपाना। पहनना, धारण करना। वस्त्र, पोशाक।

पद्यार्थ—हे देव! हे मोहरूपी अंधकारको मिटानेकेलिये सूर्य-रूप और भक्तोंके क्लेशोंके हरनेवाले हर! हे दुष्टोंकेलिये भयंकर रूप रुद्र और सज्जनोंके कल्याण करनेवाले शंकरजी! मेरे शोकके हरने और लोक (मात्र) को आनंद देनेवाले! मैं आपकी शरण हूँ। आपके ललाटपर द्वितीयाका चंद्रमा विराजमान है। आपके कमल (दल) समान सुंदर बड़े बड़े नेत्र हैं। आप सैकड़ों करोड़ों (अर्थात् अगणित, असंख्य) कामदेवोंके समान शोभासौंदर्यके स्थान हैं अर्थात् आपका रूप अत्यन्त सुंदर है। १। हे देव! कुंदके फूल, चंद्रमा, कर्पूर और शंखके समान सुंदर गौरवर्ण और दीप्तिमान् आपका शरीर है। करोड़ों दोपहरके सूर्यके समान तेज आपके शरीरमें शोभित है। सारे शरीरमें भस्म (वाम) अर्धांगमें पार्वतीजी और (कंठ तथा वक्षस्थलपर) सर्पों और मनुष्योंकी खोपड़ियों (अर्थात् मुंडों) की माला विशेष शोभायमान् हैं। २। हे देव! आपके सिरपर सघन जटाओंका मुकुट है (अर्थात् जटायें मुकुटाकार हैं, इस प्रकार सिरपर सजी हुई हैं कि मुकुटसी दिखाई पड़ती हैं,। यथा 'जटा मुकुट सुरसरित सिर') जिसमें बिजलीकीसी छटा है और (उस सघन जटामुकुटपर) भगवान्के पवित्र चरणके श्रेष्ठ जलवाली नदी अर्थात् गंगाजी हैं। कानोंमें कुंडल, कंठमें हलाहल विष (धारण किये हुए), करुणारूपी जलसे भरे हुए मेघ एवं करुणा-रूपी छायादार वृक्षके मूल, सत्‌चित्‌आनंदरूप, अवधूत शिवजीकी मैं वंदना करता हूँ। ३। हे देव! आप त्रिशूल, बाण और धनुष हाथोंमें धारण किये हुए शत्रुरूपी जंगलको जला डालनेकेलिये अग्निरूप हैं! नादिया (बैल नंदीश्वर) आपकी सवारी है। व्याघ्रांबर और गजचर्म आपके वस्त्र हैं। आप विज्ञानराशि हैं; सिद्धों, देवताओं, मुनियों और मनुष्योंसे सेवित हैं। ४।

नोट–१ वीरकविजी लिखते हैं कि पद १० । ११ । १२ । २५ । २६ । २७ । २९ । ३८ । ३९ । ४० । ४३ । ४४ । ४६ और ४९ से ६१ तकके जो पद आये हैं उन्हें गोसाईंजीने राग धनाश्री वा रामकलीके नामसे प्रसिद्ध किया है । छन्द शास्त्रके अनुसार ये सभी 'दण्डक झूलना' छन्द हैं । अंतर केवल यह है कि झूलनाकी रचना १० । १० । १० । ७ मात्राओंके विरामसे होती है । प्रत्येक चरण ३७ मात्राके होते हैं, अन्तमें एक यगण आता है । इन दण्डकोंमें यगण सब चरणोंके अन्तमें आया है; किन्तु विराम प्रायः २० । १७ मात्राओंका है । बहुतसी मुद्रित प्रतियोंमें संशोधकोंकी कृपासे कितनेही अनावश्यक शब्द बढ़ाये गये हैं जिससे उन पदोंके पढ़नेमें खटक आ जाती है । उन्हें बचाकर पार करना पड़ता है । पर खटक आदि निकालकर प्राचीन पाठमें काटछाँट करके श्रीमद्गोस्वामीजीके पाठकी बड़ी हत्याभी जहाँ तहाँ की गयी है ।

२ श्रीवैजनाथजी लिखते हैं कि 'यहाँ तक (नववे पद तक) माधुर्य, प्रसाद, गुणमय ललित रागोंमें यश, कीर्ति गायी गयी । अब प्रताप वर्णन करते हैं । इसीसे ओज गुणमय दण्डकपदमें वंदना करते हैं । २६ वर्णसे अधिक एक तुकमें होनेसे दंडक संज्ञा होती है' ।

३ भा०, ६६, बे०, रा०, ६९ इत्यादि प्राचीन हस्तलिखित पोथियोंमें 'देव' इस पदमें तथा अन्य बहुतसे पदोंमें आया है । यह गानेमें ऊपरसे मिला लिया जाता है । इस ग्रंथका नाम रामगीतावली था । अतः 'देव' पाठ अशुद्ध नहीं है । यह गोस्वामीजीकाही पाठ है, जो सं० १६६६ की प्राचीनतम पोथीमेंभी मिलता है । कवि तुलसीदासजी संगीतके पूर्ण मर्मज्ञ थे । आधुनिक टीकाकारोंमेंसे बहुतोंने संगीतका मर्म न जानकर उसको उड़ाही दिया है ।

टिप्पणी—१ (क) 'मोह तम तरनि हर रुद्र' इति । 'रुद्र'–ऋग्वेदके द्वितीय मण्डलका ३३ वाँ सूक्त जो गृत्समदसूक्त कहलाता है, रुद्रपरक है । उसके पहले मंत्रका भाव यह है कि 'हे मरुत्पिता, हमें सूर्यदर्शनसे वंचित न करो ।' इससे सूचित होता है कि रुद्र उत्तरीय ध्रुवप्रदेशकी दीर्घ रात्रिके अभिमानी देवता हैं । आगे चलकर तीसरे

मंत्रमें रुद्रसे यह प्रार्थना की गयी है कि आप अंधकारको दूरकर अपने भक्तोंकेलिये ऐसी व्यवस्था कीजिये कि वे निरोग एवं स्वस्थ रहकर अंधकारके सुदीर्घ कालको व्यतीत कर सकें। (शिवाङ्कसे)। इस उद्धरणसे स्पष्ट है कि 'मोह तम' के साथ 'रुद्र' संबोधन कितना सार्थक है। इसीतरह 'हरन मम सोक' के संबंधसे 'हर' और 'लोकाभिरामं' के संबंधसे 'संकर' शब्द सार्थक और उत्कृष्ट हैं। (ख) 'मोहतमतरनि' में सम अभेदरूपक है। हर, रुद्र और शंकरमें 'पुनरुक्तिवदाभास अलंकार' है। पृथक् पृथक् अर्थ होनेसे पुनरुक्ति नहीं है।

२ (क) 'बालससि भाल' इति। यहाँसे ध्यानका वर्णन है। सिरसे ध्यानका वर्णन उठाया है। भालमें बालशशि धारण करनेका भाव यह है कि आप टेढ़े, कुटिल, क्षीण और दीनोंकोभी शरण देते हैं तथा जगत्वन्द्य कर देते हैं। यथा 'यमाश्रितो हि वक्रोपि चंद्रः सर्वत्र वंद्यते।' अतः मेरीभी रक्षा अवश्य करेंगे।

(ख) 'काम सतकोटि लावन्यधामं' इति। भाव कि एक दो कामदेवोंकी कौन कहे, करोड़ों कामदेवभी मिलकर आपके सौंदर्यकी छटा नहीं पा सकते। अथवा यों कह सकते हैं कि असंख्यों कामदेव जब एकत्र हो जाते हैं तब सबकी मिलकर जो शोभा होती है वैसी शोभा आपकी है। ऐसा कहकर अतिशय सौंदर्य दिखाया। यथा, 'मनोभूत कोटि प्रभा श्री शरीरं' (लं०)। इसमें चतुर्थ प्रतीपालंकारकी ध्वनि है।

(ग) 'कुंदेंदु कर्पूर दर गौर' इति। यहाँ गौरवर्णकी चार भिन्नभिन्न उपमाएँ देकर उन सबके पृथक् पृथक् गुण आपमें एकत्र दिखलाए हैं। कुंदसे कोमल; इंदुसे प्रकाशमान्, तापहारक और आह्लाद-कारक; कर्पूरसे सुगंधयुक्त और शङ्खसे पवित्र, पावनकर्ता, सचिक्कन, पुष्ट और मांगलिक आदि गुणभी उज्ज्वलताके साथसाथ दर्शाये गये हैं। मिलान कीजिये, 'कुंद इंदु दर गौर सरीरा' 'शंखेंद्वाभमतीव सुंदर तनुं' 'कुंद इंदु दर गौर सुंदर' (उ०)। पद १२ भी देखिये। यहाँ मालोपमा अलंकार है।

(घ) 'तरुन रबि कोटि तन तेज भ्राजै' इति। तीक्ष्ण तेज कि जिसके सामने कोई ताक न सके। आँखोंमें चकाचौंध उत्पन्न करनेवाला ऐसे तेजकी उपमा प्रायः तरुण सूर्यसे दी जाती है। यथा 'रबि सम तेज सो बरनि न जाई' (उ०) 'रबि सतकोटि प्रकास' (उ०) अग्नि, चंद्र और रवि ये तीन तेजोमय माने गये हैं। यथा, 'तेजहीन पावक ससि तरनी' (लं०)। सबसे अधिक तेज रविमें है। पद २ देखिये। इससे यह भी सूचित करते हैं कि शिवजी संपूर्ण अग्निशक्तिके स्वरूप हैं।*

(ङ) 'तेज भ्राजै भस्म सर्वाङ्ग' इति। मिलान कीजिये, 'तुलसी बिसाल गोरे गात बिलसति भूति मानो हिमगिरि चारु चांदनी सरदकी।' (क०) भाव कि भस्म रमाये हुए तनपर ऐसा तेज है। श्रीलालाभगवान्दीनजी लिखते हैं कि 'भस्म रमाये रहते हैं जिसमें तेजसे आँखें न चौंधे और भक्तजन दर्शन कर सकें।' श्रीवैजनाथजीका कथन है कि "भस्म रमाये होनेपर यह तेज है। यदि बनावटी होता तो भस्मसे मिट जाता। यह तेज करालताके कारण भी न समझीये, क्योंकि अर्धांगमें शैलात्मजा विराजमान् हैं जिनका शीतल, मधुर रूप है। न यह तेज कुछ दिव्य आभूषणोंकेही कारण है। वे तो सर्पोंका भूषण धारण किये हैं।"

---

* पी० एच० बडेरजी 'वेदोंमें शिवका स्वरूप' शीर्षक लेखमें लिखते हैं कि वेदोंमें रुद्र अथवा शिवके असली स्वरूपका जो वर्णन है, उसपर सूक्ष्म विचार करनेसे हम इस निर्णयपर पहूँचे बिना नहीं रह सकते कि रुद्रही महादेव हैं और अग्निही रुद्र है। अथवा महादेवजी रुद्रका पर्यायवाचक शब्द है, अग्निकाही विशेष स्वरूप है। (ऋग्वेद २।१।६, अथर्ववेद ७।८७।१, तैत्तिरीय स० ५।१,३,४ तथा ५।७।३ एवं शतपथ ब्राह्मण ६।१।३,१० तथा १।७।३।८ इत्यादि।) इन उद्धरणोंके प्रमाणसे यह कह सकते हैं कि अग्निका विशेष स्वरूप होनेसे 'तरुण रविकोटि तन तेज भ्राजै' कहा गया।

यहाँ केवल ध्यान वा स्वरूपका वर्णन है। ऐसाही मानस आदि ग्रन्थोंमेंभी वर्णन किया गया है। मिलान कीजिये 'यस्यांके च बिभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके। भाले बाल बिधुर्गले च गरलं यस्योरस ब्यालराट्॥ सोऽयं भूति विभूषणः' (अ०)। इसीसे यहाँ कुछ विशेष भाव नहीं लिखे जाते।

(च) 'भस्म सर्वांगमर्धांग सैलात्मजा' इति। अर्धांगमें शैलात्मजाको कहकर यहाँ शङ्करजीके अर्धनारीश्वरका ध्यान सूचित किया है। शंकरजीके अनेक रूपोंमें यह रूप सर्वोत्तम है। ध्यानपूर्वक देखनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि मानो इसके अंतर्गत मानवजातिका एक महान् आदर्श छिपा हुआ है। इसका आध्यात्मिक रहस्य आगे टि० ६ में देखिये। हां! इतना कह देना यहाँ अनुपयुक्त न होगा कि स्त्रियाँ पुरुषोंकी अर्धांगिनी तो कही जाती हैं पर देखी जाती हैं प्रत्यक्ष आपहीमें। पद ११ भी देखिये। शैलात्मजाको सदा अङ्कमें धारण किये रहते हैं कि सदा परोपकारकी प्रेरणा करती रहें।

३ 'संकुल जटामुकुट बिद्युच्छटा' इति। (क) विद्युच्छटाकी उपमा देकर पीतवर्ण और चमकीली जनाया। यथा, 'सिरसि संकुलित कालकूट पिंगलजटापटल सतकोटि बिद्युच्छटाभं।' (११)। (ख) 'तटिनि बर बारि हरिचरनवा पूतं' इति। यथा, 'मकरंद जिन्हको संभु सिर सुचिता अवधिसुर बरनई॥ करि मधुप मुनि मन जोगी जन जे सेइ अभिमत गति लहैं।' (बा०), 'जे चरन सिव अज पूज्य रज सुभ परसि मुनिपतिनी तरी। नखनिर्गता मुनिबंदिता त्रैलोक्य पावनि सुरसरी॥' पद १८ भी देखिये। (ग) 'गरलकंठ' इति। 'गरलकंठ' कहकर 'करुनाकंद' कहनेका भाव कि कालकूटको कंठमें धर लेनेका कारण 'करुणा' है। शरणागतपर दया करके विष पी गये। पद ३ 'निजपन लागि' देखिये। पुनः विषको कंठमें रख लेने और नीचे न उतरने देनेका एक कारण यहभी कहा जाता है कि हृदयमें इष्टदेव श्रीरघुनाथजीका निवास है, उनको कष्ट न होने पावे। माधुर्योपासनाके ऐसे सूक्ष्म भाव शंकरजीको छोड और किसमें हो सकते हैं कि जिन्होंने

'बिनु अघ तजी सती असि नारी।' कहामी है, 'सिव समको रघुपति व्रतधारी।' करुणाकन्दसे समस्त जीवोंपर समान दया और सहानुभूति सूचित की। समुद्रसे निकला हुआ हालाहल क्या था? वह था जलका पाप, उसका मल। उसने शंकरजीपरभी अपना प्रभाव प्रकट कर दिया, उससे उनका कंठ नीला पड गया। परन्तु वह तो प्रजाका कल्याण करनेवाले भगवान् शङ्करजीकेलिये भूषणरूप हो गया। परोपकारी सज्जन प्रायः प्रजाका दुःख टालनेकेलिये स्वयं दुःख झेलाही करते हैं। परन्तु यह दुःख नहीं हैं, यह तो उनके हृदयमें विराजमान् भगवान्‌की परम आराधना है। भा० ८।७।४१–४४।

४ 'सच्चिदानंद' इति। सत् चित् आनन्दरूप। सत् अविनाशी हैं, परन्तु माया और जीवभी अविनाशी हैं। अतः चित् कहकर जनाया कि माया जड है और आप चेतन हैं। वेदान्तशिरोमणि श्रीरामानुजाचार्यजी कहते हैं कि "जीवभी चेतन हैं; अतः आनंद कहकर आपको भगवदात्मक मुक्त्याधिकारी जनाया। बद्धजीव आनंदघन नहीं है। इस-तरह 'सच्चिदानन्द' कहकर आपको कारणरहित आवेश भगवत्मूर्ति-वा भगवत् स्वरूप जनाया है। यथा, 'ब्रह्मवित् ब्रह्मैव भवति' इतिश्रुतिः। इस श्रुतिमें 'एव' पद साम्यवाची है। पुनश्च 'रसोवैसः', 'रसंह्येवयं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति', 'आनंदं ब्रह्मणो विद्वान्नबिभेति कुतश्चनेति' इति श्रुतिः। अर्थात् ब्रह्मका जाननेवाला ब्रह्मके समान हो जाता हैं। वह परमात्मा रसरूप है। उस आनन्दघन रसरूप परमात्माको जो प्राप्त कर लेता है वह जीवभी परमात्माके सदृश आनन्दघन हो जाता है। ब्रह्मके आनन्दको प्राप्त करनेवाला जीव फिर कभी कहीं भय नहीं पाता।"

'श्रीसंप्रदायके अनुसार ये भाव हुए। (श्रीमध्व) वल्लभ सम्प्रदायके अनुसार श्रीशिवजी मुक्त्याधिकारी जीव वा भगवदात्मक आवेश अवतार नहीं है। वे ईश्वरकोटिमें हैं। अद्वैतवादशाङ्करसिद्धान्तानुसार उसी एक ब्रह्मकेही ये अनेक रूप हैं। इन सिद्धांतोके अनुसार शिवजीभी 'सच्चिदानन्द' हैं। स्मरण रहे कि गोस्वामीजीने ब्रह्म राम

और भगवान् शिवमें कुछ अन्तरभी दिखाया है। वह यह है कि 'तब संकर देखेउ धरि ध्याना। सती जो कीन्ह चरित सब जाना॥" विशेष पद ११ देखिये।

५ (क) सत्रबनदहन इव धूमध्वज' इति। ध्वजा=चिह्न, झंडा। अग्निके जलनेपर धुआँ ऊपर उठता है जैसे ध्वजा; इसी कारणसे अग्निको धूमध्वज कहा। धुआँ इस बातका चिह्न है कि अमुक स्थानपर अग्नि अवश्य है। तथा 'धूमकेतु' भगवान् शङ्करका एक नामभी है। (ख) 'व्याघ्र गजचर्म परिधान' इति। व्याघ्र एक हिंसक जीव है जिसे बाघ या शेर कहते हैं। गजचर्म जान पडता है कि यह दिग्गजोंका चर्म है जिन्हें आप महाप्रलयके समय त्रिशूलमें लटका लेते हैं। कुमारसंभवमें श्रीपार्वतीजीके विवाहमें पाणिग्रहणके समय शिवजीके ताजे गजचर्मके पहने होनेका उल्लेख है। गजचर्म आपका वस्त्र है। इस प्रकारके वस्त्र रखनेकी क्या आवश्यकता हुई? स्कन्दपुराणमें कथा है कि महिषासुरका पुत्र गजासुर अपने बलसे मदमत्त हुआ। वह शिवजीके गणोंको पीडित करता हुआ शिवजीके समीप आया, जब वे पार्वतीजीको रत्नेश्वर माहात्म्य सुना रहे थे। शिवजीने उसे त्रिशूलमें टाँगकर आकाशमें लटका दिया। उसके बहुत स्तुति करनेपर प्रसन्न होकर आपने वर देना चाहा तब उसने प्रार्थना की कि आप कृपा करके मेरे गजचर्मको धारण करें और अपना नाम 'कृत्तिवासा' अर्थात् गजचर्म धारण करनेवाला रखिये। यह वरदान देनेके कारण गजचर्म आपका वस्त्र हो गया। प० पु० सृष्टिखंडमें दक्षका वचन श्रीसतीप्रति है कि शिव व्याघ्रचर्म पहनते और गजचर्म ओढ़ते हैं।

६ बालशशि आदिका आध्यात्मिक रहस्य—बालशशि ललाटपर धारण करने, भस्म रमाने, गङ्गाजीको सिरपर स्थान देने और त्रिशूल अस्त्र आदि धारण करने तथा गिरिजाजीको अर्धांगमें बसानेमें आध्यात्मिक रहस्यभी अवश्य है। ईश्वरके कोईभी कार्य निष्प्रयोजन नहीं होते। उनके विचारसे सुख प्राप्त होता है।

श्रीभवानीशंकरजी लिखते हैं कि 'शिवजीके मस्तकमें चन्द्रमाका संकेत प्रणवकी अर्धमात्रासे हैं और इसी निमित्त उनके मस्तकको

अर्धचंद्र भूषित करता है। योगिगण अपने अभ्यन्तरके चित् अग्निके-द्वारा अहंकारको दग्ध करते हैं और उसके साथ उसके कार्य पंचतन्मात्रा, पंचमहाभूत आदि सबको दग्ध कर परम शुद्ध आध्यात्मिक भावमें परिवर्तित कर देते हैं, तब वह निर्विकार, शुद्ध और शान्त हो जाता है। उसेही भस्म कहते हैं। उस शुद्ध भावरूप भस्मको धारण करनेसे शान्ति मिलती है। आध्यात्मिक गंगा एक बड़ा तेज पुंज है जो महाविष्णुके चरणसे निकलकर ब्रह्माण्डनायक श्रीमहादेवके मस्तकपर गिरता है और वहाँसे संसारके कल्याण निमित्त फैलता है। इस तेज पुंजको केवल 'महादेव' धारण कर सकते हैं। श्रीशिवजीकी कृपासे इस आध्यात्मिक गंगाका लाभ अभ्यन्तरमें अन्तरस्थ काशीक्षेत्रमें होता है। त्रिशूलका भाव है त्रितापका नाश करना अर्थात् त्रितापसे मुक्ति पाकर जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओंसेभी परे तुरीयामें पहुँचना। ऐसा साधकही यथार्थ त्रिशूलधारी है।'

अर्धनारीश्वर रूपका रहस्य—श्री एरच जे० एस० तारापुरवालाजी लिखते हैं कि "सत् चित् आनंद ईश्वरके इन तीन रूपोंमें आनंदरूप (साम्यावस्था अथवा अक्षुब्धभाव) भगवान् शिवका है। एक दूसरीही दृष्टिसे विचार करनेपर यह समझमें आता है कि ईश्वरका सत्स्वरूप उनका मातृस्वरूप है और चित्स्वरूप पितृस्वरूप है। उनका तीसरा आनंदरूप वह स्वरूप है जिसमें मातृभाव और पितृभाव दोनोंका पूर्णरूपेण सामञ्जस्य हो जाता है, अथवा यों कहिये कि शिव और शक्ति मिलकर अर्द्धनारीश्वररूपमें हमारे सामने आते हैं। उसीमें हमें सत् और चित् इन दो रूपोंके साथसाथ उनके तीसरे आनंदरूपकेभी दर्शन होते हैं। ईश्वरने मनुष्यरूपमें अपनीही प्रतिकृति बनाई। (God made man after him.) उन्होंने उसकी पुरुष और स्त्रीरूपमें सृष्टि की। स्त्री और पुरुष दोनोंही ईश्वरकी प्रतिकृति हैं, स्त्री उनका सद्रूप है और पुरुष चिद्रूप, परन्तु आनन्दके दर्शन तब होते हैं जब ये दोनों पूर्णतया मिलकर एक हो जाते हैं।

" इस पूर्ण एकताका स्वरूप क्या है ? साधारणतया लोग शिवको योगीश्वर कहते हैं, पर वास्तवमें वे गृहस्थोंके ईश्वर हैं, विवाहित दंपत्तिके उपास्य देवता हैं। वे स्त्री और पुरुषकी पूर्ण एकताकी अभिव्यक्ति हैं। इसी कारण स्त्रियाँ सौभाग्यके व्रतोंमें जैसे कि विवाह, वसन्त, कजली, तीज इत्यादि अवसरोंपर उन्हें पूजती हैं। हरएकको परस्पर विरोधी द्वंद्वोंकी विषमताको दूर करनेकी चेष्टा करनी चाहिये, क्योंकि यही तो वास्तविक 'योग' है। स्थूल जगत्‌की सारी विषमताओंसे घिर रहनेपरभी अपनी चित्तवृत्तिको शान्त बनाये रखनाही योगका स्वरूप है। भगवान् शिव अपने पारिवारिक संबंधसे हमें इसी योगकी शिक्षा देते हैं। देखिये न, बाह्यदृष्टिसे आपका परिवार विषमताका जीता जागता नमूना है। आप बैलपर चढ़ते हैं तो भगवती भवानी सिंहवाहिनी है। दोनोंका कैसा जोड़ मिला है! आप भुजंगभूषण हैं, श्रीस्वामीकार्तिकको मोरकी सवारी पसन्द है और उधर लम्बोदर गणेशजीको चूहेपर चढ़नेमेंही सुभीता सूझता है। आपने गंगाजीको सिरपर चढ़ा रक्खा है जिससे पार्वतीजीको दिनरात सौतिया डाह हुआ करता होगा। इस प्रकार आपकी गृहस्थी क्या है मानों झंझटकी पिटारी है। मानसिक शान्ति और परिवारिक सुखकेलिये कैसा सुन्दर साज जुटा है ? परन्तु भगवान् शिव तो प्रेम और शान्तिके अथाह समुद्र और सच्चे योगी ठहरे। उनके मंगलमय शासनमें सभी प्राणी अपना स्वाभाविक वैरभाव भुलकर आपसमें तथा संसारके अन्य सब जीवोंके साथ पूर्ण शान्तिमय जीवन व्यतीत कर सकते हैं। स्वयं उनका तो किसीके साथ द्वेष हैही नहीं। वे तो आनन्दरूपही हैं। जो कोई उनके संपर्कमें आता है वहभी आनन्दरूप बन जाता है। उनके चारोंओर आनन्दकेही परमाणु फैले रहते हैं। यही महेशका सबसे महान गुण है। सारे विरोधियोंका सामञ्जस्य कर उस शान्तिकी उपलब्धि करनी चाहिये जो बुद्धिसे परेकी वस्तु है। यही अमूल्य शिक्षा हमें शिवजीके चरित्रसे मिलती है। यही सच्ची समता जो सत् और चित् के पूर्णसंयोगसे उत्पन्न होती है, अर्धनारीश्वरके विग्रहमें अभिव्यक्त हुई है। इसमें पुरुष और प्रकृतिके संयोगद्वारा माया (द्वन्द्वमय जगत्) के आवरणको भेदकर

मनुष्य आनन्दरूप पूर्णताको प्राप्त कर लेता है तब सारे विरोध मिट जाते हैं और मनुष्य उस स्थितिमें पहुँच जाता है जहाँ न पुरुष है न प्रकृति, न स्त्री है न पुरुष। केवल एक अद्वितीय वस्तु **'एकमेवाद्वितीयम्'** ही शेष रह जाता है। वही अनंत आनंदकी मूर्ति अर्धनारीश्वर शिव हैं।" (शिवांकसे)

७ 'वृषभ यानं' इति। श्रीवासुदेवशरणजी अग्रवाल लिखते हैं "यह वृष काम है। वर्षणशील (sprinkling, fertilising) रेतको 'वृष' कहा गया। यह वृष या काम अधोरेत करके मनुष्योंको अपने आसनसे च्युत कर देता है। इसपर पैर रखकर खड़े होना महानही धीरता है। सूत्ररूपसे यह जान लेना पर्याप्त है कि कामकीही एक संज्ञा 'वृष' है। शिवजी मदनका दहन कर चुके हैं। उन्होंने कामको परास्त कर लिया है। वे अरूपहार्य योगीश्वर हैं। अतएव 'वृष' उनका वाहन बन गया है। योगों और भोगोंमें यही भेद है। एकका वाहन काम है और एक स्वयं कामका वाहन है। इस वाहनपर चढ़नेकेलिये शिवको कुंभोदर सिंहपर पैर रखना पड़ता है। रघुवंश (२।३५) में कहा है कि कैलासके समान शुभ्र वर्णवाले वृषपर जब शिवजी चढ़ना चाहते हैं तब वे मेरी पीठपर पैर रखकर सहारा लेते हैं, ऐसा मैं कुंभोदर नामक शिवका अनुचर हूँ। यहा यह बताया गया है कि वृषपर सवारी करने अर्थात् उसको अपने अधिकारमें लानेकेलिये यह आवश्यक है कि मनुष्य पहले उदर या रसनेंद्रियपर संयम प्राप्त कर ले। स्वादको वशमें करना ब्रह्मचर्यकी सिद्धिकेलिये अनिवार्य है। जिह्वापर अंकुश रखेबिना ब्रह्मचर्यकी सफलता असंभव है। विश्वामित्रको मेनकाने मक्खन खिलाकर अपने अनुरागमें फँसा लिया। गीतामेंभी कहा है **'कामएष क्रोधएष रजोगुण समुद्भवः। महाशनो महापाप्मा विध्येनमिह वैरिणम्।'** अर्थात् काम बहुत भोग चाहता है। यह महापापके गर्तमें फँसानेवाला है। इस महापापीपर विजय पानेकेलिये कुंभोदरपर संयम प्राप्त करना चाहिये। जिस जलतत्व या रससे स्वादेंद्रियका पोषण होता है वही कामका अधिष्ठान है। इसीलिये कामविकार और रसनामें इतना घनिष्ठ

सम्बन्ध है। शिष्णदेव या कामीपुरुष उदरपरायणभी होते हैं। अतएव वृषपर आरुरुक्ष, योगीकेलिये कुंभोदरपर पैर रखना परमावश्यक है। शिवके परिवारमें सिंह और वृष विगत् वैर होकर बसते हैं। शिव समता और शान्तिकी मूर्ति हैं"। प्रयोजन न रहते हुएभी, मस्तकपर चन्द्र, अग्नि, गंगा आदि विरोधी शुद्ध और अशुद्ध संग्रह धारण करनेके कारणमें विरूपाक्ष और महोधरने रावणको 'शिवजीकी नीति निपुणता' बतलायी हैं। यथा,

" राजन्कार्यवशाद्विरुद्धसंग्रहेऽपि राज्ञाशुद्धेनाशुद्धसंग्रहः।
प्रयोजनहीनोऽपि कर्त्तव्यः प्रयोजनं जनयति कचित्काले।
अत्र भगवान्भवतामिष्टः प्रमाणमेणाङ्कमौलिः।
जीर्णेऽप्युत्कट कालकूटकवले प्लुष्टे हठान्मन्मथे।
नीते भासुर भालनेत्रतनुतां कल्पांत दावानलैः॥
यः शक्त्या समलंकृतोऽपि शशिनं शैलात्मजां स्वर्धुनीं।
धत्ते कौतुकराजनीतिनिपुणः पायात्स वः शङ्करः॥ अंक ९।३६
दिग्वासो यदि तत्किमस्य धनुषा शस्त्रं च किं भस्मना।
भस्माथास्य किमङ्गना यदि च सा कामं परं द्वेष्टि किम्।
इत्यन्योन्यविरोधकर्मनिरतं पश्यन्निजं स्वामिनं।
भृङ्गी सान्द्रशिरावनद्धशकलं धत्तेऽस्थिशेषं बपुः॥ ९। ३७ "

अर्थात् 'हे राजन्! कार्यके वशसे राजाको शुद्धकाभी तथा विरुद्ध और प्रयोजनरहित अशुद्धकाभी संग्रह करना चाहिये। वह किसी समय प्रयोजनको सिद्धही करता है। इस विषयमें आपके इष्टदेव भगवान् शशाङ्कार्धमौलि शिवजीही प्रमाण हैं। जीर्ण महाहालाहलके पान करनेपर और हठसे कामदेवके भस्म करनेपर और कल्पान्तकी अग्नियों करके श्वेतमस्तकके नेत्रकी सूक्ष्मताको प्राप्त होनेपरभी जो अपनी शक्तिसेही शोभायमान चन्द्रमा, नगेंद्रनन्दिनी पार्वती और गंगाजीको धारण करते हैं वेही कौतुककी राजनीतिमें चतुर शंकरदेव आपकी रक्षा करें। ३६। जो ये भगवान् दिगंबर हैं तो इनको धनुषसे क्या है? यदि शस्त्रही है तो विभूतिसे क्या है? यदि विभूति है तब तो स्त्रीसे इनको क्या प्रयोजन? जो स्त्रीभी है तो कामदेवसे अत्यंत द्वेष क्यों करते हैं? इस प्रकार

आपसमें विरोधी कर्म करनेमें लगे हुए आपके स्वामीको देखते हुए भृंगी सघन नाड़ियोंसे सब ओरसे बँधे हुए शिर हस्त चरण आदिके खंडवाले देहको धारण करते हैं । ' (ब्रजरत्न भट्टाचार्यकी टीकासे)

पुनश्च देखिये, जिनसे सब घृणा करते हैं उन्हींको भगवान् शंकर अपनाते हैं, जैसे सर्प, भूत, पिशाच । वे अपमानितको मान देते हैं, जिसको कहीं ठिकाना नहीं उनको अपनी कृपाकोरसे अनेक ठिकानोंका स्वामी बना देते हैं । ये सब बातें उनके आशुतोष नामसे महादयालु होनेके प्रमाण हैं । (पं० श्रीशिवरत्नजी शुक्ल ' सिरस ' साहित्यरत्न) पद ११ ' भस्म तन भूषन ' भी देखिये ।

अनुसंधान [१०]

देव तांडव[10] नृत्य पर डमरु डिंडिमि[11]
प्रवर असुभ इव भाति[12] कल्यानरासी ।
महाकल्पांत ब्रह्मांडमंडलदवन भवन
कैलास आसीन कासी ।५।
देव तज्ञ सर्बज्ञ जज्ञेसमच्युत[13] बिभो[14]
बिश्व भवदंस संभव पुरारी ।
ब्रह्मेंद्र[15] चंद्रार्क बरुनाग्नि बसु मरुत
जम अर्चि[16] भवदंघ्रि सर्वेधिकारी[17] ।६।

---

१० तांडव—६६ । तांडवं—प्र० । तांडवी–१५, डु०, टी०, । तांडवित–रा०, भा०, बे०, ज०, ह०, मु०, ५१, बै०, ७४, भ०, दी०, वि० । ११ डिंडिमि—६६, रा० । डिंडिम—५१, मु०, वि०, भ० । डिमडिम—डु०, बै०, ह०, दी० । डिमिडिमि—भा०, बे०, ज०, १५ । १२ भांति–भा०, रा०, १५, दी०, बै०, भ० । भाति–६६, बे०, ५१, ह०, ७४, दी०, मु०, वि०, ज०, प्र० । १३ जज्ञे समच्युत—६६ । जज्ञ से अच्युत—प्राय: औरोंमें । १४ बिभव–५१, मु०, ७४, बै० । १५ इन्द्र—मु०, ७४ । ब्रह्मेंद्र–और सबमें । १६ जमअर्चि—प्र०, ज०, ७४, डु०, दी०, ह०, १५ । जम अरचि–भा०, बे०, बि० । जम अर्च्य–मु०, बै०, भ०, रा० । जममर्च्य–६६ । (यह पाठ व्याकरणसे अशुद्ध जान पड़ता है ।) १७ सर्बेधिकारी–६६, भा०, रा०, बे०, ह०, प्र०, ज० ।

देव अकल निरुपाधि निर्गुन निरंजन
* जन्म[१८] कर्म पथमेकमज निर्विकारं।

अखिल बिग्रह उग्ररूप सिव भूपसुर
सर्वगत सर्व सर्वोपकारं। ७।

देव ज्ञान वैराग्य धर्म कैवल्य सुख
सुभग सौभाग्य सिव सानुकूलं।

तदपि नर मूढ़ आरूढ़ संसार पथि[१९]
भ्रमत भव बिमुख तव पादमूलं। ८।

देव नष्ट मति दुष्ट अति कष्टरत
खेदगत दासतुलसी संभु सरन आया।

---

* 'ब्रह्म कर्म पथ' पाठका अर्थ होगा कि 'ब्राह्मणों वा वेद-विहित कर्म कांडपर चलने, चलानेवालोंमें अग्रगण्य।' ब्रह्म = वेद। यथा, 'ब्रह्माभोधि समुद्भवं सुमधुरं श्रीजानकीजीवनं।'; पुनः, ब्रह्म = ब्राह्मण। यथा, 'ब्रह्मकुलं कलंकशमनं'। वैजनाथजी अर्थ करते हैं कि 'आप ब्रह्म हैं अर्थात् सबमें व्यापक और सबसे न्यारे अद्वैत हैं। धर्मके जो आठ अंग, इज्या, अध्ययन, दान, तप, सत्य, धृति, क्षमा और अक्षोभ हैं उनके कर्म करनेका मार्ग शुद्ध निर्विघ्न चलानेमें एक आपही है। दूसरा आपकी समताका नहीं है। भाव कि थोड़ाही सत्कर्म करनेसे बड़ा फल दे देते है, बिधि अबिधि नहीं देखते। इसीसे सबकी निष्ठा बढ़ती है।

सर्वाधिकारी—७४, ५१, आ० (भ०), १५। १८ जन्म (जनम) ६६, रा०, ज०। ब्रह्म—भा०, बे०, प्र०, ह०, ७४, ५१, आ०। १९ पथि—६६, रा०, भ०। पथ-भा, बे०, ५१, १५, प्र०, ज०, ह०, ७४, आ० (भ०)। 'पथि' पाठ शुद्ध है। सं० 'पथिन्' शब्दकी सप्तमी विभक्ति (अधिकरण कारक) के एकवचनका रूप 'पथि' होता है। पुनः, पथि=पथमें। यथा 'सीतालक्ष्मणसंयुतं पथिगतं रामाभिरामं भजे।' (आ०)

देहि[20] कामारि श्रीरामपदपंकजे[21]
भक्तिमनवर्त्त[22] गतभेद माया ।९।

शब्दार्थ—तांडव=यह शिवजीका प्रिय नृत्य है। इस नृत्यका उल्लेख इतिहास, पुराण, स्मृति आदि सभीमें मिलता है। संगीतके ग्रंथोंमें नृत्यके दो भेद किये गये हैं। तांडव और लास्य। जिसमें उग्र और उद्धत चेष्टा हो उसे तांडव कहते हैं और जो सुकुमार अंगोंसे किया जाय तथा जिससे शृङ्गार आदि कोमल रसोंका सञ्चार हो उसे 'लास्य' कहते हैं। संगीतनारायणमें लिखा है कि पुरुषके नृत्यको 'तांडव' और स्त्रीके नृत्यको 'लास्य' कहते हैं। संगीतदामोदरमें इनकेभी दो दो प्रकारके भेद कहे गये हैं। तांडवनृत्य शिवजीको अत्यन्त प्रिय है। इसीसे कोई कोई तंडु अर्थात् नन्दीको इसका प्रवर्तक मानते हैं। किसी किसीके अनुसार तांडवनामक ऋषिने पहले पहल इसकी शिक्षा दी, इसीसे इसका नाम तांडव हुआ। नृत्य = नाच। पर = तत्पर अर्थात् करते हुए, निमग्न। डमरू = यह शिवजीका प्रिय बाजा है। इसका आकार बीचमें पतला और दोनों सिरोंकी ओर बराबर चौड़ा होता जाता है। दोनों सिरोंपर चमड़ा मढा होता है। इसके बीचमें दो तरफ बराबर बढी हुई डोरी बंधी होती है जिसके दोनों छोरोंपर एक एक कौड़ी या गोली बँधी होती हैं। बीचमें पकड़कर जब बाजा हिलाया जाता है तब दोनों कौड़ियाँ चमड़ेपर पड़ती हैं और शब्द होता है। यह शिवजीका बहुत प्रिय बाजा है। डिंडिमि = प्राचीनकालका एक बाजा जिसपर चमड़ा चढा रहता है। कोई कोई इसीको डुगडुगिया और तोमड़ीभी कहते हैं। श० सा०, पं० रा० कु०, वै० और वीरकविने इसको बाजाही माना है। वैजनाथजी इसे योगी वा योगिनियोंका बाजा लिखते हैं। परन्तु बाबूशिवप्रकाश, भट्टजी और दीनजीने इसे डमरूका शब्द माना है। वैजनाथजी 'डिंडिमी'

---

२० देहि—६६, भा०, बे०, रा०, ७४, आ०। देहु—ह०, १५, ज०। २१ पंकरुह—७४,। २२ भक्तिमनवर्त्त—६६, रा०, म०। भक्तिमनवरत—भा०, बे०, ह०, ५१, मु०, दी०। भक्तिअनवरत—वि०। भक्तिभवहरनि—डु०, वै०, ७४, प्र०, १५। भक्तिभवरहित—ज०।

के सम्बन्धमें यहभी लिखते हैं कि "डिंडिमी गति है। यथा, 'उत्प्लुत्य चरणं द्वंद्वं वक्त्र निःपीडनोपमम्। परिभ्राम्य वनीयाति-यदि तद्दिंडिमुच्यते'॥ (सङ्गीतदर्पणे) अर्थात् पाँव बटोरे उछालते वेगसे चक्राकार घूमना इत्यादि जो दिंडिमी नृत्य गतिपर डमरुप्रवर है अर्थात् गतिकी पदप्रहार और बाजाकी ताल दोनों एकमें मिलकर लय हो जाते हैं ऐसा नृत्य करते हैं।" प्रवर = श्रेष्ठ, उत्तम, प्रधान। असुभ=अमङ्गल। इव = जैसा, का, सा। भाति = भासित होता, देख पड़ता वा मालूम होता है। रासी (राशि) = ढेर। महाकल्पांत = महाकल्पके अंतमें। महाकल्प = उतना काल जितनेमें ब्रह्माकी आयु पूरी होती है। ब्रह्मकल्प = पद ९ देखिये। ब्रह्मांड = सम्पूर्ण विश्व, जिसके भीतर अनन्त लोक हैं। मनुजी लिखते हैं कि स्वयंभू भगवान्‌ने प्रजासृष्टिकी इच्छासे पहले जलकी सृष्टि की और उसमें बीज फेंका। (अर्थात् अनन्त बद्ध जीवोंमेंसे जितनेको कृपा करके भगवान् करणकलेवरादि प्रदान करना चाहते हैं उतनेको समष्टिरूपसे बीजरूपसे फेंकते हैं। यथा, 'तदण्डमभवद्धैयं सहस्रांशु समप्रभम्') बीज पड़तेही सूर्यके समान प्रकाशवाला स्वर्णाभ या गोल अंड उत्पन्न हुआ। पितामह ब्रह्माका इसी अंड या ज्योतिर्गोलकमें जन्म हुआ। उसमें एक संवत्सरतक निवास करके उन्होंने उसके आधे आध दो खंड किये। ऊर्ध्वखण्डमें स्वर्गादि लोकोंकी और अधोखण्डमें पृथ्वी आदिकी रचना की। विश्वगोलक इसीसे ब्रह्मांड कहा जाता है। ब्रह्मांडमंडल = चौदहो लोक। मंडल = गोला, वृत्ताकार या अंडाकार विस्तार। दवन = नाशक, नाश करनेवाले। आसीन = बैठे हुए, विराज-मान्। तज्ञ = तत्त्वज्ञ, तत्वके जाननेवाले। तत्त्व = वास्तविक स्थिति। ब्रह्म, आत्मा और सृष्टि आदिके सम्बन्धका यथार्थ ज्ञान 'तत्त्वज्ञान' है और 'तत्त्व जानातीति तत्त्वज्ञः'। तज्ञ = सर्वशास्त्रोंका लक्ष्यभूत जो तत्त्वपदार्थ है उसका यथार्थ ज्ञाता। सर्वज्ञ = तीनों कालोंकी सब बातोंका जाननेवाला। जज्ञेस (यज्ञ + ईश) = यज्ञोंके स्वामी अर्थात् अधिष्ठाता। यज्ञ करनेवालोंको फल देनेवाला। अच्युत = च्युत न होनेवाला। च्युत = गिरा हुआ, भ्रष्ट, अपने पद वा स्थानसे हटा

हुआ । विभो = विभु, सर्वव्यापक; समर्थ, ईश्वर । भवदंस = भवत् (आपके) + अंश (अंशसे) । संभव = उत्पन्न । ब्रह्मेंद्र = ब्रह्मा + इंद्र । चन्द्रार्क = चन्द्र + अर्क (सूर्य) । बरुनाग्नि = वरुण + अग्नि । वसु = देवताओंका एक गण जिसके अन्तर्गत आठ देवता हैं । इस गणके देवताओंके नामोंमें मतभेद है । (श० सा० देखिये) मरुत = पवनदेव । अर्चि = पूजकर । भवदंघ्रि (भवत् + अंघ्रि) = आपके चरण । सर्वेधिकारी = सर्व अधिकारी, सब अधिकारी । अधिकारी = लोकोंके पालनका अधिकार पाये हुए लोकपाल, दिग्पाल । अकल = कलारहित अर्थात् पूर्ण, कमी घटने बढ़नेवाला नहीं । निरुपाधि = उपाधिरहित । रूपान्तररहित; जिसका रूप कभी न बदले । टि० १२ देखिये । निर्गुन = मायिक गुणोंसे रहित । निरंजन = कारणमायारहित, दोषरहित; निर्लेप, देही देह विभागरहित, बाहर भीतर एकरूप । (वै०) पथमेकमज (पथं एकं अज) = मार्गमें एकही अर्थात् प्रधान वा अद्वितीय और अजन्मा । निर्विकार = हर्ष, विषाद, कामक्रोधादि विकारोंसे रहित । अखिल = संपूर्ण जगत् । उग्र = रौद्र, तेजयुक्त, भयंकर । भूप = राजा । सर्वगत = जो सबमें हो । सर्वोपकारं (सर्व उपकारं) = सबके उपकारकर्ता । ज्ञान = सारासारका विवेक । ज्ञान = '**मान जहं एकउ नाहीं देख ब्रह्म समान सब माहीं ।**' (आ०) । वैराग्य = वह वृत्ति जिसमें त्रैलोक्यकी विभूतिका तिनकेके समान त्याग होता है । यथा '**कहिय तात सो परम बिरागी । तृन सम सिद्धि तीन गुन त्यागी ।**' (आ०) । कैवल्य=मोक्ष, परमपद । यथा '**सो कैवल्य परमपद लहई ॥ अति दुर्लभ कैवल्य परमपद । संत पुरान निगम आगम वद । राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं । अनइच्छित आवै बरिआई ॥**' (उ० ११८) । प्रकृति सम्बन्धरहित शुद्ध जीवात्मस्वरूपमें स्थिति । सुभग = सुंदर । सु (उत्तम) + भग (छः प्रकारकी विभूतियाँ) । अर्थात् सम्यगैश्वर्य, सम्यग्वीर्य, सम्यग्यश, सम्यक् श्री और सम्यक् ज्ञान । सौभाग्य = सुन्दर भाग्य, सुगंध, स्त्री, वस्त्र, गीत, तांबूल, भोजन, भूषण, और वाहन इन अष्ट प्रकारके भोगका सुख । (वैं०) । सानुकूलं =

अनुकूलता वा प्रसन्नतासे। यथा 'तापर सानुकूल गिरिजा हर लषन राम जानकी।', 'सानुकूल सब पर रहहिं संतत कृपानिधान' (उ०)। 'स' उपसर्गका प्रयोग शब्दोंके आरंभमें कुछ विशिष्ट अर्थ उत्पन्न करनेकेलिये होता है। जैसे, १ बहुव्रीहि समासमें 'सह' के अर्थमें। जैसे, सजीव, सपरिवार। २ 'स्व' या 'एकही' के अर्थमें। जैसे, सगोत्र, सपाठी। ३ 'सु' के स्थानमें। जैसे, सपूत। तदपि = तोंभी। मूढ़ = अज्ञानी। आरूढ़ = चढ़ा हुआ, लगा हुआ, प्रवृत्त होकर। पथि = पथमें। भ्रमत = भटकते, चक्कर खाते, चौरासी लक्ष योनियोंमें जन्मते मरते। भव = शिव, संसार। पादमूल = पैरके नीचेका भाग, तलवा। दुष्ट = दोषयुक्त, दुराचारी, पाजी। नष्ट = जो बहुत दुर्दशाको पहुँच गया हो। नष्टमति = भ्रष्ट बुद्धि, बुद्धिहीन। कष्टरत = क्लेशमें आसक्त, मुसीबतका मारा, दुखी। खेदगत = चिन्ता, दुःख वा ग्लानिको प्राप्त। देहि = दीजिये, दो। पंकजे = कमलमें। 'पंकजे' मेंका 'ए' शौरसेनी प्राकृतकी सप्तमी विभक्ति है। भक्तिमनवर्त्त = (भक्ति + अनवर्त) अविनाशिनी भक्ति। अनवर्त्त = निरंतर, अचल, अविनाशिनी।

पद्यार्थ—हे देव! अत्यन्त श्रेष्ठ डमरू और डिमडिमी बजाते हुए (वा डमरूका अत्यंत सुंदर डिमडिम शब्द करते हुए) तांडवनृत्यमें निमग्न आप अमंगलसे देख पड़ते हैं; पर हैं आप मंगलकी राशि। महाप्रलयमें आपही संपूर्ण विश्वमंडलके नाशक हैं। कैलास आपका घर है और काशीमें आप विराजमान रहते हैं; अर्थात् काशी आपकी बैठक वा कचहरी है। ५। हे देव! हे त्रिपुरासुरके नाशक! आप यथार्थ तत्त्वके ज्ञाता, सर्वज्ञ, यज्ञोंके अधिष्ठाता स्वामी और अच्युत हैं। हे सर्वसमर्थ! विश्व आपके अंशसे उत्पन्न हुआ है। ब्रह्मा, इंद्र, चन्द्र, सूर्य, वरुण, अग्नि, पवन और यम, ये आठो वसु† आपकेही चरणोंको पूजकर अधिकारी हुए हैं। उत्पत्ति करने, लोकों और

† महाभारत आदि पर्वमें आठ नाम ये हैं—धर, ध्रुव, सोम, अह, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास।

दिशाओंके पालन करने, इत्यादिका अधिकार इन सबोंको आपनेही दिया है। ६। हे देव! आप कलारहित अर्थात् पूर्ण, उपाधिरहित और निर्गुण हैं। आपका जन्म मायाविकाररहित है। कर्ममार्ग अर्थात् कर्मकांडमें आप अद्वितीय हैं। (कर्मकांडके प्रवर्तक हैं।) अजन्मा और षट्विकाररहित हैं। संपूर्ण जगत् आपका रूप वा शरीर है। (अर्थात् आप विराटरूप ब्रह्मात्मक हैं। सब प्रकारके विग्रह धारण करनेमें सिद्धिप्राप्त समर्थ हैं।) भयंकर रूपमेंभी आप 'शिव' अर्थात् मंगलरूप हैं‡, देवताओंके स्वामी हैं, सर्वगत† हैं, सब कुछ आपही हैं और सबका उपकार करनेवाले हैं। ७। हे देव! हे शिवजी! आपकी प्रसन्नतासे ज्ञान, वैराग्य, धन, धर्म, कैवल्यपद, सुख (कैवल्यसुख) और सुंदर सौभाग्य प्राप्त हो जाते हैं; तोभी मूर्ख मनुष्य आपके चरणोंसे विमुख होकर संसारमार्गपर (आवागमन) चढ़कर संसारमें भटकते फिरते हैं। ८। हे देव! हे शंभो! भ्रष्टबुद्धि, अत्यन्त दुष्ट, अत्यन्त क्लेशोंमें पड़ा हुआ, चिन्ताको प्राप्त मैं तुलसीदास शरणमें आया हूँ। हे कामारि! श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंमें भेदमायारहित अविचल भक्ति मुझे दीजिये। ९।

टिप्पणी—७ शिवजीके इस ध्यानमें शूल, सायक, पिनाक इन तीन अस्त्र शस्त्रों और डमरू बाजेके नाम आये हैं जो हाथोंमें धारण किये जाते हैं। इसतरह यह चतुर्भुज मूर्तिका ध्यान कहा जा सकता है।

८ 'देव तांडव नृत्य पर डमरू' इति। पाठपर विचार—'तांडव' नृत्यकाही नाम है, किसी गतिका नाम नहीं है। यथा '**तांडवं नटनं नाट्यं लास्यं नृत्यं च नर्त्तने**' इत्यमरः। ये छओं नाम नृत्यके हैं। अतएव 'तांडवित नृत्य' अशुद्ध है। 'तांडव नृत्य' ही ठीक है और प्राचीनतम पाठभी यही है।

---

‡ दूसरा अर्थ – 'आप उग्ररूप हैं, शिवरूप हैं।' वा 'हे शिव! आप उग्ररूप हैं।'

† पं० रा० कु० दा० के मतानुसार 'सर्वगत' का अर्थ है "सब शरीरोंमें प्रवेश कर सकनेवाले।"

९ (क) 'डमरू डिंडिमि प्रवर' इति। संस्कृतभाषाके व्याकरणके १४ मूल सूत्रोंकी रचना 'डमरू' सेही हुई है। इस संबंधकी कथाएँ कई प्रकारकी पायी जाती हैं। कहीं तो ऐसा उल्लेख मिलता है कि 'व्याकरणशास्त्र पारदर्शी होनेके उद्देश्यसे पाणिनिजी प्रयागमें अक्षयवटके नीचे घोर तपस्या कर रहे थे। शिवजी प्रकट होकर तांडव नृत्य करने लगे और नृत्यके समय आनन्दातिरेकसे उन्होंने १४ बार डमरू ध्वनि की। डमरूके १४ नादोंसेही १४ मूल सूत्रोंकी रचना हुई। इसीलिये इनको शिवसूत्र और माहेश्वरसूत्रभी कहते हैं। अतः 'प्रवर' विशेषण डमरूकेलिये सार्थक है। दूसरी कथा ऐसी है कि सत्ययुगके बीतनेपर सनकादिकजीकी प्रार्थनापर महेश्वरने डमरू ध्वनि १४ बार की जिससे ये १४ सूत्र हुए। नन्दिकेश्वर काशिकामें इसका प्रमाण यह मिलता है कि '**नृत्यावसानेनटराजराजो ननाद ढक्कां नतपंचवारम्। उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धानेतद्विमर्शेशिवसूत्रजालम्॥**' काशिकावृत्तिमें इन शिवसूत्रोंकी व्याख्या इसप्रकार की गयी है मानों इनकी रचना शैवागम और शाक्तागमके दिव्य रहस्यके उद्घाटन करनेके उद्देश्यसेही हुई है। इन कारणोंसे उसको एवं उसके शब्दको 'प्रवर' विशेषण दिया गया है।

(ख) 'प्रवर' में भाव ये हैं कि यह बाजा किसी औरके मनका नहीं है। दूसरेसे न ऐसा नृत्य हो सके न ऐसा बाजा बज सके। प्रवरसे बाजेकीभी श्रेष्ठता दिखायी। श्रीवैजनाथजी लिखते हैं कि 'प्रवर' में भाव यह है कि तांडव नृत्यमें गतिका पद प्रहार और बाजेकी ताल दोनों एकमें मिलकर लय हो जाती हैं। 'प्रवर' 'डमरू' और 'डिंडिमि' इन दोनोंका विशेषण है।

(ग) 'असुभ इव भाति कल्यानरासी' इति। यथा '**साज अमंगल मंगलरासी**', '**असिव बेष सिवधाम कृपाला**', '**भव अंग भूति मसानकी सुमिरत सोहावनि पावनी**'। भाव यह कि आप तो कल्याणमूर्त्ति हैं। आपमें अमङ्गल कहाँ? केवल आपका बाह्यरूप अमंगलसा दिखता है। श्रीवैजनाथजी इसका भाव यह लिखते हैं कि विज्ञानघन 'अवधूतवेषमें आसन मारकर समाधि लगाना' शुभ

मानते हैं परंतु योगी, त्यागी वेषमें नृत्य, राग, संगीतादि विषयवर्धक व्यापार करना अशुभ समझते हैं। शिवजीमें दोनोंही है। इसलिये यहाँ 'विरोधाभास' अलंकार है।

(घ) 'महाकल्पांत ब्रह्मांड मंडलदवन' इति। 'तांडव नृत्य पर डमरू' के बाद 'महाकल्पांत' कहकर सूचित करते हैं कि महाप्रलय करके हाथमें डमरू आदि लेकर आप तांडव नृत्य किया करते हैं। यही बात अगले पद ११ में स्पष्ट कही है। यथा 'सकल लोकांत कल्पांत सूलाग्रकृत दिग्गजाव्यक्तगुन नृत्यकारी'। इससे यहभी जनाते हैं कि महाप्रलय करनेपर आपको अखण्डानन्द प्राप्त होता है और उसी आनन्दमें मग्न होकर आप नाचने लगते हैं।

(ङ) 'भवन कैलास आसीन कासी' इति। ब्रह्मांड मंडल दवनसे सन्देह होता है कि 'तब आप कहां रहते हैं? काशी और कैलासभी तो ब्रह्मांडके अन्तर्गत हैं?' इस शङ्काके निवारणार्थ 'भवन कैलास' कहकर जनाया कि महाकल्पांतमेंभी कैलास और काशी इन दोनोंका नाश नहीं होता। क्योंकि इन दोनोंकी स्थिति भगवान् श्रीमन्नारायणके उदरमें वैसीही रहती है जैसे रमा वैकुण्ठादिकी।

भावार्थान्तर—(१) इतने शक्तिशाली होकरभी आप एकही जगह स्थिर होकर नहीं रहते। उदासियोंकी तरह कभी यहाँ तो कभी वहाँ रहते हैं। (दीनजी)। (२) काशी सुखविलासस्थान है, इसलिये वहाँ बैठे रहते हैं। (वै०) (३) भवन कैलास है और काशीपुरीमें आप आसन लगाये बैठे रहते हैं। (वि०)

नोट—वर्तमानमें जिसको कैलास माना जाता है, अनुभवी शिवभक्तगण कहते हैं कि वह असली भूकैलासभी नहीं है। 'काशी-केदार माहात्म्य' नामक ग्रंथके चतुर्थ अध्यायमें महाकैलासका वर्णन है। वहाँ उल्लेख है कि अनन्तकोटि ब्रह्मांडके आधारभूत महोदकमें (सम्भवत: इसीको आधुनिक विज्ञानी Perfect Fluid कहते हैं) लाखयोजन विस्तीर्ण स्वर्णभूमि है। वहाँ लाख योजन ऊँचा परमेश्वरका स्थान है। उसीको वेदवित् पुरुष 'महाकैलास' कहते हैं। उसके

आठों दिशाओंमें आठ फाटक हैं। पूर्वके मालिक विघ्नेश हैं, अग्नि-कोणके महागण भृंगीरिटि, दक्षिणके पालक गणोंके सरदार महाकाल, नैऋत्यके वीरभद्र, पश्चिमकी पालिका शिवदुहिता महाशास्ता, वायव्यकी दुर्गा, उत्तरके सुब्रह्मण्यनामक परशिव और ईशान्यके शैलादि गणनायक हैं। वह नगरी पचास हजार योजन विस्तारकी है। इसमें असंख्यों गुम्बद, शृङ्ग और शिखर हैं। कई परकोटे हैं, जिनमें अधिकारानुसार शिवभक्त और देवगण रहते हैं। अन्तःपुरीके पश्चात् शङ्करजीका निजधाम है जिसके ज्योतिर्मय ११ शृङ्ग हैं और ये साम्बशुद्ध सदाशिवको घेरे खड़े हैं। शिवजी अनुग्रहात्मक, शान्त और अपनीही महिमासे प्रतिष्ठित हैं। महाकैलासकी भाँति इन्होंने भूकैलासमेंभी अपने योग्य वैसीही कल्पना की है। भूकैलासभी प्रलयकालमें गणोंकेसहित ऊपर बढ़कर अंडका भेदन करता हुआ परिवारके सहित बाहर निकलकर वहीं चला जाता है और उस नित्य अलौकिक महाकैलासके अन्तर्भूत हो जाता है। निग्रह और अनुग्रहके व्याजसे सदाशिवकी मूर्तियोंमें भेद होता है। जम्बूद्वीपवाले कैलास और महाकैलासकी भूमिकाएँ उस परमेश्वरके निग्रहानुग्रहके शाश्वत स्थान हैं। (शिवाङ्क)

१० 'विश्व भवदंस संभव पुरारी' इति। इस विषयमें पृथक् पृथक् मत हैं। श्रीमान् गौड़जी लिखते हैं कि 'सृष्टिसे परे परमात्मसत्ता एकही है, जिसे परब्रह्म, परमेश्वर या परमविष्णु अथवा चाहे जिस नामसे कहें, उसका निराकारत्व एकही है। परन्तु उसकी सगुणसत्ता त्रिगुणात्मक होनेसे तीन रूपोंमें तीनों शक्तियोंके साथ व्यक्त होती है। भक्त जिस भावका उपासक होता है वही उसकेलिये उत्कृष्ट दिखता है। दूसरे दो रूप उसके अधीन भासते हैं। वस्तुतः सत्ता एकही है। एकपर दूसरेका उत्कर्ष भक्तोंके हितार्थ भक्तभावनकी लीलामात्र है। यह बात प्रसंग प्रसंगपर अच्छी तरह स्पष्ट शब्दोंमें व्यक्त कर दी गयी है कि त्रिमूर्ति एकही सत्ता है। इसमें भेद माननेवालोंकी अधोगति होती है। इस प्रकार सारे हिन्दू साहित्यमें भिन्न भिन्न नामोंसे एकही परमात्म सत्ताका प्रतिपादन है। 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' इति श्रुतिः।

रावबहादुर राजा दुर्जनसिंहजी लिखते हैं कि 'व्यासजीने एकही मूल भगवत्तत्वको अनेक रूपोंमें वर्णन किया है और ऐसी दशामें किसी विशेषरूपके नाम किसी विशेष रूपमें और किसीके किसीमें आ जायँ तो उसका मुख्य प्रयोजन यही है कि उन रूपोंमें कोई भेद नहीं है और मूलतत्व एकही है। इस मूल तत्त्वकोही श्री, भगवान्, परमात्मा, परब्रह्म इत्यादि शुभ नामोंसे प्रगट किया गया है। यही जब 'एकोऽहं बहुस्याम्' इस श्रुतिके अनुसार इच्छा करता है तो अनेक नाम, रूप धारण कर लेता है और यही सृष्टिकी उत्पत्ति है। इस दशामें ये असंख्य नाम और रूप सब इसी एकही तत्त्वके हैं और इनमें वास्तविक भेदकल्पना करना केवल भ्रान्तिमूलक है। श्रीभगवान्‌की यह मन और इन्द्रियगोचर चेष्टा परम रहस्यपूर्ण है। इस इच्छाके द्वारा सृष्टि रचनाकी क्रिया सामान्यतया तो माया अथवा प्रकृतिके द्वाराही होती है। किन्तु उस अपरिमेय शक्तिसंपन्न विभुकी अद्भुतताका यह चमत्कार है कि वह जिसको अमायिक कहा जाता है माया विनाभी जैसी चाहे वैसी रचना रच सकता है। इसके प्रत्यक्ष उदाहरणका दर्शन देवदुर्लभ ब्रजरजकी उस बुद्धिविमोहन लीलालीलामें होता है जिसमें ब्रह्माजीके ग्वाल बाल और बछड़े चुरानेपर श्रीभगवान्‌ने अमायिक ग्वालबाल तथा बछड़े प्रकटही नहीं कर दिये किन्तु उन सबको चतुर्भुज मूर्ति बना दिया। इससे सिद्ध है कि भगवान्‌के असंख्य नाम, रूप मायिक और अमायिक दोनों प्रकारसेही हो सकते हैं। जो अमायिक नाम, रूप हैं, वे सब गुणातीत, देशकालवस्तुपरिच्छेदरहित तथा अभिन्न हैं। किन्तु मायिक नामरूप त्रिगुणमय प्रकृतिके कार्य होनेसे भेदयुक्त हैं और देशकालवस्तुपरिच्छिन्न है। (शिवाङ्कसे)

११ (क) 'ब्रह्मेंद्रचंद्रार्क अर्चि भवदंघ्रि सर्वेधिकारी' इति। ब्रह्मानेभी आपहीसे अधिकार प्राप्त किया, इसका प्रमाण पद ५ में 'यह अधिकार सौंपिऐ औरहिं भीखि भली मैं जानी' है। इस चरण-में महान् उपलक्षणताका होना 'उदात्त अलंकार' है। विशेष पद १२ में देखिये।

(ख) पाठपर विचार 'सर्वाधिकारी' का अर्थ होता है कि ये सब

चीज़ोंके अधिकारी हुए, परन्तु ये सब बातोंके अधिकारी नहीं हैं। सबके अधिकार अलग अलग हैं। 'सर्वेधिकारी' का अर्थ है कि 'ये सब अधिकारको प्राप्त हुए।' अतएव यही पाठ समीचीन है और प्राचीनतम तो हैही।

१२ 'देव अकल निरुपाधि निर्गुन निरंजन' इति। (क) 'उपाधि' इति। उपाधि=धर्मखंडित होनेकी चिन्ता। जैसे हरिश्चंद्रपर विश्वामित्रने, शिबिपर इंद्र और अग्निने और नलपर कलिने उपाधि की थी वैसे आपपर कोई नहीं कर सकता।' (वै०)। सांख्यमें बुद्धिकी उपाधिसे ब्रह्म कर्त्ता दिख पड़ता है, वास्तवमें वह कर्त्ता नहीं है। इसी प्रकार अद्वैत वेदान्तमें सूक्ष्म और स्थूल मायाके संबंधसे ब्रह्मके दो भेद माने गये हैं। एक 'सोपाधि ब्रह्म', दूसरा 'निरुपाधि ब्रह्म'। स्थूल चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म 'सोपाधिब्रह्म' है और सूक्ष्म चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म 'निरुपाधिब्रह्म है'। (ख) निर्गुण=मायिकगुणसे (सत्व रज और तम) रहित। भाव कि न सत्वगुण आपको शान्त कर सके, न रजोगुण विषयभोगी कर सके और न तमोगुण आपको क्रोधी कर सके। (वै) (ग) 'अखिल विग्रह उग्ररूप सिव भूपसुर' का भाव दीनजी यह लिखते हैं कि 'आप विराटरूप होकर भयंकररूप हैं पर सर्वदेवशासकरूपसे सुंदर हैं।'

१३ 'सर्व सर्वगत' इति। 'ब्रह्मवित् ब्रह्मैव भवति' इस श्रुति प्रमाणसे ब्रह्मात्मक होनेके कारण विराटरूपसे सब आपही हैं। परमात्मज्ञानरूपसे सबमें व्यापक अथवा कारणरूपसे सर्वगत अर्थात् सबसे भिन्न है। जब ब्रह्म एकसे बहुत होता है तब ब्रह्मात्मक होनेसे आप 'सर्व' हैं। यथा 'एकोऽहं बहुस्याम्'। वा, 'मुक्तात्मबुद्धिसे सब आपही हैं और बद्धजीवबुद्धि होनेसे सर्वगत हैं।' (वे० भू० रा० कु० दा०)

श्रीमद्भागवत आदिसे यही प्रमाणित होता है कि त्रिगुणात्मक सृष्टिके कार्यकेलियेही तीनों गुणोंके भेदसे विधि, हरि और हर तीन रूप देखे, कहे और सुने जाते हैं, पर वस्तुतः इनमें अभेद है। भा० ४।७।५०-५४ में स्वयं विष्णु भगवान्के वचन हैं कि 'मैंही जगत्का परमकारण ब्रह्मा

और महादेव हूँ। मैंही सबका साक्षी, स्वयंप्रकाश तथा निर्विशेष आत्मा और ईश्वर हूँ, उपाधिशून्य हूँ। अपनी त्रिगुणात्मिका मायाको स्वीकार करके मैंही जगत्की सृष्टि, पालन और संहार करता हूं और मैंने उन कर्मोंके अनुरूप ब्रह्मा, विष्णु और शंकर ये नाम धारण किये हैं। ऐसे मेरे विशुद्ध भेदरहित अद्वितीय परब्रह्मस्वरूपमें ब्रह्मा, रुद्र, तथा सभी जीव निवास करते हैं। अज्ञानी पुरुष ब्रह्मा, रुद्रादिको विभिन्नरूपसे देखता है, उनमें भेददृष्टि रखता है। जैसे मनुष्य अपने सिर, हाथ, पाँव आदि अंगोंमें कहींभी परकीय भावना नहीं करता, अर्थात् 'ये मुझसे भिन्न हैं' यह बुद्धि नहीं करता, वैसेही मेरा भक्त प्राणीमात्रमें पृथक् बुद्धि नहीं करता। हम तीनों स्वरूपतः एकही हैं। जो हममें भेद नहीं देखता वही शान्ति प्राप्त करता है।'*

महाप्रभु कृष्णचैतन्यजीने श्रीसनातन गोस्वामीको शिक्षा देते समय यही उपदेश दिया कि 'प्रधानतः अवतार धारणकी दो रीतियाँ हैं। एक स्वांशरूपसे होते हैं, दूसरा विभिन्नांशरूपसे। भगवान जब कला या अंशरूपमें स्वयं अवतीर्ण होते हैं तब स्वांशावतार कहे जाते हैं और जब किसी अधिकारी जीवको शक्तिसञ्चारकर भेजते हैं तब वह विभिन्नांशवतार कहा जाता है। श्रीशिव स्वांशावतार हैं। इनकी गणना ईश्वरकोटिमें है, जीव कोटिमें नहीं है। (शिवाङ्क)

श्रीशिवजीकी इन विशेषणोंसेयुक्त स्तुतियाँ पुराणोंमें मिलती है। ब्रह्मा और विष्णुभी वंदना करते देखे जाते है। यहाँभी उसीके अनुकूल 'सर्व सर्वगत' आदि विशेषण दिये गये हैं। यह परंपराके अनुकूलही है।

१४ 'ज्ञान वैराग्य धन धर्म कैवल्यसुख' इति। (१) 'धर्म' इति। धर्मकी सूक्ष्म गति है। धर्म क्या है इसकी व्याख्या करना बड़ा कठिन है। "धृतिः क्षमा दमो स्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। धीर्विद्या

---

* यथा 'आत्ममायां समावेश्य सोऽहं गुणमयीद्विज। सृजन् रक्षन् हरन् विश्वं दध्रे संज्ञां क्रियोचिताम्॥ त्रयाणामेकभावानां यो न पश्यति वैभिदाम्। सर्व भूतात्मनां ब्रह्मन् स शान्तिमधिगच्छति॥'

सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम् ॥ यह मनुद्वारा बाँधी हुई धर्मकी मर्यादा दस प्रकारकी है।

श्रीकृष्णजीने श्रीअर्जुनजीसे धर्मके सम्बन्धमें कहा है ' प्राणियोंके अभ्युदय और कल्याणकेलियेही धर्मकी व्याख्या की गयी है। जिससे इस उद्देश्यकी सिद्धि होती है, वही धर्म है। धर्मका नाम धर्म इसलिये पड़ा कि वह सबको धारण करता है, अधोगतिमें जानेसे बचाता है और जीवनकी रक्षा करता है। धर्महीसे संपूर्ण प्रजा जीवन धारण कर रही है। अतः जिस कर्मसे प्राणियोंके जीवनकी रक्षा हो वही धर्म है ऐसा निश्चय रखना चाहिये। जीवोंकी हिंसा न हो, इसके लियेही धर्मका उपदेश किया गया है। अतः जो कर्म अहिंसासे युक्त हो वह धर्म है।' (कर्ण पर्व)। प्राणियोंकी हिंसा न करनाही सबसे बड़ा धर्म है। प्राणरक्षाकेलिये झूठ बोलना पड़े तो बोल दे, परन्तु उसकी हिंसा न होने दे। वनपर्वमें धर्मव्याधने धर्मकी व्याख्या इस प्रकार की है " धर्म = न्याययुक्त कर्मोका आरम्भ। धर्म तीन प्रकारके हैं। वेदप्रतिपादित, धर्मशास्त्रवर्णित और सत्पुरुषोंके आचरण। वेद, स्मृति, और सदाचार ये तीन धर्मका ज्ञान करानेवाले हैं। " (शान्तिपर्व, भीष्मवाक्य) भीष्मपितामहजीने युधिष्ठिरजीसे कहा है कि धर्मके बहुत विधान हैं, पर उन सबोंका आधार ' दम ' है। कहीं कहीं अहिंसा या दयाको धर्मका मूल कहा गया है। ' अहिंसा परमो धर्मः ', ' दया धर्मका मूल है पापमूल अभिमान।'

महर्षि देवस्थानने युधिष्ठिरजीसे कहा है कि कोई शान्तिकी प्रशंसा करते हैं तो कोई उद्योगके गुण गाते हैं, कोई यज्ञको अच्छा बताते हैं तो कोई संन्यासको और कोई दानको, कोई सब कुछ छोड़कर चुपचाप भगवान्‌के ध्यानमें मग्न रहते है और कोई प्रजाका पालन करते रहनाही अच्छा समझते हैं। किन्तु इन सबपर विचार कर बुद्धिमानोंने तो यही निश्चित किया है कि किसीसे द्रोह न करना, सत्य भाषण करना, दान देना, सबपर दया रखना, इन्द्रियोंका दमन करना, अपनीही स्त्रीसे पुत्रोत्पन्न करना तथा मृदुता, लज्जा, और अचंचलता धारण करना यही प्रधान धर्म हैं और ऐसाही स्वायंभुव मनुने कहा है।' (शान्तिपर्व)

हंस भगवान्ने साध्यगणसे कहा है कि 'जो अपने उपस्थ, उदर, दोनों हाथ और वाणी इन चार द्वारोंको पापसे बचाये रहता है वही धर्मज्ञ है।'

शान्तिपर्व तुलाधार जाजलि संवादमें तुलाधारने कहा है कि 'मैं परम प्राचीन और सबका हित करनेवाला सनातन धर्म, उसके गूढ रहस्योंसहित जानता हूँ। १ किसीभी प्राणीसे द्रोह न करके जीविका चलाना श्रेष्ठ धर्म माना गया है। २ जो सब जीवोंका सुहृद होता है और मन, वाणी तथा कर्मसे सबके हितमें लगा रहता है वही वास्तवमें धर्मको जानता है। मैं दूसरेके कार्योंकी निंदा या स्तुति नहीं करता हूँ, मिट्टीके ढेले और सोनेमें भेद नहीं मानता हूँ। ३ सदाचारका आचरण करनेसे धर्मका रहस्य जाना जाता है। ४ जिससे जगत्का कोईभी प्राणी कभी किसी प्रकार किंचित् भय नहीं मानता उस पुरुषको सम्पूर्ण भूतोंसे अभय प्राप्त होता है। जिससे सब लोग डरते हैं उसकोभी दूसरोंसे डरना पड़ता है। अतः इस अभयदानरूप धर्मका प्रयत्नपूर्वक पालन करना उचित है। जो इसको आचरणमें लाता है वह सहायवान, द्रव्यवान, सौभाग्यशाली तथा परलोकमें कल्याणका भागी होता है। अहिंसासे बढ़कर दूसरा धर्म नहीं है। जो प्राणियोंको अपनाही शरीर समझता तथा सबको आत्मभावसे देखता है वह ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। अभयदानसे बढ़कर दान नहीं है। ५ परिणामका विचार करकेही किसी धर्मका स्वीकार करना चाहिये। लोगोंकी देखा देखी करना अच्छा नहीं।'

एकही क्रिया देश और कालके भेदसे धर्म या अधर्म हो जाती है। लोक और वेदमें धर्मके दो भेद हैं। प्रवृत्तिधर्म और निवृत्तिधर्म। निवृत्ति धर्मका फल मोक्षरूप अमृत्व है और प्रवृत्तिका फल जन्ममरण है। फलोंकी शुभाशुभताके कारणही कर्मोंको शुभ या अशुभ कहते हैं।

(२) 'कैवल्यसुख' इति। पद्मपु० भूमिखण्डमें कुंजलने उज्वलसे 'कैवल्य' की जो व्याख्या दी है उससे कैवल्य सुखका ठीक भावार्थ समझमें आ जायगा। अतः हम उसे यहां उद्धृत करते हैं। कुंजलने कहा कि 'मैं तुम्हें उस उत्तम ज्ञानका उपदेश देता हूं जिसे किसीने

चर्मचक्षुओंसे नहीं देखा है। उसका नाम है 'कैवल्य'। वह केवल अद्वितीय और दुःखसे रहित है। जैसे वायुशून्य प्रदेशमें रखा हुआ दीपक हवाका झोंका न लगनेके कारण स्थिर भावसे जलता है और घरके समूचे अंधकारका नाश करता है, उसी प्रकार कैवल्य स्वरूप ज्ञानमय आत्मा सब दोषोंसे रहित और स्थिर है†† । वह आशातृष्णासे रहित और निश्चल है। आत्मा न किसीका मित्र है न शत्रु, उसमें न शोक है न हर्ष, न लोभ है न मात्सर्य। वह भ्रम, प्रलाप, मोह तथा दुःखसुखसे रहित है। जिस समय इन्द्रियाँ संपूर्ण विषयोंमें भोगबुद्धिका त्याग कर देती हैं उस समय सब प्रकारकी आसक्तियोंसे रहित केवल आत्मा रह जाती है। उसे कैवल्यरूपकी प्राप्ति हो जाती है। जैसे दीपक जब प्रज्वलित होकर प्रकाश फैलाता है तब बत्तीके आधारसे वह तेलको सोखता रहता है। फिर उस तेलकोभी वह काजलके रूपमें उगल देता है। दीपक स्वयंही तेलको खींचता है और अपने तेजसे निर्मल बना रहता है। इसी प्रकार देहरूपी बत्तीमें स्थित हुई आत्मा कर्मरूपी तेलका शोषण करती रहती है। वह विषयोंका काजल बनाकर प्रत्यक्ष दिखा देती है और उससे निर्मल होकर स्वयंही प्रकाशित रहती है। उसमें क्रोधादि दोषोंका अभाव है। क्लेशनामक वायु उसका स्पर्श नहीं करती। वह निस्पृह और निश्चल होकर स्वयं अपने तेजसे प्रकाशमान् रहती है। वह स्वकीय स्थानपर स्थित रहकरही अपने तेजसे संपूर्ण त्रिलोकिको देखा करती है।'

'कैवल्यसुख' से उपर्युक्त अवस्थाका सुख यहां अभिप्रेत जान पड़ता है। दूसरा अर्थ शब्दार्थमें दिया जा चुका है।

१५ 'ज्ञान वैराग्य धन धर्म०' इति। (क) शिवजीकी सानुकूलतासे बहुतसे उत्कृष्ट गुणोंकी समताका एकत्र करना 'तृतीय तुल्ययोगिता' अलंकार है। (वीर) धर्मके आठ अंग हैं। यथा, 'इज्याध्ययन दानानितपः सत्यं धृतिःक्षमा। अक्षोभ इति

†† 'यथा दीपो निवातस्थो निश्चलो वायुवर्जितः। प्रज्वलन्नाशयेत्सर्वमन्धकारं महामते॥ तद्वद्दोषविहीनात्मा भवत्येव निराश्रयः।' ८६।५६,६०।

मार्गोयं धर्मश्चाष्टविधःस्मृतः ॥ ' (ख) ' अति कष्ट रत ' इति। वैजनाथजी इसका अर्थ यह करते हैं कि ' अत्यन्त दुःखदायक जो इंद्रियविषयसुख है उसमें प्रीति किये हैं ' ।

१६ ' गत भेद माया ' इति । (१) मायाकृत भेदबुद्धिरहित । ' भेद-बुद्धि ' पद ७ टि० ५ में देखिये । मिलान कीजिये । ' मुधाभेद जद्यपि कृतमाया । बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया ॥ ' (२) भेद और मायारहित । भेदरहित यह कि जिससे जगत्मात्रमें समता भाव स्थापित हो जाता है । वह भक्ति यह सप्तम भक्ति है जो श्री रघुनाथजीने श्रीसबरीजीसे कही है । यथा ' सातँव सम मोहि मय जग देखा । ' ' मायारहित ' यह कि शब्दादि विषय, मोह, मद, मान, मत्सर, सुत, वित्त लोकेषणा और कामक्रोधलोभादि ये सब जो मायाका परिवार है, मिथ्या है, पर छूटता नहीं । यथा ' सो दासी रघुबीरकी समुझे मिथ्या सोपि । छूट न रामकृपा बिनु नाथ कहउँ पद रोपि ॥ ' (उ०), तथा ' मैं अरु मोर तोर तैं' रूपी मायासेरहित जो भक्ति है वह । जिस भक्तिसे माया छूट जाती है वह भक्ति दीजिये । भक्तिसे माया डरती रहती है । यथा 'भगतिहि सानुकूल रघुराया। ताते तेहि डरपति अति माया ॥ तेहि बिलोकि माया सकुचाई । करि न सकइ कछु निज प्रभुताई ॥ ' (उ०) ' देखि भगति जो छोरै ताही । ' (बा०) (३) दीनजी ' भेदमायारहित ' का अर्थ ' शुद्ध निर्मल ' देते हैं । (४) वैजनाथजी लिखते हैं कि ' गतभेदमाया ' का अर्थ है कि ' जिसकी प्राप्तिसे मेरा तेरा, मित्र शत्रु, राग द्वेष, इत्यादि भेदबुद्धि जाती रहती है, सबमें समता बुद्धि आ जाती है तथा इन्द्रियसुखद्वारा जो शब्दादि विषयरूप माया संसारमें लिप्त करनेवाली होती है, वहभी जाती रहती है । '

[११]

देव* भीषनाकर भैरव भयंकर भूत
प्रेत प्रमथाधिपति बिपति हर्त्ता ।

---

* वै०, मु०, दी०, वि०, ७४ में यह शब्द पदभरमें नहीं है । ५१ में पदके शीर्षकमें 'देव' है । छ० और भ० में यही इस अंतरामें है,

मोह मूषक मार्जार संसार भयहरन
तारन तरन करन[1] कर्ता। १।

देव अतुल बल बिपुल बिस्तार विग्रह
गौर अमल अति धवल धरनीधराभं।
सिरसि संकुलित कलकूट[2] पिंगल जटा
पटल सतकोटि विद्युच्छटाभं। २।

देव भ्राज बिबुधापगा आपु पावन
परम मौलि मालेव सोभा बिचित्रं।
ललित लल्लाट पर राज रजनीस कल
कलाधर नौमि हर धनद मित्रं। ३।

देव इंदु पावक भानु नयन मर्दन
मयन ज्ञान गुन अयन विज्ञानरूपं।
रवनगिरिजा भवन भूधराधिप सदा
श्रवन कुंडल बदन छबि अनूपं। ४।

शब्दार्थ.—भीषनाकार (भीषण आकार) = भयंकर मूर्ति। भूत प्रेत प्रमथ ये सब प्रेतोंकीही भिन्न भिन्न जातियाँ हैं और सब प्रेतोंकेही भेद हैं। ये राक्षसोंसे नीच दर्जेके कहे जाते हैं। ये बड़े गन्दे और भयंकर होते हैं। इनके भयंकर रूपोंका वर्णन श्रीरामचरितमानसमें शिव बारातके प्रसंगमें आया है। ये सब शिवगण हैं और ये उंची और नीची दोनों जातियोंके होते हैं। किसी किसीका मत है कि तुच्छ योनियोंमें जो कराल होते हैं, वे भूत हैं और जो मनुष्यके मरनेपर होते हैं वे प्रेत हैं। कालिकापुराणमें लिखा है कि ३६ कोटि प्रमथगण शिवजीकी सदा सेवा किया करते हैं। उनमेंसे १३ हजार तो भोगविमुख योगी और

आगे पदभरमें नहीं है। रा०, भा०, बे०, प्र०, ज०, ह०, १५ में 'देव' पदभरमें है। १ करन—भा०, बे०, ह०, ज०, १५ ('करण' पर हरताल देकर हाशियेपर किसीने 'अभय' बनाया है)। अभय—५१, ७४, रा०, आ०। २ कूट-प्रायः सबमें है। डु० में 'जुट' है। वही वै० भ०, वि०, ने लिया है पर टी० में 'कुट' है।

ईर्ष्यादिसेरहित होते हैं। शेष कामुक तथा क्रिड़ाविषयमें शिवकी सहायता करते हैं। उनके द्वारा प्रकटमें किसीका कुछ अनिष्ट न होनेपरभी उनकी निकटतासे लोग भयान्वित रहते हैं। (पद १६ देखिये)। प्रमथाधिपति (प्रमथ + अधिपति) = स्वामी। बिपति = कष्ट, दुःख, शोक, भारी संकटकी प्राप्ति, स्थिति वा अवस्था। हर्त्ता=हरनेवाले। मूषक=मूसा, चूहा। यथा 'खल बिनु स्वारथ पर अपकारी। अहि मूसक इव सुनु उरगारी ॥' (उ०) मार्जार = बिलार, बिलाव, बिल्ली। तारन= दूसरेको तारनेवाले। तरन (तरण) = तरे हुए अर्थात् मुक्तरुप, अपने स्वरुपसे पार रुप। यथा, 'बारक कहत नाम जग जेऊ। होत तरन तारन नर तेऊ ॥' (अ०) 'तारन तरन हरन सब दूषन' (उ०) बेड़ा (श० सा०), नाव। पं० रामकुमारजी और बाबा-हरिहरप्रसादजीने 'तरण' का अर्थ 'जहाज' और 'नाव' किया है। इस तरह 'तारनतरन' के अर्थ होंगे, 'तारनेके लिये जहाजरुप', 'तारनेवाले जहाज', 'तारनेवाले और जहाज'। चरखारी टीकामें 'तारन तरनि' पाठ देकर अर्थ 'खेवैया', 'तारनेवाला', और 'नाव' किया है। श० सा० में 'तरन तारन' का अर्थ 'भवसागरसे पार करनेवाला' दिया है। बै०, दी० ने 'तरन' का अर्थ 'मुक्तरूप' किया है। करन (करण). = इस शब्दके दो अर्थ यहां लग सकते हैं। १ क्रिया, कार्य यथा। 'कारण करण दयालु दयानिधि निज भय दीन डरे' (सूर)। २ इंद्रिय। यथा 'विषय करन सुर जीव समेता। सकल एक तें एक सचेता ॥ (बा०) करन कर्त्ता = कार्य कारण दोनोंही हैं, इन्द्रियोंके प्रेरक स्वामी हैं। इन्द्रियाँ आहंकारिक हैं और शिवजी अहंकाररूप हैं। यथा, 'अहंकार सिव बुद्धि अज मन ससि चित्त महान।' (लं) अतुल = जो तोला न जा सके, अपार, अमित, यथा 'आवत देखि अतुलबल सींवा' (कि०) बिपुल = बहुत अधिक, बड़ा। बिस्तार = लम्बे चौड़े या बड़े होनेका भाव। अमल = स्वच्छ, निर्मल। धवल = श्वेत, उज्वल। धरनीधराभं = धरणी (पृथ्वीको) + धर (धारण करनेवाले) + आभं (कान्तिवाले)। धरणीधर = भूधर, पर्वत। यथा

'नाथ भूधराकार सरीरा। कुंभकरन आवत रनधीरा।' (लं०) दिग्गज, वाराह, कच्छप, शेषजी और लक्ष्मणजीभी पृथ्वीके धारण करनेवाले माने गये हैं। यथा 'दिसिकुंजरहु कमठ अहि कोला। धरहु धरनि धरि धीर न डोला।' (बा०); परन्तु यहाँ 'अतिधवल' के सम्बन्धसे 'हिमांचल वा कैलास पर्वत' अर्थ ठीक होगा, यद्यपि शेषनागभी श्वेतवर्ण हैं। सिरसि = सिरपर। संकुलित = परिपूर्ण, सघन, समूह प्राप्त, व्याप्त। कूट = पर्वतशिखर, समूह, (पं० रा० कु०) श्रेष्ठ। पिंगल = भूरापनलिये लाल वा पीला। पटल = समूह। विद्युच्छटाभं = (विद्युत्+छटा+आभं) बिजलीकी दीप्ति वा चमककेसमान कान्तिवाली, बिजलीकीसी चमक और शोभा। छटा = प्रकाश, शोभा, छबि। भ्राज = भ्राजमान, शोभायमान। (पद १० देखिये)। बिबुधापगा = बिबुध (देवता) + आपगा (नदी) सुरसरि, गंगा। आप (सं० आपः) = जल। मालेव (माला + इव)= मालाकार, मालाकीतरह। लल्लाट (ललाट) = भाल, मस्तक, माथा। राजना = विराजमान वा शोभित होना, सोहना। यथा 'पुरी बिराजति राजत रजनी' (बा०)। रजनीस (रजनी) + ईश) = रात्रिके-स्वामी चन्द्रमा। कला = चन्द्रमाका सोलहवाँ भाग। इन सोलहोंके नाम ये हैं। १ अमृता, २ मानदा, ३ पूषा, ४ पुष्टि, ५ तुष्टि, ६ रति, ७ धृति, ८ शशनी, ९ चंद्रिका, १० कान्ति, ११ ज्योत्स्ना, १२ श्री, १३ प्रीति, १४ अंगदा, १५ पूर्णा और १६ पूर्णामृता। कला = तेज, शोभा। धनद = धनके देनेवाले, धनके अधिष्ठाता देवता, कुबेर। मित्र = दोस्त, स्नेही। कलाधर = कलाको धारण करनेवाला, चंद्रमा। यह शिवजीकाभी नाम है। पावक = अग्नि। भानु = सूर्य। मर्दन = मसल वा मल डालनेवाले। साधारण अर्थ यही है। कामदेवके प्रसंगानुसार अर्थ होगा 'भस्म करनेवाले'। मयन = कामदेव। यथा, 'जाहि दीनपर नेह करउ कृपा मर्दनमयन।' (बा०) रवन (रमण) = विहार वा क्रीड़ा करनेवाले, पति। भूधराधिप = भूधर (पर्वत) + अधिप (अधिपति, राजा, स्वामी), पर्वतराज हिमालय

वा कैलास । 'अधि' यह उपसर्ग शब्दोंके पहले लगाया जाता है। इसके ये अर्थ होते हैं । १ ऊपर, ऊँचा, पर । २ प्रधान, मुख्य । ३ अधिक । ४ सम्बन्धमें । यथा, आध्यात्मिक, आधिभौतिक ।

पद्यार्थ—हे देव ! हे परम उग्रमूर्ति, भयके देनेवाले भैरव ! आप (भयंकर) भूत, प्रेत, प्रमथादिके स्वामी, भक्तोंकी विपत्तिके हरनेवाले, मोहरूपी चूहेकेलिये बिलाररूप, भवभय (आवागमन, जन्ममरण) के हरनेवाले, तारन तरण और इंद्रियोंके प्रेरक एवं कार्यकारण दोनोंही हैं । १ । हे देव ! आपके बलकी तुलना नहीं है । आपका बल अपार है। आपका बहुत बड़ा लम्बा चौड़ा विस्तृत शरीर है । आपका अत्यन्त स्वच्छ सफ़ेद कैलासपर्वतकी कांतिके समान निर्मल गौरवर्ण है । सिरपर सघन, सुंदर शिखराकार पिंगल जटाओंका समूह है जिसमें असंख्यों बिजलीकी छटाके समान कांति है । २ । हे देव ! आपके सिरपर परम पावन जलवाली देवनदी गंगाजी मालाकार शोभायमान हैं, जिसकी शोभा बड़ी विलक्षण है । सुन्दर माथेपर सुंदर कलाका धारण करनेवाला चंद्रमा विराजमान् है* । (ऐसे) क्लेशके हरनेवाले, कुबेरके मित्र हरको (आपको) मैं नमस्कार करता हूँ । ३ । हे देव ! चन्द्रमा, अग्नि और सूर्य आपके नेत्र हैं । आप कामके नाशक, ज्ञान और गुणोंके घर और विज्ञानमूर्ति हैं । आप पार्वतीजीके पति हैं, पर्वतराजही सदा आपका निवासस्थान है । (भाव कि आप पर्वतके समान सदा परोपकारमें रत रहते हैं) । आपके कानोंमें कुंडल हैं और मुखकी छविकी तो उपमाही नहीं है । ४ ।

---

* टीकाकारोंमेंसे कईने 'कलाधर' का अर्थही छोड़ दिया है, टीकामेंसे शब्दही उड़ा दिया है । दो एकने अर्थ किया है । वीरकविजीने इसे शिवजीका संबोधन माना है और 'कल' का अर्थ 'कला' किया है । वैजनाथजी अर्थ करते हैं कि 'सुन्दर ललाटपर द्वितीयाकी चन्द्रमाकी कला शोभित है । ६४ कला वा उत्पत्तिपालनादि कलाके धारण करनेवाले कुबेरके मित्रको नमस्कार करता हूँ ।' दीपदेहलीन्यायसे 'कलाधर' दोनोंमें लग सकता है ।

टिप्पणी—१ (क) ' भीषनाकार भैरव भयंकर ' इति। इन तीन शब्दोंसे तीन बातें कहीं है। आकार भयंकर है, शब्द भयंकर है और यातनासमयमें प्राणीको भय करने (देने) वाले हैं। काशीमें मरे हुए दुष्कृती जीवोंको उनके कर्मानुसार यंत्रमें डालकर दंड देकर प्राणीके पापोंका क्षय करके उसको मोक्षका अधिकारी बनाते हैं। इसीसे इनको ' भयंकर ' कहा। यथा ' दंडपानि भैरव बिषान मलरुचि खलगन भयदासी। ' (ख) ' भूतप्रेतप्रमथाधिपति बिपतिहर्त्ता ' इति। भूतप्रेतादिगण बड़े भयंकर और दुःखदायी होते हैं। उनके स्वामी होनेसे संदेह होता कि आप भी दुःखदायी होंगे। इस शंकाके निवारणार्थ ' बिपतिहर्त्ता ' कहा। तामसी सृष्टिके कर्त्ता महादेवजी हैं। इसीसे भूत, प्रेत, मृत्यु, यम आदि इन्हींके मंत्र तंत्रोंको मानते हैं, इन्हींकी शपथको मान्य समझते हैं। इसी कारण मृत्युंजय आदि मंत्र अमोघ फलके दाता हैं। वे भूतनाथ कहलाते हैं। (ग) ' मोहमूषक मार्जार ' इति। मोहको मूषक कहनेका भाव कि जैसे मूसा अकारणही अपकार करता है, काग़ज कपड़े आदि खुथर डालता है और खाताभी नहीं, अर्थात् ये कोईभी वस्तुएँ उसके कामकी न होते हुएभी वह उन्हें बेकामका कर देता है। इसी तरह मोहभी बिना कारणही जीवको उसका स्वरूप भुलवाकर उसको ज्ञानभ्रष्ट करता है, भगवद्विमुख बनाता है और संसारचक्रमें डालता है। ' मोह मूषक ' केलिये ' मार्जार ' कहनेका भाव कि चूहे और बिल्लीमें स्वाभाविक बैर होता है। चूहेको देखा नहीं कि बिल्लीने धर दबोचा, लपक झपककर उसका शिकार कर लिया, इतनाही नहीं किंतु अँधेरे उजेलेमें खोज खोजकर वह चूहेका शिकार करती है। वैसेही आप अपने आश्रितोंके मोहको स्वाभाविकही खोज खोजकर नाश कर देते हैं। श्रीवैजनाथजी लिखते हैं कि ' मोहरूपी मूसा मुमुक्षुओंकी शम, दम, ज्ञान, विज्ञान, विवेक, वैराग्यादि सामग्रीको खुथर डालता है और भक्तोंकी नवधाभक्तिरूपी खेतीको खा लेता है। आप उसे सहजही ग्रास कर लेते हैं। '

२ ' तारन तरन ' इति। ' मोह, मूषक, मार्जार ' और ' संसारभय

हरन ' कहकर ' तारन तरन ' कहनेका भाव कि आप दोषयुक्त प्राणि-योंके दोषोंको प्रथम हरकर उसके अज्ञानको दूर कर आचार्य, केवट और जहाज़रूप होकर उसके जन्ममरणरूपी भवभयको हर लेते हैं। यहाँ ' तारन तरन ' का अर्थ ' तारनेवाला, पार उतारनेवाला, नाविक, केवट, आचार्य, जहाज़ या नाव ' लिया गया है। विना नावके केवट पार नहीं कर सकता और न नाव विना केवटके पार लगा सकती है। अतएव नाव और केवट दोनों कहे। अर्थात् भव पार होने या करनेके साधनभी आपही हैं और साधनको पार लगानेवालेभी आपही हैं। दूसरे अर्थके (तारनेवाले और तरे हुए) अनुसार भाव यह है कि यहाँ आपके भगवत् और भागवत दोनों स्वरूप दिखाये। आप भगवत्—(गुरु) रूपसे दूसरोंको तारनेवाले हैं। यथा ' गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः। ' ' वंदे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकर रूपिणं। ', ' तुम त्रिभुवन गुरु बेद बखाना। ' और भक्तरूपसे आप भव प्रवाहसे सदा तरे हुए हैं।

३ (क) ' देव भ्राज बिबुधापगा आपु पावन परम ' इति। गंगाजी भगवान्के चरणोंसे निकली हैं, अतः आपका जल स्वयं परम पावन है और त्रैलोक्यकोभी पावन करनेवाला है। पद १० ' तटिनि बर बारि हरिचरन पूतं ' देखिये। इसीसे शिवजी इन्हें शीशपर धारण किये हैं। (पद २० देखिये)

(ख) ' मौलि मालेव सोभा विचित्रं ' इति। स्वच्छ उज्वल धारा जटाओंपर इस तरह विराजमान् है मानों श्वेतपुष्पोंकी माला जटाओंमें पहनायी गयी हो। यथा ' अच्युत चरण तरंगिणि शशिशेखर मौलि मालती माले। ' (रहिमन) यहाँ पूर्णोपमा अलंकार है। योऽयं सच्छद्विमल चारु विलोल तोयां गंगा महोर्मि विषमां गगनात् पतन्तीम्। मूर्धानाऽऽददे स्रजमिव प्रतिलोल पुष्पां तं शंकरं शरणदं शरणं व्रजामि॥ आकाशसे गिरती हुई गंगा जो स्वच्छ, सुन्दर एवं चंचल जलराशिसे युक्त तथा ऊँची ऊँची लहरोंसे उल्लसित होनेके कारण भयंकर जान पड़ती थीं, उसको जिन्होंने हिलते हुए फूलोंसे सुशोभित मालाकी भाँति

सहसा अपने मस्तकपर धारण कर लिया उन शरणदाता शंकरकी मैं शरण हूँ। प० पु० सृष्टि खंडके इस श्लोकसे अनुमान होता है कि यह छटा गंगावतरण समयकी है।

२ पं० श्रीहनुमान् शर्माजी लिखते हैं कि ' आकाशके अन्वेषकोंका अनुमान है कि विष्णुपादाब्जसंभूत, सप्तर्षि मण्डलसे गिरी हुई गंगा गौरीशंकर (शिखरों) पर पड़ती है और उसके पार्श्ववर्ती अपर पर्वत-शृङ्गोंके विस्तृत और गहनतम गर्तोंमें घूमती हुई गंगोत्रीमें पहुँचती है और वहाँसे निर्गत होकर भारतके भूभागोंको तृप्त और पवित्र करती हुई सागरमें सम्मिलित हो जाती है। अनुमानतः गौरीशंकर और उनके जटाजूट तथा गंगा आदिका अमिट स्वरूप इसीप्रकारका प्रतीत होता है।

' सिरसि कलकूट पिंगल जटा ', भ्राज बिबुधापगा आप पावन परम ' और ' ललित लल्लाटपर राज रजनीस कल कलाधर नौमि हर ' के आध्यात्मिक वा वैज्ञानिक भाव—सारा ब्रह्माण्ड ईश्वरका शरीर माना गया है। **' अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ दिशः श्रोत्रे वाग्विवृताश्च वेदाः। वायुःप्राणो हृदयं विश्वमस्य पद्भ्यां पृथ्वी ह्येष सर्व-भूतान्तरात्मा॥ '** (मण्डूक्योपनिषद् २।१।४) अर्थात् जिसका अग्नि मस्तक है, चंद्रमा और सूर्य नेत्र हैं, दिशाएँ श्रोत्र हैं, वेद वाणी है, विश्व-व्यापी वायु प्राणरूपसे हृदयमें है, पृथ्वी पादरूप है वह सब भूतोंका अन्तरात्मा है।

इसी प्रकारका संक्षिप्त वा विस्तृत वर्णन श्रीमद्भागवत आदि पुराणोंमें भी है। इसी वर्णनके अनुसार उपासनामें शिवमूर्तिके ध्यान हैं।

अग्निकी व्याप्ति सूर्यमण्डलतक है। इसीको यहाँ मस्तक बताया गया है और उसी मस्तकके अंतर्गत सूर्य और चन्द्रमाको नेत्र माना है। यों तो पृथ्वीसे प्रारम्भ कर सूर्यमण्डलसे परे स्वयं भूमण्डलतक ईश्वरकी व्याप्ति बतायी जाती है। आराध्य शिवमूर्तिमें भी तृतीय नेत्ररूपसे अग्नि ललाटमें विराजमान् है जो कि अन्य दोनों नेत्रोंसे किंचित् ऊँचेतक है। सूर्य और चन्द्रमा दोनों नेत्र हैं। **' वन्दे सूर्य शशाङ्कवह्निनयनम् ', ' इंदुपावक भानु नयन '** (पद ११)

यहाँतक अग्निकी व्याप्ति हुई। इससे आगे सोममण्डल है और सोमकी तीन अवस्थाएँ हैं। आप, वायु और सोम। इनमेंसे सोम (द्विज) चन्द्रमारूपसे, आप गंगारूपसे और वायु जटारूपसे शङ्करके मस्तकमें (अग्नि आदिसे ऊपर) विराजमान है। सूर्यमंडलसे ऊपर परमेष्ठि मंडलका सोम मण्डल रूपमें नहीं है; इसलिये शिवजीके मस्तकपरभी चन्द्रमाका मण्डल नहीं है, किन्तु कला मात्र है। सोमकेही तीन भाग हैं, जो कि तीन कला (अंश, अवयव) कही जा सकती हैं। केवल सोम पूर्णरूपमें नहीं रहता, किन्तु भागोंमें विभक्त होकर रहता है। इसलियेभी चन्द्रकी कलाका मस्तकपर विराजित होना युक्त है। मंडलरूप पृथ्वीका चन्द्रमा पहले नेत्रोंमें आ चुका है यह स्मरण रहे। यह परमेष्ठि मंडलका 'आप' गंगाकेरूपमें परिणत होता है। वह गंगा जटामें अर्थात् वायुमंडलमें व्याप्त है। शिवका नाम 'व्योमकेश' है, अर्थात् आकाशको उनकी जटा माना गया है और आकाश वायुसे व्याप्तही व्याप्त मिलता है। 'यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्र गो महान्।'

इससेभी जटाओंका वायुरूप होना सिद्ध है। एक एक केशके समूहको जटा कहते हैं और वायुकाभी एक एक डोरा पृथक् पृथक् है, जिनकी समष्टि 'वायु' कहलाता है। यह जटा और वायुका सादृश्य है।

पृथ्वीका अधिकतर सम्बन्ध सूर्यसेही है। आगेके सोममंडलका पृथ्वीसे साक्षात् सम्बन्ध नहीं होता। सूर्यचन्द्रद्वारा होता है। इससे हमारा असली ब्रह्मांड सूर्यतकही है। यही शिवमूर्तिमेंभी सूचित किया है। क्योंकि मस्तकतकही शरीरकी व्याप्ति है। केश मुख्यतः शरीरके अंश नहीं कहे जाते। शरीरका भागही अवस्थान्तरित होकर केशरूपमें परिणत होता है। इसीप्रकार अग्निही अवस्थान्तरित होकर सोमरूपमें परिणत होता है। यह परमेष्ठि मंडलका वायु जटारूपसे है और जिसे श्रुतिमें प्राणरूपसे हृदयमें विराजमान् कहा है। वह हमारे अन्तरिक्षका वायु है। पद्मपुराणमें पृथ्वीका पद्मरूपसे निरूपण किया है और शङ्करका ध्यान पद्मासनस्थितरूपमें है। 'पद्मासीनं समन्तात् स्तुतममरगणैः' इससे पृथ्वीकी पादरूपताभी ध्यानमें आ जाती है।

४ ' धनद मित्रं ' इति । शिवजी कुबेरके मित्र हैं, इसीसे उनके यहां वे आया जाया करते हैं। यथा ' जात रहेउँ कुबेर गृह रहिहु उमा कैलास । ' (उ०), ' जाइ गहे पाँय धाय धनद उठाय भेंट्यो समाचार पाय पोच सोचत सुमिरैं । तहँई मिले महेस दियो हित उपदेस राम की सरन जाहि सुदिन ने हेरैं । ' (गी० २४७) दीनजी ' धनद मित्र ' का भाव यह कहते हैं कि ' आपको धन संपत्तिकी कमी नहीं ' । कुबेरजी विभीषणजीके सौतेले भाई हैं। ये यक्षोंके स्वामी और समस्त धनके अधिष्ठाता देवता, कोषाध्यक्ष वा कोठारी माने जाते हैं । ' धनद मित्र ' का दूसरा अर्थ यहभी किया जा सकता है कि ' (याचकोंको) धन संपत्ति देनेवाले हैं क्योंकि आप (सर्वेषां मित्रम्) सबके मित्र हैं ' । गुणनिधि द्विज कुबेर हुआ जो भगवान् शंकरका परम भक्त था। यह पूर्व लिखा जा चुका है।

५ ' इंदु पावक भानु नयन ' इति । शिवजीके तीन नेत्र हैं। सूर्य दक्षिण नेत्र है, चन्द्रमा बाँया नेत्र है और अग्नि नेत्र ललाटपर है जिससे कामको जलाया था। सूर्यनेत्रसे उत्पत्ति, चंद्रमासे पालन और अग्निसे संहारकर्ता जनाया। वैजनाथजी लिखते हैं कि ' दक्षिण नेत्र सूर्यसे मोह तम हरते हैं, वामनेत्र चन्द्रसे जनोंको आह्लादित करते हैं और अग्निनेत्रसे मदनमर्दन करते हैं। '

श्रीसकलनारायण शर्माजी लिखते हैं कि ' वह (ईश्वर शिव) भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालोंकी बातोंको जानता है, इसीसे ' त्रिनयन ' कहलाता है । जो लोग समझते हैं कि उसके तीन आँखें हैं, वे भूलते हैं।

अनुसंधान [११]

देव चर्म असि सूल धर डमरू सायक[३]
चाप जान बृषभेस करुनानिधानं ।
जरत सुर असुर नर लोक सोकाकुलं
मृदुल चित अजित कृत गरलपानं ॥ ५ ॥

---

३ रा०, भा०, बे०, प्र०, ज०, १५, ह०; ७४ सभी प्राचीन पोथियोंमें ' सायक चाप ' है। ५१, आ० में ' सरचापकर ' है।

देव भस्म तन भूषनं ब्याघ्रचर्मांबरं
उरग नर मौलि उर माल धारी।
डाकिनी साकिनी खेचरं[४] भूचरं
जंत्र[५] मंत्र भंजन प्रबल कल्मशारी ॥ ६ ॥
देवकाल अतिकाल कलि काल[६] ब्यालाद[७]
खग त्रिपुरमर्द्दन भीम कर्म भारी।
सकल लोकांत कल्पांत सूलाग्रकृत
दिग्गजाव्यक्त[८] गुन नृत्य कारी ॥ ७ ॥
देव पाप संताप घन घोर संसृति दीन
भ्रमत जग जोनि नहिं कोपि त्राता।
पाहि भैरव रूप राम रूपी रुद्र
बन्धु गुर जनक जननी बिधाता ॥ ८ ॥
देव यस्य गुनगन गनत्ति बिमल मति
सारदा निगम नारद प्रमुख ब्रह्मचारी।
सेष[९] सर्वेस आसीन आनंदबन
प्रनत[१०] तुलसीदास त्रासहारी ॥ ९ ॥

शब्दार्थः—चर्म = ढाल। तलवार, भाले आदिके वार रोकनेका अस्त्र जो कछुयेकी खोपड़ी, गैंडेकी पीठ, चमड़े, धातु आदिका बना हुआ थालीके आकारका गोल और आगेकी ओर उभरा हुआ होता है। 'सूल, डमरू, सायक, जान, वृषभ, गरल, भस्म' पद १० में

---

४ खेचरं भूचरं–रा०, ५१, १५, आ०, प्र०। खेचर भूचर–भा०, वै०। खेचरी भूचरी–ह०, ७४। ५ जंत्र मंत्र–रा०, भा०, वै०, ५१, १५ छु०, वै०, भ०, वि०। यंत्र–ह०, मु०, ७४, दी०। मंत्र–प्र०। ६ काल–रा०, प्र०, ज० ह०, ५१, आ०। व्याल–भा०; वे०, ७४। ७ ब्यालादि–छु०, ज०, १५, वै०, मु०, ५१। ८ दिग्गज व्यक्त–७४। ९ सेष–रा०, प्र०, ७४। सेस–ज०, १५, भ० वि०। शेष–ह० मु०, वै०, ५१, दी०। सैष–भा० बे०। १० प्रनत तुलसीदास–भा०, वे०, रा०, प्र०, ज०, १५, छु०, बै०, ७४। दासतुलसी प्रनत–ह० ५१, मु०, भ०, दी०, वि०। प्रनत तुलसीदास त्रासमें यमक अलंकार है।

देखिये। असि = असिके जन्मकी कथा बृहन्नन्दिकेश्वर पुराणकी दुर्गोत्सव-पद्धतिके प्रकरणमें यह दी हुई है कि ब्रह्माकी यज्ञाग्निसे इसका जन्म हुआ। उस समय ब्रह्माने इसके आठ नाम रक्खे। '**असिर्विसनसः खड्गस्तीक्ष्णधारो दुरासदः। श्रीगर्भो विजयश्चैव धर्मपालो नमोऽस्तुते॥ इत्यष्टौ तव नामानि स्वयमुक्तानि वेधसा॥**' ब्रह्माजीने इसे महादेवजीको दिया। उन्होंने विष्णुको, विष्णुने मरीचिको, मरीचिने महर्षियोंको, महर्षियोंने इन्द्रको और इन्द्रकेद्वारा पृथ्वीपर इसका प्रचार हुआ। वृषभेस (वृषभ + ईस) = नन्दीश्वर। सोकाकुल = शोकको प्राप्त, शोकसे व्याकुल। अजित = किसीसे न जीता जा सकनेवाला। यह विशेषण 'शिव' और 'गरल' दोनोंका हो सकता है। विषकी झार और उसके वेगको कोई न सह सका, इसीसे उसे 'अजित' कहा। कृत = कर लिया। नर मौलि = मनुष्यकी खोपड़ी; मुंड। माल धारी = माला धारण किये है। उरग नरमौलि माल = '**ब्याल नृकपाल माला बिराजै**' पद १० देखिये। माल = मालायें प्रायः फूलों, मोतियों, काठ या पत्थरके मनकोंकी, कुछ वृक्षोंके काष्ठों, बीजोंकी अथवा सोने चाँदी आदि धातुओंसे बने हुए दानेसे बनायी जाती हैं। फूल या मनके धागेमें पिरोये जाते हैं और धागेके दोनों छोर एक साथ किसी बड़े फूल या उसके गुच्छे या दानेमें पिरोकर बाँध दिये जाते हैं। यह प्रायः शोभाकेलिये धारण की जाती है। भिन्न भिन्न देवताओं और सांप्रदायोंकी मालाएँ भिन्न भिन्न प्रकारकी होती हैं। डाकिनी=पिशाची या देवी जो कालीके गणोंमें समझी जाती है। डाइन, चुड़ैल, पूतना आदि बालग्रह जो १६ वर्षतकके बालकोंको खाते या सताते हैं। यथा '**जो सब पातक पोतक डाकिनि**' (अ०)। शाकिनी = यह दुर्गाके गणोंमें गिनी जाती है। योगिनी, पिशाचिनी। खेचर=आकाशमें बिचरने वा रहनेवाले दुष्ट और तुच्छ देवी देवादि जीव। भूचर=पृथ्वीपर रहनेवाले श्मशानी भूतादि दुष्ट जीव। जंत्र (यंत्र) मंत्र=जादू टोना या टोटका आदि। यह मुहावरा है। यंत्र तांत्रिकोंके अनुसार कुछ विशिष्ट प्रकारसे बने हुए आकार या कोष्टक जिनमें कुछ अंक या अक्षर लिखे रहते

हैं और जिनके अनेक प्रकारके फल माने जाते हैं। तांत्रिक लोग इनमें देवताका अधिष्ठान मानते हैं। लोग इन्हें हाथ या गलेमें पहनतेभी हैं। जंत्र = बीजाक्षरसे अंकित अनिष्ठकारी चक्र। मंत्र = तंत्रके अनुसार वे शब्द या वाक्य जिनका जप भिन्न भिन्न देवताओंकी प्रसन्नता वा भिन्न भिन्न कामनाओंकी सिद्धिकेलिये करनेका विधान है। ऐसा शब्द या वाक्य जिसके उच्चारणमें कोई दैवी प्रभाव या शक्ति मानी जाती है। भिन्न भिन्न देवताओंकी पूजनपद्धतिमें भिन्न भिन्न प्रकारके यंत्रोंका विधान तंत्रशास्त्रोंमें कहा गया है। वैजनाथजी 'यंत्र' से 'बीज अंकादि अंकित-पत्र' और 'मंत्र' से 'मरणउच्चाटनादिके मंत्र' का भाव लिखते हैं। स्मरण रहे कि ये मंत्र वैदिक नहीं हैं, वरंच मारणउच्चाटन आदि-केही प्रयोग हैं। कल्मशारी=(कल्मष (पापके)+अरि) पापनाशन। प्रबल कल्मष=महापाप। प्रबल दीपदेहरी है। काल=मृत्यु। यथा 'कालरूप तिन्ह कहँ मैं भ्राता' (उ०), 'मोहि बिलोकु तोर मैं काला' (लं०)। अतिकाल=महाकाल। सृष्टि और प्राणियोंका अंत करनेवाला। ब्यालाद=सर्पोंका खानेवाला। खग=पक्षी। अद=भक्षक। भीमकर्मभारी= भीषण, भयानक, भयङ्कर एवं बहुत भारी कर्म करनेवाले। सकल लोकांत=चौदहो भुवन, तीनों लोक। निरुक्तमें तीन लोकोंका उल्लेख मिलता है। पृथ्वी, अंतरिक्ष और द्युलोक। इनका दूसरा नाम भूः, भुवः, स्वः है जो महाव्याहृति कहलाते हैं। इसके साथ महः, जनः, तपः और सत्यम् मिलकर सप्तव्याहृति कहलाते हैं। इनके नामसे सात लोकों भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक और सत्यलोककी कल्पना हुई। पीछे इनके साथ सात पाताल अतल, वितल, सुतल, तलातल, (अग्निपु०, विष्णुपु० में गभस्तिमान्) महातल, रसातल (विष्णुपु० में नितल) और पाताल मिलकर १४ लोक या भुवन माने गये हैं। सुश्रुतमें लोक दो प्रकारका माना गया है। स्थावर और जंगम। प्रायः लोकके साथ 'त्रै' शब्द आता है और भुवनके साथ 'चौदह'। अर्थात् लोक तीन माने जाते हैं और भुवन चौदह। कल्पांत = इससे महाप्रलयकालका अंत सूचित किया है। शूलाग्र=त्रिशूलका अग्रभाग जिसे फल, नोक या

मुन्नी कहते हैं। दिग्गज=दिशाओंके हाथी। पुराणानुसार आठों दिशाओंमें पृथ्वीको दबाये रखने और उन दिशाओंकी रक्षा करनेकेलिये आठ गज स्थापित हैं। १ पूर्वमें ऐरावत, २ पूर्वदक्षिणके कोनेमें पुंडरीक, ३ दक्षिणमें वामन, ४ दक्षिण पश्चिममें कुमुद, ५ पश्चिममें अंजन, ६ पश्चिम उत्तरके कोनेमें पुष्पदंत, ७ उत्तरमें सार्वभौम और ८ उत्तरपूर्वके कोनेमें सुप्रतीक हैं। अव्यक्त गुन = टि० ९ में दिया जायगा। पाप=वह कर्म या आचरण जिसका फल इस लोकमें तथा परलोकमें अशुभ माना जाता है। अकर्तव्य वा निषिद्ध कर्मोंका करना एवं वेद विहित अवश्य कर्तव्यका न करना दोनोंही पाप हैं जिनका फल पतन और दुःख है। पाप मन, वचन और कर्म तीन प्रकारके होते हैं। यथा '**जे पातक उपपातक अहहीं। करम बचन मन भव कवि कहहीं।**' (अ०)। संताप=अत्यंन्त ताप। ये तीन प्रकारके हैं। अधिदैविक, अधिभौतिक, अधिदैहिक। यथा '**दैहिक दैविक भौतिक तापा। रामराज नहिं काहुहि ब्यापा॥**' यह पापका फल है। ताप=जलन, दाह, मानसिक व्यथा या दुःख वा कष्ट। घनघोर=भीषण; भयावना; जिसे देख सुनकरही जी दहल जाता है। घन=अत्यन्त; भारी। घोर = भयानक। संसृति=संसार, भवप्रवाह। लगातार एक अवस्थासे दूसरी अवस्थामें जाते रहना अर्थात् बारबार जन्म लेनेकी परंपराका नाम 'संसार' है। भ्रमत (सं० भ्रमणसे) = भटकते, चक्कर लगाते फिरना। मारेमारे फिरना। जोनि (योनि) = आकर; खानि; उत्पत्तिका स्थान, प्राणियोंके विभाग, जाति या वर्ग। दीन = दुःखख वा भयसे अत्यन्त दुखी, संतप्त, कायर और पुरुषार्थहीन, जो किसी साधन या पुरुषार्थ करनेके योग्य न हो, बेचारा। कोपि = (कः + अपि) कोईभी। पाहि = रक्षा कीजिये। जनक = उत्पन्न करनेवाला, पिता। रुद्र = शास्त्रोंमें शिवजीके अनेक नाम लिखे हैं। वे सब गुणकर्मादिके अनुसार निर्दिष्ट किये गये हैं। अत्यन्त प्राचीन कालमें शिवका 'रुद्र' नाम था। प्रलयकारी, भयकरी, महाक्रोधी अथवा संहारक आदि गुणोंको देख-

करही इस नामकी कल्पना की गयी होगी। वैदिककालके देव, दानव, महर्षि या मनुष्य मानते थे कि 'प्रलयकालके अवसरमें जो अतिवृष्टि, अनावृष्टि, अग्निदाह, प्रज्वलन, तड़ितप्रवाह अथवा वज्रपातादि होते हैं वे सब रुद्रकेही प्रतिरूप या प्रभाव हैं। स्वयं रुद्रही वायु, वन्हि या इंद्रादिके द्वारा प्रलय करते हैं।' (हनुमान्शर्माजी) कोई सज्जन ऐसा कहते हैं कि 'ईश्वरका एक नाम रुद्र है क्योंकि वह दीन दुखियोंके दुःखपर आँसू बहाता है। जीवोंको भवपाशमें बांधे देख उसे रोना आता है तथा वह पापियोंको रुलाता है। उक्त शब्दमें 'रुद्' धातु है जिसका अर्थ रोना है। वह मुक्तिका स्वामी है।' वेदोंमें रुद्रसूक्तमें उनकी विभूतियाँ वैसेही गिनायी गयी हैं जैसी गीतामें श्रीकृष्णभगवान्ने अपनी। जननी = माता। विधाता = विधानकर्ता, प्रबन्धकर्ता। यस्य = जिसके। गन (गण) समूह। गनति = वर्णन करती है। नारद = ब्रह्माजीके मानस पुत्रोंमेंसे एक पुत्र। इतिहास और पुराणोंमें ये देवर्षि कहे गये हैं जो नाना लोकोंमें विचरते रहते हैं और इस लोकका संवाद उस लोकमें दिया करते हैं। ब्रह्माजीने सृष्टिकी अभिलाषासे पहले मरीचि, अत्रि आदिको उत्पन्न किया। फिर सनकादिक, स्कंद, नारद और रुद्र उत्पन्न हुए। (हरिवंश पु०) विष्णुपुराणमें लिखा है कि ब्रह्माने सब पुत्रोंको प्रजासृष्टि करनेमें लगाया। पर नारदने कुछ बाधा की। इसपर ब्रह्माने इनको शाप दे दिया कि तुम सदा सब लोकोंमें घूमा करोगे, एक स्थानपर स्थिर होकर न रहोगे। श्रीमद्भागवत आदिमें इनकी बड़ी कथाएँ हैं। ये बड़े भारी भक्त प्रसिद्ध हैं। सदा हरियशगान वीणा बजाकर किया करते हैं। ये कलहप्रिय कहे गये हैं। सारदा = सरस्वति। ब्राह्मण ग्रंथोंमें यह वाग्देवी मानी गयी हैं। सबकी जिह्वापर बैठकर यही वचन कहलाती हैं। वाणी और मंगलकी कर्त्री मानकर मानसके प्रारंभमें इनका मंगलाचरण किया गया है। पुराणोंमें ये ब्रह्माकी कन्या और स्त्री दोनोंही कही गयी हैं। इनका वाहन हंस हैं। महाभारतमें एक स्थानपर इन्हें दक्षकी कन्या लिखा है। वाल्मिकि

युद्धकांड सर्ग ११७ में भगवान्‌के विराटरूपका वर्णन करते हुए ब्रह्माजीने ३२ वे श्लोकमें सरस्वतीको श्रीरामजीकी जिह्वारूप कहा है। यथा ' **अहं ते हृदयं राम जिह्वादेवी सरस्वती।** ' प्रमुख=श्रेष्ठ, प्रधान। ब्रह्मचारी = ब्रह्मचर्य व्रत धारण करनेवाले; स्त्री संसर्गादिसे दूर रहनेवाले, ब्रह्महीमें दिनरात लगे रहनेवाले, ब्रह्मवेत्ता। महाभारत आश्वमेधिक पर्वमें ब्राह्मण ब्राह्मणीके उपाख्यानमें ब्राह्मणने कहा है कि " इन्द्रिय संयममें प्रवृत्त रहनेवाला पुरुष ब्रह्मचारी कहलाता है। जो व्रत और कर्मोंका त्याग करके ब्रह्ममें स्थित है और ब्रह्म-स्वरूप होकर संसारमें विचरता रहता है, वही मुख्य ब्रह्मचारी है। ब्रह्मही उसकी समिधा है, ब्रह्महीं अग्नि है, ब्रह्मसेही वह उत्पन्न हुआ है, ब्रह्मही उसका जल और ब्रह्मही उसका गुरु है। उसकी चित्तवृत्तियाँ सदा ब्रह्ममेंही लीन रहती हैं। विद्वानोंने इसीको सूक्ष्म ब्रह्मचर्य बतलाया है। आत्मज्ञानी पुरुष इस ब्रह्मचर्यके स्वरूपको जानकर सदा उसका पालन करते हैं। " सेष = इसके कई अर्थ हो सकते हैं। १ शेषनाग। २ अंतमें जो तत्व बच रहता है वह। स + एष = वह ही। सर्वेश = सबके स्वामी। आनंदबन = काशी। इसी तरह और पुरियोंके नामभी ' बन ' पर हैं। प्रनत = प्रणाम करता हुआ, प्रणाम करनेवाला, शरणागत।

पद्यार्थः—देव ! आप ढाल, तलवार, त्रिशूल, डमरू, बाण और धनुष धारण किये हैं। नंदीश्वर आपका वाहन है। आप करुणा-सागर है। सुरलोक, असुरलोक (पाताल) और नरलोक अजय हाला-हलसे जलते हुए शोकातुर थे। उसे कोमलचित्तसे आपने पी लिया। ५। देव ! भस्म आपके तनका भूषण है, (अर्थात् सारे शरीरमें आप भस्म रमाये रहते हैं) व्याघ्रचर्म वस्त्र है, हृदय वा वक्षस्थलपर आप सर्पों और नरमुंडोंकी मालाएँ धारण किये हैं। डाकिनी, शाकिनी, खेचर, और भूचरोंके (इन उपद्रवकारी दुष्ट जीवों और ग्रहों) जादू टोनेके तोड़नेमें आप प्रबल हैं। आप पापके नाशक हैं। ६।

देव ! आप महाकालकेभी काल* और कलिकालरूपी सर्पोंके भक्षण करनेको गरूड़रूप, त्रिपुरासुरके नाशक और बड़े भयंकर कर्म करनेवाले हैं। कल्पके अंतमें समस्त लोकोंका अंत (नाश) कर त्रिशूलके अग्रभागपर दिग्गजोंके शरीरोंको डोरेकी तरह पोहकर आप तांडवनृत्य करते हैं।७। देव ! पाप संतापसे पूर्ण, अत्यन्त भयावह भवप्रवाहसे दीन होकर जगत्में (८४ लक्ष योनियोंमें) भटकते हुए मेरा कोईभी रक्षक नहीं है। हे भैरवरूप ! रामरूपीरुद्र ! मेरी रक्षा कीजिये। आपही मेरे बंधु, (भाई, सहायक) पिता, माता और विधाता (सभी कुछ) हैं। ८। देव ! निर्मल बुद्धिवाली ‡ सरस्वती, वेद और नारद मुख्य (ब्रह्मवेत्ता) ब्रह्मचारी जिनके गुणगान करते हैं वही आप † सबके स्वामी आनंदबनमें (काशीमें) बिराजमान (मुझ) शरणागत तुलसीदासके त्रासके हरनेवाले हैं। ९।

नोटः—यहाँ छः आयुध (चर्म, असि, शूल, डमरू, सायक और चाप) धारण किये हुए कहकर षट्भुजमूर्तिका ध्यान सूचित किया है।

---

* यह अर्थ हमने 'करालं महाकाल कालं कृपालं' (उ०) के प्रमाणसे किया है। अर्थांतर ये हैं। १ 'कालकेभी महाकाल' (डु०)। २ कालमें अति कराल काल जो कलिकाल है वही सर्प है (वै०)।

‡ 'बिमल मति' नारदकाभी विशेषण है। यथा '**सुमिरत हरिहि आप गति बाधी। सहज बिमल मन लागि समाधी।**' (बा०) इसे सबका विशेषण मानना चाहिये।

† 'शेष' पाठ शुद्ध मानें तो दो प्रकारसे अर्थ कर सकते हैं। (१) ब्रह्मचारी और शेषजी जिनका गुण गाते हैं। यदि इसमें यह आपत्ति मानें कि 'प्रमुख' पदसे पूर्वही गान करनेवालोंकी इति हो गयी तब दूसरा अर्थ यों कर लें कि (२) आपहीं शेष और सर्वेश हैं। महाकल्पांतके अंतमें जो तत्त्व बच रहता है वह आपही हैं और सबके आदिकरण हैं। ३ तीसरा अर्थ ऊपर दिया गयाही है।

टिप्पणीः—६ (क) ' चर्म असि शूल सायक चाप ' से सदा भक्तोंके कष्ट दूर करनेको अर्थात् शरणागतरक्षकत्वकेलिये सदा तैयार और तत्पर दिखाया। ' करुणानिधान ' कहकर भक्त आरतिहरणका कारण बताया और ' जरत सुर असुर नरलोक सोकाकुलं कृत गरल पानं ' यह करुणानिधान, आर्तिहरण आदिका उदाहरण दिया। (ख) श्रीवैजनाथजीका मत है कि ' चर्म असि ' आदि धारण करनेसे कठोर जान पड़ते, अतः कहा कि करुणानिधान हैं। (ग) ' मृदुलचित ' इति। शोकातुरपर दया करना यह मृदुल चित्तका लक्षण है। यथा, ' नारद देखा विकल जयंता। लागि दया कोमलचित संता। ' (आ०) अतः शोकाकुल कहकर मृदुलचित्त कहा। बादमें कहा विषपान। यथा, ' पान कियो विष भूषन भो करुनाबरुनालय साँइ हियो है '। (घ) ' सुर असुर नर लोक सोकाकुलं ' इति। श्रीमद्भावतमें जो ' सदेवासुरमानुषं ' है उसीका भाव यहाँ ' सुर असुर नर लोक ' में है। श्रीरामचरितमानसमें ' जरत सकल सुरवृंद ' स्पष्ट न कहा। वहाँके 'सकल' पदमें इन सबका ग्रहण है।

७ ' भस्म तन भूषनं ' इति। ' शिवजीका स्वरूप त्यागकी मूर्ति हैं। वे चिताभस्म रमाते हैं। संसारमोहकी भस्म, द्वैतकी भस्मही यह चिताभस्म हैं। वे मुंडमाल धारण करते हैं। वास्तवमें यह संसारसे मोह त्यागनेका सूचक है। वे सर्पोंकी कोपीन लगाते हैं। यह उनके विश्वप्रेरत्वका सूचक है। यह सब त्यागकी झाँकी है। वस्तुतः वे सब सांसारिक कर्मोंसे दूर हैं। इस स्वरूपसे यह शिक्षा मिलती है कि मनुष्य जब अपने शरीरमें अनासक्तिकी भस्म रमा लें और संसारका वास्तवमें त्याग कर दे तभी उसे भगवान्‌का साक्षात्कार हो सकता है। '

इस वेषके धारण करनेका दूसरा कारण श्रीकाकभुशुंडजीने मानसमें कहा है। ' जेहि सुख लागि पुरारि असुभ वेष कृत सिव सुखद। ' असुरविमोहनार्थ भगवदाज्ञासे ऐसा रूप बनाये रहते हैं। इसी-लिये भगवान् आपके इस वेषको देखकर प्रसन्न होते हैं कि इन्होंने हमारी आज्ञाको पूर्णरूपसे पालन किया है। इससे आप सदा इसी

वेषमें रहते हैं। श्रीरामावतार और श्रीकृष्णावतारमें आप इसी वेषमें जाकर बालक राम और बालक कृष्णके दर्शनकर कृतकृत्य होते देखे सुने जाते हैं।

तीसरा कारण हमें भा० ४।६।३६,३७ में मिलता है। वह यह है कि भस्म, दण्ड, जटा और अजिन धारण करना तपस्वियोंके अभीष्ट चिन्ह हैं। शिवजी ज्ञानी, तपस्वी और योगीश्वर हैं।

यहाँ 'भस्म तन भूषनं' से दिखाया है कि सर्वशक्तिमान्, करुणा-निधान और मृदुलचित्त होते हुएभी आप परम विरक्त, निर्लेप और उदासीन रहते हैं। यह वेष अमंगल सूचक है; अतः इसके निवारणार्थ कहते हैं कि आप दुष्ट अमांगलिक जीवोंके भयसे रक्षा करनेवाले हैं। आपके स्मरणमात्रसे ये बाधाएँ दूर हो जाती हैं।

शरीरमें विभूति रमाये होनेके वैज्ञानिक, यौगिक आदि अभिप्राय-महामहोपाध्याय पं० श्रीगिरिधरजी शर्मा चतुर्वेदीजी लिखते हैं कि, 'सात लोकोंमें स्वयम्भूसे पृथ्वीतक पाँच मंडल बताये गये हैं। उनमेंसे सूर्यमंड-लमें सब वर्ण हैं। आगे परमेष्ठिमंडल कृष्ण है। इसके आगे स्वयंभूमंडल प्रकाशमय श्वेतवर्ण है और आग्नेय मण्डल होनेके कारण वह (विश्वमण्डल) वा 'रुद्रमण्डल' भी कहलाता है। वही मण्डल सर्वव्यापक होनेके-कारण ईश्वरका रूप कहा जा सकता है। उसके प्रकाशमय श्वेतवर्ण होनेके कारण शिवमूर्तिका श्वेतवर्ण युक्तियुक्त है। 'शङ्कर भगवान् सर्वांगमें विभूतिसे अनुलिप्त रहते हैं। इसकाभी यही कारण है। उक्त पाँचों मण्डलोंके प्राण सारे पार्थिव पदार्थोंमें व्याप्त हैं। उनमेंसे सौर जगत्में सूर्यप्राण उद्भूत (सबसे ऊपर, प्रकाशित) रहते हैं और आगेके अमृतमंडलोंके (परमेष्ठी और स्वयम्भू) प्राण आच्छन्न (ढके हुए, गुप्त) रहते हैं। सूर्यकिरणोंके कारणही भिन्न भिन्न पदार्थोंमें भिन्न भिन्न रूप दीख पड़ते हैं यह वैज्ञानिकोंका सुप्रसिद्ध सिद्धान्त है। सूर्यकी किरणोंमें सब रूप हैं। हर एक पदार्थ अपनी विशेष शक्तिसे अन्य रूपोंको निगल जाता है और एक रूपको उगल देता है। जिसे उगलता है वही हमें उसका रूप प्रतीत होता है।

यह आधुनिक वैज्ञानिकोंका कथन है। जब इन पदार्थोंमें अग्नि लगायी जाती है तो अग्निका स्वभाव है कि घनीभूत पदार्थोंका विश्कलन करे, उन्हें तोड़े। यों अग्निद्वारा पृथक् किया जाकर सौरप्राणोंका ऊपरी स्तर जब निकल जाता है, तब भीतरका छिपा हुआ परमेष्ठिमण्डलके प्राणका समनुगत कृष्णरूप काले कोयलेके रूपमें निकल आता है। किसीभी पदार्थको जलानेपर वह कालाही होगा यह प्रत्यक्ष है। यह पदार्थोंमें दूसरा स्तर है। जब इसपरभी फिर अग्निका प्रयोग किया जाय और अग्निद्वारा विश्कलित होकर दूसरा स्तरभी निकल जाय तब तीसरा अन्तर्निगूढ़ स्वयम्भू प्राणोंका स्तर प्रगट होता है और वह स्वयंम्भू प्राणके समनुगत श्वेतरूपका देखा जाता है। किसीभी रंगके पदार्थको जलाइये, अंतमें प्रकाशमान् श्वेत भस्मही शेष रहता है। यह मौलिक तत्त्व है। इसे अग्नि नहीं उड़ा सकता। भगवान् शंकर इसी मौलिक तत्त्व भस्मसे सदा उद्धूलित रहते हैं। इसी मौलिक तत्त्वसे वे सृष्टिकी रचना करते हैं। यह शिवपुराणकी सृष्टिप्रक्रियामें स्पष्ट है। स्वयं भूमण्डलके अधिष्ठाता श्वेतमूर्ति शिवका जगद्व्याप्त स्वयम्भू प्राणरूप भस्मसे उद्धूलित रहना सर्वथा स्वारसिक है इसमें सन्देह नहीं।'

यौगिक अभिप्राय:—श्रीवासुदेवशरणजी अग्रवाल एम० ए०, एल्‌एल्० बी० अपने 'शिवका स्वरूप' शीर्षक लेखमें लिखते हैं कि शिवको भृगुपतिभी कहा जाता है। जलतत्त्व या रेतको षट्चक्रोंकी अग्निमें खूब भूनकर भस्म कर देनेके कारण शिवजी 'भृगु' कहलाते हैं। जलोंको भस्म करनेकेलिये इस शरीरको यदि भाड़ मान लें तो योगी उसका भड़भूँजा है। वह जलोंकी भस्म बनाकर उसको अपने शरीरपर लगाता है। यही उसके ब्रह्मचर्यका तेज है। ब्रह्मचारीके शरीरपर जो स्वाभाविक तेज या कांति रहती है वह वीर्यकी भस्मही है। उसके शरीरमें तपकेद्वारा रेतका परिपाक होता है और वह भस्मरूपमें परिणत हो जाता है। मेघभी जलकी भस्म है। 'अपभ्रं वा अपां भस्म' (शतपथ ७।५।२।४८) अग्निके संयोगसे तप्त होकर जल आकाशगामी होता है। इसीलिये तपके द्वारा मनुष्य उर्ध्वरेत बनता है। बाहर ब्रह्मांडमें

सूर्यके तापसे जैसे मेघ बनते हैं वैसेही शरीरके भीतर तपकी अग्निकेद्वारा रसोंके परिपाकसे रेतकी भस्म बनती है। वही शरीरकी त्वचाके ऊपर तेज और कांतिके रूपमें प्रकट होती है। ब्रह्मचारीकेलिये इस प्रकारकी भस्म परम विभूति है। यह भस्मही उसके मंडनकेलिये शेष अंगराग है। इस भस्मसे भूषित होनेके कारणही बटरूपधारी शिवको कालिदासने '**ज्वलन्निव ब्रह्ममयेन तेजसा**' लिखा है।

प्रो० पं० श्रीसकलनारायण शर्माजी लिखते हैं कि 'प्रलयकालमें रूद्रके अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं रहता। ब्रह्मांड स्मशान हो जाता है। उसकी भस्म और रुण्डमुंडमें वही व्यापक होता है। अतएव 'चिताभस्मा-लेपी' और 'रुण्डमुण्डधारी' कहलाता है, न कि वह अघोरियोंके समान चितानिवासी कहा जाता है। यथा, **कल्पान्तकाले प्रलुठत्कपाले समग्रलोके बिपुलश्मशाने। स्वमेकदेवोसि तदावशिष्टश्चित्ताश्रयो भूतिधरः कपाली॥**' (शं० सि० सा०)

८ (क) '**खेचरं भूचरं भंजन प्रबल**' इति। इससे लोकरक्षणत्व गुण दिखाया। '**प्रबल**' कहकर जनाया कि आप सब बाधाएँ सहजहीमें नाश कर देते हैं। (ख) '**कलिकाल ब्यालाद खग**' इति। कलिको सर्प कहनेका भाव कि सर्प जीवोंको डसता है। कलिकाल काम, क्रोध, लोभ, मोह, दंभ और कपट आदिका निवासस्थानही है। यथा, '**कलि केवल मलमूल मलीना। पाप पयोनिधि जन मन मीना॥**', '**यहु कलिकाल मलायतन।**' संसार सर्पसंदष्ट जीवको बारंबार जन्मना मरना पड़ता हैं। यही कलिरूपी सर्पका डसना है। (ग) '**भीम कर्म भारी**' कहकर अगले चरणमें भयंकर भारी कर्म दिखाया है कि '**सकल लोकांत कल्पांत सूलाग्रकृत दिग्गज**'। त्रिपुरमर्दनभी भारी कर्म था। (घ) '**काल अतिकाल कलिकाल ब्यालाद खग**' में '**व्याल**' दीप देहलीन्यायसे दोनों ओर अन्वयमें लिया जायगा। यहाँ परंपरितके ढंगका 'सम अभेद-रूपक' अलंकार है।

९ '**दिग्गजाव्यक्तगुन नृत्यकारी**' इति। इसका अर्थ जो बाबू शिव-प्रकाशजीने किया है वही सभी टीकाकारोंने लिखा है। '**अव्यक्तगुन**'=

जिसका प्रगट गुण नहीं है। (डु०, टी०)। 'अगुणरूपसे' (बै०, दी०) 'निर्गुणरूप धारण कर' (भ०) निर्गुणरूपसे' (वीर) 'अव्यक्त अर्थात् अप्रकट अगोचर रूपसे' (वि०) ये सब अर्थ आधुनिक टीकाकारोंके हुए। हिंदी शब्दसागरमें 'अव्यक्त' शब्दके ये अर्थ मिलते हैं:—१ जो स्पष्ट न हो, अप्रत्यक्ष, अगोचर। यथा 'कोउ ब्रह्म निर्गुण ध्याव। अव्यक्त जेहि श्रुति गाव।' इसके अनुसार 'निर्गुण' अर्थ होगा। २ अज्ञात, अनिर्वचनीय। ये तो विशेषणके अर्थ हुए। पुल्लिंग संज्ञा होनेपर 'अव्यक्त' के ये अर्थ होते हैं:— १ शिव, २ प्रधान, ३ प्रकृति। ३ वेदान्त-शास्त्रानुसार 'अज्ञान'। ४ सूक्ष्मशरीर और सुषुप्ति अवस्था। पं० रामकुमारजीके खर्रेमें अव्यक्तका अर्थ और गुणका अर्थ डोरा, धागा, वा तागा लिखा है। अव्यक्तगुण अर्थात् डोरेकी नाईं शरीरको पोह या पिरोकर। 'निर्गुण रूपमें' नृत्य करना कैसा? यह तो स्पष्ट विरोध जान पड़ता है।

१० 'भ्रमत जग जोनि नहिं कोपि त्राता' इति। पुराणानुसार योनियोंकी संख्या चौरासी लाख है। इनकी चार खानि हैं। अंडज, स्वेदज, उद्भिज और जरायुज। जीवको अपने कर्मोंका फल भोगनेकेलिये इन सब योनियोंमें भ्रमण करना पड़ता है। इनके नाम और संख्या इस प्रकार है। 'स्थावरं विंशतेर्लक्षं जलजं नव लक्षकं। कृमिश्च रुद्रलक्षञ्च दशलक्षञ्च पक्षिणः। त्रिंशलक्षं पशूनांच चतुर्लक्षंच वानराः। ततो मनुष्यतांप्राप्य ततः कर्माणि साधयेत्।' स्थावर २०, जलतंतु ९, कृमि ११, पक्षी १०, पशु ३० और वानर ४ लक्ष, इसप्रकार कुल ८४ लक्ष योनियोंका विभाग है। मनुष्ययोनि ८४ के बाहर है। कर्मानुसार इन योनियोंके संपूर्ण अथवा कुछ भोगनेपर मनुष्ययोनि प्रभुकी करुणासे प्राप्त होती है। मनुष्य शरीरसे जीव साधन करके भवपार हो जाय, तब ८४ में न भ्रमना पड़े यथा, 'आकर चारि लाख चौरासी। जोनि भ्रमत यह जिव अबिनासी॥ फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल करम सुभाउ गुन घेरा॥ कबहूँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही॥'

नरतन भव बारिधि कहुँ बेरो। सनमुख मरुत अनुग्रह मेरो ॥ साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जो परलोक सँवारा ॥ सो परत्र दुख पावई सिर धुनि धुनि पछिताइ ।' (उ०) । श० सा० में वानरकी जगह मनुष्यकी ४ लक्ष योनियाँ गिनायी हैं। पर यह ठीक नहीं है। मनुष्य चार आकारमें हैं। पर ८४ लक्ष योनियोंमें इनकी गिनती नहीं है।

११ 'भैरवरूप रामरूपी रुद्र' इति। भिन्न भिन्न दृष्टिकोणसे इसके भाव ये होते हैं कि (१) भैरवरूप रुद्र आप गौणरूप हैं । 'रामरूपी रुद्र' अर्थात् श्रीरामजी आपके रूपी हैं। जीव और ब्रह्ममें अनेक नाते हैं। जैसे कि अंश अंशी, शरीर शरीरी, भोग भोक्ता, शेष शेषी, सेवक स्वामी इत्यादि। वैसेही रूप रूपी एक नाता है। यही भाव वैजनाथ-जीनेभी दिया है। (२) भैरव और रुद्र (भयंकर) रूप आपका गौण रूप है। वस्तुतः आप रामही हैं जो भक्तभयहरण और दुष्ट संहारार्थ इस रूपको धारण किये हैं। दीनजीने यही अर्थ किया है।

यहां जो विशेषण दिये गये हैं वे सब श्रीरामजीके विशेषण हैं। इसे पाठक मिलान करके देख सकते हैं। वस्तुतः परब्रह्म दो नहीं हो सकते। वह तो एकही है। श्रीशिवजीको श्रीमद्भागवतमें '**वैष्णवानां यथा शंभुः**' कहा है एवं गीतामें '**रुद्राणां शंकरश्चास्मि**' कहा है। मानस और विनय आदि ग्रन्थोंमें भगवान् शंकरको रघुनाथजीका उपासक कहा गया है और इनसे श्रीरामभक्तिकीही याचना की गयी है, न कि शिवभक्तिकी। अतएव गोस्वामीजीके सिद्धान्तानुसार 'शिवजीकी वन्दना परब्रह्म मानकर की गयी है' यह कदापि नहीं कहा जा सकता। शिवजी ब्रह्मवेत्ताओंमें सबसे बड़े हैं। सबसे बढ़कर हैं और '**ब्रह्मवित् ब्रह्मैव भवति।**' इस श्रुतिके अनुसार अथवा '**जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि**' वा '**निज प्रभुमय देखहिं जगत।**' वा '**भक्ति भक्त भगवंत गुरु चतुर नाम बपु एक**' के भावको लेकर जगत्वंद्य भगवान् शंकरकी यह विनय ब्रह्मके विशेषणोंद्वारा की गयी है यही मानना पड़ेगा। (३) एकही परमात्मा जगत्की सृष्टि करते हुए ब्रह्मा,

पालन करते हुए विष्णु और संहार करते हुए महारुद्र कहलाते हैं। उत्पत्ति, पालन और संहार यह सब श्रीरामजीही करते हैं। यथा, '**उत्पत्ति पालन प्रलय समीहा**' (लं०) ब्रह्मा, विष्णु, और शिव उन्हींके रूप है।

प्रमाणमें पद्मपुराण पातालखंड २८।६।८ में भगवान् शंकरजीके (श्रीरामजीके प्रति) वचन यहाँ उद्धृत किये जाते हैं। '**सकस्त्वं पुरुषः साक्षात्प्रकृतेः पर ईर्यसे। यः स्वांशकलया विश्वं सृजत्यवति हन्ति च। ६। अरूपस्त्वमशेषस्य जगतः कारणं परम्। एक एव त्रिधारूपं गृह्णासि कुहकान्वितः। ७। सृष्टौ विधातृरूपस्त्वं पालने स्वप्रभामयः। प्रलये जगतः साक्षादहं शर्वाख्यतां गतः। ८।** आप प्रकृतिसे अतीत (परे) साक्षात् अद्वितीय पुरुष कहे जाते हैं। जो आपकी अंशकलाकेद्वारा ब्रह्मा, विष्णु, रुद्ररूपसे विश्वकी उत्पत्ति, पालन एवं संहार करते हैं। आप अरूप होते हुएभी अखिल विश्वके परम कारण हैं। आप एक होते हुएभी त्रिविधरूप धारण करते हैं। संसारकी सृष्टिके समय आप ब्रह्मारूपसे प्रकट होते हैं। पालनके समय स्वप्रभामय विष्णुरूपसे व्यक्त होते हैं और प्रलयके समय मुझ शिव (रुद्र) का रूप धारण कर लेते हैं। अतएव इस भावसे 'रामरूपी रुद्र' यथार्थ और युक्तियुक्तही है। कैवल्योपनिषद्भी '**स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट्। स एव विष्णुः स प्राणः स कालोऽग्निः स चन्द्रमाः**' इस प्रकार शिव, विष्णु आदिका अभेदही प्रतिपादन करते है। गीतामें भगवान्ने '**रुद्राणां शंकरश्चास्मि**' कहा है। अतएव 'रामरूपी रुद्र' ठीकही है। जिन विशेषणोंसे श्रीमन्नारायण और विष्णु भगवान्की वंदना की जाती है, उन्हीं विशेषणोंसे शिवस्तुतिभी हुई है। इसमें शंकाकी जगहही कहाँ है? यह तो स्मृतियोंका मत हुआ। श्रुतियोंसेभी यही सिद्धांत निश्चित होता है। राम ता० उ० भाष्यकार श्रीहरिदासाचार्यजीके भाष्यकी कुछ शंकाओंका संक्षिप्त अनुवाद यहां दिया जाता है। वे लिखते हैं कि ब्रह्मका सामान्य लक्षण श्रुतियोंमें इस प्रकार बतलाया है। 'इतो

वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवंति यत्प्रयंत्यभि संविशंति तद्विजिज्ञासस्व तद्‌ब्रह्म । ' (तै० ३।१।१) यह सारा संसार जिससे प्रकट होकर पालित होता है और अंतमें जिसके उदरमें समाकर लीन हो जाता है तथा बद्ध जीव ज्ञान और उपासनाके-द्वारा जिसको प्राप्त करके मुक्त हो जाता है, वही ब्रह्म है। यही लक्षण ' जन्माद्यस्ययतः । ' (ब्रह्मसूत्र १।१।२) में भगवान् व्यासने सूत्रित किया है। उपरोक्त श्रुति और सूत्रमें कहे हुए लक्षण भगवान्‌के समस्त विग्रहोंके महत्त्वको वर्णन करनेवाले तदुपनिषदोंमें नारायण, नृसिंह, कृष्ण, शिव और रुद्र आदि सबकेलिये कहे गये हैं। परन्तु इन सब रूपोंका प्रधान कारण (मुख्य तत्त्व, अवतारी वा रूपी) कौन है यह वहां वहां नहीं कहा गया है। इसलिये समस्त भगवद्विग्रहोंमें सर्वावतारित्वकी अतिव्याप्ति होती है। इसका निर्णय रामतापिनीयोपनिषत् निम्न श्रुतियोंसे करती है। ' रमंते योगिनोऽनन्ते सत्यानंदे चिदात्मनि। इति रामपदेनासौ परंब्रह्माभिधीयते॥ ' 'स्वभूर्ज्योतिर्मयोऽनंतरूपी स्वेनैव भासते।' ' रेफारूढा मूर्त्तयः स्युः।' ' यथैव वटबीजस्थं प्राकृतश्च महद्रुमः। तथैव रामबीजस्थं जगदेतच्चराचरम्॥ ' ' सर्व वाच्यस्य वाचकः। ' ' परंब्रह्म रामचन्द्रश्चिदात्मकः ' ' सीतारामौ तन्मयावत्र पूज्यौ जातान्याभ्यां भुवनानि द्विसप्तस्थितानि च प्रहृतान्यैव तेषु ततो रामो मानवो माययाधात्। ' ' ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रस्स भगवानद्वैतपरमानन्दात्मा। यः सर्वभूतान्तरात्मा यत्परंब्रह्म भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमो नमः।' 'चिन्मययाद्वितीयस्य निष्कलस्याशरीरिणः। उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना॥ ' इनसे यह निश्चय किया है कि जो राम शब्दसे वाच्य हैं वही चिन्मय, अद्वितीय, निष्कल, अशरीरी और उपासकोंकेलिये शक्तिसेनायुक्त, अनेक अवतारोंके अवतारी है। (विशेष जिसको देखना हो वह श्रीहरिदासाचार्यकृत भाष्य देखें।) यहाँ केवल इतना कहना काफ़ी होगा कि निर्णायक श्रुतियाँ ' सर्ववाच्यस्य वाचकः ' ' ब्रह्मणो रूपकल्पना , ' चिन्मयस्याद्वितीयस्य ' इत्यादि अन्य किसी उपनिषत्‌में नहीं हैं। साथही गोपाल-

तापिनीयोपनिषत्, महोपनिषत् और नारायणोपनिषत्से यहभी निश्चित है कि नारायणसे रुद्रकी उत्पत्ति हुई है। '**ॐ अथ पुरुषो हवै नारायणोऽकामयत प्रजा सृजेयेति नारायणात् प्राणो जायते नारायणादेकादशरुद्रादयः समुत्पद्यन्ते नारायणे प्रलीयन्ते।**' (नारायणोपनिषत्) श्वेताश्वतरमें जो शिवका सर्वोत्कृष्टत्व कहा गया है उसमें 'हवै' निपात न होनेसे नारायणात्मक शिवको भगवान् कहा जा सकता है। दूसरे, यजुः ३२ । ३ में कहा है कि '**स कारणं करणाधिपाधियो न चास्य कश्चिज्जनिता नचाधिपः। न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते न तस्य प्रतिमास्ति यस्य नाम महद्यशः॥**' 'वही (नारायण) सबके कारण हैं। इन्द्रियोंके स्वामियोंकेभी स्वामी है। उनका न तो कोई उत्पन्न करनेवाला (कारण) है और न तो कोई स्वामीही है। उनके समान या अधिक कोई नहीं है। जिसके नामका महान् यश है उसके समान कोई नहीं है।'

इन श्रुतियोंसे स्पष्ट है कि नारायणके उत्पन्नकर्ता और स्वामी शिवादि नहीं हैं और शिवकी उत्पत्ति श्रुतियोंने नारायणसे बतलायी है। अतः जहां कहीं शिवजीका परत्व वर्णित है वह कैलास वा काशीपति शिवपरक नहीं हो सकता। क्योंकि शिव नारायणके कारण नहीं हैं। शिवजीकेलिये कहींभी 'समाधिक' का निषेध नहीं किया गया है।

किसीभी उपनिषत्में शिव रुद्रादिसे वाच्यका जगत्कारणत्व सुना जानेपरभी उनका अवतारित्व किसी श्रुतिमें कथित नहीं है। अन्यत्र '**रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे**' (राम ता०), '**श्रीरामस्यमनुं काश्यां जजाप वृषभध्वजः। मन्वन्तर सहस्रैस्तु जपहोमार्चनादिभिः। ततः प्रसन्नो भगवान् श्रीरामः प्राह शंकरम्। वृणीष्व यदभीष्टं तद्दास्यामि परमेश्वर क्षेत्रेऽस्मिन्योऽर्चयेद्भक्त्या मंत्रेणानेन मां शिव।**' (रा० ता० ३०)। वाक्योंमें शिव, शङ्कर, रुद्र, वृषभध्वज और परमेश्वर आदि शब्दोंसे कहे जानेवाले काशीपति विश्वनाथका तो श्रीराममंत्रजापक, श्रीरामाराधक और श्रीराममंत्रोपदेशक होना पाया जाता है। अतः शिवजीका रामभक्त सिद्ध होनेसे एवं श्रुति और

स्मृतिमें श्रुतिके बलवान् होनेसे शिवजीका कारणत्व नहीं सिद्ध हो सकता। पुराणोंमें जो श्रीरामका शिवाराधक होना पाया जाता है वह वेदविरुद्ध होनेसे अयुक्त है। हां! पुराणोंकी अनुकूलताकेलिये यह मान लिया जा सकता है कि श्रीरामजी परात्पर ब्रह्म होते हुएभी इस मर्त्य-लोकमें, जब परमधार्मिक रघुकुलमें मनुष्यरूपसे अवतीर्ण हुए तब मनुष्योंको शिक्षा देनेके निमित्त शिव, विष्णु, शक्ति, सूर्य और गणेशादि पंचदेवोंकी उपासना लोकसे लुप्त न हो जाय इस अभिप्रायसे लोकशिक्षार्थ शिवाराधन किया होगा। परन्तु शिवजीकेलिये यह नहीं कहा जा सकता कि उन्होंनेभी लोकशिक्षाकेलिये रामोपासना की होगी। क्यों कि शिवका अपने कैलास वा काशीपतिरूपमें रहकर श्रीरामोपासक होना श्रुतियोंमें पाया जाता है। अतः शिवजीका मूलकारणत्व एवं सर्वावतारित्व नहीं घट सकता। इस उपर्युक्त उद्धरणके अनुसार यह वंदना रामात्मक-शिवरूपकीही वंदना मानी जायगी। (४) लाला भगवान्दीनजी लिखते हैं कि 'भैरवरूप रामरूपी रुद्र' में तात्पर्य केवल इतनाही है कि भैरवरूपसे मेरा संसारभय दूर कीजिये और रामरूपसे मुझे शरण दीजिये।

दुःख और उसके समस्त कारणोंके नाश करनेसे तथा संहारादि कार्योंमें क्रूररूप धारण करनेसेभी 'रुद्र' नाम है। इसीसे 'पाप संताप घनघोर संसृति' से रक्षा करनेमें 'रुद्र' संबोधन दिया। आपका स्वरूप ऋषियोंको प्राप्त हो सकता है। सामान्य भक्तोंको आपका तात्विकरूप प्राप्त नहीं हो सकता। इस विचारसे आपको 'रामरूपी रुद्र' कहा। दीन दुखियोंके दुःखपर आँसू बहानेवाले और पापीयोंको रुलानेवाले होनेसे 'पाहि' के साथ रुद्र नाम दिया जो रुद् धातुसे बना है।

किंवदन्ती है कि गोस्वामीजीने सब क्षेत्रपालोंकी वंदना की, भैरवकी नहीं की। अतः भैरवजी इनसे रुष्ट रहते थे। बाहुपीड़ा होनेपर शिवजीने कहा कि वह काशीका कोतवाल है। उसकीभी वंदना कर दो, क्या हर्ज है। पर अपने न माना। इस पदमें शिवजीहीकी वंदना भैरवरूपसे कर दी है।

कालिका पुराणानुसार शिवजीके वीर्यकी दो बूँदोंसे महाकाल और भृंगी हुए जो भवानीके शापसे वैताल और भैरव हुए।

१२ "बंधु गुर जनक जननी विधाता" इति। सदा सब संकटोंमें शिवजी सहायक हुए। टुकड़ोंको ललाते हुए दीन दशामें, रामनामके प्रचारमें, राममंत्र दिलाने और रामचरितमानस कथा पढ़नेमें, काशीवास कराने तथा दीन दशामें सहायता करनेमें बंधु हुए। 'होहिं कुठाँय सुबंधु सहाये।' 'मूल गोसाईं चरित' से स्पष्ट है कि शिवजी बालपनमें गोस्वामिजीका माता-पितारूपसे पालन पोषण करते रहे। फिर स्वामी श्रीनरहर्यानन्दजीको स्वप्न देकर इन्हें उनके सुपूर्द कर दिया। अन्यत्रभी ऐसाही कहा है। यथा 'मेरे माय बाप गुर संकर भवानियै।' (क०) 'गुरु पितु मातु महेस भवानी। प्रनवऊं दीनबंधु दिन दानी॥' (बा) उपदेश करनेमें गुरु हैं। यथा 'सीतापति साहब सहाय हनुमान नित हित उपदेस महेस मानौं गुर कै।' (बाहुक)। मातुपितासम हितकर्ता हैं। यथा 'हित परलोक लोक पितु माता।'

'गुर' इति। गु (अज्ञान) + रु (निवारण करनेवाला) गुरुके कर्त्तव्यकी दृष्टिसे अज्ञानका निवारणही प्रथम कार्य है। श्रीशिवजी आदि गुरु हैं, जगद्गुरु हैं। कल्पारंभमें दक्षिणमूर्तिरूपसे वही प्रथम गुरु होते हैं। श्रीहरिभक्तशिरोमणि श्रीनारदादि ब्रह्मर्षिरत्नोंकोभी वही ज्ञानोपदेश देते हैं। श्रीमैत्रेयजीने भा० स्कंध ४ में यही कहा है। भा० १०। ८८ वृकासुरोपाख्यानमें श्रीमन्नारायणने 'देव, महादेव, ईश, विश्वेश और जगद्गुरु' इन पाँच शब्दोंसे शिवजीका संबोधन और वर्णन दिया है।

गोस्वामीजीकेही नहीं वरंच जगत्मात्रके आप 'गुरु माता पिता विधाता' इत्यादि हैं। यथा 'तुम्ह त्रिभुवन गुरु बेद बखाना,' 'जगतमातु पितु संभु भवानी,' 'भाविहु मेटि सकहिं त्रिपुरारी,' 'जिन्हके भाल लिखी लिपि मेरी सुखकी नहीं निशानी। तिन्ह रोकन्ह कहुँ नाक सँवरत हौं आयो नकबानी।' इस तरह शिवजी विधाता

अर्थात् विधान एवं प्रबंधकर्त्ता हुए। 'देखि न सकहीं दीन कर जोरे' इत्यादि दीनबंधुता है। यहां तृतीय तुल्ययोगिता अलंकार है।

नोटः–१ 'जगद्गुरूं'–पं. भवानीशंकरजी लिखते हैं कि "मनुष्य आध्यात्मिक जीवनमें ऊँचीसे ऊँची जितनी उन्नति कर सकता है, श्रीमहादेवजी उसके आदर्शस्वरूप हैं। उन्हींको लक्ष्यमें रखकर साधकको उन्नतिके पथमें अग्रसर होना चाहिये। इसी कारण श्रीशिवजी जगद्गुरु हैं। तात्पर्य यह है कि उनमें यज्ञ, तपस्या, योग, भक्ति और ज्ञान आदिकी पराकाष्ठा पायी जाती है। वह इनके आदर्श और उपदेष्टा हैं। शिवका तीसरा नेत्र दिव्य ज्ञान चक्षु है जो विना श्रीजगद्गुरु शिवकी सहायताके खुल नहीं सकता।"

२ 'गुरु'–कुंजलोपाख्यानान्तर्गत भगवान विष्णु और बेन राजाके संवाद जो पद्मपुराण भूमिखंड ८५ में आया है, उसमें भगवान्ने बेनजीसे गुरु तीर्थकी महिमा इस प्रकार बतायी है कि 'गुरुके अनुग्रहसे शिष्यको लौकिक आचार व्यवहारका ज्ञान होता है, विज्ञानकी प्राप्ति होती है और वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है। जैसे सूर्य संपूर्ण लोकोंको प्रकाशित करते हैं, उसी प्रकार गुरु शिष्योंको उत्तम बुद्धि देकर उनके अन्तर्जगत्को प्रकाशपूर्ण बनाते हैं। 'सर्वेषामेव लोकानां यथा सूर्य प्रकाशकः।' गुरुः प्रकाशकस्तद्वच्छिष्याणां बुद्धिदानतः॥ ८५।८।' सूर्य दिनमें प्रकाश करते हैं, चन्द्रमा रात्रिमें प्रकाशित होते हैं और दीपक केवल घरके भीतर उजाला करते हैं। परन्तु गुरु अपने शिष्यके हृदयमें सदाही प्रकाश फैलाते रहते हैं। वे शिष्यके अज्ञानमय अंधकारका नाश करते हैं। अतः शिष्यकेलिये गुरुही सबसे उत्तम तीर्थ है।

१२ [८]

सदा[१] संकरं संप्रदं सज्जनानंददं सैलकन्यावरं परमरम्यं।
काम मद मोचनं तामरस लोचनं बामदेवं भजे भावगम्यं।१।

१–६९ में पदभरमें 'देव' शब्द आदिमें है। प्र० और ज० में केवल।१। और।४। के प्रारम्भमें 'देव' शब्द है। औरोंमें 'देव' नहीं है। मु०, ७४, वै०, वि० में 'सदा' शब्द नहीं है। भ० में 'सदा' के बदलेमें 'देव' है।

कंबु कुंदेंदु कर्पूर गौरं शिवं सुंदरं सच्चिदानंदकंदं।
सिद्ध सनकादि जोगींद्र[2] बृंदारका विष्णुबिधिवंद्य चरणारविंदं ।२।
ब्रह्मकुलवल्लभं सुलभमतिदुर्लभं बिकट बेषं बिभुं बेदपारं।
नौमि करुनाकरं गरल गंगाधरं निर्गुणं[3] निर्मलं निर्विकारं।३।

शब्दार्थ—सदा = निरन्तर, सर्वदा, अर्थात् जभी याचक आ जाय तभी। संकरं = (शं + करं) कल्याणके देनेवाले। संप्रदं = (सं + प्रदं) सम्यक् प्रकार, भली भाँति एवं सब कुछ दे देनेवाले उदार दाता। शं = कल्याण, मंगल, सुख, शान्ति। ' सं ' = इस अव्ययका व्यवहार शोभा, समानता, संगति, उत्कृष्टता, निरंतरता, औचित्य आदि सूचित करनेकेलिये शब्दके आरम्भमें होता है। जैसे संभोग, संयोग, संताप, संतुष्ट आदि। कभी कभी इसे जोड़नेपरभी शब्दका अर्थ ज्योंका त्यों बना रहता है। सज्जनानंददं = सज्जन (संतजन, सत्पुरुष, भले, सदाचारी लोग) + आनन्द + दं (देनेवाले, दाताको)। इस अर्थमें ' द ' का व्यवहार स्वतंत्ररूपसे नहीं होता, वरंच किसी शब्दके अन्तमें जोड़नेसे होता है। जैसे सुखद, जलद, आनंद। सैलकन्यावरं = हिमालय पर्वतराजकी कन्याके पति। रम्य = मनोहर। तामरस = कमल। यथा ' **सियरे बचन सूखि गये कैसे। परसत तुहिन तामरस जैसे॥** ' (अ०)। श० सा० के मतसे यह शब्द आर्यभाषाका नहीं है; परन्तु अमरकोशमें ' **पंकरुहं तामरसं सारसं सरसीरुहं** ' ऐसा लिखा है। अर्थात् तामरसभी कमलका एक नाम लिखा है। बामदेव = शिवजीका एक नाम। (टि० २ देखिये) भजे = मैं भजता हूं। भावगम्य = भावसे प्राप्त होनेवाले। यथा, ' **भजेहं भवानीपति भावगम्यं** '। कुंदेंदु कर्पूर गौरं = पद १० में देखिये। सच्चिदानंदकंदं = सत् चित् आनन्दका मूल, मेघ या समूह। सिद्ध = अणिमादि सिद्धियोंको प्राप्त पुरुष। सनकादि = सनक

---

२ योगींद्र–रा०, भा०, बे०, ह०, आ०। योगेंद्र–प्र०, ज०। जोगेंद्र–६९। ३ निर्मलं निर्गुणं–रा०, भा०, बे०, ह०, ७४, ५१, ज०, प्र०, १५, ६९, आ०।

आदि। आदि से 'सनातन', 'सनन्दन' और सनत्कुमार' का ग्रहण हैं। ये चारों ब्रह्माजीके मानसपुत्र हैं। परम वैराग्यवान् और विज्ञानविशारद हैं। सृष्टिके आरंभमें उत्पन्न होनेसे बहुत कालीन हैं, पर सदा पाँच वर्षके बालकके रूपमें रहते हैं जिससे मायाका विकार न उत्पन्न हो सके। ये सदा मनसे ब्रह्ममें लीन रहते हैं और जीवन्मुक्त हैं। इनको उत्पन्न करके ब्रह्माजीने जब यह आज्ञा दी कि जाकर प्रजासृष्टिकी रचना करो तब इन्होंने प्रश्नपर प्रश्न करके ब्रह्माजीको निरुत्तर कर वनकी राह ली। वैराग्यके जहाँ बीजमंत्र दिये हैं वहाँ इनके नाम प्रथम हैं जिससे सूचित होता है कि ये आदि वैराग्यवान् हैं। सनन्दनजी कपिलदेवजीके पूर्वहीसे सांख्यमतके प्रवर्त्तक कहे गये हैं। सनत्कुमारजी सबसे पहले प्रजापति माने जाते हैं। छान्दोग्योपनिषत् अध्याय ७ से स्पष्ट पता चलता है कि देवर्षि नारदजीको इन्हींसे विद्याकी प्राप्ति हुई। जोगींद्र = (योगी + इन्द्र) योगियोंमें श्रेष्ठ। इहलौकिक एवं पारलौकिक त्रलोक्यक सुखोंसे परम वैराग्यवान् और जो हृदयकी अविद्या ग्रंथिका भेदन कर चुके हैं। आत्मज्ञानी, परम वैराग्यवान्, सदा ब्रह्ममें लीन, दुःख सुख आदि द्वंद्वोंसे रहित पुरुष यथार्थ 'योगी' हैं। जगत्‌की सारी विषमताओंसे घिरे रहनेपरभी अपनी चित्तवृत्तिको शांत एवं स्थिर बनाये रखनाही योगका स्वरूप है। '**समत्वं योग उच्यते**' योगदर्शनमें अवस्थाके भेदसे योगी चार प्रकारके कहे गये हैं।
(१) प्रथम कल्पिक जिन्होंने अभी योगाभ्यासका आरंभमात्र किया हैं।
(२) मधूभूमिक जो भूतों और इंद्रियोंपर विजय प्राप्त करना चाहते हैं।
(३) प्रज्ञाज्योति जिन्होंने इन्द्रियोंको पूर्णतया वश कर लिया हैं। (३) अतिक्रांतभावनीय जिनको सब सिद्धियाँ प्राप्त हैं, केवल चित्तलय बाकी रह गया है। बृन्दारका (बृन्दारक) = देवता। दीनजीने 'बृन्दारकाविष्णु' को समस्त पद मान कर 'बृन्दारक + आविष्णु' ऐसा पदच्छेद करके अर्थ किया है। वंद्य = वंदित, वंदनीय, अभिवादन किये जाने योग्य। (वीर) ब्रह्मकुल = ब्राह्मणोंके गोत्रमात्र, ब्राह्मणवंशभर,

ब्रह्मनिष्ठ लोग । वल्लभ = प्रिय । यथा, 'तातें सुरसीसन्ह चढ़त जग-वल्लभ श्रीखंड । (उ०) । सुलभमतिदुर्लभं = (सुलभं + अति + दुर्लभं) अति सुलभ और अति दुर्लभभी । वेदपारं = वेदोंसे परे, वेदभी जिनका गुणगान करके अंत नहीं पा सकते । यथा, 'चरित सिन्धु गिरिजारमन बेद न पावहिं पार' । (बा०) । 'पार' इस अव्यय-का अर्थ 'परे, दूर, लगावसे अलग' है । यथा, 'निज इच्छा निरमित तनु माया गुन गो पार' । (बा०) वेदोंकी पहुँचसे बाहर । चरखारी टीकाकारने 'वेदोंकी मर्यादा' अर्थ किया है । नौमि = नमस्कार करता हूँ, मस्तक नवाता या प्रणाम करता हूँ । करुनाकर = पद ७ देखिये । निर्विकार = काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद और मत्सर इन षट् विकारोंसे रहित । मायाके विकारोंसे रहित ।

पद्यार्थ:—सदा कल्याणकर्त्ता, सदा सम्यक् प्रकारके पदार्थों एवं कल्याणोंके दाता, सज्जनोंको सदा आनंद देनेवाले गिरिजा-पति, परम लावण्यमय, कामदेवके मदको छुडानेवाले, कमल (समान दीर्घ, आर्द्र, करुणापूर्ण और विशाल) नयनवाले और भावसे प्राप्त होनेवाले वामदेवजीको मैं भजता हूँ । १ । शंख, कुंद, पुष्प, चंद्रमा और कर्पूरके समान गौरवर्ण, सुन्दर, समस्त देवताओंसे वंदित चरण कमलवाले, ब्राह्मण कुलके प्रिय एवं जिसको ब्राह्मण कुल प्रिय हैं, (भलों को) अत्यंत सुलभ और (दुष्टोंको योगादि साधनों द्वाराभी) अत्यंत दुर्लभ, भयंकर वेशवाले, व्यापक और समर्थ, वेदोंसे परे, करुणाकी खानि, (कंठमें) कालकूट और (मस्तकपर) गंगाजीको धारण करनेवाले, मायिक गुणोंसे रहित, निर्मल, विकाररहित (कल्याणस्वरूप) श्रीशिवजीको मैं नमस्कार करता हूँ । २, ३ ।

नोट:—(१) इस पदमें जितने नाम और विशेषण आये हैं उन्हें द्वितीयामें (कर्मकारक) समझना चाहिये । (२) पूर्व रुद्र, संहारकर्त्ता एवं भैरवरूपोंकी वन्दना करके अब आपके शांत ऐश्वर्य-माधुर्यमिश्रित स्वरूपकी वन्दना करते हैं । जबतक कामादिका

नाश नहीं होता तबतक नरकद्वार खुलाही रहता है। काम क्रोधादि नरकके पंथ कहे गये हैं। यथा 'काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरकके पंथ। सब परिहरि रघुवीरही भजहु भजहिं जेहि संत ॥ (सुं.) त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः। काम क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत्। २१। एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः। आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परांगतिम् ।२२।' (गीता १६) इनसे छुटकारा पानेपरही जीव कल्याणका अधिकारी होता है। इसीसे 'सदा संकरं संप्रदं जिव' से वन्दना करते हैं। (३) योंभी कह सकते हैं कि भगवान् शंकरमें दो भाव हैं। एक 'प्रलयकारी सद्भाव' जिसकी वन्दना पूर्व कर चुके। दूसरा 'शान्तिमय शिवभाव' जिसकी वन्दना अब इस पदमें करते हैं। महाभारत अनुशासन पर्वमें भगवान् श्रीकृष्णजी शंकर-जीका माहात्म्य वर्णन करते हुए कहते हैं कि 'वेदोंमें शंकरजीके दो रूप कहे गये है। उनका एक स्वरूप तो 'घोर' है और दूसरा 'शिव' है। इन दोनोंकेभी अनेकों भेद हैं। इनकी जो 'घोर' मूर्ति है वह भय उपजानेवाली है। उसके अग्नि, विद्युत् और सूर्य आदि अनेको रूप हैं। इससे भिन्न जो 'शिव' नामवाली मूर्ति है वह परम शान्त एवं मंगलमयी है। उसके धर्म, जल और चंद्रमा आदि कई रूप हैं। महादेवजीके आधे शरीरको अग्नि और आधेको सोम कहते हैं। उनकी 'शिव' मूर्ति है। वह जगत्का संहार करती है। उनमें महत्त्व और ईश्वरत्व होनेके कारण वे महेश्वर कहलाते हैं। वे सबको दग्ध करनेवाले, अत्यन्त तीक्ष्ण, और प्रतापी हैं। इसीसे उन्हें 'रुद्र' कहते हैं। वे देवताओंमें महान् हैं और इस महान् विश्वकी रक्षा करते हैं। इसीलिये 'महादेव' कहे जाते हैं। सब प्रकारके कर्मोंद्वारा सदा सब लोगोंकी उन्नति करते और कल्याण चाहते हैं। इस कारण उनका नाम 'शिव' है। वे ऊर्ध्व भागमें स्थित होकर देहधारियोंके प्राणोंका नाश करते हैं और सदा स्थिर रहते हैं। इसीसे उन्हें 'स्थाणु' कहा गया है। भूत, भविष्य, वर्तमान कालोंमें स्थावर-जंगमोंके आकारमें उनके अनेकों रूप प्रकट होते हैं। इसलिये ये

'बहुरूप' कहलाते हैं। उनमें संपूर्ण देवताओंका निवास है। इससे उनको 'विश्वरूप' कहते हैं। उनके नेत्रोंसे तेज प्रकट होता है और उनके नेत्रोंका अन्त नहीं है। इसलिये वे 'सहस्राक्ष, अजिताक्ष और सर्वतोऽक्षमय' कहलाते हैं। यह महान् विश्व उन्हींका रूप बतलाया गया है। वे नाना प्रकारकी ग्रहबाधाओंसे ग्रस्त प्राणियोंको दुःखसे छुटकारा दिलाते हैं। वे पुण्यात्मा और शरणागतवत्सल तो इतने हैं कि शरणमें आये हुए किसीभी प्राणीका त्याग वे नहीं करते। वेही मनुष्योंको आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य और धन आदि संपूर्ण कामनाएँ प्रदान करते हैं और वेही पुनः छीन लेते हैं। इन्द्रादि देवताओंकेपास उन्हींका दिया हुआ ऐश्वर्य है। समस्त कामनाओंके अधीश्वर होनेके कारण उन्हें 'ईश्वर' कहते हैं। महान् लोकोंके ईश्वर इसलिये 'महेश्वर' नाम है।

स्वामी श्रीरामदासानन्दजी सरस्वती लिखते हैं कि 'कुछ पुराणोंमें ऐसा वर्णन मिलता है कि ज्ञानी पुरुषही शिव या शंकर हैं। कुछ स्थानोंमें आत्मा और परमात्माको 'शिव' कहा है। जीव या अन्तरात्मामें अनेक वासनाएँ और कल्पनाएँ होती हैं। वह अपने स्वरूपको भूला रहता है। बीजमें वृक्षके समान वासनाएँ अबोधरूप अज्ञानमें रहकर पुनः पुनः स्वर्ग नरकके रूपसे अंकुरित होती हैं और जीवको जन्म मरणके चक्करमें डालती रहती हैं। परन्तु जीव अथवा अन्तरात्मा अपने आकाशस्वरूपकी स्थितिको धारण कर स्वस्वरूपका चिन्तन करे तो उससे वासनाओं या कल्पनाओंका कारण जो अबोधरूप अमंगल अज्ञान है वह नष्ट होकर उसे मंगल या शुद्धस्वरूपकी प्रतीति होती है। इसी मंगल शुद्धस्वरूपको 'शिव' (मंगल) कहना चाहिये। यही 'शिव' का लक्षण है। (शिवाङ्कसे)। (४) गोस्वामीजी महाराजने भगवान् शिवकी वंदना करते हुए अपनी विद्वत्ता, भावुकता और अन्वीक्षण शक्तिकी सारी सम्पदा इसी पदमें धरोहरके रूपमें रख दी है। (५) प्रारम्भमेंही 'सदा शंकर' से पदकी ध्वनिसे रागका बोध कराया है। शंकर एक रागका नाम है जो गौरवर्णका माना जाता है। वह प्रातः ब्राह्ममुहूर्तमें गाया जाता है। उसमें शांतरस प्रधान होता है।

शंकरराग भगवान् शंकरसे सामंजस्य रखता हुआ सत्वोद्रेक प्रवाहित करता है। गोस्वामीजीका उपर्युक्त शिव वन्दनास्वरूपपद शंकर रागसे भलीभाँति गेय है। शङ्करकी स्तुति ' शंकर राग ' से गाने योग्य बनाना तुलसी जैसे महाकविकी 'परिचयचारूता' का एकही नमूना है। (शर्माजी)।

टिप्पणीः—(१) ' सदा संकरं संप्रदं सैलकन्यावरं ' इति। (क) ' सदा ' इति। सृष्टि बसाने, बढ़ाने और विनाश करनेका काम क्रमसे ब्रह्मा, विष्णु और महेशका कहा गया है। ऐसा कई बार हुआ है आर होगाभी। विशेषता यह है कि ब्रह्मा कई बार प्रकट होते, सृष्टि रचते और शास्त्र बनाते हैं। विष्णु भगवान् यथावकाश सोतेभी हैं। किन्तु शिव और शक्ति सोतेही नहीं। सदा उपस्थित रहते हैं। उनको कब आराम मिलता है यह उनके प्रणेताकी (परमेश्वर) इच्छापर है। उनका विश्राम तो एक ' रामनाम ' मेंही है। ' **श्रीमच्छम्भुमुखेंदु सुंदर वरे सशोभितं सर्वदा** ' (कि०)। इससेभी ' सदा संकरं संप्रदं ' कह सकते हैं। दिनरात कर्णमें राम नाम देकर जीवोंको मुक्ति प्रदान करते हैं; अतः ' सदा संकरं ' कहा। (ख) ' सदा संकरं ' एकही पद है जो सदाशिवका परिचायक पर्यायी है। 'सदा संकरं' का भाव है कि ' सर्वदा मंगलयुक्त रहनेवाले '। यह विशेषण शिवके आत्मस्वरूपका लक्ष्य कराता है। (ग) ' संप्रदं ' इति। सं (शं) + प्रदं = कल्याण करनेवाले। यह विशेषण परोपकारिताका सूचक है। गोस्वामीजीने ' सदा संकरं ' और ' संप्रदं ' की पद योजना करके कमालही कर दिया है। पूर्व पदसे (सदा संकरं) उनके सदा मंगल होनेका बोध कराया और उत्तर पदसे (संप्रद) दूसरोंको मंगल प्रदान करनेवाला बतलाया वस्तुतः जो स्वयं मंगलमय होगा वही दूसरोंको मंगल प्रदान करनेमें समर्थ होगा। यदि ' संप्रद ' को ' संम्प्रद ' (सम् + पद) मान लें तो सम् शब्द अव्यय तथा चौथा उपसर्गके रूपमें प्राप्त होगा। अव्यय और उपसर्गोंमें अर्थवैषम्य होना स्वाभाविक है। किंन्तु यह क्लिष्ट कल्पना जँचती है। भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे ' संम्प्रद ' के स्थान पर ' संप्रद ' होनाही यथार्थ उद्देश्यसिद्धिसूचक प्रतीत होता है। (घ)

सज्जनानंददं इति। सत् + जन + आनंद + दं। सत्=सत्यतापूर्ण धर्म। जन = परम प्रिय या भक्त, सेवक। आनंद=समन्तात् शरीरको आल्हादित करनेवाली हृदयमें उत्पन्न वृत्ति विशेषका नाम आनंद है जो प्राणीको आत्मविभोर बनाकर उसकी भेदबुद्धि विनष्ट करता है। 'दं' शब्द दान, दया और दमका भाव सूचित करता है। सारांश यह है कि भगवान् शंकर सत्यतापूर्ण धर्मसे संयुक्त प्रिय जनको ज्ञानमूलक आत्म-विभोर बनानेवाला ऐसा आनंद प्रदान करते हैं जो दान, दया और दम तीनों अभिष्ट गुणोंसे ओतप्रोत रहता है। न प्राप्त करने या ग्रहण करनेकी निःस्वार्थ बुद्धिसे किसीको जो वस्तु दी जाती है उसीका नाम ' दान ' है। भगवान् शंकर सज्जनोंको ऐसेही आनंदका दान दिया करते हैं जो दया और दमसे संरक्षित एवं शाश्वत स्थायी रहता है। (शर्माजी) (ङ) 'सैलकन्यावरं' इति। यहाँपर आध्यात्मिक समताका निदर्शन गोस्वामीजीने बड़ीही पटुतासे किया है। हिमालयका श्वेत (सतोगुण) रंग है। भगवान् शंकर गौर (सतोगुण) हैं और भगवती गौरीभी गौर (सतोगुण) हैं। इससे सतोगुणकी व्यापकता प्रगट होती है। आदिशक्ति पार्वतीजी हिमालयकी प्रिय पुत्री और स्वयं अष्टसिद्धि नवनिधियोंसे परिपूर्ण हैं। ऐसी श्रेष्ठ कन्याके वर सर्वश्रेष्ठ शंकजीही उपयुक्त हैं। यहाँपर वर और कन्याके कुल, शील, सनाथता, विद्या, वित्त, वपु और वयका सादृश्य दिखाया गया है। इसलिये वर शब्दका प्रयोग किया है। वरमें कन्यासे उपयुक्त सात गुण विशिष्ट होने चाहिये। तात्पर्य यह है कि हिमालय और उनकी कन्या सर्वगुणसंपन्न अवश्य हैं किन्तु उनसेभी श्रेष्ठ शंकरजी हैं।

२ ' परम रम्यं ' इति। (क) यहाँ ' रम्य ' और आगे ' सुंदर ' शब्द आये हैं। ये दोनों पर्यायवाची शब्द हैं, पर दोनोंका प्रयोग यहाँ होनेसे इनमें कुछ भेद अवश्य होना चाहिये। एक तो साधारण यही मालूम होता है कि ' सैलकन्यावरं ' और ' काममदमोचनं ' के संबंधसे ' परम रम्यं ' विशेषण दिया गया है और ' सुंदर ' से सहज सर्वांग सुडौल सूचित किया है। अमरकोषकी टीकामें दोनोंका भेद

इसप्रकार दिया है, 'यस्यदर्शनात् दृङ्मनसोस्तृप्तेरंतो नास्ति'। जिसके बारंबार देखनेसेभी नेत्र और मनको तृप्ति न हो, जी चाहे कि देखतेही रहे, उसे 'रम्य' कहते हैं। 'सुंदर' उसे कहते हैं जो रुचिकारक हो। (रघुनाथशास्त्रीकृत टीकासे) 'परम' विशेषण लगा देनेसे रमणीयताकी पराकाष्ठा सूचित की। शिवजी इतने रम्य हैं कि उन्हें देखकर फिर दूसरी रम्य वस्तुके देखनेकी इच्छाही न हो। (ख) 'काममदमोचनं' इति। कामदेवको अपने सौंदर्य और जगत्विजयी होनेका मद है। यथा, 'काम कुसुम धनुसायक लीन्हें। सकल भुवन अपने बस कीन्हें॥', 'देखि रसाल बिटप बर साखा। तेहिपर चढ़ेउ मदनु मन माखा॥ सुमन चाप निज कर संधाने। अति रिसि लागि श्रवन लगि ताने॥ छाँड़ेउ विषम बिसिष उर लागे। छूटि समाधि संभु तब जागे॥' 'चितवत काम भयऊ जरि छारा' मदका छूटना है। विशेष भाव पद ४ टि० ३ में देखिये।*
(ग) 'बामदेवं भजे' इति। 'बामदेव' शब्द पूर्व पद ८ में आया है। 'गाँव बसत बामदेव मैं कबहूँ न निहोरे।' दूसरी बार यहाँ। 'अनादि संसार प्रवाहमें बहते हुए जीवोंके उद्धारकेलिये तथा भक्तवत्सलतावश 'ये यथामां प्रपद्यंते तांस्तथैव भजाम्यहम्।' इस गीताके वाक्यके अनुसार श्रीशिवरूपसे एकपादविभूतिमें जब लीलाअभिनय आरंभ होता है तब स्वात्माराम सदाशिव सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष एवं ईशानरूपसे क्रमशः जगत्की सृष्टि, स्थिति, प्रलय, निग्रह एवं अनुग्रहरूप

---

* 'ज्ञानी पुरुषोंकोभी कहीं कहीं शिव कहा गया है। यद्यपि ज्ञानी पुरुष विचारद्वारा काम विकारका शमन करता है तथापि कामविकार 'स्वप्न' की अवस्थामें वासनारूपसे उत्पन्न होकर उसके मनक्षोभका कारण हो जाता है और ज्ञानीके लिंगशरीरको स्वप्नावस्थामें पीड़ा पहुचाने लगता है। ऐसा होनेपर ज्ञानी अथवा योगीपुरुष अग्निचक्रमें अर्थात् भ्रूमध्यस्थानमें ध्यान लगाकर कामविकारका नाश करता है। शिवजीके अपने मस्तकके तीसरे नेत्रका अग्निसे मदनदहन करनेकी कथाका यही तात्पर्य हैं।' (श्रीरामदासानंदजी। शिवाङ्कसे).

कार्य करते हैं। इसमेंसे पहले तीन कृत्य तो समष्टि दृष्टिसे साधारणतया स्पष्टही हैं। व्यष्टिदृष्टिसे शेष दो कृत्योंके अंदर त्रिपुरदाह, अंधकविजय, गजासुरमर्दन, मखविध्वंस एवं मदनदहनादि तथा हरिहरैक्य, अर्धनारीश्वर-विग्रह, दारुवनविहार, किरातलीला, शबरलीला, शरभलीला तथा वान-प्रभृतियोंको वरदानादि असंख्यात् दिव्यचरित्र आ जाते हैं। अर्चाद्वाराभी भगवान् शिव ज्योतिर्लिंग, सतीपीठेश्वर एवं बाणलिंगादिरूपसे जीवोंपर अनुग्रह करते हैं। (गोस्वामी श्रीदामोदरजी शास्त्री) स्थितिके विचारसे यहाँ 'बामदेवं भजे' कहा गया है। विकारोंके नाशक होनेसे 'बामदेवं भजे' कहा। देवदत्तशर्माजी कहते हैं कि (१) इस एकही पदसे गोस्वामीजीने महेश्वरकी विश्वरूप मूर्तियोंका ध्यान किया है। तंत्रग्रंथमें शिवजीकी अनेक मूर्तियोंका वर्णन मिलता है। सारदातिलकतंत्रमें इसके विशद वर्णन पाये जाते हैं। शायद तुलसीदासजीने इसी तंत्रके क्रमानुसार शिवकी प्रधान अष्ट-मूर्तियोंका ध्यान किया है जिनके नाम हैं (१) सदाशिव (२) ईशान (३) तत्पुरुष (४) अघोर (५) बामदेव (६) सद्योजात (७) हरपार्वती और (८) मृत्युंजय। इन आठों मूर्तियोंके ध्यान उपर्युक्त पदमें निहित हैं। विस्तारभयसे पृथक्करण और विवेचन नहीं किया गया। *

किसीभी कवि या लेखकके लेखमें उसके जीवन और जन्मभूमिसे सम्बन्ध रखनेवाली कुछ न कुछ सांकेतिक वृत्ति अवश्य निहित रहती है। यह बात हम गोस्वामीजीके प्रत्येक ग्रंथमें यत्रतत्र प्रसंगानुकूल प्रचुर मात्रामें पाते हैं। गोस्वामीजी बाँदा प्रांतके निवासी थे। बाँदामें 'बामदेव' शिव हैं जिनकी प्रतीष्ठाका इतिहास उतनाही पुराना है जितना भगवान् रामकी स्थितिका। बामदेवका

* पंडित श्रीभवानीशंकरजी लिखते हैं कि 'शिवजीके पाँच मुख हैं। ईशान, अघोर, तत्पुरुष, बामदेव और सद्योजात। ईशानका अर्थ 'स्वामी' है। अघोरका अर्थ 'निंदित कर्म करनेवालेभी शिवकृपासे निंदित कर्मको शुद्ध बना लेते हैं' ऐसा है। तत्पुरुषका अर्थ 'अपनी आत्मामें स्थितिलाभ करना' है। बामदेवका अर्थ 'विकारोंके नाशक' है। सद्योजातका अर्थ 'बालकके समान परम स्वच्छ, शुद्ध आर निर्विकार ऐसा है।'

बिगड़ा हुआ रूप बाँदा है। तुलसीदासजी जननी और जन्मभूमिको स्वर्गसेभी श्रेष्ठ मानते थे। इनके प्रमाण रामायणके अन्तर्गत कई स्थलोंपर हैं। फिर भला वे जन्मभूमिके अधिष्ठातृदेवको ग्रंथारंभमें कैसे भूलेंगे? उन्होंने अपने कुलदेव, ग्रामदेव और वामदेवका स्मरण रोचक और रहस्यपूर्ण ढंगसे किया है। यह वन्दना विशुद्ध देववाणीमें की गयी है। इसका कारण स्पष्ट है। तुलसीदासजीकी प्रामाणिक जीवनीसे तथा उनके ग्रंथोंसे विदित है कि वे पाणिनि व्याकरणके निष्णात विद्वान थे। विशेषतः रामायणमें प्रयुक्त व्याकरण पाणिनि व्याकरण और पातंजलमहाभाष्यका आधारभूत प्रतीत होता है। यह निर्विवाद है कि पाणिनि व्याकरणके आदि उद्भावक भगवान् भूतभावनही हैं जिनके नृत्तावसानमें ढक्कानिनादसे चतुर्दश शिवसूत्र प्रकट हुये हैं। अतः कविने देवाधिदेवकी वन्दना देववाणीमेंही की है। (६) तुलसीदासजीके समयमें 'बाँदा' राजनैतिक केन्द्र नहीं था। राजपुर (तुलसीदासजीकी जन्मभूमि) इलाहाबाद इलाकेमें था। किन्तु सांस्कृतिक विभाजनके अनुसार 'राजापुर' और 'बाँदा' दोनों चित्रकूट प्रांतके अंन्तर्गत थे। आजकलभी राजनैतिक विभाजनके अनुसार चित्रकूट प्रांतका कुछ हिस्सा बघेलखण्ड और बुँदेलखण्डमें सामिल कर दिया गया है। किन्तु सांस्कृतिक दृष्टिसे ये भूभाग अबभी चित्रकूट प्रांतमें है।

३ (क) 'संकरं आनंददं शिवं' इति। शिवजी आनन्दरूपही हैं। जो कोई उनके सम्पर्कमें आ जाता है वहभी आनन्दका रूप कहा है। उनके चारों ओर आनन्दके परमाणु फैले रहते हैं। यही महेशका सबसे महान् गुण है। इसीलिये आप 'शिव' (कल्याणरूप) एवं शंकर (कल्याणकर्त्ता) और आनन्ददाता कहलाते हैं। 'शिवं' का अर्थ है 'कल्याण, आनन्द सुख'। ये सारे शब्द पर्यायवाची हैं। यथा, '**श्वः श्रेयसं शिवं भद्रं कल्याणं मंगलं शुभं**' इत्यमरे। एवं '**शिवं च मोक्षे क्षेमेच महादेवे सुखे**' इति विश्वकोशे। 'शिव' शब्द शुभावह या श्रेयस्कर वस्तुका वाचक है। शुभार्थक 'शीङ्' धातुके साथ 'वनिक्' प्रत्ययका योग होनेसे 'शिव' शब्द बनता है। पुनः 'शिव'

शब्दकी उत्पत्ति 'वश कान्तौ' धातुसे यदि मानें तो 'उसका तात्पर्य यह है कि जिसको सब चाहते हैं उसका नाम 'शिव' है। सब चाहते है अखंड आनंदको। अतएव 'शिव' शब्दका अर्थ 'आनंद' हुआ। जहाँ आनंद है वहीं शांति है और परम आनंदकोही परम मंगल और परम कल्याण कहते हैं। अतएव 'शिव' शब्दका अर्थ 'परममंगल, परमकल्याणरूप' समझना चाहिये। इस आनंददाता, परमकल्याणरूप शिवकोही शंकर कहते हैं। 'श' आनंदको कहते हैं और 'कर' से करनेवाला समझा जाता है। अतएव जो आनंद करता है वही शंकर है। इसतरह 'शिव' शब्दसे 'नित्यविज्ञानानंदघन' जनाया। (ख) 'कंबु कुंदेंदु' इति। 'कंबु' से पाताल, 'कुंद' से भूतल और 'इंदु' से स्वर्ग इस तरह तीनों लोकोंकी शोभा यहाँ एकत्र जनायी। शिव उपमेयकेलिये अनेक उपमान भिन्न भिन्न धर्मके हेतु कथन करना 'मालोपमालंकार' है। (ग) 'कंबु कुंदेंदु कर्पूर गौरं' से शरीरके गौरवर्णादि गुण कहे। 'सुंदर' से उसके सर्वांग गठे हुये सुठौर जहाँ जैसा चाहिये वैसा जनाया और 'सच्चिदानंदकंद' से देहदेहीविभागरहित कहा। 'सच्चिदानंदकंद' के औरभी भाव ये हैं कि (१) हृदयमें परब्रह्मकी स्फूर्ति करानेवाले आपही हैं। (२) सत् चित् आनंदरूपी जल बरसानेवाले मेघ अर्थात् सच्चिदानंदघन हैं। (३) सत् चित् आनंदके मूल हैं 'जिससे सत्, रज, तम ब्रह्मा, विष्णु, महेश एवं सत्, चित् और आनंद आदि उत्पन्न होते हैं। (पं.रा.कु.)

'शिवं सुंदरं' इति। बहुतसे महानुभाव 'मूल गोसाईं चरित' को आधुनिक रचना कहनेका कारण यह बताते हैं कि उसमें 'सत्यं शिवं सुंदरं' का प्रयोग हुआ है जो आधुनिक है। उनसे हमारा सविनय अनुरोध है कि इस पदपर विचार करें। कारण कि कमसे कम 'शिवं सुंदरं' तो यहाँभी हैं। क्या यहभी आधुनिक रचना है? (पं० श्रीराजबहादुर लमगोड़ाजी)

श्री लमगोड़ाजीसे मालूम हुआ कि पं० रामनरेश त्रिपाठी श्रीवेणीमाधोदासरचित 'मूल गोसाईं चरित' (सं० १६८७ वि०) को अप्रामाणिक ठहरानेकेलिये 'सत्यं शिवं सुंदरं' इन शब्दोंको लेकर

लिखते हैं कि इस सत्यं शिवं सुंदरंने तो मूल चरितके रचयिताको अँधेरेमेंसे खींचकर उजालेमें लाकर खड़ा कर दिया। 'सत्यं शिवं सुंदरं' यद्यपि संस्कृतका प्राचीन वाक्य है पर अभी थोड़े दिनोंसे हिन्दी-वालोंमें इसने प्रवेश पाया है। हिन्दीके किसी प्राचीन कविने इसका उपयोग नहीं किया था। जिसे तुलसीदासजीनेभी नहीं लिखा था तो उनके एक साधारण पढ़े लिखे चेलेकी क्या बिसात थी जो इस वाक्यतक पहुँचता।

दास इसपर कुछ लिखना नहीं चाहता। पाठकोंको कल्याणके गत तीन चार वर्ष पूर्व किसी अंकमें पंडित श्रीरामदासगौड़जीका लेख 'मूल गोसाई चरित' के संबंधका पढ़नेकी प्रार्थना करता हूँ। उससे त्रिपाठीजीके भ्रमोत्पादक लेखके विरुद्ध बहुत प्रकाश पड़ेगा। यहाँ केवल लमगोड़ाजीके विचार लिखे देता हूँ। वे लिखते हैं कि क्या खूब मंतक (Logic तर्क) है ? यह मानते हैं कि पुराना संस्कृत वाक्य है तो फिर किसीको इस्तेमाल करना क्या मुश्किल है ? इसका प्रयोग करनेवाला तुलसीदासजीका चेला नहीं बल्कि 'शंकरजी' हैं। वह बेचारा तो एक वाक़एका नामानिगार (Reporter) मात्र हैं।

श्रीदेवदत्तशर्माजी कहते हैं कि इस पदके अन्तर्गत आये हुये सभी विशेषण साभिप्राय हैं। किन्तु 'शिवं सुंदरं' में कविका वास्तविक कर्म और मर्म छिपा हैं। 'शिवं सुंदरं' हमारा चिरपरिचित वेदवाक्य हैं जो सत्यके साथ सन्निविष्ट रहता है। मूल गोसाई चरितकी आलोचना करते हुए स्वर्गीय आचार्य पं. रामचन्द्र शुक्लने 'सत्यं शिवं सुंदरं' को बँगला साहित्यसे उधार लिया गया नवीनतम शैलीका प्रयोग ठहराया हैं। पं० रामनरेश त्रिपाठीजीने तो गजब किया हैं। उनके अनर्गल प्रलापके प्रपंचमें हम पडनाही नहीं चाहते। काश वे वेदज्ञ होते तो यह भ्रांति न होती।

शिव शब्द व्यापक हैं। इसकी व्युत्पति हैं "**शिवं कल्याणं विद्य-तेऽस्य शिवः। श्यति अशुभमिति वा, शेरतेऽवतिष्ठन्ते अणिमादयो अष्टगुण अस्मिन् इतिवा शिवः**" ज्ञान चाहनेवालोंको शिवकी

शरण लेनी चाहिये। पुराणोंमें भगवान् शिवकी 'ज्ञानद' नामसे बार बार प्रार्थना की गयी हैं। ऋग्वेदमेंभी लिखा है "रुद्राय प्रचेतसे मीढ़ुष्टमाय तव्य से। केचेत्र शं तत्रं हृदे" (१।४३।१) इसी भावको पुराणोंमें इसी प्रकार दिखाया है 'नमामि सततं भक्त्या ज्ञानदं वरदं शिवम् ॥' भगवान् शिव संगीतके उद्भावक थे, संगीताचार्य थे। तांडवनर्त्तक और विषाणवादक थे। इसके प्रमाण पुराणोंमें तो हैंही, ऋग्वेदमेंभी हैं। "गाथा पतिं मेद्यपतिं रुद्रं जनाय भेषजं। तच्छं यो सुम्नमीमहे॥" (१।४३।४) यही कारण है कि गोस्वामीजीने अपने सुंदर गेय पदमें शिवजीकी तत्सम प्रार्थना की है जो 'सत्यं, शिवं, सुंदरं' कही जाती है। भगवान् शङ्करका शिव नाम क्यों पड़ा इसका कारण वाजसनेय संहितामें इस प्रकार लिखा है। 'एकन्ते रुद्रावसंतेन परो भूजवतोऽती हि अवततधन्वा पिनाकावासः कृत्तिवासा अहि सन्नः शिवोऽतीहि।' (३।६१) रुद्र भगवान् अपने भक्तोंपर कभी क्रोध नहीं करते, हिंसा नहीं करते। उन्हें क्रोध न होनेसे प्रजाका मंगल होता है, अतएव वे 'शिव' हैं। वे अपने भक्तोंकी हर-प्रकारसे रक्षा करते हैं; अतः वे 'शिव' हैं। वे भगवान् पर्वतके निवासी हैं। कृत्तिवास और पिनाकधारी हैं। शत्रुओंके संहारकेलिये सदैव धनुष चढ़ाये रहते हैं।

४ 'सिद्ध सनकादि चरणारविंदं' इति। यथा, 'सिद्ध तपोधन जोगि जन सुर किन्नर मुनि बृंद। बसहिं तहाँ सुकृती सकल सेवहिं शिव सुखकंद॥' (बा० १०५) 'सब सुर विष्णु विरंचि समेता। गये जहाँ शिव कृपानिकेता॥ पृथक पृथक तिन्ह कीन्ह प्रसंसा। भये प्रसन्न चन्द्र अवतंसा॥ कह बिधि तुम्ह प्रभु अंतरजामी। तदपि भगति बस बिनवौं स्वामी॥' (बा० ८७)। भा० ४।६।३६ में मैत्रेजीयके वचन हैं कि 'सनंदनादि शांतिमय महा सिद्ध पुरुष तथा कुबेरजी अत्यंत शांत मूर्ति शंकरकी उपासना करते हैं' और भा० ६।२७ मेंभी कहा है कि

शंकरजी जगद्गुरु हैं। उनके चरणोंका ब्रह्माजी, भृगु, नारदादि महर्षिगण, सनकादि कुमारमंडली, कपिल, मनुजी आदिभी ध्यान करते हैं। यथा, 'एषामनुध्येय पदाब्जयुग्मं जगद्गुरुं मंगल मगलं स्वयम्' (पार्वत्युवाच) पद १० टि० १०, १३ और पद ११ टि० ११ भी देखिये। यहाँ संबंधातिशयोक्ति अलंकार है। सिद्ध सनकादि वंदित कहकर शिवजीको ईश्वर सूचित किया।

शुद्धाद्वैत संप्रदाचार्य गोस्वामी श्रीगोकुलनाथजी महाराजतनुज श्रीकृष्णजीवनजी, विशारद, बम्बई, लिखते हैं कि "श्रीमद्वल्लभाचार्यचरणोंके सिद्धांतसे श्रीशिवको जीव नहीं माना जा सकता। क्योंकि श्रीशिवको अहंकाराध्यास नहीं है, किन्तु अभिमानमात्र हैं। भा० १०।८।३७ 'शिवः शक्तियुतः' इत्यादि पर श्रीसुबोधिनीके 'अहंकाराभिमानेऽपीति' इस वाक्यकी व्याख्या करते हुए लेखमें श्रीवल्लभजी महाराज लिखते हैं, 'अहं काराध्यासो जीववन्नास्ति किन्तु अभिमानमात्रमेव।' ऐसी दशामें श्रीशिवकी जीवकोटिमें गणना करना ठीक नहीं। श्रीमद्भागवतमें उन्हें तमोगुणावतार कहकर ईश्वर बताया है। वे प्राकृत तमोगुणके अवतार नहीं हैं, वरंच भगवदीय तमोगुणके अवतार हैं। क्योंकि भा० २।५।१८ के 'सत्वं रजस्तम इति निर्गुणस्य गुणास्त्रयः। सर्गस्थिति निरोधेषु गृहीता मायया विभोः।' इस श्लोककी व्याख्या करते हुए श्रीमद्वल्लभाचार्य चरण लिखते हैं कि मकड़ी जिसतरह जाला बनानेकेलिये तंतु निकालती है, उसीतरह भगवान्‌भी त्रिविध सृष्टिकेलिये आरम्भ कालमें सदंशसे सत्व, सदंश आनंदांशसेरहित कियाशक्तिप्रधान केवल चिद्रूपसे रज और आनंदांशसे तमकी सृष्टि करते हैं। ये तीनों भगवद्रूप हैं। इनका और भगवान्‌का तादात्म्य संबंध है न कि आधाराधेय भाव। क्यों कि आधाराधेय भाव स्वीकार करनेसे इनकी भगवदात्मकताकी व्याहति होती है। जैसे रूईमें सूत नहीं दीखता तोभी रूईकेही अवयवोंके पौर्वापर्य भावसे सूत बनता है। उसी तरह भगवान् निर्गुण रहते हुयेभी इन तीनों गुणोंकी सृष्टि करते हैं और उत्पत्ति, स्थिति और लयके लिये इनका मायासे ग्रहण करते हैं।

अग्नि जिस तरह लोहेके गोलेमें प्रवेश करती है, उसी तरह सृष्टिके आरम्भकालमें निर्गुण श्रीकृष्ण जब साकार, भगवदात्मक अप्राकृत तमोगुणमें प्रवेश करते हैं तब वह श्रीशिव कहलाते हैं। वही श्रीशिव जब प्राकृत तमोगुणके नियामक बनते हैं तब सगुण कहलाते हैं। तबभी उनका ईश्वरत्व अव्याहतही रहता है। अतएव श्रीमद्वल्लभाचार्य चरणोंने लिखा है, '**सतु भगवान् न जीवांशः**'

श्रीशिवजी वैष्णवाग्रगण्य हैं। श्रीमद्भागवतमें '**वैष्णवानां यथाशंभुः**' कहा है। आप प्रचेता जैसे भगवदीयोंको भागवतधर्मका उपदेश करते हैं। इसतरह विचार करनेसे यह प्रकट होता है कि श्रीशिव निर्गुण श्रीकृष्णके गुणावतार हैं। सर्व विदेश्वर हैं, वैष्णवाग्रगण्य हैं, वैष्णव धर्मोपदेष्टा हैं और सर्वदेहीश्वर हैं।

श्री संप्रदायके अनुसार 'शिवं सुंदरं सच्चिदानंदकंदं' से शिवजीको ब्रह्मवेत्ता जनाया है।

'बिष्णु बिधि वंदे' इति। विविध पुराणोंके देखनेसे प्रत्येक पक्ष-पातरहित मनुष्य इस सिद्धान्तपर पहुँचेगा कि विष्णु, शंकर और ब्रह्मा तीनोंहीके 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म', 'नित्यविज्ञानानंदघन निर्गुणरूप सर्वव्यापी', 'सगुण एवं निराकाररूप' और 'ब्रह्मा विष्णु रुद्ररूप' ये रूप सिद्ध होते हैं।

विष्णुपुराणमें श्रीपराशरजी भगवान् विष्णुकी स्तुति करते हुए कहते हैं कि 'निर्विकार, शुद्ध, नित्य, परमात्मा, सर्वदा एक रूप, सर्वविजयी, हरि, हिरण्यगर्भ, शंकर, वासुदेव, आदि नामोंसे प्रसिद्ध, संसारतारक, विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति तथा लयके कारण, एक और अनेक स्वरूपवाले, स्थूल, सूक्ष्म, उभयात्मक व्यक्ताव्यक्त स्वरूप एवं मुक्तिदाता भगवान् विष्णुको मेरा बारंबार नमस्कार है। इस संसारकी उत्पत्ति, पालन एवं विनाश करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु, महेशकेभी मूलकारण, जगन्मय उस सर्वव्यापी भगवान् वासुदेव परमात्माको मेरा नमस्कार है। विश्वाधार, सूक्ष्मसेभी अति सूक्ष्म, सर्वभूतोंके अंदर रहनेवाले, अच्युतपुरुषोत्तम भगवानको मेरा प्रणाम है। १।२।१५।

भा० ४।७।५१–५४ में श्रीमन्नारायण वाक्य हैं कि मैंही सृष्टि, पालन और संहार कृत्योंके अनुकूल ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र रूप धारण करता हूँ। पद १० टि० १२ देखिये।

इसीप्रकार ब्रह्माजीके बारेमें देवीपुराण ८३।१३–१६ में कहा गया है कि 'उत्तम बुद्धिवाले, व्यक्ताव्यक्त रूप, त्रिगुणमय, सबके कारण विश्वकी उत्पत्ति, पालन एवं संहार कारक ब्रह्मा विष्णु महेशरुप तीनों भावोंसे भावित होनेवाले देवाधिदेव ब्रह्मदेवकेलिये नमस्कार है। हे महाभाग! आप रजोगुणसे आविष्ट होकर हिरण्यगर्भरूपसे चराचर संसारको उत्पन्न करते हैं तथा सत्वगुणयुक्त होकर विष्णुरूपसे पालन करते हैं एवं तमोमूर्ति धारण करके रुद्ररूपसे संपूर्ण संसारका संहार करते हैं।'

भा० ८।७।७–४५ में कालकूटसे जलते हुए देवदानवगण जब शंकरजीके पास गये तब प्रजापतियोंने शंकरजीकी स्तुति करते हुए ऐसाही कहा है। जैसे श्रीमद्भागवतमें भगवान्‌का वाक्य है कि '**अहं ब्रह्माच शर्वश्च जगतः कारणं परम्॥**' यथार्थमें हम तीनों एक हैं। वैसेही शिवपुराणमें शिववाक्य है '**त्रिधा भिन्नोह्यहं विष्णो ब्रह्माविष्णुहराख्यया। एकंरूपं न भेदोऽस्ति भेदेच बंधनं भवेत्॥**' लिंगपुराणमें कई अद्‌भुत कथाएँ ऐसी हैं जिनसे देवताओंमें श्रेष्ठ विष्णु और ब्रह्मासेभी शिवका उत्कर्ष दिखाया गया है। लिंगपुराणमें जिस प्रकार शिवजीको परब्रह्म परमात्मस्वरूप माना है, उसी प्रकार अन्य पुराणोंमें विष्णु आदिको सर्वशक्तिमान् माना है। परन्तु सर्वशक्तिमान् परमेश्वर स्वरूप है एक ही व्यक्ति, किसीभी पुराणमें परमेश्वरकी शक्तिका भागीदार नहीं मिलता। पूर्ण पुरुषकीही भिन्नभिन्न नामोंसे वंदना की गयी है। हिन्दू विचारोंका अद्‌भुत ऐक्यही हिन्दूधर्मकी महान् विशेषता है।

शिवपुराणमें कहा गया है कि "ये तीनों (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) एक दूसरेसे उत्पन्न हुए हैं, एक दूसरेको धारण करते हैं और एक दूसरेके अनुकूल आचरण करते हैं। कहीं ब्रह्माकी प्रशंसा की जाती है,

कहीं विष्णुकी और कहीं महादेवकी । उनका उत्कर्ष एवं ऐश्वर्य इस प्रकार एक दूसरेकी अपेक्षा अधिक कहा है मानों वे अनेक हों । "

मानसमें मदन दहनपरभी कहा है कि " सब सुर विष्नु बिरंचि समेता । गये जहाँ शिव कृपानिकेता ॥ पृथक पृथक तिन्ह कीन्ह प्रसंसा । भये प्रसन्न चंद्र अवतंसा ॥ " इस संबंधसे शिवजीकी अतिशय प्रशंसा करना " संबंधातिशयोक्ति " अलंकार है ।

उपर्युक्त वाक्योंसे यह स्पष्ट है कि वस्तुतः एकही ब्रह्म सृष्टि कार्यनिमित्त तीन रूप धारण करता है । तीनोंमें गुणजन्यभेद होनेपरभी वास्तविक अभेद है । इसकी पुष्टि विष्णुपुराणके " सृष्टिस्थित्यन्तकारणीं ब्रह्माविष्णुशिवाभिधाम् । स संज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दनः॥" एकही भगवान् सृजन्, रक्षण, और हरणरूप कार्य करनेसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश नामोंको प्राप्त होते हैं । नाम रूपका भेद हैं, परन्तु वस्तुतत्त्वमें कोई भेद नहीं है ।

जब जिसके द्वारा सृष्टि रक्षा आदिका कार्य होनेको होता है तब उसके पास शेष दो रूप देवगणसहित जाते हैं और उसकी स्तुति करते हुए उसको जगत्मात्रका स्वामी, सृष्टा, उद्भवस्थितिसंहारकर्ता और अपनेको उनका सेवक कहते हैं । वास्तवमें तीनों एकही तत्त्व हैं, अभेद हैं । तब कौन किसका वंद्य कहा जाय ? वे परस्पर एक दूसरेसे वंद्य हैं ।

इसी भावको लेकर प्राचीन पुराण परम्पराका अनुसरण करते हुए यहाँ ' विष्णु बिधि बंद्य चरणारविंदं ' भी ठीकही है ।

हम व्यासदेवजीको धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकते, जिन्होंने ' एकदेववाद ' के गहन विषयको अनेक पुराणोंमें किस सरलताके साथ समझानेका प्रयत्न किया है । वही एक ब्रह्म, राम, शिव, विष्णु, कृष्ण, नृसिंह, महाशम्भु, महाविष्णु, महानारायण, दुर्गा, काली, त्रिपुरा, सीता आदि अनेक नाम और रूपोंमें दीख रहा हैं । ' आकाशात् पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम् । सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रतिगच्छति ' ।

श्री संप्रदायका मत है कि श्रुतियोंके अनुसार नारायणका सर्वजगत्कारणत्व गोपालतापिनी और महोपनिषत् आदिकी ' एको ह वै

नारायणः आसीन्न ब्रह्मानेशानो स एकाकि न रमते। ' (महोपनिषत्), ॐ अथ पुरुषो ह वै नारायणोऽकामयत प्रजासृजेयेति नारायणात् प्राणो जायते नारायणादेकादश रुद्रादयः संमुत्पद्यन्ते नारायणे प्रलीयन्ते । ' (नारायणोपनिषत्); ' एको नारायणो न द्वितीयोऽस्ति कश्चित् ' इत्यादि श्रुतियोंमें पाया जाता है ।

इसीतरह ' अहमेकः प्रथमतमासं वर्तानि भविष्यामि नान्यः कश्चिन्मत्तो व्यतिरिक्त इति । यस्मिन्निदं सर्वमोतप्रोतं तस्मादन्यं न परं किंचिन्नास्ति । ' (अथर्वशिरस्), ' यदा तमस्तन्न दिवा न रात्रिर्न सन्नचासच्छिव एव केवलः ॥ तस्मात्प्रवृत्तिः प्रसूता पुराणी सर्वतोऽक्षि शिरोमुखः ॥ ' (अथर्वशिरस्), ' सर्वानन शिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः । सर्वव्यापी सभगवान् तस्मात्सर्वगतः शिवः ॥ ' (श्वेताश्वतर ३।११), ' ॐ देवा ह वै स्वर्गं लोकमायस्ते रुद्रमपृच्छन्को भवानिति सोऽब्रवीदहमेकः ' (रुद्रोपनिषत्)। इन श्रुतियोंसे शिवजीका जगत्कारणत्व पाया जाता है ।

इसतरह नारायणपरक श्रुतियाँ आदिसृष्टिमें नारायणसे अन्यका और रुद्रपरक श्रुतियाँ रुद्रसे अन्यका निषेध करती हैं । तब इन परस्पर विरुद्ध सिद्धान्त वाक्योंका समन्वय कैसे होगा ? श्री सम्प्रदायके आचार्य इनका समन्वय इस प्रकार करते हैं कि (क) नारायणको सर्वकारण कहनेवाले उपनिषद्वाक्योंमें सर्वत्र ' ह वै ' निपात मिलता है । इससे अथर्वशिरस् आदि अन्य श्रुतियाँ नारायणपरक श्रुतियोंकी अनुवादक हैं। अतः अथर्वशिरस्में रुद्रसे नारायणात्मक रुद्रका ग्रहण है । ' ह वै ' निपात न होनेसे नारायणात्मक शिवको भगवान् कहा जा सकता है । इसपर कहा जा सकता है कि यदि ' ह वै ' पदसे सर्वकारणत्व सिद्ध होता है तो ' ॐ देवा ह वै ' में भी तो ' ह वै ' आया है ? इसका उत्तर यह है कि इस श्रुतिमें ' ह वै ' पद देवताओं अथवा स्वर्गके सम्बन्धमें आया है, न कि रुद्रके सम्बन्धमें । इस श्रुतिके अतिरिक्त अन्य किसीभी श्रुतिमें शिव, शम्भु और रुद्रादि किसीकेलिये 'ह वै' नहीं आया है। (ख) अथर्वशिरस्में रुद्रका जो सर्वकारणत्व आया है वह रुद्रका

अपने मुखसे कहना है। यह कथन ' शास्त्रदृष्टयातूपदेशो वामदेववत् ' (वेदान्तदर्शन १।१।३१) इस सूत्रके अनुसार नारायणत्मकभावसे सिद्ध होता है। क्योंकि श्रुतियोंमें रुद्रका नारायणसे उत्पन्न होना कहा है। (ग) श्रीहरिदासाचार्यजी लिखते हैं कि " नारायणात् रुद्रो जायते " इन श्रुतियोंमेंभी तो ' ह वै ' निपात नहीं पाया जाता। अतएव नरायणको किसका तादात्म्य माना जाय? इसका उत्तर यह है। नारायणकेलिये कहा गया है कि " स कारणं करणाधिपाधिपो न चास्यकश्चिज्जनिता न चाधिपः। " " न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते " " न तस्य प्रतिमास्ति। " " यस्य नाम महाद्यशः। " (यजु–३२। ३)। वही नारायण सबके कारण हैं, इन्द्रियोंके स्वामियोंकेभी स्वामी हैं और उनका न तो कोई उत्पन्न करनेवाला (कारण) है और न कोई स्वामीही है। उनके समान या अधिक कोई नहीं है। इन श्रुतियोंसे स्पष्ट है कि नारायणके उत्पन्नकर्ता और स्वामी शिवादि नहीं है। शिवजीकी उत्पत्ति पूर्वोक्त श्रुतियोंने नारायणसे बतलायी है। अतः जहाँ कहीं शिवपरत्व वर्णित है वह कैलाश वा काशीपति शिवपरक नहीं हो सकता। क्योंकि शिव नारायणके कारण नहीं हैं। (घ) शिवपरक उपनिषदोंमें शिव रुद्रादिसे वाच्यका जगत्कारणत्व सुना जानेपरभी न तो उनका अवतारित्व किसी श्रुतिमें कथित है, और न उनकेलिये कहींभी " समाधिक्य " का निषेध किया गया है। वरंच अन्यत्र उनका श्रीराममंत्रजापक, श्रीरामाराधक और श्रीराममंत्रोपदेशक होना पाया जाता है, जिससे शिवजीका कारणत्व और सर्वाधिपतित्व सिद्ध नहीं हो सकता। (ङ) इसपर जो शैवोंकी यह उक्ति होती है कि " ब्रह्मभूतरुद्र और जीवभूतरुद्रमें परस्पर भेद होनेसे रामाराधकत्व और नारायणजन्यत्व आदि जीवभूतरुद्रकेलिये हैं, ईश्वरभूतरुद्रकेलिये नहीं। " उस उक्तिको उपस्थित करनेवालोंको यहभी बतलाना चाहिये कि कौन श्रुतियाँ जीवभूतरुद्रकी बोधक हैं और कौन ब्रह्मभूतरुद्रकी? सारांश यह है कि श्रुतिसिद्धांतके अनुसार यहाँ जो परत्व

वर्णन किया गया है वह रामात्मक होनेसे रामरूपी रुद्रके भावसे है।

६ ' बिकट बेषं बिभुं वेदपारं ' इति। जो पद १० और ११ में भगवान् शंकरका स्वरूप बालशशि भाल, त्रिनेत्र, हाथमें डमरू, त्रिशूल आदि, कटिमें व्याघ्र और गजचर्म धारण किये हुए वर्णन किया गया है यह स्वरूप सृष्टि, स्थिति और प्रलयभावका सूचक है और जीवके आत्यंतिक प्रलय अर्थात् मुक्तिकाभी द्योतक है। इसी मंगलमय स्वरूपसे तमोमय संहारभावको धारण करनेसे रुद्रमूर्तिभी प्रकट होती है। इससे स्पष्ट है कि भगवान्में एक शान्तमय शिव और दूसरा प्रलयकारी सद्भाव विराजमान् है। शंकरजीके इस विकट वेषके कुछ और आध्यात्मिक भाव यहाँभी लिखे जाते हैं। गौर—उनके प्रकृतिपर समस्त प्रकृतिका विलास प्रकाशित होता है। इसलिये उनका शरीर गौर है। शरीर गौर होनेका कारण यहभी है कि जिस केंद्रपर समस्त प्राकृतिक वर्णोंका विकास होता है, वहाँ श्वेतही वर्ण होता है। जैसे सूर्यसे सब रंगोंका विकास होता है तो सूर्य भगवान् श्वेत है। त्रिनेत्र और त्रिशूल—भगवान्के दोनों नेत्र पृथ्वी और आकाशके सूचक हैं। तृतीय नेत्र बुद्धिके अधिदैव सूर्य ज्ञानाग्निका सूचक है। इसी ज्ञानाग्निरूप तीसरे नेत्रके खुलनेसे काम भस्म हो गया था। मनका अधिदैवरूप चंद्र भगवान्के मस्तकपर विराज रहा हैं। इसप्रकार उनके ईश्वर भावके द्वारा संसार प्रकाशित हो रहा है। इसी ईश्वर भावको लिये हुए भगवान् शंकर हाथमें तीनों गुणोंके सूचक ' त्रिशूल ' को धारण किये हुए हैं। प्राकृतिक प्रलयभावके (अर्थात् सृष्टिप्रलयकर्ता भाव) सूचक रुद्रस्वरूपमें शिवजी भूत, भविष्य और वर्तमान् कालके भेदसे युक्त प्रलयकारी कालका सूचक त्रिशूल हाथमें धारण किये हैं। आत्यंतिक प्रलयकारीभाव दशामें (अर्थात् जिस दशामें जीव अपने आपको ब्रह्ममें लीन कर देता है उस भावदशामें) वही त्रिशूल आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक दुःखका सूचक है। क्योंकि त्रिविध दुःखोंसे दुःखी हुआ पुरुषही इस संसारसे मुक्त होनेकेलिये भगवानकी शरण लेता है।

'व्याल नृकपाल मालधारी डमरू' इति। प्राकृतिक प्रलयकारी सद्भावमें शिवजी मुंडमाली, भस्मावलिप्त, श्मशानवासी, भुजंगधारी, व्याघ्रगजचर्मधारी, विषपायी और डमरूधारी हैं। जिस प्रकार स्थूल, सूक्ष्म शरीर कार्य संस्कारोंकेसहित अविद्यात्मक कारण शरीरमें अवस्थान करते हैं उस कारण शरीरमें स्थूल और लिंग शरीरोंका केवल बीजरूपसे संस्करण मात्र अवशेष रहता है। यही कारण शरीर विशिष्ट चेतनकी समष्टिही रुद्र है। कारण विशिष्ट चेतन जो शरीरद्वयके नष्ट होनेपर अवशिष्ट रह जाता है, उन्हीं सब प्रलयकालीन जीवोंकी स्थितिकी सूचक भगवान् शंकरके गलेमें मुँडमाल पड़ी हुई है। स्थूलका अन्तिम परिणाम भस्म है। इस स्थूल ब्रह्मांडको भस्म रूपमें ले आनेवाले शंकर हैं। इस भावको सूचन करनेकेलिये उनके शरीरमें भस्म लगी रहती है। सुषुप्ति अवस्थारूप महाप्रलयही श्मशान भूमि है। वही रुद्रजीके निवासका स्थान है। काल भगवान्के अधीन है। इस भावको दरसानेकेलिये आप महाविषधर सर्पको धारण किये हैं। अति शौर्यशाली तथा बली जीवोंपर शासन करनेमें समर्थ है। इस भावको प्रकट करनेकेलिये आपने व्याघ्रचर्म और हस्तिचर्म धारण कर रक्खा है। संसारके अनिष्टसे अनिष्टकारी पदार्थोंकोभी अनुकूल बनानेमें आप समर्थ हैं। इस भावको प्रकट करनेकेलिये आप विषपान किया करते हैं। इस जगत्को विनाशकी ओर अग्रसर करनेवाले रात्रि दिवसरूप डमरूको आप धारण किये हुये हैं। जिससमय जीव अपनी सत्ताको शिवभावमें लीन कर देता है, उस समय जीवसे द्वन्द्वात्मक कर्मोंसे युक्त प्रकृतिके नाना प्रकारके धर्म अपने आपही निवृत्त हो जाते हैं। इस बातको प्रकट करनेकेलिये शंकरजी सर्पको अपना अलंकार बनाये है।' (स्वामी श्री गंगेश्वरानंदजी महाराज) प्रथमरूपमें ब्रह्मांडके साथ कालका संबंध है। ब्रह्मांडकी आयुके अनुसार महाकाल रुद्रभी परिच्छिन्न हैं। इसलिये रुद्रको व्याघ्राम्बरधारी कहा गया है। अपरिच्छिन्न ब्रह्मभाव शिवभाव किसी प्रकारके आचरणमें नहीं आ सकता। इसलिये भगवान् शंकर 'दिगंबर' हैं।

जिनकी श्रीपार्वतीजी गृहणी हो, कुबेर जिनके भंडारी हो

ऐसा होनेपरभी आपका श्मशान निवास, शरीरमें भस्मका धारण करना, हाथमें भिक्षापात्र लेकर भिक्षा माँगना यह सब आत्यंतिक प्रलयके साधनभूत त्याग वैराग्यादिको प्रकट करते हैं। भगवान् शंकर अपने इस प्रकारके आचरणसे जीवोंको यह बतला रहे हैं कि जो संसारकी सब प्रकारकी विभूतियोंको छोड़कर हाथमें भिक्षापात्र ग्रहण कर साधु हो जाता है और वैराग्यके उद्दीपनकेलिये श्मशानोंमें निवास करता है वही मोक्षको प्राप्त कर सकता है।

पृथ्वीमें तमोगुणकी प्रधानता है। इसलिये शास्त्रोंमें भवानी शंकरको 'पृथ्वीके अभिमानी देव' लिखा गया है। पृथ्वीका सबसे उच्च प्रदेश हिमालयही उनका सिर है। हिमालयसे जगत्पावनी पुण्यसलिला श्रीगंगाजीका आविर्भाव होता है। इस भावको प्रकट करनेकेलिये शंकरजी गंगाजीको अपने मस्तकपर धारण करते हैं। सत्त्वगुणका पूर्ण विकास होनेपरही धर्मका विकास होता है। पशुजातिमें सबसे अधिक सत्वगुणका विकास गोजातिमें है। इसलिये धर्मका सूचक बैलही श्रीशिवजीका वाहन है।

७ 'करुणाकरं गरल गंगाधरं' इति। करुणाकरं कहकर उसके प्रमाण स्वरूप 'गरल गंगाधरं' कहा। दोनोंका धारण करना करुणाभावसे हुआ। 'गरल कंठ', 'कृत गरल पानं' पद १० और ११ देखिये। त्रिभुवनव्यापिनी गंगाका आकाशसे अकस्मात् पृथ्वीपर प्रपात होनेसे अनेक अनिष्ट हो सकते हैं। अतः भगीरथजीकी प्रार्थनासे आपने उन्हें जटाओंमें धारण किया। इसीसे आपका नाम 'गंगाधर' हुआ।

विशेषणोंके क्रमका भाव शंकर हैं। इसीसे दाता हैं और सज्जनोंको सुख देते हैं। ब्रह्मादि देवताओंको सुख देनेकेलिये पार्वतीपति हुए। यथा '**सकल सुरन्हके हृदय अस शंकर परम उछाहु। निज नयनन्हि देखा चहहिं नाथ तुम्हार विवाहु॥**'

पार्वतीमंगलमें कहा है कि विवाहके समय आपने षोड़श वर्षका

परम लावण्यनिधि रूप धारण किया था।* अतः ये सब विशेषण क्रमसे दिये गये। पार्वतीपति होनेसे कोई यह न समझे कि वे कामी होंगे। इसीसे 'काममदमोचनं' कहकर बताया कि ये योगीश्वर हैं। इन्होंने मदनके मदको नष्ट कर दिया। 'मदनमर्दन'से कठोरता और उदासीनता प्रकट होती है। अतः 'तामरस लोचनं' कहकर जनाया कि कठोर नहीं हैं, किन्तु करुणारसपूर्ण हैं। इसीसे तो रतिके विलापसे पिघलकर जगत्की स्थितिकेलिये उसे वर दिया है। इससे उथपे थपन और श्रेष्ठ जनाया। '**साँसति करि पुनि करहिं पसाऊ। नाथ प्रभुन्ह कर सहज सुभाऊ॥**' इस तरह शिवजीको परोपकारी, करुणामय, समर्थ, उथपे थपन, उजारिबसावन इत्यादि जनाया।

अनुसंधान (१२)

लोकनाथं सोक सूल निर्मूलिनं सूलिनं मोहतमभूरि भानुं।
काल कालं कलातीतमजरं हरं कठिन कलिकाल कानन कृसानुं ॥४॥
तज्ञमज्ञान पाथोधि घटसंभवं सर्वगं सर्व सौभाग्यमूलं।
प्रचुर भव भंजनं प्रनतजनरंजनं दास तुलसी सरन सानुकूलं ॥५॥

शब्दार्थ :—शोक=इष्टके नाश और अनिष्टकी प्राप्तिसे उत्पन्न मनोविकार, चित्तविकलता। सूल = काँटेके समान चुभनेवाली पीड़ा। यहाँ 'शूल' से त्रिविध शूल वा भव जानना चाहिये। त्रिविध भवशूलसे जन्म, जरा, मरण, स्थूलसूक्ष्म कारण त्रय शरीर, त्रयावस्था, त्रय गुण, सुत वित नारि, उत्पत्ति, पालन, लय और कामकर्म स्वभाव इत्यादि अर्थ किये जाते हैं। 'त्रय शूल' में दैहिक, दैविक, भौतिक तीनों प्रकारके अतिरिक्त औरभी अनेक प्रकारके सब शूल आ जाते हैं। निर्मूलिनं = जड़से उखाड़ डालनेवाले, अस्तित्व मिटा देनेवाले। सूलिनं = (शूलिनं) त्रिशूल धारण करनेवाले; शूलति लोकान् इति शूलः मृत्युः। इसके अनुसार 'मृत्यु' अर्थ होता हैं। भूरि =

---

* लखि लौकिक गति संभु जानि बड़ सोहर। भये सुंदर सतकोटि मनोज मनोहर॥ नील निचोल छाल भइ फनिमनि भूषन। रोम रोम पर उदित रूपमयपूषन॥ (पार्वतीमंगल। ६९।)

अत्यंत निबिड़, बहुत अधिक। कलातीत = (कला + अतीत) कलाओंसे परे, एकरस परिपूर्ण। कला = अंशभाग। घटना बढ़ना इत्यादि। जन्म, बाल, कुमार, पौगंड, किशोर, युवा, मध्या, वृद्धा, मरण आदि अवस्थाएँही हैं। अतीत = परे। यथा 'माया गुन ज्ञानातीत अमाना वेद पुरान भनंता' (बा०) अजर = जराअवस्थारहित, नित्य एकरस युवावस्थावाले। जरा = बुढ़ापा। कानन = बन, जंगल। तज्ञ = (तत्त्वज्ञ) तत् पदवाचक ब्रह्मको जो जाने। यथा 'तत्पदं ब्रह्म जानाति यः सा तज्ञः।' आत्मविद्। पाथोधि = पाथका (जल) अधिष्ठान, समुद्र। घटसंभव = अगस्त्यजी। यथा, 'तहाँ रहे सनकादि भवानी। जहं घटसंभव मुनिबर ज्ञानी॥' (उ०) सर्वगं = सर्वत्र गमन करनेवाले, जिसकी गति सर्वत्र हो। सर्वसौभाग्य। पद १० देखिये। प्रचुर = बहुत अधिक, उद्दंड, ढीठ, समूह। भव = संसार, कामदेव। रंजनं = आनंद देने या प्रसन्न करनेवाले।

नोट:—इस पदमें भजनके प्रथम पदमें 'बामदेव भजे' और दूसरे पदमें 'नौमि' क्रियाएँ आयी हैं। शेष पदोंमें कोई क्रिया नहीं है। इसलिये अन्तिम पदोंमें अन्वय करते समय 'अहं तुलसीदासः भजे' ऊपरसे जोड़ लेना होगा।

पद्यार्थ:—(तीनों) लोकोंके स्वामी, शोक और शूलको मूलसे उखाड़ फेंकनेवाले, त्रिशूलको धारण करनेवाले, निबिड अज्ञानांधकारको नष्ट करनेके लिये सूर्यरूप, † कालकेभी काल, (प्रेरक और नियंता) कलारहित, अजर आर कठिन कलिकालरूपी बनको (भस्म करनेकेलिये) अग्निरूप हरको मैं भजता हूँ।४। ब्रह्मतत्वके ज्ञाता, अज्ञानरूपी समुद्रको सोखनेकेलिये अगस्त्यरूप, * सर्वत्र गमन करनेवाले समस्त सौभाग्योंके मूल (उत्पादक) अत्यन्त उद्दंड काम-देवके नाशक, प्रणतजनको (विनति भावसे शरणमें आनेवाले प्राणी)

---

† कोई कोई 'भूरि' को 'भानु' का विशेषण मानकर 'बारही कलाके सूर्य' ऐसा अर्थ करते हैं।

प्रसन्न करनेवाले और शरणागतपर सदा अनुकूल रहनेवाले आपको मैं तुलसीदास भजता हूँ । ५ ।

टिप्पणी—१ "लोकनाथं भानुं कृशानुं" इति। लोकनाथ कहकर शोक शूल निर्मूलिनं कहनेका भाव कि आप समस्त लोकोंके नाथ हैं । सब आपकी प्रजा है उस प्रजापर आपकी करूणा और वात्सल्य इतना है कि आप सदा उसके भवशूल और शोकोंके निवारणमें तत्पर रहते हैं। निर्मूलिनं कहकर शूलितं कहनेका भाव कि इसी भवशूलके हरनेकेलियेही आप त्रिशूल धारण किये रहते हैं । 'मोहतम भूरि भानु' का भाव कि आप सांसारिक शोकशूलही केवल नहीं मिटाते वरंच अज्ञान जो इनका मूलकारण है, उसकाभी नाश कर देते हैं जिसमें फिर शोकादि न होने पाये । 'मोह' को तम और शंकरजीको 'भानु' कहकर जनाया कि आप सहजही अज्ञानका नाश कर देते हैं। जीवके सन्मुख होतेही उसका मोह

---

* महाभारत वनपर्वमें समुद्रशोषणकी कथा इस प्रकार है कि वृतासुरवधके पश्चात् कालकेयादि समस्त दैत्योंका नाश देवताओंने प्रारम्भ किया। तब वे सब समुद्रमें जा छिपे। वे दिनमें वहाँ छिपे रहते थे और रात्रिमें निकलकर तपस्वी, धर्मात्मा ज्ञाननिष्ठ ब्राह्मणोंका संहार करते थे। यह कालकेय नामक दल बड़ा विकट था। किसीको पता न चलता था कि रात्रिमें कौन ऋषियों मुनियोंका नाश करता है । भगवान्की शरण जानेपर उन्होंने देवोंको सब बात बताकर दैत्योंके नाशका उपाय बताया कि समुद्रको सुखानेमें अगस्त्यजीके सिवा और कोई समर्थ नहीं हैं और उसे सुखाये बिना उन दैत्योंका पराभव नहीं हो सकता। इसलिये तुम किसी प्रकार अगस्त्यजीको इस कामकेलिये तैयार कर लो। आज्ञा पाकर देवगण अगस्त्यजीके पास गये और उनकी स्तुति करके अपना दुःख निवेदन किया और उनसे महासमुद्रका शोषण कर देवताओंके दुःख हरण करनेकी प्रार्थना की। अगस्त्यजीने समुद्रका पान कर लिया।

ऐसाभी प्रसिद्ध है कि अगस्त्यजीने तीन आचमनोंमें 'रामाय, रामभद्राय, रामचंद्राय' कहते हुए समुद्र सुखा दिया। विशेष पद २० टि० २ में देखिये।

विनष्ट हो जाता है। ज्ञानको सूर्य कहा है। यथा, 'उदयज्ञान भानुमत'। इस तरह यहभी भाव निकलता है कि आप दूसरेका अज्ञान सहजही नाश करते हैं और स्वयं विज्ञान सूर्यही हैं। आप सदा मोहके परे हैं। मोह कभी आपके पास जाही नहीं सकता। यथा, 'रवि सनमुख तम कबहुँकि जाही।', 'राम सच्चिदानंद दिनेसा। नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा॥' 'रवि मंडल देखत लघु लागा। उदय तासु त्रिभुवन तम भागा॥' देवदत्तशर्माजी लिखते हैं कि (१) भगवान् शंकर शोकशूलको नष्ट करते हैं। यह बात ऋग्वेदसे प्रमाणित है। 'इमारुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्रभारामहेमतीः। समसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामेऽस्मिन्ननातुरम्॥' (२) काल शिवजीका परमेश्वरवाची पर्यायी है। (३) सूर्य लोकपति, प्रजापति कहलाता है। यहाँ अज्ञानरूपी अंधकारको नष्ट करनेकेलिये सूर्यका सादृश्य दिया है। अतः लोकनाथ विशेषणसे आवश्यकता पूरी की। शिवही सूर्य हैं। 'य शुक्र इव सूर्यो हिरण्यमिवरोच्यते' (७।४३।५।)। अथर्ववेदमें शिवजीको 'सहस्रचक्षुः' कहा है। वाजसनेयसंहितामें 'असौयस्ताम्रोअरुण उतबभ्रुः सुमंगलः। ये चैन रुद्राऽभितो दिक्षु श्रिताः सहस्रशोवैष हेऽईमहे (१६।७)' इससे सहस्रनयन शिवका परिचय मिलता है। ऋग्वेदमें विद्युत् शक्तिको शिवका लीलाविकास कहा गया है। 'यातेविद्युदिव सृष्टा दिवस्परिः'। (७।४६।३) (४) 'कलि-कानन कृशानुं' इति। यहाँ अग्नि और शिवकी एकता दिखायी है। 'त्वमग्निरुद्रअसुर' (२।१।६) निरुक्तमें लिखा है कि 'अग्निरपि रुद्र उच्यते तस्येवं भवति'। पुराणोंमें शिवही अग्नि हैं। 'इत्युक्तः शंकर क्रुद्धोवदनं घोरचक्षुषा। निर्दग्धकः प्रत्यानिशं ददर्श भगवानजः॥' (वामनपुराण २ अ०) मदनदहनके समय शिवका आग्नेयरूप विख्यात् है। ऋग्वेदकी व्याख्यामें सायणाचार्यने लिखा है कि 'रुद्रोयएषअग्निरिति श्रुतिः। रुद्रकृतमपि त्रिपुरदहनम् अग्नि कृतमेव इति अग्निः स्तूयते।' गोस्वामीजीकी

अगाध विद्वत्ता, परिचयचारुता, अन्वीक्षण शक्ति और गूढ़त्वका निर्देशक यही एक पद है। एक एक शब्द, एक एक मात्रा साभिप्राय और गूढ़ भावोंसे ओतप्रोत हैं। विशिष्ट विशेषणोंकी बहार और विशेष्योंका सामंजस्य अद्‌भूतपूर्व है। यहाँ परंपरित समअभेद रूपक है।

'काल कालं' का भाव कि महाप्रलय होनेपर आपही शेष रह जाते हैं। यथा '**सकल लोकांत कल्पांत शूलाग्रकृत दिग्गजाव्यक्त गुण नृत्यकारी॥ शेष सर्वेश आसीन आनंदबन**' (पद ११) '**कालकालं कलातीतमजरं**' से आप जरामरणसे रहित हैं, सदा एकरस पूर्ण हैं, मृत्युंजय एवं महामृत्युंजय हैं और दूसरोंकीभी मृत्युको हर लेते हैं। '**कालकलयति प्रेरयति कालकालं तं**' अर्थात् जो कालका प्रेरक है उसको 'लोकनाथ' कहकर 'कालकालं' अर्थात् जो काल '**अंडकटाह अमित लयकारी**' है उसकेभी प्रेरक और नियंता बताकर आपको देश और काल दोनोंसे रहित जनाया। 'कलिकाल कानन कृशानु' मेंभी परंपरित समअभेद रूपक है।

११ 'हरं' इति। यजुर्वेदके रुद्राध्यायमें आपको '**स्तेनानांपतिः**' '**तस्कराणांपतिः**' अर्थात् चोरोंका स्वामी कहा है। जैसे श्रीमन्नारायण और श्रीकृष्णजीको पांडवगीता और गोपालसहस्रनाममें 'चौर' और 'चोरशिखामणि' कहा है। चोर कहनेका भाव पांडवगीताके निम्न श्लोकसे स्पष्ट हो जाता है। "**नारायणो नाम नरो नराणांप्रसिद्ध चौरः कथितः पृथिव्याम्। अनेक जन्मार्जित पापपुंजं हराय शेषं स्मशोन पुंसाम्॥**" स्मरणमात्रसे आप उनके जन्मार्जित पापसमूहको तुरंत हर लेते हैं वा झपट लेते हैं। यही भाव 'हर' शब्द और 'हरि' काभी हैं।

१२ (क) 'सर्वसौभाग्य मूलं' इति आप सौभाग्यकी जड़ हैं। आपके बिना सौभाग्यरूपी वृक्ष स्थिर नहीं रह सकता। वह आपकी उपासनासे शीघ्र बढ़ता है। (ख) यह क्रमका भाव हुआ। 'अज्ञान पाथोधि घटसंभवं' में समअभेद रूपक है। एकही ब्रह्मत्रिदेवरूपसे अव-

तरित है, अतः इसकोभी 'सर्वंग' कहा है। (ग) 'प्रचुरभव भंजनं' इति। 'भव' का अर्थ कामदेव किया गया। दूसरा अर्थ (संसार) लेनेसे भाव होगा कि जो गाढ़ संसारमें पड़ा है उसके संसार अज्ञानके नाशक है। पहले मोहनाश और सौभाग्य मूल कहकर 'भव भंजन' और 'जनरंजन' कहा। क्योंकि अज्ञानके नाशके विना भवसे छुटकारा नहीं होता। आप सौभाग्यके मूल हैं। इससे आप प्रणतजनको लोक परलोक दोनोंका सुख देते हैं जिसकी प्राप्तिसे उन्हें आनन्द होता है। आप शरणागतपर रूठते नहीं यही जानकर प्राणी आपकी शरणमें आते हैं। यह क्रमका भाव हुआ। 'अज्ञान पाथोधि घटसंभवं' में समअभेद रूपक है।

१३ पौराणिक कथाके अनुसार अगस्त्य एक ऋषि हैं और एक नक्षत्रकाभी नाम है, जो जलशोषणमें समर्थ है। वेदोंके अनुसार भगवान् शिवमें ये सब शक्तियाँ विद्यमान् हैं। प्रमाण ऋग्वेद ७।४६।२ तथा २।३३।७ में वर्णित है। 'तज्ञ' अर्थात् आत्मविद् शिवही हैं। इसीलिये वे अजर हैं, मृत्युंजय हैं। क्योंकि '**तमेनविदित्वा-तिमृत्युमेतिनान्यः पन्था विद्यतेऽयन्नाय**'। (यजु०)। शिवजी समस्त सौभाग्योंके मूल हैं। इसके प्रमाण ऋग्वेदमें (१।११४।१) तथा १।४३।३, ७।३५।६,७।४६।३१,८।२६।२५,१।११४।१,२।३३।६ है। 'सर्वंग' शिवका और जलकाभी नाम है। कहीं कहीं मरुतकाभी नाम प्राप्त होता है। किन्तु अन्वीक्षणशक्तिसे विचार करनेपर जल और मरुत शिवकेही रूपांतर हैं। यथा, '**सोऽर्यमास वरुणः सरुद्रःस महादेवः**'। (१३।४।४) पौराणिक शिव उपासनामेंभी '**ॐ भवाय जलमूर्त्तये नमः**' कहा जाता है। ऋग्वेदमें शिव मरुद्गणोंके पिता माने गये हैं। १३।४।४।

गोस्वामीजीने अपने गंभीर अध्ययनके आधार और अनुभवके बलपरही शब्दयोजना और पदविन्यासोंका सामंजस्य मुक्ताविद्रुमकी भांति मिलाया है। उनके ग्रंथ अगाधसिंधु हैं, जिनमें अवगाहन करनेसे सौभाग्य एवं परिश्रमके अनुरूप रत्न प्राप्त होते हैं।

१३ [६] राग वसंत

सेवहु सिवचरनसरोज रेनु। कल्यान अखिल प्रद कामधेनु ॥१॥
कर्प्पूर गौर करुना उदार। संसार सार भुजगेंद्र हार ॥२॥
सुख जन्मभूमि महिमा अपार। निर्गुन गुननायक निराकार ॥३॥
त्रयनयन मयनमर्दन महेस। अहँकार[१] निहार उदित[२] दिनेस ॥४॥
बर बालनिसाकर मौलि भ्राज। त्रैलोक सोक हर प्रमथराज ॥५॥

शब्दार्थ :— सेवहु = सेवना, आराधन करना, उपासना करना, पूजना। यथा '**सेवत सुलभ उदार कलपतरु पार्वतीपति परम सुजान**'। नियमपूर्वक खाना, पीना, लगाना, शिरोधाय करना, काममें लाना, प्रयोग करना। सरोज = कमल। रेनु (रेणु) = रज, धूलि। कल्यान (कल्याण) = मंगल, शुभ, मुक्ति। कामधेनु = एक गौ जो क्षीरसमुद्र मथतेसमय निकली थी। यहभी १४ रत्नोंमेंसे एक है। इससे जो कुछ माँगा जाय मिलता है। कर्प्पूर = पद १० में देखिये। करुना उदार = जिसकी करुणा बहुत भारी है। जो करुणावान् (दयावान्) होनेसे दया करके सुखके दाता हैं। (डु०)। सार = किसी पदार्थका मुख्य या असली भाग; तत्त्व, सत्व, निष्कर्ष या निचोड़, सत्य वा नित्य पदार्थ। भुजगेंद्र=(भुजग +इन्द्र) सर्पराज शेषजी, वासुकी आदि। हार=सोने, चांदी, मोती आदिकी माला जो गलेमें पहनी जाय। जन्मभूमि=जन्मस्थान, मूलकारण। गुननायक =सत्व, रज और तम तीनों गुणोंके स्वामी, नियंता वा प्रवर्तक। गुणोंको अपनी आज्ञानुसार चलानेवाले। निराकार = मायारहित, पंचभौतिक आकाररहित शुद्ध आत्मस्वरूप। त्रयनयन = तीन नेत्रवाले। यथा, '**इंदु पावक भानु नयन**'। पद ११ में देखिये। अहंकार = अभिमान। यह आत्मस्वरूपको भुलाकर मनुष्योंको मूढ़ या जड़ बना देता है। उदित = उदय हुए, निकले हुए। उदयकालके। दिनेस = (दिन + ईस) = सूर्य। बालनिसाकर = बालशशि, द्वितीयाका

१ अहंकार–रा०, ह०, प्र०, ज०, ५१, ६९, आ०। अहँकार–७४, ६६। हंकार–भा०; बे०। २ उद्दित–१९०६, शि०, ५१।

चंद्रमा। मौलि=पद १० में देखिये। (प्रमथ = शिवजीके एक प्रकारके ३६ करोड़ गण जो बड़े मायावी कहे गये हैं। इनकी ऊँची, जातियाँ शंकरजीकेही समान हैं। प्रमथों आदिका विस्तारसे वर्णन शिवपरिषदोंकी उत्पत्तिके प्रकरणमें कालिकापुराणके २९ वें अध्यायमें मिलता है। भूत, वेताल, पिशाच, नीच जातिके प्रमथ, झोटिंग सभी रणमें भाग लेनेवाले नीच प्रकारके शिवगण हैं। प्रमुख प्रमथादि सब रुद्रगण हैं, सब पार्षद हैं और ब्राह्मी आदि माताएँ हैं यथा 'प्रमथाः स्युः परिषदा ब्राह्मीत्याद्यास्तुमातरः' इत्यमरः) प्रमथराज = प्रमथ नामक रुद्रगणोंके शासक वा स्वामी। पद ११ देखिये। सोक=इष्टके नाश और अनिष्टकी प्राप्तिसे उत्पन्न मनोविकार। किसी प्रिय व्यक्तिके अभाव या पीड़ा आदिसे अथवा दुःखमयी घटनासे उत्पन्न क्षोभ। यह मृत्युका पुत्र कहा गया है।

पद्यार्थ—श्रीशिवजीके चरणकमलकी धूलिका सेवन करो, जो समस्त कल्याणोंकी देनेवाली कामधेनु है। १। (शिवजी) कर्पूरके[1] समान (उज्वल और सुगंधयुक्त) गौरवर्ण और भारी करुणावाले[2], संसारके सार, (संसार असार है, अनित्य है, इसमें यदि कुछभी सार पदार्थ नित्य तत्त्व है तो वह 'शिवतत्त्व' ही है। आपही वह तत्त्व[3] हैं।) सर्पराजोंका हार

१ कपूर जैसा आजकल नकली मिलता है वैसा नहीं, वरन् भीमसेनी कपूर सदृश जो बड़ाही श्वेत और बहुत सुगंधवाला होता है।

२ अर्थान्तर (क) 'करुणाके कारण उदार'। (डु०) (ख) 'करुणागुण भरे और उदार'। (वै०) (ग) 'करुणाके दाता'। (मु०, वि०) (घ) 'करुणाकी मूर्ति और परम दानी'। (ह०) (ङ) 'दयालु और दानी'। (वीर) 'करुणा उदार' का 'करुणामें श्रेष्ठ वा भारी करुणावाले' अर्थ होता है। जैसे महिमाअपारका अपार महिमा वाले। भाव यह है कि ऐसी करुणा किसीमें नहीं है। यथा, 'सकहु न देखि दीन कर जोरे'। हाथ जोड़े देखतेही द्रवित होते हैं।

३ अर्थान्तर (क) 'संसारके सार अर्थात् सबके तत्त्व।' (वै०, भ०) (ख) 'अन्तर्यामी रूपसे सबमें वास करनेवाले'। (वै०) (ग) 'जगत्के प्रधान'। (वीर)

धारण करनेवाले हैं (अर्थात् वासुकी आदि बड़े-बड़े सर्पोंको गलेमें मणिमाणिक्यादिकी मालाकीतरह लपेटे वा पहने रहते हैं।) । २ । आप सुखके उत्पत्तिस्थान, अपारमहिमावाले, मायिक गुणोंसेरहित दिव्य गुणोंके स्वामी एवं सत्वरजतम गुणोंके प्रवर्त्तक वा नियंता*, निराकार हैं। (अर्थात् मायिक पंचभौतिक शरीर वा आकृति आपकी नहीं हैं, वरंच आप शुद्ध चिदानंदमय आत्मस्वरूप देहीदेहविभागरहित शरीरधारी हैं) । ३ । आप तीन नेत्रवाले, कामदेवके नाशक, देवदेवमहादेव, अहंकाररूपी कुहरे वा पालेकेलिये उदय हुए सूर्य हैं

* 'गुण' इति। (१) सांख्यकार सत्व, रज, तम ये तीन गुण मानते हैं। इन्हींकी साम्यावस्थाको प्रकृति कहते हैं, जिससे सृष्टिका विकास होता है। वैशेषिकने गुणकी परिभाषा इस प्रकार की है। 'जो द्रव्यमें रहनेवाला हो, जिसमें कोई गुण न हों, जो संयोग विभागका कारण न हो, वह गुण है।' रूप, रस, गंध, स्पर्श, परत्व, अपरत्व, गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह और वेग ये मूर्त्त द्रव्योंके गुण हैं। द्रव्यत्व दो प्रकारका है। सांसिद्धिक और नैमित्तिक। बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, भावना और शब्द ये अमूर्त द्रव्योंके गुण हैं। संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग और विभाग ये मूर्त और अमूर्त दोनोंके गुण हैं। ये २६ गुण दो प्रकारके माने गये हैं। विशेष और सामान्य। द्रव्य स्वयं आश्रय हो सकता है, पर गुण स्वयं आश्रय नहीं हो सकता। कर्म संयोग विभागका कारण होता है, गुण नहीं। (श० सा०)। विशेष पद ५८ में लिखा गया है। (२) गुण दो प्रकारके हैं। नैसर्गिक और अर्जित। नैसर्गिक गुणोंमें शक्ति, शौर्य, धैर्य, सौंदर्य, सौहार्द, शील, उदारता, धार्मिकता, नीतिमत्व, क्षमा, दया, कुलीनता, स्वतंत्रता, आनंदमयता इत्यादि बड़े ऊँचे दर्जेके गुण हैं। अर्जित गुणोंमें तेज, दृढ़ता, चातुर्य, नम्रता, गंभीरता, विद्या, ऐश्वर्य, ज्ञान, धन, शरणपालकता इत्यादि गुण सर्वमान्य हैं। इन उपर्युक्त गुणोंके अनुसार आचरण करनेसेही कीर्ति, यश और पुण्यकी प्राप्ति होती है। 'निर्गुण गुणनायक' में विरोधाभास अलंकार है।

। ४ । जिनके ललाटपर सुंदर द्वितीयाका चन्द्रमा सुशोभित है, आप तीनों लोकोंके शोकोंको हरनेवाले, प्रमथों (आदि रुद्रागणों) के स्वामी हैं। ५ ।

टिप्पणी—१ (क) 'सेवहु सिव चरन सरोज रेनु' इति। चरणको कमल कहकर उसके परागके सेवनका आदेश देकर जनाया कि इन चरणोंके मधुकर बन जाओ। अपने मनको मधुकर रूपसे वहाँ बसा दो। मिलान कीजिये '**मुनि मन मधुप रहत जिन्ह छाये।**', '**मन मधुपहि पनु कै तुलसी रघुपतिपदकमल बसैहौं।**' (वि० १०५) ये सब भाव 'सेवहु' पदसे जनाये। (ख) यह उपदेश वसंतरागद्वारा अपने मनको कर रहे हैं। (ग) 'शिव' के सम्बन्धसे 'कल्यानप्रद' शब्द सार्थक है। 'शिव' का अर्थही है 'श्रेयस्कर'। '**सुमंगलं तस्य गृहे विराजते। शिवेति वर्णोर्भुवियो हि भाषत।**' जो 'शिव' ये अक्षर उच्चारण करते हैं उनके घरमें सब रहते हैं, अतः उन्हें कल्याणप्रद कहा। (घ) 'कल्यान अखिल प्रद कामधेनु' इति। यहाँ कामधेनुका रूपक देकर 'अखिल कल्याण' का अर्थ खोल दिया है कि अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष, इहलोक और परलोक, दोनों सुखोंकी दातृ हैं। यहां समअभेद रूपक हैं।

२ 'कर्प्पूर गोरं' से परमशान्त, योगीश्वररूप जनाया। पूर्व पद १० में 'देव कुंदेंदु कर्प्पूर दर गौर विग्रह रुचिर' और पद १२ में 'कंबु कुंदेंदु कर्प्पूर गौरं शिवं सुंदरं सच्चिदानंदकंदं' कहकर स्तुति की हैं। यहाँ 'कर्प्पूर गौर' मात्र कहकर कुंद, इंदु, दर और कंबु जो पद १० और १२ में कर्प्पूर और गौर शब्दोंके पहले आये हैं उन सब विशेषणोंकाभी ग्रहण यहाँ सूचित कर दिया है। कपूर शुद्धसत्त्व-स्वरूपकाभी बोधक है।

३ 'भुजगेंद्र हार' का भाव कि (क) शेषजी भगवान्‌के यशका कथन निरंतर करते हैं। आप वह यश सदा सुननेकेलिये उनको हृदयसे लगाये, गलेसे लपेटे रहते हैं। इससे परम भागवतका निरंतर संग दिखाया।

(ख) सर्प कुटिल होता है। उसको धारण करके जनाया कि आप कुटिलोंकेभी आश्रयदाता हैं। यह एक भाव 'बर बालनिसाकर मौलि

आज ' कामी है। (ग) यहाँ कोई एक नाम न देकर 'भुजगेंद्र' कहनेसे शेष, वासुकी आदि सभी बड़े बड़े सर्पराजोंकोभी जना दिया है। (घ) इससे विषपर विजयप्राप्ति और अहिंसा-मूर्त्तिभी जनाया। अहिंसावृत्तिसे त्याग हो जाता है। यदि ज़हरपर विजय हो जाय तो फिर सर्प तो बड़ेही सुंदर काले, चितले आदि रंगोके होते हैं। गलेमें 'टाई' (Tie) कीतरह उनका प्रयोग कौन बड़ी बात है? (लमगोड़ाजी)।

४ (क) 'सुख जन्मभूमि' इति। इस विशेषणसे आपको आनंद-मूर्ति, आनंदकंद, और दूसरोंकेलिये आनंद प्राप्तिके स्थान जनाया। ध्वनित भावार्थ यहभी है कि आपसे जो विमुख हैं उनको सुख नसीबभी नहीं हो सकता। यथा '**जिमि सुख लहै न संकर द्रोही।**' (ख) 'निर्गुन गुननायक' कहकर 'निराकार' कहनेका भाव यह है कि निर्गुण होते हुएभी सृष्टिकार्य लोकसंग्रहहेतु जब जैसी आवश्यकता होती है आप अपनी मायासे सत्व रज तम गुणोंको धारण कर लेते हैं और निराकार होते हुएभी आप भक्तभावन ऐसे हैं कि भक्तोंकी भावनाकेलिये आप गुणद्वारा रूपकी कल्पना कर लेते हैं। फिरभी आप परम शांत आनंदस्वरूपही बने रहते हैं। (ग) 'सुख' की जन्मभूमि कहनेमें 'द्वितीयनिदर्शना' अलंकार है।

५ (क) 'त्रयनयन'। इंदु, पावक, भानु ये तीन नेत्र हैं। इन तीनों नेत्रोंका भाव यहभी है कि शिवजी चंद्रके समान जगदानंददायक, अग्निसमान रागादि दोषों एवं त्रयतापोंके नाशक और सूर्यसमान तमोनाशक हैं। विशेष पद १०, ११, १२, में देखिये। (ख) 'त्रयनयन' कहकर 'मर्दन मयन' कहनेका भाव कि इसी तीसरे नेत्रसे आपने कामदेवका नाश किया। अग्नि वैराग्यका चिन्ह है। इससे परम विरक्त ब्रह्मचारी और इन्द्रियजित् जनाया। कामदेवको बलका गर्व था। उसे जीता, अतः 'महेश' कहा। महेश्वररूप संहारक है। संहार करनेके कारण 'महेश' पद दिया। (ग) भगवान् शंकर तत्पुरुष एवं ईशानरूपसे निग्रह एवं अनुग्रहरूप कार्य करते हैं। व्यष्टिदृष्टिसे

इन (निग्रह अनुग्रह) कृतियोंके अन्तर्गत मदनमर्दन, त्रिपुरमर्दन और वरदानादि दिव्य चरित्र आ जाते हैं।

६ 'अहंकार निहार उदित दिनेस' इति। लीला अभिनयमें एकपाद विभूतिमें 'अहंकार' आपका स्वरूप है। यथा 'अहंकार सिव' (लं०) पर वस्तुतः आप दूसरोंके अहंकारके सहजही नाशक हैं। आपके पास तो अहंकार फटकही नहीं सकता। जैसे सुर्योदयसे कुहरा रहता नहीं और न उसकी यहाँ तक पहुँचही है। यहाँ 'समअभेदरूपक' है। शिवजी अहंकारके नाशक हैं तब उनको तमोगुणी कहना अयोग्य है। वे तो तमोगुणके नियंता हैं, अधिष्ठाता हैं। अहंकारसे सृष्टिकी उत्पत्ति होती है। आप उसके नाशक अर्थात् संहार देवता है। अतः 'मयनमर्दन' कहकर 'अहंकार' कहा।

श्रीलमगोड़ाजी लिखते हैं कि "देखिये न! तमोगुणके नियंता होनेहीसे तो हलाहलपर नियमन है। तमोगुण और तमोगुणके नियंताका अंतर सदा याद रखना चाहिये, नहीं तो शंकरजीकी मूर्ति और कीर्तिके समझनेमें भ्रमका भय है।"

७ (क) 'बर बाल निसाकर मौलि भ्राज' इति। चंद्रमाकी कलाको शीशपर धारण किये जानेसे उसे 'बर' विशेषण दिया। वह भगवान् शंकरके शीशके संबंधहीसे वंदनीय हुआ है। यथा, 'यमाश्रितोहि वक्रोऽपि चंद्रः सर्वत्र वंद्यते' (बा० मं०), 'द्वैज न चंदा देखिये उदय कहा भरि पाख'। (दोहा०)। पूर्ण चंद्र कलंकित है। 'दिन मलीन सकलंक' (बा०), 'ससि गुरुतिय-गामी०' (अ०)। द्वैजचन्द्र कलंकरहित माना जाता है। शंकराश्रित होनेसे गुरुतल्पगामी होनेका कलंक लोग चित्तमें नहीं लाते। पद ११ 'ललित लल्लाट पर राज रजनीस कल' में देखिये। (ख) 'त्रैलोक सोकहर' कहकर कालकूटपान और त्रिपुरासुरवधकी कथा सूचित कर दी। दोनोंसे त्रैलोक्य पीड़ित था। 'त्रैलोक सोकहर' के साथ 'प्रमथराज' कहनेका भाव कि इन्हीं गुणोंद्वारा आप लोकका शोक

हर लेते हैं। आप कुटिल प्रेतगणोंके स्वामी होते हुएभी संसारका कल्याण करते हैं।

पं० देवदत्तशर्माजी कहते हैं कि 'पाँच पदोंद्वारा शिवजीकी चरणरज सेवन करनेका अभिमत प्रदान किया है। इन पाँचों पदोंके एक एक वाक्य अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखते हुए परस्पर '**सूत्रेमणिगणा इव**' केसे ओतप्रोत हैं। सभी वाक्य और पद रहस्य एवं अभिप्राययुक्त हैं। इन पाँचों पदोंकी समष्टि पंचाननशिवको इंगित कर रही है। ये पद '**ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं**' इस प्रसिद्ध स्तुतिको स्मरण कर शायद लिखे गये हों। किन्तु इनमें गोस्वामीजीकी अनोखी सूझबूझ और मौलिकताका पुट बड़ीही पटुता और बारीकीसे सन्निविष्ट है। पंचानन शिवकी सभी शक्तियाँ, उनकी सभी खूबियाँ पंचीकरणन्यायसे प्रतिपादित हैं।'

अनुसंधान (१३)

जिन्ह कहुं बिधि सुगति न लिखी भाल।
तिन्ह की[३] गति कासीपति कृपाल॥ ६॥
उपकारीको पर हर समान।
सुर असुर जरत कृत गरल पान॥ ७॥
बहु कल्प उपाया[४] करि अनेकु।
बिनु संभुकृपा नहिं भो[५] बिबेकु॥ ८॥

---

३ कहं—प्र०। ४ उपाया करि अनेकु—६६, रा०, ज०। उपाय करिय अनेक—ह०, भ०, दी०, मु०, ७४, टी०। उपाय करी अनेकु—भा०, बे०। उपायन करि अनेकु—५१, शि०, वै०, बक्सर, वि०। उपाई नर कर अनेकु—१५। उपाय करिये अनेकु—प्र०। ५ भो—६६, ज०। भे—रा०। भौ—डु०, ह०। भव—भा०, बे०, प्र०, ५१, ७४, मु०, ६९, वै०, वि०, भ०, दी०। 'भो' पाठ प्राचीनतम है। कयी पोथियोंमें यह या उसका कुछ रूपान्तर (भों, भौ) मिलताभी है

विज्ञानभवन　　गिरिसुतारमन[६]।
कह[७] तुलसिदास मम त्रास समन ॥ ९ ॥

शब्दार्थ—जिन्ह कहुँ = जिनकेलिये, जिनके। गति = अंतिम उपाय। यथा 'तुम्हहिं छाँड़ि गति दूसरि नाहीं। बसहु राम तिन्हके मनमाहीं ॥' (अ०) तिन्हकी गति = उनको शरण देनेवाले। पर = दूसरा, पराये या दूसरेका। यहाँ दोनों अर्थ हैं। उपाया = उपाय, साधन, तदबीर। यथा 'कहहि करहु किन कोटि उपाया। यहाँ न लागी राउरि माया ॥' (अ०), 'मुधा भेद जद्यपि कृत माया। बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया ॥' (उ०) यह 'उपाय' का बहुवचन है। अर्थ न समझनेसे लोगोंने पाठ बदल दिया है। भो = भया, हुआ। यथा 'रघुकुलकैरव चंद भो, आनंद सुधा को' (१५२) त्रास = भय, साँसति। समन = नाश करनेवाले।

पद्यार्थः—जिनके ललाटपर ब्रह्माजीने सद्गति नहीं लिखी उनकी गति दयालु काशीपति हैं। ६। हरके समान परोपकार करनेवाला दूसरा कौन है? अर्थात् कोई नहीं। (देखिये, विषकी विषमज्वालासे) जलते हुए देवताओं और (की रक्षा) दैत्योंकेलिये वे विष पी गये। ७। अगणित कल्पोंतक अनेक उपाय करनेपरभी बिना शंभुकी कृपाके विवेक नहीं होता* और न हुआ है। ८। तुलसीदासजी कहते

और अर्थभी बैठ जाता है। ६ रमन—६६, रा०, ज०, भ०, ६०, मु०, वै०, दी०। रवन—भा०, वे०, ५१, प्र०, १५। ७ कहि—६६। पद १४ मेंभी 'कहि' है। अतएव लेखकको प्रमाद कहनेमें संकोच होता है। परन्तु इसका प्रयोग मेरी समझमें नहीं आया। कहै—प्र०। कह—प्रायः औरोंमें।

* 'भव विवेकु' पाठका अर्थ होगा 'संसारका ज्ञान'। संसारका ज्ञान क्या है? यह पद १८८ में बताया है। यथा 'मैं तोहि अब जान्यो संसार। देखत ही कमनीय कछू नाहिन पुनि किये विचार। ज्यों कदली तरु मध्य निहारत कबहुं न निकरे सार।' संसार देखने-मात्रका सुन्दर है, रमणीय है। पर विचार करनेपर इसमें कुछ सार नहीं है।

हैं कि विज्ञानधाम गिरिजापति मेरे त्रासके नाशक हैं। ९।

'सेवहु' के दो अर्थ उपर दिये गये। दोनोंका भाव यहाँ है। चरणरजका पूजन करो, मस्तकपर लगाओ, शरीरमें लगाओ, नेत्रोंमें लगाओ इत्यादि सब भाव यहाँ दर्शाये हैं।

टिप्पणीः-८ 'जिन्ह कहुं बिधि सुगति न लिखी भाल' इति। इससे जनाया कि विधाताके अंक अर्थात् उनके लिखे एवं किये हुएकोभी मेट देनेको शिवजी समर्थ हैं। यथा 'भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी।' (बा०), 'जिन्ह के भाल लिखी लिपि मेरी सुखकी नहीं निसानी। तिन्ह रँकन्ह को नाक सवाँरत हौं आयो नकबानी। पद ५ के सब भाव इसमें कह दिये गये। शिवजी ब्रह्माके अधिकारमें क्यों खलेल डालते हैं इसका कारण दूसरे चरणमें बताते हैं कि वे काशीके पति हैं जहाँ मुक्तिका दान निरंतर होताही रहता है और कृपाल हैं। 'देख न सकत दीन कर जोरें।' अतएव वे उन अभागोंकोभी सुख, संपत्ति, सद्गति दे डालते हैं।

९ (क) 'उपकारी को पर हर समान' इति। कोई कोई 'को पर' का 'कोऽपर' इस प्रकार पदच्छेद करते हैं। परंतु ऐसा करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। 'उपकारीको पर' कहकर उसका प्रमाण आगे देते हैं कि उससमय ब्रह्मा, विष्णु सभी वहाँ उपस्थित थे। पर त्रैलोक्यका शोक किसीने हरण नहीं किया। साधारण बात कहकर विशेषसे समर्थन करना 'अर्थान्तरन्यास अलंकार' है।

(ख) 'सुर असुर जरत कृत गरल पान' इति। पद ३ मेंभी 'काल कूटजर जरत सुरासुर निज पन लागि कियो बिषपान' कहा है। परंतु पद ११ में 'जरत सुर असुर नर लोक शोकाकुलं मृदुलचित कृत गरल पानं' कहकर नरलोककाभी जलना जनाया है। पयसिंधुमंथनमें देवता और दैत्योंने भाग लिया। इसलिये उन दोनोंका जलना कहा। पद ११ में विषकी विषमता कही कि सुरलोक, असुरलोक और नरलोकमें उसकी झार फैल गयी थी जिससे लोग जल

रहे थे। मनुष्योंको न कहा क्योंकि जब सुरासुरही जल रहे थे तब मनुष्य किस गिनतीमें हैं !

१० (क) 'बहु कल्प उपाया करि अनेकु' इति। 'यह गुन साधन ते नहिं होई। तुम्हरि कृपा पाव कोई कोई।' विवेकका होना यह गुण कृपासाध्य है, पुरुषार्थसाध्य नहीं है। अनेक उपाय अर्थात् योग, तप, यज्ञ, जप आदि साधन जो शास्त्रोंमें कहे गये हैं शिवजीकी कृपासे साध्य होते हैं। (ख) 'संभु कृपा' का भाव कि 'शं' (कल्याण) की 'भु' (जन्मभूमि), कल्याणके उत्पत्तिस्थान आपही हैं और कल्याण विवेकसे होता है। अतः सिद्ध हुआ कि शंभुही विवेकके देनेवाले हैं। (ग) मानसमें कहा है कि 'बिनु सत्संग बिवेक न होई। रामकृपा बिनु सुलभ न सोई॥' यहाँ कहते हैं कि 'बिनु संभुकृपा नहिं भो विवेकु।' यह दोनों बातें कैसे एकसाथ घटित हो सकती हैं? इसका उत्तर यह है कि इसमें शंकाकी कोई बात नहीं है। शिवजी भागवत शिरोमणि हैं। 'वैष्णवानां यथा शंभुः।' कहाही है। भक्त और भगवान्में अभेद है। यथा, 'संत भगवंत अंतर निरंतर नहिं किमपि कह बिमल मति दास तुलसी।' 'भक्ति भक्त भगवंत गुरु चतुर नाम बपु एक।' (भक्तमाल श्रीनाभाजीकृत) दूसरे शिवरूप रामजीकाही एक रूपान्तर हैं। पद ११ में 'रामरूपी रुद्र' कहाही है। श्रीरामजीका नाम 'शिव' भी है।

११ विज्ञानभवन अर्थात् विज्ञानका निवासस्थान वा घर आपही हैं। अतः यह अन्यत्र नहीं प्राप्त हो सकता। आपसेही मिल सकता है। गिरिसुतारमण होनेसे परोपकार परायण रहते हैं। इसीसे स्वयं कृपा करके विज्ञान देकर भवत्रासका नाश करेंगेही।

प्रारंभमें 'सेवहु सिवचरन रेनु' कहकर फिर सेवाका कारण बताया कि वह चरणरेणु 'अखिल कल्याणप्रद' हैं। कैसे जानें कि वह रज अखिल कल्याणका दाता है? इसकेलिये शिवजीकी करुणा, उदारता, दया, सामर्थ्य और वात्सल्य आदि दिव्य गुणोंको कहते हुए अन्तमें

कविने यहभी कह दिया कि 'मम त्रास समन' अर्थात् हमारे दुःखोका उन्होंने नाश किया है। यह सब शिवचरणरजसेवनसे हुआ। जो ऐसे महान् देव हैं, उनके चरणरजमें समस्त कल्याणके दातृत्वकी शक्ति होनेमें आश्चर्यही क्या है? अतएव '**सेवहु सिव चरन सरोज रेनु।**' कहा है। इसी एक साधनसे विवेक, विज्ञान आदि सब कुछ प्राप्त हो जायगा।

१२ शिवजीके विशेषणोंके विशेष आध्यात्मिक भाव—(क) 'शिव' इति जगत्स्रष्टा परमात्माका नाम 'शिव' है। इसका अर्थ 'कल्याण करनेवाला' है। जब कल्याण करनेवाला पदार्थोंका विचार करते हैं तब वही शिवतर हो जाता है। सारे ब्रह्मांडमें वही सबसे अधिक सुख और शांति देनेवाला है। इस कारणसे ऋषि उसे शिवतम कहते हैं। इन विशेषणोंसे शिवतर और शिवतमकी व्याख्या यहाँ सूचित की।

(ख) 'कर्प्पूर गौरं' इति'। वे कर्प्पूर गौर हैं अर्थात् सभी सत्त्व-गुण उसी 'शिवतत्व' से प्रकट होते हैं। सत्त्वगुण स्वच्छ प्रकाशमय है। शिवमें जो दोषरहित तत्व हैं वही गौरवर्णता है। कुछ लोग कहते हैं कि दयालु परमात्माके रूप रंग हिन्दूधर्म ग्रन्थोंमें क्यों लिखे हुये हैं? विद्वान् उनका यह तात्पर्य बतलाते हैं।

(ग) 'भुजगेंद्रहार' इति। 'साँपके दो जीभें होती हैं। चुग़लख़ोर भी द्विजिह्व होते हैं। उन्हेंभी वे गर्दनका हार बना लेते हैं। पिता अपने बुरे लड़केकोभी अपनेमें लिपटाये रखता है। सर्पमालाका यही भाव शास्त्रसम्मत है। पाप और विषमें भेद नहीं। वह सबके दोषोंको, विषको पी जाता है, क्षमा कर देता है। इसीसे गरल पान करनेवाला समझा जाता है।

(घ) 'करुणा उदार' 'त्रैलोक शोकहर' इति। कर्मफल देनेके-लिये सृष्टि होती है। उसमें जीव नाना प्रकारके दुःख भोगते हैं। उससे सबका छुटकारा केवल प्रलयमें होता है। वह माता पिताके समान सबको सुला देता है। यह परमात्माकी बड़ी कृपा है। कोई कोई इस भावसेभी उसे शिव 'सुलानेवाला' कहते हैं। उससमय

किसीको तनिक कष्ट नहीं होता। वह सबके दुःखोंको हर लेता है। अतएव 'हर' है। दुःखोंका हरण करनेवाला है। जिनको इस करुणाका ज्ञान नहीं है वे इस दुःखमोचन कार्यको तमोगुण कहते हैं। (प्रो० पं० श्री सकलनारायण शर्मा)

(ङ) 'त्रयनयन' इति। 'वह भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालोंकी बातोंको जानता है। इसीसे त्रिनयन कहलाता है। 'विद्युत्' (बिजली) शिवका प्रहरण (प्रहार करनेका साधन) है। शिवजीने त्रिपुर और मदनका दहन इसीसे किया था। शिवके तीसरे नेत्रसे विद्युत्प्रवाह निर्गत होता है। जब अजेय शत्रुओंका संहार करना होता है तब आप उस नेत्रको खोलते हैं; मानों वर्तमान समयके विज्ञानकी विद्युत् बॅटरी तीसरा नेत्र है। संहारकारी अवसरोंमें उक्त बिजलीको शूलाग्रमें नियुक्त करके भी आपने कई बार प्रहार किया है।' (पं० श्रीहनूमानशर्माजी)

'वामदेव', 'सुखजन्मभूमि', 'काशीपति' के विशेष जीवनी-सम्बन्धी भाव पद १४ 'शिवस्तुति' शीर्षक (टिप्पणी १०) में देखिये।

१४ [५] रागु बसंत

देखो देखो[१] बनु[२] बन्यो आजु उमाकंत।
मनो[३] देखन तुम्हहिं[४] आई रितु बसंत ॥१॥
मानो[५] तनु दुति चंपक कुसुम माल।
बर बसन नील नूतन तमाल ॥२॥
कल कदलि जंघ पद कमल लाल।
सूचति[*] कटि केहरि[६] गति मराल ॥३॥

---

१ 'देखो' ७४ में एक बार हैं। २ बनु बन्यो—६६, रा०; ५१, ७४, आ०। बन्यो बन—भा०, बे०, प्र०। ३ मनो—६६, डु०, भ०, दी०। मानो—रा०, भा०, बे०, ह०, प्र०, १५, वै०, मु०, वि। मानहुं—५१। जनु—७४। ४ तिनहिं—दी०। यह पाठ हमें किसी पोथीमें देखनेमें नहीं आया। ७४ में नहीं है। ५ मानो—६६, रा०, ज०, ५१, वै०। मनु—७४, डु०। मनों—भ०, दी०। जनु—भा०, बे०, प्र० ह०, १५, वि०, मु। * ६६ में 'सोचति' पाठ है। यदि इसे ठीक मानें तो अर्थ होगा कि सोचमें पड़ जाती है।

भूषन प्रसून बहु बिबिध रंग।
नूपुर किंकिनि कलरव बिहंग ॥४॥

शब्दार्थः—बन्यो = बनाठना है; शोभित है। रितु (ऋतु) = प्राकृतिक अवस्थाओंके अनुसार वर्षके दो दो महीनेके छः विभाग। १ बसन्त (चैत वैशाख), २ ग्रीष्म (ज्येष्ठ आषाढ़), ३ वर्षा (श्रावण भादों), ४ शरद् (आश्विन कार्त्तिक), ५ हेमंत (अगहन पौष) और ६ शिशिर (माघ फाल्गुन)। प्राचीन वैदिक कालमें बसन्त चैत और वैशाखहीमें पड़ता था। पर क्रमशः अयनके खिसकनेसे आजकल प्रकृतिमें कुछ अन्तर दिखाई पड़ता है, इसीसे पीछेके कुछ ग्रंथोंमें फाल्गुन और चैतके महीने बसन्त ऋतुमें कहे गये हैं। काव्य आदिमें परंपरा अनुसार अबतक चैत और वैशाखही इसके महीने माने जाते हैं। बसन्तके लक्षण ये कहे गये हैं कि पेड़ोंमें फूल लगना, नयी पत्तियां आना, त्रिविध वायु चलना, सायंकाल अत्यन्त मनोरम होना और स्त्री पुरुषोंका उमंगसे भरना। इस ऋतुमें प्राचीन कालमें बसन्तोत्सव और मदनपूजा होती थी। आजकल होलीका उत्सव उसकी परंपरा है। पुराणोंमें इस ऋतुका अधिष्ठाता देवता कामदेवका सहचर कहा गया है। (श० सा०) वैद्यकमें ऋतुका संचार एक मास पूर्वसेही माना जाता है। इसीसे उसमें बसंतऋतु फाल्गुन और चैत मासमें कहा गया। यह प्रधान और प्रथम ऋतु है। 'मनो, मानो' = जैसे, गोया, ऐसा जान पड़ता है कि। चंपक=एक मँझोले कदका पेड़ जिसमें हलके पीले रंगके फूल लगते हैं। इन फूलोंमें बड़ी तीव्र सुगंध होती है। माल=माला। यथा **'खसी माल मूरति मुसकानी'**। (बा.) पंक्ति, समूह। यथा, **'पावन गंग तरंग मालसे'** (बा०) **'बालधी बिसाल बिकराल ज्वालमाल लंक लीलबेको काल रसना पसारी है।'** (क०) 'कुसुम=फूल। बसन नील=नीले रंगका वस्त्र, नीलांबर, नीले रंगकी साड़ी। नूतन=नया। तमाल = यहाँ श्याम

(मेरी कटि ऐसी सुन्दर और पतली नहीं है।) सूचति–ह०, दी०। सूचत–रा०, भा०, बे०, प्र०, ज०, भ०, वि०। सूचक–शि०, मु०, ७४, डु०, वै०, ५१। ७ केसरि—रा०, डु०, मु०। केसरी–वि०।

तमालवृक्ष अभिप्रेत है जिसकी लकड़ी आबनूसकीसी काली होती है। इसमें गहरे हरे पत्ते (शरीफेकेसे) और सफेद बड़े फूल होते हैं। जंघ=जंघा, जांघ, रान, घुटने और कमरके बीचका अंग। सूचत=सूचना देती, बतलाती वा जनाती है। यथा 'हृदय अनुग्रह इंदु प्रकासा। सूचत किरन मनोहर हासा।' (बा०) कटि=कमर। केहरि=सिंह। गति=चाल। मराल=हंस। प्रसून=फूल। नूपुर=घूँघरू, पाज़ेब। कींकिनि=कटिसूत्र, करधनी। कलरव=सुन्दर शब्द, चहचहाहट।

पद्यार्थः—हे उमाके कंत (पति)! देखिये, देखिये, आज बन (कैसा) बना ठना है? शोभित है? *ऐसा जान पड़ता है कि मानो तुम्हें देखनेको बसंतऋतु आयी है।१। (अब बसंतऋतुका वर्णन स्त्रीके रूपकसे कहते हैं।) चंपाके फूलोंका समूहही मानो उसके तनकी द्युति है। नवीन तमाल वृक्ष (मानो उसके गोरे शरीरपरका) उत्तम सुंदर नीला वस्त्र अर्थात् साड़ी है।२। सुंदर केले जंघाएँ हैं। लाल कमल (लाल तलवेवाले)

---

*बाबू शिवप्रकाशजी, श्री बैजनाथजी और भट्टजीने भिन्न भिन्न अर्थ किये हैं। उनके बादके टीकाकारोंने प्रायः उन्हीं तीनोंमेंसे एक न एकका अनुकरण किया है। अर्थ ये हैं कि १ 'आज उमाकंत बनको रूप बन्यो है ताको देखो'। यहां अपने मनको दिखाते हैं। 'कैसो बन बने हो आप हे शिवजी कि।' (ङु०, टी०) आज उमाकंत बनका रूप बने हैं। २ 'हे शिवजी! देखिये, देखिये। आज बन उमाकंत बना है। भाव कि जैसे आप पार्वतीजीको अर्धांगमें मिलाये हैं वैसेही बन बसन्त-ऋतुको अर्धांगमें मिलाये हैं।' (वै०) ३ 'हे शिवजी! देखो देखो, आज तुम बन बने हो। तुम्हारे अर्धांगमें पार्वती क्या हैं मानों वसन्तऋतु तुम्हें देखनेको आयी है।' (भ०, वि०) इस प्रकार वै०, भ०, वि० 'शिवजीसे देखने'को कहना मानते हैं, और ङु, वीर, दीनजी मन या नेत्रोंसे देखनेको कहना मानते हैं। इनमेंसे वीरजीका पाठ है कि 'देखो बन बने आज उमाकंत। जनु पेखन आयी रितु बसंत।' इन्होंने 'तुम्हहि' शब्द उड़ा दिया जो अपने अभिप्रेत अर्थमें अड़-चन डालता था। दीनजीने 'तुम्हहिं' की जगह 'तिनहिं' पाठ रक्खा है।

चरण हैं। कटि सिंहकी और चाल हंसकी सूचना दे रही है। केहरि-कटि कटि है और हंसकी गति उसकी गति है।३। भाँति भाँतिके रंगोंके बहुतसे फूलही उसके आभूषण हैं। (मधुर सुरीले) सुन्दर शब्दवाले पक्षी पाजेब और क्षुद्र घंटिका (करधनी) हैं।४।

प्राय: समस्त टीकाकारोंने यहां बाबू शिवप्रकाशजी और बैजनाथजीके मतका अनुसरण किया है। बाबू शिवप्रकाशजी लिखते हैं कि इस पदमें गोस्वामीजी शिवजीके अंगको बनरूपसे कहते हैं। कैसा बन है और कैसा शिवशरीर है यह आगे कहते हैं। श्रीपार्वतीजी अर्धांगमें बैठी हैं।

श्रीबैजनाथजी लिखते हैं कि यहांतक शिवजीका यश, कीर्ति और प्रताप आदि गुण गाकर अपनी याचकता जनायी। मनको चरण-सेवनका उपदेश कर अपनी चरणसेवकता दरशायी। अब पार्वतीयुतं जो अर्धांग है उसकी शोभा कहना चाहते हैं। शिवजीकी शोभा पूर्व कहही चुके। अब केवल पार्वतीजीके सर्वांगकी शोभा कहना चाहते हैं। पर जगत्मातुकी शोभा कैसे कह सके? इस हेतु 'अतिशयोक्तिरूपक' अलंकारमें कहते हैं। उपमानकी शोभा वर्णन कर उपमेयका बोध करते हैं। बनको उपमान कहकर शिवजीको उपमेय सूचित करते हैं फिर उसी बनके अर्धांगमें वसन्तकी सर्वांग शोभा उपमान कहकर पार्वतीजीके सर्वांगकी शोभा सूचित करते हैं। बन उमाकंत बना है। वसन्तऋतुको अर्धांगमें मिलाये और दिगंबर, उदासीन, तपसी, परोपकार, उदारतादि गुण धारण किये हुए बन आपका रूप बना है। वहाँ वसन्त ऋतु आपको देखने आयी है। देखिये मेरी शोभा बनके अर्धांगमें वैसीही सर्वांग परिपूर्ण है जैसी गिरजाकी शोभा शिवजीके अर्धांगमें है।

लाला श्रीभगवान्दीनजी लिखते हैं कि गत ११ पदोंमें शिव-जीके कीर्त्ति, यश, और प्रताप गुणोंका वर्णन करके अब इस अंतिम पदमें गोसाईंजी युक्तिसे शिवजीके माधुर्यगुणका वर्णन करनेकेलिये उनके अर्द्धनारीनटेश्वररूपका आश्रय लेते हैं। जगदाधार शिवके

साथ प्रकृतिरूपा जगदंबा पार्वतीका वर्णनभी ज़रूरी है। रूपक और उत्प्रेक्षा अलंकारोंकी ऐसी सुंदर संसृष्टि करनाभी गोसाईंजीकाही कार्य है। इस पदमें शिवजीको वन और पार्वतीजीको वसन्तऋतुका रूपक दिया है। जैसे बन आधार और बसन्तऋतु आधेय होते हैं, वैसेही शिव आधार और पार्वतीजी आधेय हैं। जैसे बसन्तऋतु बनसे भिन्न अस्तित्व नहीं रखती, केवल अपने प्रभावसे बनमेंही प्रगट दिखायी पड़ती है, वैसेही अर्धांगरूपमें पार्वतीका अस्तित्व शिवमें तल्लीन रहता है। गोसाईंजीने कवितामेंभी 'पार्वती' शब्दको प्रगट न कर उसका सन्निवेश 'उमाकंत' शब्दमें रखा है और उपमानोंद्वारा लक्षित किया है। रूपक अलंकारमें ऐसी बारीकी रखनाभी इन्हीं गोसाईंजीका कार्य है। इस पदकी साहित्यिक खूबियोंको मनन करनेमेंही आनन्द आता है, लिख नहीं सकते। गोस्वामीजी कल्पनाजगत्में प्रवेश करके, शिवजीकी अर्द्धनारीनटेश्वररूपकी झाँकी देख चकित होकर अपने दोनों नेत्रोंसे कहते हैं कि यह सुन्दर रूप देखकर कृतार्थ हो जाओ। ऐसा न हो कि यह झाँकी कल्पनासे निकल जाय।

वीरकविजी लिखते हैं कि शिवजी और बन, पार्वतीजी और बसन्तऋतु परस्पर उपमेय और उपमान हैं। बनमें बसन्तकी बहार दृष्टिगोचर होती है। वियोगीजीकाभी यही मत है। वे लिखते हैं कि इसपदमें अर्धनारीनटेश्वरका वर्णन बन और बसन्तके रूपकमें किया गया है। शिवजीका वर्णन तो पहलेही गोसाईंजी कर चुके हैं, पार्वतीजीका नहीं किया था। जगज्जननि पार्वतीजीका नखशिखवर्णन स्पष्टरूपमें अनुचित प्रतीत होनेपर गोसाईंजीको यह अनूठा रूपक सूझा होगा। कुमारसंभव प्रणेता कालिदासने मर्यादाका उल्लंघन कर दिया है पर भक्तश्रेष्ठ गोसाईंजीने मर्यादाभावका भलीभाँति निर्वाह किया है।

पं० सूर्यदीन शुक्लजी लिखते हैं कि जगन्मायाकी जगद्रचना बसन्तऋतुमें अतिशय, हरीभरी, प्रफुल्लित होती है। इस ऋतुका साज-समाजसे दर्शनही मानों प्रकृति माताकी सौंदर्यछटाका ध्यान करना है। सर्व प्रेरक उदासीन जगत्प्रभु (जंगल अमृत) बनरूप है। जैसे शिव

स्वाधीन व स्वयं एकरस रहते है, वैसेही वन है। वसन्तऋतुका वनमें विशेषरूपसे संघट्ट होनाही प्रकृतिमाताका जगत्प्रभुके साथ मिलाप है। यह अर्द्धनारीश्वर शिवपार्वतीका ध्यान है।

उपर्युक्त उद्धरणोंसे स्पष्ट है कि इन सभी पूज्य श्रद्धेय टीकाकारोंने इस पदमें शिवजीके अर्द्धनारीनटेश्वर गौरीशंकररूपकी वंदना होना माना है और इसीसे उन्होंने श्रीपार्वतीजीका वसन्तसे रूपक बाँधा है। इसमें संदेह नहीं कि सर्वमत उत्तम होता है और फिर धुरंधर साहित्यिकोंका मत! वह तो अकाट्य है।

परन्तु इस मतके ग्रहण करनेमें बड़ी भारी अड़चन यह है कि ऐसा करना कविको अभिप्रेत कैसे हो सकता है? ऐसा विचार तो उनके भावके सर्वथा प्रतिकूल होगा। उन्होंने जगज्जननियोंका नखशिख अपने मुखसे कहीं नहीं वर्णन किया। माताके अंगोंका वर्णन पुत्र कैसे करेगा? यथा,
'जगतमातु पितु संभु भवानी। तेहि सिंगार न कहउँ बखानी॥'
'सिय सोभा नहि जाइ बखानी। जगदंबिकारूप गुनखानी॥'

जगजननी भवानीके नखशिखका वर्णन जगत्पिता शंकरजीही कर सकते हैं, दूसरेको अधिकार कहां? अतएव दासकी क्षुद्रबुद्धिमें तो यही आता है कि यहां वसंतको एक नायिकाके रूपमें वर्णन करके उसके मित्र नायक कामदेवसे रक्षा करनेकी प्रार्थना कामारि शिवजीसे की जा रही है। यहाँ वसंतनायिका 'देखने' आयी है। बसंत कामका उद्दीपक, सहायक है। यथा, 'देखि सहाय मदन हरषाना। कीन्हेसी पुनि प्रपंच बिधि नाना॥' (बा०) शिवजी कामरिपु हैं। अतः वसंतका ललकारना अंतमें कहते हुए 'उरबसि प्रपंच रचे पंच-बान।' कहा है। कामदेवसे रक्षा किये जानेकी प्रार्थना करना युक्तियुक्त है। जगजननीका नखशिखवर्णन करके उससे अपनेमें कामोद्दीपन कहना घोर अनुचित, अन्याय और पाप है। यहाँ केवल शिववंदना है। श्रीपार्वतीजीकी वंदना इसके बाद चौथे द्वारपर जहां वे स्थित हैं, की गयी है। 'देखो देखो बनु बन्यो आजु उमाकंत। मनो देखन तुम्हहिं आई रितु बसंत।' यहाँ 'उमाकंत' सम्बोधन है। उत्तरा-

र्धका ‘ तुम्हहिं ’ भी यही सिद्ध करता है । उपक्रममें यहाँ ‘ उमाकंत ’ संबोधन है । इसकी पुष्टि आगे ‘ सुनि सिव सुजान ’ सेभी होती है । सिव उपसंहार है । उपक्रम उपसंहार एकही हैं । वसंतऋतु देखने आयी है यह कहकर आगे उसीकी शोभा वर्णन करते हैं ।

गीतावलीमेंभी एकपद है जिसका प्रारंभ लगभग इसी प्रकारका है । अंतमें वहाँभी कामके प्रपंचके विषयमें कहा है कि जिसकी रक्षा श्रीरामजीने की उसीको कामदेवने छोड़ा । वैसेही यहाँ अंतमें कामरिपुसे प्रार्थना है कि आपही इसके प्रपंचसे बचा सकते हैं । मिलानकेलिये उस पदके प्रारंभ और अंतके तुक हम यहाँ उद्धृत करते हैं । **‘ आज बनो है बिपिन देखो रामधीर । मानों खेलतफागु मुद मदन बीर ॥ १ ॥ क्रीड़त जीते सुर नर असुर नाग । हठि सिद्ध मुनिन्हके पंथ लाग ॥ ८ ॥ कह तुलसिदास तेहि छांडि मयन । जेहि राखि राम राजीवनयन ॥ ९ ॥** पुनश्च **‘ रितुपति आयो भलो बन्यो बन समाजु । मानो भये हैं मदन महाराज आजु ॥ १ ॥ तिनकी न काम सकै चापि छाँह । तुलसी जे बसहिं रघुबीर बांह ॥ ११ ॥**

अर्द्धनारीश्वर रूपकी बंदना पद १० में है । **‘ भस्मसर्व्वांगर्द्धांग-सैलात्मज ’** । यह अर्द्धनारीश्वर स्वरूपकाही ध्यान है ।

श्रीअवधके रामायणी संतोकाभी यही मत है । श्रीयुत राजारामशरणजी (पं० राजबहादुर लमगोड़ा, ऐडवोकेट, फतेहपुर) ने ‘ मानसमणि ’ में विनयके इस पदकी यह टिप्पणी देखकर लिखा है, ‘ मैंने उपर्युक्त व्याख्यापर विचार किया और व्याख्याकारसे बातचीतभी की । मैं उनसे पूरे तौरसे सहमत हूँ । वसन्तको नायिकारूपमें तुलसीदासजीने मानसमेंभी लिखा है । यथा, **‘ भूप बाग बर देखेउ जाई । जहं बसंत रितु रही लोभाई ॥ ’** वे पुनः लिखते हैं कि तुलसीदासजीने मर्यादाका बहुत पालन किया है। अगर नायिका बसंत न होती तो वे इतना विस्तारसे शृङ्गार न बाँधते और उसीप्रकार केवल संकेतात्मक रखते जैसे सीताहरणपर रामविलापमें है । ’ स्मरण रहे वह वर्णनभी जगत्पिता श्रीरामके मुखका है, न कि तुलसीदासका ।

पं० श्रीदेवदत्त शर्माजीनेभी दासके टिप्पणीको देखकर अपना सम्मत इस प्रकार लिखा है कि निस्सन्देह आपने बसन्तके नायिकाके रूपकको प्रगट करके टीकाकारोंकी आँखें खोल दी हैं। भविष्यकी पीढियोंको अज्ञान गर्तमें गिरनेसे बचाया। मैं आपके इस अभिनव अभिप्रायका समर्थक हूँ। यदि समय और स्थान होता तो सप्रमाण सिद्ध कर देता। विनयकी दृष्टिसे उसमें तुलसीदासजीकी युवा प्रवृत्तियाँ झलकती हैं। कवि विनय करनेसे पूर्व अपने भूतकालका चित्र खींचकर सिहर उठता है और चटसे कामारिका स्मरण करता है। यह पद गोस्वामीजीकी विवाहितावस्थाके विलासमय जीवनका परिचायक है।

वसन्तरागद्वारा शिवकी स्तुति करना अभिप्रायसे रिक्त नहीं है। यह राग पंचानन शिवके द्वितीयमुख वामदेवसे निकला है और बाँदा-प्रान्तीय वामदेव शंकर गोस्वामीजीके इष्टदेव थे।'

टिप्पणी:—१ (क) 'देखो-देखो' इति। गोस्वामीजी कामसे भयभीत हुए परम आतुर हैं, बारंबार कामसे रक्षाकी प्रार्थना करते जाते हैं, सुनवाई नहीं होती, अतः घबड़ाकर कह रहें हैं कि 'देखो-देखो'। परम आतुर देखकर अब शिवजी कृपा करके उनका मनोरथ पूर्ण करते हैं। इसीसे वे इसी पदपर उनकी स्तुति समाप्त कर देते हैं और चौथे फाटकपर पहुँचते हैं। (ख) 'देखन आयी' इति। इसका साधारण अर्थ 'दर्शन करने आयी' ऐसा है। पर ध्वनित अर्थ यह है कि 'वसंतऋतुनायिका आपको ललकारने आयी है'। 'अच्छा तुमको देख लेंगे' इस बानीमें 'देखन आयी' का यहाँ प्रयोग हुआ है। 'बसंत' को कविने प्रायः स्त्रीलिङ्गही मानकर जहाँ तहाँ 'रितु' शब्दके साथ प्रयोग किया है। यथा, भूप बागु बर देखेउ जाई। जहँ बसंतरितु रही लोभाई।' (बा०)

२ (क) ' तनु दुति चंपक ' इति। चंपाके पुष्पसमूह और शरीरकी प्रभामें गौरवर्ण और विकास गुणकी समता है। (ख) तमाल और साड़ीमें श्यामरंग और प्रकाशकी समानता है। ' नूतन ' तमालका रूपक दिया, क्योंकि नवीन वृक्षमें नवीन हरे हरे पत्ते होते हैं। 'तनुदुति' को चंपाका पुष्पसमूह कहा। इसीसे उसपर नीली साड़ी दिखायी। गोरे तनपर नील वस्त्रकी

विशेष शोभा होती है। यथा, 'सोह नवल तन सुंदर सारी'। (ग) 'कदलि जंघ'। केलेके स्तंभ और जंघामें 'चिक्कन, सुढर, चढ़ाव उतारकी समता है। (घ) 'कटि केहरि गति मराल' इति। सिंहके कटिकी प्रशंसा सूक्ष्मताकी है। इसीतरह मनुष्यके कमरकी पतली या सूक्ष्म होनेकी प्रशंसा की जाती है, और मंद चालकी उपमा प्राय हंसकी चालसे की जाती है। यथा, 'केहरि कटि पट पीत धर सुखमा सीलनिधान' (बा०), 'हंसगवनि तुम्ह नहिं बन जोगू। सुनि अपजस मोहि देइहि लोगू' (अ०), 'संग सखी सुंदर चतुर गावाहिं मंगलचार। गवनी बालमराल गति सुखमा अंग अपार'। (बा०)

बनमें कमलका होना दिखाकर वहाँ जलाशयका होनाभी सूचित कर दिया है। कमल जलमेंही होता है और जहाँ जलाशयया वर्णन करते हैं वहीं कवि हंसका उल्लेख किया करते हैं। हंस कमलके आश्रित हैं। जैसे कि पंपासरोवर, मानवसरोवर इत्यादिके प्रसंगोंमें मानसमें दिखाया गया है। यथा, बिकसे सरसिज नाना रंगा। मधुर मुखर गुंजत बहु भृंगा॥ बोलत जलकुक्कट कल हंसा।' (आ०), 'सोइ बहुरंग कमलकुल सोहा'॥ 'सुकृत पुंज मंजुल अलिमाला। ज्ञान बिराग बिचार मराला' (बा०)। अतएव 'कमल' कहकर 'मराल' कोभी कहा।

'मानो तन दुति' से 'गति मराल' तक अंगोंका वर्णन हुआ। आगे आभूषणोंका वर्णन है। क्योंकि स्त्रीके अंगोंकी शोभा भूषणोंसे अधिक बढ़ जाती है।

३ (क) 'भूषन प्रसून बहु' इति। फूल बहुत और भाँति भाँतिके, वैसेही भूषण अनेक अंगअंगप्रतिके और अनेक रंगोंकी मणियोंसे जटित। जैसे कि चूड़ामणि, शीशफूल, बेंदी, झालर, ताटंक, बेसर नथ, नासानणि, चंद्रहार, मणिमाल, बाजूबंद, कड़े, कंकण, पहुँची इत्यादि।

(ख) 'नूपुर किंकिनि कलरव बिहंग' इति। इससे जनाया की नायिका वनमें विहार कर रही है, विचर रही हैं। क्योंकि नूपुरादिका शब्द चलनेमेंही होता है। पद और कटि उपर कहे। यहां नूपुर और किंकिणी उनके जेवर कहे। 'कलरव' विशेषण देकर मधुर सुरीले शब्द वाले पक्षी, कोकिल,

हंस, जलकुक्कुट (मुर्गाबी) इत्यादि सूचित किये। यथा-'नीलकंठ कलकंठ सुक चातक चक्क चकोर। भाँति भाँति बोलहिं बिहँगश्रवन सुखद चितचोर'।

अनुसंधान [१४]

कर नवल बकुल पल्लव रसाल।
श्रीफल कुच कंचुकि लता जाल॥ ५॥
आनन सरोज कच मधुप पुंज[८]।
लोचन बिसाल नव नील कंज॥ ६॥
पिकबचन चरित बर बरहि कीर।
सित सुमन हास लीला समीर॥ ७॥
कह[९] तुलसिदास[१०] सुनि सिव सुजान।
उर बसि प्रपंच रचै[११] पंचबान॥ ८॥
करि कृपा हरिअ भ्रमकंदु[१२] कामु।
जेहि हृदय बसहिं सुखरासि रामु॥ ९॥

---

८ गुंज—रा०, ह० (टीकामें 'पुंज' है) अ०। पुंज-और सबमें। नोट-ह० के पाठमें छपा है, 'आनन सरोज कच मधुप गुंज'। यह प्रेस महात्माका काम है कि 'पुंज' का 'गुंज' छपा। वस्तुतः उनकी पोथीका पाठ पुंज है जो उनकी टीकासेही स्पष्ट प्रमाणित होता है। टीका इस प्रकार है, 'कच अलक मधुपपुंज भ्रमरावली'। ना० प्र० सभा या वियोगीजीने मूलपाठ देखकरही संभवतः यह पाठ रख लिया होगा। गीताप्रेसने वियोजीका पाठ रक्खा है। इसीप्रकार डु. ०, वै०, आदिकी टीकाओंमेंभी कहीं कहीं मूलपाठ कुछका कुछ है और अर्थमें पाठ दूसरा है। अतएव छपी पुस्तकोंसे पाठ उतारनेमें महानुभावोंको बहुत सावधानीसे काम लेना चाहिये। 'गुंज' का अर्थ वियोगीजीने 'गुंजारते हुए' किया है। यह अर्थ कैसे हुआ, समझनेमें नहीं आता। गुंज=गुंजार। 'पुंज' पाठही प्राचीन एवं शुद्ध है। ९ कहि—६६, भ०। ६६ में पद १३ (६) मेंभी 'कहि' है। अतः लेखप्रमाद नहीं जान पड़ता। कहै—१५। कह-और सबमें। १० सुनि—६६, रा०। सुनु—औरोंमें। ११ रचै—भ०, दी०। रच—७४, १५, वि०। रचे—और सबोंमें। १२ कंदु—६६। कंद—रा०, भा९, बे०, प्र०, ह०, १५, शि०, ६९। फंद—ज०, ५१, ७४, आ०। कंदु—६६।

शब्दार्थः—नवल=नवीन, नया, सुंदर। बकुल=मौलसिरी। यह एक प्रकारका बड़ा सहाबदार वृक्ष है जिसकी लकड़ी अंदरसे लाल और चिकनी होती है। पल्लव = पत्ता। रसाल = आमका वृक्ष। श्रीफल = बेल, नारियल। कुच = स्तन। कंचुकि = (कंचुक, कंचुकी) अंगिया, चोली, छाती ढकनेका एक वस्त्र। लता = बेलि। कच=बाल। पिक = कोकिल। काले रंगकी एक प्रकारकी चिड़िया जो आकारमें कौवेसे कुछ छोटी होती है और मैदानोंमें वसन्त ऋतुसे वर्षातक रहती है। आँखें लाल, चोंच झुकी हुई और दुम चौडी और गोल होती है। इसका स्वर मधुर और प्रिय होता है। चरित=इसका अर्थ प्रायः 'आचरण, रहनसहन' और 'काम, कृत्य' होता है। यहां नायिकाका नृत्य गानही उसका चरित है। बरहि (सं० बर्हि) = मोर। यथा '**भूषित उड़गन तड़ित घनु जनु बर बरहि नचाव।**' (बा०) यह बादलोंको देखकर कूकता है, नाचता है। सब पक्षियोंमें यह सुन्दर है। अनेक चटकीले रंगोंका सुन्दर मेल जैसा इसमें होता है वैसा किसी औरमें नहीं होता। कीर = तोता, सुग्गा। यह आदमियोंकी बोलीकी बहुत अच्छी तरह नक़ल करता है। इसकी छोटी मोटी सैकड़ों जातियाँ होती हैं। कुछ जातियोंके तोतोंका स्वर तो बहुत मधुर और प्रिय होता है और कुछका बहुत कटु तथा अप्रिय। यह बड़ा बेमुरव्वत कहा जाता है। सित = श्वेत, सफ़ेद। हास = हास्य, मंद मुस्कान। यथा '**हास विलास लेत मन मोला**'। लीला = हाव भाव, शृङ्गारकी उमंगभरी चेष्टा, प्रेमविनोद, क्रीड़ा। समीर = वायु। सुनि = सुनिये, सुनो। प्रपंच = मायाजाल। रूप, रस, गंध, शब्द, स्पर्श विषयोंमें लिप्त करना 'प्रपंच रचना' है। रचे = रचा वा रच रहा है। पंचबान = कामदेव पंच-बाण धारण किये है, उसीसे उसका यह एक नाम हो गया है। इसका धनुषभी फूलोंका है और बाणभी। ‡ भ्रमकंदु = भ्रमका मूल कारण वा

---

‡ '**उन्मादस्तापतश्चैव शोषणस्तंभनस्तथा। संमोहनश्च कामस्य बाणः पंच प्रकीर्तितः॥**', '**वशीकरण मोहन कहत आकर्षण कबि लोग। उच्चाटण मारण समुझु पंचबाण ये योग॥**' (रा०

जड़ । भ्रम = सत्यमें असत्य और असत्यमें सत्यकी भावना ।

प्र०, पां०) । यह दोहा श्लोकका अनुवादही समझिये । इस मतके अनुसार 'उन्माद, तापन, शोषण, स्तंभन और संमोहन' वा 'वशीकरण, मोहन, आकर्षण, उच्चाटन और मारण' ये पंचबाण हैं। श्रीकरुणासिंधुजीके मतानुसार 'आकर्षण, उच्चाटन, मारण और वशीकरण ये चारों कामदेवके धनुष हैं, कंपन पनच है, मोहन, स्तंभन, सोषण, दहन, बंदन ये पांच बाण हैं, पर सुमनरूप हैं। पंचबाणोंके नाम मालूम हुए। अब पाँच पुष्प कौन हैं जिनके ये बाण बने हैं ? इसमें भिन्न भिन्न मत हैं ।

१ 'अरविंदमशोकञ्चचूतं चम्पक मल्लिका' अर्थात् कमल, अशोक, आम्र (वा आमकी मंजरी), चम्पा और मल्लिका (मोतिया)। भावप्रकाशमें 'अरविंदमशोकञ्च चूतञ्च नवमल्लिका। नीलोत्पल सुपञ्चैते पंचबाणस्य सायकाः ।' इस प्रकार है । अर्थात् चंपाके स्थानपर 'नीलोत्पल' है । इन्होंने 'मल्लिका' का अर्थ चमेली किया है । पर यह एक प्रकारका बेला है । इसे मोतिया कहते हैं । इसका फूल श्वेत और गोल तथा गंध मनोरम होती है, इसे भ्रमवश लोग चमेली कहते हैं। यह चमेली नहीं है ।

२ केशवदासजीके मतसे 'करना केतकि केवड़ा कदम आमके बौर । ये पाँचों सर कामके केशवदास न और ॥' करना, केतकी, केवड़ा, कदम और आमके बौर पंचबाण हैं । (ह., पां.)

३ बैजनाथजी लिखते हैं कि केवड़ा उचाटन, केतकी आकर्षण, कमल मोहन, गुलाब वशीकरण और करवीर (कनेर) मारण, ये पंचबाण है ।

४ कुछका मत है कि शब्दादि विषयही पंचबाण है पर इसका प्रमाण कहीं नहीं मिलता । बाण फूलोंकेही हैं यही मत गोस्वामीजीका है। यथा 'सूल कुलिस असि अंगवनि हारे । ते रतिनाथ सुमनसर मारे ॥' (अ०) वशीकरण आदिको जो पंचबाण कहा उसका तात्पर्य यह है कि वशीकरणादिसे ये पुष्पबाण अभिमंत्रित हैं, उन बाणोंसे ये सारे प्रयोग होते हैं । पंचबाण धारण करनेका भाव यह कहा जाता है

पद्यार्थ—मौलसिरी और आमके नवीन (कोमल चिकने) पत्ते (दोनों कोमल कोमल) हाथ हैं*। श्रीफल स्तन हैं और लताओंका 'जाल' चोली है । ५ । कमल मुख है, भ्रमरोंका समूह केश हैं†। नवीन नीलकमल बड़े बड़े नेत्र हैं । ६ । कोयल बचन है‖, सुंदर मोर और तोते श्रेष्ठ चरित हैं, श्वेत फूल हास हैं, पवन लीला है । ७ । (ऐसी जो वसंतऋतुरूपी नायिका है वह आपको देखने आयी है ।) तुलसीदासजी कहते हैं कि हे सुजान शिवजी ! सुनिये । कामदेवने मेरे हृदयमें बसकर प्रपंच रचा है । ८ । कृपा करके कामको हर लीजिये कि जो भ्रमका मूल कारण है, जिससे सुखकी राशि श्रीरामचंद्रजी मेरे हृदयमें बसे । ९ ।

कि 'क्षिति जल पावक गगन समीरा'। इन पाँचों तत्त्वोंमेंसे एक एक तत्त्वको एक एक बाणसे वेधन करता है ।

* 'पल्लव' का अन्वय कर, बकुल और रसाल तीनोंके साथ है । अन्वय होगा, 'नवल बकुल पल्लव, नवल रसाल पल्लव, कर पल्लव हैं'।

अर्थान्तर–१ 'मौलसिरी और आमादिकी नवीन शाखाएँ और नवीन पल्लव वसंतऋतुकी भुजा और हथेली हैं । (वै०) २ 'हाथ मौलसिरी हैं और आमकी कोंपलें कोमल हथेलियाँ'। (वि०) ३ 'कोमल करपल्लवही मौलसिरी और आमके नवीन पल्लव हैं'। (दी०)

† अर्थान्तर–'भवँर समूह जो फूलोंपर बैठे हैं वेही ऋतुके माँग-मोती सिंदूरयुत गुहे बाल है । ' (वै०)

‖ अर्थान्तर–१ 'बचनकी रचना श्रेष्ठ कोयल, मोर और सुग्गोंके शब्दके समान है'। (डु०, टी०) २ 'बचन कोयलके शब्दके तुल्य है, श्रेष्ठ चरित मोरके शब्द और नृत्यके तुल्य है और नासिका सुग्गा तुल्य है । यहां उपमेय लुप्त है परन्तु उपमानसे सूचित होता है।' (डु०, टी०) ३ 'नृत्य, गान, वाकुविलास और हास्यादि अनेक लीलाचरित करती हैं। यहाँ कोकिला ऋतुका मधुर बचन है, मयूर जो नृत्य कर रहे हैं और कीर जो अनेक भाँति बोल रहे हैं इत्यादि सब ऋतुके चरित हैं । ' (वै०) ।

टिप्पणी—४ (क) 'श्रीफल' और 'कुच'में गोलाई और (ऊपरकी) कठोरताकी समता है, लता बेलपर छायी रहती है, वैसेही कंचुकी स्तनोंको ढके हुए रखती है। (ख) 'आनन सरोज' इति। इस प्रसंगमें तीनबार कमलका नाम आया है। एक तो 'पद कमल लाल', दूसरे 'आनन सरोज' और तीसरे 'लोचन बिसाल नवनील कंज,'। आगे कहीं कहीं 'पीत कमल' काभी। पर प्रायः तीन प्रकारके कमलोंका वर्णन अधिक पाया जाता है, श्वेत, लाल और श्याम। इनमेंसे लाल कमल पूर्व और श्याम आगे कहे गये हैं। अतः यहाँ श्वेत कमल अभिप्रेत है। (बाबू शिवप्रकाश और वैजनाथजी यहाँ पीत कमलके पक्षमें हैं।) विकसित, प्रफुल्लित, आल्हादकारक होनेमें समता है। (ग) 'कच मधुपपुंज' इति। कमलोंपर भ्रमरोंका समूह, वैसेही यहां मुखसरोजपर छूटे हुए सचिक्कनकाले बालोंका लहरानाही भ्रमरोंका मड़राना हैं। (घ) 'लोचन विसाल नवनील कंज' इति। काजल, सुरमा या अंजन लगे हुए कजरारे नेत्रोंकी उपमा श्याम कमलसे दी जाती है। 'नील कंज' से वही यहां समझना चाहिये। यथा 'तुलसी मनरंजन रंजित अंजन नयन सुखंजन जातक से। (क०), 'नील कंज लोचन भवमोचन'। (उ०)

५ 'पिक बचन चरित बर बरहि कीर' इति। मधुर, प्रिय और सुरीले होनेमें बचन और पिक (कोकिल) की समता है। नृत्य, गान, नायकको देखकर आनंद और विचित्र रंग विरंगके होनेमें मयूरसे, और बेमुरव्वती एवं अनेक भाँतिकी बोलीमें 'कीर'से समता दी गयी। रा० त० व० और डु० का मत है कि, "चरित्र मोर है और नासिका 'कीर' है। उपमेय नासिका लुप्त है पर उपमानसे सूचित होती है।"

६ 'सित सुमन हास लीला समीर' इति। हमारे यहां रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, आश्चर्य और निर्वेद इन स्थायी भावोंके अनुसार नौ रस माने गये हैं।

साहित्यमें इनके रंग और देवता भिन्न भिन्न कहे गये हैं। रस-कुसुमाकरमें इनका वर्णन निम्नप्रकार है।

रस	रंग	देवता
१ शृङ्गार	श्याम	विष्णु
२ हास्य	श्वेत	प्रमथ
३ करुण	कपोत, चितकबरा	वरुण
४ रौद्र	रक्त	रुद्र
५ वीर	गौर	इन्द्र
६ भयानक	श्याम	यम
७ वीभत्स	नील	महाकाल
८ अद्‌भुत	पीत	ब्रह्मा
९ शान्त	शुक्ल	नारायण

उपर्युक्त नौ स्थायी भावों और रसोंमें एक 'हास्य' भी है। इसका रंग श्वेत है। अतः 'सित सुमन हास' में श्वेतरंगकी समता है।

(ख) 'लीला समीर' इति। नायिकामें अनेक हावभाव, अनेक रंगोंकी चेष्टा एवं क्रीड़ा होती है और वायुमें शीतल, मंद, सुगंध त्रिविध प्रकारके गुण होते हैं। इन दोनोंमें समता है। पुनः, वायु कामकी बसीठी वा दूती कही गयी है। यथा, '**त्रिबिध बयारि बसीठी आई**'। (आ०) वैसेही नायिकाके हावभाव कामोद्दीपन करते हैं, यह समता है। 'समीर', 'वायु' और 'बयारि' पर्यायवाची शब्द हैं। 'लीला' स्त्रीलिंग है। अतः उसके अनुसार 'वायु' और 'बयारि' अर्थ यहाँ किया गया है। पुल्लिंग अर्थमें यह कामका सखा है, दूत है। यथा '**सीतल सुगंध सुमंद मारुत मदन अनल सखा सही।**' (बा०)

७ (क) 'सुनि लिव सुजान' इति। 'सुजान' का भाव यह है कि आप इसके कर्तव्य स्वयम् देख चुके हैं; अतः भली भाँति इसके चरितको जानते हैं कि यह मनको क्षुब्ध कर देता है। आप तो समाधिस्थ थे तबभी इसने मनमें क्षोभ उत्पन्न कर दिया था। यथा, '**छाँड़ेउ बिषम बिसिष उर लागे। छूटि समाधि संभु तब जागे॥ भएउ ईस मन छोभ बिसेषी॥**' 'सुनि' का प्रयोग बता रहा है कि ऊपर इतनी वंदना-

तक श्रीशिवजीने आपकी विनयको सुनी अनसुनीसी कर दी। इसीसे 'सुननेको' कहते हैं। मानसमें ऐसा प्रयोग बहुत है।

(ख) ' उर बसि प्रपंच रचे पंचबान ' इति। वसन्त कामका सहायक, संगी वा मित्र हैं। काम स्त्रीके संग रहता है। स्त्रीही उसका परम-बल है। यथा, 'लोभके इच्छादंभ बल कामके केवल नारि', 'यहिके एक परमबल नारी।' (आ०) इसी कारण यहाँ कामभी वसन्तके साथ है। कामका जोर सबपर चलता है। यथा 'सकल भुवन अपने बस कीन्हें'। पर आपसे उसका जोर नहीं चलता। अतएव प्रार्थना करते हैं कि 'करि कृपा हरिअ भ्रमफंदु काम'। अर्थात् आपही इसको मारिये। यह मेरे बसका नहीं है। यह कविका प्रयोजन है। (ग) वसंतको देखकर कामोद्दीपन होताही है। यही कामका प्रपंच रचता है।* (घ) 'उरबसि' का भाव कि यह सदा आड़से छिपकरही प्रपंच रचता है, बाण चलाता है। यथा, 'नयन उघारि सकल दिसि देखा ॥ सौरभ पल्लव मदन बिलोका'। (बा०) कामका निवास मनमेंही होता है। कामनाए मनसेही उत्पन्न होती हैं। इसीसे कामके नाम 'मनसिज' और 'मनोज' हैं। अतः 'उरबसि' कहा। 'उरबसि' से स्पष्ट है कि कविने अपनेही हृदयकी व्यवस्था इस पदमें कही है। 'रचे' भूतकालिक क्रिया देकर जनाया कि यह जो हमने

---

*वसंत निर्माण करना, त्रिविध समीरका चलना इत्यादि ऊपर अंतरा १, २, ३ में कह आये। यह सब कामका प्रपंच है। मानसमें शिवसमाधि छुड़ानेके प्रसंगमें इसका विस्तृत वर्णन है। वाचक वहाँ देख सकते हैं। 'मरन ठानि मन रचेसि उपाई ॥ प्रगटेसि तुरत रुचिर रितुराजा। कुसुमित नव तरुराज बिराजा ॥ जहँ तहँ जनु उमगत अनुरागा। देखि मुयेहु मनु मनसिज जागा ॥ सकल कला करि कोटि बिधि' (बा० ८६) कामके प्रपञ्चसे ज्ञानका नाश होता है। यथा 'ब्रह्मचरज ब्रत संजम नाना। धीरज धरम ज्ञान विज्ञाना ॥ सदाचार जम जोग बिरागा। समय बिबेकु कटकु सब भागा ॥ देखहिं चराचर नारिमय जे ब्रह्ममय देखत रहे ॥' अतएव इसे भ्रमका मूल कहा।

सब कहा है यह सब कामकाही रचा हुआ है। हमारे हृदयमें बसकर उसने यह कहलवाया है।

८ (क) 'करि कृपा' इति। भाव कि मेरा कुछभी पुरुषार्थ यहाँ नहीं चल सकता। आपकी कृपासेही इसका हरण हो सकता है, अन्यथा नहीं। (ख) 'भ्रमकुंद कामु' इति। कामही भ्रमका मूल है। वनके वृक्षोंको देखकर स्त्रीके अंगोंका स्मरण हो जाता है, कामकी जागृति होती है।

श्रीवैजनाथजीकी टीकामें 'कंदु' पाठ है, पर मूलमें प्रेसने 'फंद' छापा है। इसीसे किसी–किसीने 'फंद' पाठ रक्खा हैं। पर टीकामेंके भाव वही उतार दिये हैं। वैजनाथजी लिखते हैं कि आप 'सुजान' हैं। विचारपूर्वक मेरी कही वार्ता सुनिये। वसंतऋतुमें वनकी शोभा कामोद्दिपक होनेसे मुमुक्षुओंको बाधक है। अतः मैं प्रार्थना करता हूँ कि पंचबाण कामदेव बरबस हृदयमें आबासा है और प्रपंच रचे है। परमार्थ-पथपर जानेकी इच्छा रखनेवाले जीवको विषयोंका प्रलोभन देकर इंद्रियोंके-द्वारा असत्यको सत्यसा दिखाकर परमार्थपथसे हटाकर भवसागरकी ओर ले जाना चाहते है। सच्चेको झूठा और झूठे असार संसार सुखको सच्चा दिखाना, इत्यादि भ्रमरूपी वृक्षकी जड़ 'काम' है। उसका नाश हमारे-लिये कीजिये जिससे हमारा हृदय निर्मल हो जाय।"

(ग) प० पु० सृष्टि खंड अ० ५० में भगवान्‌ने नरोत्तम ब्राह्मणसे एक निर्लोभी शूद्रके वाक्योंका कथन जो किया है वह 'भ्रमकंदु काम' के भावार्थको स्पष्ट कर देता है। वह यह हैं, "उन्माद कामजनित विकार है। उससे बुद्धिमें भ्रम हो जाता है। भ्रमसे मोह और अहंकारकी उत्पत्ति होती है। उनसे क्रोध और लोभका प्रादुर्भाव होता है। इन सबोंकी अधिकता होनेपर तपस्याका नाश हो जाता है। तपस्याका क्षय हो जानेपर चित्तको मोहमें डालनेवाला मालिन्य पैदा होता है। उस मलिनतारूप साँकलमें बँध जानेपर मनुष्य फिर ऊपर उठ नहीं सकता।"

९ 'जेहि हृदय बससि सुखरासि रामु।' इति। पद ७ 'देहु कामरिपु रामचरन रति' एवं पद १० 'देहि कामारि

श्रीरामपदपंकजे भक्तिमनवर्त्तं गतभेदमाया ।' देखिये। काम हृदयको मलिन करनेवाला है। मैली जगहमें चक्रवर्त्तीमहाराज श्रीरघुनाथजी भला कैसे रह सकते हैं? यथा, 'हरि निर्मल मलग्रसित हृदय असमंजस मोहि जनावत। जेहि सर काक कंक बक सूकर क्यों मराल तहँ आवत॥' (दो०)। निष्काम स्वच्छ हृदयमेंही प्रभुका निवास होता है। यथा 'काम आदि मद दंभ न जाके। तात निरंतर बस मैं ताके॥', 'बचन करम मन मोरि गति भजन करहिं निःकाम। तिन्हके हृदय कमल महँ करउँ सदा बिश्राम॥' (आ०)

१० शिवस्तुति शिववन्दना पद ३ से लेकर यहाँ तक बारह पदोंमें हुई। इनमेंसे (१) एक पद देववाणीमें (संस्कृतमें) है, शेष नरभाषामें (हिंदीमें) हैं। (२) एक स्तुति ब्रह्माजीद्वारा उलाहनेके रूपमें व्याज स्तुति अलंकारसे पार्वतीजीको संबोधन करते हुए की गयी है। शेष सीधे शिवजीकी वंदनाएँ हैं। (३) एकमें अर्द्धनारीश्वररूपकी स्पष्ट वंदना है। 'भस्म सर्वांग अर्धांग सैलात्मजा'। (पद १०) शेषमें इस रूपका उल्लेख नहीं किया गया है। यदि हम इनमेंसे किसी एक कारणको लेकर उस पदको अलग कर दें तो केवल ग्यारह स्तुतियां रह जाती हैं। रुद्रभी ग्यारह हैं। अतः ग्यारह स्तुतियां लिखी गयीं।

यदि सबकोही लें, किसीको किसी कारणसेभी अलग करना ठीक न समझें, तो यह कह सकते हैं कि ज्योतिर्लिङ्गभी बारह हैं। अतः बारह पदोंमें वंदना की गयी। पद्म० पु० सृ० में लिखा है कि संसारके सृष्टिकार्यसे सनकादिकके उदासीन हो जानेपर ब्रह्माजीको महान् क्रोध हुआ। उनका ललाट क्रोधसे उद्दीप्त हो उठा। उसीसमय उनकी ललाटसे मध्यान्हकालीन सूर्यके समान तेजस्वी रुद्र प्रकट हुए। इनका आधा शरीर स्त्रीका था और आधा पुरुषका। ब्रह्माजीने उन्हें आदेश दिया कि तुम शरीरके दो भाग करो। अर्धनारीश्वर रुद्रने अपने दोनों भागोंको पृथक् पृथक् कर दिया और फिर पुरुषभागको ग्यारह रूपोंमें विभक्त किया। इससे स्पष्ट है कि अर्धनारीश्वररूप महारुद्र हैं और ग्यारह रुद्र उनके अन्य रूप हैं। इस तरह कुल बारह रुद्र हैं। उसीके अनुसार यहां एक

पदमें अर्धनारीश्वरकी वंदना है। शेष ग्यारहको ग्यारह रुद्रकी वंदना समझ लें।

वस्तुतः कविका अभिप्राय क्या था यह तो वेही जानें या जो सर्वज्ञ हों, अन्तर्यामी हों, वह जानें। जहांतक अनुमान हो सकता है किया जाता है।

देवदत्तशास्त्रीजी लिखते है कि, 'भगवान् शिवकी स्तुति बारह पदोंमें की गयी है। ये बारहों पद विभिन्न विद्वानोंके उर्वर मस्तिष्ककी विभिन्न कल्पनाओंसे ओतप्रोत हैं। इसमें सदेह नहीं कि कविने एकएक शब्दकी योजनामें कमाल किया है। हम कविके गूढ भावोंको नहीं समझ सकते। यह असम्भव बात है। यदि यही मान लें कि यह तो कविही जानें तो सारा परिश्रम और चिंतन व्यर्थ हो जाता है। इतनाही नहीं, हम अपने पूर्वजोंके वृत्त वृत्तिको न समझकर कलंकितभी हो सकते हैं। यह बात ज़रूरी है कि समय और स्वभाव परिवर्तित हो जानेसे हम पूर्ण परिचय न प्राप्त कर कुछ न कुछ तत्त्व अवश्यही निकालेंगे। हमारा तो स्थूल हिसाब यही है कि प्रथम कविकी रचना और उसके उद्देश्योंको समझें कि गोस्वामीजीने विनयपत्रिका क्यों और किस समय लिखी? विनय क्या और किससे की गयी?' इस दृष्टिकोणसे मीमांसा करनेपर हमें आत्मानुभव होने लगता है कि हम किसी इष्टसिद्धिकी इच्छासे जब किसी उच्चपदाधिकारी या सम्राटसे प्रार्थना करना चाहते हैं तो हमें क्या क्या करना पड़ता है। सर्वप्रथम मनही मन अपने कुलदेव वामदेवका स्मरण करते हैं। फिर उच्चपदस्थ पदाधिकारीके मातहतोंकी प्रशंसा या सेवा करते हैं। इसी प्रकार गोस्वामीजीभी अपनी आध्यात्मिक इष्टसिद्धिकेलिये सार्वभौम सम्राट् राजा रामसे विनय करनेकी जब तैयारी करते हैं तो स्मार्त संप्रदायकी पद्धतिसे देवीदेवताओंकी स्तुतियाँ करते हैं इसलिए कि विनय करनेमें करकृत मनस्कृत कोई त्रुटि न हो।

विनय करनेमें अपनी सारी परिस्थितिका दिग्दर्शन सूत्ररूपसे करना पड़ता है। जबतक अपनी त्रुटियोंका, अपनी अच्छाइयोंका विवेचन न किया जायगा तबतक विनय अधूराही रहेगा। विनय करनेमें आत्मपरिचय सर्वप्रथम देना पड़ता है। गोस्वामीजी निर्भराभक्तिपूर्ण थे। उन्होंने अपनेको

२९

अपने इष्टदेवकोही सौंप दिया था। वे अपने अस्तित्वको भूल चुके थे। किन्तु विनय करनेमें तो आगे पीछे या बीच अथवा जब प्रसंग चर्चा आवे तब तो परिचय देनाही पड़ता है। ऐसी अवस्थामें सच्चे संत तुलसीदासजी अपना परिचय जब कभी देते हैं तब अपने इष्टदेवकी आड़सेही। भगवान् शंकरकी १२ स्तुतियोंसे उन्होंने अपने प्रारंभिक जीवनसे लेकर मुक्तिप्राप्ति-पर्यन्तकी चर्चा की है, जो अस्पष्ट है, धुंधली है और व्यंजनापूर्ण है। पद १३ में बामदेवको प्रणाम करते हुए अपनेको बाँदा प्रान्तीय बतलाया। 'सुखजन्मभूमि' कहकर आपने बड़ी सफाई और चतुरायी दिखायी। काशीपति विश्वनाथकी वन्दना करके आपने अपने जीवनके अन्तिम क्षण काशीमें बिताने तथा वहीं मुक्तिलाभ प्राप्त करनेका इशारा किया है। प्रकारान्तरसे पूर्वजन्ममें वाल्मीकि होना, अधम कृत्य करना और इस जन्ममेंभी पढ़ लिखकर सुसंगति प्राप्त कर कामिनी कंचनके फेरमें पड़े रहनेका मार्मिक इशारा किया है। निस्सन्देह आदिसे लेकर इस पदतक उन्होंने अपनीही दशा गायी है, जो सच्ची विनय है, प्रार्थना है।'

१५ [२१] राग मारु

दुसह दोष दुख दलनि करु देवि दाया।
विश्वमूलासि जन सानुकूलासि सर[1]
सूलधारिणि महामूल माया ॥१॥
तड़ित गर्भांगि[2] सर्वांग सुंदर
लसत दिव्य पट भव्य भूषन बिराजै।
बालमृग मंजु खंजनविलोचन[3]
चंद[4] बदन[5] लखि कोटि रति मार[6] लाजै ॥२॥

---

१ सर—६६, रा०, ह०, मु०, डु०, वै०, ५१, दी०, ७४। कर—भा०, बे०, प्र०, ज०, ६९, भ०, वि०। २ गर्भांगि—६६, रा०, भ०। गर्भांग—भा०, बे०, ह०, ज०, ५१,७४। गर्भाभ—प्र०। ३ बिलोचन—६६, ज०, ह० (टीकामें), ७४। बिलोचनि—रा०, भा०, बे०, ५१, १५, आ०, ह० (मूलमें)। ४ चंद—६६, रा०, ७४ डु०,। चंद्र—भा०, बे०, प्र०, ह०, ५१। ५ बदन—६६, रा०, भा०, बे०, प्र०, ज०, ह०, ७४,। बदनि—आ०। ६ प्राचीन और आधुनिक समस्त पोथियोंमें यही पाठ है।

शब्दार्थ:-दोष = वेदाज्ञानुसार वर्णाश्रमधर्मका उलटा अधर्म है। इस अधर्ममें प्रवृत्तिको दोष कहते हैं और अधर्मके फलभोगसे जो पीड़ा उत्पन्न हो उसे दुःख कहते हैं। (पं० रा० कु०) दलनि=दल डालनेवाली; जैसे चक्कीमें दाल, चना, गेहूँ आदि दला जाता है। नाश करनेवाली। विश्वमूलासि=(विश्व+मूल+असि), जगत्की मूल हो। सानुकूलासि (स+अनुकूला+असि), विशेष अनुकूल (प्रसन्न) हो। धारिणि=धारण करनेवाली; लिये रखनेवाली। महामूलमाया=मूलप्रकृत महामाया अर्थात् आद्याशक्ति जो सब सृष्टिकी आदिकर्ता है। सत्व, रज, तम तीनों गुण जिसके वशमें हैं। जिससे वह सारे ब्रह्मांडको क्षणमात्रमें रच डालती है। संसारकी बीजशक्ति या वह आदिम सत्ता संसार जिसका परिणाम या विकास है। मायाको उत्पत्ति करनेवाली, अपरा प्रकृतिकी अधिष्ठात्रि देवता। सृष्टिकी उत्पत्ति करनेवाली मूल अव्याकृत प्रकृति। गर्भांगि=(गर्भ+अंगि) गर्भ=सार, सारांश। अंगि=अंग वा शरीरवाली। तड़ित गर्भांगि=बिजलीके सारके समान (कांतिमान्) शरीरवाली। सर्वांग=सारा शरीर। शरीरके सब अंग वा अवयव। लसना=शोभित होना, फबना। दिव्य=अप्राकृत, अलौकिक, जो नित्य नवीन बने रहें, कभी जीर्ण-शीर्ण वा मैले न होनेवाले। यथा, 'दिव्य बसन भूषन पहिनाये। जे नित नूतन अमल सुहाये।' (आ०) भव्य=जो देखनेमें भारी और सुन्दर जान पड़े। मंगलसूचक और प्रकाशमान। अत्यंत रमणीय जो देखतेमात्र देखनेवालेके हृदयपर अपना अतंक जमा ले। (दी०)। बालमृग=हिरनका बच्चा। खंजन=यह एक छोटा सुन्दर पक्षी है। कवि नेत्रोंकी उपमा इससे देते हैं। इसमें चंचलता बहुत होती है। लंबे और श्यामता लिये हुए कजरारे नेत्रोंकी चंचलता और सुन्दरतामें इसकी उपमा दी जाती है। यह पक्षी कइ रंग और आकारका पाया जाता है। हिमालयकी तराई, आसाम और बरमामें

डु० मेंभी यही है पर टीकामें अर्थ 'अभिमान' किया है। दीनजीने 'मान' पाठ दिया है और लिखा है कि स्त्रीसौंदर्यकी समतामें 'मार' के सौंदर्यको लज्जित करना गोस्वामीजीके समान आचार्य तो नहीं कह सकते।' 'रति मार लाजै' पाठका भाव टिप्पणी २ में देखिये।

अधिकतासे होता है। इसका रंग बीचबीचमें कहीं सफ़ेद तो कहीं काला होता है। यह एक बालिश्तसे छोटा होता है।'

बालमृगके नेत्र उमड़े हुए, सजल, बड़े सडर और चंचल होते हैं। यथा, 'खंजन मंजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हहिं सिय सयननि।' (अ०), 'जहँ बिलोक मृगसावकनयनी। जनु तहँ बरिस कमल सितश्रेनी।' (बा०) बिलोचन=दोनों नेत्र। चंद=चंद्रमा। चंदबदन = चन्द्रमाके समान प्रकाशमान् और आल्हादकारक मुख। यह भाव 'चदि' धातुसे लिया गया। लखि = देखकर। रति = कामदेवकी स्त्री। यह दक्ष प्रजापतिकी कन्या मानी जाती है। यह दक्षके पसीनेसे उत्पन्न हुई थी। यह संसारकी सबसे अधिक रूपवती और सौंदर्यकी साक्षात् मूर्ति मानी जाती है। इसे देखकर सभी देवताओंके मनमें अनुराग उत्पन्न हुआ था। इसीसे इसका नाम 'रति' हुआ। यह सदा कामदेवके साथ रहती है। मार = कामदेव। स्त्रीपुरुषसंयोगकी प्रेरणा करनेवाला एक पौराणिक देवता जिसकी स्त्री रति, सखा बसन्त, बाहन कोकिल, अस्त्र पुष्पधनुषबाण और बारिचर (मछली) केतुपरका चिह्न है। शिवजीके बरदानसे यह बिना अङ्गकेही सबको व्यापता है। यह देवताओंमें सबसे सुंदर है।

यह विनय 'मारू' रागमें की गयी है। यह राग युद्धके समय गाया जाता है। इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। यह 'श्री' रागका पुत्र माना जाता है। यह सुभटोंको परम सुखदायी है। यथा '**भेरि नफ़ीर बाज सहनाई। मारू राग सुभट सुखदाई।**'

पदार्थः—कठिन दोष और दुःखोंको नाश करनेवाली, हे देवि! मुझपर दया करो। (अर्थात् मैंभी इनसे पीड़ित हूं। मेरे दोष और दुःख नाश कीजिये)। आप संसारकी मूल (उत्पत्ति करनेवाली), अपने भक्तोंपर विशेष अनुकूल (प्रसन्न रहनेवाली अर्थात् दया करनेवाली), (धनुष) बाण † और त्रिशूल धारण करनेवाली, महामूलप्रकृति हैं। १।

---

† 'कर' पाठका अर्थ होगा 'हाथमें त्रिशूल'। 'सर' पाठमें धनुषकाभी अर्थ साथसाथ कर लेना चाहिये, क्योंकि बिना धनुषके केवल

आप बिजलीके सारके समान (प्रकाशमान्) अंगवाली हैं। ‡ आपके सब अंग (जैसे जहां चाहिये वैसे गठे हुए सुठौर) सुंदर हैं; जिनपर दिव्य वस्त्र शोभित हैं और प्रकाशमान भूषण विशेष शोभायमान् हैं। सुंदर हिरनके बच्चे और खंजन पक्षीके समान (कजरारे लंबे, उभरे हुए, करुणरस भरे, सुंदर, चंचल) नेत्र हैं। चन्द्रमाके समान मुख है जिसे

बाण हो नहीं सकता। देवी धनुषबाणभी धारण किये हुए हैं। यह बात पद १६ से प्रमाणित होती है। वहाँ देवीको 'बर्मचर्म कर कृपान सूल सेल धनुषबाण धरनि।' कहा है। पद १६ के उद्धरणमें अंतिम शस्त्र बाण है। यहां बाण ('सर') को पहले और 'सूल' शब्दको पीछे देकर पद १९ के उन सब अस्त्रशस्त्रोंको सूचित कर दिया है जो 'सुल' से लेकर 'बान' तक वहां आये हैं। इसतरह शूल, सेल, धनुष और बाण चार अस्त्र शस्त्रोंका धारण करना कहकर 'चतुर्भुज' रूपका ध्यान यहाँ सूचित किया गया है।

‡ 'गर्भांग' पाठके अर्थ—१ अंगोंका जो गर्भ अर्थात् भीतरका भाग है, वह बिजलीकी नाईं है। (पं० रा० कु०)। २ गर्भांग = मध्य अंग। (च)। सार भाग, 'सारांशके समान गौर' (वै०)। ३ तड़ित गर्भांग = बिजलीके अंदर (भीतरकी) चमकसी जो अलख हैं जिसपर किसीकी नज़र न ठहरे।' (ह०)। ४ सब अंग बिजलीके समान चमकीले शोभित हैं। (वीर) ५ सर्वांग शरीर बिजलीगर्भित है; अर्थात् ऐसा दिव्यकान्तिमय है मानों अंगअंगमें बिजलीही भरी है। अतः महासुंदर है। (दी०)। ६ तुम्हारे शरीरके प्रत्येक अंगोंमें बिजलीसी कौंध रही है। (वि०)

भ० जीने 'गर्भांगि' पाठका यह अर्थ किया है कि '' जिनके प्रत्येक भागमें बिजली भरी है ऐसे तुम्हारे सब सुंदर अंग शोभायमान हैं।'

किसीने 'गर्भ' का तड़ितके साथ अन्वय किया है और किसीने 'अंग' के साथ। हमने दीपदेहरीन्यायसे दोनोंके साथ, पर विशेषतः 'तड़ित' के साथ लेकर अर्थ किया है।

(जिनकी छविको) देखकर अगणित रति, (अपने पति) कामदेव लज्जित होते हैं। २।

टिप्पणी:-१ 'दुसह दोष दुख दलनि करि देवि दाया।' इति। (क) 'दोष' दूष्यते इति दोषः। (दुष वैकृत्ये णिच् भावे घञ) = बुराई। चाणक्यने लिखा है, 'अदाता वंशदोषेण कर्मदोषाद्दरिद्रता। उन्मादी मातृदोषेण पितृदोषेण मूर्खता॥' वस्तुतः कृपणता, दरिद्रता, प्रमत्तता और मूर्खताही बुराइयाँ हैं, दोष हैं, जो मनुष्यको दूषित बनाते हैं। दुष् करणे धातुसे दुष्यते अनेन इति, घञ् प्रत्यय करनेपर दोष शब्द निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है पाप। प्राचीन न्यायशास्त्रके मतानुसार 'वह मानसिक भाव जो मिथ्याज्ञानसे उत्पन्न होता है, और जिसकी प्रेरणासे मनुष्य दुष्कर्मोंमें प्रवृत्त होता है उसीका नाम दोष है।'

(ख) गोस्वामीजीने इस पदसे भवानीकी स्तुति की है, जो जगजननी हैं और गोस्वामीजीकी संरक्षिका, पोषिका हैं। दोषकी उपर्युक्त दोनों व्याख्याएँ कविको ग्राह्य हैं। उन्हें अपनी अथसे इतितककी परिस्थिति ज्ञात है, स्मरण है, जिसे विनय करनेसे पूर्व प्रगट करना उचित समझते हैं और विनय करनेके योग्य पात्र बननेकेलिये माताके सामने सारी बुराइयाँ और कमज़ोरियाँ निःसंकोच प्रगट करते हैं।

दरिद्रता दोषोंकी खान है। यह गोस्वामीजीके जन्मकालसे पीछे पड़ी है। दरिद्रता कर्मदोषसे होती है। गोस्वामीजी उसे मुक्तकंठसे स्वीकार करते हैं। उन्होंने अपने प्रत्येक ग्रंथमें कर्मको बरियार माना है। दरिद्रताभी स्वीकार करते हुये 'बारे ते ललात बिललात दीन द्वार द्वार' इत्यादि करुणोत्पादक वाक्य यत्र तत्र लिखे हैं। यह गरीबी 'टूकर कूकर सो लाग लगाई' दरिद्रतादोषकी पराकाष्ठा सिद्ध करती है। दोषकी दूसरी व्याख्याके अनुसार मिथ्याज्ञानसे उत्पन्न भाव जो युवावस्थामें तरुणीरक्त बना था जिसका गोस्वामीजीने बड़ी ग्लानि और लज्जाके साथ वर्णन किया है, दुसह दोषही तो है। इनसे बढ़कर दुसह दोष अब क्या होंगे? इसीलिये तो इनके दलन करनेकेलिये कवि

माँसे विनय करते हैं। उन्हें विश्वास है कि 'कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति'। यह दोष शब्द कवि तुलसीदासजीके बालपन और युवावस्थाकी जीवनीके निदर्शनमें प्रयुक्त है।

(ग) दुःख अनेक प्रकारके होते हैं। (१) तर्कशास्त्रके अनुसार प्रतिकूल वेदनाका नाम दुःख है। (२) सांख्यशास्त्रके अनुसार प्रतिकूल वेदनीय रजोकार्य धर्मभेद दुःख है। (३) न्याय और वैशेषिक चित्तके कार्यको दोष मानते हैं। शास्त्र तो दुःखको आत्माका धर्म मानते हैं। (४) वेदान्तदर्शन दुःखको बुद्धिधर्म या चित्तधर्म मानता है।

कर्मका चरमफल सुख या दुःखका भोगही है। दुःखका अत्यन्ता-भाव होनेसे मुक्ति होती है। मुख्यतया दुःख तीन प्रकारका है। आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक।

सांख्यभाष्यमें लिखा है 'आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखं। तथा सञ्छिद्य कान्ताशां सुखं सुष्वाप पिंगला॥' वस्तुतः आशाही परम दुःख है। जिस दिन आशा नष्ट होगी उसी दिन दुःखका अवसान है।

गोस्वामीजी निर्भराभक्तिपूर्ण भक्त थे। वे आशावादी नहीं थे। वे तो यहाँतक कहते थे कि 'कोकरि सोच मरै तुलसी हम जानकिनाथके हाथ बिकाने।' यहाँ 'दुख' से तात्पर्य आशाकाही प्रतीत होता है।

(घ) 'देवि' इति। 'दी व्यतीति देवी अथवा देवयति प्रवृत्ति निवृत्ति उपदेशेन यथाधिकारं व्यवहारयति सर्वान् देव णिच्'। डी० प.। देवी=माँ दुर्गा। देवीभागवत्में लिखा है कि जो मां दुर्गाका अनन्यभावसे उपासना करते हैं, उन्हें अपराध करनेपरभी दुःख नहीं भोगना पड़ता। क्योंकि उनके संरक्षक स्वयं शिवजी हैं। यही कारण है कि गोस्वामीजी अपनेको बचपनसे दोषी समझते हुए भवानीकी वन्दना करते हैं। वे दुःखसे निवृत्त होना चाहते हैं। उन्हें देवीकी कृपाका भरोसा है, विश्वास है और पूर्ण स्मरण है। संभवतः इस पदको लिखतेसमय तुलसीदासजीने दुर्गासप्तशतीके "दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः स्वस्थैः स्मृता-

मतिमतीव शुभां ददासि। दारिद्र्यदुःखभयहारिणिकात्वदन्या सर्वोपकार करणाय सदार्द्रचिता ॥ ' इस श्लोकका स्मरण किया हो।

(ङ) ' दाया ' इति। 'दयभिदा घञ् ततष्टाप' दया। मनका वह दुःखपूर्ण वेग जो दूसरेके कष्टको देखकर प्रस्फुटित हो जाता है और उसके कष्टको दूर करनेकी यथाशक्ति चेष्टा करता है। तुलसीदासजी दारिद्र्य और मिथ्याज्ञानजन्य दुष्प्रवृत्तिसे दुखित हैं। इसलिये माँसे दयाकी भीख माँगते हैं।

यह पद गोस्वामीजीकी प्रारंभिक जीवनकी एक झाँकी है। (दे० द० शास्त्रीजी)।

२ (क) ' विश्वमूलासि ' इति। ' **भव भव विभव पराभव कारिनि। विश्वविमोहिनी स्वबस बिहारिनि।** ' (बा०) 'जगसंभव पालन लयकारिनि'। (बा०) (ख) 'महामूल माया' इति। '**तुम्ह माया भगवान सिव सकल जगतपितुमातु।** ' (बा०)। (ग) 'विश्वमूला' कहकर 'जन सानुकूला' कहनेका भाव कि जगजननी होनेसे यद्यपि आपकी अनुकूलता संसारके सभी जीवोंपर एकरस एकसमान है तथापि अपने जनपर आप विशेष कृपा करती हैं, यह अन्याय नहीं है। श्रीरघुनाथजीके श्रीमुख वचन हैं कि '**सेवक प्रिय सबके यह नीती। मोरे अधिक दास पर प्रीती।** ' जनपर सानुकूल हैं इससे उनकी रक्षाकेलिये सदा 'सर शूल' धारण किये रहती हैं। 'सर सूल धारिणि' से दुष्टों अर्थात् भक्तोंको सतानेवालोंको दंड देना कहा। लोकसंग्रहार्थ ऐसा करना आवश्यक है। ऐसा करना मानों शरीरके किसी एक अंगमें हुए रोगको दूर करके उसे अच्छा करना है।

३ ' रति मार लाजै ' इति। त्रैलोक्यकी स्त्रियोंमें कहीं यह सुन्दरता है और न पुरुषोंमेंही। स्त्रियोंमें सबसे सुन्दर रति और पुरुषोंमें सबसे सुन्दर कामदेव है। 'मार' भी लज्जित होता है कि मैं त्रैलोक्यविजयी हूं तोभी मेरा किंचित् बस इनपर नहीं चलता। स्मरण रहे कि रूपगर्विता नायिका अपने रूपके सामने किसी पुरुष या स्त्रीको कुछ नहीं समझती। कामदेवको जो अपनी स्त्रीकी सुन्दरताका गर्व था वह चूर हो गया।

श्रीरामचरितमानसमें भी श्रीपार्वतीजीको 'सुन्दरता मर्याद भवानी' और 'दामिनि द्युति गाता' कहा है। 'रति मार लाजै' में 'सुन्दरता मर्यादा' का और 'दामिनि द्युति गाता' में 'तड़ित गर्भांगि' का भाव जना दिया है।

अनुसंधान [१५]

रूप सुख सील सीमासि भीमासि
रामासि बामासि बर बुद्धि बानी।
छमुख हेरंब अंबासि जगदंबिके
संभुजायासि जय जय भवानी ॥३॥
चंड भुजदंड खंडनि[7] बिहंडनि मुंड[8]
महिष मद भंग करि अंग तोरे।
सुंभ निसुंभ कुंभीस रणकेसरिनि[9]
क्रोध वारिधि वरिबृंद[10] बोरे ॥४॥
निगम आगम अगम गुर्वि तव गुन कथन
उर्बिधर करत[11] जेहि सहस जीहा।
देहि मा मोहि पनु[12] पेमु[13] यहु[14] नेमु
निज राम[15] घनस्याम तुलसी पपीहा ॥५॥

शब्दार्थः—सील (शील)=उत्तम आचरण; सद्‌वृत्ति; कोमल हृदय, अच्छा स्वभाव जिसमें कभी दूसरेका जी न दुखे और ऊंच नीच कोईभी क्यों न हो उसका आदर, उससे प्रिय बोलना, इत्यादि सब भाव इसमें आ जाते हैं। शिष्टाचार। 'सुनत सीतापति सीलसुभाउ।' पद १०० 'शील' की व्याख्या वा भावार्थही है, उसे देखिये।

---

७ खंडनि–६६, रा०, ह०, ७४, आ० (मु०)। खंडन–भा०, बे०, ज०, ५१, मु०। ८ महिषमुंड–भ०, ७४, वि०। मुंडमहिष–औरोंमें। ९ केसरिन–मु०, ७४। के सरन–५१। १० अरबृंद–५१, वि०। ११ कहत–ह०, मु०, वै०, ७४। १२ पनु–६६, रा०, भ०। पन–भा०, बे०, डु०, प्र०, ज०, ७४, बि०। प्रन–ह०। प्रण–१५, ५१, दी०। १३ पेमु–६६, रा०। प्रेम– औरोंमें। १४ यह–रा०, भा०, बे०, ह०, ७४, आ०। १५ नाम–डु०। ७४ में 'निज नेम यह राम' पाठ है।

'प्रभु तरु तर कपिडारपर ते किय आपु समान। तुलसी कहूं न रामसे साहिब सीलनिधान।' (बा०)। यह भी शील है। सीमासि = सीमा + असि। सीमा = हद, मर्यादा। भीमासि = भीमा (भयंकरा, भयंकररूपा) + असि (है)। बाबा हरिहरप्रसादजी ने 'भयंकर है तलवार जिसकी' यह अर्थ किया है, पर यह अर्थ संगत नहीं है। छमुख = षटवदन, कुमार कार्तिकेय, स्वामिकार्तिक, इत्यादि सब आपके नाम हैं। तारकासुरके बधकेलिये इनका अवतार हुआ जिसका उल्लेख रामचरितमानसमें है। दक्षयज्ञमें सती तनके भस्म होनेके बाद पार्वतीजीके साथ शिवजीका पाणिग्रहण हुआ। तब कार्तिकेयजीका जन्म हुआ। पुराणोंमें इनके जन्मकी कथाएँ अनेक प्रकारकी हैं। सारांश यह है कि पार्वतीजीके साथ बहुत कालविहार करनेपर शिवजीके तेजसे ये उत्पन्न हुए। वीर्यको जिसजिसने धारण किया उस उसके ये पुत्र कहलाये। पृथ्वी, अग्नि और गंगा कुछ कुछ तेज धारण कर सकीं। गंगामें जब अग्निने तेजको उगला तब वह वहाँ छः भागोंमें पड़ा, जो मिलकर एक शरीर बन गया। जिसमें छः मुख हुए। छः कृत्तिकाओंने इन्हें लाकर दूध पिलाया। ये एकएक मुखसे एकएक कृत्तिकाका दूध पीने लगे। इसीसे षड़ानन, षट्बदन और कार्तिकेय नाम हुए। ये बहुत सुंदर हैं, मोर इनका बाहन है, शक्ति इनका अस्त्र है और तप्तस्वर्णसमान शरीरकी कांति है। ये देवताओंके सेनापति हुए। किसी पुराणोंका मत है कि ऋद्धि सिद्धिका विवाह गणेशजीके साथ हो जानेसे इन्होंने कुमार रहनेकी प्रतिज्ञा कर ली थी, इससे 'कुमार' भी नाम पड़ा। परंतु पद्मपुराणमें इनका बिवाह कहा गया है। सृष्टिखंडमें देवादि उत्पत्ति वर्णन प्रकरणमें स्पष्ट लिखा हुआ है कि "अग्निपुत्र कुमारका जन्म सरकंडोंमें हुआ। उनके शाख, उपशाख और नैगमेय तीन पुत्र हुये। कृत्तिकाकी संतान होनेके कारण कुमारको कार्तिकेयभी कहते हैं।" विशेष टिप्पणी ४ में लिखा गया है। हेरंब = गणेशजी। अंबा, अंबिका = माता। जाया = विवाहिता स्त्री, पत्नी। विशेषतः वह स्त्री जो किसी बालकको जन्म दे चुकी हो।

भवानी = भव (शिव) पत्नी । संसारकी अधिष्ठात्री देवी । (दी०) । भुजदंड = बाहुदंड । कंधेसे निकलकर डंडेके रूपमें गया हुआ अंग जिसके छोरपर हथेली या पंजा लगा होता है । बिहंडन = (बिहंडना) खंड खंड कर डालना, मार डालना, काटना । मुंड = यह दैत्य शुंभकी सेनाका एक सेनापति था जो उसकी आज्ञासे भगवतीके साथ लड़ रहा था और उन्हींके हाथ मारा गया । चंड और मुंडके बधसेही उनका नाम चामुंडा पड़ा । महिष = महिषासुर । यह रंभ नामक दैत्यका पुत्र था । इसकी आकृति भैंसेकीसी थी । मार्कण्डेय पुराणमें इसकी कथा विस्तारसे है । शुंभ निशुंभ = ये असुर प्रह्लादके पौत्र और गवेष्ठीके पुत्र थे । दुर्गासप्तशती, देवीभागवत और कालिका पुराणमें इनकी कथाएँ हैं । पं० श्रीनारायणशास्त्रीजी लिखते हैं, 'श्रीविद्याके लीलाविग्रह तो अनंत हैं । त्रिपुरारहस्यमाहात्म्यखण्ड तथा ब्रह्माण्डपुराणोत्तरखण्ड आदि पुराणेतिहासोंमें मुख्य विग्रहोंका परिगणन है । कुमारि, विरूपा, गौरी, रमा, भारती, काली, चंडिका, कात्यायनी, दुर्गा, ललिता आदि दैत्य मधु और कैटभके कुलोंमें उत्पन्न, शुंभ निशुम्भ नामके दो दैत्योंने उग्र तपस्या कर ब्रह्माजीसे पुरुषमात्रसे अजेय होनेका वर प्राप्त किया । तीनों लोकोंपर उन्होंने आक्रमण किया । सारे देवता निर्वासित किये गये । ब्रह्मा विष्णु शिवसहित इंद्रादि देवोंने जान्हवी तीरपर 'नमो देव्यै' इस स्तोत्रसे त्रिपुराम्बा श्रीविद्याकी स्तुति की । त्रिपुराम्बाने प्रसन्न होकर गौरीको भेजा । गौरीने देवोंका वृत्तान्त सुनकर कालीरूप धारण किया और शुंभनिशुंभद्वारा षित चंडमुंडनामक दैत्योंका वध किया । महिषासुरको मारनेकेलिये महालक्ष्मी दुर्गारूपमें श्रीविद्या त्रिपुराम्बाने अवतार ग्रहण किया । यह कथा सप्तशतीके मध्यम चरित्रमें प्रसिद्ध है । (शक्ति अंकसे) जिससमय निशुंभको देवीने मारा था और उसके भाई शुंभने देवीके बहुतसे रूप देखकर कहा था कि तुम्हारे साथ अनेक सहायक हैं इसलिये तुम जीत रही हो। तब देवीने उत्तर दिया था कि '**एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा । पश्यैता दुष्ट मय्येव विशंत्यो मद्विभूतयः ॥**' इस जगत्‌में मैंही अकेली हूं और

अद्वितीय हूं। अन्य क्या है ? अर्थात् अन्य कुछभी नहीं है। रे दुष्ट! जो कुछ तुम्हें अन्य भासता है सो मेरी विभूतियाँ हैं। यह देख सब मेरेमें विलीन होती हैं।' पद १६ 'कालिका' देखिये। कुंभीस = कुंभ (हाथी) + ईश = गजराज, बड़ामतवाला हाथी। केसरिनि = सिंहिनी। (बोरना) बोरे = जलमें डुबाना। 'गुर्वि' (गुर्वी) = बड़ी वा श्रेष्ठ स्त्री। (च०, श० सा०) भारी, गरू (पं० रा० कु०, दी०)। उर्बिधर उर्वी + धर = पृथ्वीको धारण करनेवाले शेषजी। †जीहा = जिह्वा, जीभ। पनु = पन, प्रण, प्रतिज्ञा। निज=इस शब्दके अनेक अर्थ होते हैं। १ अपना, खास, मुख्य; सच्चा, यथार्थ। यथा 'कवनि भगति कीन्ही गुननिधि द्विज। होइ प्रसन्न दीन्हेहु सिव पद निज।' (पद २)। २ निश्चय, दृढ़, सही सही। यथा 'मन मेरे मानहि सिख मेरी। जो निज भगति चहै हरि केरी।' (पद १२६)। ३ विशेष करके, खासकर, यथा 'देखु बिचारी सारका साँचो कहा निगम निजु गायो।' सिद्धांत। ४ अखंड (च०)। नेम=बंधेज; बँधी हुई बात जो टल नहीं, बराबर होती रहे। घनश्याम=काले मेघ। पपीहा=चातक। कीड़े खानेवाला एक पक्षी जो बसंत और वर्षामें प्रायः अनेक पेड़ोंपर बैठकर सुरीली ध्वनिसे बोलता है। देशभेदसे वह कई रंग, रूप और आकारका होता है। उत्तर भारतमें इसका डील प्रायः श्यामा पक्षीके बराबर और रंग हलका काला या मटमैला होता है। यह पेड़से प्रायः बहुत कम नीचे उतरता है और बहुतही छिपकर बैठता है। बोली बहुतही रसमय होती है और उसमें कई स्वरोंका समावेश होता है। हिन्दी कवियोंने मान रक्खा है कि बोलीमें 'पी कहाँ, पी कहाँ' अर्थात् 'प्रियतम

---

†'उर्वी' इति। परशुरामजीने जब यह पृथ्वी कश्यपजीको दान कर दी उस समय बलवान रक्षक न होनेके कारण ब्राह्मणोंमेंसे किसीकीभी प्रभुता कायम न रही। पापियोंके अत्याचारसे पीड़ित हो यह वसुधा रसातलमें धसने लगी। यह देख कश्यपजीने अपने उरुओंसे सहारा देकर इसे रोका। इसलिये यह 'उर्वी' कहलाने लगी। (महाभारत श्रीकृष्ण युधिष्ठिर संवाद। परशुरामचरित्र प्रसंग)

कहाँ है ?' बोलता है। यहभी प्रवाद है कि यह केवल वर्षाका स्वातिबुंदही पीता है। प्याससे मर जानेपरभी नदी तालाब आदिके जलमें चोंच नहीं डुबाता। जब आकाशमें मेघ छा रहे हों उस समय यह माना जाता है कि यह इस आशासे कि कदाचित् कोई बूँद मेरे मुँहमें पड़ जाय बराबर चोंच खोले उनकी ओर टक लगाये रहता है। यह केवल स्वातीका बूंद पीता है। यदि वह न बरसे तो सालभर प्यासाही रह जाता है। इसकी बोली कामोद्दीपक मानी गयी है। इसके अटल नियम, मेघपर अनन्य प्रेम आर इसकी बोलीकी कामोद्दीपकताको लेकर कवियोंने अच्छी अच्छी उक्तियां की हैं। विशेष भाव, 'राम नाम नव नेह मेह को मन हठि होहि पपीहा।' पद ६५ में देखिये।

पद्यार्थः—रूप, सुख और शीलकी सीमा हो (अर्थात् आपसे बढ़कर सौंदर्य, सुखभोग और शील कहीं नहीं है), (दुष्टोंकेलिये) भयंकरा हो, तुम्ही रामा हो, तुम्ही वामा हो और तुम्हीं श्रेष्ठ बुद्धिवाली वाणी हो। षड़ानन और गणेशजीकी माता हो, (इन्हींकी नहीं वरंच) जगत्‌मात्रकी माता और शिवजीकी पत्नी हो। हे भवानी! हे जगदंबिके! आपकी जय हो, जय हो। ३। तुम चंड दैत्यकी भुजाओंको टुकड़े टुकड़े कर डालनेवाली और मुंडदैत्यको नाश करनेवाली हो! महिषासुरका (बलका) घमंड चूर्ण कर आपने उसके अंग प्रत्यंग तोड़ डाले। शुंभ और निःशुंभ-रूपी गजराजों (को विदीर्ण करने) के लिये रणमें सिंहिनीरूप, आपने क्रोधरूपी समुद्रमें शत्रुओंके झुंडके झुंड डुबा दिये। ४। हे गुर्वि! वेदों, नारदपाञ्चरात्रादि तंत्रशास्त्रोंको आपके भारी गुणोंका वर्णन करना बहुत अगम है। पृथ्वीके धारण करनेवाले शेषजी जिनके (दो) हज़ार जिह्वाएँ हैं (वेभी) आपके गुण गान करतेही रहते है*। (अर्थात् सहस्र जिह्वासे गुणगान कहते हुएभी पार नहीं पाते)। हे मां! मैं तुलसीदास श्रीराम-

*किसीने 'गुर्वि' को 'अगम' का और किसीने 'गुण' का विशेषण माना है। हमने इसे संबोधनभी माना है और गुणका विशेषणभी। वीर-कविजीने 'उर्बिधर कहत जेहि०' पाठ देकर अर्थ किया है कि 'जिसके हज़ार जीभ हैं वेभी यही कहते हैं।'

चन्द्ररूपी श्याम घनका चातक बनूँ यही प्रण, यही प्रेम और यही दृढ़ नेम मुझे दें।

८ 'रामासि बामासि बर बुद्धि बानी।' इति। 'रामा' 'बामा' आदिके अनेक अर्थ कोशोंमें मिलते हैं। टीकाकारोंने भिन्नभिन्न अर्थ किये हैं। रामा = सुन्दर स्त्री। गानकलामें प्रवीण स्त्री। लक्ष्मी, सीता, रुक्मिणी, राधा, इत्यादि। (श० सा०)। बामा = स्त्री, दुर्गा, सुंदरी। स्त्रीरूपा (रा० त० ब०) अत्यंत सुंदर स्त्रीरूपा। (वै०)। टेढ़ी (पं० रा० क०)। 'बाम' का एक अर्थ 'वामदेव शिव' भी है। इस तरह 'वामा' शिवपत्नी, पार्वतीजी है। 'वामा' षोडशवर्षकी अवस्थावाली स्त्रीकोभी कहते हैं। बानी (वाणी) = सरस्वती वाणीके दो रूप हैं। एक वाचाशक्ति, दूसरे सरस्वती। टीकाकारोंमेंसे अधिक 'रामा' का अर्थ 'लक्ष्मी', पं. राजकुमारजी 'सुंदरी' और पं. रामवल्लभाशरणजी 'सबको रमानेवाली' ऐसा अर्थ करते हैं। वियोगीहरिजीने शब्दार्थ तो 'सुंदरी, रमणीया' दिया है, पर भावार्थमें 'लक्ष्मी' अर्थ दिया है। 'रामासि बामासि बरबुद्धि बानी' के अर्थ इस प्रकार भिन्न भिन्न किये गये हैं।

(१) '(दासोंकेलिये) लक्ष्मी, (परोपकारार्थ) पार्वती और बुद्धिमती सरस्वती तुम्हीं हो।' (दी०, वीर०, वि०)। यह अर्थ बहुत अच्छा है पर एक कठिनाई आ पड़ती है कि आगे, 'संभुजाया' फिर कहाही है। यह कह सकते हैं कि लक्ष्मी, ब्रह्माणी और पार्वती तीन रूपसे हो, पर हो तीनों आपही, यह ऐश्वर्य है। यथा देवी भागवते, '**नूनं सर्वेषु देवेषु नाना नामधरो ह्यहम्। भवामि शक्तिरूपेण करोमि च पराक्रमम्॥ गौरी ब्राह्मी तथा रौद्री बाराही वैष्णवी शिवा। वारुणी चाथ कौबेरी नारसिंही च वैष्णवी॥ उत्पन्नेषु समस्तेषु कार्येषु प्रविशामि च॥**' अर्थात् ईश्वरकी जब सृष्टि करनेकी इच्छा होती है तब उनकी सगुण शक्ति विष्णु आदि भिन्नभिन्न देवताओंमें और घटपटादि पदार्थोंमें प्रविष्ट हो जाती है। जैसे महाकाश एक होनेपरभी घटाकाश, मठाकाशादिभेदसे

---

† भट्टजीकृत अर्थ–'अपने मेघसमान श्यामस्वरूप रामजीमें ऐसा प्रेम०'।

भिन्नभिन्न आकाशका व्यवहार होता है, वैसेही शक्ति एक होनेपरभी शक्तिमत् वस्तुके भेद होनेसे शक्तिभी बहुत प्रकारकी प्रतीत होती है। ऋग्वेदके दशम मण्डलके १२५ वें सूक्तमें आदिशक्ति जगदंबा कहती है कि 'मैं एक होते हुएभी अपनी शक्तिसे नाना रूप भासती हूँ।' अर्थात् मैंही गौरी हूँ, मैंही ब्राह्मी हूँ, मैंही रौद्री, वैष्णवी, शिवा इत्यादि हूँ और माधुर्यमें आप भवानी हैं, शिवपत्नी हैं।

(२) सुंदरी हो, (शत्रुओं वा दुष्टोंकेलिये) टेढ़ी हो और आपकी बुद्धि और वाणी श्रेष्ठ है। (पं. रा. कु.)। इस अर्थमें यह शंका उठतीही नहीं।

पं. देवदत्तशास्त्रीजी कहते हैं कि "कविने माता पार्वतीकी वन्दना की है, जिसके द्वारा यह भाव प्रदर्शन किया है कि माँ तू सर्वशक्तिशालिनी शक्ति है। तुझमें सृजन्, पालन और संहारकी शक्ति है। सुतरां अवसरके अनुसार तूही सुख शीलकी सीमा है, और तूही शीलरहित भयंकरभी है। तूही परम सुन्दरी है और तूही टेढ़ी है। श्रेष्ठ बुद्धि और वाणी तूही है। कवि अपनी सीधी सच्ची तोतली भाषामें पुत्र बनकर कह रहा है कि मां समयानुसार तू सब कुछ बन सकती है। यदि उमा, माहेश्वरी, पार्वती, त्रिपुरसुन्दरी तेरे रूप हैं, तो काली, कपाली, कराली, कंकाली, भीमा, छिन्नमस्ताभी तो तेरेही रूप हैं।

कवि युगका प्रतिनिधि होता है। राष्ट्रधर्म और समाजका ज़िम्मेदार संरक्षक होता है। तुलसीदास ऐसेही कवि थे। कहना न होगा कि इस्लामी अत्याचारोंसे वे बिलबिला उठे थे। फिरभी तटस्थ रहना चाहते थे किन्तु धर्मका पतन चुपचाप देखनाभी अन्याय समझकर उन्होंने माँ शक्तिसे प्रार्थना की जिसमें दोनों भाव निहित हैं कि मुझे तो अपने राम घनश्यामका पपीहा बनाइये और चंड मुंड महिषके समान आचरण करनेवालोंका मद रूपी भङ्ग कर अंग चूरचूर कर दीजिये। कविको विश्वास है कि यह कार्य शक्तिही कर सकती है। विना शक्तिके कोई समर्थ नहीं हो सकता। '**कलौ चण्डी विनायकौ**' कलियुगमें चण्डी और विनायकही सद्यः फल देते हैं।

छमुख, हेरम्बकी माता कहनेका मुख्य तात्पर्य उस इतिवृत्त और अतीतका स्मरण दिलाना है जिस समय पार्वतीजीने इन दोनों पुत्रोंको विशेष कार्यके लिये असुरोंके संहारकेलिये उत्पन्न किया था।

कविने यहांपर पार्वतीके युग्मरूपोंका वर्णन किया है। एक तो सुशील, दूसरे शीलरहित। परमसुंदर तथा अत्यन्त कराल और माता (जगत्की) तथा पत्नी (शिवजीकी)। शक्तिकी मुख्यतया दोही शक्तियां हैं, परा और अपरा। यहाँ दोनों प्रकारकी शक्तियोंका ध्यान है, सामंजस्य है।

'छमुख' इति। ऊपर शब्दार्थमें 'छमुख' के जन्म और नाम आदिकी एक कथा लिखी गयी है।

महाभारत वनपर्वमें युधिष्ठिरजीके प्रश्न करनेपर इनके जन्मादिकी जो कथा मार्कण्डेयजीने कही है वह कुछ भिन्न प्रकारकी है। वे कहते हैं कि पूर्वकालमें असुरोंकी सदा देवसेनापर विजय देख इंद्र मानस-पर्वतपर जाकर एक श्रेष्ठ सेनापति प्राप्त करनेकेलिये विचार करने लगे। इतनेमें केशीके हाथोंमें पड़ी आर्त्तस्वरसे चिल्लाती हुई प्रजापतिकी कन्या देवसेनाको देख उन्होंने केशी दैत्यको मारकर उसे छुड़ाया। फिर कन्याका परिचय पाकर और यह जानकर कि वह अपनी मौसेरी बहिन है उससे पूछा कि तू कैसा पति चाहती है। उसने कहा कि "जो देवता, दानव, यक्ष, किन्नर, नाग, राक्षस और दुष्ट दैत्योंको जीतने वाला महान् पराक्रमी और अत्यन्त बलवान् हो तथा जो तुम्हारे साथ मिलकर सबपर विजय प्राप्त करे ऐसा ब्रह्मनिष्ठ मेरा पति हो।" ऐसा कोई नर न देखकर वे ब्रह्माके पास गये। उन्होंने कहा कि अग्निके द्वारा ऐसा पराक्रमी बालक होगा। वसिष्ठादि ब्रह्मर्षि देवर्षि एक यज्ञ कर रहे थे जिसमें देवता आ आकर अपने भाग ग्रहण करते थे। आवाहन करनेपर अग्निदेवभी वहां आये। ऋषिपत्नियोंको देखकर अग्निदेवकी इंद्रियाँ चंचल हो गयी। परन्तु ऋषिपत्नियां बड़ी पतिव्रता और शुद्धहृदया थीं। वे वनको चले गये। उनकी पत्नी स्वाहाको जब यह मालूम हुआ तो उसने एकही दिन एक एककर सप्तर्षियोंमेंसे छः की पत्नियोंका रूप

धारणकर अग्निको तथा अपनी कामाग्निको शान्त किया। वह प्रत्येक बारका वीर्य हाथमें लेकर एक स्वर्णकुण्डमें रखती गयी। अरुन्धतीके तप और पातिव्रत्यके प्रभावसे वह उनका रूप धारण न कर सकी। उस कुण्डसे ऋषिपूजित एक बालक उत्पन्न हुआ। स्खलित वीर्यसे उत्पन्न होनेके कारण उसका नाम स्कन्द हुआ। उसके छः सिर, बारह कान, बारह नेत्र, बारह भुजाएँ तथा एक ग्रीवा और एक पेट था। प्रतिपदाको वीर्य स्खलित हुआ, द्वितीयाको बालक अभिव्यक्त हुआ, तृतीयाको शिशु रहा और चतुर्थीको अंगप्रत्यंगसे संपन्न हो गया। महादेवजीके त्रिपुरनाशक धनुषको स्कन्दने उठा लिया और सिंहनाद करने लगे। यह डरकर कि कहीं यह हमारा राज्य न छीन ले, इन्द्रने चढ़ायी की। स्कन्दने अपने मुखसे धधकती हुई अग्निकी ज्वालाएँ छोड़ीं। सब देवसेना छिन्न भिन्न हो उनकी शरण आनेपर बची। इंद्रने वज्र चलाया। उसके लगनेसे उनके अंगसे एक और दिव्य पुरुष उत्पन्न हुआ। यह देख इंद्र डरकर शरण गया। इंद्रके कहनेपरभी स्कंदने इंद्र बनना स्वीकार न किया। दानवोंके विनाश, देवताओंकी अर्थसिद्धि तथा गौ और ब्राह्मणोंके हितकेलिये देवसेनापतिके पदपर उनका अभिषेक किया गया। शक्ति, धर्म, बल, तेज, कान्ति, सत्य, उन्नति, ब्रह्मण्यता, असम्मोह, भक्तोंकी रक्षा, शत्रुओंका संहार और लोकोंकी रक्षा करना ये सब गुण जन्मतःही उनमें हैं। कन्या देवसेनाका विवाह उनके साथ कर दिया गया।

ऋषियोंने बालक उत्पन्न होनेका समाचार पाकर अपनी पत्नियोंको त्याग दिया, यद्यपि विश्वामित्रने कहाभी कि उनका दोष नहीं है। तब वे स्कंदकी शरणमें आयी और कहा कि हम तुम्हारी माता बनना चाहती हैं। तुम्हें अपना पुत्र बनाना चाहती हैं। तुम हमारी रक्षा करो। स्कन्दने उनकी बात स्वीकार कर ली।

तदनन्तर ब्रह्माजीने उनसे कहा, तुम अपने पिता महादेवजीके पास जाओ, क्योंकि संपूर्ण लोकोंके हितकेलिये भगवान् रुद्रने अग्निमें और उमाने स्वाहामें प्रवेश करके तुम्हें उत्पन्न किया है।

कार्तिकेयजीके वस्त्र, भाल, रथके घोड़े, सभी लाल रंगके थे। शरीरपर सुवर्णका कवच था और सूर्यके समान सुनहली कान्तिवाले रथमें वे विराजमान थे। उन्होंने महिषासुरका सिर अपनी एक प्रज्वलित शक्ति छोड़कर काट डाला।

पद्मपुराण सृष्टिखण्डमें कार्तिकेयके जन्मकी कथा इस प्रकार है। श्रीशङ्करजीको पार्वतीजीके साथ निवास करते एक हज़ार वर्ष बीत गये। तत्पश्चात् श्रीपार्वतीजी शय्यासे उठकर कौतुहलवश एक सरोवरके तटपर गयी जो स्वर्णमय कमलोंसे सुशोभित था। वहां जाकर उन्होंने जलविहार किया। तदनन्तर वे सखियोंके साथ सरोवरतटपर बैठीं और उसके निर्मल पंकजोंसे सुशोभित स्वादिष्ट जलको पीनेकी इच्छा करने लगीं। इतनेमेंही उन्हें सूर्यके समान तेजस्विनी छः कृत्तिकाएँ दिखायी दीं। वे कमलके पत्तोंमें उस सरोवरका जल लेकर जब अपने घरको जाने लगीं तब पार्वतीजीने उनसे कहा 'देवियो! कमलके पत्तेमें रक्खे हुए जलको मैंभी देखना चाहती हूँ।' वे बोलीं 'सुमुखि! हम तुम्हें इस शर्तपर जल दे सकती हैं कि तुम्हारे प्रिय गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न हो वह हमाराभी पुत्र माना जाय एवं हममेंभी मातृभाव रखनेवाला तथा हमारा रक्षक हो।' गिरिजाने 'एवमस्तु' कहा। कृत्तिकाओंने कमलपत्रमें स्थित जलमेंसे थोड़ासा उनको दे दिया। जल पीनेके बाद तुरंतही रोगशोकका नाशक एक सुंदर और अद्भुत बालक भगवतीकी दाहिनी कोख फाड़कर उत्पन्न हुआ। उसका शरीर सूर्यकिरणोंके समान प्रकाशपुंजसे व्याप्त था। उसने अपने हाथोंमें तीक्ष्ण शक्ति, शूल और अंकुश धारण कर रक्खे थे। वह अग्निके समान तेजस्वी और स्वर्णके समान गोरे रंगका बालक कुत्सित दैत्योंको मारनेकेलिये प्रकट हुआ था, इसलिये उसका नाम 'कुमार' हुआ। वह कृत्तिकाके दिये हुए जलसे शाखाओंसहित पैदा हुआ था। वे कल्याणमयी शाखाएँ छहों मुखोंके रूपमें विस्तृत थीं, इन्हीं सब कारणोंसे वह तीनों लोकोंमें विशाख, षण्मुख, स्कन्द, षडानन और कार्तिकेय आदि नामोंसे विख्यात हुआ। ब्रह्मा, विष्णु, इंद्र और सूर्य आदि समस्त देवताओंने चंदन, माला, धूप, खिलौने, छत्र, चँवर,

भूषण और अङ्गराग आदिके द्वारा कुमारको सावधानीके साथ विधि-पूर्वक सेनापतिके पदपर अभिषिक्त किया। भगवान् विष्णुने सब तरहके आयुध प्रदान किये। कुबेरने दसलाख यक्षोंकी सेना दी। अग्निने तेज और वायुने वाहन अर्पित किये। इसप्रकार देवताओंने स्कन्दको अनन्त पदार्थ दिये और उनकी स्तुति की और तारकसे भयभीत होनेका हाल बताया। कुमारने उनका भय दूर करनेकी प्रतिज्ञा की। इंद्रने तारकको संदेशा भेजा।

कुमारको देख तारक बोला "बालक! तू क्यों युद्ध करना चाहता है? जा, गेंद लेकर खेल। तेरे ऊपर जो यह महान् युद्धकी विभीषिका लादी गयी है, यह तेरे साथ बड़ा अन्याय किया गया है। तू अभी निरा बच्चा है, इसीलिये तेरी बुद्धि इतनी अल्प समझ रखनेवाली है।" कुमार बोले, 'तारक! सुनो, यहां शास्त्रार्थ नहीं करना है। भयंकर संग्राममें शस्त्रोंद्वाराही अर्थकी सिद्धि होती है। तुम मुझे शिशु समझकर मेरी अवहेलना न करो। साँपका नन्हासा बच्चाभी मौतका कष्ट देनेवाला होता है। बालसूर्यकी ओर देखनाभी कठिन होता है। इसीप्रकार मैं बालक होनेपरभी दुर्जय हूँ। दैत्य! क्या थोड़े अक्षरोंवाले मंत्रमें अद्भुत शक्ति नहीं देखी जाती?'

कुमारकी बातें सुनतेही दैत्यने उनपर मुद्गलका प्रहार किया। युद्ध छिड़ गया। कुमारने अंतमें अपनी शक्ति हाथमें ली और दैत्यके प्राण हर लिये। (पुलस्त्यभीष्म संवाद)

९ (क) 'छमुख हेरंब अंबासि' से संतानकी योग्यता और परोपकारता, 'जगदंबिके' से निज श्रेष्ठता और 'संभु जाया' तथा 'भवानी' से पतिकी श्रेष्ठता, इस तरह तीन प्रकारसे श्रेष्ठता दिखायी। (ख) 'संभु जाया' और 'भवानी' शब्दोंसे गोस्वामीजीने अपना निश्चित सिद्धांत प्रकट किया है कि शक्ति शक्तिमान्‌से पृथक् नहीं है। वह कभी शक्तके बिना नहीं रह सकती। शक्ति और शक्त अभिन्न हैं। (ग) 'जय जय' में आदरकी विप्सा है। (घ) 'भवानी' कहकर जनाया कि ये भव (शंकरजी) की शक्ति हैं। 'भवानी' से नित्य-

संबंध भवका जनाया है और छमुख हेरंबकी माता होनेसे 'शम्भुजाया' नाम सार्थक है।

१० (क) 'चंड भुजदंड खंडनि' इति। चंडके संबंधमें 'भुजदंड खंडनि', 'मुंड' की 'बिहंडनि' और महिषासुरके संबंधमें 'मद भंग करि अंग तोरे' कहकर क्रमसे एकसे दूसरेको अधिक बलवान दिखाया, और फिर शुंभ निशुम्भको मत्त गजराज तथा भवानीको 'केसरिनि' कहकर इनको सबका राजा वा अन्य सबोंसे श्रेष्ठ जनाया। (ख) 'रन केसरिनि' इति। भाव कि इनको धोखेसे, छिपकर वा शाप देकर नहीं मारा वरंच संग्राममें सम्मुख लड़कर मारा और सहजही एवं उत्साहपूर्वक मारा जैसे सिंह गजराजको बड़े चावसे मारता है। (ग) 'महिषमद भंग करि अंग तोरे' से सूचित किया कि महिषासुरका वध कठिन था। उसको अपने बलका बड़ा अभिमान था, बड़ा गर्व था। यह बात सप्तशतीके दूसरे चरितसे स्पष्ट है। इसके वधकेलिये सब देवताओंकी शक्तियाँ एकत्र हुईं थीं और उस पुञ्जीभूत शक्तिकेद्वारा महिषासुरका बध हुआ था।

११ महिषासुर बध चरितसे शिक्षा—इस चरित्रमें संघशक्तिका महत्त्व प्रत्यक्ष है। एक देवीकी शक्ति, संभव है, महिषासुरके लिये पर्याप्त न होती। इसीलिये सभी देवोंकी शक्तियां समवेत हुईं और इस प्रकार समवेत हुईं कि उनका एकही स्वरूप बन गया। इस चरितमें मधुपानकी बात आयी है। यहांपर मधुका अर्थ है 'उत्साहका साधक, बाह्य उपकरण'। अपनी शक्ति कितनीभी प्रबल हो परन्तु यदि उसके उत्साह वर्धक और उसकी सहायताकेलिये बाहरी साधन उपयोगमें न लाये जायँ तो कार्य-सिद्धिमें शिथीलता आ जाना संभव है। (श्रीबलदेवप्रसाद मिश्र एम० ए०, एल एल० बी०)

१२ 'क्रोध बारिध बैरि बृंद बोरे' इति। इससे शुंभ निशुंभके सेनापतियों और सेनाका नाश कहा। ये भगवतीका भारी क्रोध देख उसीकी आहुति हो गये, उतनेसेही उनका काम तमाम हो गया। पुनः भाव कि क्रोधमें आकर किसी वैरीको आपने जीता न छोड़ा।

वैरिवृन्दसे धूम्रलोचन और रक्तबीज आदि सेनाध्यक्षोंकाभी वध कह दिया।

१३ दार्शनिक दृष्टिसे इन कथाओंका महत्व—महिषासुरको मोह कहा गया है। यथा '**महामोह महिषेसु बिसाला। रामकथा कालिका कराला।**' (बा० ४६)। आहारविहाररूपी शरीर विकारोंपर अंकुश लगानेपरभी महिषासुररूपी मोहका दमन किये बिना मानवजीवनरूपी जगत्की स्थितिही डाँवाडोल हुआ करती है। तदनन्तर अहंकार और विषयसुखरूपी शुंभ निशुंभके सेनाध्यक्ष, आलस्यरूपी धूम्रलोचन, राग-द्वेषरूपी चण्डमुण्ड और वासनारूपी रक्तबीजके संहारके साथहीसाथ स्वयं उन शुंभ निशुंभकाभी वध करना पड़ता है। आध्यात्मिक दृष्टिसे इन्हीं वधोंमें शक्तिकी महत्ता है। जबतक अपनी शक्ति इतना सामर्थ्य नहीं रखती तबतक वह मुक्ति अथवा मुक्तिके सच्चे फल नहीं दे सकती। (श्रीबलदेवप्रसाद मिश्रजी एम० ए०, एल एल० बी०)

१४ महिषासुर और शुंभ निशुंभादिके चरितोंके आध्यात्मिक भाव— 'त्रिविध कर्मसंस्कार वा वासनाबीजही मुक्तिके बाधक हैं। सूक्ष्म विचारसे ये सत्व, रज तथा तमोगुणरूपमें परिचित हैं। चण्डीके प्रधान तीन अंशोंमें इन तीनों संस्कारोंसे परित्राण पानेके पथ एकएक करके तीन चरितोंमें दिखाये गये हैं। (१) मधुकैटभवधमें, (२) महिषासुर वधमें और (३) शुम्भवधमें। पहलेमें देवीने जगत्पालक विष्णुभगवान्को योगनिद्रासे जागृत कर मधुकैटभ नामक असुरद्वयको विनष्ट करनेमें सहायता की। दूसरेमें देवीने सब देवताओंकी सम्मिलित शक्तिके रूपमें आविर्भूत होकर सिंहवाहिनीकी मूर्ति धारण कर महिषरूपी महिषासुरका निधन किया। तीसरेमें देवीने जगद्धात्रीकी मूर्तिमें शुंभ निशुंभ नामक दो भाइयोंका संहार किया।

मधुकैटभनिधन सत्यप्रतिष्ठा, महिषासुरवध चैतन्यप्रतिष्ठा और शुंभवध आनंदप्रतिष्ठा है। माँ हमारी सच्चिदानंदस्वरूपा हैं। पहले माँके अस्तित्वकी उपलब्धि होनी चाहिये। यही साधनाका प्रथम स्तर है। इस स्तरमें जीवभावका विनाश होता है, आसक्तिका मूल छिन्न हो

जाता है, भावी कर्मका बीज विनष्ट होता है, जीव आसक्तिशून्य होकर कर्म करनेको प्रवृत्त होता है, जिससे उसके संचित कर्मबीजका नाश होता है। महिषासुर वधके आख्यानमें संचित कर्मसंस्कारसमूहही असुरोंके रूपमें वर्णित हुए हैं। मन बुद्धि इन्द्रिय समूहकी जो परमात्म-मुखी गति वा परमात्मासे मिलनेका प्रयास है वही देवशक्ति है, और उनकी विषयाभिमुखी लालसाही असुर वा सुरविरोधिनी शक्ति है।

गी० अ० १६ में संपदाओंका विभाग यों किया गया है। 'अभय, सत्त्वशुद्धी, आत्मज्ञान प्राप्त करनेकी निष्ठा, दान, इंद्रियसंयम, यज्ञ, वेदाध्ययन, तपस्या, सरलता, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शांति, दया, अपैशुन, निर्लोभता, मृदुता, लज्जा, धीरता, तेज, क्षमा, धृत्ति, शौच, अद्रोह और निरभिमानिता' देवताओंकी संपदाएँ हैं और 'भय, अशुद्धि, दंभ, दर्प, अभिमान, क्रोध, निष्ठुरता तथा अज्ञान' असुर सम्पदाएँ हैं।

प्रथम आख्यानमें सत्त्वगुणके बहिर्विकासरूपी संस्कारद्वय मधुकैटभके नामोंसे वर्णित हुए हैं। द्वितीय आख्यानमें रजोगुणके विकाससे उत्पन्न पूर्व जन्मोंके संचित संस्कार असुरवृंदके रूपमें वर्णित हुए हैं। जितनी कामना वासना हैं और गीतोक्त दंभ, दर्प, अभिमान इत्यादि असुर सम्पदाएँ हैं ये रजोगुणकी स्थूल सम्पदाएँ हैं। दूसरी ओर रजोगुणके नाना अंतर्मुखी विकासही देवगण हैं। 'मुझे मैं नहीं जानता, अतएव अपने आपको अवश्य जानना चाहिये' इस भावसे उत्पन्न जो चेष्टा होती है वह रजोगुण प्रसूत है। इस चेष्टाके कारण धीरे धीरे अपने आपको जानना सत्त्वगुण है और अपने आपको जाननेके विषयमें निश्चेष्टता तमोगुण है। शुम्भवधके आख्यानकी सहायतासे ज्ञानमयस्तरसे मुक्त होकर जीव किस प्रकार आनंदमय स्तरको पहुँचता है, यह दिखाया गया है।

जीव पहले इन तत्त्वोंको हृदयङ्गम नहीं कर सकता। जब वह इनको जाननेकेलिये व्यस्त होता है, तब उसके हृदयमें देवासुर संग्रामका आरंभ होता है। तब उसे प्रत्यक्ष होता है कि माँ स्वयं समरक्षेत्रमें अवतीर्ण होकर सुरविरोधी भावसमूहका विलोप कर रही है। वह चाहती

है कि अपने प्रिय पुत्रको निरुपद्रव करे, अपने हृदयमें आबद्ध रक्खे। किन्तु मैं (पुत्र) चाहता हूं कि स्वतंत्रतासे खेलूं, कूदूं और जगत्‌की धूल देहपर लगाकर जन्ममृत्युके फंदेमें फँस जाऊँ। क्या माँ यह देख सकती है ? इसीलिये माँ मेरे तीनों खेल घरोंको तोड़ देनेकी चेष्टा करती है। चण्डीरूपमें माताका आविर्भाव कदाचित् यही व्यक्त करता है।' (कल्याणसे)।

१५ 'निगम आगम अगम०' इति। 'निगम आगम अगम' कहकर 'कथन उरगिधर करत०' कहनेका भाव कि निगमादिकभी दुर्गम हैं। यह जानकरभी शेषजी वर्णन करतेही हैं। पर हज़ारों जिह्वाओं-सेभी कहकर अबतक पार न पा सके। तब यह निश्चय है कि वे पार पानेके-लिये गुणगान नहीं करते वरंच अपनी जिह्वाओं तथा अपनी वाणीकी सफलताके हेतु ऐसा करते हैं। अतएव मैं आपका गुण कथन करनेको कब समर्थ हो सकता हूँ। फिरभी आपकी दया और प्रसन्नता हेतु कुछ टूटा फूटा कहताही हूँ। ऐसाही रामचरितके विषयमें कहा है। यथा '**सब जानत प्रभु प्रभुता सोई। तदपि कहे बिनु रहा न कोई॥**', '**बुध बरनहिं हरिजस अस जानी। करहिं पुनीत सुफल निज बानी॥**' (बा०)। शिवजीके चरितके सम्बन्धमेंभी कहा है कि, '**चरितसिंधु गिरिजारमन बेद न पावहिं पारु। बरनै तुलसीदासु किमि अति मतिमंद गँवारु॥** बा० १०३॥' तथा '**यस्य गुनगन-गनति बिमलमति सारदा निगम नारद प्रमुख ब्रह्मचारी।**' (पद ११)। श्रीरघुनाथजीके बारेमेंभी अनेक स्थलोंपर ऐसाही कहा गया है। यथा '**निगम सेष सिव पार न पावहिं**'। इससे शंका होती है कि "तब क्या सभीके चरित निगम शेषादि गाया करते हैं और सभीके चरित अपार हैं ?"

इसके सम्बन्धमें यह जान लेना आवश्यक है कि गोस्वामीजीने भगवान् शंकर, श्रीगणेशजी, श्रीसूर्यनारायण, श्रीपार्वतीजी इत्यादिकी जब जब वंदना की है तब तब वे श्रीरामजीके अंगदेव या श्रीरामभक्त या श्रीरामरूप अर्थात् श्रीरामजीके आवेशावतार और अनादि इत्यादि

जानकरही की है। इन सभी हालतोंमें उनके चरित अपार होंगेही। भक्त और भगवान्‌में अभेद है। अग्रस्वामीजीने जब नाभाजीसे भक्तोंके चरित लिखनेको कहा, तब उन्होंने यही कहा था कि भक्तका चरित अपार है, भगवान्‌के चरित कथनसेभी अगम है। यथा "**बोल्यो करजोरि याको पावन न ओरछोर गाऊँ रामकृष्ण नहीं पावउँ भक्त दाँवको**"। गोस्वामीजीभी कहते हैं, "**बिधि हरि हर कबि कोबिद बानी। कहत साधु महिमा सकुचानी॥**" सब देवता अनादि कहे गये हैं, यह बात गोस्वामीजीने शिवपार्वतीविवाहके समय स्वयं कहा है, यथा "**मुनि अनुसासन गनपतिहि पूजे संभु भवानि। कोउ सुनि संसय करइ जनि सुर अनादि जिय जानि॥**" इसका प्रमाण श्रुतियोंमेंभी मिलता है। श्रुतियाँ हमें बताती हैं कि इस सृष्टिके पूर्वकी सृष्टिमें जिस प्रकार सूर्य, चन्द्रमा आदिकी सृष्टि थी उसी प्रकारकी सृष्टि इस बारभी ब्रह्माने की। इससे स्पष्ट है कि सूर्यादि सभी देवता प्रत्येक सृष्टिके पूर्व थे। अतएव वे अनादि कहे गये। यथा, '**सूर्यचन्द्रमसौधाता यथा पूर्वमकल्पयेत्।**' (यजुः)। श्रीनारदपञ्चरात्रमें कहा है कि भगवान्‌के अवतारोंके दो भेद हैं, मुख्य और गौण। अपने चिन्मय शरीरसे अवतीर्ण होनेवाले विग्रहको मुख्य और किसी कार्यविशेषकेलिये किसी जीवविशेषमें जिस समय भगवान् प्रविष्ट हो जाते हैं उसे गौण या आवेशावतार कहते हैं। यथा, '**ब्रह्मरुद्रार्जुन व्याससहस्रकरभार्गवाः। ककुत्स्थात्रेय कपिलबुद्धाद्या ये सहस्रशः॥ शक्त्यावेशावतारास्तु विष्णोस्तत्कालविग्रहाः। अनुपास्या मुमुक्षूणां यथेन्द्राग्न्यादि देवताः॥** (नारदपंचरात्र विष्वक्सेन-संहिता)। जिस आवेशावतारके द्वारा जोभी कार्य भगवान् करते हैं वह कार्य उसीके नामसे कहा जाता है कि जिसमें वे आवेशित रहते हैं। उस समय उसकी जोभी प्रशंसा की जाती है वह भगवत्‌रूपसे होती है। इसीलिये उसका कोई अन्त या पार नहीं पा सकता। यही बात शिव, ब्रह्मा, देवी आदिमें रहती है। तभी उनके लिये कहा गया है कि '**निगम आगम अगम**'।

श्रीरामतापिनीयोपनिषत् आदिके भाष्यकार बाबा श्रीहरिदासजी लिखते हैं कि "जैसे सर्व उपनिषदोंकी एकवाक्यता करनेपर शिव, शंकर, ईश्वर और महेश्वर आदि सामान्य शब्दोंसे वाच्य काशीपतिमें कारणत्व न आकर शिव शंकर रुद्रादिसे वाच्य रामही सिद्ध होकर सर्वकारण सिद्ध होते हैं, इस तरह दुर्गा, भवानी, काली आदिकेलिये यदि कहीं कारण शब्द आवे तो वहभी इनके पतिके स्वामी एवं सर्वशेषी श्रीराममेंही पर्यवसित होनेसे सर्व शास्त्रोंका समन्वय होता है। 'विश्वरूपस्य ते राम विश्वे शब्दादि वाचकाः। तथापि मूलमंत्रस्तेविश्वेषां बीजमक्षयम्॥' (पाद्मे उ०) संपूर्ण शब्द रामजी के ही वाचक हैं। क्योंकि संपूर्ण विश्व आपका शरीर है, तोभी आपका मूलमंत्र संपूर्ण ब्रह्माण्डका अक्षय बीज है। इस वाक्यसेभी यही निश्चय होता है।

१६ 'देहि मा मोहि पनु पेमु यहु नेम०' इति। (क) इसके अर्थ लोगोंने भिन्न-भिन्न किये हैं। (१) प्रेमपनका दृढ़ नेम अर्थात् निर्वाह। (पं० रा० कु०) (२) प्रतिज्ञासहित प्रेमका यह नेम कि आप श्रीरघुनाथजी स्वातीके श्यामघन है। (वै०) (३) प्रेमका पन और यह निश्चित नियम ग्रहण करनेकी शक्ति दो। (दी०)

सं. १६६६ वाली पोथीमें 'पनु पेमु नेमु' तीनोंमें उकार है। इससे यह निश्चय हैं कि तीनों बातें माँगते हैं। पपीहामें ये तीनों हैंभी। प्रेम है, नेम है और उसका हठपूर्वक निर्वाहभी है। '**रामनाम नव नेह मेहको मन हठि होहि पपीहा**' मेंभी प्रण वा प्रतिज्ञाका उपदेश है। हठ करके रामनाम प्रेमरूपी स्वातीका चातक बननेको कह रहे हैं। दोहावलीके 'चातक चौंतीसा' को इस रूपकका भावार्थ समझिये।

(ख) 'पन' कहते हैं 'प्रतिज्ञा' अर्थात् दृढ़ संकल्पको। यथा '**यह तन सती भेंट मोहि नाहीं। सिव संकल्प कीन्ह मन माहीं॥**' इसपर आकाशवाणी हुई कि '**अस पनु तुम्ह बिनु करै को आना।**' तब सतीजीके मनमें शंका हुई और उन्होंने प्रश्न किया कि '**कीन्ह कवन पन कहहु कृपाला।**' (बा० ५६)। इससे सिद्ध हुआ कि 'पन' और

३२

'संकल्प' पर्यायवाची शब्द हैं। प्रथम संकल्प होता है कि मैं यह काम करूँगा तब उसकेलिये नियम बाँधा जाता है।

(ग) 'मा' इति। ऊपर 'जगदंबिके' संबोधन किया है। आप जगत्‌की माता हैं और मैं जगत्‌में हूँ, इस प्रकार मेरीभी माता हुईं। दूसरे शंभु-जाया और भवानी होनेसेभी माता पुत्रका सम्बन्ध उनमें और अपनेमें कायम किया। यथा 'गुर पितु मातु महेस भवानी। प्रनवौं दीनबंधु दिन दानी।' विशेष पद ११ देखिये। दो पदोंमें स्तुति की गयी क्योंकि उनके दो रूप हैं, एक विद्या दूसरी अविद्या, एक परा दूसरी अपरा।

१६ [२०] रागु सारंग[1] [रामकली]

जय जय जगजननि देवि सुरनरमुनिअसुरसेवि
भगत[2] भू[3]तिदायिनि[4] भयहरनि कालिका।
मंगल मुद[5] सिद्धिसदनि[6] पर्वसर्वरीसबदनि[7]
तापतिमिरितरुनतरनि किरिनमालिका ॥१॥

---

१. ६६ और रा० में 'सारंग' है, औरोंमें 'रामकली' है। 'सारंग' संपूर्ण जातिका एक राग है जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। शास्त्रोंमें यह मेघरागका सहचर कहा गया है। पर कुछ लोग इसे संकर राग मानते हैं और नट मल्लार तथा देवगिरिके संयोगसे बना हुआ बतलाते है। इसकी स्वरलिपि इस प्रकार कही गयी है, 'सा रे ग म प ध नि सा। सा नि ध प म ग रे सा। सा रे ग म प प ध प प म ग म प म ग रे।' 'रामकली' भी संपूर्ण जातिकी है पर यह रागिनी है। यह भैरवरागकी स्त्री मानी जाती है और इसके गानेका समय प्रातःकाल १ दंडसे ५ दंडतक है। इसमें ऋषभ तथा निषाद कोमल लगते हैं। २ भगत—६६। भक्त—भा०, रा०, ५१, टी०, मु०, डु०। (टीकामें), ७४। भुक्ति—ह०। भक्ति—बे०, प्र०, ज०, आ०। ३ भूति—६७, रा०, भा०, बे०, डु०, मु०। मुक्ति—ज०, ह०, वै०, भ०, ७४, दी०, वि०। ४ दायनि—भ०, ७४। ५,६,७. ६६ में 'मुदि' 'सदन' और 'सर्व्वईस' पाठ हैं। ज० में 'सदन, बदन' है और ६६ मेंभी। अन्य सबोंमें उपरोक्त पाठ है। 'सर्व्व ईस' का अर्थ मेरी समझमें नहीं आता।

बर्म चर्म कर कृपान सूल सेल[8] धनुष बान
धरनि दलनि दानवदल रन करालिका ।
पूतना पिसाच प्रेत साकिनि[9] डाकिनि समेत
भूत ग्रह बेताल खग[10] मृगाल जालिका ॥२॥
जय महेसभामिनी[11] अनेकरूपनामिनी
समस्त लोकस्वामिनि[12] हिमसैलबालिका ।
रघुपतिपद परम प्रेम तुलसी चहै[13] अचल नेमु
देहि ह्वै प्रसन्न पाहि प्रनतपालिका ॥३॥

शब्दार्थः–सेवि=सेवित । 'सेवी' का यह रूप समास और संबोधनमें आता है । भूमि ऐश्वर्य, राजश्री, धनसंपत्ति। यथा 'धरम नीति उपदेसिय ताही । कीरति भूति सुगति प्रिय जाही ॥' (अ०) । दायिनि (दायिनी) =देनेवाली । दाय=दान । मुदमंगलसिद्धि=पद १ देखिये । कालिका=शुंभ-निशुंभके अत्याचारोंसे पीड़ित इंद्रादिक देवताओंकी प्रार्थनापर एक मातंगी प्रगट हुई जिसके शरीरसे इनका आविर्भाव हुआ। इनका वर्ण काला था, इसीसे इनका नाम 'कालिका' पड़ा। यह उग्र भयोंसे रक्षा करती हैं। इनका नाम 'उग्रतारा' भी है। इनके सिरपर एक जटाभी हैं। इसीसे ये 'एकजटा' भी कहलाती हैं। इनका ध्यान इस प्रकार है। कृष्णवर्णा, चतुर्भुजा, दाहिने ऊपरके हाथमें खड्ग, नीचेमें पद्म, बायें ऊपरके हाथमें कटोरी और नीचेमें खप्पर, बड़ी ऊँची एक जटा, गलेमें मुंडमाला और सर्प, लाल नेत्र, काले वस्त्र, कटिमें बाघम्बर, बायाँ पैर शिवजीकी छातीपर और दहिना सिंहकी पीठपर, भयंकर अट्टाहास

---

८ सेल्ह–भा०, बे०। सैल–प्र०। ९ डाकिनि साकिनि–प्रायःऔरोंमें। १० खग मृगालि–भा०, बे०, ५१, ह०, आ० । खग मृगाल–प्र०, ज०, १५। खग मृगाल–६६, रा०, दी०, ६९ । ७४ में 'प्रमथ ग्रह खगालि हेतु' पाठ है । ११ भामिनि–रा०, मु०, डु०। १२ स्वामिनि–६६, रा०, ह०, डु०, ७४, मु० । स्वामिनी-भा०, बे०, प्र०, ज०, १५, ५१, आ० (डु०, मु०) । १३ चहै-६६, रा०, भा०, ह०, मु० । चह–बे०, १५, डु०, वै०, वि०, ७४ ।

करती हुई। इनके साथ महाकाली, रुद्राणी, उग्रा, भीमा, घोरा, भ्रामरी, महारात्रि और भैरवीं ये आठ योगिनियांभी हैं। इनका महत्त्व कालिका-पुराणमें वर्णित है। मार्कण्डेय पुराणमेंभी इनकी सविस्तार कथा है। विशेष टि० ५ में लिखा गया है। पर्व=पुण्यकाल। धर्म पुण्यकार्य उत्सव करनेका समय। अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या, पूर्णिमा, संक्रांति ये सब पर्व हैं। पर यहां शरदपूर्णिमासे तात्पर्य है। सर्ब्बरीस (शर्बरीश)= शर्बरी (रात्रिके)+ईश (स्वामी) चन्द्रमा। तिमिर=अंधकार। तरुन तरनि (तरुण तरणि)=दोपहरका सूर्य। किरिन (किरण)=रोशनीकी लकीर, ज्योतिकी अति सूक्ष्म रेखाएँ जो प्रवाहके रुपमें सूर्य, चंद्र, दीपक आदि प्रज्वलित पदार्थोंसे निकलकर फैलती हुई दिखायी देती हैं। मालिका (सं०)=पंक्ति; माला। वर्म=कवच, ज़िराबख्त। लोहेकी कड़ियोंके जालका बना हुआ पहनावा जिसे योधा लड़ाईके समय पहनते हैं। कृपान=खड्ग, द्विधारा तलवार अर्थात् जिसके दोनों ओर धार हो। दानव=दनुजकी संतान। पद ३ देखिये। दल=सेना। करालिका=भयङ्करा, भयावनी। पूतना=यह शिवजीकी बनायी हुई बालग्रहोंमेंसे एक है। (वै०) सुश्रुतके अनुसार एक बालग्रह या बालरोग जिसमें बच्चेको दिनरातमें कभी अच्छी नींद नहीं आती, पतले और मैले रंगके दस्त होते रहते हैं; शरीरसे कौवेकीसी गंध आती है, बहुत प्यास लगती है और क्षय होती है तथा रौंगटे खड़े रहते हैं। कार्त्तिकेयकी एक माताकाभी नाम है। (श० सा०)। पिशाच=ये यक्षों और राक्षसोंसे हीन कोटिके कहे गये हैं। मरुस्थल इनका स्थान है। ये बहुत अशुभ और गन्दे कहे गये हैं। युद्धक्षेत्रोंमें इनके वीभत्सकाण्डोका वर्णन कवि लोगोंने किया है, जैसे खोपड़ीमें रक्तपीना आदि। (श० सा०) मांसाहारी भूत। (वै०, दी०)। भूत=ये एक प्रकारके पिशाच हैं जो रुद्रके अनुचर हैं। इनका मुंह नीचेकी ओर लटका हुआ या ऊपरकी ओर उठा हुआ माना जाता है। ये बालकोंको पीड़ा देनेवाले ग्रहभी कहे जाते हैं। वेताल भूतोंकी एक योनि है जो साधारण भूतोंके प्रधान माने जाते हैं और प्रायः श्मशानोंमें रहते हैं। वैद्यकके अनुसार एक भूतग्रह जिसका आक्रमण होनेसे प्राणीमें बहुतसे दोष आ जाते हैं। वह प्रायः काँपता

रहता है, सच बोलता है और फूल, माला, सुगंध आदि बहुत पसंद करता है। (ज्वालामुखी वा अगिया वेतालभी इन्हींके नाम हैं।) प्रेत = मृतजीव जो वायुरूपसे अपने सम्बन्धियोंको सताते रहते हैं। ग्रह = बालग्रह। बालकोंके प्राणघातक नौ ग्रह – स्कंद, स्कंदापस्मार, शकुनी, रेवती, पूतना, गंधपूतना, शीतपूतना, मुखमंडिका और नैगमेय। कहते हैं कि जिस घरमें देवयाग और पितृयाग आदि न हो, देवता, ब्राह्मण और अतिथिका सत्कार न हो, आचार विचार आदिका ध्यान न रहता हो, उसमें उन ग्रहोंमेंसे कोई ग्रह घुसकर गुप्तरूपसे बालककी हत्या कर डालता है। यद्यपि बालकपर भिन्नभिन्न ग्रहोंके आक्रमणका भिन्नभिन्न परिणाम होता है, तथापि कुछ लक्षण ऐसे हैं जो सभी ग्रहोंके आक्रमणके समय प्रकट होते हैं। जैसे बच्चेका बार बार रोना, उद्विग्न होना, नाखूनों या दाँतोंसे अपना या दूसरोंका बदन नोचना, दाँत पीसना, होंठ चबाना, भोजन न करना, दिल धड़कना, बेहोश होना इत्यादि। (पद ११ भी देखिये)। मृगाल = मृगकुल, मृगसमूह, हिरनों वा पशुओंका झुंड। जालिका (सं०) = पाश, फंदा, जाल। भामिनी = स्त्री। नामिनी = नामोंवाली। स्वामिनी = स्वामीका स्त्रीलिंग। हिमसैल = हिमाचल। बालिका = कन्या। पालिका = पालन करनेवाली।

पद्यार्थ—हे जगत् माता! हे देवि! हे सुर, नर, मुनि और असुरोंसे सेवित! भक्तोंको राजश्रीकी देनेवाली और उनके भयकी हरनेवाली कालिके! आपकी जय हो, जय हो। मुद, मंगल और सिद्धियोंकी निवासस्थान, शरद्पूनोके चन्द्रमाके समान मुखवाली, (दैहिक, दैविक, भौतिक तीनों) तापरूपी अंधकारके (नाशके) लिये दोपहरके सूर्यके किरणसमूहरूप! आपकी जय हो, जय हो। १। (शरीरपर) कवच, हाथोंमें ढाल, तलवार, त्रिशूल, बरछी, धनुष और बाण धारण करनेवाली, दानवदलको (रणमें) दलन करनेवाली, संग्राममें महाविकराल, पूतना, पिशाच, प्रेत, शाकिनी, डाकिनी सहित (समस्त) भूत, ग्रह और वेतालरूपी पशु पक्षी समूहके (फाँसनेके) लिये जालरूप! आपकी जय हो। २। हे अनेक रूपों और नामोंवाली, सब लोकोंकी स्वामिनी,

हिमाचलराजकी कन्या, महेशपत्नी ! आपकी जय हो ! तुलसीदास रघुनाथ· जीके चरणोंमें अतिशय परिपूर्ण प्रेम और अटल नेम चाहता है। (अर्थात् इसीकी लालसा हृदयमें है।), हे प्रणतका पालन पोषण करनेवाली ! मेरी रक्षा कीजिये (मैं शरण हूँ) और प्रसन्न होकर मुझे यह वर दीजिये। ३।

टिप्पणी—१ 'जगजननि', 'सुरनरमुनिअसुरसेवि', 'भूत दायिनी' इति। आप जगज्जननी हैं, इसीसे असुरोंसेभी सेवित हैं। पुनः दूसरा कारण 'असुर सेवि' होनेका 'भूतदायिनी' है। असुरोंको सदा विषयसुखभोगकी चाह रहती है। भक्तों और सुरमुनिसे सेव्य हैं क्योंकि उनकेलिये सदा 'भयहरनि', 'मुक्ति मुद मंगल सिद्धि' की देनेवाली और तापत्रयकी नाशिनी हैं जिससे फिर मोक्षकी प्राप्ति है। देवताओंको सदा असुरोंसे भय रहता है। उनका ऐश्वर्य जब छिन जाता है तब असुरोंको मारकर पुनः उनको आप स्थापित करती हैं। मनुष्योंको भूत प्रेतादिका भय रहता है उसको हरती हैं और उनको मुद मंगल और ऐश्वर्य देती हैं। देवी माता है, इसीसे असुरभी उसके पास जानेमें नहीं डरते। माताके प्रेमकी प्रशंसाभी यही है कि कपूत संतानभी उससे वंचित न रहे। 'कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।' मिस मेयोने कालीघाटके मंदिरपर आक्षेप तो किया पर रहस्यको नहीं समझा कि आसुरीवृत्तिवाले (अपनी आसुरी संपत्तिके अनुसार) उसी प्रकारसेही तो (बलि इत्यादिसे) पूजन करेंगे। बाइबिल और कुरान-मेंभी तो बलिदानकी महिमा लिखी है। परन्तु दुर्गा सप्तशतीमेंभी द्विजधर्मियोंकेलिये धूप, दीप इत्यादि पूजनका विधान है। वे वैष्णवी कही गयी हैं। इसीसे देवीका पूजा विधान जितना विभिन्न है, उतना किसी देवताका नहीं। कारण कि वहाँ किसीकी मनाही नहीं है। सभी पहुँचते हैं। (लमगोड़ाजी) प्रकृति सब प्रकारका रूप धारण कर सकती है, प्रकृति देवता प्रसव करती है, प्रकृति मनुष्यकी सृष्टि करती है। प्रकृतिसे धार्मिक सौम्य, विविध गुण विशिष्ट प्रजाकी उत्पत्ति होती है, प्रकृतिसे घोर, अधार्मिक,

असौम्य, सर्वदोषागार और सब मनुष्योंमें क्षोभ पैदा करनेवाली कुसंतानभी पैदा होती है। अतएव मूलप्रकृति वा शक्तिको जगज्जननी कहते हैं। हमारे धर्मग्रंथोंमें अखण्ड, अपरिच्छिन्न, सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामी और सर्वस्वरूपी ईश्वरके संबंधमें जगत्पिता और जगत्माताका भाव सर्वत्र मिलता है। **'त्वमेव माता च पिता त्वमेव' 'माता धाता पितामहः।'** वे हमारी माताभी है और पिताभी। इसीसे हमारे यहां पूर्णब्रह्म दो रूपमें विभक्त देखा जाता है। शक्तिसहित-ब्रह्म ब्रह्म है। श्रीब्रह्मस्वरूपिणी परम वा आद्याशक्ति श्रीसीतादेवीको 'सर्ववेदमयी, सर्वदेवमयी, सर्वशास्त्रमयी और सर्वलोकमयी' इत्यादि कहा गया है। वे श्रीरामसे अभिन्न हैं। वे **'श्रीरामसान्निध्यवशाज्जगदानन्दकारिणी। उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणी सर्वदेहिनाम्॥'** हैं। ब्रह्मसे अभिन्न अपृथक् होनेसे सच्चिदानंदत्व, जगन्निया-त्मकत्व, जगदुद्भव स्थिति भङ्गकर्त्तृत्व, सर्वकर्मफलप्रदत्व आदि ब्रह्मके धर्म परमशक्तिमेंभी पूर्णतया घटित होते हैं। उसी पराशक्तिके कलांशसे जगत्की सृष्टि, स्थिति और संहारकेलिये अगणित उमा, रमा और ब्रह्माणी उत्पन्न होती हैं। **'जासु अंसु उपजहिं गुनखानी। अगनित उमा रमा ब्रह्मानी।'** महाशंभुसंहितामेंभी यही कहा है। यथा **'सीताद्यलांशाद्ब्रह्मयश्च शक्तयः सम्भवन्ति हि।'** और सदाशिवसंहितामें श्रीसाकेतधामवर्णनमें **'तन्मध्ये जानकी देवी सर्वशक्तिनमस्कृता'** शब्दभी इसी सिद्धांतके प्रतिपादक हैं। महारामायणमें शिवजीभी यही कह रहे हैं। यथा **'जानक्यंशाद्धिसंभूताऽनेक ब्रह्माण्डकारिणी। सामूलप्रकृतिर्ज्ञेया महामायास्वरूपिणी॥'** वही ब्रह्मशक्ति तीन कार्योंकेलिये 'महासरस्वती, महालक्ष्मी और महाकाली' त्रिमूर्ति रूप प्रकट करती है जो ब्रह्मा, विष्णु और महेश त्रिदेवकी शक्तियाँ हैं। अतएव ये सब जगज्जननी हैं। इनके सौंदर्यपर मुग्ध होकर इनको अपनी बनानेकी इच्छा करना अपनी माँको अपनी स्त्री बनाना है। इस अधर्मका फल सर्वनाश है। चण्डमुंडने 'कौशिकी' का सुंदर रूप देख शुंभनिशुंभको यही सम्मति दी कि उन्हें अपनी भार्या बनाइये। उसका फल उनको मिला।

२ (क) 'भयहरनि' कहकर 'कालिका' कहनेका भाव कि

आपने भयहरणार्थही महाविकराल स्वरूप धारण किया है। नहीं तो आप तो 'मंगल सिद्धि सदनि पर्बशर्बरीसबदनि' हैं।

(ख) 'पर्ब्ब सर्ब्बरीस बदनि' इति। शिवा वा कौशिकीकी सुन्दरताके विषयमें चंडमुंडने शुंभनिशुंभसे कहा है, "हे दानवपति! हिमालयपर एक अति लावण्यमयी परममनोहर रमणी बैठी है। वैसा मनोज्ञरूप आजतक किसीने नहीं देखा। आपके पास ऐरावत हाथी, पारिजात तरु, उच्चैश्रवा अश्व, ब्रह्माका विमान, कुबेरका ख़ज़ाना, वरुणका सुवर्णवर्षी छत्र तथा अन्य विविधरत्न विद्यमान् हैं, पर ऐसा स्त्रीरत्न नहीं हैं। अतः आप उसे ग्रहण कीजिये।" इसीसे 'शरद्-चन्द्रवदनी' कथन ठीकही है।

शरद्चन्द्र आह्लादकारी, शीतल और तापहारक है। यथा 'सरदातप निसि ससि अपहरई'। वैसेही आपके दर्शनसे भक्तोंको आनंद प्राप्त होता है, उनके त्रैताप नाश होते हैं।

बाबा हरिहरप्रसादजी 'सर्बरीसबदन' से 'समाधिनिशाकी प्रकाशिनी, आह्लादक और तापहर' का भाव कहते हैं और 'तरुन तरनि' से 'प्रचंडवृषादित्य (जेठके सूर्य) अथवा चित्रातरनि (आश्विनके सूर्य)' का अर्थ करते हैं।

(ग) 'ताप तिमिरि तरुन तरनि' इति। तापको अंधकार कहा। इसीसे भगवतीको तरुण सूर्यकी किरणमालिका कहा। ताप बहुत प्रकारके होते हैं। इसीसे 'किरणमालिका' की उपमा दी। 'पर्ब्बसर्ब्बरीसबदनि' में वाचकधर्मलुप्ता और 'तापतिमिर' में परंपरितरूपक अलंकार है।

(घ) 'ब्रर्म चर्म कर कृपान०' इति। (क) कवच तो शरीरमें पहिना जाता है और चर्म, कृपाण, त्रिशूल, सेल्ह, धनुष और बाण हाथोंमें धारण किये जाते हैं। यहाँ छः अस्त्र शस्त्र धारण करना कहकर षट्भुजा मूर्तिकी स्तुति सूचित की। यहाँ अष्टभुजाका ध्यान है क्योंकि बरछी और त्रिशूल दो दो हाथोंसे मारनेकेलिये पकड़े हैं।

(ङ) 'रन करालिका' इति। खड्गसे अंग काटकर खप्परमें शत्रुका रक्त लेना तथा उसे पीना इत्यादिसे 'करालिका' कहा।

(च) ' पूतना पिसाच प्रेत साकिनि डाकिनि खग मृगाल जालिका ' इति। भाव कि आपके स्मरण मात्रसे ये सब दुष्ट ग्रह ऐसे बेबस हो जाते हैं जैसे जालमें फँसे हुए पशु पक्षी। यहां परंपरित रूपक है। पूतना पिशाचादिको खग मृग कहा इससे देवीको ' जालिका ' कहा। आगेका ' जय ' शब्द दीपदेहरी है। उसका अन्वय इस अंतरेमेंभी है।

३ (क) ' महेश भामिनी अनेक रूप नामिनी ' इति। संहार वा तमोगुणके अभिमानी देवता महादेवजी हैं। उनकी संहारिणी शक्तिही दुर्गा, काली, चण्डी आदि हैं। महेशभामिनी और हिमशैलबालिका कहकर कालिकाको पार्वतीजीका रूप और शक्तिमन् शिवजीसे अभिन्न बताया। पद १५ देखिये।

(ख) ' हिमशैलबालिका ' कहकर यहभी जना रहे हैं कि शुंभ निशुंभद्वारा अपने अधिकारोंके छिन जानेपर देवताओंने जब हिमालयपर जाकर दयार्द्रहृदया देवीकी दिव्य ज्ञानमयी वंदना की तब पार्वतीजीही उस पर्वतपर गंगातटपर प्रगट हुई थीं और उन्हींके शरीरसे अंबिका, शिवा जो कौशिकी नामसे प्रसिद्ध हैं निकली थीं और वही पार्वती तब कृष्णवर्णा कालिका हो गयी थीं। इस तरह इस पदमेंभी शिवशक्तिकीही वंदना है।

(ग) ' अनेक रूप नामिनी ' इति। दश विद्याएँ एवं षोडश महाविद्याएँ आपही हैं। मातंगी, बगलामुखी, धूमावती, छिन्नमस्ता, श्रीभैरवी, भुवनेश्वरी, दुर्गा, त्रिपुरसुंदरी, तारा, काली, षोड्शी, महागौरी, कुशमांडा, चंदघंटा, पार्वती, उग्रतारा, एकजटा, सती, गिरिजा, भवानी, शिवा, कमला, चण्डी इत्यादि अनेक नामसे आप प्रसिद्ध हैं। औरभी नाम महाभारत भीष्मपर्व दुर्गास्तवनमें मिलते हैं। उमा, शाकंभरी, श्वेता, कृष्णा, कैटभनाशिनी, हिरण्याक्षी, विरूपाक्षी, सुधूम्राक्षी, कपिला, कृष्णपिंगला, कुमारी, भद्रकाली, जया, विजया, स्वाहा, स्वधा, कला, काष्ठा, सरस्वती, सावित्री (वेदमाता), वेदान्त, जंभिनी, मोहिनी, माया, ह्री, श्री, संध्या, प्रभावती, तुष्टि, पुष्टि, धृति आदि आपके नाम हैं। (भीष्मपर्व दुर्गास्तवन)

(घ) 'लोकस्वामिनी' इति। जगज्जननी, महेशभामिनी इत्यादिके संबंधसे आप 'लोकस्वामिनी' कही गयी है। अन्य सब शब्दोंके विशेष भाव पूर्व आ चुके हैं।

(ङ) 'कालिका' इति। पं० श्रीहरिवक्षजी जोशी काव्यसांख्यस्मृति-तीर्थ लिखते हैं कि 'इंद्रादि देवताओंके अधिकार छिन जानेपर वे सब हिमालयपर जाकर देवीकी स्तुति करने लगे। उस समय भगवती पार्वती आयीं और उनके शरीरसे शिवा प्रकट हुईं। सरस्वतीदेवी पार्वतीके कोष शरीरसे निकली थीं, इसलिये उनका कौशिकी नाम प्रसिद्ध हुआ। कौशिकीके निकल जानेके बाद पार्वतीका शरीर काला पड़ गया, इस-लिये कालिका कहते हैं। तदनंतर भगवती कौशिकी परम सुंदररूप धारण कर बैठी हुई थीं। उन्हें चण्ड मुण्ड नामक शुंभ निशुंभके दूतोंने देखा और जाकर अपने स्वामीको सूचना देकर कहा कि ऐसा स्त्रीरत्न आपके यहाँ नहीं है। अतः आप उसे ग्रहण कीजिये। शुंभ निशुंभने अपने सुग्रीव-दूतको देवीको प्रसन्न करके ले आनेको भेजा। देवीने कहा कि मैंने यह प्रतिज्ञा कर ली है कि जो मुझे संग्राममें जीतकर मेरे दर्पको चूर्ण करेगा वही मेरा पति होगा। यह संदेशा सुनकर कुपित हो उन्होंने अपने सेनापति धूम्रलोचनको युद्ध करनेकेलिये भेजा। देवीने उसे सेनासहित मार डाला। इसी प्रकार चण्ड मुण्डकोभी मारा। तब शुंभ निशुंभने समस्त सेना लेकर देवीको चारों ओरसे घेर लिया। इसीसमय ब्रह्मा, विष्णु, महेश, कार्तिकेय और इंद्रादिके शरीरोंसे शक्तियाँ निकलकर चंडिकाके पास आयीं। वे देवियाँ जिसकी शक्ति थीं, तत्तत्शक्तिके अनुरूप स्वरूप, भूषण और वाहनसे युक्त थीं। उस समय देवीके शरीरसे अति भीषण चंडिका शक्ति प्रगट हुई और शिवजीसे बोली कि 'आप हमारे दूत बनकर उनसे जाकर कह दें कि यदि जीना चाहें तो त्रैलोक्यका राज्य इंद्रको देकर पाताललोकको चले जायँ।' शंकरजीने आज्ञा सुना दी। पर पर वे बलगर्वित दैत्य कब माननेवाले थे? युद्ध छिड़ा। शक्तियोंद्वारा आहत होकर दानव सेना गिरने लगी। तब क्रुध होकर रक्तबीज युद्धमें आया। इस दानवके रक्तसे उत्पन्न दानवसमूहसे संपूर्ण युद्धस्थल भर

गया जिससे देवगण काँप उठे। तब चंडिकाने कालीसे कहा कि तुम अपना मुख फैलाकर इसके शरीरसे निकले हुए रक्तका पान करो। जब क्षीणरक्त होगा तब यह मारा जायगा। फिर देवीने रक्तबीजपर शूल प्रहार किया। उससे जो रक्त निकला उसे काली पीती गयीं। क्षीणरक्त होतेही वह धराशायी हो गया। तत्पश्चात् शुंभनिशुंभभी मारे गये। इस प्रकार महासरस्वतीने यह रूप धारण किया।' 'इसी तरह जब महिषासुर इंद्र बन बैठा तब देवताओंकी आर्त्तवाणी सुनकर भगवान् विष्णु तथा शंकरजी कुपित हुए और उनकी भृकुटी चढ़ गयी। उनके शरीरसे एक महान् तेजपुंज निकला और वह एकत्रित होकर पार्वतीकीतरह संपूर्ण दिशाओंको दैदीप्यमान् करता हुआ नारी शरीर बन गया। उस देवीने अट्टहास किया। महिषासुर इस भयंकर गर्जनाको सुनकर आया और तेजःपुंज महालक्ष्मीको उसने देखा। युद्ध हुआ। सब मारे गये।' (शक्ति अंकसे)

४ 'जय जय जगजननि देवि देहि है प्रसन्न पाहि प्रनतपालिका' इति। देव्यस्तुतिका प्रसंग अभी समाप्त नहीं हुआ। तारतम्य लगाही है। पूर्वपदसेभी अधिक उत्कृष्टता महिमा इस पदमें गायी है। अथवा यों कहिये कि देव्यस्तुतिका यह चरम उपसंहार है। इस स्तुतिसे शक्तिकोही अखिल ब्रह्माण्डकी अधिनायिका माना है। इस पदके अंतिम चरणमें आये हुए वाक्य 'देहि' और 'पाहि' बड़े मार्केके हैं। ये आत्मकल्याण और लोककल्याणकी भावनासे ओतप्रोत हैं। इन्हीं दोनों वाक्योंसे दोनोंकी संगति बैठती है और प्रार्थिव भावोंका उपसंहार होता है। तुलसीदासजी दृढ़ नियमोंसे जकड़े हुए रामप्रेमकी माँग करते हैं कि 'माँ! मैं रघुपतिपद परमप्रेम चाहता हूँ। 'है प्रसन्न अचल नेम देहि' और 'हे प्रणतपालिका पाहि रक्षा कर' इन दो पदोंसे उन्होंने अपने जीवनकालके युगका सजीव चित्र खींचा है। समझनेवाले समझें। गोस्वामीजी प्रारंभसेही अपनी जीवनी कहते, विनंती करते, आ रहे हैं। कविकी आत्माही तो काव्य है। (दे० द० शास्त्री)

६ भगवती और असुर युद्धका आध्यात्मिक रहस्य-(पं० श्रीकला-

धरजी त्रिपाठी) गीतामें इसका रहस्य इस प्रकार है। ‘ जो अहंकार, बल, दर्प, काम एवं क्रोधका अवलंबन करते हैं, वे अपने और दूसरेके शरीरमें स्थित मुझसे द्वेष करते हैं। मेरी आज्ञाका उल्लंघन करते हैं और सन्मार्गमें स्थित पुरुषोंके गुणोंको सहन न करके उनकी निंदा करते हैं। ’ श्रीदुर्गासप्तशतीके उत्तम चरित्रमें वर्णित सात प्रधान असुरोंकी इन सातोंके साथ इस प्रकार तुलना होती है।

गीताके असुर	सप्तशतीके असुर	
१ अहंकार–	शुंभ। शुम्भ हिंसायां, भावे घञ्। आत्मन्यद्वैतभावसंपन्नः अहंकारः ’ (बृहदा० ४।५)	
२ ममत्व –	निशुंभ। (नि+शुम्भ) हिंसायां। भावे घञ्।	
३ काम –	रक्तबीज। रक्तमनुरागः बीजं कारणमस्य (रज्यते अनेनेतिरागः, कामः)।	
४ क्रोध –	धूम्रलोचन। धूम्रवर्णं रक्तकृष्णवर्णं लोचनं यस्य सः।	
५ बल –	चण्ड। चंडि कोपे।	चंड मुंडनेही शुंभसे आसक्तिपूर्ण शब्दोंमें भगवतीके सौंदर्यका वर्णन किया था और बल दर्पपूर्वक पकड़ लानेको येही दोनों भेजे गये थे।
६ दर्प –	मुण्ड। मुंडि खण्डने	
७ परिग्रह –	सुग्रीव। इसे परिग्रह कहा क्योंकि इसने देवीसे परिग्रहकी बात कही।	

रक्तबीजको काम कहा। क्योंकि पूर्वजन्ममें यह ‘ रम्भ ’ था और इसीका पुत्र महिषासुर था। महिषा काम अथवा इच्छाको कहते हैं। संगसे कामकी उत्पत्ति होती है। अतएव जब रक्तबीजका रक्तबिंदु पृथ्वीपर गिरता था तो अनेक रक्तबीज उत्पन्न हो जाते थे। इसका यही आध्यात्मिक रहस्य है।

शुंभ निशुंभ अहंकार और ममत्व हैं। ये ‘अहं’ और ‘मम’ दोनों एकही ‘असमत्’ शब्दसे होनेके कारण शुंभ निशुंभकी तरह भाई भाई हैं। इन्हीं अहंकार और ममत्वके वशमें समस्त त्रैलोक्य प्राणी हुए।

सप्तशती अ० ५ श्लो० १०८–११४ में शुंभकेलिये 'मम' और 'अहं' शब्दोंका प्रयोग अनेक बार हुआ है।

इस समस्त विवेचनासे यह सिद्ध होता है कि जिस प्रकार श्रीगीतामें अहंकारादिका त्याग करके ब्रह्मभूत होनेका उपदेश है, उसी प्रकार श्रीदुर्गासप्तशतीमें श्रीआद्याशक्तिद्वारा उपर्युक्त सात असुरोंके पराजयोपरान्त देवताओंके परमभावके ज्ञानसे शान्ति प्राप्त होनेका वर्णन है। इसी परम-भावको जगदम्बिकाने शुंभके प्रति कहा है, 'इस संसारमें मैं एकही हूँ। मुझसे अतिरिक्त दूसरा कौन है?' इससेभी एकेश्वरवादही प्रतिपादित होता है।

महिषा काम वा इच्छाको कहते है। यह जब परमात्मामें लगी रहे तब कल्याणदायिनी है और जब भोगादिमें लगी रहे तब विघ्न-स्वरूपा है। इच्छा द्वेष और उससे उत्पन्न हुए द्वन्द्वोंके वशीभूत होकर स्वर्ग-भोग प्राप्त प्राणी श्रीभगवदाराधनानंदको भूल जाते हैं। इसीतरह देवता स्वर्गीय भोगैश्वर्य प्रसक्त होकर परमभावकी उपासनाको विस्मृत कर बैठे थे। इसी कारण वे निजाधिकारोंसे च्युत हुए। यही महिषासुरका इंद्रासन छीन लेना है। पीछे जब वे हरिहरकी शरणमें गये और श्रीभगवतीका साक्षात्कार किया, तब उस देवीने उनकी रक्षा की और असुरोंका नाश किया। देवता मोह मुक्त हुए। यही बात गीतामें अ० ७ में कही गयी है। 'समस्त जीवधारी इच्छा तथा द्वेषसे उत्पन्न द्वन्द्वद्वारा मोहित होकर मुझे भूल जाते हैं।' तथा 'जो मुझे जानता है वह मोहरहित है। वह सब पापोंसे विमुक्त हो जाता है।' देवता सब जानने लगे कि उसमें जो शक्ति है वह सब उसी परमेश्वरीकी है और स्वर्गप्राप्त भोगैश्वर्यका कारण जो फल है उसकी देनेवालीभी वही पराशक्ति है। (शक्तिअंकसे)

१७ [२२]

जय[1] भगीरथनंदिनि[2] मुनिचय चकोर चंदिनि[3]
नरनागबिबुधबंदिनि[4] जय जन्हुबालिका।

---

१ जय–६६, रा०, भा०, बे०, ज०, मु०, डु०, टी, ७४,। जय जय–प्र०, इ०, वें०, दी०, वि०, भ०। २ नंदिनि, ३ चंदिनि, ४ बंदिनि–

बिष्णुपदसरोजजासि ईस सीस पर बिभासि
त्रिपथगासि पुण्यपासि[5] पापछालिका ॥१॥
बिमल बिपुल बहसि बारि सीतल त्रयतापहारि
भँवर बर बिभंगतर तरंगमालिका।
पुरजन पूजोपहार सोभित ससि धवलधार
भंजनि[6] भवसार भक्तकल्पथालिका[7] ॥२॥
निज तटबासी बिहंग जल चर[8] थल पसु पतंग
कीट जटिल तापस सब सरिस पालिका।
तुलसी तव तीर तीर सुमिरत रघुबंसबीर
बिचरत मति देहि मोह महिष कालिका ॥३॥

शब्दार्थ :—नंदिनि (नंदिनी)=आनंद देनेवाली, कन्या। नंद=हर्ष, आनंद। चय=समूह। चंदिनि (सं० चंद)=चाँदनी, चंद्रिका, चंद्रमाका प्रकाश। यथा 'चैत चतुरदसी चंदिनि अमल उदित निसिराज। उडगन अवलि लसीं दस दिसि उमगत आनंदु आज।' (गी०) चाँदनी रात (वै०, डु०)। नाग=महाभारत आदिपर्व अ० ३, ५, ८, १२ और वराहपुराणमें इनके उत्पत्तिसंबंधमें यह कथा है कि सृष्टिके आरंभमें कश्यपजी उत्पन्न हुए। अपनी पत्नियों कद्रु और विनतापर प्रसन्न होकर उनसे वर माँगनेको कहा। कद्रुने एक हजार तेजस्वी नाग पुत्र मांगे और विनताने दो पुत्र मांगे जो कद्रुके पुत्रोंसे अधिक बली और तेजस्वी हो। एवमस्तु कहकर मुनि वनको चले गये। काल पाकर कद्रूके एक सहस्रनाग पुत्र हुए जिनमेंसे अनंत, वासुकी, कंबल, कर्कोटक, पद्म,

---

६६, टी०, ह०, ५१। नंदनी, चंदनी, बंदनी--रा०। नंदिनी, चंदिनी, बंदिनी—बे०। नंदनी, चंदनि--भा०, बे०,। चंदनि--भ०, ज०। वंदनि-बे०, ज०। नन्दिनि, चन्दिनि, बन्दिनि-- मु०, ७४, वि०। ५ पासि--६६ रा०, भा०, बे०, प्र०, ज०, च०। रासि-ह०, ५१, ७४, आ०। ६ भंजन भू—भा०, ज०,। भंजन भुवि—७४। भंजनि भू—प्र०। भंजनि भव—औरोंमें। ७ भक्त—६६, रा०, भा०, बे०, ह०, डु०, वै०, ७४, प्र०, ज०। भक्ति—५१, मु०, भ०, दी०, वि०। ८ थलचर—प्राय: और सबोंमें।

महापद्म, शङ्ख, कुलिक और अपराजित आदिभी हैं। ये सब नाग कहलाये। इनकी गिनतीभी देवताओंमें है। इनके पुत्र पौत्र बहुतही विषधर हुए जिससे प्रजा क्रमशः क्षीण होने लगी। प्रजाने जाकर ब्रह्माजीके यहां पुकार की। ब्रह्माजीने नागोंको बुलाकर कहा कि जिस प्रकार तुम हमारी सृष्टिका नाश कर रहे हो, उसी प्रकार माताके शापसे तुम्हाराभी नाश होगा। नागोंने डरते डरते कहा 'महाराज! आपहीने तो हमें कुटिल और विषधर बनाया। हमारा क्या अपराध है? अब हम लोगोंके रहनेके लिये कोयी अलग स्थान बताइये जहां हम लोग सुखसे पड़े रहें। ब्रह्माजीने उनके रहनेके लिये पाताल, वितल और सुतल ये तीन स्थान या लोक बतला दिये। एक बार कद्रूने विनतासे कहा कि सूर्यका घोड़ा उच्चैःश्रवा श्वेत रंगका है पर पूछ काली है। उसपर विनताने कहा कि सफ़ेद है। कद्रूने कहा, यदि तुम्हारी बात ठीक हुई तो मैं तुम्हारी दासी बनूंगी और मेरी बात ठीक निकली तो तुम मेरी दासी होगी। दोनोंमें यह बाजी लगनेपर कद्रूने अपने पुत्रोंको आज्ञा दी कि तुम सब शीघ्रही काले बाल बनकर उच्चैःश्रवाकी पूंछ ढक लो। जिन सर्पोंने आज्ञा न मानी उनको कद्रूने शाप दे दिया कि तुम लोग जनमेजयके सर्पयज्ञमें अग्निसे जलकर भस्म होगे। इस तरह सर्पकुलका नाश हुआ। जो धर्मात्मा नाग थे वे बच गये। उनकी रक्षा जरत्कारु ऋषिके पुत्र आस्तीकद्वारा हुई। शेषनागने पूर्वही तपस्यासे ब्रह्माको प्रसन्न कर लिया और ब्रह्माने उनको पृथ्वीको सिरपर अचल धारण करनेकी आज्ञा दी। अष्टकुली नागदेवोंकी पूजा होती है। बंदिनि ('बंदि'का स्त्रीलिंग) = वंदनीय वंदन किये जाने योग्य। जह्नु = ये एक राजर्षि थे। जब भगीरथजी गंगाजीको लेकर आ रहे थे तब ये मार्गमें यज्ञ कर रहे थे। विघ्नके भयसे उन्होंने गंगाजीको पी लिया। फिर भगीरथजीके बहुत प्रार्थना करनेपर उन्होंने गंगाजीको अपने जानुसे निकाल दिया था। तभीसे गंगाजीका एक नाम 'जाह्नवी' अर्थात् जह्नुकी कन्या पड़ा। इनका एक आश्रम गंगोत्रीपर और दूसरा गंगासागरके पास है। सरोजजासि = (सरोज + जा + असि) सरोजसे उत्पन्न हुई हो। यह विशेषण स्त्रीलिंगवाचक है। ईस (ईश) = शिवजी।

विभा = शोभा, सुन्दरता। विभासि = शोभारूप हो, विभासना (चमकना, विशेष शोभा देना) से 'विभासि'। विशेष शोभायमान् शोभित। त्रिपथगा = तीन मार्गोंमें चलनेवाली। पुराणानुसार गंगाजीकी तीन धाराएँ हैं। एक स्वर्गमें जिसे आकाशगंगा कहते हैं, दूसरी पृथ्वीपर और तीसरी पातालमें। इसीसे त्रिपथगा नाम पड़ा। मंदाकिनी, गंगा और भोगावती (प्रभावती और पातालगंगा) ये तीन नाम हुए। ब्रह्मवैवर्तपुराणके अनुसार आकाशगंगा एक अयुत योजन लंबी है†। पासि = (पा + असि)। रक्षक, पालक। पुण्यपा = पुण्योंकी रक्षा एवं पालन करनेवाली। पवित्र जलवाली। छालिका (सं० प्रक्षालनसे) = धो डालने, साफ़ कर देनेवाली। बहसि (सं० वहन) = कंधेपर लादकर एक जगहसे दूसरी जगह ले जाना, बहती हो, धारण किये हो। भँवर = आवर्त्त, चक्कर। पानीके बहावमें वह स्थान जहाँ पानीकी लहर एक केन्द्रपर चक्राकार घूमती है। ऐसे स्थानपर यदि मनुष्य या नाव आदि आ पड़ें तो उनके डूबनेकी सम्भावना रहती है। यथा 'नाभि मनोहर लेति जनु जमुन भँवर छबि छीनी'। (बा०) विभंग = विलास, यथा 'भृकुटि भंग जो कालहि खाई'। बर विभंग तर=अत्यंत श्रेष्ठ विलास। (रा० कु०)* तरंग=लहर, हिलोर;

† मिलान कीजिये पं० पु० स्वर्ग० ३१ के 'धर्मद्रवं ह्यपाबीज वैकुण्ठ चरणच्युतम् धृतं मूर्ध्नि महेशेन यद्गाङ्गममलं जलम्। ७५। तद्ब्रह्मैव न संदेहो निर्गुणं प्रकृते परम्। तेन किं समतां गच्छदपि ब्रह्माण्डगोचरे। ७६।' जो धर्मकाही द्रवीभूतस्वरूप है, जलका आदिकारण है। जो भगवान् वैकुंठके चरणोंसे प्रकट हुआ है तथा जिसे भगवान् शंकरने अपने मस्तकपर धारण कर रक्खा है, वह गंगाजीका निर्मल जल प्रकृतिसे पर निर्गुण ब्रह्मही है इसमें तनिकभी संदेह नहीं है। अतः ब्रह्मांडके भीतर ऐसी कौनसी वस्तु है जो गंगाजलकी समता कर सके।

* शब्दसागरमें 'विभंग' के ये अर्थ दिये हुये हैं—१ रचना, २ विभाग, ३ टूटना। श्रीवैजनाथजीने—'बहुत चंचलतासे (अत्यंत श्रेष्ठ

पानीकी वह उछाल जो हवा लगनेके कारण होती है। पुरजन = पुरवासी। पुर शब्द नगर, ग्राम, पुरवार सभी अर्थोंमें कविने प्रयुक्त किया है। अतएव पुरजन=जहाँ जहाँसे गंगाजी बहकर निकली वहाँ वहाँके लोग। पूजोपहार = पूजाका उपहार। ईश्वर, देवता, देवी आदिके प्रति श्रद्धासम्मान प्रकट करनेकेलिये जो कार्य करते हैं वह 'पूजा' कहलाती है। जल, फूल, फल, अक्षत आदि चढ़ाकर पूजा की जाती है। पूजाके तीन भेद पंचोपचार, दशोपचार और षोडशोपचार माने गये हैं। गंध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्यसे जो पूजा होती है वह पंचोपचार; जिसमें पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, मधुपर्क और आचमनभी हो वह दशोपचार और जिसमें आसन, स्वागत, स्नान, वसन, आभरण और वंदनाभी हो वह षोडशोपचार कहलाती है। उपहार = भेंट वा नजर की हुई सामग्री। यथा '**धरि धरि सुंदर बेष चले हरषित हिये। चँवर चीर उपहार हार मनिगन लिये।**' सोभित = शोभासे युक्त या अच्छा लगता हुआ। धार = धारा; पानी आदिका अखंड बहाव या गिराव; ज़ोरका बहावा। भार = बोझा। भवभार = आवागवन। थालिका = थाल्हा, वह घेरा या गड्ढा जिसके भीतर पौधा लगाया जाता है; थाँवला। कीट = कीड़े मकोड़े, रेंगने वा उड़नेवाले क्षुद्र जंतु, अधिकतर विना रीढ़वाले जंतुओंकोही 'कीट' कहते हैं। ये सब उष्मज, अंडज हैं। जटिल = जटाधारी; ब्रह्मचारी। सरिस = एक समान। तापस = तप करनेवाले, शरीरको कष्ट देनेवाले, व्रत और नियम आदि जो चित्तको शुद्ध और विषयोंसे निवृत्त करनेकेलिये किये जायँ 'तप' कहलाते हैं। गीताके अनुसार तप शारीरिक, वाचिक और मानसिक तीन प्रकारके होते हैं। देवपूजन, ब्रह्मचर्य, अहिंसा आदि शारीरिक; सत्य, प्रिय भाषण, वेदादि पठन आदि वाचिक और मौनावलंबन, आत्मनिग्रह आदि मानसिक तपके अन्तर्गत हैं।

तरंगोंकी माला)' ऐसा अर्थ किया है। भट्टजी, दीनजी और वियोगी-जीने 'अत्यंत चंचल' अर्थ दिया है। वीरकविजीने 'ऊँची' अर्थ लिखा है। बाबू शिवप्रकाशजीने 'गति' अर्थ किया है। किसी-नेभी कोई प्रमाण नहीं दिया है।

पद्यार्थ—हे मुनिवृंदरूपी चकोरोंको चाँदनीरूप (सुखदायिनी) भगीरथजीकी पुत्रि ! आपकी जय हो। हे नर (भूलोकवासी), नाग (पातालवासी) और देवता (स्वर्गलोकवासी) अर्थात् त्रैलोक्यनिवासियोंसे वंदित ! हे जान्हवी ! आपकी जय हो। आप भगवान् विष्णुके चरण-कमलसे उत्पन्न हुई, शिवजीके सिरपर विराजनेवाली, (आकाश, पृथ्वी और पाताल) तीनों मार्गोंमें गमन करनेवाली (जाने वा बहने) सुकृतोंका पालन, रक्षा और वृद्धि करनेवाली और पापोंको धो डालने अर्थात् नाश करनेवाली हैं ‡ । १ । आप निर्मल, बहुत (अर्थात् गंभीर और अगाध) जल धारण किये हैं (अर्थात् बहती हैं) जो शीतल और त्रयतापहारी है। आपके भँवर और तरंगसमूहका विलास अत्यंत मनोहर है। पुरवासियोंकी (दूध, चंदन, पुष्पमाला, दीप, इत्यादि) पूजाकी भेंटसे आपकी चन्द्रसमान स्वच्छ उज्ज्वल धारा शोभायमान है। आप जन्ममरणरूपी भारका नाश करनेवाली हैं और भक्तरूपी कल्पवृक्षके-लिये थाल्हारूप (आधार) हैं* । २ । अपने तट (किनारेके) वासी

---

‡ 'पाप छालिका '—यथा, 'सकृद्गङ्गाम्भसि स्नातः पूतो गाङ्गेयवारिणा । न नरोनर यातिके अपि पातकराशिकृत ॥ ७२ ॥ व्रतदानतपोयज्ञः पवित्राणी तराणि च । गङ्गाविन्दुभिषिक्तस्य न समा इति नः श्रुतम् ॥ ७३ ॥ जो एक बारभी गंगाजीके जलमें स्नान करके गंगाजलसे पवित्र हो चुका है, उसने चाहे राशि राशि पाप किये हों, फिरभी वह नरकमें नहीं पड़ता। हमारे सुननेमें आया है कि व्रत, दान, तप, यज्ञ, तथा पवित्रताके अन्यान्य साधन गंगाकी एक बूँदसे अभिषिक्त हुए पुरुषकी समानता नहीं कर सकते। (प० पु० स्वर्ग० यमदूतवाक्य) पद्म पु० स्वर्गखंडमें मार्कण्डेयजीने युधिष्ठिरजीसे कहा है कि गंगाजी पृथ्वीपर मनुष्योंको, पातालमें नागोंको और स्वर्गमें देवताओंको तारती हैं। इसलिये वे 'त्रिपथगा' कहलाती हैं।

* दूसरा अर्थ—' भक्तोंकेलिये कल्पवृक्षकी थाल्हारूप हो '। टीकाकारोंमें इसके अर्थमें मतभेद है। वैजनाथजी लिखते हैं कि 'भक्तोंका स्नेह कल्पवृक्ष है; उसकेलिये थाल्हा हैं जिसके सेवनसे रामस्नेह उपजता

पक्षी, जलचर, ‡थलके पशु, पतिंगे, कीड़े मकोड़े, छोटे जीव जंतु और जटाधारी तपस्वी (इत्यादि) सबका आप एकसा पालन करनेवाली हो। हे मोहरूपी महिषासुरके (नाशके) लिये कालिकारूपिणी (गंगे)! मुझ तुलसीदासको यह बुद्धि प्रदान कर कि रघुवंशवीर श्रीरामचंद्रजीका स्मरण करता हुआ तेरे तीर-तीर बिचरता रहूँ। ३।

टिप्पणी—'भगीरथनंदिनी विष्णुपदसरोजजा' इति। इक्ष्वाकुवंशमें (रघुकुल) एक 'सगर' नामके पराक्रमशील राजा हुए। इनके दो रानियाँ थीं, केशिनी और सुमति। (महाभारत वनपर्वमें इनके नाम शैब्या और वैदर्भी हैं।) दोनोंने कैलासपर जाकर कठिन तप किया। शंकरजी प्रगट हुए और दोनोंने प्रणाम कर उनसे पुत्रकेलिये प्रार्थना की। शंकरजीने कहा कि 'जिस मुहूर्त्तमें तुमने वर माँगा है उसके प्रभावसे एक रानीसे अत्यंत गर्वीले और शूर वीर साठ हज़ार पुत्र होंगे, किंतु वे सब एकसाथही नष्ट हो जायेंगे। दूसरी रानीसे वंशको चलानेवाला केवल एकही शूरवीर पुत्र होगा।' ऐसा कहकर शंकरजी

है।' बाबू शिवप्रकाशजी अर्थ करते हैं कि 'भक्तोंके वांछित अर्थ देनेकेलिये कल्पथालिका अर्थात् कल्पवृक्षके उदय होनेको थाल्हारूप है'। 'थालिका' का भाव यह है कि उनको धारण करके उनका पालन करती हो। 'भक्ति' पाठका अर्थ तो सीधा सादा है कि 'भक्तिरूपी कल्पवृक्षकेलिये थाल्हारूप हो'। पर प्राचीनतम और उत्तम पाठ 'भक्त' ही है। भक्त कल्पवृक्ष हैं, जीवोंको अर्थ, धर्म, काम और मोक्षके देनेवाले हैं। आप उस कल्पवृक्षको धारण कर उसकी रक्षा करती हो। आपके सेवनसे उनका यह गुण सदा स्थिर रहता है। देखिये न, बाबा रघुनाथदास और बाबा माधोरामजी इत्यादिको श्रीसरयूजल घृतकी जगह काम दे गया।

‡ जलचर और थलचरको बिहंगका विशेष मानकरभी अर्थ किया जा सकता है। कुक्कुट, हंस, सारस आदि जलपक्षी हैं। मोर, कीर, सारिका, कोकिल आदि थलपक्षी हैं। मकर, घड़ियाल, कछुवे, मछली इत्यादि शुद्ध जलचर हैं।

अंतर्धान हो गये। † केशिनी वा शैब्याके एक दिव्य बालक हुआ और सुमति वा वैदर्भीके गर्भसे एक तूँबी उत्पन्न हुई। राजाने तूँबीको फेंकनेका विचार किया। उसी समय गंभीरस्वरसे आकाशवाणी हुई कि 'ऐसा साहस न करो। इस तरह पुत्रोंका परित्याग करना उचित नहीं है। इस तुँबीके बीज निकाल कर उन्हें कुछ कुछ घीसे भरे हुए घड़ोंमें पृथक् पृथक् रख दो। इससे तुम्हें साठ हज़ार पुत्र होंगे।' ऐसाही किया गया। उससे साठ हज़ार अतुलित तेजस्वी घोर प्रकृतिके और क्रूर कर्म करनेवाले एवं आकाशमें उड़कर चलनेवाले पुत्र उत्पन्न हुए। बहुत काल बीतनेपर राजाने अश्वमेध यज्ञकी दीक्षा ली। घोड़ा छोड़ा गया और ये साठ हज़ार पुत्र रखवालीपर नियुक्त हुए। घोडा घूमता घूमता जलहीन समुद्रके पास पहुँचा और वहाँ पहुँचनेपर वह अदृश्य हो गया। राजकुमारोंने समुद्र, द्वीप, वन, पर्वत, नदी, नद और कन्दराएँ सभी स्थान छान डाले परन्तु पता न लगा। तब लौटकर उन्होंने 'सगर' महाराजसे सब समाचार कह दिया। राजाने क्रोधमें आकर आज्ञा दी की 'उसे जाकर खोजो और खाली हाथ लौटकर न आओ।' ये लोग फिर खोजने लगे। एक जगह पृथ्वी कुछ फटी दिख पड़ी जिसमें एक छिद्रभी था। उन्होंने (ईशानकोणमें) उसे पातालतक खोद डाला। वहां घोड़ा घूमता हुआ देख वे हर्षित हुए। उसके पासही तेजोराशि महात्मा कपिलभी दिख पड़े। मुनि ध्यानमें थे। कालवश ये राजकुमार उनपर क्रोधसे भर गये और कहने लगे कि 'देखो, कैसा चोर है! घोड़ा चुराकर यहां मुनिवेष बनाकर बैठा है। इसे मारो।' मुनिकी आँख

---

†पद्मपु० उत्तरखण्डमें महादेवजीने नारदजीसे कहा है कि 'सुबाहुके पुत्र गर हुए। शत्रुओंने इनका राज्य छीन लिया तब ये परिवारसहित भृगुनन्दन और्वके आश्रमपर चले गये। और्वने उनकी रक्षा की। सगर वहीं पैदा हुए और बढ़े। और्वने अस्त्र शस्त्र तथा वेदविद्याकाभी अभ्यास करा दिया। सगरके रानियाँ थीं। वे दोनोंही तपस्याकेद्वारा अपने पाप दग्ध कर चुकी थीं। इससे प्रसन्न होकर और्वने उन्हें वरदान दिया। एकने साठ हज़ार पुत्र माँगे और दूसरेने एकही ऐसे पुत्रकेलिये प्रार्थना की जो वंश चलानेवाला हो।' (कल्याणसे)।

कोलाहलसे खुल गयी और उनके अपमानके कारण उनके तेजसे वे सब राजकुमार भस्म हो गये। वस्तुतः इन्द्रने उस यज्ञपशुको चुराकर उनके आश्रममें रख दिया था परन्तु कालवश उन राजकुमारोंको यही सूझा कि यही चोर है जो मुनिवेषमें यहां है। नारदने आकर सब समाचार राजासे कहा। देखिये, महात्माका अपमानका फल!

दूसरी रानीसे 'असमंजस' नामक पुत्र हुआ था। ||वह अपने पुरवासियोंके दुर्बल बालकोंको गला पकड़कर नदीमें डाल देता था। सब पुरवासी भय और शोकसे व्याकुल रहने लगे। एक दिन राजासे सबने आकर प्रार्थना की कि 'असमंजससे हमारी रक्षा कीजिये।' महात्मा सगरने पुरवासियोंके हितकेलिये अपने पुत्रको नगरसे निकाल दिया। राजा हो तो ऐसा हो! प्रजाकी प्राणोंसे रक्षा करना राजाका धर्म था न कि प्रजाहीका सत्यानाश करना।

असमंजसके पुत्र 'अंशुमान्' हुए। अब एकमात्र वही राज्यमें थे। राजाने उनको बुलाकर यज्ञअश्व लानेकेलिये भेजा। ये कपिलजीके आश्रमपर गये। उनको प्रणाम कर उनकी स्तुति की। मुनिने प्रसन्न होकर वर माँगनेको कहा। उन्होंने यज्ञअश्व मांगा और अपने पितरोंके उद्धारकी प्रार्थना की। उन्होंने प्रसन्नतासे घोड़ा दिया और वर दिया कि तुम्हारा पौत्र भगीरथ गंगाजीको लाकर इन सबका उद्धार करेगा। घोड़ा लाकर अंशुमानने राजाको दिया और यज्ञ पूरा किया गया। सगरके पश्चात् अंशुमान् राजा हुए। उन्होंने अंतमें अपने धर्मात्मा पुत्र दिलीपको राज्य सौंपकर गंगाजीकेलिये तप किया। दिलीपनेभी गंगाजीकेलिये बहुत प्रयत्न किया। उनके पुत्र भगीरथजी अपने पितरोंका वृत्तान्त सुनकर बहुत दुःखी हुए और मंत्रियोंको राज्य सौंपकर वे हिमालयपर तपस्या करने लगे। इन्होंने राज्याभिषेक होते हुए राज्य छोड़ दिया और एक हज़ार वर्षतक घोर तपस्या की। गंगाजीने अपने दिव्य रूपसे उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिये और कहा की जो तुम कहो

|| पद्म पु० उत्तर खण्डमें जो कथा है उसमें 'पञ्चजन' नाम लिखा है।

वही करूं। *भगीरथजीने कहा कि 'मेरे पितृगण महाराज सगरके साठ हज़ार पुत्रोंको कपिलदेवजीने भस्म कर यमलोकको भेज दिया। जबतक आप अपने जलसे उनका अभिषेक न करेंगी, तबतक उनकी सद्गति नहीं हो सकती। उनके उद्धारकेलियेही आपसे प्रार्थना है।' गंगाजीने कहा कि 'मैं तुम्हारा कथन पूरा करूंगी। परंतु जिस समय मैं आकाशसे पृथ्वीपर गिरूँगी उस समय मेरे वेगको रोकनेवाला कोई न होनेसे मैं रसातलको चली जाऊँगी। तुम उसका उपाय करो' (भा० ९।९। ३-५)। महाभारतमें गंगाजीने यह कहा है कि 'तीनों लोकोंमें भगवान् शंकरको छोड़ कोई ऐसा नहीं है जो मुझे धारण कर सके। अतएव तुम उनको प्रसन्न कर लो जिसमें जब मैं गिरूँ तो वे मुझे मस्तकपर धारण कर लें।' भगीरथजीने तब पुनः तीव्र तपस्या की और महादेवजीको प्रसन्न करके उनसे गंगाजीको धारण करनेका वर प्राप्त कर लिया। शंकरजी हिमालयपर आकर खड़े हो गये। भगीरथजी गंगाजीका ध्यान करने लगे। इन्हें देखकर गंगाजी स्वर्गसे धाराप्रवाहरूपसे चलीं और शिवजीके मस्तकपर इस प्रकार आकर गिरीं मानो कोई स्वच्छ मोतियोंकी माला हो। शंकरजी दस हज़ार वर्षोंतक उन्हें अपनी जटाओंमें धरे रह गये। भगीरथजीने पुनः तपस्या करके शंकरजीको प्रसन्न किया। तब उन्होंने गंगाजीको जटाओंसे छोड़ा। गंगाजीने राजासे कहा कि 'मैं तुम्हारे-लियेही पृथ्वीपर आयी हूँ, अतः बताओ मैं किस मार्गसे चलूँ?' यह सुनकर आगे आगे राजा रथपर और पीछे पीछे गंगाजी, इस तरह कपिलजीके आश्रमपर, जहाँ सगरपुत्रोंकी राख पड़ी थी, गंगाजीको ले गये। जलके स्पर्शसे उनका उद्धार हो गया। गंगाजी सहस्त्रधारा होकर कपिलजीके आश्रमपर गयी। समुद्र उनके जलसे तत्काल भर गया। राजा भगीरथने उनको पुत्री मान लिया और पितरोंको गंगाजलसे उन्होंने जलांजलि दी।

यह कथा लोमशजीने युधिष्ठिरजीसे (महाभारत वनपर्वमें) कही है

---

* पद्म पु० उत्तरखण्डमें कहा है कि दस हजार वर्ष तपस्या करने-पर विष्णु भगवान् प्रसन्न हुए। उनके आदेशसे गंगाजी आकाशसे चलीं।

और भा० नवम स्कंधमेंभी लगभग ऐसीही है। पद १८ टि० (ग) भी देखिये।

दूसरी कथा—श्रीमद्भागवत ५।१७ में श्रीशुकदेवजीने गंगाजीका विवरण इस प्रकार दिया है कि जब भगवान्‌ने त्रिलोकको नापनेकेलिये अपना पैर फैलाया तो उनके बाँये पैरके अँगूठेके नखसे ब्रह्मांड कटाहके ऊपरका भाग फट गया। उस छिद्रमें होकर जो ब्रह्मांडसे बाहरके जलकी धारा आयी, वह उस चरणकमलको धोनेसे उसमें लगे हुए केसरके मिलनेसे लाल हो गयी। उस निर्मल धाराका स्पर्श होतेही संसारके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं, किंतु वह सर्वथा निर्मलही रहती है। पहले किसी और नामसे न पुकारकर उसे 'भगवत्पदी' ही कहते थे। वह धारा हज़ारो युग बीतनेपर स्वर्गके शिरोभागमें स्थित हुई फिर ध्रुवलोकमें उतरी, जिसे 'विष्णुपद' भी कहते हैं। ध्रुवलोकमें आजभी ध्रुवजी नित्यप्रति बढ़ते हुए भक्तिभावसे 'यह हमारे कुलदेवताका चरणोदक है' ऐसा मानकर बड़े आदरसे सिरपर चढ़ाते हैं। और फिर सप्तर्षिगण 'यही तपस्याकी आत्यन्तिक सिद्धि है' ऐसा मानकर उसे जटाजूटपर धारण करते हैं। वहाँसे गंगाजी आकाशमें होकर चन्द्रमण्डलको आप्लावित करती हुई मेरुशिखरपर ब्रह्मपुरीमें गिरती हैं वहांसे सीता, अलकनंदा, चक्षु और भद्रा नामसे चार धाराओंमें विभक्त हो जाती हैं। उनमेंसे सीता ब्रह्मपुरीसे गिरकर केसराचलोंके सर्वोच्च शिखरोंमें होकर नीचेकी ओर बहती गंधमादनके शिखरोंपर गिरती हैं और भद्राश्ववर्षको प्लावित कर पूर्वकी ओर खारे समुद्रमें मिल जाती है। इसीप्रकार 'चक्षु' माल्यवान्‌के शिखरपर पहुँचकर वहांसे केतुमाल वर्षमें बहती पश्चिमकी ओर क्षीरसमुद्रमें जा मिलती है। 'भद्रा' मेरुपर्वतके शिखरसे उत्तरकी ओर गिरती है तथा एक पर्वतसे दूसरे पर्वतपर जाती हुई अंतमें शृङ्गवान्‌के शिखरसे गिरकर उत्तर कुरुदेशमें होकर उत्तरकी ओर बहती हुई समुद्रमें मिल जाती है। 'अलकनंदा' ब्रह्मपुरीसे दक्षिणकी ओर गिरकर अनेकों गिरिशिखरोंको लाँघती हुई हेमकूट पर्वतपर पहुँचती है। वहाँसे अत्यंत तीव्र वेगसे हिमालयके शिखरोंको चीरती हुई भारतवर्षमें आती है और फिर दक्षिणकी

ओर समुद्रमें जा मिलती है। इसमें स्नान करनेकेलिये आनेवालोंको पद पदपर अश्वमेघ और राजसूय आदि यज्ञोंका फलभी दुर्लभ नहीं है। (श्लोक २ से १० तक)

तीसरी कथा—पद्मपुराण सृष्टिखण्डमें भगवान् व्यासने ब्राह्मणोंके पूछनेपर की " गंगाजी कैसे इस रूपमें प्रकट हुईं ? उनका स्वरूप क्या है ? वे क्यों अत्यंत पावन मानी जाती हैं ? " उनसे गंगाजीकी कथा बिस्तारसे कही है जिसका संक्षिप्त विवरण यह है। 'ब्रह्माजीने नारदजीके पूछनेपर कहा था कि पूर्वकालमें सृष्टि आरंभ करते समय मैंने मूर्तिमती प्रकृतिसे कहा है कि 'देवि ! तुम संपूर्ण लोकोंका आदिकारण बनो। मैं तुमसेही संसारकी सृष्टि करूंगा।' यह सुनकर परा प्रकृति सात स्वरूपोंमें अभिव्यक्त हुई। वे सात स्वरूप ये हैं। (१) गायत्री (जिससे समस्त वेद, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा और दीक्षाकी उत्पत्ति मानी जाती है।) (२) वाग्देवी भारती वा सरस्वति (जो सबके मुख और हृदयमें स्थित है और समस्त शास्त्रोंमें धर्म उपदेश करती है।) (३) लक्ष्मी (जिससे वस्त्र और आभूषणकी राशि प्रकट हुई। सुख और त्रिभुवनका राज्य इन्हींकी देन है। यह विष्णुभगवान्की प्रियतमा हैं। (४) उमा (जिनके द्वारा शंकरजीके स्वरूपका ज्ञान होता है। यह ज्ञानकी जननी और शंकरजीकी अर्धांगिनी हैं। (५) शक्तिबीजा (जो अत्यंत उग्र संसारको मोहमें डालनेवाली, जगत्का पालन और संहार करनेवाली है।) (६) तपस्विनी (जो तपस्याकी अधिष्ठात्री है।) (७) धर्मद्रवा (जो सब धर्मोंमें प्रतिष्ठित है।) धर्मद्रवाको सर्वश्रेष्ठ जानकर मैंने कमंडलमें रख लिया। जब वामनावतार लेकर बलिके यज्ञमें भगवान्ने चरण बढाया तब एक चरण आकाश और ब्रह्माण्डको भेद कर मेरे सामने उपस्थित हुआ। मैंने कमंडलके जलसे उस चरणाका पूजन किया। उस चरणको धोकर जब उसका पूजन कर चुका तब उसका धोवन हेमकूट पर्वतपर गिरा। वहांसे शंकरजीके पास पहुँचकर वह जल गंगाके रूपमें उनकी जटाओंमें स्थित हुआ। वे बहुत काल जटाओंमें भ्रमती रहीं। वहांसे भगीरथजी उन्हें पृथ्वी पर लाये। "

इस प्रकार एक कथाके अनुसार यह जल ब्रह्माण्डकटाहके बाहरका जल है जो भगवान्के चरणनखकी ठोकर लगनेसे वहांसे इस ब्रह्माण्डके भीतर भगवान्के चरणको धोता हुआ वह निकला। दूसरी कथाके अनुसार पराप्रकृतिही जो धर्मद्रवा नामसे जलरूपमें ब्रह्माके कमंडलमें थी उसीसे भगवान्का चरण जब धोया गया तो वह धोवनही गंगा नामसे विख्यात हुआ। भगवान्के चरणका धोवन होनेसे 'विष्णुपद-सरोजजा' और 'विष्णुपदकंजमकरंद' आदि नाम हुए।

चौथी कथा—भा० ४।१।१२–१४ में लिखा है कि महर्षि मरीचिजीके कर्दमजीकी पुत्री कलासे दो पुत्र कश्यप, और पूर्णिमा हुए। यही कन्या दूसरे जन्ममें श्रीहरिचरणकी धोवनसे गंगारूपमें प्रगट हुई।

२ 'भगीरथनंदिनि मुनिचय चकोरचंदिनि जन्हबालिका' इति। (क) भगीरथनंदिनि अर्थात् राजकुमारी कहकर जनाया कि नरलोकमें राजाओं और प्रजासे वन्दनीया हुईं। क्योंकि भगीरथमहाराज चक्रवर्ती राजा थे। जन्हुबालिका अर्थात् ऋषिकन्या होनेसे ऋषियों, मुनियोंको सुखदायक हुईं। विष्णुपदसरोजजा होनेसे देवताओं और नागोंसे वंद्य हुईं। इसप्रकार 'सुर नर नाग बिबुध बंदिनि' हैं। इस पदमें सीधे गंगाजीका नाम न लेकर 'भगीरथनंदिनि' आदिसे परिचय करानेमें 'प्रर्यायोक्ति अलंकार' है।

(ख) गंगाजीकी यहाँ चार प्रकारसे श्रेष्ठता दिखाते हैं। कुल, संग (निवासस्थान), स्वभाव और शरीर। इन चार बातोंसे मनुष्यकी परीक्षा होती है। वही यहाँ देखिये। 'विष्णुपदसरोजजासि' से उत्पत्ति अर्थात् कुलकी श्रेष्ठता सिद्ध हुई। इसीसे ब्रह्मद्रव कहलायी और ब्रह्माजीने तुरंत उन्हें अपने कमण्डलमें ले लिया जिससे वे कमंडली कहलायी। विष्णुपदकमलसे निकलनेपर प्रथम संग पितामह ब्रह्माका हुआ। फिर राजर्षि श्रीभगीरथजीपर प्रसन्न होकर पृथ्वीपर गिरनेके पूर्वही शंकरजीका संग हुआ। उन्होंने शिरपर धारण किया। वहाँसे पृथ्वीपर उतरनेपर जन्हु ऋषिका संग हुआ जिससे 'जन्हुबालिका' कहलायी। इसप्रकार ब्रह्मा, महेश और महर्षि एवं राजर्षिका संग कहकर

संग वा निवासकी श्रेष्ठता दिखायी। शरीरसे 'मुनिचय चकोरचंदिनि' और 'नगरनागबिबुध बंदिनि' हैं। यह निजकी श्रेष्ठता कही। स्वभावसे परोपकारिणी हैं। यह स्वभावकी श्रेष्ठता 'पुण्यरासि' और 'पापछालिका' विशेषणोंसे स्पष्टही है।

(ग) 'मुनिचय चकोरचंदिनि' इति। चकोर चंद्रमाका प्रेमी है। वह चंद्रचंद्रिकाकी ओर एकटक देखता रहता है और उससे सुख पाता है। पद २ 'कोक' शब्द देखिये। वैसेही मुनिगण आपके दर्शनसे सुख पाते हैं। तरंगोंके विलास एवं धाराको देख देखकर आनंदित होते हैं। इसीसे मुनियोंके आश्रम प्रायः हरिद्वार, काशी और प्रयाग आदि गंगा-तटवाले तीर्थोंमें विशेषकर देखे सुने जाते हैं।

(घ) 'बिष्णुपदसरोजजासि' इति। पद १० टि० ३ और उपरकी टि० १ देखिये।

(ङ) 'ईससीसपर बिभासि' इति। पद ११ के 'भ्राज बिबुधापगा आपु पावन परम मौलि मालेव सोभा बिचित्रं' इस अंतरेके जो भाव टि० ३ में कहे गये वे सब 'बिभासि' एकही शब्दसे सूचित कर दिये गये हैं।

(च) 'पापछालिका', इति। यथा, 'मज्जन पान पाप हर एका।' (बा०)। स्नान और जलपानसे पापका क्षय होता है। 'दरस परस अरु मज्जन पाना। हरै पाप कह बेद पुराना।' दर्शन और मार्जनादिसेभी पापका नाश होता हैं। सगर पुत्रोंके पाप तो उनके शरीरके भस्ममात्रको गंगाजलका स्पर्श होनेसे धुल गये। तब भला जीवित प्राणीके पाप दर्शन, स्पर्शन आदिसे यदि नष्ट हो जाय तो आश्चर्यही क्या!* प० पु० स्वर्ग खंडमें सूतजीके वचन हैं कि "गंगाजीके जलसे अभिषिक्त

---

* 'गंगेति स्मरणादेव क्षयं याति च पातकम्। कीर्तनादतिपापानि दर्शनाद्गुरु कल्मषम्।५। स्नानात् पानाच्च जाह्नव्यां पितृणां तर्पणात्तथा। महापातक वृन्दानि क्षयं यान्ति दिनेदिने।६। अग्निना दह्यते तूलं तृणं शुष्कं क्षणाद यत्। तथा गंगाजलस्पर्शात् पुंसां पापं दहेत्क्षणात्॥ ।७। प० पु० सृ० ६०'

होनेपर मनुष्य अपने पापोंको दूर भगा देता है। भगवान् केशवही जलके रूपमें इस भूमंडलका पापसे उद्धार कर रहे हैं। गंगाजलका सेवन अंतःकरणको शुद्ध करनेका उत्तम साधन है। गंगा विष्णुभक्ति प्रदान करनेवाली और विष्णुका स्वरूपही हैं। ”

‘ विष्णुपदसरोजजासि ’ कहकर क्रमशः बताया कि गंगाजी कहांसे निकलीं, किसप्रकार और किसलिये पृथ्वीपर आयी। भगवान्के चरणसे निकलीं, पृथ्वीपर सगर पुत्रोंके पापोंको धो डालनेके लिये आयी और पृथ्वीपर रुक सकें इसलिये शिवजीने अपने शिरपर उन्हें प्रथम धारण किया।

३ ‘ बिमल बिपुल बहसि बारि सीतल त्रयतापहारि। ’ इति।

(क) निर्मल, शीतल और अगाध होना ये उत्तम जलके गुण हैं। ‘ बिमल बिपुल ’ से लेकर ‘ शोभित ससि धवल धार ’ तक शरीर वा स्वरूपसे सुंदर बताया। ‘ भंजनि भवभार ’ से स्वभाव और महिमा कही और ‘ त्रयतापहारी ’ भंजनि भवभार ’ एवं ‘ भक्तकल्पथालिका ’ से मंगल वा कल्याणकारिणी दिखायी। लाला भगवान्दीनजी लिखते हैं कि ‘ बिमल तरंगमालिका ’ से जनाया कि नदीरूपमेंभी आपके पास अटल संपत्ति और विकट ऐश्वर्य है।

(ख) ‘ त्रयतापहारी ’ इति। अंतसमय जब रोग असाध्य हो जाता है तबभी तुलसीदलयुक्त गंगाजल महौषधि है। ‘ **औषधं जाह्नवी तोयं वैद्यो नारायणो हरिः** । यह बहुत प्रसिद्ध श्लोक है। गंगा तथा सरयूजलमें कीड़े नहीं पड़ते यह परीक्षा की हुई बात है पाश्चात्य वैज्ञानिक-भी अब इसके गुण देखकर इसे औषधिके काममें लानेका प्रयत्न कर रहे हैं और हमारे यहाँ तो गंगाजल और तुलसी अंतमें मुँहमें पड़नेपर समस्त पाप तापका नष्ट होना माना गया है।

(ग) ‘ भँवर बर ’ इति। भँवर जब बड़े और बहुत उठते हैं तब वे बहुत सुंदर और मनोरम होते हैं। बहुत और बड़े बड़े होनाही उनकी श्रेष्ठता है। ‘ भँवर बर विभंग तर तरंग मालिका। ’ का अन्वय पण्डित राजकुमारजीके मतानुसार यह है ‘ भँवर (और) तरंगमालिका

(का) बिभंग बर तर (है) । ' यदि ' बिभंग ' का अर्थ चंचल करें तो अर्थ होगा कि ' भँवर श्रेष्ठ हैं और तरंगें अति चंचल हैं । '

(घ) ' पुरजन पूजोपहार सोभित ससि धवल धार ' इति । फूलों, पुष्पमालाओं इत्यादिसे पूजा करनेसे फूल और मालाएँ जलपर बिखरे हुए रहते हैं । दूधभी चढ़ाया जाता है । चंद्रसमान स्वच्छ उज्वल धारा इन सब सामग्रियोंसे शोभायमान् है । गंगाजीकी धारा स्वतः उज्वल है । इसीसे शिवजीकी जटाओंमें वह मोतीकी मालाकेसमान शोभित कही गयी है । गंगोत्री और उसके ऊपरका जल बहुत निर्मल है । वस्तुतः शुद्ध गंगाजल तो वहीं मिलता है ।

४ ' निज तट बासी बिहंग जलचर थल पसु पतंग ' इति । (क) जीव तीन स्थानोंमें रहते हैं जल, थल और नभमें । यथा, ' जलचर थलचर नभचर नाना । जे जड़ चेतन जीव जहाना ॥ ' (बा०) यहाँ ' निज तट बासी ' विशेषण देकर जलचर और थलचरको स्पष्ट कहा । नभचरभी तटवासी होते हैं पर वही जो रात्रिमें तटके वृक्षों आदिपर आकर विश्राम करते हैं । ' बिहंग ' शब्दसे तटवासी नभचरभी जना दिये हैं ।

(ख) जलचर बहुत बड़े बड़ेभी होते हैं, जैसे मगर, घड़ियाल इत्यादि । कीट बहुत छोटे होते हैं । इसीप्रकार थलचरोंमेंभी सिंह, हाथी, ऊँट, राजा, महाराजा, तपस्वी आदि बड़ोंकी अवधि हैं । कीट छोटोंकी अवधि है । इनको कहकर जनाया कि बड़ेसे बड़ेको लेकर छोटेसे छोटेतकको एक समान पालती हैं । सभीको स्नान पानसे मोक्ष देनेको तैयार रहती हैं । बड़े छोटेका विचार जराभी मनमें नहीं आने देती । यह समभाव और महिमा है ।

(ग) ' सब सरिस पालिका ' इति । ' सब ' में ' इत्यादि ' का भावभी आ गया । जितने गिनाये उतनेकाही पालन नहीं करतीं, वरंच इनके अतिरिक्त औरभी जो तटवासी हैं उनकाभी वैसाही पालन करती हैं । ' सरिस पालिका ' में ' चतुर्थतुल्ययोगिता ' अलंकार है ।

५ ' तुलसी तव तीर तीर सुमिरत रघुबंसबीर ' इति । (क) 'तीर तीर' में

'पुनरूक्तिप्रकाश' अलंकार है। (ख) ' रघुबंसवीर ' शब्दसे श्रीरघुनाथजीके वीर स्वरुपका अर्थात् बाणधारी राक्षस वधपर तत्पर तपस्वी वीर वेषका स्मरण सूचित किया। किनारे किनारे जंगल बहुत होते हैं। इसलिये वहाँ वीर-रूपका स्मरण एवं ध्यान युक्तायुक्तही। (ग) 'तीर तीर सुमिरत रघुबंसबीर' कहकर तब ' देहि मति ' कहनेका भाव कि उनके तटपर बिचरनेसे और रामस्मरण करनेसे उनकोभी आनंद प्राप्त होगा। सदा शिवजीके शीशपर विराजमान रहनेसे उन्हें सदा श्रीरामनामका संग रहता है। अतएव राम-नामस्मरणका विचार सुनकर वे अवश्य प्रसन्न होकर मनोरथकी पूर्ति करेंगी। लाला भगवानदीनजीने यथार्थही कहा है कि, " पाठकलोग गोस्वामीजीकी चतुरायी देखें कि कैसी पुष्ट युक्तिसे याचना करते हैं? ऐसी युक्तिपूर्ण याचनाको पूर्ण करनेमें दयापूर्ण दानी कभी आनाकानी करही नहीं सकता। धन्य गोस्वामी ! " कथनका भाव यह है कि ' मैं तुम्हें नित्य रामनाम सुनाया करूँगा जो तुमको बहुत प्रिय है यदि यह वर मुझे मिल जाय '। गूढ़ अनन्योपासनाका दर्शन इन शब्दोंमें देखिये कैसा झलक रहा है? काशीमेंभी रहेंगे, गंगातटपर रहेंगे पर रघुबीरके होकर, दुसरेके नहीं। कवितावलीमेंभी यही भाव कैसा अच्छा दर्शाया है? यथा " **बारि तिहारो निहारी मुरारि भयें परसें पद पाप लहोंगो। ईस ह्वै सीस धरौं पै डरौं प्रभुकी समता बड़े दोष दहोंगो॥ बरु बारहि बार सरीर धरौं रघुबीरको ह्वै तव तीर रहोंगो। भागिरथी बिनवौं कर जोरि बहोरि न खोरि लगै सो कहोंगो॥** " यह उपासना है। (घ) ' बिचरत ' अर्थात् परम विरक्त होकर।

६ ' मोह-महिष कालिका ' इति। आप मोहका सर्वथा नाश कर देती हैं जैसे कि कालिकाने महिषासुरका नाश किया था। पद १६ टि०५ और पद १५ टि० ९, १० देखिये। ध्यान रहे कि गोस्वामीजी वर माँगते हैं, ' **सुमिरत रघुबंशवीर विचरत** ' रघुबीरका स्मरण करते हुए तटपर विचरते रहना। इस स्मरणका बाधक मोह है। जबतक मोह रहेगा तबतक भगवानके चरणोंमें दृढ़ अनुराग नहीं हो सकता। यथा, ' **मोह गये बिनु रामपद होइ न दृढ़ अनुराग।** ' मोह

समस्त मानसरोगोंका मूल है। यथा 'मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला। तिन्हते पुनि उपजहिं बहु सूला॥ काम बात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा॥' मोहहीसे कामक्रोधादि सबके सब उत्पन्न हो जाते हैं। अतएव 'मोह महिष कालिका' कहकर बर माँगा।

श्रीलमगोड़ाजी कहते है कि, "टागोरजीने ठीकही लिखा है कि हिन्दू गंगाजलकोभी ब्रह्ममय मानते हैं। इसीसे स्नान उनकेलिये केवल शरीरके धोनेका साधन नहीं है, बल्कि आत्माके शुद्ध करनेका साधनभी है। तुलसीदासजीने तो मानसमेंभी उसे 'ब्रह्ममय बारि' कहा है। भौतिकवादी चाहे जो कुछ कहें पर सिस्टर निवेदिता जैसी पाश्चात्य देवियोंनेभी स्वीकार किया है कि यदि न्यागराके झरने गंगातटपर होते तो केवल बिजलीही नहीं किन्तु आत्माकी सुधारक शक्तिभी पैदा करते। गंगाजीके जलको तो विज्ञानभी संसारमें सबसे शुद्ध बताता है। प्रत्येक जगह अबभी आपको ऐसे लोग मिलेंगे जिनके रोग गंगाजलके सेवनसे चले गये। हमारे यहाँ तो कहावत है कि, 'औषधि गंगाजल है और वैद्य नारायण हरि है'। बहुतसे वैदिक विद्वानोंका मत है कि वेदमें जो गङ्गा शब्द आया है वह गुणवाचक है। 'गति करनेवाली' इस गुणके कारण नदीका पीछेको नामकरण हुआ। मंत्रभागकेलिये यह होभी सकता है। तोभी ब्राह्मण इत्यादि भागोंमें तो नदीका वर्णन अनुचित नहीं। फिर गंगा तो तीनों लोकोंमें भिन्नभिन्न धाराओंसे बहती है। हम बेकारही झिझकते हैं। महात्मा इसाका दीक्षासंस्कार जार्डन नदीके जलसेही तो हुआ था! हमने पत्रोंमें पढ़ा था कि जॉर्ज पंचमकी पोतीके जन्मस्नानकेलिये उसी पवित्र नदीका जल था। मुसलमान धर्मके महात्माको 'ज़मज़म' का सोताही तो मिला था जहाँ भगवान्‌की आज्ञानुसार काबा बना।

१८ [२३] रामकरी*

जयति जय सुरसरी जगदखिल पाविनी[१]।
बिष्नुपदकंज मकरंद इव अंबु बर बहसि॥

---

*६६, रा०, इ०, ज०, ७४, आ०, में 'रामकरी' वा 'रामकली' है। भा०, बे०, में 'धनाश्री' है। १ पाविनी—६६, रा०, ५१। प्रायः

दुख दहसि अघबृंद बिद्राविनी[2] ॥ १ ॥
मिलित जलपात्र अज्ज जुक्त हरिचरणरज
बिरजतर[3] बारि त्रिपुरारिसिरधामिनी ।
जन्हुकन्या धन्य पुन्यकृत सगरसुत
भूधरद्रोनि[4] बिद्दरनि[5] बहुनामिनी ॥ २ ॥

शब्दार्थ-सुरसरी = देवनदी; गंगा । जगदखिल = (जगत्+अखिल) सारे संसारको । मकरंद = पुष्परस जो फूलमें केसर, पराग वा ज़ीरेके नीचे रहता है, जिसे भौंरे आदि चूसते हैं । दहसि = जलाती है । बिद्राविनी = (विद्रावन) – विदीर्ण करना, फाड़ना, नाश करना । (विद्राव) – बहना, पिघलना, गलना । बहाने, गलाने वा नाश करनेवाली, भगानेवाली । (वै०) । मिलित = मिला हुआ, युक्त । जलपात्र = कमंडल । अज = ब्रह्माजी । जुक्त (युक्त) = किसीके साथ मिला हुआ । बिरज = रज (मल, विकार) रहित; निर्मल । रजतमरहित सत्वगुणयुक्त । (रा० त० बो०, डु०) यथा '**विरजस्तमसः स्युर्द्वयातिगाः** पवित्रः' इत्यमरः । धामिनी = धाम या घर बनानेवाली, निवास करनेवाली । धन्य = कृतार्थरूप; प्रशंसाके योग्य । इसका प्रयोग साधुवाद देनेकेलिये प्रायः होता है, जैसे कि किसीको कोई अच्छा काम करते देख सुन बोल उठते हैं, 'धन्य धन्य' । द्रोनि (द्रोणि) = कंदरा, गुफ़ा, दो पहाड़ोंके बीचकी भूमि, दर्रा, घाटी । (दी०) बिद्दरनि (सं० विदारनसे) = फाड़ने या दो टुकड़े कर देनेवाली ।

पद्यार्थ—सारे संसारको पावन करनेवाली देवसरि गंगे ! आपकी जय हो ! जय हो ! आप विष्णुपदकमलमकरंद जैसा सुंदर श्रेष्ठ जल धारण करती और बहाती हैं । उससे जीवोंके दुःखोंको भस्म करती हैं ।

औरोंमें 'पावनी' है । २ बिद्राविनी–६६, रा०,मु०, डु०, ५१, वै०, वि० । बिद्रावनी–भा०, बे०, प्र०, ज०, भ, ७४ । पाविनी, बिद्राविनी आगेके अंतराओंके तुकांत अनुरूप हैं । ३ तर–६६, भा०, बे०, ह०, ७४, ज० । वर–रा०, ५१, आ० । ४ उद्धरनि–ह० । ५ बिदारणि–५१ ।

आप पापसमूहकी नाश करनेवाली हैं। १। आपका जल ब्रह्माजीके कमंडलसे मिला हुआ, भगवान्‌के चरणरजसे युक्त और अत्यंत निर्मल है। आप त्रिपुरासुरके शत्रु महादेवजीके सिरपर निवास करनेवाली हैं। हे जन्हु ऋषिकी पुत्रि ! आप धन्य हैं। आपने सगर महाराजके पुत्रोंको कृतार्थ और पवित्र कर दिया है, उनका उद्धार किया है। आप पर्वत कंदराओंको विदारण करनेवाली और अनेक नामोंवाली है। २।

टिप्पणी—१ 'जगदखिलपाविनी बिष्नुपदकंज मकरंद इव अंबु बर' इति। गंगाजल भगवान्‌के पदकमलका मकरंदही है। यथा, '**मकरंद जिन्ह कर संभु सिरसुचिता अवधि सुर बरनई।**' (बा०) अतएव यहाँ 'इव' का अर्थ 'उसके समानताका दूसरा' यह नहीं हो सकता। 'इव' का प्रयोग यहाँ वैसाही है जैसा '**तुम्ह तें अधिक पुन्य बड़ काकें। राजन राम सरिस सुत जाकें।**' (अ०) में 'रामसरिस' का। यह मुहावरा है। 'राम जैसे' 'रामसरीखे' का तात्पर्य 'राम ऐसे' 'रामही' हैं। वैसेही '**पदकंज मकरंद इव बर बारि**' का अर्थ यहाँ 'पदकमल मकरंद, ऐसा सुंदर जल' अर्थात् 'मकरंदरूपी सुंदर जल' है।* इसीसे उस जलको 'बर' कहा। 'बर' विशेषण देकर जनाया कि उत्तम जलके जो गुण होते हैं वे सब इसमें हैं। वह 'मधुर, मनोहर (निर्मल), सुशीतल और मंगलकारी' है। यथा, '**बरषहिं राम सुजस बर बारी। मधुर मनोहर मंगलकारी।**' (बा०) यहां पूर्णोपमा अलंकार है। 'मकरंद इव बर' से सूचित किया कि जो गुण भगवान्‌के चरण-कमल मकरंदमें होने चाहिये वे सब इस जलमें हैं। मकरंद होनेके

---

*१ दीनजीने 'इव' का अर्थ 'निश्चयही' किया है। अर्थ—'तुम्हारा जल निश्चयही विष्णुपदकंजका मकरंद है'। प्रायः अन्य सब टीकाकारोंने 'समान' अर्थ किया है। २ पद्मपु० उत्तरखण्डमेंभी गंगाजीको ब्रह्मका द्रवरूप कहा है। यथा, 'द्रवीभूतं परं ब्रह्म परमानन्द-दायिनी।' परमानन्दप्रदायिनी गंगे ! आप जलरूपमें अवतीर्ण साक्षात् परब्रह्म हैं।

संबंधसेही 'जगदखिल पाविनी' हैं। 'जगदखिल' कहकर छोटे बड़े सभी जीवजंतु सूचित कर दिये। तीनों लोकोंमें आपकी धारा होनेसे 'त्रैलोक्यगामिनी' और 'जगदखिलपाविनी' कही गयी। 'पाविनी' से 'पवित्रताकी सीमा' अर्थात् स्वयं पवित्र और दूसरोंको पवित्र करनेवाली जनाया। मानसके 'सुचिता अवधि सुर बरनई' का भाव इस पदसे प्रकट किया गया है।

२ 'दुख दहसि अघवृंद बिद्राविनी' इति। आप पापनाशिनी हैं। यथा, '**दरस परस अरू मज्जन पाना। हरइ पाप कह बेद पुराना॥**' जब सब पापही भाग जाते वा नष्ट हो जाते हैं तब दुःख कहाँ रह सकता है? क्योंकि पापकाही परिणाम तो दुःख है। यथा '**करहिं पाप पावहिं दुख भय रूज सोक वियोग।**' दुःख और अघ दोनोंको कहकर कार्य और कारण दोनोंका नाश कहा। यदि कारणके नाशकी शक्ति न होती तो दुःख फिर आ जाता। दुःखके साथ 'दहसि' और अघके साथ 'बिद्राविनी' अर्थात् दोनोंके साथ पृथक् पृथक् क्रियाएँ साभिप्राय हैं। 'दहसि' के संबंधसे 'दुःख' को तृण वा रुई और गंगाजलको अग्निरूप जनाया। जल होनेपरभी उसमें अग्निका दाहक गुण है। यह जलकी अद्भुतता है। 'बिद्राविनी' के संबंधसे अघको पर्वत और गंगाजीको वज्ररूप सूचित किया। यथा, '**कुलिच पाप पर्वतके फोरिबेको**' (भक्तिरसबोधिनी)

३ 'मिलित जलपात्र अज जुक्त हरिचरनरज' इति। ब्रह्माजीके कमंडलमें रहनेसे 'मिलित जलपात्र अज' कहा। स्मरण रहे कि विष्णुपद-मकरंद होनेसेही गंगाजीका नाम 'विष्णुपादोदकी' है और ब्रह्मकमंडलमें रहनेसे 'ब्रह्मकमंडली' नाम है। शिवजीके सिरपर निवास होनेसे 'शिवसिर-धामिनी' है। वीरकविजीने 'मिलित' का अर्थ 'सुशोभित' और बैजनाथजीने 'भरा है' ऐसा किया है। बैजनाथजी लिखते हैं कि "ब्रह्माके कमंडलमें आपका जल भरा (हुआ) है। जहाँ ब्रह्मद्रव समुद्रवत् भरा है उसमें सब ब्रह्मांड अंडेसरीखे उतरते है। जब वामनजीके अंगूठेकी ठोकरसे ब्रह्माण्डावरण फूट गया तब उसी मार्गसे ब्रह्मद्रव बह आया जो हरिचरणका स्पर्श पाकर रजतमरहित हो अत्यन्त पावन सतोगुणमय हो

गया । ” 'मिलित' शब्दका ऐसा प्रयोग और कहीं है इसका पता अबतक इस दीनको नहीं लगा। पाठक कृपा करके विचार करें। हाँ, सं० १६६६ की प्रतिमें 'सकल दृश्य निज उर मिलिकै सोवै निद्रा तजि जोगी।' यह पाठ एक पदमें आया है।

'अज' नाम देकर अनादिकालीन जनाया। ब्रह्मा आदि नामोंमें जन्म और आदि पाया जाता है। इससे वे नाम न दिये।

'जुक्त हरिचरणरज' इति। आनंदरामायणमें कहा है कि भगवान्के चरणरजको गंगाजी इतने प्रेमसे धारण किये हुए हैं कि आजभी उनके जलके साथ बराबर रजकण बहा करता है। स्वच्छ जलमेंभी ध्यान देकर देखनेसे रजकण मालूम होता है। यह भाव 'हरिचरणरजजुक्त' पदसे जनाया है।

४ 'बिरजतर बारि त्रिपुरारिसिरधामिनी' इति। (क) 'जुक्त हरिचरनरज' कहकर 'बिरजतर' कहनेका भाव यह है कि जो जल रजयुक्त होता है वह मलिन होता है। पर यह जल मलिन नहीं है। वरंच विशेष निर्मल है। यह रज मलका नाशक है और ऐसा निर्मल है कि त्रिपुरारि ऐसे समर्थशील शंकरजी उसे शिरोधार्य किये रहते हैं। यही जतानेकेलिये 'बिरजतर' कहकर 'त्रिपुरारिसिरधामिनी' कहा। मिलान कीजिये कवितावली और पद्मपु० के निम्न उद्धरणोंसे'

'ब्रह्म जो व्यापक बेद कहैं गम नाहिं गिरा गुन ज्ञान गुनीको।
जो करता भरता हरता सुरसाहिब साहिब दीन दुनीको॥
सोइ भयो द्रवरूप सही जो है नाथ बिरंचि महेस मुनीको।
मानि प्रतीत सदा तुलसी जल काहे न सेवत देवधुनीको॥'

“विष्णुपादार्धसम्पूते गंगे त्रिपथगामिनि। धर्मद्रवीति विख्याते पापं मे हर जान्हवि॥ विष्णुपादप्रसूतासि वैष्णवी विष्णुपूजिता त्राहि मामेनसस्तस्मादाजन्ममरणांतिकात्॥ श्रद्धया धर्मसंपूर्णे श्रीमता रजसाच ते। अमृतेन महादेवि भागीरथि पुनीहि माम्॥' (प० पु० सृ० ६०, ६०-६२) भगवान् व्यास अपने शिष्योंसे गंगाजीकी महिमा वर्णन करते हुए कहते हैं, 'भगवती गंगे! तुम विष्णुका

पादोदक होनेसे परमपवित्र हो, तीनों लोकोंमें गमन करनेसे त्रिपथगामिनि हो। धर्मद्रवा नामसे विख्यात् हो। हे जान्हवी! मेरे पाप हर लो। विष्णुपदसे तुम्हारा जन्म हुआ। तुम विष्णुद्वारा सम्मानित तथा वैष्णवी हो। मुझे जन्मसे मरणतकके पापोंसे बचा लो। महादेवी भागीरथी! तुम श्रद्धासे, शोभायमान रजकणोंसे तथा अमृतमय जलसे मुझे पवित्र करो।"

(ख) 'त्रिपुरारि' का भाव कि महान् समर्थ शक्तिशाली भगवान् शंकर इनको शुचिताकी सीमा मानकर इनका ऐसा आदर करते हैं, तब अन्य सुर मुनि आदि जीवोंसे तो वे सेवित हुआही चाहें।

५ (क) 'जह्नु कन्या धन्य पुन्यकृत सगरसुत' इति। श्री पं० रामकुमारजी और बाबू शिवप्रकाशने 'धन्य पुन्यकृत' को सगरसुतका विशेषण मानकर 'धन्य और पवित्र किया' यह अर्थ लिखा है। मेरी समझमें यह दोनों ओर लग सकता है। "पवित्र करके सगर पुत्रोंको कृतार्थ किया और इस कार्यके करनेसे आपभी श्लाघ्य हुईं। आपकी महिमा संसारमें ख्यात हुई।"

श्रीवैजनाथजी लिखते हैं कि 'जलकर मरना अकाल मृत्यु है। विप्र क्रोधाग्निसे जलनेसे वे सब घोर गतिके अधिकारी थे। ऐसोंको पवित्र गति दी, ऐसी प्रभावशालिनी हैं।'

(ख) 'भूधरद्रोनि बिद्दरनि' से धाराको प्रचंड वेगवान् जनाया और 'बहु नामिनी' से क्रियागुणयुक्त अनेक नामोंवाली सूचित किया। अनेक नाम होनेसे अनेक कर्मगुण संपन्न जनाया। 'बहु' यहाँ अगणित-वाचक है। 'भागिरथी,' 'ब्रह्मकमण्डली,' 'विष्णुपादोदकी,' 'जान्हवी,' 'गंगा,' 'सुरसरि,' इत्यादि कुछ नाम ऊपर आ चुके हैं।

(ग) 'बहु नामिनी' इति। वाल्मीकीयमें विश्वामित्रजीने श्रीरामजीसे गंगाजीके संबंधमें कहा है, '**विससर्ज ततो गङ्गां हरो बिन्दुसरः प्रति। तस्यां विसृज्यमानायां सप्त स्रोतांसि जज्ञिरे। ११। ह्लादिनी पावनी चैव नालिनी च तथैव च। तिस्रः प्राचीं दिशं जग्मुर्गङ्गाः शिवजलाः शुभाः। १२। सुचक्षुश्चैव सीता च सिन्धुश्चैव महानदी। तिस्रश्चैता दिशं जग्मुः प्रतीचीं तु दिशं शुभा। १३।**

सप्तमी चन्वगात्तासां भगीरथरथं तदा। भगीरथोऽपिराजर्षिदिव्यं स्यन्दनमास्थितः।१४। तब महादेवजीने गंगाजीको बिन्दुसर (जो हिमालय-परही है) में गिरा दिया। गिरते ही उनकी सात धाराएँ हो गयीं। 'ह्लादिनी' 'पावनी' और 'नलिनी' नामक गंगाजीकी तीन धाराएँ बिन्दुसरसे पूर्व दिशामें गयीं। 'सुचक्षु,' 'सीता' और 'महानदी सिंध' नामकी तीन धाराएँ बिंदुसरसे पश्चिम ओर गयीं। सातवीं राजर्षि भगीरथके रथके पीछे पीछे गयीं जो 'भागीरथी' नामसे प्रसिद्ध हुयीं। इस प्रकार सात धाराएँ और सात नाम तो पृथ्वीपरकेही हैं।

पद्मपुराण सृष्टिखंड २०।१५१-२ में भी कुछ नाम हैं। 'नंदिनीत्येव ते नाम देवेषु नलिनीति च। दक्षा पृथ्वी च सुभगा विश्वकाया शिवामृता॥ विद्याधारी महादेवी तथा लोक प्रसादिनी। क्षेमा च जान्हवी चैव शान्ता शान्ति प्रदायिनी॥

अनुसंधान [१८]

जच्छ गंधर्ब मुनि किन्नरोरग दनुज मनुज
मज्जहिं सुकृतपुंज[६] जुत कामिनी।
स्वर्गसोपान बिज्ञान ज्ञान[७] प्रदे मोह मद
मदन पाथोज बन[८] जामिनी॥ ३॥
हरित गंभीर बानीर दुहुं तीर बर मध्य
धारा बिसद बिश्व अभिरामिनी।
नीलपर्यंक कृत सयन सर्पेस जनु सहस
सीसावली श्रोत सुरस्वामिनी॥ ४॥
अमितमहिमा अमितरूप भूपावलि मुकुटमनि
बंदिते[९] लोक[१०] त्रय[११] गामिनी।

---

६ पुण्य-ह०, रा०, ५१। ७-प्र० में नहीं है। ८ बन-६६, रा, बे० ह०, भा०। (मूलमें 'बन' है। हाशियेपर 'हिम' बनाया गया है।) हिम-ज०, ७४, आ०। हिमि-५१। ९ बंदिते-६६, गा०, ह०, भा०, वे०, प्र०, ज०, भ०, ७४। यह शुद्ध संस्कृत संबोधन है। वंद्य-छु०, दी०, वि०। बंदि-मु, ५१, बै०। १०, ११ त्रैलोक्य (त्रैलोक-मु०, दि०, वि०) पथ-आ० (भ०) लोक त्रय-६६, रा०, भा०, बे०, प्र०, ज०, ह, भ, ७४।

देहि रघुबीरपद प्रीति निर्भर मातु दास
तुलसी त्रास हरनि भवभामिनी ॥ ५ ॥

शब्दार्थः—जच्छ=यक्ष। यक्ष, किन्नर, गंधर्व और उरग, ये सब देवयोनियाँ हैं। गंधर्व और किन्नर बड़े गवैये होते हैं। किन्नरका मुख घोड़ेकासा होता है और ये पुलस्त्यजीके वंशज माने जाते हैं। गंधर्व जातिके देवगण कश्यपजीकि 'मुनि और प्राधा' नामकी स्त्रियोंसे हुए हैं। उरगसे नागदेव समझना चाहिये जो कद्रुके पुत्र हैं। मज्जहिं=नहाते हैं। सुकृतपुंज=समूह पुण्यवाले; पुण्यात्मा, सुकृती। जुत (युत) = सहित। कामिनी=स्त्री। पाथोजबन=कमलका बन। जलवाचक सब शब्दोंमें 'ज', 'जात' आदि लगानेसे कमलवाची शब्द बनते हैं। ऐसे बहुतेरे शब्दोंका प्रयोजन इस ग्रंथमें हुआ है। जैसे कि 'बारिज, सरसिज, सरोज, बनज, नीरज, कंज, पाथोज' इत्यादि। जामिनी (यामिनी) = रात। स्वर्गलोकोंमेंसे तीसरा। आकाशमें सूर्यलोकसे लेकर ध्रुवलोकतक स्वर्ग माना जाता है। पुण्यात्माएँ इस लोकमें निवास करती हैं। देवताओंका निवास यहीं है। जो सकाम यज्ञादिकर्म स्वर्गकी कामनासे किये जाते हैं उनसे स्वर्ग मिलता है जहाँ प्राणीको पुण्यफलका भोगसुख प्राप्त होता है। पुण्य क्षीण होने अर्थात् भोग केनेपर फिर प्राणीको इसी लोकमें आना पड़ता है। स्वर्गका वर्णन भा० ८। १५। १२। २१ में है। हरित = हरे रंगका। यथा 'हरित मनिन्ह के पत्र फल पद्मरागके फूल।' (बा०)। गंभीर=सघन, गहरा। बानीर=बेंत। बिसद=उज्वल। अभिरामिनी=आनंद देनेवाली। पर्यंक = पलंग। नील = गहरा आस्मानी रंग। भगवान्‌की श्यामताके विषयमें 'नीलसरोरुह नीलमनी नील नीरधर श्याम', 'गगन सदृश', 'अतसी कुसुम', 'दूर्वादलद्युति', 'केकिकंठाभनीलं' इत्यादि तुल्यात्मक शब्द जहाँ तहाँ आये हैं, जिससे गहरे, हरे और नीलेमें प्रायः बहुत समानता प्रतीत होती है। जनु=ऐसा जान पड़ता है, प्रतीत होता है, दीखता है। इसका प्रयोग उत्प्रेक्षालंकारमें प्रायः होता है। अवली=पंक्ति। स्रोत=जलप्रवाह, धारा। मुकुटमणि=इसका प्रयोग प्रायः श्रेष्ठ, शिरोमणि, इत्यादिके भावमें होता है। यथा 'कह तुलसीदास सुर-

मुकुटमनि जय जय जानकीरमन । ' (क०) । बंदिते = वंदना की गयी है । निर्भर = परिपूर्ण; ऐसा भरा हुआ कि आगे अब भरनेकी गुंजाइश ही (समाई) नहीं है । यथा ' **सब के उर निर्भर हरष पूरित पुलक सरीर । कबहिं देखिबै नयन भरि राम लषन दोउ बीर ॥** ' (बा०), ' **तन पुलक निर्भर प्रेम पूरन नयन मुख पंकज दिये** ' (आ०), ' **निर्भर प्रेम मगन मुनि ज्ञानी** ' (आ०) । भवभामिनी = शिवपत्नी । षड़ाननके जन्मके संबंधसे गंगाजीभी शिवजीकी पत्नी कहलाती हैं । पद १५ ' छ मुख ' में देखिये ।

पद्यार्थ—यक्ष, गंधर्व, मुनि, किन्नर, नाग, दैत्य और मनुष्य (आदि) सुकृतीपुरुष स्त्रियोंसहित (आपके जलमें) स्नान करते हैं । आप स्वर्गकी सीढी हैं । (पापोंका नाश करके और पुण्यपुंज बनाकर प्राणियोंको स्वर्गमें पहुँचा देनेवाली हैं ।) ज्ञान और विज्ञानकी देनेवाली और मोहमद कामरूपी कमलबनकेलिये रात्रिरूपिणी हैं । ३ । हे सुरस्वामिनी ! आपके दोनों सुंदर तटोंपर हरे सघन बेंत और मध्यमें विश्वमात्रको सुख देनेवाली उज्वल धारा (ऐसी शोभित हो रही) है मानों नीले (नीलम वा हरित मणिजटित) पलंगपर सर्पराज शेषजी सोये हुए हैं । आपकी सहस्रधारा (मानों) उन (शेषजी) की सहस्र सिरोंकी पंक्ति है । ४ । हे भूपावलिमुकुटमणिवंदिते ! हे त्रैलोक्य-गामिनी (अर्थात् जीवोंके कल्याणार्थ तीन धारा होकर तीनों लोकोंमें जानेवाली) ! आपकी महिमाकी सीमा नहीं है । आपके असंख्यों रूप हैं । हे भवानी ! हे तुलसीदासके त्रासकी हरनेवाली ! हे माता ! मुझे श्रीरघुवीरजीके चरणोंमें निर्भर प्रेम दीजिये । ५ ।

टिप्पणीः—६ (क) ' जच्छ गंधर्व मुनि किन्नरोरग ' इति । यक्षगंधर्वादिसे स्वर्ग, उरग और दनुजसे पाताल और मनुजसे भूलोक वासी जनाये । रहे मुनि, ये तो तीनों लोकोंमें रहते हैं । (ख) ' मज्जहिं सुकृतपुंज जुत कामिनी ' इति । आधुनिक प्रायः सभी टीकाकारोंने इसका यह अर्थ किया है कि ' जो यक्ष गंधर्वादि स्त्रीसमेत स्नान करते हैं वे पुण्यपुंज हो जाते हैं । ' संभवतः यह अर्थ इस शंकाकी

निवृत्तिकेलिये किया गया है कि पुण्यात्माके स्नान करनेमें कुछ अधिक महत्त्व गंगाजीका प्रगट नहीं होता। वास्तवमें 'जुत कामिनी' का भाव यह है कि विवाहित मनुष्योंको स्त्रीसहित गाँठ जोड़कर स्नान करनेकी विधि है। 'सुकृतपुंज मज्जहिं' कहनेका भाव यह है कि सबको आपका स्नान पान होना दुर्लभ है। यथा 'जनु सिंघल-बासिन्ह भयेउ बिधिबस सुलभ प्रयागु।' (अ०)। जब बड़े पुण्य उदय होते हैं तब आपका स्नान और वहभी विधिपूर्वक हो पाता है। यह भाव 'सेवहिं सुकृती साधु सुचि पावहिं सब मन काम।' (अ०) सेभी पुष्ट होता है। साधारण अन्वयभी यही अर्थ देता है।

(ग) 'स्वर्ग सोपान विज्ञान ज्ञान प्रदे' इति। 'स्वर्गसोपान' यह स्नानका फल है। यथा, 'देवनदी कहं जो जन जानि किये मनसा कुल कोटि उधारे। देखि चले झगरैं सुरनारि सुरेस बनाइ बिमान संवारैं॥ पूजा को साज बिरंचि रचैं तुलसी जो महातम जाननिहारे। ओक की नीव परी हरिलोक बिलोकत गंग तरंग तिहारे॥ (क०) यथा पद्मपुराणे उत्तराखण्डे, साक्षाद्धर्मद्रवौघं मुररिपुचरणाम्भोज पीयूषसारं दुःखस्याब्धेस्तरित्रं सुरदनुजनुतं स्वर्गसोपानमार्गम्। जो साक्षात् धर्मद्रवकी राशि है, भगवान् मुरारीके चरणकमलोंसे निकली हुई सुधाका सार है, दुःखरूपी समुद्रसे पार होनेकेलिये जहाज़ है, जिसे देवता और दानवभी प्रणाम करते हैं और जो स्वर्गलोकमें जानेकेलिये सीढी है। स्वर्गकी प्राप्ति बिना ज्ञानके नहीं होती। अतः कहा कि 'विज्ञान ज्ञानप्रद' हो। ज्ञान विना मोह नाश नहीं होता। अतः मोहादिकाभी नाश कहा। मोह, मद, मदन कई हैं और इनका परिवार तथा सेना बहुत बड़ी है। यथा 'काम क्रोध लोभादिमद प्रबल मोह कै धारि।' अतः इनको 'बन' कहा। कमल सरमें होता है। ये (मोहादि) प्राणियोंके हृदयमें रहते हैं। हृदयही सर है। यथा 'हर उर सर सरोजपद जोई। अहो भाग मैं देखब सोई।' पुनः इनको 'कमल' की उपमा देकर जनाया कि ये बड़े प्रबल है, सदा प्राणियोंके हृदयमें खिलेही रहते हैं। यथा, 'मुनि विज्ञानधाम मन करहिं निमिष महँ छोभ।'

बैजनाथजी लिखते हैं कि “ पापियोंके लिये स्वर्गसोपान हैं। आप पाप हरण कर उनको स्वर्गको चढ़ा देती हैं। सुकृती लोगोंको विज्ञानप्रदा है और विषयीके मोह, मद, काम विकारोंको हरकर ज्ञान देती हैं। ”

७ ‘ पाथोज बन जामिनी ’ इति। पाला कमलको जला डालता है। फिर वह खिल नहीं सकता। संभवतः इसी विचारसे कई टीकाकरोंने ‘ बन ’ के बदले ‘ हिम ’ पाठ स्वीकार किया है। परन्तु मोह, मद मनका सर्वथा नाश तबतक नहीं होता जबतक जीव मुक्त नहीं हो जाता। यह वेदान्तका सिद्धान्त है। गोस्वामीजीकाभी यही मत है। यथा, ‘ मानसरोग कछुक मैं गाये। हहिं सबके लखि बिरलेन्ह पाये॥ जाने ते छीजहिं कछु पापी। नास न पावहिं जन परितापी॥ बिषय कुपथ्य पाइ अंकुरे। मुनिहु हृदय का नर बापुरे॥उ०॥ ‘ जाग्यो मनोभव मुयेहु मन बन सुभगता न परै कही।’ (बा०) ये दब जाते हैं, अवसर पाकर फिर अंकुरित हो जाते हैं। ‘ हिम ’ सेभी मूलका नाश नहीं होता। अतएव हमारी समझमें ‘ बन ’ पाठही ठीक है। मोह मदादि कई हैं और इनका परिवार बहुत बड़ा है, इसी से ‘बन’ कहा। प्राचीनतम पाठभी यही है।

८ ‘ हरित गंभीर बानीर दुहुँ तीर बर ’ इति। ‘ सहससिसावली ’ और ‘ स्रोत ’ के संबंधसे यहां सहस्रधाराकेही दोनों तटों और मध्यका वर्णन सूचित कर दिया है। बेत गंगासागरपर दोनों तटोंपर है। अन्यत्र गंगोत्तरीसे लेकर कलकत्तातक कहीं ऐसा देखने सुननेमें नहीं आता है। गंगासागर संगमसे कपिल आश्रम दूर है। वहाँतक पहुँचनेकेहीलिये गंगाजी सहस्रधारा हुई। सहस्रधारा नाम विख्यात है। महाभारत शांतिपर्व समुद्र नदि संवादसे गंगातटपर बेंत वृक्षोंका होना प्राचीन कालसे पाया जाता है।

९ ‘ नीलपर्यंक कृत सयन सर्पेस जनु ’ इति। यहाँ बानीरसंयुक्त दोनों तटोंके बीचमें बिशद धाराकी शोभा उत्प्रेक्षाका विषय हैं। शेषजीका रंग बहुत उज्वल कहा गया है। यथा ‘ फणधर कुंदसमान स्वेत रंग कृत कुंडली बिराजा ’ ‘ श्रीरामचरणंकमाला ’ (लालाभगवानदीनजी

रचित)। अतः इसकी उत्प्रेक्षा विशद धारासे की गयी। घने हरे बेतोंकी छाया जो पानीमें दिखायी देती है वह नीलपर्यंक है। भाव यह है कि गंगाजीकी धाराके दोनों ओर घने बेतवृक्षोंकी हरी छाँह पड़ रही है और मध्यभाग उज्वल दिखायी पड़ रहा है। अतः ऐसी शोभा हो रही है मानों नीले पलंगपर शेषनाग शयन किये हुए हैं। शेषजीके सहस्त्र फन गंगाजीकी सहस्त्र धाराएँ हैं।

१० (क) 'अमित महिमा' का भाव कि जो मैंने महिमा कही है इतनीही न जानिये। वह तो अकथनीय है। 'अमितरूप' कथनका भाव कि यह धाराप्रवाह जो प्रत्यक्ष देख पड़ता है, यही एक रूप न जानिये। इनके अनेक रूप हैं। 'लोकत्रयगामिनी' कहकर सहज सौलभ्य और उदार जनाया।

महाभारत अनुशासन पर्वमें गंगाजीकी महिमा विस्तारसे वर्णन की गयी है। किसी सिद्ध महात्माने एक शिलोञ्छवृत्तिवाले ब्राह्मणके प्रश्नपर कहा है, "वेही देश, जनपद (प्रान्त), आश्रम और पर्वत पुण्यकी दृष्टिसे सर्वश्रेष्ठ हैं जिनके बीचसे होकर गंगाजी बहती हैं। गंगाजीका सेवन करके जीव जो उत्तम गति प्राप्त करता है वह तपस्या, ब्रह्मचर्य, यज्ञ और त्यागसे नहीं मिल सकती। जिनके शरीर गंगाजलसे भीगते हैं अथवा मरनेपर जिनकी हड्डियाँ गंगाजलमें डाली जाती हैं, वे कभी स्वर्गसे नहीं गिरते। जिस मनुष्यके संपूर्ण कार्य गंगाजलसे संपन्न होते हैं, वे मरनेपर स्वर्गवास करते हैं। मनुष्यकी हड्डी जितने वर्ष गंगाजलमें पड़ी रहती हैं उतने हज़ार वर्षोंतक वह स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। एक हज़ार चान्द्रायणव्रतका फलभी केवल गंगाजल पान करनेवालेके फलके बराबर नहीं हो सकता। गंगास्नानसे पाप नष्ट होते हैं। जिनका कहीं आधार नहीं, जिन्होंने धर्मकी शरण नहीं ली उनका आधार, शरण गंगा हैं। जो स्नान करने जाया करते हैं वे इंद्रादिके समान माने जाते हैं। मनुष्य गंगाजीकी शरण जानेपर शिवस्वरूप हो जाते हैं। गंगा तीरकी मृत्तिका मस्तकमें लगानेसे अज्ञानांधकार नाश होता है। दर्शन, स्पर्श, और मज्जनसे प्राणीकी सातपीढ़ी ऊपर नीचेके पितरोंका उद्धार

हो जाता है। प्राण निकलतेसमय मनही मन गंगाका स्मरण करनेसे परमगति मिलती है। प्रात:काल स्नानसे धर्म, अर्थ, कामकी सिद्धि होती है। गंगाजी स्वर्गकी जननी है।" कदाचित् पूरा यज्ञ करनेसे मेरुगिरिके रत्नों और समुद्रके पानीकी माप बतायी जा सके किंतु गंगाजलके गुणोंका वर्णन असम्भव है।

मार्कण्डेयजीने युधिष्ठिरसे कहा है कि, "वायुदेवताने देवलोक, भूलोक तथा अन्तरिक्षमें साढ़ेतीन करोड़ तीर्थ बतलाये हैं। गंगाको उन सबका स्वरूप माना गया है। '**तिस्र कोट्यर्द्धकोटीश्च तीर्थानां वायुरब्रवीत्। दिवि भुव्यन्तरिक्षे च तत्सर्वं जाह्नवी स्मृता॥**" (पाद्मे स्वर्ग० ४७।७) एक खरब तीस करोड़सेभी अधिक तीर्थ माघमासमें गंगाजीके भीतर आकर स्थित रहते हैं। यथा, '**दशकोटिसहस्राणि त्रिंशत्कोट्यस्तथापरे। माघमासे तु गंगायां गमिष्यन्ति नरर्षभ।**' (पाद्मे० स्वर्ग० ४९।१६) पद्म पु० सृष्टिखण्डमें व्यासजीने ब्राह्मणोंसे गंगाजीकी महिमा इस प्रकार कही है कि, 'गंगाकी यात्रा करनेवालोंकी कई पीढ़ियाँ तर जाती हैं। भक्तिपूर्वक स्नान करनेवालोंकी लाख पीढ़ियाँ तर जाती हैं। संक्रान्ति, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, व्यतीपात और पुष्य नक्षत्रमें स्नानसे करोड़ पीढ़ियाँ तर जा सकती हैं। दर्शनसे पापराशि नष्ट होती है, जलके स्पर्शसे स्वर्गप्राप्ति और गोता लगानेसे मोक्षप्राप्ति होती है। स्नान करनेवाले मनुष्यके हृदयमें यथालाभसंतोष, समता, धर्ममें प्रवृत्ति आदि सद्गुण स्वभावत: उत्पन्न हो जाते हैं। गंगातटपर किया हुआ दान, यज्ञ, तप, जप आदि प्रतिदिन कोटि कोटिगुण अधिक फलप्रद है। अपने जन्मनक्षत्रके दिन गंगासंगममें स्नान करनेसे कुलका उद्धार होता है। हज़ारों चांद्रायणव्रत करनेवालेसे मनचाहा गंगाजीका जल पीनेवाला विशेष शुद्ध और श्रेष्ठ माना गया है। स्वर्ग, पृथ्वी और आकाशमें जो साढ़े तीन करोड़ तीर्थ हैं वे सब गंगाजलमें विद्यमान् हैं। जल धर्ममय होनेसे गंगाजी 'धर्मद्रवी' नामसे विख्यात हुई हैं। गंगातीरकी मिट्टी मस्तकपर धारण करनेसे पाप नष्ट हो जाते हैं। पितरोंकी हड्डियाँ ले जाकर जो गंगामें छोड़ता है उसे पगपग अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है। तीरके ग्राम, पशु,

पक्षी आदि सब धन्य हैं। गंगायात्रीको सहायता देनेवालेकोभी वही फल प्राप्त हो जाता है। प० पु० सृष्टि० ६० में गंगाकी महिमा विस्तारसे वर्णित है। पाठक वहाँ देख सकते हैं।

(ख) 'भूपावली मुकुटमनि बंदिते' इति। बड़े बड़े राजा, महाराजा, चक्रवर्ती राजा और उनकेभी जो शिरोमणि हैं उन सबोंसे आप वंदित हैं। किसी किसीने ऐसाभी अर्थ किया है कि 'आप समूह राजाओंके मुकुटोंके मणियोंसे वंदित है। समस्त राजे लोग आपके चरणोंपर सिर रखकर प्रणाम करते हैं जिससे उनके मुकुटमणि आपके चरणोंका स्पर्श करते हैं।' चरखारी टीकाकारने 'समूह राजाओंमें जो मुकुटरूप हैं उनकेभी मणिरूप जो इंद्रादि हैं उनसे वंदित' ऐसा अर्थ किया है।

११ 'त्रासहरनि भवभामिनी' इति। शंकरजी भवभयहरण हैं। यथा 'भूत बैताल सखा भव नाम दलै पलमें भवके भय गाढ़े।' (क०) आप 'भवभामिनी' है। अतः आपभी 'त्रासहरणि' हुआही चाहें। सगर पुत्रोंके त्रासको हरनेकेलियेही तो पृथ्वीपर आपका आगमन हुआ था। इस तरह स्वभावसेही त्रासहरणि हैं। 'देहि रघुबीर-पद प्रीति निर्भर' कहकर 'त्रासहरनि' विशेषण देनेका भाव कि अपने इष्टदेव श्रीरघुनाथजीकी भक्तिद्वाराही मैं अपना भवहरण चाहता हूँ, अन्य प्रकारसे नहीं। यह उपासनाकी अनन्यता है *। 'रघुबीर' के भाव पद १७ टि० ५ में देखिये।

'मातु' संबोधनका भाव कि माता बालकका हठ रखती है। जो बच्चा माँगता है वह माँ देती हैं। यथा 'हौं माचल लै छूटिहौं जेहि लागि अर्‍यो हौं।'

प० पु० स्वर्ग० ६१ में लिखा है कि 'भगवान् केशवही जलके रूपमें इस भूमंडलका पापसे उद्धार करते हैं। यदि वैष्णव विष्णुभक्तिकी

* दीनजी—'रामके दरबारतक न पहुँच सकनेका जो भय मुझे लगा हुआ है उसे मिटा दो। ऐसा प्रबंध कर दो कि मैं दरबारतक पहुँचकर विनयपत्रिका पेश कर सकूं।'

अभिलाषा रखता हो तो उसे गंगाजीके निर्मल जलका अभिषेक प्राप्त करना चाहिये। क्योंकि यह अंतःकरणको शुद्ध करनेका उत्तम साधन है। गंगा विष्णुभक्ति प्रदान करनेवाली बतायी जाती हैं। वे विष्णुस्वरूपही हैं।' यथा 'विष्णुभक्तिप्रदा देवी गङ्गा भुवि च गीयते। विष्णुरूपा हि सा गङ्गा लोकनिस्तारकारिणी। ६९।'

१२ 'लोक त्रयगामिनी', 'अमित महिमा' इति। श्रीलमगोड़ाजी लिखते हैं कि "सांख्यशास्त्रको केवल भौतिकवादका विकास मानकरही लोग यह ग़लती करते हैं कि तत्त्वोंको भगवत्‌शक्तिका विकास और केवल बाहरसे जड़ न मानकर बिलकुल जड़ मान लेते हैं। बात यह है कि प्रत्येक शास्त्र अपने अपने दृष्टिकोणसे विचार करता है और छओ शास्त्र मिलकर कुछ कुछ वास्तविकताको पहुँच पाते हैं। प्रकाश (अग्नि) तत्त्वके ठंढे होनेपरही तो जलतत्त्व बना, त्रिदेव निर्णयमें उसी तेजराशिको आदित्य या विष्णु कहा है। फिर जल बनकर नीचेको बहता हुआ प्रवाह विष्णु भगवान्‌का चरणोदक और बहनेके कारण गंगारूप मानना ठीकही है। मसनवी शरीफ़में मौलाना रूमने अग्नितत्त्वकेलिये साफ़ लिखा है कि बाहरसेही वह जड़ है पर वास्तवमें वह जड़ नहीं है। इसीलिये अग्निने भगवद्भक्तको (आस्तिक मुसलमानको) नहीं जलाया।

"अब तो Science of Meta Biology कमसे कम यह मानने लगी है कि एक आत्मा और दूसरी प्रकृतिकी धाराएँ साथ साथ बहती हैं और जहाँ जहाँ ग्रंथियाँ (Vortex) पड़ती हैं वहीं वहीं चैतन्यविशेषका दिग्दर्शन होता है। यह तो ठीकही है कि जब तीन धाराएँ हैं तो आकाशकी धारामें आकाश प्रधान होगा। महिम्नस्तोत्रमें सितारोंको उसका फेन कहा है। मर्त्यलोकमें जल और पृथ्वीतत्त्वका बाहुल्य है और संभव है कि पातालमें औरभी गाढ़ापन हो। त्रिदेव निर्णयमेंभी बहुधा नदियोंका राजाओंद्वारा नहरोंके रूपमें निकाला जाना मानाही है। अंतर केवल आत्मिकशक्ति और तपके बलके मानने न माननेका पड़ता है। यह विचारका अंतर अबभी हमारे सामने रहा है। टैगोरजी

मानवी गुणदोषका प्रभाव भूचाल इत्यादिपर नहीं मानते हैं और महात्मा गांधीजी मानते हैं। बात तो साफ़ यह है कि यदि आत्मिक शक्ति है और भौतिक तत्त्व इसके आवरण हैं तो हमारे महात्माओं ऋषियोंका कथन व्यर्थ नहीं है।"

१९ राग-रामकली (बिलावल प्र०, ज०)

हरति[1] सकल[2] पाप त्रिबिध[3] ताप सुमिरत सुरसरित।
बिलसति[4] महि कल्पबेलि मुद मनोरथ फरित॥ १॥
सोहत[5] ससि धवल धार सुधा सलिल भरित।
बिमल तर तरंग लसत रघुबर के[6] से चरित॥ २॥
तो बिनु जगदंब गंग कलिजुग का करित।
घोर भव अपार सिंधु तुलसी कैसे[7] तरित॥ ३॥

शब्दार्थ—बिलसना = विशेष रूपसे शोभा देना, बहुत भला जान पड़ना। यथा 'बिलसत बेतस बनज बिकासे।' यह अकर्मक क्रिया है। इसका प्रयोग प्रांतिक है और केवल पद्यमें होता है। कल्पबेलि= कल्पलता यह कल्पवृक्षका पर्याय है। गंगाजीके संबंधसे स्त्रीलिंग शब्द प्रयुक्त किया गया है। फरित=फली हुई। सलिल=जल। भरित=भरी हुई 'करित', 'तरित' ठेठ हिंदी बोली है। वह उत्तम पुरुष 'हम' के साथ प्रायः बोली जाती है।

पद्यार्थ-देवनदी गंगाजी स्मरण करतेही सब पापों और तीनों तापोंको हर लेती हैं। (इस) पृथ्वीपर मानसी आनंद और मनोरथ (रूपी फल) फली हुई कल्पलता (सी) सुशोभित है। (जैसे

१ हरति—भा०, बे०, ह०, मु०, ७४, दी०। हरत—ज०। हरण—रा०। हरणि—डु०, वै०। हरनि—भ०, वि०। २-सकल ५१, ७४, आ०, में नहीं है। ३ त्रिबिध—रा०। ४ बिलसती—रा०, ह०, आ०। बिलसत—प्रायः औरोंमें। ५ सोहति—डु०, बै०। ६ के से—रा०, भा०, ह०, आ०। ७४ में 'के' नहीं है। बे०, प्र० में 'से' नहीं है। ७ कैसे—रा०, भा०, बे०, डु०, वै०, । किमि—भ०, ७४, दी०, वि०। किम—५१, मु०,

स्वर्गमें कल्पवृक्ष अर्थ, धर्म और काम मनमें स्मरण करतेही देता है वैसेही इस पृथ्वीपर गंगाजी समस्त वांछित पदार्थोंको देती हैं। विशेषता यह है कि वह (कल्पवृक्ष) मानसी आनंद नहीं दे सकता और गंगारूपी कल्पलता उसेभी देती है और बुरे मनोरथों, बुरे संकल्पोंको तो वह पहलेही हर लेती है जैसा कि प्रथम चरणमें कह आये हैं)। १। अमृत (सदृश गुणकारी मधुर) जलसे भरी हुई, चन्द्रमासमान स्वच्छ उज्वल धारा शोभा दे रही है। अत्यंत निर्मल तरंगें श्रीरघुनाथजीके चरितके समान सोह रही हैं। २। हे जगज्जननी गंगे! तेरे बिना इस कलियुगमें हम क्या करते? (हमारा कुछ बस न चलता। सदा पापपरायण रहते। हम भवतरणका कोई साधन तो करही नहीं सकते। आपही एकमात्र अवलंब हुई हैं।) * तुलसीदास अपार घोर भवसागर पार कैसे होता?

टिप्पणी–१ (क) ' हरति सकल पाप त्रिबिध ताप ' इति। पापोंकी गिनती नहीं कि कितने हैं? यथा, '**हिंसा पर अति प्रीति तिन्ह के पापहिं कवनि मिति**।' अतः ' सकल ' कहकर मन, वचन, कर्म जनित समस्त पापोंको जना दिया। † (ख) 'सोहत ससि धवल धार सुधा सलिल भरित' इति। धारा चन्द्रसमान उज्वल हो पर यदि जल गुणद न हो तो वह किस कामका? अतः 'सुधा' विशेषण देकर मधुर, मनोहर और मंगलकारीभी जनाया। 'सुधा सलिल'का भाव कि देवता अमृत पाकर अमर होते हैं और

---

*कुछ लोगोंने इस प्रकारभी अर्थ किया है कि 'तेरे बिना कलियुग (न जाने) क्या कर डालता'?। पर 'करित' शब्दका प्रयोग इस अर्थका पोषक नहीं है। कलियुगमें कुछ बस नहीं चलता। कारण कि 'धरम सबै कलिकाल ग्रसे जप जोग बिराग लै जीव पराने।', 'कलि न बिराग जोग जाग तप त्याग रे।' भुशुण्डीजीका वाक्य है कि 'सुन खगेस कलि कपट हठ दंभ द्वेष पाषंड। मान मोह मारादि मद व्यापि रहे ब्रह्मण्ड।' (उ०) जन मन पापग्रस्त रहताही है। यथा 'कलि केवल मलमूल मलीना। पाप पयोनिधि जन मन मीना।' तब कैसे तरते?

† ' हरति सुमिरत' में ' द्वितीय विशेष अलंकार ' है।

यह जीतेजीही प्राणियोंको देवतुल्य बना देती है। (ग) 'बिलसति' और 'सोऽहमस्मि' में वाचकलुप्तोपमा है। 'सुधा सलिल'में 'निरंगरूपक' है।

२ 'बिमलतर तरंग लसत' इति। 'रघुबर के से चरित' कहकर यहाँ अतिशय पावन, सुखद, प्रबल, कल्मषहारक और कामादिदोषनिवारक इत्यादि सूचित किया। यथा '**बिमल कथा कर कीन्ह अरंभा। सुनत नसाहिं काम मद दंभा॥**', '**कुपथ कुतर्क कुचालि कलि कपट दंभ पाखंड। दहन रामगुनग्राम जिमि इंधन अनल प्रचंड॥** 'बिमलतर' में पूर्णोपमा है।

३ 'तो बिनु कलियुग का करित' इति। मिलान कीजिये, '**भागिरथी जल पान करौं अरु नाम द्वै राम के लेत नितैहौं। मोको न लेनो न देनो कछू कलि भूलि न रावरी ओर चितैहौं। जानि कै जोर करौ परिनाम तुम्हइ पछितैहौ पै मैं न भितैहौं। ब्राह्मन ज्यों उगल्यो उरगारि हौं त्योंही तिहारे हिये न हितैहौं।** गंगाजीके और राम-नामके बलपर यह कलियुगको ललकार है।

प० पु० स्वर्गखंडमें नारदजीने युधिष्ठिरजीसे वसिष्ठदीलीपसम्वाद वर्णन करते हुए गंगाजीकी जो महिमा कही है, उसमें यह कहा है कि 'सत्ययुगमें सभी तीर्थ, त्रेतामें पुष्कर, द्वापरमें कुरुक्षेत्र तथा कलियुगमें गंगाही सबसे पवित्र तीर्थ मानी गयी हैं। गंगाजी नाम लेनेमात्रसे पापोंको धो देती हैं। दर्शन करनेपर कल्याण करती हैं और जल पीनेपर सात पीढ़ियोंतकको पवित्र करती हैं। यथा, '**पुनाति कीर्तिता पापं दृष्ट्वा भद्रं प्रयच्छति। अवगाढ़ा च पीता च पुनात्या सप्तमंकुलम्॥ यावदस्थि मनुष्यस्य गंगायाः स्पृशते जलम्। तावत्सपुरुषो राजन् स्वर्गलोके महीयते॥ न गंगासदृशं तीर्थं न देवः केशवात्परः। ब्राह्मण्येभ्यः परं नास्ति एवमाह पितामहः॥ यत्र गंगा महाराज स देशस्तत्तपोवनम्। सिद्धिक्षेत्रंच विज्ञेयं गंगातीर समाश्रितम्॥**' (३९।८६, ८७, ८९, ९०) पु. पु. सृष्टिखण्ड ६०।७८, ११६, १२३। यथा "**गंगा गङ्गेति यो ब्रूयाद् योजनानां शतैरपि। मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥ पाठ्ययज्ञपरैः सर्वैर्मंत्रहोमसुरार्चनैः।**

सा गतिर्न भवेज्जनतोर्गङ्गासंसेवया च या ॥ विशेषात्कलिकालेच गङ्गा मोक्षप्रदा नृणाम्। कृच्छाच्च क्षीणसत्त्वानामनन्तः पुण्यसंभवः ॥" 'जो सैकड़ों कोस दूरसेभी 'गंगा गंगा' कहता है वह सब पापोंसे मुक्त हो विष्णुलोकको प्राप्त होता है।' व्यासजी कहते हैं कि 'पाठ, यज्ञ, मंत्र, होम और देवार्चनादिसे वह गति नहीं प्राप्त हो सकती जो गंगा-सेवनसे प्राप्त होती है। ११६।' विशेषतः इस कलिकालमें सत्वगुणसे रहित मनुष्योंको कष्टसे छुड़ाने और मोक्ष प्रदान करनेवाली गंगाजीही हैं। गंगासेवनसे अनन्त पुण्यका उदय होता है। १२३। 'तो बिनु' में 'तुल्यप्रधान गुणीभूत व्यंग्य' है।

४ 'तुलसी कैसे तरित' इति। इसमें यहभी भाव है कि जो ज्ञानादि पुरुषार्थ कर सके सो भलेही करे पर मैं तो सर्वथा पुरुषार्थहीन हूँ। मेरे-लिये तो 'हरिपदकमलमकरंद' आपही अवलम्ब हैं।

२० राग-रामकली

ईस सीस बससि त्रिपथ लससि नभ पाताल धरनि।
मुनि सुर नर नाग सिद्ध सुजन मंगल करनि ॥ १ ॥
देखत दुख दोष दुरित दाह दारिद दरनि।
सगरसुवन[1] साँसति समनि[2] जलनिधि जल भरनि ॥ २ ॥
महिमा की अवधि करसि[3] बहु बिधि हरि हरनि।
तुलसी करु बानि बिमल बिमल बारि बरनि ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—दाह=संताप, जियकी जरनि। दरनि=दलनि। साँसति=क्लेश; दंड। यथा 'साँसति करि पुनि करहिं पसाऊ' (बा०) वस्तुतः यह शब्द 'साँस' + 'त' (प्रत्यय) से बना है। साँसत=दम घुटनेकासा कष्ट अर्थात् बहुत अधिक कष्ट। यथा 'तब तात न मातु न स्वामी सखा सुत बंधु बिसाल बिपत्ति बटैया। साँसति घोर पुकारत आरत कौन सुनै बहु और डटैया ॥' (क)। साँसति=शापसे वा मुक्तिके क्रोधभरे तेजसे भस्म होनेके कारण यमयातनाका कष्ट जो

१ सुअन–रा०, ज०, ह०, डु०,। सुवन–प्रायः औरोंमें। २ समन–७४। ३ करनि–ज०।

सगरपुत्र सड़ रहे थे। नरकका दुःख। (ड्ड, वै०)। बरनि=वर्णके समान; (के) रंगकी। हरनि = हरोंको (महादेवोंको)। वर्ण=रंग, रूप, प्रकार।

पद्यार्थ—(हे गंगे!) तुम शिवजीके सिरपर बसती हो। (तात्पर्य कि आपकी अनंत अपार महिमा है। इसीसे आपको शिवजी सिरपर सदा धारण किये रहते हैं।) तुम आकाश, पाताल और पृथ्वी तीनों मार्गोंमें सुशोभित हो रही हो। तुम मुनि, सुर, नर, नाग, सिद्ध और सज्जनोंका मंगल करनेवाली हो। १। दर्शन करतेही दुःख, दोष, पाप, संताप और दरिद्रताको दल डालनेवाली, सगरपुत्रोंकी साँसतिको मिटा देनेवाली (कपिलदेवजीके क्रोधाग्निके तेजसे भस्म हुए सगरपुत्रोंको अकाल मृत्यु प्राप्तिके घोर परिणामसे वा यमसाँसतिसे बचाकर उनको सद्गति देनेवाली) और समुद्रको जलसे (परिपूर्ण) भर देनेवाली तुम हो। २। तुम अगणित ब्रह्मा, विष्णु और महेशोंकी महिमाकी अवधि बनाती हो। मुझ तुलसीदासजीकी वाणी अपने निर्मल जलके समान निर्मल कर दीजिये। ३।

टिप्पणी—१ इस पदमें गंगाजीका नाम न देकर केवल उनके गुणमात्रसे उनका परिचय कराया है। यह 'प्रथम पर्यायोक्ति अलंकार' है। 'ईससीस', 'त्रिपथ लससि', 'मंगलकरनि' और 'सगरसुवन साँसति' के भाव पूर्व पद १७, १८ में आ चुके हैं।

२ 'जलनिधि जल भरनि' इति। 'समुद्रको जलसे भर देनेवाली' इस कथनसे सूचित हुआ कि समुद्र सूख गया था, उसको भरा। समुद्र कब सूखा? इसकी कथा महाभारत वनपर्वमें वृत्रासुरके वध और कालकेयनामक दैत्यदलके अत्याचारके प्रसंगमें आयी है जो पद १७ टि० १ पृष्ठ ८१ में आ चुकी है। महर्षि अगस्त्यजीने यह कहते हुए कि मैं संसारके हितकेलिये समुद्रका पान करता हूँ। बातकी बातमें समुद्रको जलहीन कर दिया। इंद्रादिने तब सब दैत्योंका वध करके पुनः प्रार्थना की कि अब इसको पिये हुए जलसे पुनः भर दीजिये। अगस्त्यजी बोले 'वह जल तो पच गया, तुम कोई और उपाय सोचो।' देवगण उदास होकर ब्रह्माजीके पास गये। ब्रह्माने कहा 'देवगण! तुम अपने अपने स्थानोंको

जाओ। आजसे बहुत समय बाद राजा भगीरथ अपने पुरखाओंके उद्धारका प्रयत्न करेगा, उससे समुद्र फिर जलसे भर जायगा। विशेष पद १२ और पद १७ में देखिये। 'सगर सुँसति समनि' कहकर तब 'जलनिधि जलभरनि' कहनेसे सूचित हुआ कि गंगाजी सगर पुत्रोंके उद्धारकेलियेही लायी गयी थीं और यही काम उन्होंने प्रथम किया। दूसरा देवकार्य यहभी साथही साथ हो गया कि अगस्त्यद्वारा जो समुद्र सुखा दिया गया था वहभी पुनः भर गया।

३ 'महिमा की अवधि करसि बहु बिधि' इति। इसका अर्थ भिन्न भिन्न प्रकारसे लोगोंने किया है। पं० रामवल्लभाशरणजी 'बहु' का अर्थ 'बहु प्रकारसे (महिमाकी अवधि)' करते हैं। कुछ लोग 'बिधि हरिहरको बहुत महिमाकी अवधि बनाती हो' ऐसा अर्थ करते हैं पर दासकी समझमें 'हरनि' बहुवचनवाचक है। अनेक ब्रह्मांड हैं, प्रत्येकमें त्रिदेव और गंगा हैं, इस भावसे 'बहु' 'बिधि हरि हरनि' का विशेषण है।

पं० रामकुमारजी अर्थ करते हैं कि 'महिमाकी अवधि हो और बिधि हरि हरको करती हो।' जिसका आशय यह जान पड़ता है कि "स्वयं महिमाकी अवधि हो और त्रिदेवकोभी महिमाकी अवधि बनाती हो"। अथवा यह कि "अनेक ब्रह्मा; विष्णु और महेश बनाती हो। ऐसी आप महिमाकी अवधि है। ऐसी महिमा दूसरेकी नहीं है।" यह अर्थ चरखारीवाली टीकामेंभी है। कवितावलीके "बारि तिहारो निहारि मुरारि भयें परसें पद पाप लहोंगो। ईस ह्वै सीस धरौं पै डरौं प्रभुकी समता बड़ दोष दहोंगो॥ इस पदसे ऐसा भाव ध्वनित होता है। स्नान समय सिरपर चढ़ानेसे शिवरूप, पदस्पर्शसे विष्णुरूप और पात्रमें भरकर ले चलनेपर ब्रह्मरूप होनेका भाव कहा गया।

कुछ ऐसाही प्रयोग बालकांडमें 'महिमा अवधि' का हुआ है। वहाँ गोस्वामीजी महाराज श्रीदशरथजी और महारानी श्रीकौशल्या अंबाजीके विषयमें लिखते हैं, "जिन्हहिं बिरचि बड़ भयउ बिधाता। महिमा

अवधि रामपितु माता ॥ ” श्रीदशरथ कौशल्याजीको उत्पन्न करनेसे ब्रह्माजी महिमाकी अवधि हुए। प्रतिष्ठित हुए। वैसेही यहाँ बिधि हर हरोंकी अतिशय महिमाकी कारण गंगाजीको कह रहे हैं। गंगाजी स्वयं तो महिमाकी अवधि हैंही। यथा ‘ अमित महिमा अमितरूप ’ (१९) पर ब्रह्माजीने आपको कमंडलमें रक्खा जिससे ब्रह्मकमंडली नाम पड़नेसे ब्रह्माकी महिमा बढ़ी। हरिपदनखनिर्गता होनेसे, विष्णुपदी कहलानेसे, विष्णुमहिमा अतिशय प्रसिद्ध हुई। ‘ जटाशंकरी, ’ ‘ त्रिपुरारीसिर-धामिनी’ इत्यादि नामोंसे शिवमहिमा पराकाष्ठाको पहुँची। तात्पर्य कि गंगाजीके संबंधसे त्रिदेवकी महिमा जगत्में अतिशय फैली। आपको देखकर इनकी महिमाका स्मरण हो आता है कि धन्य हैं वे जिनके चरणोंसे निकलीं, जिनके कमंडलमें रहीं वे धन्य हैं और जिनके सिरपर सदा विराजमान् हैं वे शंकरजीभी धन्य हैं। संभवतः इसी भावसे पद्माकरजीने कहा है कि ‘पुछतो को नंगे को जो न गंगे सीस धरतो।’ यदि दिगंबर अवधूत वेषधारी शिवजी आपको अपने सिरपर न धारण करते तो उनको जानताही कौन ? कोईभी तो नहीं ?

४ ‘करु बानि बिमल बिमल बारि बरनि’ इति। ‘बिमल बारि बरनि’ को संबोधन मानकरभी अर्थ किया जा सकता है। ‘ हे स्वच्छ वर्णवाली ! हे निर्मल जलवाली ! मेरी वाणी निर्मल कर दीजिये। ’ ‘विमल बारि’ और ‘ विमल वर्ण ’ साभिप्राय संज्ञाएँ हैं। विमल वर्णवालीही दूसरेकी वाणीको निर्मल करनेमें समर्थ हो सकती है। इस प्रकार यहाँ ‘ परिकरांकुर अलंकार ’ है। (वीर)

श्रीगङ्गास्तुति—श्रीगंगाजीकी स्तुति चार पदोंमें (पद १७, १८, १९ और २० में) की गयीं। चार पदोंमें इनकी स्तुति करनेका भाव कदाचित् यह हो सकता है कि ‘त्रिपथगा’ होनेसे अर्थात् स्वर्ग, पृथ्वी और पातालमें धारा प्रवाहरूप बहनेसे तीन पद्योंमें स्तुति की और एक स्तुति उनके दूसरे रूप अर्थात् भवभामिनी रूपकी की। भवभामिनी (शिवपत्नी) रूपवाली स्तुति चारोंमें सबसे बड़ी स्तुति है।

दे० द० शर्माजीका मत है कि गोस्वामीजीने गंगाजीसे विनय करते

हुए फलचतुष्टयकी कामना स्पष्ट की है। फल चार हैं। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। विनयके गंगास्तुतिवाले चारों पदोंमेंसे प्रथम पद 'काम' का, द्वितीय 'धर्म' का, तृतीय 'मोक्ष' का और चतुर्थ 'अर्थ' का बोधक है।

तुलसीदासजीकी वन्दनाका क्रम लौकिक और आध्यात्मिक दोनों दृष्टियोंसे बहुतही मौजूं (उपयुक्त) और अभिप्रायपूर्ण है।

शंकरजीकी वन्दनाके बाद भवानीकी वन्दना, गंगाजीकी वन्दना सम्प्रदाय परम्परा एवं व्यवहारकी दृष्टिसे उचितही है। यही कारण है कि यमुना आदि किसीभी पुण्यसलिलाकी वन्दनाको भवानीकी वन्दनाके-साथ सम्बद्ध नहीं किया है। तुलसीदासजी काशीवास कर रहे थे। भवानीशंकर और गंगाकी अमित कृपाके पात्र बनकर अपने इष्टसे संयुक्त होना चाहते थे। गंगा हरिपदद्रव हैं। उनमें फलचतुष्टय प्रदान करनेकी पूर्ण क्षमता है। तुलसीदासजी समझते हैं कि गंगा माता हैं। यह पुत्रके अपराधोंपर ध्यान न देकर फलचतुष्टय प्रदान करेंगी, जिनकी प्राप्ति होनेसे रघुपतिचरणरति सहज प्राप्त हो जायगी। इसीलिये वे कहते हैं कि जब जब मैं पैदा होउँ तो माँ तेरे किनारे पर बास करूँ और हरिभक्ति करूँ। वे शायद यहभी सोचते थे कि एक जन्ममें सिद्धि मिलना कठिन है। गंगा स्तुतिमें तुलसीदासजीके मध्यजीवनकी अस्पष्ट झाँकी है, जो लक्षणसे प्रतिभासित है।

२१ [२४] राग-बिलावल

जमुना ज्यों ज्यों लागी बाढ़न।
त्यों त्यों सुकृत सुभट कलिभूपहिं निदरि लगे बाँह[1] काढ़न ॥१॥
ज्यों ज्यों जलु मलीन त्यों त्यों जमगन मुख मलीन लहैं[2] आढ़न।
तुलसिदास जगदघ जवास ज्यों अनघ मेघ[3] (आगि) लागे डाढ़न ॥२॥

१ बाँह—६६, रा०, भा०, बे०, ६९। १५ में 'बाह लागे' का 'लगे भुज' बनाया है। बहि—ह०, ७४, भ०, दी०, वि०। बहु—५१ मु०, वै०। भुज—डु०। मात्रा बढ़ जाती है। संभवतः इसीसे लोगोंने पाठ बदला है। २ लहैं—६६, रा०, भा०, बे०, ६९, प्र०, ज०, ह०, दी०। लह—मु०, ५१, ७४। है—डु०, वि०। है—वै०। ३ आगि—६६, भा०, बे०, ह०, ५१, ७४। मेघ—ज०, आ० (दी०)। आप—च०, दी०।

शब्दार्थ—जमुना=यमुना नदी । यह प्रसिद्ध नदी हिमालयके यमनोत्तरी स्थानसे निकलकर प्रयागमें गंगामें मिलती हैं। यह ८६० मील लम्बी है। यहभी बहुत पवित्र मानी जाती है। पुराणानुसार यह यमकी बहिन यमी है जो सूर्यके वीर्यसे संज्ञाके गर्भसे उत्पन्न हुई थी और जो संज्ञाको सूर्यद्वारा मिले हुए शापके कारण पीछेसे नदी हो गयी थी। यमने कार्तिक शुक्ला २ के दिन अपनी बहिनके यहाँ भोजन किया और उसके प्रसादमें यह वरदान दिया कि जो इस दिन तुम्हारे जलमें स्नान करेगा वह यमदंडसे मुक्त हो जायगा। इसीको भैयाद्वीज कहते हैं। उस दिन बहिनके यहाँ भोजन करना और उसको कुछ देना मंगलकारक और आयुवर्द्धक माना जाता है। यथा, 'जमगन मुंह मसि जग जमुनासी।' (बा०) सुभट=उत्तम योधा। निदरि=निरादर करके। काढ़ना=(सं० कर्षण। प्रा० कड्ढन।) भीतरसे बाहर निकाल लाना। मलीन = उदास, बदरंग, कालिमादार। लहैं = पाते हैं। आढ़ (आड़) = ओट, ठिकाना, शरण। जगदघ=(जगत्+अघ) जवास। (सं० यवासक) एक कटील क्षुप अर्थात् छोटी डालियोंवाला पौधा। इसकी पत्तियाँ करौंदेकी पत्तियोंके समान छोटी होती हैं। यह नदियोंके किनारे बलुई भूमिमें आपसे आप उगता है। वर्षामें इसकी पत्तियाँ मुख्यत: पुष्य नक्षत्रमें और पावसकी वर्षासे गिर जाती हैं और आश्विनतक यह बिना पत्तियोंके नंगाही रहता है। वर्षाके बीत जानेपर यह फलता फूलता है। यथा '**अरक जवास पात बिनु भयऊ**', '**जिमि जवास परे पावस पानी।**' अनघ=(अन्+अघ) वह जो पाप न हो। पुण्य। डाहन = (सं० दग्ध। प्रा० डड्ढ + ना प्रत्यय) जलने, भस्महोने। लागे=लगे।

पद्यार्थ—(वर्षाऋतुमें) ज्यों ज्यों यमुनाजी बढ़ने लगीं, त्यों त्यों सुकृतरूपी सुभट कलि राजाको (बेइज़्ज़तीके साथ अर्थात् तिरस्कारपूर्वक) बाहु पकड़कर निकाल बाहर करने लगे।१। जैसे जैसे जल गँदला मटमैला होता है, तैसे तैसे यमदूतोंके मुँह मलिन होते हैं। उनको कहीं शरण नहीं मिलती। तुलसीदासजी कहते हैं कि पुण्यरूपी मेघ (वा अग्नि) जगत्मात्रके पापोंको यवासेकी तरह जलाने लगे।२।

नोट—यह छठा फाटक है। इस द्वारपर यमुनाजी हैं। अतः अब उनका गुणगान करते हैं।

टिप्पणी—१ 'सुकृत सुभट कलि भूपहि निदरी' इति। यहाँ वर्षामें यमुनाजलका बढ़ना सुकृतका बढ़ना है। सुकृतकी वृद्धिसे पापका क्षय होता है। यही कलि राजाका निकाल बाहर किया जाना है। तात्पर्य कि जहाँतक यमुनाका जल फैलता जाता है वहाँ वहाँ उसके दर्शन, स्पर्श, मज्जन और पानसे सुकृत उदय होते एवं बढ़ते जाते हैं और पापोंका नाश होता है। यज्ञ, योग, जप, तप, शम, यम, नियम, दया, क्षमा, संतोष, करुणा, दान, धर्म इत्यादि सुकृत हैं यही सुभट है। यहां 'परंपरित रूपकालंकार' है। सुकृतको राजा मानें तो सुकृत सुभटका अर्थ होगा 'सुकृतरूपी राजाके सुभट।' प० पु० स्वर्गखण्डमें युधिष्ठिरजीके प्रश्न करनेपर मार्कण्डेयजीने यमुनाजीका माहात्म्य यों कहा है कि 'जिस हिमालयसे गंगा प्रकट हुई उसीसे यमुनाकाभी आगमन हुआ है। सहस्रों योजन दूरसेभी नामोच्चारण करनेपर वे पापोंका नाश कर देती हैं। यमुनामें नहाने, जल पीने और उनके नामका कीर्तन करनेसे मनुष्य पुण्यका भागी होकर कल्याणका दर्शन करता है। गंगा और यमुना दोनोंही समान फल देनेवाली मानी गयी हैं। केवल श्रेष्ठताके कारण गंगा सर्वत्र पूजित होती हैं।'

२ 'निदरि लगे बाँहं काढ़न' इति। हाथ पकड़कर निकाल बाहर करना यह स्वयंही निरादरसूचक है। निकालनेका भाव यह है कि चलो, अब यहाँ हमारा दखल हो गया है। तुम्हारेलिये जगह नहीं है। यहाँ अब तुम्हारा काम नहीं है। 'लगे काढ़न' में प्रश्न होता है कि 'कहाँसे काढ़ने लगे?' वीरकविजीके और दीनजीके मतानुसार 'संसाररूपी राज्यसे' निकालने लगे। इसकी पुष्टि 'जगदघ जवास' से होती है। श्रीवैजनाथजीके मतानुसार 'धर्मवन्तों पुण्यात्माओंके हृदयरूपी राज्यसे जहाँ पूर्व अधर्म वा कलिका राज्य वा शासन हो रहा था' वहाँसे निकालने लगे।

३ 'ज्यों ज्यों जल मलीन' इति। भाव कि जलमें जो वर्षाके

कारण मलिनता दिख पड़ती है इसे जलकी मलिनता न समझो। यह यमगणोंके मुखोंको मलिन अर्थात् उनका मुँह काला करनेकेलिये स्याही समझो। जितनी अधिक मलिनता जलमें दीखे उतनाही अधिक समझो कि यमगणोंके मुखमें कालिख पुती है। सारी (जलकी) मलिनता इसी काममें खर्च होनेकेलिये होती है। इसीसे शरदऋतुमें जल निर्मल हो जाता है। तात्पर्य कि यमुनाजीके दर्शनादिसे यमसाँसतिका भय नहीं रह जाता। यमुनाजीके कारण यमगणोंका कुछभी वश वा अधिकार पापीपर न चलना यही उनके मुखोंपर कालिमाका लगना है। जल मलीन होनेसे यमगणोंके मुख मलिन होते हैं। इससे यह न समझ बैठना कि यमुनाके जलमें 'निर्मलता' दूषण थी और 'मलिनता' भूषण है। भाव यह है कि ग्रीष्म आदिमें जब जल निर्मल रहता है तब कम लोगोंको उसके दर्शन होते हैं और जब वर्षामें वही जल दूरतक फैलता है तब बहुत दूरतकके प्राणियोंका हित होता है। यमगणोंका मुख तो पूर्वभी मलिन रहता था पर अब और अधिक मलिन होता है। क्योंकि अधिकार घटता जाता है।

४ 'अघ जवास अनघ आगि लागे डाढन' इति। यही पाठ प्राचीनतम है और भागवतादि प्राचीन पोथियोंमेंभी है। पावसकी वर्षासे मुख्यतः पुष्यनक्षत्रमें जवासेकी पत्तियाँ गिर जाती हैं ऐसा शब्दार्थमें लिखा गया है। संभवतः इसी कारण कुछ लोगोंने प्राचीन पाठ 'आगि' के स्थानपर 'आप' (च०, दी०) और कुछने 'मेघ' (ज०, आ०) आदि पाठ कर लिये हैं। वर्षासे यवासा जल नहीं जाता। वह शरद्में फिर हराभरा हो जाता है। संभव है कि इसी भावसे 'आगि' की उपमा दी गयी हो। वीरकविजी लिखते हैं कि "अनघतामें अग्निका आरोपण इसलिये किया गया कि वर्षाजलका स्पर्श होतेही यवासाके वृक्ष जल जाते हैं। यहाँ समअभेद रूपक है।" प्रायः आगका ज़ला हुआ पौधा फिर हरा नहीं हो पाता। कदाचित् इसीसे पुण्यको आगकी उपमा देकर पापका सर्वथा नाश दिखाया गया हो। श्रद्धेय पं० देवदत्तशास्त्रीजी 'मेघ' को उत्तम पाठ कहते हैं। उनका कहना

है कि १ पाठशुद्धिकेलिये गोस्वामीजीद्वारा प्रयुक्त क्रियापदोंकी ओर ध्यान देना चाहिये। 'लागे' पदसे यह ध्वनि स्पष्ट निकलती है कि यह बहुवचनका प्रयोग है। मेघ शब्दका प्रयोग प्रायः बहु वचनमेंही किया जाता है और आग शब्दका प्रयोग एकवचनमेंही किया जाता है। यदि यहाँ 'आगि' पाठ होता तो 'लागे' न होकर 'लाग' पद होता। २ कालपरभी ध्यान देना चाहिये। लागे क्रिया कार्य-समाप्तिका नहीं वरन् कार्य प्रारंभिका है। इससे यह कदापि नहीं व्यंजित होता कि जलाकर भस्मही कर डाला, अपितु 'जलाने लगे' अर्थ स्पष्ट है। ३ वर्षासे यवासा जलता नहीं। वह शरद्में फिर हराभरा हो जाता है। संभव है, इसी भावसे आगिकी उपमा दी गयी हो। यह तर्क या युक्ति हमारी दृष्टिमें संगति नहीं रखती। हमारा घर यमुनातटपरही है। कछारोंमें यवासोंका जंगल है। प्रयोजनवश किसानोंसे आग लगाये हुए यवासे कई बार देखे गये कि वे पुनः अंकुरित और हरित हो उठे। गांडर (खस) भी जलानेसे खूब पनपता है। हराभरा होता है। पहिलेसेभी कहीं अधिक। इसलिये यह कहना कि अग्निसे जला हुआ पौधा फिर हराभरा नहीं होता। प्रत्यक्ष देखे हुए प्रमाणोंसे युक्तियुक्त नहीं प्रतीत होता। ४ लेकिन यहाँ तो तर्कका स्थानही नहीं। 'डाढ़न लागे' क्रियासे यह कदापि अर्थ नहीं निकलता कि जला डाले, बल्कि जलाने लगे। अब इस संभावनामें प्रत्यवायकीभी संभावना तो की जा सकती है। किंचित् कालकीभी (विलंब) अपेक्षा की जा सकती है।

तुलसीदासजीकी उपमाएँ सदैव साधर्म्य और तादात्म्य संबंधसे सुसज्जित रहती हैं। जब उन्होंने जगदघको जवास बताया तो अनघको मेघ अवश्यही बतायेंगे। जवास और आगका तो कोई संबंध नहीं, संगति नहीं। जवास और मेघकी संगति गोस्वामीजीने 'अर्क जवास पात बिनु भयऊ' कहकर पावसबर्णनमें बैठायी है। तुलसीदास जैसे सार्वभौम, परिचयचारुतासम्पन्न, महाकवि जवासा और अग्निका साम्य या साधर्म्य कैसे जोड़ सकते हैं? तुलसीदासजी पूर्ण भुक्तभोगी थे। उन्हें अणु परमाणु सभीका ज्ञान था। फिर भला जवासा जो उनकी जन्मभूमि

(राजापुर) में यमुनाके दोनों किनारोंपर उत्पन्न होनेवाला पौधा है उसके विषयमें वे असंगत परिचय कैसे दे सकते हैं ? इन दलीलोंके आधारपर हमारी रायमें तो ' मेघ ' शब्दही उपयुक्त जँचता है ।

श्रीलमगोड़ाजी ' पिण्ड सो ब्रह्मांड ' के अनुसार गंगा और यमुना, इंगला और पिंगला नाड़ियोंके प्राणप्रवाहकी द्योतक हैं और सुष्मनाके साथ मिलकर वहीं त्रिकुटीका संगम बनाती हैं । बहिरंगरूपसे गंगामें सत्वगुणकी प्रधानता है और यमुनामें रजोगुणकी । यदि दोनों नदियोंका इतिहास लिखा जाय तो यह स्पष्ट हो जायगा । इसीसे उत्तरायण मार्गमें गंगाका माहात्म्य है और दक्षिणायनमें यमुनाका । यमुनाजी रवितनया और भगवान् यमराजकी बहिन मानी गयी हैं । फ़ारसी कवियोंनेभी प्रशंसा की है कि 'आबश हमां कौकबे मुज़ाब अस्त । सैयारये मरकज़े तुराब अस्त ॥ ' उसका जल मानों पिघला हुआ सितारा है और वह सैयारा नक्षत्र है जो पृथ्वीके धुरीपर घूमता है ।

फ़तेहपुर ज़िलेके उत्तर गंगाजी हैं (भृगुचौरा यही है ।) और दक्षिणकी ओर यमुनाजी । यहाँ गंगाकिनारेका सत्वगुण प्रधान और यमुना तटका रजोगुण प्रधान जीवन इतना स्पष्ट है कि प्रत्यक्षको प्रमाणकी आवश्यकता नहीं रहती ।

विचारणीय विषय—१ पं० देवदत्तजी शास्त्री लिखते हैं कि किम्वदन्ती प्रसिद्ध है और लिखितभी है कि गोस्वामीजी अपनी युवती भार्याके वियोगको न सहकर वर्षाऋतुमें बढ़ी हुई यमुनाजीको तैरकर रातोंरात ससुराल पहुँचे और वहाँ सती भार्यासे उपदिष्ट होकर विरक्त बने । यह पद इसी घटनाओंको अभिमुख करके अपनी अज्ञता, धृष्टता स्वीकार करते हुए गोस्वामीजीने लिखा है ।

तुलसीदासजीकी स्तुतिका क्रम निरा सत्य और क्रमबद्ध है । लौकिक एवं आध्यात्मिक दोनों दृष्टियोंसे शिवकी स्तुतिके बाद भवानीकी स्तुति लाज़िमी है । इसी प्रसंगपर शंकरमौलीविहारिणी गंगाको भूलना उचित नहीं था । अतः भगवती भागीरथीकी वन्दना भवानीके बादही की । इन सभी प्रारम्भिक वन्दनाओंमें हम तुलसीदासजीकी आत्मकथा आत्म-

निवेदनका आभास पाते हैं। लेकिन् बीचमें गंगास्तवनमें उन्होंने अपने मध्य जीवनकी गाथा गायी है जो मंडुकप्लुतन्याय है। यहाँ क्रम शिथिलही नहीं, भंग दीखता है। इसके बाद यमुनाजीके प्रसंगमें युवा-वृत्तिका उल्लेख है। यह मानी हुई बात है कि गोस्वामीजीका युवावस्थाके अनन्तर शेष जीवन गंगातटपरही व्यतीत हुआ। गंगा उन्हें प्रिय थीं। हरिपदद्रवित होनेसे और शंकरमौलिविहारिणी होनेसे उन्हें गंगाजीपर पूर्ण विश्वास था, भरोसा था कि मेरे आराध्य इष्टदेव राम और शिव दोनोंकी शरण यही प्राप्त करायेगी। शिवप्रिया होनेसे शिवस्तुतिके प्रसंगमें उनकी स्तुति की और उनकी गोदमें जिस अवस्थासे क्रीड़ा की उसका वर्णन किया। अतः गंगास्तुति क्रमबद्धही रही। इसके बाद पुनः जीवन-गाथाक्रमको प्रारंभ करनेकेलिये यमुनाजीका प्रसंग लेते हैं। बीचमें इसीलिये काशीकी स्तुति छोड़ देते हैं फिर यमुनाजीके बादही करते हैं। क्योंकि काशी तो मुक्तिकी खान है। इसका वर्णन तो मुक्तिप्रसंगमें तभी आयेगा जब जीवनके सभी स्थूल अध्याय समाप्त हो जायेंगे। सभी अपराध निवेदित हो जायेंगे। गंगा और यमुना दोनों पुण्यसरिताओंसे गोस्वामीजीके जन्म मरणका सम्बन्ध था। यही कारण है कि उन्होंने उक्त दोनों नदियोंका वर्णन व्यञ्जनाशक्तिसे किया है। अन्य किसीभी पुण्यसरितासे इस प्रकारका जीवनमरणसम्बन्धी प्रसंग न होनेसे उनका उल्लेख नहीं किया।

(२) विशेष रूपसे ध्यान देनेकी बात यह है कि शंकर, भवानी और गंगाजी आदिके विषयमें जो कुछ लिखा है वह विनयके रूपमेंही पाया जाता है। किंतु यमुनाजीके विषयमें यह बातही नहीं। विनय न होकर एक प्रकारका वर्णन है जिसमें कुछ रहस्य निहितसा प्रतीत होता है। 'यमुना ज्यों ज्यों लागी बाढ़न' पढ़तेही हृदयमें एक कौतूहल और जिज्ञासा जागरूक होती है कि यह कोई ऐसी घटना अवश्य है जो बढ़ी हुई यमुनाजीमें घटी। ऐसी दशामें बाबा बेनीमाधवदासजीकृत मूल गोसाईं चरितमें लिखित तथा राजापुर मण्डलमें परम्परासे कहावत-रूपमें प्रसिद्ध तुलसीदासजीका स्त्रीवियोगमें रातोंरात बढ़ी हुयी यमुना

पार करनेवाली घटना स्मृतिपटपर आकर सन्देह निवारण करती है। जिन्हें राजापुरमें स्थित यमुनाजीके कगारपर बने हुए तुलसीदासजीके घर (अब मन्दिर) देखनेका सुयोग प्राप्त हुआ है उन्हें विनयका यह पद स्वतः स्वार्थ बतला देता है। तुलसीदासका यथातथ्य वर्णन प्रत्यक्ष दृश्य देखनेसे सत्य प्रतीत होता है।

धर्मशास्त्रमें लिखा हैं कि वर्षाॠतुमें उमड़ी हुई नदियोंमें स्नान न करना चाहिये। क्योंकि उसकाल वे ऋतुमती रहती हैं। इस निषेधसे प्रतीत होता है कि गोस्वामीजीने बढ़ी हुई यमुनाजीका जो महत्व लिखा है वह सर्वसाधारणकेलिये नहीं अपितु आत्मानुभूत है। नव-यौवना स्त्रीके विरहसे व्याकुल तुलसीदासजी उमड़ती हुई यमुनाजीमें जब प्रविष्ट होते हैं और तैरते हैं तब एकके बाद एक तरंगें पार करते हैं। तुलसीदासजीमें कामुकता और कामान्धता प्रचूर रूपमें थी और यह युग (कलि) धर्मका प्रभाव है। तुलसीदासजीका जन्म यमुनाजीके अंचलमें हुआ था और वे अवतारी महापुरुष थे। यमुनाजी प्रकृति माता थीं। पुत्र (तुलसीदास) को विषयासक्त होकर तैरते हुए देखकर तो उन्हें पुत्रपर स्नेह और कलिपर क्रोध उत्पन्न हुआ। वह उर्मियोंद्वारा क्रमशः बढ़कर तुलसीदासजीको पार लगाने लगीं और कलिजन्म कामुक वृत्तियोंका प्रक्षालनभी करने लगीं।

हरएक समाजकी अपने समुदायकी संख्या बढ़ानेकी स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। बेदोंमेंभी लिखा है कि '**गोत्रान्नो वर्द्धन्ताम्**'। किसी नारकीय नर या प्राणीको प्राप्त कर यमपुर ले जानेमें यमदूतोंको विशेष आनन्द मिलता है। अखिल शास्त्रनिष्णात् अवतारी महापुरुष तुलसी-दासजीकी उस कामुक पतितावस्थाको देखकर यमगण भविष्यकेलिये मिलनेवाले एक अच्छे नारकीयके वृत्तको देखकर प्रसन्न होते हैं, यह नियम हैं। जो जितना उच्च होता है कदाचित् वह भ्रष्ट हुआ तो उतनाही पतित बनता है। माँ यमुना यमपाश छुड़ानेमें प्रसिद्ध है। उन्होंने देखा कि पुत्र विज्ञ होकरभी कलिके फंदेमें पड़कर नारकीय बनने जा रहा है। तुरन्त इस चिन्तासे उसका सारा बदन मलिन पड़ गया।

यमुनाजीको मलीन और चिन्ताग्रस्त देखकर यमदूतोंके चेहरे फीके पड़ गये कि अब यमुनाजी इसके उद्धारकेलिये कुछ न कुछ करेंगीही। अब तो वे भयभीत हो गये। उन्हें रक्षित होनेका ठिकाना मिलना मुश्किल हो गया। उधर यमुनाजी अपनी लहरोंको तीव्र कर तुलसीदास-जीको शीघ्र पार लगाने तथा पंक धोनेमें संलग्न हो गयीं।

जल मलीन होनेका भाव यहभी है कि वेदज्ञ तुलसीदासजी कामासक्त होकर इस प्रकार नारकीय बन रहे थे कि यमुनाके अस्वस्थ होतेही उनका जलभी मलिन हो गया। 'ज्यों ज्यों' का भाव है कि जैसे आगे आगे तैरते थे वैसे वैसे क्रमशः जल मलीन होता रहा।

जलसेही मेघ बनते हैं और मेघ पानी बरसाकर जवासाको जलाते हैं। किन्तु शरद्में जवास फिर पनपता है। तुलसीदासजीके पाप जवास षड्वर्गरूपी पत्तोंसे रहित तो हो गये किन्तु समूल नष्ट नहीं हुए। फिरसे पनपनेकी आशंका थी। क्योंकि मूलरूप वासना अभी कुछ अवशेष थी जो ससुराल जानेपर धर्मपत्नीद्वारा विनष्ट होती है। पत्नीके मुखसे **'लाज न लागत आपको दौरे आयेहु साथ। धिक् धिक् ऐसे प्रेमको कहा कहौं मैं नाथ॥ अस्थिचर्ममय देह मम तामें जैसी प्रीति। तैसी जो कभी राम महुँ होती न तौ भवभीति॥'** ये वचन सुनकर ज्ञान कपाट खुल गये। पाप जवासा समूल नष्ट हो गया और उलटे पाँव अपने इष्टदेवकी पुरीको चल पड़े और वहाँ पहुँचकर अघाय साँस ली और चित्तमें स्वस्थताका अनुभव करते हुए कहा कि **'बागुर विषम तोराय मनहु भाग मृग भाग बस।'**

२२ [२८] राग भैरव*

सेइअ[1] सहित सनेह देह भरि कामधेनु कलि कासी।
समनि[2] सोक संताप पाप रुज सकल सुमंगल रासी॥ १॥

---

*राग भैरव—रा०, ह०, ५१। ६६ के २६ वें पदमें 'राग भैरव' है। २७ वें, २८ वेंमें रागका नाम नहीं है। इससे संभव है कि इनमेंभी वही होनेसे नाम न दिया हो। ज० में 'मारू' और भा०, बे० में 'रामकली' है। १ सेइअ—६६, रा०। सेइय—भा०, बे०, ज०। २ समन—७४, ज०। समनि—औरोंमें।

मरजादा चहुँ ओर चरन बर सेवत[३] सुरपुर बासी।
तीरथ सब सुभ अंग रोम सिवलिंग अमित अबिनासी ॥ २ ॥
अंतर अयनु अयनु भल थन[४] फल बच्छ बेद बिस्वासी।
गलकंबल बरना[५] बिभाति जनु लूम लसति सरितासी ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—देहभरि = पूर्णआयुभर, जन्मभर। देह = जीवन। यथा, 'जनम जहाँ तहाँ रावरे सों निबहै भरि देह सनेह सगाई।' तीरथ (तीर्थ) = वह पवित्र वा पुण्यस्थान जहाँ धर्मभावसे लोग यात्रा, पूजा या स्नान आदिकेलिये जाते हैं। सुभ (शुभ) = सुंदर, मंगलमय। रोम = रोएँ, देहके बाल। लिंग = शिवजीकी एक विशेष प्रकारकी मूर्ति जो प्रायः सर्वत्र शिवालयोंमें देखी जाती है, शिवमूर्ति†। अंतरअयनु = अंतर्गृही, भीतरमें पड़नेवाले स्थान, अंतरक्षेत्र। ये हर बड़े तीर्थमें होते हैं। तीर्थोंमें प्रायः दो परिक्रमाएँ होती हैं। एक बड़ी, दूसरी छोटी, जिसे अंतर्गृही परिक्रमा कहते हैं। इसमें उस तीर्थके भीतरके सब प्रधान प्रधान स्थलोंकी परिक्रमा हो जाती है। अयनु (अयन)=गायके थनके ऊपरका वह घटाकार भाग जिसमें दूध भरा रहता है, दूधकी थैली। थन=स्तनका वह अग्रभाग जिसे मुंहमें लगाकर बच्चा दूध पीता है। फल=शुभ कर्मोंके परिणाम जो संख्यामें चार माने गये हैं, अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष। यथा, 'सेवत तोहि सुलभ फल चारी।' (बा०) बिस्वासी (विश्वासिन्)=विश्वास करने,

---

३ सेवत—६६, रा०, ज०, ५१, ७४, आ०, बे०। सेवित—भा०, प्र०, ह०, १५। ४ तन—बे०। थल—वै० (यह प्रेसकी कृपा है। अर्थमें 'थन' है।) ५ बरुना—आ०, इ०। बरना—६६, रा०, भा०, बे०, ७४।

†लिंग प्रस्तरकाही हो सो बात नहीं। प्राचीन कालमें तो मिट्टीके पार्थिवेश्वर पूजे जाते थे। धीरे धीरे पत्थरके, फिर धातुओंके और अब काग़ज़के चित्रोंकेभी पूजे जाते हैं। गरुड़पुराणमें गंधलिंग, पुष्पमयलिंग, शर्करामय, गोमय, लवणमय, रजोमय आदि सैकड़ों द्रव्यों धातुओंसे लिंग बनानेका वर्णन है।

मानने वा निष्ठा रखनेवाला। गलकंबल=गायके गलेके नीचेका वह भाग जो लटकता रहता है। गर्दनके नीचे बहुत दूरतककी इस लटकती हुई खालको काँवर, झालर, लोरी, ललरी, लहर आदिभी कहते हैं। यह देखनेमेंभी भली लगती है और इसका सोहराना गौको बहुत प्रिय लगता है। बरना=वरणा नदी। यह एक छोटी नदी है जो काशीमें आकर गंगाजी-में आदिकेशव तीर्थके पास मिली है। काशीमें उत्तर दिशामें यह बहती है और वाराणशी क्षेत्रकी उत्तरी सीमा है। चौकाघाट श्रीभरतमिलापका प्रसिद्ध स्थान है, जहाँ लीलास्वरूप श्रीहनुमान्‌जीकी परीक्षा अँग्रेजों आदिके समक्ष हुई थी, इसीके तटपर है। लूम=पूँछ, दुम। सरितासी (सरित+असी) = असी नामकी नदी। यह एक नदी है जो काशीके दक्षिण गंगासे मिली है, पश्चिम दक्षिण दिशाओंको लिये हुए है। अब यह एक नालेके रूपमें रह गयी है। असीगंगासंगमके तीर गोस्वामीजीका साकेत यात्रा करना (शरीर छोड़ना) कहा जाता है।

पद्यार्थ—कलियुगमें कामधेनुरूप, समस्त शोक संताप पाप और रोगोंको नाश करनेवाली और समस्त सुंदर मंगलोंकी राशि काशीका जन्मभर प्रेमसहित सेवन करना चाहिये।१। चारों दिशाओंकी हद्दें (सीमाएँ) कामधेनु काशीके सुंदर चारों चरण हैं। (कामधेनु स्वर्गमें रहती है। वहाँ उसकी सेवा देवता करते हैं, यहां काशी में।) काशीपुर-वासीरूपी देवता इस (काशी कामधेनु) की सेवा करते हैं। (काशीके) सब (पुण्य) तीर्थ इसके मंगलमय अंग प्रत्यंग हैं और अमित अविनाशी शिवलिंग इसके रोम हैं।२। अंतर्गृही इस कामधेनुका सुंदर (अर्थात् खूब दूधसे परिपूर्ण) अयन है। * चारों फल इसके चारों थन हैं। वेदमें

* हु०, वै०, वीरकवि वि०, आदि कई टीकाकारोंने 'अयन' का अर्थ 'रहनेका स्थान' या 'गोशाला' किया है। वैजनाथजीने दोनों अर्थ दिये हैं परन्तु 'अयन' के बाद 'थन' को कहनेसे अयनका संबंध थनसे विशेष संगत है। अंतर्गृहीमें चार फल अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष, वैसेही अयनमें चार थन यह समानता है। सोचनेकी बात यहभी है कि जब कामधेनुका पूरा शरीर काशी कहा गया और काशीकी चारों

विश्वास करनेवाले इसके बछड़े हैं। वरणा नदी मानो गलकंबल है जो विशेष शोभा दे रही है और असी नदी मानों पूँछ (रूपसे) शोभित है।

नोट—१ इस पदमें काशीका कामधेनुसे साङ्ग (पूर्ण सावयव) रूपक बाँधा गया है। गोस्वामीजीका विशेष निवास काशीमें रहा। इसीसे उन्होंने इसकी महिमा खूब वर्णन की है।

२ श्री लाला भगवानूदीनजी लिखते हैं कि छठे फाटककी मुख्य अधिष्ठात्री देवी यमुनाजीकी विनय (पद २१ में) की। इसी फाटकके भीतर दाएँ बाएँ दो मुख्य वन हैं। एक आनंदवन जिसे काशीभी कहते हैं और दूसरा चित्रवन जिसे चित्रकूटभी कहते हैं। आनंदवन मुक्ति-दाता है और चित्रवन नित्य लीलाका आनंददाता है। आनंदवनके अधिष्ठाता शंकरजी हैं और चित्रवनके मुख्य रक्षक श्रीमारुतिजी हैं। ये दोनों वन स्वयंभी देवरूप हैं। यमुनाजीकी अनुमति पाकर जब तुलजीदासजी फाटकके अंदर जाते हैं तो दोनों ओर दिव्य रूप दो वन देखते हैं। उन वनोंको देख देवरूप समझ अब आगे उनकी प्रशंसा गाते हैं। पहले आनंदवन अथवा काशीकी प्रशंसा करते हैं। यह काशीकी प्रशंसा 'सांगरूपक अलंकार' में कही गयी है। ऐसा सुन्दर सुगठित रूपक हिंदी साहित्यमें हमने अन्यत्र नहीं देखा। उसके आगे चित्रकूटका बूट रूपकभी बहुतही मनोहर है। आनन्दवनको देखकर उसकी मनोहरताने ऐसा मन हरण कर लिया कि उसे देख जी फड़क उठे। रहा न गया। कहही डाला कि इसका सेवन जन्म भर करता रहूँ, ऐसा जी चाहता है।

३ वैजनाथजी लिखते हैं कि अब क्षेत्रपाल काशीपुरीके गुण गाते हैं।

टिप्पणी—१ (क) 'सेइअ सहित सनेह देह भरि' इति। इस चरणमें तन मन वचनसे काशी सेवन करनेका उपदेश है। 'सहित सनेह' यह मनका धर्म है, 'देह भरि' यह तनसे सेवना है और 'सेइअ'

ओरकी सीमाको चार चरण बताया। तब अंतर्गृही उसके रहनेका स्थान गोशाला कैसे हो सकता है? चरणोंके बाद भीतरको लिये हुए अयन होता है। वैसेही अंतर्गृही भीतरकी छोटी परिक्रमा है।

में वचनभी आ गया। सेवनमें निवास, पूजन, स्तवन, प्रदक्षिणा, प्रणाम इत्यादि सब भावोंका समावेश है। परन्तु 'निवास' अवश्य होना चाहिये, यह प्रधान है। 'सनेह सहित' यह सेवन विधि बतायी। बिना 'स्नेहसहित' सेवनके चारों फलोंकी सद्यः प्राप्ति न होगी। (ख) 'कामधेनु कलि कासी' का भाव कि जैसे कामधेनु अर्थधर्मादि फलोंको देती है वैसेही कलिकालमें काशी चारों पदार्थोंकी देनेवाली है। कामधेनु अलभ्य है पर काशी सबको सुलभ है।

२ (क) 'तीरथ सब सुभ अंग' इति। 'सब' दीपदेहरी है। 'तीरथ सब' 'सब सुभ अंग' है, यह अन्वय होगा। शरीरके भागोंको अंग कहते हैं। सिरसे लेकर नेत्र, कान, नाक, मुँह, पेट, पीठ इत्यादि सब अंग हैं जिनका समूह स्थूल शरीर कहलाता हैं। इसीप्रकार काशीके जितने तीर्थ हैं, जहाँ यात्री दर्शन करने जाते हैं वे सब काशी क्षेत्रके अंगतीर्थ हैं। कामधेनुके अंगों और काशीके प्रधान तीर्थोंके नाम कवि आगे स्वयं दे रहे हैं। चरणोंको चौहद्दी कह चुके। चरणके अतिरिक्त अन्य सब अंगोंको तीर्थ कहा है।

(ख) कामधेनुके अंगोंको शुभ कहा। क्योंकि इसके अंगोंमें समस्त देवताओंका वास है, जैसे समस्त तीर्थोंमें देवताओंका वास रहता है। यही शुभ अंग और तीर्थमें सादृश्य है। प० पु० सृष्टिखण्ड अ० ४५ में नारदजीके प्रश्नपर कि 'गौकी तुलना ब्राह्मणसे कैसे हो सकती है?' ब्रह्मा-जीने कहा है कि "पहले भगवान्के मुखसे तेजोमय पुंज प्रकट हुआ। उस तेजसे सर्वप्रथम वेदकी उत्पत्ति हुई। तत्पश्चात् क्रमशः अग्नि, गौ और ब्राह्मण उत्पन्न हुए। अग्नि और ब्राह्मण देवताओंकेलिये हविष्य ग्रहण करते हैं और हविष्य गौसे उत्पन्न होता है। इसलिये ये चारोंही इस जगत्के जन्मदाता हैं। गौ साक्षात् देवस्वरूप है। प्राचीन कालमें सबके पोषणार्थ मैंने गौकी सृष्टि की थी। गौओंकी प्रत्येक वस्तु पावन है। छहों अंगों, पदों और क्रमोंसहित समस्त वेद गौओंके मुखमें निवास करते हैं। उनके सींगोमें भगवान् शंकर और भगवान् विष्णु सदा विराजमान् रहते हैं तथा उनके उदरमें कार्त्तिकेय, मस्तकमें ब्रह्मा, ललाटमें महादेवजी, सींगोंके अग्रभागमें

इंद्र, दोनों कानोंमें अश्विनीकुमार, नेत्रोंमें चन्द्रमा और सूर्य, दाँतोंमें गरुड़, जिव्हामें सरस्वतीदेवी, अपान (गुदा) में संपूर्ण तीर्थ, मूत्रस्थानमें गंगाजी, रोमकूपोंमें ऋषि, मुख और पृष्ठभागमें यमराज, दक्षिण पार्श्वमें वरुण और कुबेर, वामपार्श्वमें तेजस्वी और महाबली यक्ष, मुखके भीतर गंधर्व, नासिकाके अग्रभागमें सर्प, खुरोंके पिछले भागमें अप्सराएँ, गोबरमें लक्ष्मी, गोमूत्रमें पार्वती, चरणोंके अग्रभागमें आकाशचारी देवता, रंभानमें प्रजापति और थनोंमें भरे हुए चारों समुद्र निवास करते हैं।" इसी-तरह प० पु० पातालखण्ड अ० ३० में जाबालिमुनिने राजा ऋतम्भरसे कहा है कि 'गौके अंगोंमें देवताओका निवास है। वह देवस्वरूपा है।' यह तो साधारण सभी गौओंके सम्बन्धकी बात है। इससे अधिक महिमा वेदमंत्रोंद्वारा अग्निकुंडसे निकली हुई कपिला नामक होमधेनुकी है और फिर सुरधेनुका कहनाही क्या ! कपिलाका वर्णन महाभारत आश्वमेधिक पर्वमें विस्तारसे है।

(ग) 'रोम सिवलिंग अमित अबिनासी' इति। शिवजीकी मूर्तियाँ अगणित हैं। वैसेही कामधेनुके रोएँ असंख्य हैं। शिवरूप, शिव-प्रतीक होनेसे लिंगकोभी अविनाशी कहा गया। शिवजी अविनाशी हैं। यथा '**नाम प्रसाद संभु अबिनासी।**' पद्मपुराण उत्तरखण्डमें कहा है कि 'काशीमें इतने तीर्थ और लिंग हैं कि उनकी गणना करना असम्भव है। वहाँ गुप्तरूपसे बहुत पुरातन सिद्ध पीठें हैं। यथा, '**काश्यां विधातुमरैरपि दिव्य भूमौ। सत्तीर्थलिंगगणनार्चनतो न शक्या॥ यानीह गुप्त विवृतानि पुरातनानि। सिद्धानि यौझितकरः प्रणमामि तेभ्यः॥**'

३ शिवलिङ्ग—(१) लिङ्गपुराणमें लिखा है कि शिवजीके दो रूप हैं। निष्क्रिय आर निर्गुण शिव अलिङ्ग हैं और जगत्कारणरूप शिव लिङ्ग हैं। अलिङ्ग शिवसेही लिंग शिवकी उत्पत्ति हुई है। शिवको लिङ्गभी कहते हैं। वह इसलिये कि लिंग या प्रकृति शिवकी हैं। इसप्रकार लिंग जगत्कारणरूप शिवका प्रतीक है। पद्मपुराणके अनुसार कल्पके आरंभमें शंकरजीको दो बार यह शाप मिला है कि आपकी मूर्तिके बदले

योनि और लिंगकी पूजा लोकमें प्रचलित होगी और आपका नैवेद्य कोई ग्रहण न करेगा। एक बार जब त्रिमूर्तिकी परीक्षाकेलिये भृगुजी कैलाश गये, परन्तु नन्दीगणने उनको द्वारपर रोक दिया था कि पार्वती महेश्वर विहारमें हैं। दूसरी बार जब ब्रह्माकी सभामें भगवान् शंकर दक्षके सम्मानमें न खड़े हुए, न प्रणाम किया तबभी भृगुजी रुष्ट हुए और ब्राह्मणोंकी ओरसे भृगु और गणोंकीओरसे नन्दी दोनोंमें शापाशापी हुई। हमारा अनुमान है कि शैव वैष्णव विरोधके कारण, जो गत और वर्तमान शताब्दिके प्रारंभमें बहुत ज़ोर पकड़े हुए था, पद्मपुराणके इस उद्धरणको लेकर कुछ लोगोंने 'लिङ्ग' पूजाका अश्लील अर्थ करके शिवलिंगार्चनको अश्लील ठहरानेका प्रयत्न किया होगा। हम पूर्व पदों १०, ११, १२ में विशेषकर दिखाते आये हैं कि वस्तुतः एक परब्रह्म परमात्मा परमेश्वरही विभिन्न कार्योंकेलिये विभिन्न रूप धारण करता है। उसके कलांशावतार, स्वांशावतार, विभुअवतार और आवेशावतार इत्यादिसे जो कार्य होते हैं वे सब कार्य उसीके हैं और उन उन कार्योंके समय आवेशादि होनेसे वे ब्रह्मही हैं और उनकी महिमा, उनके चरित इत्यादि अपार कहे गये हैं। उस समय तत्त्वतः ब्रह्म और उन रूपान्तरोंमें अभेद है। सब नाम उसी एक भगवान् वा ब्रह्मके हैं। सबमें उसकी पूजा होती है। जो हिन्दू धर्ममें बहुदेववाद बताते हैं, वे भूल करते हैं। जिस पुराणमें देखियेगा एकही ब्रह्म प्रतिपादित मिलेगा। उसी एकके अनेक नाम और रूप हैं।

(२) 'लिङ्ग' का अर्थ शास्त्रोंमें क्या बताया गया है यह बताकर फिर 'लिंगार्चन' का रहस्य जो विद्वानोंने लिखा है उसीको हम यहाँ उद्धृत करेंगे।

(क) लिंगका अर्थ चिह्न वा पहचान है। दर्शनसूत्रोंमें यह शब्द इस अर्थमें आया है। यथा '**विषाणी ककुद्मान् प्रान्ते बालधिः सास्नावानिति। (गोत्वे दृष्टं लिङ्गम्)**' (वै०, द०, अ० २, आ० १ सू० ८) 'सींग, ककुद (थूहा), पूंछ, गलेमें कम्बलकी भाँति लटकती हुई सास्ना' ये गो जातिके लिङ्ग हैं। तथा '**आकृति-**

जातिलिङ्गाख्या'। (न्या० द० अ० २, आ० २, सू ७०) आकृतिही जातिकी पहिचान है। पहचान करानेवाले चिन्हको लिङ्ग कहते हैं, जैसे पुरुषका लिंग मूँछ है।

(ख) शिवलिंगका क्या अर्थ है इसका स्पष्टीकरण शिवपुराणमें इस प्रकार है कि 'लिङ्गानांच क्रमं वक्ष्ये यथावच्छृणुते द्विजा। तदेव लिङ्गं प्रथमं प्रणवं सार्वकामिकम् ॥ सूक्ष्म प्रणवरूपं हि सूक्ष्मरूपं तु निष्कलम्। स्थूल लिङ्गहि सकलं तत्पञ्चाक्षरमुच्यते ॥ तयोः प्रजा तपः प्रोक्तं साक्षान्मोक्ष प्रदेउभे। पुरुष प्रकृतिभूतानि लिङ्गानि सुबहूनिच ॥ तानि विस्तरतो वक्तं शिवो वेत्ति चापरः।' (शिव० विद्येश्वर सं०) 'ब्राह्मणो! मैं लिङ्गोंका यथावत् क्रम तुमसे कहता हूँ। सबसे प्रथम शंकरका लिङ्ग प्रणव है। वह समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। शिवका सूक्ष्मलिङ्ग प्रणवरूप है और सूक्ष्मही निष्कल हुआ करता है। शंकरका स्थूल लिंग यह समस्त ब्रह्माण्ड है। इसका नाम पंचाक्षर है। स्थल तथा सूक्ष्म इन दो प्रकारके लिङ्गोंकी पूजाही तप है। दोनोंही प्रकारकी पूजाएँ साक्षात् मोक्षकी देनेवाली हैं। पुरुष प्रकृति तथा आकाशादि पंचमहाभूत इत्यादि शंकरके अनेक लिङ्ग हैं। उन समस्त लिङ्गोंको शिवजीही जानते हैं, दूसरा नहीं।'

(ग) पं० श्री लक्ष्मण रामचन्द्र पांगारकरजी लिखते हैं कि "लिंग, शिवलिंग, महालिंग परब्रह्मके वाचक और लिंगपूजा परमात्माकी पूजा है। शिवजीका जो लिंग देखनेमें आता है उसे 'महालिंग' कहते हैं। उसके दो भाग हैं। एक पिण्डी और दूसरा पिण्डीका आधारभूत सबके नीचेका भाग वेदी। वेदीमें मूलपीठ और ऊर्ध्वपीठ ऐसे दो भाग हैं। मूलपीठ, ऊर्ध्वपीठ और पिण्डी सबको मिलाकर शिवसंप्रदायमें 'महालिंग' कहते हैं। मूलपीठ ब्रह्मा अर्थात् रजोगुणका चिन्ह है, ऊर्ध्वपीठ विष्णु अर्थात् सत्त्वगुणका चिन्ह और पिण्डी शिव अर्थात् तमोगुणका चिन्ह है। इस प्रकार संपूर्ण महालिंग ब्रह्मा विष्णु महेशात्मक त्रिमूर्तिरूप परब्रह्मका है।"

"लिंग शब्द लिंग् (जानना) से बना हुआ है, जिससे लिंगका अर्थ होता है 'परमेश्वरीय ज्ञान अथवा आत्मज्ञान।' इन सबोंका

विस्तृत वर्णन लिंगपुराण, कूर्मपुराण और मत्स्य पुराणमें मिलेगा। लिंग मस्तक है और महालिंग शिवशरीर है। समाधिस्थितिमें योगीका शरीर महालिंगके आकारवाला हो जाता है। ऐसा कहते हैं कि अनेक क्षेत्रोंमें जो स्वयंभू महालिंग देखनेमें आते हैं, वे सब महायोगियोंके शरीरही हैं।"

(३) अब दूसरा भाव लिखा जाता है। पं० श्रीभवानीशंकरजी लिखते हैं कि 'माया प्रकृति है और महेश्वर प्रकृतिके अधिष्ठाता मायी हैं। मायाकेद्वारा उन्हींके अवयवभूत जीवोंसे समस्त संसार परिव्याप्त हो रहा है। इसप्रकार यह अव्यय सदाशिव सृष्टिकी रचनाकेलिये दो हो जाते है। क्योंकि सृष्टिबिना द्वैत (आधार आधेय) होही नहीं सकता। आधेय (चैतन्यपुरुष) विना आधार (प्रकृति उपाधि) व्यक्त नहीं हो सकता। इसीकारण इस सृष्टिमें जितने पदार्थ हैं, उनमें अभ्यन्तर चेतन और वाह्यप्राकृतिक आधार अर्थात् उपाधि (शरीर) देखे जाते हैं। दृश्यादृश्य सब लोकोंमें इन दोनोंकी प्राप्ति होती है। इसी कारण इस अनादि चैतन्य परम पुरुष परमात्माकी शिवसंज्ञा सृष्ट्युन्मुख होनेपर अनादि लिंग है और उस परम आधेयको आधार देनेवाली अनादि प्रकृतिका नाम योनि है। क्योंकि ये दोनों इस अखिल चराचर विश्वके परम कारण हैं। शिव लिंगरूपमें पिता और प्रकृति योनिरूपमें माता हैं। गीतामें इसी भावको इस प्रकार प्रकट किया गया है। '**मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्। संभवःसर्वभूतानां ततो भवति भारत॥**' (१४।३) महद्ब्रह्म (महान प्रकृति) मेरी योनि है, जिसमें मैं बीज देकर गर्भका संचार करता हूं और इसीसे सब भूतोंकी उत्पत्ति होती है। यह लिंगयोनि जिसका व्यवहार श्रीशिवपूजामें होता है प्रकृति और पुरुषके संयोगसे होनेवाली सृष्टिकी उत्पत्तिकी सूचक है। इस प्रकार यह परम परात्पर जगत्पिता और श्यामयी जगत्माताके आदिसंबंधके भावकी द्योतक है। इसमें अश्लीलताका आक्षेप करना ठीक नहीं। यह अनादि प्रकृति पुरुषका संबंध परम सृष्टियज्ञ है जिसका परिणाम यह सुंदर सृष्टि है। इसप्रकार

शिवलिंगका अर्थ 'ज्ञापक' अर्थात् प्रकट करनेवाला है। क्योंकि इसीके व्यक्त होनेपर सृष्टिकी उत्पत्ति हुई है। दूसरा अर्थ 'आलय' है। यह प्राणियोंका परमकारण और निवासस्थान है। तीसरा अर्थ है 'लीयते यस्मिन्निति लिङ्गम्' अर्थात् सब दृश्य जिसमें लय हो जायँ, वह परमकारण लिंग है। लिंग परमानन्दका कारण है जिससे क्रमशः ज्योति और प्रणवकी उत्पत्ति हुई है। लिंगपुराण अ० १७ में कहा है कि सृष्टिके प्रारंभमें विष्णु और ब्रह्मामें श्रेष्ठताका विवाद निबटानेकेलिये एक बृहत् ज्योतिर्लिंग दिखलायी पड़ा जिसके आदि अंतका पता दोनोंही न लगा सके। वेदनामक ऋषिने प्रकट होकर समझाया कि प्रणव अकार ब्रह्मा हैं, उकार विष्णु हैं, मकार शिव हैं। मकारबीज लिंगरूप है जो सबका कारण है।

(४) आजकल लिंगका अश्लील अर्थ करके लोग शिवपूजाका मज़ाक उड़ाते हैं। अतः उसपर कुछ विशेष प्रकाश डालनेकेलिये पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज (प्रिंसिपल, गवर्नमेंट संस्कृत कालेज, काशी) के 'लिङ्गरहस्य' नामक लेखसे जो शिवाङ्कमें है, कुछ अंश यहाँ उद्धृत किया जाता है। इस लेखमें तीसरे प्रकारसे 'लिङ्ग' की अश्लीलता और श्लीलतापर विचार करते हुए उसका रहस्य खोला गया है।

प्रश्न—लिङ्गोपासनाके मूलमें जो एक अश्लीलभाव है, उसे क्या आप अस्वीकार करना चाहते हैं? और यदि न कर सकते हों तो फिर सभ्य समाजमें इसका किस प्रकार समर्थन किया जा सकता है?

उत्तर—वत्स! श्लील और अश्लीलका विचार नव्यरुचिसंपन्न युवकोंकी विकृत दृष्टिके निर्णयके अनुसार नहीं हो सकता। व्यक्तिगत संस्कार तथा सामाजिक मनोभावोंसे संवेष्टित प्रकृतिके अनुसार आपेक्षिकरूपसे श्लील और अश्लीलका निर्धारण हो सकता है। नग्नकाय पवित्र चित्त छोटेसे शिशुकी दृष्टिमें संसारमें कहीं कुछभी अश्लील नहीं देखा जाता। यही बात ज्ञानसंपन्न परमहंसकी दृष्टिमेंभी समझनी चाहिये। अन्यत्र जिसका जिस प्रकारका संस्कार होता है, वस्तुसत्ता उसके निकट उसी प्रकार प्रतिभासित हुआ करती है। भगवान्‌की सृष्टिमें अपवित्र कहलाने-

वाली कोईभी वस्तु नहीं है। परन्तु कलुषित हृदयद्रष्टा अपने अंदरकी कालिमाका आरोपण कर वस्तुविशेषको अपवित्र समझ लेता है। शुद्ध चित्तसे जिस ओर देखो उसी ओर सत्यकी उज्वल मूर्ति देखकर आनंद प्राप्त किया जाता है। फिर किसीभी स्थानमें संकोचका कारण नहीं प्रतीत होता। लिंग और योनि ये दोही सृष्टिके मूल रहस्य हैं। पुरुष और स्त्रीके पारस्परिक संयोगके विना सृष्टि प्रभृति कार्य संपन्न नहीं हो सकते। शिव और शक्ति, ईश्वर और माया, पुरुष और प्रकृति प्रस्थान भेदसे चाहे जिस नामको लिया जाय सर्वत्रही दो मूल शक्तियोंके पारस्परिक संघर्षसे सृष्टिप्रभृति कार्य संपन्न होते हैं। जबतक द्वैतजगत्का अतिक्रमण नहीं किया जाता तबतक इन दो शक्तियोंकोही मूलशक्ति मानना पड़ता है। कार्यक्षेत्रमेंभी मूलतः यही प्रतीत होता है और युक्तिसेभी यही बात सिद्ध होती है। वस्तुतः इस द्वैतके मूलमें नित्य अनुस्यूतभावसे अद्वैत सत्ताही है। सृष्टिके प्रारंभमें यद्यपि प्रकृति और पुरुष दोनों पृथक्रूपमें उपलब्ध होते हैं, तथापि यह जान लेना चाहिये कि सृष्टिकी आदिभूत बीजावस्थामें ये दोनोंही शक्तियाँ अभिन्न रूपमेंही विराजमान रहती हैं। इसे चाहे ईश्वर कहो या महाशक्ति। उसमें कुछ अंतर नहीं पड़ता। उस अवस्थामें एक ओर जैसे प्रकृति और पुरुष परस्पर भेदरहित और एकाकार हैं, वैसेही दूसरी ओर वह अद्वैत ईश्वरसत्ताभी निरंजन निष्कलसत्ताके साथ एकीभूत है। यह अव्यक्त अवस्था है। इसको एक ओर सृष्टिका बीज कहा जानेपरभी दूसरी ओर यह नित्य सृष्टिसे अतीत, प्रपंचहीन, शान्त और निस्पन्द शिवभावमात्र है। इसीकी स्वतंत्रताके उन्मेषवश इस अक्षोभ्यचित् सत्ताके ऊपर वाक् और अर्थके समान नित्यसम्पृक्त परन्तु भेदयुक्त पुरुष और प्रकृतिरुप तत्त्वद्वयका आविर्भाव होता है। ये पुरुष और प्रकृति एक होते हुएभी भिन्न हैं और भिन्न होते हुएभी एक हैं। क्योंकि इनमेंसे एकको छोड़कर दूसरा अपनी सत्ताका संरक्षण नहीं कर सकता। पारमार्थिक दृष्टिसे यह अव्यक्त अवस्था न होनेपरभी सांसारिक दृष्टिसे सृष्टिकी अभिव्यक्ति न होनेके कारण इसको एक प्रकारसे अव्यक्त कहा जा सकता है।

शास्त्रके मतसे यह अलिंग अवस्था है। किन्तु पारमार्थिक दृष्टिसे निष्कल अवस्था अलिङ्ग है। अतः उसको महालिङ्ग अवस्था कहा जा सकता है। लिङ्ग और अलिङ्ग इन दो शब्दोंका तात्पर्य आपेक्षिक भावसेही समझना पड़ेगा। परिचायक चिन्हको 'लिङ्ग' कहते हैं। जिसकी अभिव्यक्ति नहीं है उसका कोईभी निदर्शन नहीं दिखलाया जा सकता। किन्तु इस अव्यक्त सत्तासे जो तेजोमय और ज्योतिर्मय तत्त्व आविर्भूत होता है, उसे स्वयम्भू कहा जाता है। यही अव्यक्त अवस्थाका परिचायक है। इसीलिये यह लिङ्ग पदवाच्य है।

श्री लमगोड़ाजी उपर्युक्त लेखका समर्थन करते हुए कहते हैं कि (क) 'यह बिल्कुलही ठीक है। भगवान्ने गीतामेंभी प्रकृतिको अपनी 'योनि' और अपनेको बीज स्थापन करनेवाला कहा है। हम अपने विकारोंको भगवान्की तरफ फेर देते हैं। विवाहके पूर्वही श्रीपार्वतीजीने कहा है कि वे शिवजीको सदासेही 'सदाशिव योगी' ही मानती हैं, भोगी नहीं। इसीपर सप्तर्षि चुप हो गये थे। जिसने कामको भस्म कर दिया, उसे 'कामी' मानना अज्ञान है। (ख) अधिकतर 'ज्योतिर्लिङ्ग' शब्द आता है। अग्निकी लौका वही रूप होता है जो शिवमूर्तिका। त्रिदेव निर्णयमेंभी शिवको अग्निरूप कहा है। पर वहाँ भौतिक वादहीकी भरमार है जैसा कई जगह संकेत किया गया है। बाइबिलमेंभी प्रकाश तथा ज्योति स्तंभरूपमें भगवान्का दर्शन है। 'Lead me kindly unto Light' प्रसिद्धही है। (ग) एकताका चिन्हभी तो सभी जगह वैसाही है। हमारा लिङ्गशरीरभी तो अंगुष्ठ रूपही माना गया है। हृदयगुह्यमें जो ज्योतिर्बिम्ब भगवान्के प्रत्यक्ष होनेका चिह्न कहा जाता है वहभी अंगुष्ठरूपही है। (घ) अंतिम सत्ता जिसमें सब कुछ लीन हो जाय वहभी लिङ्गही है और वह ब्रह्माण्ड (अंग) रूप तो होती है।

(५) पं० श्री रामदास गौड़जी अपने 'लिंगरहस्य' नामक लेखमें लिखते हैं कि 'विज्ञान यह नहीं कह सकता कि विश्वसृष्टिके नियमनमें मैथुनीक्रिया प्रकृतिमें अपने आप उपजी या किसी चेतना शक्तिवालेने

इसका आरंभ किया। विज्ञानका अनुमान है कि पचासों करोड़ वर्षोंमें धीरे धीरे विकास पाकर अयोनिजसे योनिज सृष्टि होने लग गयी है। विज्ञान तो ईश्वरको जानता नहीं। ईश्वरवादी वैज्ञानिकके शब्दोंमें यों कहना चाहिये कि ईश्वरने जीवकी सृष्टिके पचासों करोड़ वर्ष पीछे मैथुनी सृष्टिकी विधि विकसित की। यह पचासों करोड़ वर्ष क्यों लगे? क्योंकि ईश्वर प्रयोगपर प्रयोग करता था, बनाता और बिगाड़ता था, बराबर सीखता था। यहाँतक कि उसे आते आते मैथुनसृष्टि आ गयी और उसने इस विधिमें सुखानुभव इसलिये रक्खा कि जीवमात्र वृद्धिमें प्रवृत्त हो। अब वैज्ञानिक और पौराणिक ईश्वरमें बहुत बड़ा अंतर नहीं रहा। पौराणिक ईश्वर ब्रह्माने पचासों करोड़ वर्ष सृष्टिपर हाथ माँजनेमें लगा दिये। बारंबार तपस्याएँ कीं। अंतमें अर्धनारीश्वरकी कृपासे मैथुनी सृष्टिकी उद्भवना हुई। कामदेवकी उन्होंने उत्पत्ति की थी। वह लाभकी बात हुई। ब्रह्माने किस प्रकारकी रचना मैथुनी सृष्टिकेलिये की इसका विस्तार पुराणोंमें नहीं है। विस्तारकी कमी विज्ञानने पूरी की। नास्तिक यह कह सकता है कि यह मनुष्यकी बुद्धिकी कल्पना है कि उसने जगत्की प्रवृत्ति काम वासनाकी ओर देखकर समस्त प्राणियोंको काममोहित पाकर लिंग और योनिकी उपासनाकी निव डाली। परन्तु इस शंकाका यह उत्तर है कि लिंगकी उपासनाके साथ वैराग्यका तत्त्व और कामपर विजयभी यदि उन्हीं मनुष्योंकी कल्पना है तोभी उन मनुष्योंने उपासनाकी कोई अनुचित विधि नहीं निकाली। फिर यहभी विचार करना चाहिये कि पुराण उस कालके लिखे ग्रंथ हैं जब कि आधुनिक वैज्ञानिक कल्पनाएँ स्वप्नमेंभी किसीको सूझी न थीं। फिरभी मैथुन सृष्टिमें अर्धनारीश्वर और लिंग और योनिका अंग जो महाभारत और पुराणोंमें देखनेमें आता है आधुनिक वैज्ञानिक निष्कर्षोंसे इतना मेल क्यों खाता है? लिंगोपासना सृष्टिके परम रहस्यका साक्षी है। प्रवृत्तिमार्गका ठीक पता देता है और धीरेधीरे जब इस उपासनाका रहस्य उपासकके अनुभवमें आता है तब वह लिंगोपासनासेही निवृत्तिमार्गपर आरूढ़ हो जाता है।

भगवान् शंकरके अनेक नामोंमेंसे पशुपति और लिंग यह

दो शब्द समझमें कम आते हैं। लिंग शब्दका साधारण अर्थ चिह्न वा लक्षण हैं। सांख्यदर्शनमें प्रकृतिको, प्रकृतिसे विकृतकोभी लिंग कहते हैं। देव चिह्नके अर्थमें लिंग शब्द शिवजीकेहीलिये आता है और प्रतिमाओंको मूर्त्ति कहते हैं। कारण यह है कि औरोंका आकार मूर्त्तिमानके ध्यानके अनुसार होता है। परन्तु लिंगमें आकार या रूपका उल्लेख नहीं है। वह चिह्न मात्र है।

स्कंदपुराणमें '**लयनाल्लिंगमुच्यते**' कहा है। लय या प्रलय होता है इसीसे उसे लिंग कहते हैं। प्रलयसे लिंगका क्या सम्बन्ध है? प्रलयकी अग्निमें सभी कुछ भस्म होकर शिवलिंगमें समा जाता है। वेदशास्त्रादिभी लिंगमेंही लीन हो जाते हैं। फिर सृष्टिके आदिमें लिंगसेही सबके सब प्रकट होते हैं। अतः लयसेही लिंग शब्दका उद्भव ठीकही है। उससे लय या प्रलय होता है और उसीमें संपूर्ण विश्वका लय होता है। यह एक संयोगकी बात है कि लिंगशब्दके अनेक अर्थोंमें लोकप्रसिद्ध अर्थ अश्लील है। वैदिक शब्दोंका यौगिक अर्थ लेनाही समीचीन माना जाता है। यौगिक अर्थमें कोई अश्लीलता नहीं रह जाती। इसके सिवा अश्लीलता प्रसंगसे आती है। विषयात्मिक वर्णनमें जो अश्लील और अनुचित दीखता है वही वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक वर्णनोंमें श्लील और समुचित हो जा सकता है। पशुपति और लिंग शब्दकाभी यही हाल है। लिंगार्चनमें अश्लीलताके भावकी कल्पना परम मूर्खता, परम नास्तिकता और घोर अनभिज्ञता है। (शिवाङ्कसे)

पं० देवदत्तशर्माजी कहते हैं कि 'लिङ्ग भारतकी उच्च आध्यात्मिकताकी एक वह लघु रश्मि है जिसने अखिल विश्वमें ईश्वरके अस्तित्व और महत्वको प्रकाशित कर दिया। हम निष्पक्ष होकर विचार करते हैं तो मानवजीवनका परम फल ज्ञान प्राप्त करनाही ज्ञात होता है। हमारे प्राचीन आध्यात्मिक पूर्वजोंने लिङ्ग और योनिके आकार (मूर्ति) द्वारा प्रकृति और पुरुषके संगमसे सृष्टिका क्रम अज्ञानी जगत्को सुझाया है। इन्हीं हमारे पूर्वजोंने सृष्टिस्थितिलयकारी अव्ययात्माको निराकारत्व अपनोदन कर क्रमशः लिंगरूपमें उनके साकारत्वकी कल्पना की, जो कुछ कालमेंही

अखिल विश्वका उपास्य चिन्ह हो गया। चीन, ग्रीस, रोम, मिश्र, यूनान, इटली, सुमात्रा और जावा आदि सभी देशोंमें शिवलिंगकी पूजा होती रही। अबभी क्वचित् क्वचित् प्रकारान्तरसे मौजूद है। बाइबिल, कुरान और जेन्दाआवरन्तामें इस लिंगपूजाके उदाहरण मौजूद हैं। मक्कामें मक्केश्वरलिंग अबभी मौजूद है। यूनानमें वृषमूर्त्ति अबभी है। चीनमें 'ह्विंग हि फुद' नामसे लिंग पूजा अबभी होती है। यही तिब्बतमें प्रचलित है। प्रकृति परमेश्वरके निदर्शनस्वरूप लिंगकी उपासनाने कालक्रमात् सम्प्रदायोंका रूपधारण किया। किन्तु उनमेंभी दार्शनिकताका, वैज्ञानिकताका पुट निहित रहा। दक्षिण तैलंग प्रांतमें त्रिमूर्तिलिंग, इलोराकी गुफ़ाओंमें चतुर्मूर्त्ति, मथुराके ध्वंसावशेषोंमें पंचमूर्त्ति तथा इतिहास प्रसिद्ध उदयपुर (मेवाड़) में एक लिंगनाथके निदर्शन विद्यमान हैं। खजुराहोमें अनेक शिवमूर्त्तियाँ एकमुकी, चतुर्मुखी और पंचमुखी हैं। प्रयागके शिवकोटि-स्थानमें करोड़ों शिवलींग हैं। भारतमें प्रसिद्ध द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग लींगोपासनाके ज्वलंत दृष्टान्त हैं। कहनेका तात्पर्य यह कि यह 'लींग' ईश्वरके अस्तित्वका निदर्शक मात्र है। वास्तवमें ब्रह्महो लिंग है। लिंगसेही ॐ की उत्पत्ति सिद्ध की जाती है। यथा, 'अस्य लिंगादभूद्बीजमकारं वीजिनः प्रभोः। उकार यानौ वै क्षिप्तप्रवर्द्धत समन्ततः॥' विना योनिके लिंग कहीं नहीं स्थापित होता। लिंग ब्रह्म है, योनि शक्ति हैं। ब्रह्मके साथ शक्तिकी पूजा होनीही चाहिये। यथा, 'पीठाकृतिरूमादेवी लिंगरूपश्च-शङ्करः। प्रतिष्ठाप्य प्रयत्ने न पूजयन्ति सुरासुराः॥'

गोस्वामीजीनेभी इसी लिंगब्रह्मका विशेषण अविनाशी रखकर अपनी दार्शनिक पटुताका परिचय दिया है।

पुराणोंके गूढ़ाशयगर्भित वाक्योंका समझना बहुत कठिन हैं। साथही विज्ञानभित्तिपर आरूढ़ किये हुए वर्णनोंकाभी समझ लेना सर्वसाधारणकेलिये सहज नहीं। जहाँतक हमको समझ पड़े विद्वानोंके मतोंको हमने यहाँ उद्धृत कर दिया है।

३ (क) 'अंतर अयनु अयनु भल' इति। यहाँ 'अयनु' शब्द दो बार भिन्न भिन्न अर्थोंमें आया है। यहाँ यमकालंकारभी है। अयनमें

दूध भरा है। थनरूपी फल सामने हैं जिनसे फलका सुखभोगरूप दूध प्राप्त हो सकता है। पर जबतक वत्स न हो, गौ न पन्हायेगी और न दूध मिलेगा। यथा, 'बत्स पाइ तब धेनु पन्हाई।' इसी प्रकार अंतर्गृही परिक्रमामें फलकी प्राप्ति है। पर यदि वेदोंमें वर्णित काशीमाहात्म्यपर विश्वासही नहीं है तो वह फलभोग क्योंकर प्राप्त होगा? गौ थन छूनेही न देगी। अविश्वासी प्राणी समीप आवेंगेही नहीं। इसीसे 'अयनु' और 'थन' कहकर 'बच्छ बेद बिस्वासी' भी कहा। दूध परिपूर्ण भरा होनेसे 'अयनु' को 'भल' कहा। दूध क्या है? फलका सुखभोगही दूध है। किसी किसीके मतानुसार 'भगवत्प्राप्ति' दूध है। (ख) 'गलकंबल बरना बिभाति' इति। गलकंबल पूर्व, वैसेही बरणा नदी पूर्वदिशामें, यह दोनोंमें समानता है। (ग) 'लूम लसति सरितासी' इति। पुच्छ (पूँछ) लंबी पतली पश्चिम ओर होती है जो परम पावन मानी जाती है। (इसमें रमाका निवास रहता है। पूँछ पकड़कर गोदान करनेकी विधि है।) इसी प्रकार 'असी' नदी पश्चिम दिशामें लंबी चली गयी है। (घ) 'गलकंबल और लूम दोनों चरणोंसे बाहर हैं। वैसेही बरना और असी दोनों नदियाँ सीमासे बाहर दूरतक फैली हुई हैं।'

अनुसंधान [२२]

दंडपानि भैरव बिषान मल रुचि खलगन भयदासी।
लोलदिनेस तिलोचन[६] लोचन करन घंट घंटासी॥ ४॥
मनिकरनिका[७] बदन ससि सुंदर सुरसरि सुख[८] सुखमासी।
स्वारथ परमारथ परिपूरन पंचकोस महिमासी॥ ५॥
बिस्वनाथ पालक कृपाल चित लालति नित[९] गिरिजासी।
सिद्धि सची सारद पूजहिं मनु[१०] जुगवत[११] रहति रमासी॥ ६॥

६ त्रिलोचन—ह०, ५१, १५, ७४, आ०। तिलोचन—६६, रा०, प्र०, ज०,। ७ मनिकर्निका—ह० ५१, १५, ७४, आ० (भ०) ८ सुख—६६, रा०, भा०, बे०, ह०, ७४, प्र०, ज०, १५। मुख—च०, दी०। ९ नीति—रा०, भा०। १० मनु—६६। मन—प्रायः औरोंमें। ११ जुगवत—६६, प्र०, भा०, बे०, १५, ५१, आ०। जोगवत—रा०, ७४, ह०, डु०।

शब्दार्थ—दंडपानि (दंडपाणि) = जिसके हाथोंमें दंड नामक अस्त्र हो जो दंडेके आकारका होता है। काशीमें दंडपाणि नामकी एक मूर्ति भैरवकी है जिसके हाथमें दंडभी है। भैरव = शिवजीके एक गण जो शिवजीका अवतार माने जाते हैं। पद ११ देखिये। बिषान (विषाण) = सींग। मल रुचि = जिनकी पापमें रुचि है। भयदा = भय देनेवाली। सी = है, (सं० आसीत्‌से) (दी०) समान, सदृश। लोलदिनेस = लोलार्क नामक सूर्य, लोलार्केश्वर शिवलिंग जो असी घाटके समीप है। लोलार्क कुंडभी प्रसिद्ध तीर्थ है। तिलोचन = त्रिलोचन महादेव। यहभी एक शिवलिंग विशेष है जो प्रसिद्ध तीर्थ है। इनके नामसे महल्लेकाभी नाम यही पड़ गया है। करन घंट = यह एक शब्द माननेसे 'घंटाकर्ण तीर्थ' अर्थ होगा। अलग अलग होनेसे 'कर्ण' (कान) और 'घंट' दो अर्थ होंगे। घंटा = धातुका एक बाजा जो केवल ध्वनि उत्पन्न करनेकेलिये होता है। यह औंधे बरतनके आकारका होता है जिसमें एक लंगर लटकता रहता है और जो लंगरके हिलनेसे बजता है। मनिकरनिका (मणिकर्णिका) = एक परम प्रसिद्ध तीर्थ जिसके पास श्मशान है। सुखमा = परम शोभा। स्वारथ (स्वार्थ) = अपना प्रयोजन, उद्देश्य वा हित, लोकसंबंधी सुखके पदार्थ। परमारथ (परमार्थ) = सबसे बढ़कर वस्तु, सार पदार्थ, परलोकसंबंधी पदार्थ, मोक्ष, भगवत्प्राप्ति। परिपूरन (परिपूर्ण) = भरपूर। 'परि' संस्कृत उपसर्ग है जिसके लगनेसे शब्दमें इन अर्थोंकी वृद्धि होती है। १ चारों ओर। (परिक्रमण) २ सर्वतोभाव, अच्छी तरह। (परिपूर्ण) ३ पूर्णतया। (परित्याग, परिताप) ४ अतिशय। (परिवर्द्धन) ५ दोषाख्यान। (परिहास, परिवाद) ६ नियम, क्रम। (परिच्छेद) पंचकोस = पंचक्रोशी, परिक्रमा। हिंदी शब्द सागरमें 'पांच कोसकी लंबाई चौड़ाईके बीच बसी हुई काशीकी पवित्र भूमि' यह अर्थ है। परंतु जो परिक्रमा पंचक्रोशी नामकी आजकल होती है वह लगभग ६० कोसकी है। महिमा = माहात्म्य, बड़ाई। बिस्वनाथ = विश्वनाथ नामके महादेव। येभी द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंमेंसे एक हैं। पालक = पालन करनेवाला।

भोजन वस्त्र आदि आवश्यक वस्तु देकर प्राणकी रक्षा करना 'पालन' है। पालन = पशुको घरमें रखकर चारा पानी देना। लालति (सं० लालन) = लाड़ प्यार करना, चूमना, मीठे वचन कहकर पुचकारना इत्यादि सब भाव इसमें भरे हैं। यथा, 'चाहि चुचकारि चूमि लालत लावत उर तैसे फल पावत जैसे सबीज बये हैं।' (गी०) 'कलपबेलि जिमि बहु बिधि लाली। सींचि सनेह सलिल प्रतिपाली'। (अ०) नित = नित्य। जुगवति = (सं० योग + अवना) जुगवना, खयाल रखना, देखते जोहते रहना। यथा, 'काय न कलेस लेस लेत मानि मनकी। सुमिरे सकुचि रुचि जुगवत जनकी।', 'ता कुमातु को मन जुगवत ज्यों निज तन मर्म कुघाउ।' (विनय) जिस प्रकार सुख मिले वही करना।

पद्यार्थः—दंडपाणि और कालभैरव काशी कामधेनुकी सींगें हैं जो पापरुचि दुष्ट जनोंको भय देनेवाली हैं।* लोलार्क और त्रिलोचन तीर्थ नेत्र हैं। घंट घंटाकर्ण हैं (घण्टाकर्ण तीर्थ गलेमें बँधा हुआ घंटा है)।४। मणिकर्णिका तीर्थ इसका चंद्रसमान सुंदर मुख है। गंगाका आनंद (मुखकी) परम शोभा है। स्वार्थ परमार्थसे परिपूर्ण पंचक्रोशी परिक्रमा इसकी महिमा है।५। दयालुचित विश्वनाथजी इसके पालक हैं। गिरिजा जैसी शक्ति नित्य इसका लालन करती रहती हैं। (स्वर्गमें देववधूटियाँ कामधेनुको पूजती हैं और काशी कामधेनुको

---

*अर्थान्तर—१ वीरकविजी 'भयदासी' का अर्थ 'भयदा असि' करते हैं। वे पापमें प्रीति रखनेवाले खलोंके भयदायक तलवार हैं। वे लिखते हैं कि यहाँ तलवार उपमानका गुण सींग उपमेयमें स्थापन करना 'द्वितीय निदर्शना' है। आगे चलकर 'सी' का अर्थ 'के समान' वा 'बराबर' किया है। बैजनाथजी आदिने 'सरीखा, जैसा, समान' इत्यादि अर्थ किया है। २ 'मलरुचि' = गौकामल (गोबर) पुण्यात्माओंकी रुचि है। 'खलगणकी रुचि गोबर है' (रा० त० बो०) यह अर्थ संगत नहीं जँचता।

अष्टसिद्धियाँ, इन्द्राणी और सरस्वती पूजती हैं और लक्ष्मी ऐसी (त्रैलोक्य ऐश्वर्य स्वामिनी) इसका मन जुगवती रहती हैं। ६।

नोट:-पापमें रुचि कैसे होती है इस विषयमें भीष्मजीने जो कहा है वह मननयोग्य है। वह यह है कि "मनुष्य विषयोंको जाननेकेलिये उनमें इच्छापूर्वक प्रवृत्त होता है। इससे जिस विषयमें उसे राग होता है उसे पानेकेलिये वह बहुतसे काम करता है। वह अपने प्रिय रूप, रस गंधादिका बार बार सेवन करना चाहता है। इससे उसके मनमें राग होता है और फिर उसपर क्रमशः द्वेष, लोभ और मोहकाभी अधिकार हो जाता है। इस प्रकार लोभमोहादिसे ग्रस्त होकर उसकी बुद्धि धर्ममें प्रवृत्त नहीं होती। वह केवल कपटसेही धर्मका आचरण करता है और कपटसेही धन कमाना चाहता है। इस प्रकार बुद्धिकी कपटमें प्रवृत्ति हो जानेसे उसकी पापमेंही रुचि हो जाती है। राग और मोहके कारण उसका तीन प्रकारका अधर्म बढ़ता है। वह पाप चिंतन करता है, पापही बोलता है और पापही करता है। इस प्रकार पुरुष पापी बनता है।" (महाभारत शान्तिपर्व)

टिप्पणी-१ (क) 'दंडपानि भैरव बिषान' इति। दंडपाणि भैरव और विषाणमें समता यह है कि दोनों भयदायक हैं और दोनों दो दो हैं। किसी किसीने 'दंडपानि' को 'भैरव' का विशेषण और किसीने दोनोंको दो तीर्थ माना है। प्रथम चरणसेही ग्रंथकार उपमान और उपमेय बराबरके देते आ रहे हैं। चरण चार और मर्यादा चार दिशाओंकी। कामधेनुसेवक सुरगण और काशीसेवक पुरवासी। अंग अनेक वैसेही तीर्थ अनेक। रोम अमित शिवालिंग अमित। अयन एक वैसेही अंतर्गृही एक। थन चार तथा फल चार। वत्स (बछड़ा) एक और वेदविश्वासी एक। गलकंबल और बरणा, लूम और असी एक एक। इसी प्रकार दो सींगोंका रूपक दो तीर्थोंसे है। एक दंडपाणि जो दुष्टोंको दंड दिया करते हैं। दूसरे कालभैरव जो कोतवाल हैं और बड़े भयंकर हैं।

दंडपाणि—काशीखण्डमें लिखा है कि पूर्णभद्रनामक एक यक्षको हरिकेश नामका एक पुत्र था जो बड़ा शिवभक्त था। एक बार इसके

घोर तपसे प्रसन्न हो शिवपार्वतीजी इसके पास आकर बोले कि तुम काशीके दण्डधर हो। वहाँके दुष्टोंका शासन और साधुओंका पालन करो। संभ्रम और उद्भ्रम नामके मेरे दो गण तुम्हारी सहायताकेलिये सदा तुम्हारे पास रहेंगे। बिना तुम्हारी पूजा किये कोई काशीमें मुक्ति न पा सकेगा।

भैरव—पुराणानुसार जिससमय अंधक राक्षसके साथ शिवजीका युद्ध हुआ था, उससमय अंधककी गदासे शिवजीके सिरके चार टुकड़े हो गये थे और उनमेंसे लहूकी धारा बहने लगी थी जिससे पाँच भैरवोंकी उत्पत्ति हुई थी। तांत्रिकों और कुछ पुराणोंके अनुसारभी भैरवोंकी संख्या साधारणतः आठ मानी जाती है। नामोंमें मतभेद है। संहारभैरव, असितांग, रुरु और क्रोधभैरवको दोनों मानते हैं। पद १०, ११ में 'भैरव' की उत्पत्ति दूसरे प्रकारकीभी कह आये है। काशी माहात्म्यके कालभैरवके अतिरिक्त आठ भैरव और कहे हैं। इस प्रकार स्पष्ट हो गया कि दंडपाणि और भैरव दो पृथक् पृथक् नाम हैं।

(ख) 'लोलदिनेस तिलोचन लोचन' इति। लोलार्क और तिलोचन दोनों नाम नेत्र संबंधी हैं, यही सादृश्य है।

(ग) 'करन घंट घंटासी' इति। पदमें गौके अंगोंमें अबतक 'कर्ण' नहीं कहे गये और घंटा अंग नहीं है। इससे 'कर्ण' और 'घंट' को पृथक् पृथक् दो शब्द मानकर अर्थ करनेसे '(दो) कर्ण घंट और घंटा हैं' यह अर्थ होगा। परंतु प्रायः सभी टीकाकारोंने 'कर्णघंट घंटा है' यही अर्थ किया है। * परन्तु इस अर्थमें यह त्रुटि है कि अभी काशी काम-

---

*१ घंटाकर्ण—शिवजीका एक उपासक था जो कानोंमें इसलिये घंटा बाँधे रहता था कि जब कहीं राम, नारायण या विष्णु नाम लिया जाय तब वह अपना सिर हिला दे और घंटेके शब्दके कारण वह नाम न सुन पावे। इसके नामसे कर्णघण्टेश्वर महादेव हैं और वह महल्लाभी इसी नामसे ख्यात हो गया है।

२ घंट और कर्णका संबंध है। घंटाकर्णका संबंध घंटा और कर्ण दोनोंसे है। इसलिये यदि 'कर्ण' का अन्वय दो बार कर लें तो 'कर्ण

धेनुके अंगोंका वर्णन किया जा रहा है इस नख शिख वर्णनमें काशी कामधेनुके कर्ण (कान) रह जाते हैं जिससे एक तो नख शिख अधूरा रहा जाता है और दूसरे वह बूची (विना कानकी) कहलायेगी। अतत: इस दीनकी समझमें तो घंट और घंटाको काशी कामधेनुके कान मानना चाहिये।

२ 'सुरसरि सुख सुखमासी' इति। गंगाजीके तरंगोंके विलासका, सदा किनारेपर गँभीर जलका, निरंतर स्थिरतासे बहनेका और हिंसक जलचर (कछुए, मगर आदि) से रहित होनेसे स्नानादि इत्यादिका सुख 'सुरसरि सुख' है। सुरसरि सुख और शशि मुखकी सुखमामें समानता यह है कि परम शोभासेभी सुख होता है। यथा, 'देखि सीय सोभा सुख पावा।' (बा०) † यहाँतक अंगोंका वर्णन हुआ।

३ (क) 'स्वारथ परमारथ परिपूरन पंचकोस महिमासी।' इति। 'पंचक्रोशी' और 'कामधेनुकी महिमा' में दातृत्व गुणकी समानता है। पंचक्रोशी स्वार्थ परमार्थ परिपूर्ण है। स्वार्थसाधक परमार्थदायक है और कामधेनु चारों पदार्थ देती है। अर्थ, धर्म और काम 'स्वार्थ' है, मोक्ष परमार्थ है।*

कर्णघंट और घंटा हैं' यह अर्थ हो सकेगा जिसमेंभी फिर कोई शंका नहीं रहती। विज्ञ पाठक विचार कर लें।

३ टीकाकारोंका मत कि '(गलेका) घंटा घंटाकर्ण है' ठीक माननेमें आपत्ति यह है कि घंटा गौका अंग नहीं है और कर्ण अंगका नखशिखमें वर्णन करना बहुत आवश्यक है।

† भावार्थान्तर—"गायके सुख होता है। आंतरिक सुख और बाहर तनमें शोभा रहती है। वैसेही यहाँ काशीमें मणिकर्णिका सुख है। सुरसरिमें स्नानादिका सौलभ्य सुख है। सुरसरि सुखरूप है और निकटका दिव्य घाट मंदिर विकट धारा आदि शोभा सरीखे हैं।" (वै०, हु०)

* पंचक्रोशीकी महिमा इतनेसे हद है कि शंकरजी इसकी स्वयं प्रदक्षिणा करते हैं। सनत्कुमारसंहितामें वे कहते हैं कि 'दक्षिणे चोत्तरे चैव ह्यने सर्वदा मया। क्रियते क्षेत्रसाक्षिण्यं भैरवस्य भयादपि॥' मैं भैरवके भयसे दोनों अयनों में (उत्तरायण और दक्षिणायन) इसकी परिक्रमा सदा

(ख) 'विश्वनाथ पालक कृपाल चित' इति। गौके पालने और लालन करनेवाले होते हैं। पालनेवाला प्रायः ग्वाल या और कोई पुरुषही होता है और घरकी स्त्रियाँ बराबर उसको देखती रहती हैं। यही बात यहाँ कहते हैं। चारा पानीका प्रबंध पालक करता है। उसको दयालु होना चाहिये। नहीं तो आजकलके समान गौको दुहभर लेंगे, गायको भूखी मारेंगे, मैला खानेको छोड़ देंगे। अतः 'कृपाल चित' विशेषण दिया। दयापूर्वक पालन पोषण करनेवाले विश्वनाथजी हैं। ये काशीपति हैं। गिरिजाजी घरकी मालिकिनि (गृहस्वामिनी) हैं। अतः उनका लालन करना कहा। शची, शारदा और अष्टसिद्धियाँ मनोवाञ्छित ऐश्वर्यकी प्राप्तिकेलिये पूजती हैं।

४ 'सिद्धि सची सारदा पूजहिं मनु जुगवत रहति रमा सी' इति। इसका एक अर्थ पद्यार्थमें दिया है। बाबा रामदासजी अर्थ करते हैं कि 'अष्टसिद्धियाँही शची और शारदा हैं जो इसे पूजती हैं।' वेदांतशिरोमणि श्रीरामानुजाचार्यजी महाराज इसका भावार्थ यह कहते हैं कि "शची, शारदा और सिद्धियाँ सेवा करते हुए काशीके मनोनुकूल इसीतरह चलती हैं जैसे कि रमाजीकी सेवा करके उनके मनोनुकूल चलती हैं।" यहाँ 'सी' उपमावाचक है। 'रमा सी' अर्थात् 'रमाके समान'। यथा 'संतसमाज पयोधि रमा सी।' '**श्रियः श्रीश्चे भवेग्या कीर्तेः क्षितेः क्षमा।**' (बाल० रा०) पद्यार्थमें दिये हुए अर्थके अनुसार भाव यह है कि इन्द्राणी आदि तो मनोरथ

करता हूँ। नारदीयपुराणमें शिवजीने इसका माहात्म्य कहा है कि इसकी परिक्रमासे सारी पृथ्वीकी परिक्रमा हो जाती है। 'काशी प्रदक्षिणायेन कृत त्रैलोक्य पावनी। सप्तद्वीपा साब्धिशैला कृता तेन प्रदक्षिणा॥' काशीखण्ड अ० ४५ में चैत्र कृ० १ को इसकी परिक्रमाका बड़ा फल बताया है। यथा, 'चैत्रकृष्ण प्रतिपदि तत्र यात्रा प्रयत्नतः। क्षेत्रविघ्नप्रशान्त्यर्थं कर्तव्या पुण्यकृज्जनः। ५२।' (श्रीहरिजनलालकी श्रीकाशी वार्षिक यात्रावलीसे)

चाहती हैं। अतः उनका पूजना कहा। रमाका मन 'जुगवना' कहा। रमाजी सब ऐश्वर्यकी अधिष्ठात्री शक्ति (देवी) हैं। यथा, '**रमानाथ जहँ राजा सो पुर बरनि कि जाइ। अनिमादिक सब संपदा रही अवध सब छाइ॥**' (उ०) रमा उसकी खातिरदारी करती हैं, रुचि देखती रहती हैं कि इसको क्या चाहिये, जो इसे ज़रूरत हो वही उसे दें। वह सबको चारों फल देती है। कभी उसके ऐश्वर्यमें कमी न होने पावे यह रमाजी बराबर देखती रहती हैं और मुक्ति प्रदान करनेकेलिये तो बिन्दुमाधवरूपसे लक्ष्मीपति यहाँ रहतेही हैं, साथमें रमाभी हैं।*

श्रीलमगोड़ाजी लिखते हैं कि 'स्वामी विवेकानन्दने ठीकही लिखा है कि किसी स्थान विशेषकी आध्यात्मिक महानताका विचार तर्कके विरुद्ध नहीं। जहाँ वातावरणमें सतोगुणकी प्रधानता है वहीं तो तीर्थ कहे जाते हैं। सामवेदमें स्पष्ट मन्त्र हैं जिन्हें आप जयदेवजी विद्यालंकारके भाष्यमेंभी देख सकते हैं जिनमें स्पष्ट है कि यहाँके शिखरपर और नदियोंके तटपर 'मेधावी' पुरुष बनते हैं। क्यों? यहाँके वातावरणका असर बुद्धि (मेधा) पर नहीं? दूसरी ओर भागवतका कथन है कि संत तीर्थ बनाते हैं। यह महात्माओंके तपका प्रभाव नहीं तो क्या है? शंकरजीने यदि हमारेलिये काशी, ईसाने जेरोसेलम और एक इसलामी महात्माने काबा (मक्का) बना दिया तो आश्चर्य क्या?'

अनुसंधान [२२]

पंछाच्छरी प्रान मुद माधव गव्य सुपंचनदा सी।
ब्रह्म जीव सम राम नाम दोउ[१२] आखर बिश्वबिकासी॥ ७॥

---

*महाभारत आश्वमेधिक पर्वमें कहा गया है कि रति, मेधा, क्षमा, स्वाहा, श्रद्धा, शान्ति, धृति, स्मृति, कीर्ति, दीप्ति, क्रिया, कान्ति, तुष्टि, पुष्टि, संतति, दिशा और प्रदिशा आदि देवियाँ सदा कपिला गौका सेवन किया करती हैं।

१२ जुग—भ०, मु०, वै०, दी०, वि०। दोउ—प्राय: और सबोंमें।

चारितु चरित करम कुकरम करि मरत जीवगन घासी।
लहत परमपद पय पावन जेहि चहत प्रपंच उदासी॥ ८॥
कहत पुरान रची केसव निज कर करतूति कला सी।
तुलसी बसि हरपुरी राम जपु जौं[13] भयो[14] चहै सुपासी॥ ९॥

शब्दार्थ—पंचाच्छरी (पंचाक्षरी) = शिवमंत्र, 'नमःशिवाय' जिसमें पाँच अक्षर हैं।* माधव = माधवभी कई हैं परन्तु इनमेंसे बिन्दुमाधव विष्णु विग्रह तीर्थ विशेष हैं जो पंचगंगापर थे। यवनराजाके आक्रमणके समय वह मूर्ति वहाँसे हटा दी गयी। एक माधवकी मूर्ति एक गुजराती ब्राह्मणके यहाँ काठकी हवेलीके पीछे कही जाती है। पर मैंने वहाँ जाकर जब जाँच ताँच की तो उन्हीं लोगोंसे मालूम हुआ कि वह मूर्ति बेनीमाधव है न कि बिन्दुमाधवकी। अब जो विग्रह बिन्दुमाधव नामसे पंचगंगापर मंदिरमें स्थापित है वह दो सौ वर्षके लगभगकी है। पुराना मंदिर यवनों-द्वारा गिराकर मसजिद कर लिया गया। गव्य = गौसे उत्पन्न वा प्राप्त, पंचगव्य। गौसे प्राप्त होनेवाले पाँच द्रव्य जैसे दूध, दही, घी, गोबर और मूत्र

---

१३ जौं—६६। जौ—रा०। जो—प्रायः औरोंमें। १४ भा—मु०।

*'पंचाक्षर' इति। श्रीगौरीशंकरजी गनेड़ीवाला लिखते हैं कि महादेवजीने इसका माहात्म्य पार्वतीजीसे यों कहा है कि 'प्रलयकालमें स्थावर, जंगम, देव, असुर और नाग इत्यादि नष्ट हो जाते हैं। तुमभी प्रकृतिके रूपमें लीन हो जाती हो। तब हम एकाकी रहते हैं। कोई दूसरा अवशिष्ट नहीं रहता। उससमय वेद और शास्त्र हमारी शक्तिद्वारा पालन किये हुए पंचाक्षर मंत्रमें निवास करते हैं। तब हमारी प्रकृतिही मायामय शरीर धारण कर नारायण रूपसे समुद्रमें शयन करती है। उसके नाभीकमलसे पंचमुख ब्रह्मा उत्पन्न हो सृष्टि करनेकी सामर्थ्यकेलिये प्रार्थना करते हैं। एक बार ब्रह्माजीकी प्रार्थना सुन उनके हितकेलिये मैंने पाँचमुखोंसे पाँच अक्षरोंका उच्चारण किया। उन वर्णोंको ब्रह्माजीने पाँचमुखोंसे ग्रहण किया और वाच्य वाचक भावकेद्वारा परमेश्वरको जाना।' इन पाँच अक्षरोंके वाच्य शिवजी है। यह पंचाक्षर शिवजीका वाचक है। [किसी ग्रन्थका प्रमाण इस लेखमें नहीं दिया गया है। शिवाङ्क पृष्ठ ३९० से उद्धृत।]

जो बहुत पवित्र माने जाते हैं और पापोंके प्रायश्चित्त आदिमें खिलाये जाते हैं। प्रत्येक द्रव्यका परिमाण इस प्रकार है। घी, दूध, गोमूत्र एक एक पल, (चार तोला वा सोलह तोला) दही एक प्रसृति (१६ तोला) और गोबर तीन तोला। पंचनदा = पंचगंगा। यह काशीका एक प्रसिद्ध स्थान है जो मणिकर्णिकाके समीप है। यहाँ गंगाजीके साथ किरण और धूतपापाका संगम कहा जाता है। ये दोनों नदियाँ अब पटकर लुप्त हो गयी हैं। गंगा, यमुना, सरस्वती, किरण और धूतपापा, अथवा गंगा, वरुणा, असी, किरण और धूतपापा इन पाँच नदियोंका समूह होनेसे पंचनद नाम पड़ा। आखर = अक्षर। बिश्वबिकासी = विकास। किसी पदार्थके उत्पन्न होकर अंत या आरंभसे भिन्न भिन्न रूप धारण करते हुए उत्तरोत्तर बढ़नेको 'विकास' कहते हैं। जैसे बीजसे पेड़ोंका और गर्भादिसे शरीरका विकास, इसी प्रकार रकार मकार (राम) से सृष्टिका विकास हुआ। 'विकास' का दूसरा अर्थ 'प्रकाश' है। यथा '**ध्रुव बिस्वास अवधि राका सी। स्वामि सुरति सुरबीथि बिकासी।**' (अ०) प्रसार और फैलावभी इसके अर्थ हैं। इसतरह 'विश्वविकासी' का अर्थ हुआ कि जगतके प्रकाशक। उन्हींकी सत्ता (चैतन्यता) से जड़ जगत् सत्य चैतन्य प्रतीत हो रहा है। यथा '**जगत प्रकास्य प्रकाशक रामू।**', '**जासु सत्यता ते जड़ माया। भास सत्य इव मोह सहाया॥**' (बा०) चारितु = पशुओंके चरनेका चारा। यथा '**धरनि धेनु चारितु चरित प्रजा सुबच्छ पेन्हाय। हाथ कछू नहिं लागि है किये गोड़की गाय॥**' (दो०) पशुओंके खानेकी घास, पत्ती, डंठल आदि वस्तुओंको 'चारा' कहते हैं और घूम घूमकर घास आदि चारा खानेको 'चरना' कहते हैं। घूम फिरकर चारा चरनेसे दूध अधिक और उत्तम होता है। जीवगन=(जीवगण) यहाँ जीवसे प्राणी वा प्राणियोंके शरीर अभिप्रेत हैं। क्योंकि जीव पदवाच्य भोक्ता, चैतन्य, अपरिच्छिन्न, निर्मल, ज्ञानस्वरूप और नित्य कहा गया है। घासी = घास, तृण आदि चारा। टि० १२ देखिये। प्रपंच = संसार और उसके व्यवहारोंका विस्तार, जंजाल इत्यादि। क्षिति, जल, पावक, समीर और आकाश इन पंचतत्त्वोंके पंचीकरण

प्रकृतियाँसे अनेक भेदोंके विस्तारको संसार वा प्रपंच कहते हैं। यथा, 'बिधि प्रपंच गुन अवगुन साना'। 'लागे लाभ न हानि कछु तिमि प्रपंच जिय जोउ।' (अ०) उदासी = विरक्त, त्यागी, विषयोंसे अलग रहनेवाला। प्रपंची उदासी = प्रपंचशून्य। यथा 'नाम जीह जपि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच बियोगी॥' (बा०)। उदासी और वियोगीको पर्यायवाची शब्द सूचित किया है। केशव = भगवान्‌का एक नाम है। विशेष टि० ६ देखिये। करतूति (करतूत, सं० कर्तृत्व) = गुण, हुनर, कलाकौशल। यथा 'कहि न जाइ कछु नगर बिभूति। जनु एतनिय बिरंचि करतूती।' (अ०) कला = किसी कार्यको भली भाँति करनेका कौशल। कारीगरी। रचना = कारीगरीके साथ सँवारकर बनाना, निर्माण करना। सुपासी = परम सुखी। सुपास = सुख, सुभीता। यथा 'चित्रकूट गिरि करहु निवासू। तहं तुम्हार सब भाँति सुपासू॥' (अ०)

पद्यार्थ:—पंचाक्षरी मंत्र इसका प्राण है, माधव आनंद है, सुंदर पंचगंगा पंचगव्य है, विश्वमात्रके विकास करनेवाले श्रीरामनामके दोनों अक्षर ब्रह्म और जीवके समान हैं। ७। (कामधेनु चारा चरती है, यहाँ काशीरूपी कामधेनु) प्राणी जो भले बुरे कर्म करके मरते हैं, वही कर्म-कुकर्मरूपी घासका चारा चरती है।* (मरनेपर वे प्राणी) परमपदरूपी पवित्र दूध प्राप्त करते हैं, जिसे विरक्त योगी चाहते हैं।८। पुराण कहते हैं कि केशव भगवान्‌ने इसे अपने हाथों रचा है। यह उनके कला कौशलका नमूना तद्रूप वा मूर्ति है। तुलसीदासजी कहते हैं कि यदि तू सुखी होना चाहता है तो हरकी पुरीमें बसकर राम राम जप। ९।

---

*दूसरा अर्थ—'सुकर्मकुकर्मरूपी चारा चरती है जो जीवगणरूपी घासी (अर्थात् घास देनेवाले, सुकर्मकुकर्म करनेवाले) मरते हैं।

वीरकविजीका अर्थ—सुकर्मकुकर्म करके मरनेवाले जीवसमूहोंके चरित्रही चरनेकी घास (चारा) है।' वे 'चारितु' का अर्थ (चरित्र) लिखते हैं। वैजनाथजी और शुक्लजी 'चारितु' का अर्थ 'चरहा' (चरागाह) लिखते हैं।

टिप्पणी—१ 'पंचाच्छरी प्रान' इति । प्राणभी पाँच माने गये हैं । प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान । मंत्रमेंभी पाँच अक्षर हैं । न, मः, शि, वा, य । यही दोनोंमें समानता है । प्राण शरीरकी उस वायुका नाम है जिससे मनुष्य जीवित रहता है । महाभारत आश्वमेधिक-पर्व ब्राह्मण ब्राह्मणी संवादान्तर्गत पंचप्राणोंके पारस्परिक संबंधके विषयमें कहा गया है कि "वायु प्राणकेद्वारा पुष्ट होकर अपानरूप, अपानके द्वारा पुष्ट होकर व्यानरूप, व्यानसे पुष्ट होकर उदानरूप और उदानसे पुष्ट होकर समानरूप होता है । अपान प्राणके वशमें है और प्राण अपानके । समान व्यानके अधिकारमें है और व्यान उदानके वशमें है । पाँचों प्राणोंका धारणरूप धर्म एक दूसरेपर अवलंबित है । अतः ये सभी अपने अपने स्थानपर श्रेष्ठ हैं । ये एक दूसरेके हितैषी रहकर परस्पर-की उन्नतिमें सहायता पहुँचाते हुए एक दूसरेको धारण किये रहते हैं ।"

पंचाक्षरी (नमःशिवाय) को प्राणसे रूपक देनेका भाव यह है कि काशीमें जीवोंके स्वास्थ्यकी रक्षा पंचाक्षरीसे होती है । स्मरण रहे कि पंचप्राण (सबके सब) मनुष्यके शरीरके भिन्न भिन्न स्थानोंमें काम किया करते हैं और उनके प्रकोपसे मनुष्यके शरीरमें अनेक प्रकारके रोग उठ खड़े होते हैं । जिस वायुको नथुनेद्वारा साँससे भीतर ले जाते हैं उसे 'प्राण' कहते हैं । इसका मुख्य स्थान हृदय है । पंचाक्षरों और पंचप्राणोंका मिलान और माहात्म्य नीचे दिया जाता है ।

पंचप्राण	प्राणोंकेस्थान	पंचाक्षर	पंचाक्षर माहात्म्य (रुद्रयामलग्रंथसे)
प्राण	हृदय	न	'नकारे धनसंपत्तिर्बहुलाभो भविष्यति । आरोग्यं सफलं कार्यं भवेत्तत्र न संशयः ॥' धनसंपत्ति, बहुलाभ, आरोग्यता, कार्य सफलता प्राप्त होती है ।
अपान	गुदा	मः	'मकारे निधनंनाशमापदश्च पदे पदे । न भोगो लभते तस्य तत्सर्वं निष्फलं भवेत् ॥' आपदा, अनिष्ट, अमंगलका नाशक है ।

समान	नाभि	शि	'शकारे कार्यसिद्धिश्च सफलं च दिने दिने। अर्थलाभंभवेन्नित्यं सर्वलाभं भविष्यति ॥' कार्यसिद्धि सबप्रकारका लाभ देता है।
उदान	कंठ	वा	'वकारे धननाशं च तत्सर्वं निष्फलं भवेत्। अकारे विजयं सौख्यं सर्वलाभं भविष्यति ॥' यश देता है।
व्यान	शरीरभर	य	'यकारेचार्थलाभश्च धनधान्यसमन्वितः। सौभाग्यं भवेत्तस्य शुभं भवति सर्वदा ॥' शुभ सौभाग्य धनधान्यादिका दाता है।

२ (क) 'मुद माधव' इति विष्णु भगवान् माधवके काशीमें मूर्तिरूपसे विराजमान होनेकी कथा काशीखण्डमें इस प्रकार है कि "एक बार शिवजीकी सम्मति पाकर वे यहाँ आये और राजा दिवोदासको (जिसने शिवजीको काशीसे निकाल दिया था) यहाँसे निकाला। उस समय अग्निविन्दु ऋषिने भगवान्‌की स्तुति करके उनको प्रसन्न कर लिया और यह वर माँगा कि मोक्षाभिलाषियोंके हितार्थ आप पंचनदतीर्थपर अवस्थान करें और हमारे नामसे प्रसिद्ध होकर सबको मुक्ति प्रदान करें। 'एवमस्तु' कहकर आधा नाम 'बिन्दु' अपने नाममें जोड़कर 'बिंदुमाधव' नामसे भगवान्‌ने यहाँ वास करनेको कहा और यहभी कहा कि पंचनदतीर्थभी बिंदुतीर्थ कहलाएगा।" मुदको माधव कहा, क्योंकि भगवान् आनंदकंद हैं।

(ख) 'गव्य सुपंचनदा सी' इति। शब्दार्थमें बताया हैं कि पंचगव्यसे शारीरिक पापोंका प्रायश्चित होता है, देहकी शुद्धि होती है। प० पु० सृष्टि० ४५ में ब्रह्माजीका वाक्य है कि "गौओंकी प्रत्येक वस्तु पावन है। गौका मूत्र, गोबर, दूध, दही और घी इन पंचगव्योंका पान कर लेनेपर शरीरके भीतर पाप नहीं ठहरता। इसलिये धार्मिक पुरुष प्रतिदिन गऊका दूध, दही और घी खाया करते हैं। गव्य पदार्थ संपूर्ण द्रव्योंमें श्रेष्ठ, शुभ और प्रिय हैं। जिसको गायका दूध, दही और घी

खानेका सौभाग्य नहीं प्राप्त होता, उसका शरीर मलके समान है।" पंचगंगातीर्थस्थानकाभी यही फल है, यही दोनोंमें समानता है। इसे विष्णुतीर्थभी कहते हैं। का० शु० ८–१५ तथा एकादशीको इसके दर्शन और स्नानका बड़ा माहात्म्य कहा गया है।

२ 'ब्रह्म जीव सम राम नाम दोउ आखर०' इति। (क) 'सम' का भाव कि 'ब्रह्म और जीव दोनों निरन्तर सखारूपसे समस्त शरीरोंमें साथ साथ निवास करते हैं। यथा 'तैं निज करमजाल जहँ घेरो। श्रीहरि संग न तज्यो तहँ तेरो।' (१३६), ब्रह्मजीव सम सहज सँघाती।', 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समाने वृक्षे परिषस्यजाते।' (श्वे० उ०) तथा 'ज्ञा ज्ञौ द्वावजौ' (श्वे० उ०)। वैसेही रकार मकारका संग कभी नहीं छूटता। इनका सहज स्नेह समुद्र सेतुबंधनसे निर्विवाद सिद्ध है।

(ख) 'ब्रह्म बिश्वबिकासी' इति। भाव कि जैसे ब्रह्म और जीवके बिना शरीर एवं प्राणभी नहीं रह सकते, वैसेही काशीरूपी शरीरमें जितनीभी चेतनाशक्ति है वह सब रामनामसे है। इसीको शिवजी निरन्तर जपते और गली गली उपदेश करते हैं। यथा, 'पेयं पेयं श्रवणपुटके रामनामाभिरामं, वीथ्यांवीथ्यामटति जटिलं कोपि काशीनिवासी॥' राम नामके दोनों अक्षरोंको ब्रह्म और जीव समान कहा। इनमेंसे कौन अक्षर ब्रह्म और कौन जीव सूचित किया गया है? राकारको ब्रह्म और मकारको जीव स्वरूप दर्शाया है। यथा 'रा शब्दस्तु परब्रह्म मकारो तस्यसेवकः'। रुद्रयामलमें श्रीशिवजीने दोनों अक्षरोंका अर्थ विस्तारसे कहा हैं। यथा 'रकारार्थो राम सगुण परमैश्वर्य जलधिर्मकारार्थो जीवः सकल विधि कैकर्यनिपुणः। तयोर्मध्याकारो युगल संबंधयोरनयोरनन्यार्हं ब्रूते त्रिनिगरस्वरूपोऽयमतुलः॥' 'र' का अर्थही है 'सर्वगुणविशिष्ट ब्रह्म' और 'म' का अर्थ है 'दासभूत जीव'। दोनोंके मध्यका आकार सेवक और सेव्यको अपृथक् सिद्ध बतलाता है। सेव्यसे सेवक अतिरिक्त नहीं है। यही भाव 'ब्रह्म जीव सम राम नाम दोउ आखर' में है।

४ 'चारितु चरति करम कुकरम' इति। भाव यह है कि जैसे घास गऊके पेटमें जानेसे दूध बन जाती है वैसेही सुकर्मी कुकर्मी काशीमें मरनेसे मुक्त हो जाते हैं। यहाँ शुभ कर्म हरी घास है और कुकर्म सूखी है। शुभ कर्मोंसे स्वर्गादिकी प्राप्ति होती है, अशुभसे नरक आदिकी। शुभाशुभ दोनोंही कर्म बंधनमें डालनेवाले हैं। जबतक दोनोंमेंसे कोईभी शेष रहते हैं तबतक आवागमन नहीं छूटता। शुभाशुभ कर्म जबतक भस्म न हो जायँ तबतक जन्ममरणसे निवृत्ति नहीं हो सकती। काशीकी महिमा है कि 'मरणान् मुक्तिः'। यहां विशेषतः कर्मकांडी रहते हैं। तब मुक्ति कैसे हो? क्योंकि ज्ञानी और उपासकके मुक्तिप्रकरणमें शास्त्रोंका कहना है कि ब्रह्मवेत्ता भगवदुपासकके शरीरका चाहे जहाँ जैसे जब (देशकालादिके नियम बिना) परित्याग होता हो वह अर्चिरादि मार्गसे भगवद्धामको चलाही जाता है और उसके पुण्य प्रशंसकोंमें (साधुसेवा इत्यादि करनेवालोंमें) तथा उसके पाप (भक्तद्रोहियों) निंदकोंमें चले जाते हैं। यथा '**देहावसानकाले सुकृत दुष्कृते मित्रामित्रयोर्निक्षियन्**' (य० म० दी०) परन्तु कर्मकाण्डी लोगोंका तो पुण्य पाप दूसरेमें जाताही नहीं। जब शुभाशुभ कर्म समूल नष्ट हो जाते हैं तभी मोक्षकी प्राप्ति होती है ऐसा श्रुतिका आदेश है। यथा '**सदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदिस्थितः। अथमर्त्योऽमृत्योर्भिभवत्यत्र ब्रह्मसमश्नुते**'। का० उ० २।३।१४। तथा '**तदा विद्वान्पुण्यपापेति धूय निरंजनः परमं साम्यमुपैति**॥ (मु० ३।१।३।)' अतएव इस शंकाकी (मुक्ति कैसे हो) निवृत्तिकेलिये कहते हैं कि काशीपुरी उन समस्त कर्मोंको स्वयं पचाकर जीवोंको मोक्षप्राप्तियोग्य बनाकर परमपद देती है।

यहाँ वेद विश्वासी जीवगण वत्स हैं। वत्स जब पैदा होता है तब गऊ उसपर लिपटा हुआ मल स्वयं चाटकर बछड़ेको निर्मल बना देती है। इसी तरह काशी कामधेनु वेद विश्वासी अपने वत्सको निर्मल बनाकर परमपदप्राप्तिरूपी दूध पान कराती है।

५ 'जेहि चहत प्रपंच उदासी' इति। भाव यह है कि अन्यत्र रहनेवाले विरक्त योगी, ज्ञानीभी इसकेलिये तरसते रहते हैं। वही यह मुक्ति यहाँ

कुकर्मीओंकोभी सहजही प्राप्त हो जाती है। यथा 'जोग कोटि करि जो गति हरि सों मुनि माँगत सकुचाहीं। बेदबिदित तेहि पद पुरारिपुर कीट पतंग समाहीं।' (४), 'जो गति अगम महामुनि दुर्लभ कहत संत श्रुति सकल पुरान। सो गति मरनकाल अपने पुर देत सदासिव सबहिं समान॥'(३)

६ 'कहत पुरान रची केसव निज कर०' इति। (क) भगवान्‌के सब कार्य संकल्पमात्रसे होते हैं। यहां 'निज कर' से 'रची' कहकर मानसी संकल्पसे उसके निर्माणका निषेध करते हुए उसमें परिश्रम करना दिखाया है। ध्यान देकर, सँवारकर निर्माण किया तब उसके ऐसे गुणसंपन्न होनेमें आश्चर्यही क्या?

(ख) 'केशव' इति। भगवान्‌के 'केशव' नामकी व्युत्पत्ति इस प्रकार कही जाती है कि (१) ब्रह्मा और शिवजीकी उत्पत्ति इनके अंगसे हुई, अतः केशव नाम हुआ। (२) 'के जले शववच्छयनं करोतीति केशवाः।' प्रलय महार्णवमें विना किसी घबराहट वा कष्टके शववत् निश्चेष्ट होकर शयन करनेसे 'केशव' कहे जाते हैं। (३) 'कश्च इशश्च केशौ तौ वहतीति केशवः।' ब्रह्मा और शिवको वहन (धारण, रक्षण) करनेसे 'केशव' कहे जाते हैं। (४) हरिवंशपुराण २७९। ४७ में शिवजीका जो वाक्य है कि "क" इति ब्रह्मणो नाम ईशोऽहं सर्वदेहिनाम्। आवांतवांगसम्भूतौतस्मात् नामवात्।" "क" (ब्रह्मा) और सर्वप्राणियोंका ईश्वर जो मैं (शिव) हूँ, हम दोनों आपके अंगसे उत्पन्न हुए इस कारण आप केशव नामवाले हैं। भगवद्‌गुणदर्पणभाष्यमेंभी केशवनामकी निरुक्ति ऐसीही दी गयी है। 'ब्रह्मेशयोः स्वांगजत्वात् केशवः परिकीर्त्तितः। (५) 'अंशवो ये प्रकाशंते मम ते केश संज्ञिताः। सर्वज्ञः केशवं तस्मात् प्राहुर्मां द्विजसत्तमाः॥ आदिकेशवनामक एक तीर्थ काशीमें पूर्वदिशामें वरणातटपर है।

(ग) 'करतूति कला सी' इति। अपना सारा कलाकौशल इसके बनानेमें खर्च कर दिया है। करतूति और कला पर्यायी शब्द हैं।

इससे एकका अर्थ 'कला कौशल' और दूसरेका स्वयं 'कला' यहाँ गृहीत होगा। भावार्थ यह हुआ कि कारीगरीका जितना चातुर्य वा कौशल है उसके तद्रूप, उसीकी मूर्त्तिसी यह काशी बनायी गयी है।

(घ) 'राम जपु जौं भयो चहै सुपासी' इति। इससे जनाया कि काशीपुरीमेंभी सबका सुपास-श्रीरामनामसेही होता है, अन्यथा नहीं।

पं० देवदत्तशास्त्रीजी लिखते हैं कि गोस्वामीजीने काशीस्तुति करके अपने हृदयके अनेक गूढ़तम भावोंको व्यक्त किया है। इस वर्णनसे वैष्णवोंकी सांप्रदायिक संकीर्णताका पर्दा फ़ाश होता है। जो कट्टरपंथी वैष्णव शिवकी उपासनाका खण्डन करते हैं, उन्हें गोस्वामीजीके इस वक्तव्यसे शिक्षा लेनी चाहिये। तुलसीदासजी 'नमःशिवाय' को उतनाही महत्व देते हैं जितना 'रां रामायनमः' को। पंचाक्षरीको प्राण कहा है और रकार मकारको ब्रह्म और जीव। तुलसीदासजी काशीस्तुतिद्वारा अपने संप्रदाय, (वैष्णव) शिक्षास्थल (पंचगंगाघाट) और निवासस्थल (असी) का परिचय अनोखे ढंगसे स्पष्टरूपसे देते हैं। अन्तमें 'सुपासी' कहकर तो ग़ज़बही कर देते हैं। आत्मबोधन करते हुए कहते हैं कि 'हे तुलसी ! यदि तू शैशवकालकी भाँति माता पार्वती और पिता शिवके-द्वारा प्राप्त हर प्रकारका सुख सुपास चाहता है तो अब हरपुरीमेंही रह।'

२३ राग-बसंत [कानरा-प्र०]

सब सोच बिमोचन चित्रकूट। कलिहरन करनकल्यान बूट ॥१॥
सुचि अवनि सुहावनि आलबाल। कानन बिचित्र बारी बिसाल ॥२॥
मंदाकिनि मालिनि सदा सींच। बर बारि बिषम नर नारि नीच ॥३॥
साखा सुशृंग भूरुह सुपात। निरझर मधुवर[1] मृदु मलय वात ॥४॥

शब्दार्थ—सोच=चिंता, दुःख। यथा 'तुलसीके दुहूँ हाथ मोदक है ऐसे ठाँय जाके जिये मुये सोच करि हैं न लरिको।' (बाहुक) बिमोचन=बिलकुल छुड़ानेवाला। कलि=पाप, कलह, अकल्याण। यथा

---

१ मधुकर—भा०, प्र०, ज०, ह०, रा०। मधुवर—बे०, मु०, भ०, बै० (टीकामें), ७४, दी०, वि०।

'कुपथ कुतर्क कुचालि कलि कपट दंभ पाखंड। दहन रामगुनग्राम जिमि ईंधन अनल प्रचंड।' कलिकी बाधा, कलिके पाप। बूट (सं० विटप)=वृक्ष, पेड़, पौंधा। यथा 'प्राकृतिहूं वट बूट बसत पुरारी हैं।', 'सीतारामलखन निवास मुनिनको सिद्धि साधुसाधक विवेक बूट सो।' अवनि=पृथ्वी, भूमि। आलबाल=थाल्हा। बिचित्र=सुन्दर, विलक्षण। बारी=रुँधान। बाग, वृक्ष, खेत आदिकी प्रायः पशुओंसे रक्षाकेलिये चारों ओर बेरी, बबूल आदि कटीले वृक्षोंकी डालियों और कटीली झाड़ियोंको रूँधकर जो घेरा बना दिया जाता है, बाड़। यथा 'अस कवन सठ हठि कटि सुरतरु बारि करिहि बबूरही।' (कि०), 'रूँधहु करि उपाय बर बारी।' (अ०) घेरान। टि० २ देखिये। मंदाकिनी = यह नदी श्रीअनुसूयाजीके तपोबलसे अनुसूया पर्वतसेही निकलकर चित्रकूटमें बहती है। बारि=रुँधान। यथा 'जनु इंद्रधनुष अनेक की बर बारि तुंग तमाल ही।' (लं०) जल। 'विषम', 'बर बारि'=टि० ५ देखिये। सुशृंग=सुन्दर शिखर। शृंग=पर्वतका ऊपरी भाग, चोटी या कँगूरा। भूरुह=वृक्ष। सुपात=सुन्दर पत्ते। निर्झर =किसी ऊँचे स्थानसे निकला हुआ पानीका झरना या जलप्रवाह, सोता। मधुवर=महुवर, मधुचक्र, शहदका छत्ता। बुँदेलखंडके अशिक्षित जन अबभी शहदके छत्तेको 'महुवर' कहते हैं जो मधुवरका अपभ्रंश है। 'ध' और 'ह' बदल जातेही हैं। मृदु=मंद, धीमी धीमी। मलय=यह पर्वतका नाम है जिसपरके तथा जहाँतकके वृक्षोंतक इसके (मलय) चंदन वृक्षकी सुगंध पवनद्वारा पहुँचती है वहाँतकके समस्त (निंब, कंकोल, कुटजा आदि कड़वेभी) वृक्ष चंदनवत् सुगंधित हो जाते हैं। इसीसे यह शब्द समीर, पवन, वायु आदि शब्दोंके आदिमें समस्त होकर सुगंधित और दक्षिणी वायुका अर्थ देता है।

पद्यार्थ—चित्रकूट सब चिन्ताओंको एकदम छुड़ानेवाला, कलिके पापोंका हरने और कल्याणका करनेवाला वृक्ष है।१। (वहाँकी १२ कोसकी लंबी चौड़ी) पवित्र सुंदर भूमि इस वृक्षका थाल्हा है। बिचित्र बन इसकी लंबी चौड़ी रंग बिरंगकी विलक्षण बारी है।२।

मंदाकिनी मालिन है जो इसे अपने श्रेष्ठ जलसे सदा सींचती रहती है। तीक्ष्ण कठोर स्वभाववाले (कोल किरातादि) नीच स्त्री पुरुष इसकी श्रेष्ठ बारि हैं। ३। सुंदर शिखर शाखाएं हैं, वृक्ष सुंदर (हरे सघन) पत्ते हैं, झरने शहदके छत्ते हैं और श्रेष्ठ (शीतल), मंद, सुगंधित पवन है। ४।

नोट—१ श्रीसीतारामजीका विहारस्थल जानकर श्रीचित्रकूटके गुण गाते हैं। श्रीमद्गोस्वामीजीको श्रीरामलक्ष्मणजीके साक्षात् दर्शनभी यहीं श्रीरामघाटपर हुए थे। 'चित्रकूटके घाटपर भइ संतन की भीर। तुलसीदास चंदन घिसत तिलक देत रघुबीर॥' यह दोहा तो बच्चेसे बूढ़ेतककी जिव्हापर रहा करता है। फिर उनकी जन्मभूमिभी तो इसीके पास है!

२ चित्रकूटकी महिमाका वर्णन दो पदोंसे किया गया है। इस प्रथम पदमें चित्रकूटका वर्णन वृक्षके साङ्गरूपकद्वारा किया गया है। वृक्षकेलिये थाल्हा चाहिये जिसमें वह लगाया जाता है। उसकी रक्षाके लिये थाल्हाके चारों ओर बारी (घेरान) चाहिये। बारी कटीली होनी चाहिये जिसमें पशु वृक्षके पास न जा सकें। सींचनेवाला चाहिये जिसमें पौंधा सूख न जाय। इस रूपकमें वृक्षके ये सब अंग कहे गये हैं।

३ श्रीलालाभगवान्दीनजी लिखते हैं कि 'चित्रकूट तीन वस्तुओंका बोधक है। १ कामदगिरि, २ पनुषा नालेके पास वाली बस्ती, ३ बारह कोसका लंबा चौड़ा जंगल जिसके मध्यमें कामदगिरि है। यह पद समष्टिरूपसे तीनोंको लेकर और तीनोंको एक रूप मानकर कहा गया है। साहित्यिक विचारसे इस पदमें बहुतही उत्तम साङ्गरूपक अलंकार है।'

टिप्पणी—१ (क) 'सब सोच' अर्थात् लौकिक और पार-लौकिक दोनों प्रकारकी चिन्ताएँ। यहाँ सुखभोगकी, कष्ट निवारणकी और अन्तमें भगवत् प्राप्ति इत्यादिकी चिन्ताएँ 'सब सोच' हैं। (ख) 'करन कल्यान बूट' से कल्पवृक्षकाभी भाव ले सकते हैं। मानस अयोध्याकांडमें कुछ महिमा ग्रंथकारने वर्णन की है। उसको

'सब सोच विमोचन, कलिहरन करनकल्यान' का भावार्थ कह सकते हैं। यथा 'लषन दीख पय उतर करारा। चहुँ दिसि फिरेउ धनुष जिमि नारा ॥ नदी पनच सर सम दम दाना। सकल कलुष कलि साउज नाना ॥ चित्रकूट जनु अचल अहेरी। चुकइ न घात मार मुठभेरी ॥' 'भरत दीख बन सैल समाजू। मुदित छुधित जनु पाइ सुनाजू ॥ ईति भीति जनु प्रजा दुखारी। त्रिबिध ताप पीड़ित ग्रह भारी ॥ जाइ सुराज सुदेस सुखारी। होहिं भरतगति तेहि अनुहारी ॥'

२ 'कानन बारि बिसाल', 'बर बारि बिषम नरनारि' इति। प्रथम चित्रकूटके चारों ओरके बनको 'बारी' कहा और फिर नीच नर नारियोंको 'बर बारि विषम' कहा। 'बारी' का अर्थभी घेरान होता है। यथा 'रामचंद्र करकंज कामतरु बामदेव हितकारी। सिय सनेह बर बेलि बलित बर प्रेम बंधु बर बारी ॥' (गी० उ०)। 'बारि' का अर्थभी 'घेरान' है। श० सा० में 'बारी' के औरभी अर्थ ये दिये हैं, १ वह स्थान जहाँ किसी वस्तुके विस्तारका अन्त हुआ हो। २ पेड़ोंका समूह या वह स्थान जहाँसे पेड़ लगाये गये हों। बगीचा। दो बार एकही शब्द आ जानेसे अर्थमें आपत्ति पड़ते देख टीकाकारोंने भिन्न भिन्न अर्थ किये हैं। बाबू शिवप्रकाशजीने 'बारी' का अर्थ 'बगीचा' किया है और यही अर्थ भट्टजी, वीरकवि, दीनजी और शुक्लजीने स्वीकार किया है। 'बारी' का अर्थ बाबू शिवप्रकाश और दीनजीने 'रुँधान, घेरा, कटीली झाड़ियाँ' इत्यादि किया है। वीरकविजी और वियोगीजीने 'जल' अर्थ किया है। वैजनाथजी और वियोगीजीने 'बारी' का अर्थ 'घेरा, रुँधान' किया है। 'बारी' का अर्थ 'बगीचा' संभवतः इस विचारसे किया गया है कि दो जगह 'रुँधान' कैसे कह सकते हैं? यदि कानन घेरा है तब नीच नर नारिको रुँधान कैसे कहेंगे? 'बगीचा' अर्थसे भाव यह होगा कि 'अपूर्व वृक्ष वाटिकामें लगाया जाता है। यह वृक्ष विचित्र काननरूपी बाटिकामें लगाया गया है।' (छु०)

'रुँधान, घेरा' अर्थ लेनेका अभिप्राय यह कहा जाता है कि प्रथम बार 'बाड़, घेरान' का लंबा, ऊँचा और सघन होना कहा है। जिस समयका यह वर्णन है उस समय चित्रकूटके चारों ओर घना जंगल रहा है। अबभी तीन तरफ़ तो खासा बन है। दूसरी बार 'बर बारि बिषम' कहकर जनाया है कि वह पूर्वकथित बारी विषम है, कटीली है। विषम नीच नर नारि, कोल भील किरात आदिही कटीली झाड़ियोंकी डालें वा झाड़ियाँ हैं जिनसे वह घेरान दृढ़ और दुर्गम है। 'बर बारि' का अर्थ बै०, भ०, वीरकवि, और वि० ने 'श्रेष्ठ जल' किया है। उनके भावार्थ क्रमसे ये हैं कि बै०—"कुटिल स्वभाववाले स्त्रीपुरुष तथा म्लेच्छ चांडालादि पतित जीव श्रेष्ठ जल है जिससे वृक्ष सींचा जाता है। सींचनेसे वृक्ष हराभरा रहता और फूलता फलता है। कुटिल नीच नर नारि स्नान करके पावन होते हैं। यह माहात्म्यही वृक्षका हरित रहना है। पावन होनेपर जो जपतपादि साधन बनता है वही फूलना है और अर्थ धर्म काम मोक्षकी प्राप्ति होना फलना है।" वि०—"विचित्र बन, उसे रूँधनेकेलिये बड़ी भारी बारी है। अपने उत्तम जलसे इस भाँति सींचती रहती है जैसे दुष्ट स्वभाववाले स्त्री पुरुष और नीच चांडाल आदि। तात्पर्य यह कि मंदाकिनीमें बड़े बड़े पापी और नीच जन स्नान करते हैं, पर उनके दुष्कर्मोंका प्रभाव वृक्षपर कुछ नहीं पड़ता, वह ज्योंका त्यों हरा भरा रहता है।" वीरकवि—"बन बड़ा बगीचा है जिसको मंदाकिनीरूपी मालिन श्रेष्ठ जलसे कठिन नीच स्त्री पुरुष रूपी पौधोंको सींचती है।" सू० दी० शुक्ल—"नीच स्त्री पुरुषोंकी विषमताही जलका उत्तम नित्य सींचना है।"

इन उपरोक्त अर्थोंसे दासकी समझमें रूपकको कोई लाभ नहीं होता और 'बिषम नर नारि नीच' शब्द व्यर्थसे हो जाते हैं, इनके न रहनेपरभी कोई हानि नहीं होती। 'बिषम नर नारि नीच' को 'श्रेष्ठ जल' अथवा 'पौधा' (जो शब्द मूलमें नहीं है) कहना दासकी समझमें तो कुछ ठीक नहीं जँचता। विज्ञ पाठक स्वयं विचार कर लें।

३ 'मंदाकिनी मालिनि सदा सींच। बर बारि' इति। (क) वृक्षोंको सींचने, पौधोंको ठीक यथायोग्य स्थानोंमें लगाने और उनकी रक्षा करनेकी विद्या जानने और उसीका व्यवसाय करनेवाला पुरुष 'माली' कहलाता है। यह काम प्रायः पुरुषही करते हैं। परन्तु यहाँ मालिनका सींचना कहा है, यहभी साभिप्राय है। इससे कविकी सावधानता, उनका सँभार और उनके रहस्यज्ञ होनेकी सूचना मिलती है। श्रीचित्रकूट श्रीसीतारामजीका विहार स्थल है। यथा 'रामकथा मदाकिनी चित्रकूट चित चारु। तुलसी सुभग सनेह बन सियरघुबीर-बिहारु॥' (बा०) अतएव यहाँ यह काम मालिन करती है। मालिन स्त्रीकेलिये मंदाकिनी स्त्रीलिंग शब्दकी उपमा दी गयी है।

(ख) 'बर बारि बिषम नर नारि नीच' इति। 'बर बारि' दीपदेहरी है। 'मालिनि सदा सींच बर बारि' और 'बर बारि बिषम नर नारि'। बारि शब्द यहाँ 'जल' और 'कटीली झाड़ियोंका घेरान' दोनों अर्थोंमें प्रयुक्त हुआ है। बर बारि = श्रेष्ठ जल। 'बर बारि' = दृढ़ कटीली झाड़ियोंका रुँधान जिसे कोई तोड़कर भीतर न जा सके अर्थात् अगम्य रुँधान।

मंदाकिनी इस वृक्षको श्रेष्ठ जलसे सदा सींचती है। इस कथनसे जनाया कि यह नदी चित्रकूटभरमें है तभी तो चित्रकूटरूपी वृक्षको सींच सकती है! काननको 'बारी' और 'बिषम नर नारि नीच' को 'बर बारि' कहनेसे पाया गया कि चित्रकूटकी हद चारों दिशाओंके बनतक है और ये विषम नीच नर नारि उस बनमें रहते हैं।

'बिषम' भी दीपहरी है। 'बारि' और 'नर नारि' दोनोंमें लगता है। 'बारी' के संबंधसे 'बिषम' का अर्थ होगा 'भीषण; तीक्ष्ण काँटेदार'। 'नरनारि नीच' के संबंधसे उसका अर्थ होगा 'कठिन, कुटिल, तीक्ष्ण स्वभाववाले'। यथा 'बन हित कोल किरात किसोरी। रची बिरंचि बिषय सुख भोरी॥ पाहन कृमि जिमि कठिन सुभाऊ। तिन्हहिं कलेसु न कानन काऊ॥'

(ग) 'नर नारि नीच' इति। 'नीच' से जातिके नीच एवं पामर और पापात्मा जनाया। यथा 'हम जड़ जीव जीवनघाती। कुटिल कुचाली कुमति कुजाती॥ पाप करत निसि बासर जाहीं। नहिं पट कटि नहिं पेट अघाहीं॥ सपनेहु धरमबुद्धि कस काऊ॥' (अ०) 'नीच नर नारि' को 'बर' (बारि) कहनेमें यहभी भाव हो सकता है कि यद्यपि ये नीच हैं तथापि चित्रकूटके निवास संबंधसे श्रेष्ठ हो गये हैं। (डु०)

४ 'साखा सुश्रृंग भूरुह सुपात' इति। (क) चित्रकूटरूपी वृक्षका थाल्हा, घेरान, सींचनेवाला और रुँधान किन कटीली झाड़ियोंका है यह कह चुके। वृक्षमें शाखाएँ, शाखाओंमें पत्ते और मधुमक्खीके छत्ते होते हैं। चित्रकूटरूपीवृक्षमें ये क्या क्या हैं यह अब कहते हैं। पत्ते होनेपर इनकेद्वारा पवनका संचार होता है। अतः शाखा, पत्ते, छत्ते और पवन क्रमसे कहे गये। (ख) 'सुपात' इति। पत्तोंकी सुंदरता सघन होनेमें है। सघन होनेसे छाया और वायु शीतल होगी। 'सुपात' कहकर जनाया कि ये पत्ते कभी झड़ते नहीं, सदा हरेभरे रहते हैं। प्राकृत वृक्षके पत्ते काल पाकर झड़ जाते हैं। इससे वे 'सुपात' नहीं हैं। (ग) शाखा ऊँचेपर वैसेही श्रृंग पर्वतोंपर, पत्ते बहुत और सघन वैसेही विविध प्रकारके वृक्ष बहुत और सघन यह समानता है।

५ 'निर्झर मधुवर मृदु मलय वात' इति। 'मधुबर' का अर्थ हमने 'महुवर', 'शहदका छत्ता' किया है जो बुँदेलखंडकी बोली है और 'बर' को दीपदेहरीन्यायसे 'बात' के साथमें अर्थ करते समय ले लिया है। 'मृदु मलय बात' के साहचार्यसे 'बर' 'शीतल' अर्थ देता है, यही वायुकी श्रेष्ठता है। गर्म वायु 'बर' नहीं कहाती। 'बर' को साथ ले लेनेसे 'बर मृदु मलय बात' शीतल मंद सुगंध त्रिविध समीरका बोधक होता है। इस चरणका अन्वय हमने इस प्रकार किया है, 'निर्झर मधुबर (है), बर मृदु मलय वात (है)।' त्रिविध समीरके अर्थके लिये 'बर' को दीपदेहरी माना और उपमेय और उपमान एकही है यह स्पष्ट करनेको 'बात' शब्दका अन्वय दो बार किया। आगेभी 'फल चारि चारु' में

'फल' का अन्वय दो बार होगा। क्योंकि यह दोनोंके साथ है। वायु जलके संबंधसे शीतल, वृक्षोंके कारण मंद और सुगंधित पुष्पोंके संबंधसे सुगंधित है। वै०, भ०, वीर, वि० आदिने 'मधु' और 'बर' को दो शब्द मानकर 'मधु' का अर्थ 'मकरंद', 'शहद' वा 'जल' किया है। इस तरह कतिपय महानुभावोंने भिन्न भिन्न अर्थ किये हैं। वै०, भ०, वि० 'पर्वतसे जो झरने बहते हैं वही वृक्षका उत्तम मकरंद रस है'। वीर—'झरनोंका उत्तम जल मकरंद है।' 'मृदु मलय बात' का अर्थभी टीकाकारोंने भिन्न भिन्न किया है। डु०— 'वृक्ष कोमल तथा सुगंधित होता है। यहां सुगंध वायु जो बहती है वही कोमलता और सुगंधता है। यहां वृक्षके आश्रयसे जो मंद, सुगंध तथा शीतल वायु बहती है वह यहां सर्वकाल बहती है' वै०—वृक्षसे मधुर सुगंध आती है। यहां शीतल मंद सुगंध बयारि जो चल रही है वही मृदु मलय अर्थात् मधुर सुगंध है।' भ०—'वृक्षमें कोमलता होती है सो यहां जो चंदनकी सुगंधसे युक्त पवन चलती है वही इसकी कोमलता है।' वीर—'सुगंधित पवन कोमलता है।' वि०—'मलयमिश्रित त्रिविध समीर इसकी कोमलता और सुगंधकी सूचना देती है।' दी०—'यह वृक्ष स्वाभाविकही मंद सुगंधित वायु संचालित किया करता है।' इन उद्धरणोंसे स्पष्ट है कि उन महानुभावोंने एक तो 'मृदु'-का अर्थ 'कोमलता' किया है, दूसरे वृक्षकी कोमलताको 'मलय बात' का रूपक माना है। निर्झरसे जल प्राप्त होता है, छत्तेसे मधु मिलता है, वायु शीतल, मंद और सुगंधित है यही समानता है।

अनुसंधान [२३]

सुक पिक मधुकर मुनिबर बिहारू।
साधन प्रसून फल चारि चारु॥ ५॥
भव घोर घाम हर सुखद छांह।
थप्यो थिर प्रभाउ जानकी नांह॥ ६॥
साधक सुपथिक बड़े[1] भाग पाइ।
पावत अनेक अभिमत अघाइ॥ ७॥

---

१ बड़-ह०, ५१, ७४। बड़े-रा०, भा०, बे०, ज०, १५।

रस एक रहित गुन करम काल।
सिय राम लखन पालक कृपाल ॥ ८ ॥
तुलसी जो रामपद चहिअ[२] प्रेम।
सेइय गिरि करि निरुपाधि नेम ॥ ९ ॥

शब्दार्थ—विहार=मन बहलावकेलिये धीरे धीरे टहलना, घूमना, फिरना। साधन=जप, तप, शम, दम, नियम, संयम, योग, यज्ञ आदि कर्म जिनसे कोई काम सिद्ध किया जाय, उपाय। प्रसून=फूल। छाँह=छाया। थप्यो=पद ४ देखिये। थिर=दृढ़, अचल। सुपथिक=सुंदर (बड़भागी) यात्री। पथिक=राह चलनेवाला, मुसाफिर। साधक=कुछ प्राप्तिकी इच्छासे अनुष्ठानादि साधन करनेवाले। अभिमत=मनोवांछित, मनचाही वस्तु, मनोरथ। यथा 'अभिमतदानि देवतरुवरसे।' अघाइ=पेटभर। रस=प्रकार, रूप। यथा 'एकही रस दुनी न हरषसोक साँसति सहति।' रहित=हीन। निरुपाधि=निर्विघ्न।

पद्यार्थ—मुनिवरोंके विहार†शुक, पिक (कोयल) और मधुकर (भौंरें) हैं, साधन फूल हैं, अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष ये चारों सुन्दर फल (जो चित्रकूट देता है) हैं।५। भवरूपी भयंकर घामकी हरनेवाली §सुख देनेवाली छाया है। श्रीजानकीपति रघुनाथजीने यह प्रभाव अचल (त्रिकालमेंमी न टल सके) स्थापित कर दिया है।६। साधक सुंदर पथिक हैं जो बड़े भाग्यसे (इस वृक्षकी छाया)

२ चहहि–प्र०। चहसि–वै०। चहै–ज०।

†अर्थान्तर—विहार–१ विहार करनेवाले, बिचरनेवाले। (दी०, गीता प्रेस) २ जो यहाँ बिहार करते हैं (वि०)। ३ '(सब श्रेष्ठ मुनि, सुवा, पपीहा, भ्रमररूप) विहार करते हैं।' (डु०, टी०) ऐसाही अर्थ हो सकता है कि 'मुनिवर शुकादि हैं। चित्रकूटरूपी वृक्षपर मुनिवर रूपी शुक पिकादिका विहार है।' परन्तु इससे रूपक उतना सुंदर नहीं रह जाता। 'विहारका अर्थ' 'विहार करनेवाला' कैसे हो सकता है?

§अर्थान्तर—'संसाररूपी घोर घामको दूरकर इसकी छाँह सुख देनेवाली है।' (वीर, दी०, वि०)

पाकर अपने अनेक प्रकारके मनोरथ भरपूर पाते हैं ।७। यह वृक्ष गुण कर्म कालरहित सदा एकरस बना रहता है (सदा हराभरा और फल फूलसे लहा रहता है) यह विशेषता है । श्रीसीता, राम लक्ष्मणजी इसके कृपाल पालक हैं ।८। श्रीतुलसीदासजी कहते हैं कि यदि तुझे श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें अनुरागकी चाह हो तो निर्विघ्न (दृढ़) नियम करके चित्रकूट कामदगिरिका सेवन कर ।९।

टिप्पणी—१ 'सुक पिक मधुकर मुनिवर बिहार ।' इति । (क) यहाँ वृक्षकी शाखा और शाखाके पत्ते कहे । छत्ते और पवनका संबंध डाल पातसे है इसीसे उनको एकसाथ एक चरणमें कहा । पक्षी सघन पत्तोंकी रक्षामें छिपकर बैठते और बसेरा लेते हैं । पत्तोंके बाद फूल और फल होते हैं। ये सब शाखाहीसे संबंध रखते हैं। इसीसे इनको प्रथम कहकर तब वृक्षके नीचे चलते हैं । वृक्षके नीचे उतरतेही छाया मिलती है; अतः उसे कहा । (ख) फूल फलका संबंध शुक पिक मधुकरसे है । अतः इन सबोंको एकसाथ एक पंक्तिमें कहा । जैसे फूल फलके भोक्ता मधुकर शुक, पिक, वैसेही चारों फलोंके भोक्ता मुनिवर । जैसे शुक, पिक उड़ते, सुन्दर स्वरसे बोलते, चहचहाते, मधुकर गुंजार करते, फूलोंपर मँड़राते और उनका रस लेते और फल खाते हैं, वैसेही मुनिवर जप, तप, यम, नियम, उपासना आदि करते और सिद्धियाँ एवं चारो फल प्राप्त करते हैं। शुक, पिक वे हैं जिनको साधनका फल प्राप्त हो रहा है, मधुकर पुष्परसरूपी सिद्धि प्राप्त कर रहे हैं । उनको फलकी प्राप्ति नहीं हुई है । साधनसे चारों फल मिलते हैं और फूलसेही फल मिलता है । यह दोनोंमें समता है । (ग) 'फल चारि चारु' इति । 'चारु' विशेषण देकर जनाया कि साधारण वृक्षके फल सुंदर नहीं होते और चित्रकूट वृक्षके फल 'चारु' हैं, चमचमा रहे हैं, जगमगा रहे हैं । कल्पवृक्षभी जो फल देता है वह सब सुन्दर नहीं होते । वह तो अभिमत चाहे अहित हो तोभी वह अंधे सरीखा बेविचारे दे देता है । वह सांसारिक फल देता है और चित्रकूट दिव्य फल मोक्षभी देता है । 'चारु' से जनाया कि इसके चारों फल 'चारु' अर्थात् दिव्य हैं । (घ) ' सुखद छांह ' इति । सघन होनेसेही

छाया गर्मीमें शीतल और शरद्में गर्म होनेसे सुखद हो सकती है। इसीसे 'सुखद' से 'सघन' का भावभी लिया गया।

२ 'भव घोर घाम हर सुखद छांह।' इति। (क) वृक्षकी छाया कड़ी धूपकी तपनको हरकर सुख देती है और भव (बारंबार जन्म मरण) रूपी घोर घामको चित्रकूटरूपी वृक्ष हर लेता है जिससे आनंदसिंधुकी प्राप्ति होती है, यह दोनोंमें समानता है। (ख) दोनोंकी 'छांह' सुखद है। परन्तु 'सुखद छांह' पर विराम देकर 'थप्यो' को अलग करके दूसरे चरणमें रखकर जनाया कि प्राकृत वृक्षकी छांहका सुख अचल नहीं है और चित्रकूटरूपीवृक्षकी छांयाका सुख अचल है, विनाशरहित है और सर्वकालमें प्राप्त होनेवाला है। (ग) 'थप्यो थिर जानकीनांहु' इति। 'जानकीनांहु' का भाव कि ये वह हैं कि जो विधि हरि हरको उत्पत्ति, पालन और संहारकी शक्ति देते हैं। तब यह प्रभाव चित्रकूटको प्रदान करनेमें आश्चर्य क्या? यथा '**हरिहरहि हरता बिधिहि बिधिता श्रियहि श्रियता जेहिं दई। सो जानकीपति मधुरमूरति मोदमय मंगलमई ॥', 'कामद भो गिरि रामप्रसादा। अवलोकत अपहरत बिषादा ॥'** (अ०)। परन्तु छायाके नीचे आनेपरही शरदातप हरण होता है, अन्यथा नहीं। इसी तरह यहाँ निवास करके साधन करनेपर यह फल मिलेगा, बाहर नहीं।

३ 'साधक सुपथिक बड़े भाग पाइ' इति। भाव कि 'भूरिभागभाजन' होनेसे बहुत सुकृत होनेपर इसकी प्राप्ति होती है, थोड़े सुकृत या साधारण भाग्यवालोंको नहीं। मनोरथ अघाकर पाते हैं अर्थात् मनोरथसे अधिक पाते हैं*।

---

*'प्रभाउ थप्यो' इति। यथा (बृहद्रामायणे) "पुराकृत युगस्यादौ ब्रह्मा लोकपितामहः। तपस्तेपे पुरा तत्र यक्षार्थं दारुणं प्रभुः ॥ ततः प्रादुर्भूदेव वरदानाय राघवः।" ब्रह्मोवाच—"स्थानानि पुण्यतीर्थानि पृथिव्यां संति ते प्रभो। शतमष्टोत्तरं स्थानं तच्छ्रेष्ठं च वदस्व मे ॥" भगवानुवाच—"गिरिः श्रीचित्रकूटाख्यो यत्र मंदाकिनी नदी। तयोर्मध्ये सुविस्तीर्णे त्रिशद्धनुषमायता ॥ एतत्क्षेत्रं प्रियतमं न कस्मैचित्प्रकाशितम्। तत्र

४ 'रस एक रहित गुन करम काल' इति। (क) आगे विनय पद १३० में कहा है कि 'काल करम गुन सुभाउ सबके सीस तपत।' कोई इनके आक्रमणसे बचता नहीं, एकरस कोईभी रहने नहीं पाता। तब यह एकरस कैसे रहता है? इसका उत्तर यह है, 'जेहि राखा रघुबीर सो उबरा तेहि काल महँ।' जिसके रक्षक रघुबीर हों वही इनसे बच सकता है। रामराज्यमें इनका बस नहीं चलता। यथा 'बिबिध कर्म गुन काल सुभाऊ। ए चकोर सुख लहहिं न काऊ।' (उ० ३०) श्रीरघुनाथजी तो 'काल करम सुभाउ गुण भच्छक' हैं, और चित्रकूटरूपी वृक्षके रक्षक तो श्रीसीता राम लक्ष्मण, एक नहीं तीन तीन मूर्ति हैं। तब काल कर्म गुणरहित और एकरस क्यों न रहे! रक्षक होनेका फल यही है कि रक्ष्यपर काल कर्मादिका ज़ोर न चल सके। त्रेतायुगका रामराज्य इसका प्रमाण है। यथा 'रामराज नभगेस सुनु सचराचर जग माहिं। काल कर्म सुभाउ गुन कृत दुख काहुहि नाहिं॥' (ख) वसन्तरागमें यह पद कहकर साहित्य और संगीतका समन्वय यहाँ कैसा अच्छा किया है! (ग) चित्रकूट कूटको 'रस एक रहित गुन करम काल' कहकर जनाया कि यहाँ वसन्त ऋतु लुब्ध होकर सदा बनी रहती है। इसी कारण कविने इसे इसी रागमें कहा है। (पं० रा० कु०)। (घ) यहां 'गुन काल करम रहित' कहा। इसीसे अगले पदमें अनायास महाफल कहा है। क्योंकि अन्यत्र काल, कर्म और गुण जीवोंमें व्याप्त हो जाते हैं। सत्वगुणसे स्वभाव शान्त हो सत्कर्ममें लग जाता है, रजोगुणकी प्रवृत्तिसे ऐश्वर्यभोगी कर्म करता है और तामसी स्वभाव होनेसे असत्कर्ममें प्रवृत्त हो जाता है। इसी तरह काल (सत्ययुग आदि एवं भले बुरे काल) के प्रभावसे स्वभाव बदल जाता है। इसीसे पूरा फल नहीं होने पाता।

त्वं धनुषक्षेत्रे यक्षं कुरु पितामह। इति दत्त्वा वरं तस्मै तत्रैवांतर्दधे हरिः॥ 'प्रयागं राघवं नाम सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम्। यत्किंचित्क्रियते कर्म तदक्षयमिहोच्यते। स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायो देवतार्चनम्। संध्योपास्यं तर्पणंच श्राद्धं पितृसमर्चनम्। शताश्वमेधिके तीर्थे सकृत्स्नात्वा नरोत्तमः॥' (वै०)

(ङ) 'पालक कृपाल' इति। पद २२ टिप्पणी ७ (ख) में देखिये।

५ 'जो रामपद चहिअ प्रेम' इति। यहाँ गिरिसेवनका फल 'रामपद प्रेम' बताया। 'करि निरुपाधि नेम' यह सेवनकी विधि बतायी।

६ 'श्रीसीताराम लक्ष्मणजीका नित्य विहारस्थल जानकर अब आगेके पदमें उस चित्रवनके अंदर जानेकी लालसा प्रगट करते हुए उसमें दाखिल होते हैं।' (दी०)

२४ राग कान्हरा (बसंत-प्र०,)

अब चित चेति[1] चित्रकूटहि चलु।
कोपित कलि लोपित मंगल मग बिलसत बढ़त मोह माया मलु ॥१॥
भूमि बिलोकि[2] रामपद अंकित बन बिलोकि[3] रघुबर बिहार थलु।
सैल शृंग भवभंग हेतु लखि दलन कपट पाषंड दंभ दलु ॥२॥
जहं जनमे जगजनक जगतपति बिधि हरि हर परिहरि प्रपंच छलु।
सकृत प्रबेस करत जेहि आश्रम बिगत बिषाद भये पारथ नलु ॥३॥

शब्दार्थ—चित=मनकी उत्पत्ति केवल सात्विक अहंकारसे है। मनकोही अवस्थाभेदसे बुद्धि, चित्त और अहंकार नामसे विशेषित किया जाता है। अन्य दस इन्द्रियाँ सात्विक और राजस अहंकारसे उत्पन्न हैं। इसलिये वेदान्तानुसार अन्तःकरणकी चार वृत्तियों (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार) मेंसे एक 'चित्त' है। संकल्पविकल्पात्मक वृत्तिको मन, निश्चयात्मक वृत्तिको बुद्धि और इन्हीं दोनोंके अन्तर्गत अनुसंधानात्मक (चेष्टा, विचार, प्रयत्न या खोज करनेवाली) वृत्तिको चित्त और अभिमानात्मकको अहंकार कहते हैं। पतंजलिजी इसे दृश्य जड़ पदार्थ मानकर आत्माको इसका प्रकाशक कहते हैं। योगसूत्रके अनुसार चित्तवृत्ति पाँच प्रकारकी है। १ प्रमाण, (प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द) २ विपर्यय, (एकमें दूसरेका भ्रम) ३ विकल्प, (स्वरूप-

---

१ चेति—रा०, भा०, प्र०, ह०, ७४, आ० (मु०)। चेतु—बे०, ज०। २ बिलोकि—रा०, भा०, ह०, ७४, प्र०, डु०, मु०। बिलोकु—बे०, ज०, भ०, वै०, दी०, वि०। ३ बिलोकि—रा०, भा०, ह०, ७४, प्र०, डु०। बिलोकु—बे०, ज०, आ० (डु०)।

ज्ञानके विना कल्पना) ४ निद्रा, (सब विषयोंके अभाव) और ५ स्मृति। (कालान्तरमें पूर्व अनुभवका आरोप) मानसी शक्ति जिससे धारणा, भावना, आदि की जाती हैं। साधारण बोलचालमें मन, चित्त अंतःकरणके पर्याय हैं। चेति = सावधान हो। कोपित = कुपित, कोप-युक्त, क्रोधमें आकर। लोपित = (लोपना, सकर्मक क्रिया) मिटाना। यथा 'कलि सकोप लोपी सुचालि निज कठिन कुचाल चलाई।' बिलसत = (बिलसना, अकर्मक क्रिया) चमकना, अंकुरित होना, क्रीड़ा करना। अंक = चिह्न, निशान। कपट, पाखंड, दंभ—टि० ४ देखिये। परिहरि = छोड़कर। प्रपंच = धोखा, ढोंग, छल कपट। यथा, 'रचि प्रपंच भूपहिं अपनाई। (अ०) प्रपंच छलु = छल कपट। धोखा देनेकेलिये जो व्यवहार किया जाय वह 'छल' है। धूर्तता, ठगपना। सकृत = एक बार। प्रबेस (प्रवेश) = भीतर जाना। आश्रम=तपोवन, पवित्रस्थान, साधुसंतोंके रहनेकी जगह। पार्थ=अर्जुन। पृथा (कुंती) के पुत्र युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन। नलु=नकुल। नकुल, सहदेव ये दोनों भाई माद्रीके पुत्र।

पद्यार्थ—अरे चित्त! अब (भी) सावधान हो जा और चित्रकूटको चल। (क्यों चलें ? इसका कारण बताते हैं कि) कलिने कुपित होकर मंगल कल्याणके मार्ग लुप्त कर दिये हैं। माया, मोह और पाप जगमगा रहे हैं और बढ़ते जाते हैं * । १। श्रीरामपद अंकित (जिसपर श्रीरामजीके चरण चिन्ह बने हैं उस) भूमिको (चलकर) देख, वनको देख जो रघुबरका विहारस्थल है और पर्वतशिखरोंको देख जो भवके नाशके कारण और कपट दंभ पाषंडके दल (सेना वा गिरोह) के

---

* अर्थान्तर—१ 'मायाजनित मल बढ़ता है (अर्थात्) शब्दादि विषयोंके सुखमें इन्द्रियोंद्वारा मनकी चाह अधिक होती जाती है, जिसके प्रभावसे कामना बढ़ती है। कामनाकी हानिसे क्रोध उपजा, उससे मोह हुआ। मोह अपनी सहायता पाकर आनंदित होता जाता है।' (वै०) २ योंभी अर्थ कर सकते हैं कि 'मोह बढ़ता है जिससे माया और पाप शोभित हो रहे हैं।'

नाशक हैं । २ । जहाँ जगत्के उत्पन्न करनेवाले, जगत्के स्वामी ब्रह्मा, विष्णु और महेशने छलप्रपंच छोड़कर जन्म लिया, जिस आश्रममें कुन्तीके पुत्र और नल केवल एक बार प्रवेश करने (मात्र) से दुःखरहित हो गये । ३ ।

टिप्पणी--१ (क) 'अब चित चेति चित्रकूटहि चलु' इति । 'अब' का भाव कि चित्रकूटका प्रभाव पहले मालूम न रहा हो । पर अब तो मालूम हो गया, जैसा कि पूर्व पदमें बताया है कि यहाँ कालकर्म गुणका ज़ोर नहीं चल पाता, यहाँ सब प्रकारसे सुपास है, अन्यत्र कलिसे बचत नहीं । पुनः भाव कि 'अब' भी कुछ गया नहीं है । अभी अवसर है । कलिने बहुत सताया, अब तो चेत जा ! चेतकर चित्रकूट चलनेका औरभी कारण आगे बताते हैं । (ख) 'चेति' शब्दसे जनाया कि अभीतक अचेत वा बेसुध पड़ा है । 'चित्रकूट' अर्थात् निश्चय करके चित्रकूटहीको चल, अन्यत्र नहीं । (ग) 'कोपित कलि' इति । कलियुगके कोपके कारण अब यहाँ रहने योग्य नहीं, रहना उचित नहीं । इसने आतेही धर्मके तीन चरण तो पहलेही तोड़ दिये । रहा चौथा सो उसेभी तोड़ रहा है । आगे औरभी कारण कहकर उत्साहित करते हैं ।

२ (क) 'लोपित मंगल मग बिलसत बढ़त मोह माया मलु' इति । 'बिलसत' का भाव कि वेदमार्गके लुप्त हो जानेसे 'मोह माया मल' ये सबके सब जुगुनूकी तरह चमक रहे हैं । अंधकारके कारण इनकी बड़ी शोभा दिखायी दे रही है । ठीक इसी भावसे मानस किष्किंधाकांडमें '**निसि तम घन खद्योत बिराजा**' कहा गया है । 'बिराजा' (विशेष शोभित हैं) और 'बिलसत' का एकही भाव है । तात्पर्य कि कलियुगमें इन्हींकी प्रतिष्ठा हो रही है, वेद और वेदज्ञ प्रतिष्ठा नहीं पाते । भागवतमेंभी कहा है, '**निशामुखेषु खद्योतास्तमसा भांति नो ग्रहा । यथा पापेन पाखंडा नहि वेदाः कलौ युगे ॥**' १०।२।८। अब येही प्रतिष्ठाके साधन हो गये हैं । यही शोभाकी सामग्री यहाँ रह गयी है । अतः अब यहाँसे चल देना उचित है । (ख) 'लोपित मंगल

मग ' इति। मानस उत्तरकांड 'सो कलिकाल कठिन उरगारी। पापपरायन सब नरनारी॥' ९६ (८) से 'सुनु ब्यालारि काल कलि मल अवगुन आगार।' १०२। तक इसीकी व्याख्या समझिये। (ग) इस चरणमें यहाँ न ठहरनेका कारण कहा और यहाँ रहना अयोग्य बताया। आगे वहाँ जानेका लाभ दिखाते हैं।

३ (क) 'भूमि बिलोकि रामपद अंकित' इति। ये सब बातें रामभक्तको ललचा देनेवाली हैं। अपने इष्टके चरणचिन्ह एवं उनके विहारके स्थान उनके स्मारक हैं। उनके कौन न दर्शन करना चाहेगा? दर्शनका दर्शन और मनुष्यदेह धारण करनेका लाभ 'भवबंधनसे मोक्षकी प्राप्ति'! कथनका भाव यह कि इनका दर्शन कर लेनेपर फिर तू संसारी न होगा, संसारमें न पड़ेगा। (ख) 'रघुबर' से कोई कोई श्रीराम-लक्ष्मण दोनोंका भाव लेते हैं। यथा '**माया मानुषरूपिणौ रघुबरौ**' (कि०) क्योंकि लक्ष्मणजीभी यहां साथ थे। (ग) रामपद अंकित भूमि और विहारवाले वन देखनेको कहनेमें भाव यह है कि जिनके पदरजस्पर्शमात्रसे अहल्या और दंडकवन पावन हो गये, भला उनके चरणोंसे अंकित भूमिके दर्शनसे पाप ताप क्यों न दूर होंगे? भगवत्-विहारस्थलके दर्शनसे भक्तके हृदयमें आनंद और विरहाग्नि उत्पन्न होगी जिससे सब विकार नष्ट हो जायँगे। जिस स्थानमें कोई परमभक्त रह जाता है उसके संबंधसे वह भूमि पूजनीय और पापनाशिनी हो जाती है। भक्तमाल भक्तिरसबोधिनी टीकासे यह स्पष्ट है। टीका कवित्त २२ '**चले मग जात उभय-खेरे मग दीठि परे करे परणाम हिये भक्ति लागी प्यारी है। पारबती पूछें किये कौन को जू कहो मोसों दीसत न जन कोउ तब सो उचारी है। बरष हजार दश बीते तहां भक्त भयो नयो और ह्वै है दूजी ठौर बीते धारी है। सुनि कै प्रभाव हरिदासनिसों भाव बढ्यो रढ्यो कैसे जात चढ्यो रंग अति भारी है।**' तब भला उस भूमिके प्रभावका कहनाही क्या कि जहां ब्रह्म राम स्वयं बहुत काल तक रहे!

(घ) 'सैल शृंग भवभंगहेतु लखि' इति। इससे विशेषकर

श्रीकामदगिरिके (तथा श्रीचित्रकूटके अन्य शैल) शिखरोंके दर्शनका माहात्म्य कहा। शिखरदर्शन करना कहकर जनाया कि ये दूरसे देख पड़ते हैं। दूरसे दर्शनका यह माहात्म्य है कि आवागमन छूट जाता है और कपट आदिका नाश हो जाता है। तब पाससे दर्शन करनेके माहात्म्यका क्या कहना ?

४ 'दलन कपट पाखंड दंभ दलु' इति। कपट, पाखंड और दंभमें बहुत थोड़ा थोड़ा अंतर है। अभिप्राय साधनार्थ हृदयकी बातको छिपानेकी वृत्ति 'कपट' है। इसमें ऊपरसे कुछ और भीतरसे कुछ और होता है। ऊपरसे मीठा बोलना और भीतरसे छुरी चलानेकी सोचना इत्यादि 'कपट' है। यथा '**कपट सनेह बढ़ाइ बहोरी। बोली बिहँसि नयन मुंह मोरी।**' (अ०), '**लखी न भूप कपट चतुराई**', '**जौं कछु कहउँ कपट करि तोही। भामिनि रामसपथ सत मोही।**' (अ०), '**जो जिय होत न कपट कुचाली। केहि सुहात रथ बाजि गजाली।**' (अ०) 'पाषंड' इति। वह भक्ति या उपासना जो केवल दूसरोंके दिखानेकेलिये की जाय और जिसमें कर्त्ताकी वास्तविक निष्ठा वा श्रद्धा न हो 'पाषंड' है। इसीका नाम ढोंग, आडम्बर, मकरजाल और ढकोसला है। 'दंभ' इति। महत्त्व दिखाने, पुजाने या प्रयोजन सिद्धि करनेकेलिये, लोगोंको धोखेमें डालनेकेलिये ऊपरी दिखावट साधुवेषादि 'दंभ' है। '**दभ्यते अनेन दंभः।**' धार्मिक कार्योंमें अपनी प्रसिद्धि करना 'दंभ' है। इसमें कुछ झूठी ठसक या अभिमानकीभी मात्रा रहती है। यथा '**निसी तम घन खद्योत बिराजा। जिमि दंभिन्ह कर जुरा समाजा।**' '**मिथ्यारंभ दंभरत जोई। ता कहं संत कहहिं सब कोई॥ सोइ सयान जो परधनहारी। जो कर दंभ सो बड़ आचारी।**' '**कलिमल ग्रसे धरम सब लुप्त भए सदग्रंथ। दंभिन्ह निज मति कलपि करि प्रगट किये बहुपंथ॥**' उपर्युक्त उद्धरणोंसे 'दंभ' का भावार्थ स्पष्ट हो जाता है। पाषंड और दंभमें बहुत सूक्ष्म भेद है। प्रायः दोनों पर्यायवाची शब्दकी तरह प्रयुक्त होते हैं। पाषंडके विषयमें कविने स्वयं

कहा है, 'हरित भूमि त्रिन संकुल समुझि परै नहिं पंथ। जिमि पाषंड बाद ते लुप्त होहिं सदग्रंथ'॥ दुष्ट तर्कों और युक्तियोंके बलसे सद्ग्रंथोंके प्रति बड़े बड़ोंको संदेहमें डाल देते हैं; जिससे यह नहीं समझ पड़ता कि वेदमार्ग कौन है, जिसपर हम चलें। पाषण्डी वेदमर्यादा ध्वस्त करा देते हैं। पाषण्डवाद कोई मार्ग नहीं हैं किन्तु तृणके समान मार्गका भ्रम करानेवाला है। यह काम पाषण्डी करते हैं। दम्भी अपने बुद्धिविलाससे नवीन मार्ग कल्पित कर खड़ा करते हैं। जब वेदमार्ग लुप्त हो गये तब ये चमकने लगे। मानस उत्तरकांड कलिवर्णन प्रकरणमें कपट, दंभ, पाखंडके अनेक उदाहरण देकर कवि अंतमें कहते हैं, 'सुनु खगेस कलि कपट हठ दंभ द्वेष पाषंड। मान मोह-मारादि मद व्यापी रहे ब्रह्मंड॥१०१॥' कलिमें कपट, दंभ, पाषंड, मोह, माया आदि पूर्ण व्यापा करते हैं। ये सब कलियुगके कार्य हैं। विशेष 'मानसपीयूषतिलक' के किष्किंधा और उत्तरकांडोंमें देखिये। कोई ऐसा कहते हैं कि कपट मनसे, पाषंड वचनसे और दंभ कर्मसे होता है। पूर्व कहा था कि 'बिलसत बढ़त मोह माया मलु'। कपट, दंभ और पाषंड माया कटकके भट हैं। यथा, 'व्यापि रहेउ संसारा महुँ माया कटकु प्रचंड। सेनापति कामादि भट दंभ कपट पाषंड॥'

५ 'जहँ जनमे जगजनक जगतपति' इति। (क) जनक शब्द 'जनी प्रादुर्भावे' धातुसे 'णवुल' प्रत्ययके लगनेसे बनता है, जिसका अर्थ होता है 'उत्पन्न करनेवाला'। जगजनक = जगत्को उत्पन्न करनेवाला। जगत्पति = जगत्की रक्षा वा पालन करनेवाला। विधि हरि हर तीनोंहीं जगत्के उत्पन्न और पालन करनेवाले हैं। यथा, 'जो सृजि पालै हरै बहोरी। बालकेलि सम बिधि मति भोरी।' (अ०), 'उत्पति पालन प्रलय समीहा' (भगवान), 'विश्वभवदंशसंभव पुरारी' (१०), 'जगदातमा महेस पुरारी जगतजनक सबके हितकारी' (बा०)। इस तरह 'जगजनक' और 'जगतपति' तीनोंके विशेषण हैं। 'जगजनक ब्रह्मा, जगत्पति हरि और सबका हरण (संहार)

करनेवाले हर ' ऐसाभी अन्वय कर सकते हैं। 'हर' शब्दही संहारसूचक है। इससे विशेषण कोई न दिया गया।

(ख) ' जहँ जनमे जगजनक जगतपति बिधि हरि हर ' इति। इस कथनसे श्रीचित्रकूटकी अतिशय पावनता प्रगट हुई। जब इस भूमिको सर्वोत्तम और अतिशय पवित्र समझा होगा तब तो यहाँ तीनोंके तीनोंने आकर जन्म लिया। जो जगत्के पिता हैं वेही यहां आकर पुत्र बने। जो जगत्के स्वामी हैं, जगका पालन करते हैं, वे स्वयं आकर पुत्र बने और अपना पालनपोषण कराया। श्रीमद्भागवत स्कंध ४ अ० १ श्लोक १६–३३ में श्रीविदुरजीके प्रश्न करनेपर कि ' जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और अंत करनेवाले सर्वश्रेष्ठ देवोंने अत्रि मुनिके यहां क्या करनेकी इच्छासे अवतार लिया था ? ' श्रीमैत्रेयजीने त्रिदेवके जन्मकी कथा कही जो संक्षेपसे इस प्रकार है। ' अपने पिता ब्रह्माजीसे प्रजोत्पादनकी आज्ञा प्राप्त कर महर्षि अत्रि अपनी धर्मपत्नी सतीशिरोमणि देवी अनुसूयाको साथ लेकर कुलाद्रि ऋक्षपर्वतपर तपस्याके निमित्त गये। वहाँ जाकर उन्होंने सौ वर्षतक एक पैर पर खड़े रहकर, केवल वायु भक्षण कर मनोनिग्रहके-लिये प्राणायामका साधन किया और यह संकल्प किया कि जो कोई इस संसारके स्वामी हैं वे कृपाकर हमें अपनेही समान पुत्ररत्न प्रदान करें। हम उन्हींकी शरण हैं। ' उनकी घोर तपस्याके प्रभावसे ऋषिके मस्तक-मेंसे एक अग्नि प्रादुर्भूत हुई जो प्राणायामसे वृद्धिको प्राप्तकर समस्त त्रिलोकीको संतप्त करने लगी। यह देखकर जगत्के तीनों अधीश्वर, ब्रह्मा, विष्णु और महेश, ऋषिके आश्रममें एक साथ पहुँचे। उनके एकही साथ प्रकट होनेसे ऋषिका अन्तःकरण उद्भासित हो गया और ज्योंही उन्होंने आँखें खोलीं तो क्या देखते हैं कि तीनों देवता अपने अपने वाहनों हंस, गरूड़ एवं वृषभके साथ अपने अपने चिह्नोंको धारण किये हुए ऋषिके सामने उपस्थित हैं। दण्डवत् प्रणाम और विधिवत् पूजा करके ध्यानमें मग्न हो वे गद्गद्स्वरसे स्तुति करने लगे और बोले, ' मैंने तो संतानकी कामनासे आप लोगोंमेसे केवल एकका स्मरण किया था। अहोभाग्य मेरे कि आप तीनोंनेही मुझ दीनपर अनुग्रह

किया। पर मैंने जिनको बुलाया था आममेंसे वे कौन महानुभाव हैं ?' इसपर तीनों एकसाथ बोल उठे, 'मुनिवर्य ! तुम्हारे सत्य संकल्पकाही यह फल है कि हम तीनोंको तुम्हारे पास आना पड़ा। तुम जिस जगदीश्वरका ध्यान करते थे वह हम तीनोंही है।' 'वद्वै ध्यायति ते वयम्।' यह कहकर मुनिको इच्छित वर दे वे अंतर्धान हो गये। ब्रह्माजीके अंशसे चंन्द्रमा ऋषि, विष्णुके अंशसे दत्तात्रेयजी और शिवजीके अंशसे दुर्वासा ऋषि उत्पन्न हुए।

बृहद्रामायणमें अत्रिजीका दंडकके उत्तर मन्दारपर्वतपर स्त्रीसहित तपस्या करना, त्रिदेवका आना और महादेवजीका वर देना कहा है। यथा, "**दंडकादुत्तरेभागे मन्दरो नाम पर्वतः। तपस्तेपे महाबुद्धिरत्रिर्नाम महातपाः॥ आगतास्तत्र ते देवा ब्रह्माविष्णुमहेश्वरः।**" महादेव उवाच। "**वरं वरयभद्रंते वरदेशावयंत्रयः॥**' (मुनिरुवाच) '**वायुर्यथा सर्वगतो ह्येवं पुत्रा भवन्तु मे।**' "**प्रत्युवाच महातेजास्त्र्यम्बकः प्रहसन्निव। एवं विधास्ते तनया भविष्यन्ति न संशयः॥ दत्तात्रेयो हरेरंशाच्चन्द्रमा ब्रह्मणस्तथा। ममांशाच्चैव दुर्वासा भविष्यन्ति न संशयः॥**" (वै०)

इस उद्धरणमें महादेवजीका अत्रिसे वर माँगनेको कहना लिखा है। वे कहते हैं कि हम तीनों वरदाताओंके स्वामी हैं, हमसे वर माँगो। उसपर मुनिने कहा कि जैसे वायु सर्वगत है ऐसेही पुत्र हमारे हों। इसपर शिवजीने हँसकर कहा कि हम तीनों इस प्रकार तुम्हारे पुत्र होंगे कि हरिके अंशसे दत्तात्रेय होंगे, ब्रह्माके अंशसे चंद्रमा (ऋषि) और हमारे अंशसे दुर्वास होंगे, इसमें संशय नहीं।

६ 'परिहरि प्रपंच छलु' इति। (क) 'परिहरि' में यह भाव ध्वनित होता हैं कि विधि हरिहरने प्रपंचछल किया है अथवा किया करते हैं। 'वह प्रपंचछल क्या है ?' इसमें मतभेद है। बाबू शिवप्रकाशजीका मत है कि 'प्रपंच (संसारका) छल अर्थात् संसारका व्यापार, उत्पत्ति, पालन और संहार जो उनका पृथक् पृथक् निर्दिष्ट कार्य है।' वे 'छल' का अर्थ 'व्यापार' करते हैं और

लिखते हैं कि 'छल पद इस निमित्त दिया कि अपना धर्म जो पालन है उसकी रक्षाकेलिये हरिने छल किये। जैसे कि जलंधर वधकेलिये बृन्दाका व्रत भंग किया। मत्स्य, वराह, नृसिंह, कच्छपादि रूपोंको धारण किया। रावणवधकेलिये ऐश्वर्य छिपाकर नररूप धारण किया। मोहिनी-रूपसे दैत्योंको और वामनरूपसे बलिको छला'। इसी तरह ब्रह्माजीने सरस्वतीको प्रेरित कर पहले कुम्भकर्णकी मति फेर दी तब उसको वर दिया। देवता, दैत्य, दानवादि सब ब्रह्माकेही तो पुत्र, नाती, पनाती इत्यादि हैं, पर वे देवताओंका पक्ष लेकर भगवान्के हाथों दैत्यादिका संहार कराते रहते हैं। यही हाल शंकरजीका है। पहले तो मुँह माँगा वर देते हैं। फिर उन्हींके निधनका उपाय देवताओंको बताते हैं। वैजनाथजी, भट्टजी और वियोगीजी आदिने प्रायः उसी टीकाका अनुसरण किया है। अन्तर केवल इतना है कि वैजनाथजी विधि और हरका प्रपंच अर्थात् 'जगत्रचना पद' और 'संहारकर्त्ता पद' छोड़कर और हरिका 'छल' त्यागकर वहाँ जन्म लेना कहते हैं और भट्टजी 'संसारके प्रपंच (उत्पत्ति, पालन, संहार) और छल छोड़कर जनमें' ऐसा अर्थ करते हैं। वीरकविजी '(संसारके उत्पन्न, पालन और प्रलयके) विस्तारके बहाने छोड़कर' ऐसा अर्थ करते हैं अर्थात् 'छलु' का अर्थ 'बहाना' करते हैं। पं० रामकुमारजी अपने खर्रेमें लिखते हैं, 'पूर्व इन्होंने बहुत प्रपंच किये थे। उन्हींकी ओर यहां इशारा है।' परन्तु उन्होंने कोई उदाहरण नहीं दिये हैं जिससे उनके हृदयके भाव हमें स्पष्ट हो जाते। जो कथाएँ (श्रीअत्रिजीके यहां इनके जन्मकी) हमको मिलीं वह हम टि० ५ में लिख आये हैं। उनसे हमें कोई सहायता इस गुत्थीके सुलझानेमें नहीं मिलती।

(ख) त्रिदेवोंने अनुसूयाजीके साथ क्यों और कैसा प्रपंचछल किया और उसका परित्याग कैसे हुआ ? इसका वर्णन श्रीरसिकविहारी-कृत 'राम रसायन' के चतुर्थ विधानके अष्टम विभागमें विस्तारसे है। वह कथा इस प्रकार है कि जब श्रीरघुनाथजी द्वादशवर्ष चित्रकूटमें रहकर तेरहवें वर्ष वहांसे पंचवटीकी ओर चलने लगे तब सब मुनि आकर

मिले। मुनियोंने सीताजीसे कहा कि 'पतिको सुख देनेवाली जानकी ! तुम धन्य हो। पातिव्रत्य धर्म सदा धन्य है कि जिससे बिधि हरि हर सभी डरते रहते हैं। पातिव्रत्यबलसे अनुसूयाने त्रिदेवकी गति प्रत्यक्ष दिखा दी।' यह सुनकर श्रीसीताजीने 'त्रिदेवगति' की बात पूछी और उन्होंने निम्नप्रकारसे कही।

'एक समय मिलि उमा रमा अरु धात्री तीनहुँ नारी।
लखि रहस्य सुर गंगतीर थल भूषन बसन उतारी॥
मज्जन करत हुती तहँ प्रमुदित ता छिन नारद आये।
तिनहिं बिलोकि लजाय अधिक तिहुँ तिय निज अंग छिपाये॥३१॥

सो बिलोकि मुनि रिस करि बोले क्यों तुम मोहि न जानी।
भई चहति हौ जनु अनुसुइया सम पतिव्रता जानी॥
यों कहि गमन कियो ऋषि तहँ ते पुनि यों तिहुँ ठहराई।
पतिव्रत भंग अति तियको जिमि होय सु रचिय उपाई॥३२॥

करि बिचार निज निज गृह गवनीं तिहूँ मान बहु ठानो।
बिधि हरि हरहि रोष तियको लखि सकल अनंद भुलानो।
अमित बार बूझी तब बोलीं और कछू नहिं भाषैं
अनुसुया को पतिव्रत खंडै तौ हम निज तनु राखैं॥३३॥

तिहूँ नारि निज निज पति सों इमि बचन कहे बिलखाई।
रमा उमा ब्रह्मानी बहु बिधि हरि हर विधि समुझाई।
नहिं मानी तब देव सोच बस इक इक पास सिधारे।
काहू गति कोऊ नहिं जानै चले जतन निरधारे॥३४॥

भई भेट तिहुँ बीच पंथमें तिहुँ सशोक तिहुँ देखे।
चकित कछू कहि सके न काहू बदन परस्पर पेखे॥
पुनि धरि धीर तिहूँ तिहुँ बूझी तिहूँ तिहूँ प्रति बरनी॥
तिहूँ हीय भो दुखी और सुनि तिहूँ ठौर इक करनी॥३५॥

तिहूँ देव ह्वै विवश मंत्र करि यही बात ठहराई।
पतिव्रत भंग कीजिये तिय को कछु छलछंद बनाई॥
यों बिचारि निज निज गृह बेगै जाय सुधीर धराई।
चले उताल बहुरि तिहि मारग मिले बीच पुनि आई॥३६॥

तहां विष्णु बिधि शंभु मनुज है अतिथि भेष तिहुँ धारे।
सिकताकन लै लये कमंडलु गये अत्रि के द्वारे।
ता छिन मुनि नहिं रहे भवनमें अनुसुइया लखि आई।
करि प्रणाम लैजाय सबन फल धरे सामुहें लाई ॥३७॥

सो लखि सकन अतिथियों बोले और न अशन कराहीं।
ये हम सिकताकन लै आए पक्क होय तौ खाहीं।
पै जिहि बिधि भाषैं ताही बिधि करौ सुभोजन करि हैं।
नतरु क्षुधित तिहुँ अत्रि भवन तें निज निज मारग धरि हैं ॥३८॥

अत्रितिया सुनि बचन मुनिनके भई सोच बस भारी।
पक्क होय किहि बिधि सिक्ताकन इन नहिं बात बिचारी ॥
अतियि क्षुधित जो जायँ द्वार ते तो गृहधर्म नशावे।
इहि बिधि करहिं अनेक जलपना हिय न कछू ठहरावे ॥३९॥

पुनि पतिव्रता नारि बिचारी जु पै धर्म हौं साची।
तौ पै पक्क होइगी सिकता रंच रहै नहिं काची।
है प्रमुदित बोली अनुसुया अतिथि कहा कन दीजे।
जिहि बिधि कहौ पक्क करि आओ रुचिमय भोजन कीजे ॥४०॥

सुनि तिहुँ कही अनल जल बिनु कन करमें पक्क बनावो।
बहुरि नग्न है निलज हाथ निज भोजन हमें करावो।
नब बोली सो अतिथि न भाषौ महा असंभव बानी।
तव सुकर्म मम धर्म रहै जिमि देहु रजायसु ज्ञानी ॥४१॥

पुनि सो तजि तिन और न भाषी तब निज हीय बिचारी।
'अतिथि नहीं ले छली कोउ हैं' यों गुनि कै मुनिनारी।
पति पद सुमरि ध्यान शुचि कीनो सकल चरित दरसाये।
जानी बिधि हरि शंभु पतिव्रत भंग करन मम आये ॥४२॥

तब सुधर्मचारी बर नारी सकल शीश कर फेरे।
भये अयान बालबपु तीनौ लै सुपालने गेरे।
पुनि है नग्न लिये कन अंजुलि अनुसुइया यों बोली।
पक्क होय तो यह सिक्ता जौ हों पतिधर्म न डोली ॥४३॥

कहतहिं भले एक सिक्ताकन मृदु शुचि शुभ्र सुहाये।
सो निज कर ते तिहूँ शिशुन मुख दै भोजन करवाये।
पुनि पट धारि झुलावन लागी ता छिन मुनि गृह आये।
लखि बूझी बालक ये किहि के निज सब चरित सुनाये ॥४४॥

मगन भए ऋषि देवचरित लखि मनही मन मुसकाने।
योंही शंभु विरंचि विष्णु को बासर सात सिराने।
उमा बिधात्री रमा उतै तिहुँ सोच बिवश अकुलानी।
पुनि नारद कैलास पधारे त्रिकालज्ञ बर ज्ञानी ॥४५॥

बोले हँसि मुनीश गिरिजा सें लखों देव तिहुँ जाई।
पतिव्रता अनुसुया निज गृह राखै बाल बनाई ॥
सुनि ह्वै बिकल शिवा उठि धाई धात्रिहि सुगति सुनाई।
दोउ तिय अकुलाय कही सब सिंधुसुता ढिग आई ॥४६॥

सोच संकोच बिबश तिहुँ बनिता ह्वै जिय निपट हिरासा।
भूर गरूर दूर धरि गमनी अत्रि तिया के पासा।
आय लजाय धाय ऋषितिय के पायँ परीं अकुलाई।
अनुसुया करि प्यार बधू सम गहि निज हृदय लगाई ॥४७॥

पुनि तिहुँ बालन शीश धरो कर लहे शुद्ध निज रूपा।
बिदा किये सबही तिय संयुत कहि बर बचन अनूपा।
निज निज धाम गये हरि हर विधि कहैं परस्पर माहीं।
कोऊ अनुसुया सम तिहुँ पुर बर पतिव्रता नाहीं ॥४८॥

इस कथाको ऋषिपत्नियोंसे सुनकर सीताजीके मनमें श्रीअनुसूयाजीके दर्शनकी लालसा हुई। कथाका सारांश यह है कि एक बार त्रिदेवकी शक्तियोंको अनुसूयाजीके पातिव्रत्यपर ईर्ष्या हुई और उन्होंने अपने अपने पतिसे अनुसूयाजीके पतिव्रतको भंग करनेकेलिये हठ ठानी। तीनों (विधि, हरि, हर) पृथक् पृथक् अपनी अपनी पत्नियोंकी हठ रखनेकेलिये चले। राहमें तीनों मिले। यह मालूम होनेपर कि तीनों एकही उद्देश्यसे जा रहे हैं उन्होंने आपसमें सलाह कर अतिथि मुनियोंका रूप धारणकर अनुसूयाजीके यहां उस समय कि जब अत्रिजी आश्रमपर नहीं थे आकर उनसे कहा कि हम भूखे हैं, हमारे पास कमंडलोंमें सिकताकण हैं, यदि तुम उन्हें अपनी

हथेलीपर रखकर बिना आग और जलके पकाकर जिस विधिसे हम कहें हमें भोजन करा दो तो हम भोजन करेंगे, नहीं तो यहाँसे क्षुधा-तुरही चले जायेंगे। अतिथि द्वारसे भूखा लौट जानेसे गृहधर्मका नाश हो जाता है यह विचार कर श्रीअनुसूयाजीने अपने पातिव्रत्यके बलपर सिक्ताकणको पका देनेकी बात सोचकर मुनियोंसे सिक्ताकण माँगे और कहा कि जिस विधिसे कहो मैं पकाये लाती हूं, आप रुचिसे भोजन करें। तब वे बोले कि तुम नंगी होकर अपने हाथसे हमें भोजन कराओ। अनुसूयाजीने बहुत समझाया पर उन्होंने हठ न छोडा। तब यह जानकर कि यह अतिथि नहीं हैं, कोई छलिया हैं, उन्होंने ध्यानावस्थित हो सब बात जान ली। फिर इनके सिरोंपर हाथ फेरा। हाथ फेरतेही वे अबोध शिशुरूप हो गये। अनुसूयाजीने नग्न हो सिक्ताकण पकाकर अपने हाथसे खिलाये और तीनोंको सुंदर पालनेमें डालकर झुलाने लगी। इस तरह सात दिन बीत गये। तब नारदसे समाचार पाकर उनकी शक्तियाँ लज्जित होकर अनुसूयाजीके पास आ उनके चरणोंपर गिरीं। उन्होंने पुत्रवधू मानकर सबका आलिंगन और प्यार किया। वे अपने पतियोंको न पहचान सकीं। तब अनुसूयाजीने शिशुओंके सिरोंपर पुनः हाथ फेरकर उनको पूर्ववत् देवरूप प्रदान कर शक्तियोंसहित बिदा कर दिया।*

(ग) 'परिहरि प्रपंच छलु' इस कथनसे पाया गया कि इन्होंने बहुत 'प्रपंच छल' किये थे परंतु चित्रकूटमें इनके छल प्रपंच एकभी न चले। चित्रकूटने उनके छल प्रपंचको हर लिया। इससेभी चित्रकूटका माहात्म्य दिखाया कि जब जगत्पिता आदिका छल यहाँ हर लिया गया तब प्राकृत मनुष्यों और देवताओंके प्रपंचका हर लेना कौन बड़ी बात है?

---

* 'रामरसायन' श्रीअयोध्या कनकभवनके महंत श्रीजानकीप्रसादजी (उपनाम रसिकबिहारीजी तथा रसिकेशजी) की बनायी हुई है। उन्होंने छब्बीस ग्रंथ और रचे थे। यह ग्रंथ मेवाड़में सदयपुरके समीप स्थान कानोड श्रीमद्भागवत साहब श्रीनारहसिंहजीके यहां उन्हींके समयमें रचा गया और संवत् १९७८ वि० में छपा।

७ पार्थ–इनके जन्मकी कथा इस प्रकार है। दुष्यन्त और भरतके वंशका उच्छेद देख सत्यवतीने व्यासका स्मरण किया और उनके आनेपर उसने अपने भाईके वंशकी रक्षा करनेको कहा। माताकी आज्ञासे व्यासजीने अंबिकासे धृतराष्ट्र और अंबालिकासे पाण्डु तथा उनकी दासीसे विदुरको उत्पन्न किया। धृतराष्ट्रके दुर्योधन और दुशासन आदि सौ पुत्र हुए और पांण्डुकी पत्नी कुंतीसे तीन पुत्र युधिष्ठिर, भीमसेन और अर्जुन हुए तथा उनकी दूसरी पत्नी माद्रीसे नकुल और सहदेव दो पुत्र हुए। पाण्डुके इन पाँचों पुत्रोंका विवाह द्रुपदराजाकी पुत्री द्रौपदीसे हुआ। इसके अतिरिक्त युधिष्ठिरजीकी दूसरी पत्नी 'देविका' थीं। भीमसेनका विवाह काशिराजकी कन्या बलन्धरासेभी हुआ। अर्जुनका विवाह सुभद्रासे हुआ जिसके पुत्र अभिमन्यु हुए। नकुलका विवाह करेणुमतीसे और सहदेवका विजयासे हुआ।

पाण्डुको वैराग्य हो जानेपर वे सपत्नीक वनमें रहे और राज्यका कार्य धृतराष्ट्र (जो जन्मसे अंधे होनेके कारण राजा न हो सकते थे) करते रहे। वनमें पाण्डुके सब पुत्र उत्पन्न हुए थे। टि० १० देखिये। पाण्डुके मरनेपर शतशृंग पर्वतके (जहांपर ऋषियोंकी शरणमें ये रहते थे) तपस्वियोंने कुंती और पाँचों बच्चोंको हस्तिनापुर आकर भीष्म और धृतराष्ट्रको सौंप दिया।

बचपनसेही भीमसेनका बल देखकर दुर्योधन पाण्डवोंसे जलने लगा और इसने उनके बापका राज्य हड़पनेके विचारसे इनके मार डालनेके बहुतेरे उपाय किये। पर वे भगवत्कृपासे बचते गये। इसका विस्तृत वृत्तान्त '**सो धों कहा जो न कियो सुयोधन**' पद १३७ और पद २३८ में दिया गया है। द्रोणाचार्यजीकी आज्ञासे सब कौरव और पाण्डव द्रुपद राजापर चढ़ धाये। कौरव द्रुपदकी सेनाके सामने न ठहर सके। रोते चिल्लाते पाण्डवोंके पास भाग आये। तब अर्जुनने द्रुपदका मुक़ाबला किया और उसको पकड़ लाकर द्रोणाचार्यजीको सौंप दिया। इसके एक वर्ष बाद धृतराष्ट्रने युधिष्ठिरजीको युवराज बना दिया। युधिष्ठिरजीके गुणप्रभावकी वृद्धिसे धृतराष्ट्रको चिन्ता हो गयी।

उसने कणिककी कूटनीतिका आश्रय लिया। दुर्योधनभी भीम और अर्जुनका बल देखकर चिन्तातुर रहता था। कर्ण और शकुनी (अपने मामा) से मिलकर उसने पाण्डवोंके मारनेके जो जो उपाय रचे वे सब निष्फल हो गये। तब दुर्योधनकी सलाहसे धृतराष्ट्रने युधिष्ठिरको वारणावतका मेला देख आनेके बहाने लाक्षाभवनमें रहनेको भेज दिया। पाण्डव लाक्षाभवनसे बचकर निकल गये और वेष बदले घूमने लगे। द्रौपदीके स्वयंवरके पश्चात् कौरवोंको ज्ञात हुआ कि पाण्डव जीवित हैं। विदुर पाण्डवोंको हस्तिनापुर लाये। इन्द्रप्रस्थमें उनका राज्य स्थापित हुआ। युधिष्ठिरजीने राजसूय यज्ञ किया। सभामंडपमें दुर्योधनने धोखेपर धोखा खाया जिससे उसकी हँसी हुई। इसने कर्ण और शकुनीसे सलाह कर युधिष्ठिरको कपटद्युतमें जीत लिया और द्रौपदीको नंगी करना चाहा। अंतमें इनको बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष किसी नगरमें अज्ञातवासके बाद पुनः राज्य लौटानेकी शर्तपर वनवास हुआ। उस वनवासके तेरह वर्षोंमें जो कष्ट पाण्डवोंने भोगे उनका विस्तृत वर्णन महाभारतके वनपर्व और विराटपर्वमें पाठक पढ़ लें। इतनेपरभी दुर्योधनने राज्य न लौटाया जिसका फलस्वरूप महाभारत-युद्ध और कौरवों तथा समस्त वीरोंका नाश हुआ। अंतमें युधिष्ठिर राजा हुए।

८ नल—नल निषधदेशके चन्द्रवंशीराजा वीरसेनके पुत्र थे। वे बड़े सुन्दर गुणवान्, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, वेदज्ञ, ब्राह्मणभक्त, अश्वविद्या, अश्वकी पहिचान और संचालनमें तो एकही थे। वीर, योद्धा और प्रबल पराक्रमीभी थे। उन्हीं दिनो विदर्भदेशमें भीमक नामके एक राजा राज्य करते थे। उनके तीन पुत्र (दम, दान्त, दमन) और एक कन्या दमयन्ती थी। दमयन्ती देवकन्याओंसेभी अधिक रूपवती थी। निषध और विदर्भदेशके लोगोंमें आनेजानेका व्यवहार था। इससे नलके सौंदर्य आदिकी प्रशंसा दमयन्तीतक पहुंच गयी थी। बिना देखेही दोनोंमें पारस्परिक अनुराग अंकुरित हो गया। एक हंसद्वारा नलके पुरुषरत्न होनेका संदेश दमयन्तीतक और दमयन्तीके स्त्रीरत्न होनेका नलतक पहुँचा। भीमकने स्वयंवर रचा। राजाओंको निमंत्रण भेजा।

वे सब आये। उधर देवर्षि नारद और पर्वतद्वारा देवलोकोंमें भी समाचार पहुँचा। लोकपाल, इन्द्र, वरुण, अग्नि और यमादि भी विमानोंपर चले। उस समय नलभी चले। इनकी लोकोत्तर रूपसंपत्तिसे देवता चकित हुए। अत: उन्होंने नीचे आकर इनसे कहा कि 'राजन्! आप बड़े सत्यव्रती हैं। हम आपसे सहायता चाहते हैं। दूत बनाकर आपको एक जगह भेजना चाहते हैं।' राजाने प्रतिज्ञा की और पूछा कि 'आप कौन हैं और मुझे दूत बनाकर कौनसा काम लेना चाहते हैं?' तब उन्होंने सब प्रकट कर दिया। दमयन्तीके पास दूत बनकर जानेको कहा। उसपर राजा नलने कहा कि 'देवराज! वहाँ आप लोगोंके और मेरे जानेका एकही प्रयोजन है। इसलिये मुझे दूत बनाकर भेजना उचित नहीं। मुझे क्षमा कीजिये।' देवताओंने कहा कि 'तुम प्रतिज्ञा कर चुके हो, उसे मत तोड़ो, अविलंब वहाँ जाओ। तुम वहाँ बेरोकटोक हमारी कृपासे जा सकोगे।' राजा नल बेरोकटोक दमयन्तीके पास पहुँच गये। देवताओंका संदेशा सुनाया कि 'उनमेंसे जिसको चाहो अपने पतिके रूपमें वरण कर लो। उन देवताओंके प्रभावसेही मुझे कोई द्वारपाल देख नहीं पाये। मैंने संदेशा कह दिया। अब तुम्हारी जो इच्छा हो सो करो।' दमयन्तीके कहनेपर कि 'मैं तुम्हें वरण कर चुकी हूँ', नलने उसे समझायाभी कि 'तुम अपना मन उन्हींमें लगाओ। देवताओंको अप्रिय करनेसे मनुष्यकी मृत्यु हो जाती है।' दमयन्ती घबड़ाकर आँसू भरे हुए कहने लगी कि 'मैं सब देवताओंको प्रणाम करके आपकोही पतिरूपमें वरण कर रही हूँ। यह मैं सत्य शपथ खा रही हूँ।' राजा नलसे यहभी कहा कि 'आप सबके साथ स्वयंवरमें आवे, मैं वहीं सबके सामने आपको वरण करूँगी जिसमें आप निर्दोष रहें।' राजाने आकर सत्यसत्य सब देवताओंसे कह दिया। स्वयंवरमें चारों लोकपाले नलका रूप धारण कर नलके पास बैठ गये। दमयन्ती पहचान न सकी तब देवताओंकी शरण गयी। वे उसके आर्तविलाप, दृढ निश्चय इत्यादिको देखकर प्रसन्न हुए। उसने देखा कि देवताओंके शरीरपर पसीना नहीं है, पलकें गिरती नहीं, वे धरती छूते नहीं इत्यादि लक्षणोंसे नलको पहिचान कर उसने

उनके गलेमें माला डाल दी। दोनोंने प्रेमसे एक दूसरेका अभिनंदन किया और देवताओंकी शरण ग्रहण की। देवताओंने उनको आठ वरदान दिये। १ तुम्हें यज्ञमें मेरा दर्शन होगा। २ उत्तम मति मिलेगी। (इंद्र)। ३ जहां तुम स्मरण करोगे मैं प्रगट हो जाऊँगा। ४ मेरेसमान प्रकाशमान लोक तुम्हें प्राप्त होंगे। (अग्नि)। ५ तुम्हारी बनाई रसोई बहुत मीठी होगी। ६ तुम अपने धर्ममें दृढ़ रहोगे। (यम)। ७ जहां तुम चाहोगे वहां जल प्रकट हो जायगा। ८ तुम्हारी माला उत्तम गंधसे परिपूर्ण रहेगी। (वरुण)

जब लोकपाल लौट रहे थे, राहमें कलियुग और द्वापरसे भेंट हुई जो स्वयंवरमें जा रहे थे। लोकपालोंसे समाचार पानेपर कलिने क्रोधमें भरकर कहा कि ' ओह ! तब तो महा अनर्थ हुआ। उसने देवताओंकी उपेक्षा करके मनुष्यको अपनाया, इसलिये उसको दंड देना चाहिये।' देवताओंने समझाया कि दमयन्तीने हमारी आज्ञा प्राप्त करके नलको वरण किया है। नल उसके योग्य है।

कलियुगने द्वापरसे कहा कि ' तुम जुएके पाँसोंमें प्रवेश करके मेरी सहायता करो। मैं नलके शरीरमें प्रवेश करूँगा। एक दिन अपवित्र अवस्थामें राजाको देख कलि उनके शरीरमें प्रवेश कर गया और दूसरे रूपसे जाकर पुष्करको उनसे जुआ खेलनेको प्रवृत्त किया। महीनों जुआ हुआ। राजा नल सब कुछ हार गये। दमयन्तीसहित (दोनों केवल एक वस्त्र पहने हुए) राजा नल नगरसे निकल गये। तीन दिनरात केवल जल पीकर रहे। चौथे दिन मारे भूखके कुछ फल फूल खाकर आगे बढ़े। एकदिन कुछ पक्षियोंको पास बैठे देखा जिनके पंख सोनेकेसमान चमक रहे थे। उनको पकड़नेके विचारसे अपना वस्त्र उनपर राजाने फेंका। वे वस्त्र लेकर यह कहते हुए कि 'हम पक्षी नहीं हैं, जूवेके पाँसे हैं' उड़ गये।

' दमयन्ती सच्ची पतिव्रता है, कोईभी इसके सतीत्वको भंग नहीं कर सकता, इसे छोड़ यदि मैं चला जाऊँ तो संभव है कि इसे सुख मिल जाय ' यह सोचकर वे उसे सोती छोड़ कर चल दिये। उनके शरीरमें कलियुगका प्रवेश होनेसे उनकी बुद्धि नष्ट हो गयी थी। दमयंती पतिको

न पाकर उन्मत्त और शोकग्रस्त हो विलाप करती तीन दिनरात घूमती घूमती एक आश्रमपर पहुँची जहाँ उसे वसिष्ठ और भृगु आदिका दर्शन हुआ। उन्होंने उसको भविष्य बताया और अंतर्धान हो गये। चलते चलते एक जगह कुछ व्यापारी देख पड़े। उनके सरदारसे यह जानकर कि वे राजा सुबाहुके राज्य चेदिदेशमें जा रहे हैं, दमयन्ती उनके साथ सुबाहुके नगरमें पहुँची। महलके नीचेसे निकलते समय राजमाताने उसे देख बुलावा भेजा। दमयन्तीने वहां इस शर्तपर रहना स्वीकार किया कि 'मैं कभी जूठा न खाउँगी, किसीके पैर नहीं धोऊँगी और पर पुरुषके साथ किसी प्रकारभी बातचीत न करूँगी। यदि कोई पुरुष मुझसे दुश्चेष्टा करें तो आपको उसे दंड देना होगा। बार बार ऐसा करनेपर उसे प्राणान्त दण्डभी देना होगा। मैं अपने पतिको ढूँढनेकेलिये ब्राह्मणोंसे बातचीत करती रहूँगी।'

नल दमयन्तीको छोड़कर आगे बढ़े। उस समय वनमें दावानल लग रहा था। नलको कर्कोटक नागने पुकारा कि मुझे आकर बचाओ। अग्निमें घुसकर उसको दावानलसे निकालनेपर उसने कहा कि तुम मुझे लिये हुए कुछ दूरतक गिनती करते हुए चलो। नलने ज्योंही 'दस' कहा, त्योंही उसने डस लिया, जिससे नलका रूप बदल गया और कर्कोटक अपने रूपमें हो गया और बोला 'अब तुमको कोई पहचान न सकेगा। कलियुग मेरे विषसे तुम्हारे शरीरमें बहुत दुखी रहेगा। अब तुमपर किसी विषका प्रभाव न पड़ेगा। तुमको किसीसे भय न रहेगा। युद्धमें सदा जय होगी। तुम अपना नाम बाहुक रख लो और द्यूतकुशल राजा ऋतुपर्णकी नगरी अयोध्यामें जाओ। तुम उन्हें घोड़ोकी विद्या बतलाना और वे तुम्हें जूवेका रहस्य बतला देंगे। जब रूप बदलना हो, मेरा स्मरण करना और मेरे दिये वस्त्र धारण करना।' नलने अयोध्या जाकर ऋतुपर्णके यहाँ नौकरी की। वे अश्वशालाके अध्यक्ष बनाये गये।

उधर विदर्भनरेश भीमकने जूवेका समाचार पाकर दामाद और पुत्रीका पता लगानेकेलिये ब्राह्मणोंको सब ओर भेजा। सुदेवने चेदिनरेशके यहाँ पुण्याहवाचन होतेसमय दमयन्तीको पहचाना। तब राजमाताको

सब समाचार ज्ञात हुआ और उसने अपनी बहिनकी लड़कीको पहचाना। दमयन्ती पिताके घर आ अपने बच्चोंसे मिलीं। नलको ढूँढनेकेलिये ब्राह्मण भेजे गये। दमयन्तीने उन ब्राह्मणोंसे कहा कि 'आप लोग जिस राज्यमें जायँ, वहाँ मनुष्योंकी भीड़में यह बात कहें कि मेरे प्यारे छलिया, तुम मेरी साड़ीमेंसे आधी फाड़कर तथा मुझ दासीको वनमें सोती छोड़कर कहाँ चले गये ? तुम्हारी वह दासी अबभी उसी अवस्थामें आधी साड़ी पहने तुम्हारे आनेकी बाट जोह रही है और तुम्हारे वियोगके दुःखसे दुखी हो रही है।' ऐसीही बात कहियेगा जिससे वे प्रसन्न हों और मुझपर कृपा करें। मेरी बात सुननेपर यदि कोई उत्तर दे तो वह कौन है, कहाँ रहता है इन बातोंका पता लगा लीजियेगा और उत्तर याद रखकर मुझे सुनाइयेगा। यहभी ध्यान रहे कि उसे यह न मालूम होने पावे कि आप यह बात मेरी आज्ञासे कह रहे हैं। बहुत दिनोंबाद पर्णादने अयोध्यासे लौटकर बाहुकका उत्तर 'कुलीन स्त्रियाँ घोर कष्ट पानेपरभी अपने शीलकी रक्षा करती हैं और अपने सतीत्वके बलपर स्वर्ग जीत लेती हैं। कभी उनका पति त्यागभी दे तो वे क्रोध नहीं करतीं, अपने सदाचारकी रक्षा करती हैं। त्यागनेवाला पुरुष आपत्तिमें पड़नेके कारण दुखी और अचेत हो रहा था, इसलिये उसपर क्रोध करना उचित नहीं हैं। माना कि पतिने अपनी पत्नीका योग्य सत्कार नहीं किया। परंतु वह उस समय राज्यलक्ष्मीसे च्युत, क्षुधातुर, दुखी और दुर्दशाग्रस्त था। जब वह अपनी प्राणरक्षाकेलिये जीविका चाह रहा था, तब पक्षी उसके वस्त्र लेकर उड़ गये। उसके हृदयकी पीड़ा असह्य थी' ऐसा सुनाकर उसका हुलिया तथा पता आदि दिया।

दमयन्तीने तुरंत सुदेवको बुलाकर कहा कि 'आप शीघ्रातिशीघ्र अयोध्या पहुँचकर राजा ऋतुपर्णसे जाकर कहें कि भीमकपुत्री फिरसे स्वयंवरमें स्वेच्छानुसार पति वरण करना चाहती है। बड़े बड़े राजा और राजकुमार जा रहे हैं। स्वयंवरकी तिथि कलही है। यदि आप पहुँच सकें तो वहाँ जाइये। नलके जीने वा मरनेका पता किसीको नहीं है। इसलिये वह कल सूर्योदयके समय दूसरा पति वरण करेगी।'

समाचार पाकर ऋतुपर्णने बाहुकसे बात की। बाहुकने इतनी शीघ्र पहुँचा देनेका बीड़ा उठाया। रास्तेमें रथकी फुर्ती और ऋतुपर्णकी गणितविद्याकी चतुराईका वर्णन है। बाहुकने कहा कि 'आप मुझे पाँसोंकी वशीकरण विद्या सिखा दें तो मैं आपको घोड़ोंकी विद्या सिखा दूँ। राजाने ज्योंही पाँसोंकी विद्या सिखा दी त्योंही कलियुग विष उगलता हुआ निकल पड़ा। रथकी घरघराहटसे दमयन्तीको विश्वास हो गया कि अवश्य रथका हाकनेवाला मेरा पतिही होगा। क्योंकि एकही दिनमें चार सौ कोस घोड़ेके रथसे कोई और नहीं पहुँच सकता। दम्यन्तीने कई प्रकार परीक्षाभी कर ली। दोनों मिले। राजा नलको जब विश्वास हो गया कि स्वयंवरकी युक्ति केवल नलको वहां बुलाने और पहचान लेनेकेलिये थी तब उन्होंने कर्कोटकका स्मरण किया और दिये हुए वस्त्र पहन लिये जिससे वे अपना पूर्वरूप पा गये। बातकी बातमें सबको खबर हो गयी। सब प्रसन्न हुए। फिर अपने नगरमें आ पुष्करसे सारा राज्य जूवेमें जीतकर उसको उसका राज्यभी दे दिया।

९ 'बिगत बिषाद भये पारथ नल' इति। चित्रकूटमाहात्म्यके संबंधमें बृहद्रामायणमें लिखा है कि पाण्डवोंने यहां आकर विधिवत् मंदाकिनीस्नान, तपस्या, प्रदक्षिणा, दान इत्यादि किये जिससे उनकी विपत्ति छूट गयी और राजा नलकाभी सब दुःख चित्रकूटमें आकर मंदाकिनीमें स्नान करने इत्यादिसे दूर हो गया। दोनोंके राज्य पुनः प्राप्त हुए। यथा "**कुरुभिर्हृतराज्यस्तु पार्थो भ्रातृसमन्वितः। धौम्येन गुरुणा युक्तो कुंत्या द्रुपदकन्यया।। चित्रकूटे शुभे क्षेत्रे श्रीरामपद-भूषिते। तपश्चचार विधिवद्धर्मराजो युधिष्ठिरः।। स्नात्वा मंदाकिनीनीरे प्रदक्षिणमथा करोत्। दानं ददौ सविधिवच्छ्री-कृष्णप्रीतिहेतुकम्। तीर्थराजप्रभावेन स्नानदानानुकूलतः। विपत्ति-र्नाशमगमत्तस्य राज्ञो महात्मनः।।**" "**दमयंतीपतिर्वीरो राज्यं प्राप्यहताशुभः। मंदाकिनी पुण्यतमा गंगा त्रैलोक्यविश्रुता।।**"

पार्थको कैसा विषाद था इसका अंदाजा पाठक युधिष्ठिरजीके वाक्योंसे लगा लें जो उन्होंने समय समयपर कहे हैं। काम्यकवनमें

महर्षि बृहदश्वके आगमनपर उन्होंने उनसे कहा है कि 'महाराज! कौरवोंने कपटबुद्धिसे मुझे बुलाकर छलके साथ जूआ खेला और मुझे अनजानको हराकर मेरा सर्वस्व छीन लिया। इतनाही नहीं, उन्होंने मेरी प्राणप्रिया द्रौपदीको घसीटकर भरी सभामें अपमानित किया। उन्होंने अंतमें हमें काली मृगछाला उढ़ाकर घोर वनमें भेज दिया। महर्षी! आपही बतलाइये कि इस पृथ्वीपर मुझसा भाग्यहीन राजा और कौन है? क्या आपने मेरे जैसा दुखी और कहीं देखा या सुना है?' इसीपर महर्षिने नल दमयन्तीकी कथा कही। इसके पश्चात् महर्षि धौम्यने तीर्थोंका वर्णन किया।

द्रौपदीके जयद्रथद्वारा हरण और फिर भीमद्वारा उससे छुटकारा पानेके बाद धर्मराज युधिष्ठिरने मार्कण्डेयजीसे कहा था कि 'यह सौभाग्यशालिनी यज्ञकी वेदीसे प्रकट हुई। इसने कभी पाप या निंदित कर्म नहीं किया। यह धर्मके तत्वको जानती और उसका पालन करती है। ऐसी स्त्रीकाभी अपहरण पापी जयद्रथने किया। यह अपमान हमें देखना पड़ा। सगे संबंधियोंसे दूर जंगलमें रहकर हम तरह तरहके कष्ट भोग रहे हैं। अतः पूछते हैं कि आपने हमारे समान मन्दभाग्य पुरुष इस जगत्में कोई औरभी देखा या सुना है?' इसपर मुनिने श्रीरामवनवासकी कथा कही।

१० यहां 'पारथ' (पार्थ) नामभी साभिप्राय है। वस्तुतः युधीष्ठिर, भीमसेन और अर्जुन पाण्डुके वीर्यसे नहीं हैं। वे कुंतीके पुत्र देवांशसे हैं। इसकी कथा इस प्रकार है। यदुवंशी शूरसेनके पृथा नामकी बड़ी सुन्दरी कन्या थी। वसुदेवजी इसीके भाई थे। इस कन्याको शूरसेनने अपनी बुआके संतानहीन लड़के कुंतिभोजको गोद दे दिया। यह कुंतिभोजकी धर्मपुत्री पृथा अथवा कुंती बड़ी सात्विक और गुणवतीभी थी। कुंतीने स्वयंवरमें पाण्डुको वरण किया और दोनोंका विधिपूर्वक विवाह हो गया। भीष्मपितामहने इनका एक और विवाह मद्रराजकी कन्या शल्यकी बहिन माद्रीसे करा दिया।

एकबार राजा पाण्डुने वनमें एक यूथपतिमृगको अपनी पत्नी मृगीके साथ विहार करते देख पाँच बाण मारे जिससे दोनों घायल

हो गये। तब मृगने कहा कि 'राजन्! अत्यन्त कामी, क्रोधी, बुद्धिहीन और पापी मनुष्यभी ऐसा क्रूर कर्म नहीं करते। आपकेलिये तो उचित यह है कि पापी और क्रूरकर्मा मनुष्यको दंड दें। मुझ निरपराधको मारकर आपने क्या लाभ उठाया? मैं किंदन नामका तपस्वी मुनि हूँ। मनुष्य रहकर यह काम करनेमें मुझे लज्जा मालूम हुई, इसलिये मृग बनकर अपनी मृगीके साथ मैं विहार कर रहा था। मुझे मारनेमें आपको ब्रह्महत्या नहीं लगेगी परन्तु आपने मुझे जिस अवस्थामें मारा है वह सर्वथा मारनेके अनुपयुक्त थी। इसलिये यदि कभी आप अपनी पत्नीके साथ सहवास करेंगे तो उसी अवस्थामें आपकी मृत्यु होगी और वह पत्नी आपके साथ सती हो जायगी।'

मुनि और मुनिपत्नी दोनोंका शरीर छूट गया। पाण्डुको बहुत दुःख हुआ। मनही मनमें सोचने लगे कि बड़े बड़े कुलीनभी अपने अंतःकरणपर वश न होनेके कारण कामके फंदेमें फँस जाते हैं और अपनेही हाथों अपनी दुर्गति करते हैं।' उनको वैराग्य हुआ, उन्होंने वस्त्र, भूषण उतारकर दान कर दिये, सेना आदि हस्तिनापुर लौटा दी और स्वयं वानप्रस्थाश्रममें रह वनोंमें विचरने लगे। एक बार महर्षियोंको ब्रह्माजीके दर्शनार्थ ब्रह्मलोक जाते देख येभी उनके साथ चल पड़े। ऋषियोंने समझाया कि मार्गपर तुम्हारी स्त्रियां न चल सकेंगी। तुम यह यात्रा स्थगित रक्खो। तब राजाका हृदय यह सोचकर संतप्त होने लगा कि पितरोंका ऋण मेरे सिरपर है। महर्षियोंने कहा कि आपके देव समान पुत्र होंगे। आप इसका उद्योग करें। उनके चले जानेपर राजा शापको यादकर चिंतित हो गये। एक दिन उन्होंने कुंतीसे पुत्रोत्पत्तिकेलिये प्रयत्न करनेको कहा। तब कुंतीने अपने बालपनेके आशीर्वादका वृत्तान्त सुनाया। 'पिताने अतिथि स्वागत सत्कारका काम मुझे सौंप रक्खा था। एक बार दुर्वासजी आये। मेरी सेवामें प्रसन्न हो उन्होंने मुझे एक मंत्र बतलाकर वर दिया कि तुम इस मंत्रसे जिस देवताका आवाहन करोगी वह तुम्हारे आधीन हो जायगा। आपकी आज्ञा होनेपर मैं जिस देवताका आवाहन करूँगी, उसीकी कृपादृष्टिसे मुझे संतान होगी।'

पांडुने धर्मराजका आवाहन करनेको कहा जिसमें परम धर्मपरायण पुत्र हो। कुंतीने ऐसाही किया। धर्मराजके आनेपर उनसे पुत्र माँगा। इनकी कृपासे धर्मपुत्र युधिष्ठिर हुए। कुछ दिनोंके बाद भयंकर पराक्रमी और बलशाली पुत्रकी इच्छासे पांडुकी आज्ञासे कुंतीने वायु देवसे भीमसेनको उत्पन्न किया। तत्पश्चात् 'मेरे विश्वविख्यात् सर्वश्रेष्ठ एक पुत्र हो,' पांडुकी इस इच्छाकी पूर्तिकेलिये एक वर्षतक कुंतीने व्रत किया और पांडुने स्वयं सूर्यके सामने एक पैरसे खड़े होकर तपस्या की जिससे इन्द्र प्रकट हुए और बोले कि 'तुम्हें मैं विश्वविख्यात्, ब्राह्मण, गौ, सुहृदोंका सेवक तथा शत्रुओंको संतप्त करनेवाला श्रेष्ठ पुत्र दूँगा।' यह वर प्राप्त करनेके बाद उन्होंने कुंतीको उनका आवाहन करनेको कहा। इससे कार्त्तवीर्य, अर्जुन और शंकरके समान पराक्रमी पुत्र अर्जुन हुए। इसके पश्चात् माद्री और पांडुकी इच्छापर कुंतीने माद्रीको अश्विनीकुमारोंका आवाहन करनेको कहा। अश्विनीकुमारोंने उन्हें नकुल और सहदेव दो जुड़वाँ पुत्र दिये। एक बार कामके नशेमें पांडु ऐसे चूर हो गये कि माद्रीको उन्होंने पकड़कर उसके साथ बलात्कार किया। बस ऐसा करतेही उनके प्राण निकल गये।

अनुसंधान [२४]

न करु बिलंबु बिचारु चारु मति
बरष पाछिले[४] सम अगिलो[५] पलु।
मंत्र सो जाइ जपहि जो जपत[६] भए[७]
अजर अमर हर अँचइ हलाहलु ॥ ४ ॥
राम नाम जप जाग करत नित मज्जत
पय पावन पीवत जलु।

४ पाछिले—रा०, भा०, प्र०, ज० ह०, ५१, १५, ७४, आ०। पाछिलो—बे०। ५ अगिलो—रा०, १५, ७४, ५१, डु०, मु०, वै०, दी०। अगिले—प्र०, ह०, भ०, वि०। आगिलो—बे०, ज०। आगिले–भा०। ६ जपि—वै०, वि०। ७ भै—भा०, बे०। भये--७४। भय—१५। भै--भ०, वै०, मु०, दी०, वि०।

करि हैं राम भावतो मन[८] को
सुख साधन अनयास महाफलु ॥ ५ ॥
कामदमनि कामता कलपतरु[९] सो
जुग जुग जागत[१०] जगती तलु ।
तुलसी तोहि बिसेष[११] बुझिये
एक प्रतीति प्रीति एकै बलु ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—बिलंबु (विलंब) = देर । बिचारु = बिचार कर, सोच समझ । पाछिले = पिछले, बीते हुए, गत । यथा, '**पाछिल मोह समुझि दुखमाना** ।' अगिलो = आगेका । अँचइ = पीकर । अँचवना (सं० आचमनसे)=पीना । जपजाग=मंत्रजपरूपी यज्ञ । पीवत = पीते हुए, पीनेसे । भावतो=प्रियतम; बहुत भला लगनेवाला । यथा, '**नीरज नयन भावते जी के** ।' मनको भावतो = मनको भाया हुआ, मनका सोचा या चाहा हुआ । सुख=यहां 'सुख' विशेषण है । सुकर, जिसमें कुछ कठिनाई न हो, सहजमें होनेवाला । पय = पयस्विनी । मानस और विनयके मतानुसार मंदाकिनी और पयस्विनी एकही हैं । पद २३ में '**मंदाकिनि मालिनि सदा सींच**' कहा था और यहाँ '**मज्जत पय पावन**' कहा । इसी तरह '**मंदाकिनि मज्जन तिहुं काला**' यह अवध-पुरवासीयोंका संकल्प (अयोध्याकांडमें) कहा गया और उसकी पूर्त्तिमें कहा कि **पावन पय तिहुं काल नहाहीं** ।' अनयास (अन् + आयास) = विना परिश्रम । कामदमनि = कामनाओंकी देनेवाली मणि, चिंतामणि । कामता = कामद्गिरि, चित्रकूट, कामतानाथ । यथा '**कह कपीस कामता सिधारी । बैठहु कान्हि राम उर धारी** ।' जगतीतल (सं०) = पृथ्वी; पृथ्वीपर । विशेष = खास कर । बूझियें = चाहिये । यथा '**ऐसी तोहि न बूझिये हनुमान हठीले** ।' एकै = एकही ।

पद्यार्थ—अब देर न कर । सुन्दर बुद्धिसे अगले एक पलको

---

८ नी—ज०, प्र०, १५ । ९ सुरतरु सो जो—रा० । कल्पतरु जो—ज० । १० जागति—भ०, मु० । ११ विसेषि—रा०, भा०, बि० ।

पिछले वर्षोंके समान विचार। (चित्रकूट विना अब पलभरभी व्यर्थ न खो, वहां) जाकर वही मंत्र जप जिसे जपते हुए शिवजी हालाहल विष पीकर (भी) अजर अमर हो गये।।४। नित्य रामनाम रूपी जपयज्ञ करते, पावन पयस्विनीमें नित्य नहाते और उसका जल नित्य पीते श्रीरामचंद्रजी तेरा मनभाया करेंगे। सुख साधन और विना परिश्रमही महाफल। (पयस्विनीमें स्नान कर लेना, वहाँ जल पीना और राम राम करना कितना सरल साधन है और फल उसका कितना बड़ा! लोकमें सुख और अंतमें भगवद्धाम।)।५। (कामनाएँ पूर्ण करनेकेलिये) कामता चिंतामणि और कल्पवृक्षही है, यह बात युगयुगान्तरसे पृथ्वीपर प्रसिद्ध है। तुलसीदासजी कहते हैं कि (रे चित्त!) तुझे तो खासकर एक इन्हींका विश्वास, इन्हींसे प्रेम और इन्हींका बल भरोसा (रखना) चाहिये।६।

टिप्पणी—(क) 'न करु बिलंबु' इति। भगवत्सन्मुख होनेमें किंचित्भी विलंब करना उचित नहीं यह उपदेश यहां दे रहे हैं। आगेभी एक जगह ऐसाही कहा है कि '**बेगि बिलंबु न कीजिये लाजै उपदेस। बीजमंत्र जपिये सोई जोइ जपत महेस**'। गीतावलीमें विभीषणजीकोभी श्रीशंकरजीका उपदेश यही है। यथा '**तहँई मिले महेस दियो हित उपदेस रामकी सरन जाहि सुदिन न हेरैं॥ जाको नाम कुंभज कलेस सिंधु सोखिवे को मेरो कह्यो मानि तात बाँध जनि बेरैं।**' भाव कि शुभ दिन शुभ शकुन आदि विचारनेकी ज़रूरत नहीं। भगवत्सन्मुख जिस घड़ीमें हो जाय वही शुभ है। कहाभी है कि '**सर्वं त्यक्त्वा हरि भजेत्।**'

(ख) 'बिचारु चारु मति' इति। सुंदर बुद्धिसे विचार करनेपर इस तत्त्वको पहुँचोगे, यही सार निकलेगा, साधारण बुद्धिसे नहीं। दुर्बुद्धिको यह बात नहीं सूझ सकती कि 'बरष पाछिले सम अगिलो पलु' है। वे तो सदा इसके विपरीतही समझते रहते हैं। वे तो यही विचार करते हैं कि अभी क्या गया है, अभी तो ४० वर्षही बीते हैं, अभी तो खेलने खानेके दिन हैं, आगे बहुतसमय पड़ा है, चौथा पन

आवेगा तब भजन कर लेंगे । 'बिचारु चारु मति' कहकर जनाया कि तू ऐसा न विचार। ऐसा विचार 'चारु मति' का विचार नहीं है।

(ग) 'बरष पाछिले सम अगिलो पलु' इति। जैसे पिछले तमाम वर्ष बीत गये वैसेही यह अगला पलभी बीताही समझो। सुंदर बुद्धिसे बिचार करनेसे तुझे साफ़ समझ पड़ेगा कि सारी उम्र बीत गयी। काल सिरपर है, न जाने अगले क्षणमें कालका कलेवा बन जाऊँ। अतः अब इस बचीखुची आयुको पल समान समझकर इसे अमूल्य और शीघ्र बीतता हुआ जान अपनी बिगड़ी बना ले, व्यर्थ न जाने दे। सीधे अर्थके अनुसार तो यह भाव कहा गया। दूसरा प्रकारसे इसका भावार्थ यहभी कह सकते हैं कि 'तू यह न पछताता बैठ कि सारी आयु तो बीत गयी, कुछ न किया, अब क्या होगा ? ऐसा विचार मनमें न ला। किंतु यह सोच कि जो बीता सो बीता। अब रहा सहा जो एक पलभी बचा है यहभी वैसेही न व्यर्थ चला जाने पावे। इस एकही पलमें वह काम हो सकता है जो सारी उम्रमें न हुआ था। एक पल बहुत है। इतनेमेंही जीवन सफल हो सकता है। यथा 'बिगरी जन्म अनेक की सुधरै पल लगै न आधु। पाहि कृपानिधि कहे को न राम कियो साधु॥' 'बिगरी जनम अनेक की सुधरै अबहीं आजु। होहि राम को राम भजु तुलसी तजि कुसमाजु॥' तात्पर्य कि आगेवाला पल पिछली सारी उम्रसे कम नहीं है। किंतु उससे अधिक मूल्यवान् है। इसे व्यर्थ न जाने दे। अब एक पलका बीत जाना ऐसा समझ कि वर्षके वर्ष व्यर्थ बीते जा रहे हैं।

२ 'मंत्र सो जाइ जपहि जो जपत' इति। (क) भगवान् शंकर कौन मंत्र जपकर अजर अमर हो गये और कालकूट पी गये ? राम नामही वह परम मंत्र है। यथा 'नाम प्रसाद संभु अबिनासी', 'नाम प्रभाउ जान सिव नीको। कालकूट फल दीन्ह अमीको।', 'तुम्ह पुनि राम राम दिनराती। सादर जपहु अनंग अराती।' पूर्व पद ३ में यह प्रमाणोंके उद्धरणोंसेभी स्पष्ट कर दिया गया है कि भगवान् शंकर निरंतर रामनाम जपते हैं। रामनामके बलसेही वे काल-

कूटको पी गये, विष उनको अमृत हो गया। पाठक वहाँ देख लें। (ख) यहाँ प्रथम पर्यायोक्ति और विरोधाभास अलंकार हैं। (ग) संभव है कि 'मंत्र' से कोई कुछ और समझ ले। इसलिये पूज्य कवि उसे आगे स्वयंही स्पष्ट कर देते हैं।

३ (क) 'राम नाम जप जाग करत नित' इति। यदि कहो कि 'अब शेष आयुमें साधनही क्या हो सकता है? मंत्र जपनेको कहते हो सो मंत्र जप विधिभी तो कठिन है!' इसपर कहते हैं कि यहां कोई कठिन साधन नहीं करना है। सुखसे बैठे राम राम जपो। 'राम' नामही वह मंत्र है। इसके जपमें कोई खास विधिकी आवश्यकता नहीं है और फल इससे वह प्राप्त हो जाता है जो बड़े बड़े यज्ञोंसेभी नहीं प्राप्त हो सकता। जपयज्ञ सबसे सरल है और उसका फल सबसे विशेष है। जपयज्ञ भगवान्‌का रूपही है। यथा, 'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि'। (गीता०)

(ख) 'मज्जन पय पावन सुख साधन अनयास महाफलु' इति। 'पयस्विनी स्नान, जलपान और सुखसे बैठे राम राम जपना' बस यही साधन है। ऐसा सुखमय साधन और विना परिश्रम परमपदरूपी महाफलकी प्राप्ति! भला इसकेलिये कौन न ललचायेगा? अवश्यही इसमें तुरंत लग जा। बता तो भला इसमें कुछभी परिश्रम है?

(ग) 'महाफल' इति। 'महा' कहकर जनाया कि फल तो अर्थ, धर्म, काम और मोक्षभी हैं। पर ये साधारण फल हैं जो अन्य साधनोंसेभी प्राप्त हो जाते हैं। 'चित्रकूटमें राम नाम जपने, पयस्विनीमें स्नान करने और उसीका जल पीने' इस साधनसे मनोवांछित सब फल तो प्राप्तही होते हैं और साथही साथ श्रीरामजीके चरणोंमें निर्भर अमल अविनाशिनी भक्ति वा प्रेमभी प्राप्त हो जाता है जो बड़े बड़े ज्ञानियोंकोभी दुर्लभ है।

इस पदमें चतुष्टय अन्तःकरणमेंसे चित्त, बुद्धि (मति) और मन तीनको उनके व्यापारके अनुसार यहाँतक कहा। 'अब चित चेति' चेत करनेमें चित्तका, 'बिचारु चारु मति' विचार करनेमें

बुद्धिका और 'करि हैं राम भावतो मनको' अर्थात् इच्छापूर्त्तिमें मनका प्रयोग किया गया।

४ 'कामदमनि कामता कलपतरु' इति। (क) यहाँ कामताको कामदमणि और कल्पतरु कहा। चिन्तामणि और कल्पवृक्ष दोनों स्वर्गमें हैं। वे दुर्लभ हैं और कामता सुलभ है। जो फल वे वहाँके निवासियोंको देते हैं वे सब कामतासे इस पृथ्वीपर प्राप्त होते है। उतनेही नहीं किन्तु भक्ति और मुक्तिभी प्राप्त होती है जो चिन्तामणि और कल्पवृक्षके अधिकारके बाहरकी बातें हैं।

(ख) 'सो जुग जुग जागत जगतीतलु' इति। यह बात सदासे जगत्में विख्यात् चली आ रही है। तात्पर्य कि प्रत्यक्षको प्रमाणकी आवश्यकताही क्या? यह प्रभाव तो सब दिन और सब युगोंमें प्रत्यक्ष देखा गया है, इसीसे सब युगोंमें प्रसिद्ध है। दूसरा भाव यह है कि किसी तीर्थका माहात्म्य सत्ययुगमें विशेष था, किसीका त्रेतामें विशेष माहात्म्य था, तो किसीका द्वापरमें और किसीका कलियुगमें विशेष माना गया है। परन्तु कामद्गिरि (चित्रकूटका) माहात्म्य चारों युगोंमें एकसा बना रहता है। यथा, '**सुवर्णकूटं रजताभिकूटं माणिक्यकूटं मणिरत्नकूटम्। अनेककूटं बहुवर्णकूटं श्रीचित्रकूटं शरणं प्रपद्ये ॥१॥**' '**असारे खलु संसारे चित्त चिन्तां परित्यज। अखिलानंददं धाम चित्रकूटं चलाचलम् ॥२॥**' (स० दा०) '**चित्रकूटं महातीर्थं परमनिर्वाणकारकम्। धर्माभिलाष बुद्धीनां धर्म्मराशिकरं परम् ॥ अर्थिनामर्थदातारं परमार्थप्रकाशकम्। कामिनां कामदं श्रेष्ठं मुमुक्षूणांच मोक्षदम् ॥**' (बृह० रा०, वै०)

(ग) 'तोहि बिसेष बूझिये' इति। 'विशेष' कहनेका भाव कि चाहिये तो सभीको पर तुझको विशेष चाहिये। क्योंकि तुझे तो इसीसे सब कुछ प्राप्त हुआ है। विशेष इससे कि तेरेलिये तो 'बिधि गति दूसरी न निर्मई।' साधारणतः एक श्रीरामकीही गति है।

(घ) 'एक प्रतीति प्रीति एकै बलु' इति। एकहीं विश्वास, एकही प्रीति और एकही बल है यह श्रीरामकाही है। मिलान किजिये 'एक

भरोसो एक बल एक आस विश्वास। एक राम घनश्याम हित चातक तुलसीदास ॥' दो० २७७।

(ङ) 'कामदमनि कामता कलपतरु' में समअभेद रूपक है। 'जुग जुग' में पुनरुक्ति प्रकाश है। 'तोहि बिसेष बूझिये' में विशेषक अलंकार है।

५ कान्हरा रागका समय रात्रिका दूसरा प्रहर है। चित्तको बाहर निकल जानेका, चित्रकूटको चुप चाप भाग निकलनेके उपदेशका यही सर्वोत्तम समय है। 'देखो सब निद्रावश सो रहे हैं, भाग चलनेका अच्छा मौका है।' 'अब चित चेति चित्रकूटहि चलु।' इस गीतका कान्हरा रागमें होनेसे संगीतशास्त्रज्ञान और साहित्यका कैसा अच्छा सम्मिश्रण हुआ है!

६ चित्रकूट वर्णन—पं. देवदत्तशास्त्रीजी लिखते हैं कि "गोस्वामीजीकी जीवनीका क्रम अभी चालू है। एक एक करके वे अपनी जीवनगत घटनाएँ और जीवनी बतला रहे हैं। चित्रकूटवर्णनमें तो उन्होंने हर प्रकारसे दिल खोलकर कह दिया है कि मैं चित्रकूटप्रान्तका उत्पन्न पुत्र हूँ। चित्रकूटसंबंधी पदोंकी व्याख्या, विशेषताओंके उद्घाटनमें तो एक स्वतंत्र पुस्तक लिखी जा सकती है, जो गोस्वामीजीकी स्वकथित जीवनी कही जा सकती है। हम यहां पदप्रयोजन, शब्दनिरुक्ति न करके केवल सारांश और मुख्य विशेषताएँ लिख रहे हैं।

गोस्वामीजीने चित्रकूटवर्णन वसन्तरागमें गाया है जो साहित्यिक दृष्टिसे बेजोड़ही नहीं वरं 'न भूतो न भविष्यति' ही कहा जा सकता है। साहित्यिक आलोचनाकेलिये यहां स्थानही नहीं। अतः हम उनके हृदयके अन्तरतम भावोंको प्रकट करते हैं।

राग वसन्त—संगीत दामोदरके अनुसार वसन्तराग छः रागोंमेंसे एक राग है। संगीत रत्नाकरके अनुसार यह राग पंचवक्त्र शिवके द्वितीय मुख वामदेवसे उत्पन्न हुआ। यह पहलेही कहा जा चुका है कि वामदेव शंकर चित्रकूटप्रान्तमें एक प्रधान सिद्ध और पूज्य हैं। उन्हींके नामसे बाँदा नाम बसा है। तुलसीदासजी इसी प्रान्तके निवासी थे।

वामदेवके उसी प्रकार परम भक्त थे जैसे काशीवासकालमें विश्वनाथजीके। अतः अपनी जन्मभूमिके प्रान्तके वर्णनमें प्रान्तपति वामदेवसे उत्पन्न राग वसन्तका अवलंबन किया। वसन्तकालके कविवर्णनीय विषय ये हैं, '**सुरभौ दोला कोकिल मारुत सूर्यगतिरुदलोद्भिदाः। जा तीतर पुष्पचयामंजरी भ्रमरझंकाराः॥**' (कवि कल्पलता १ स्तवन)

गोस्वामीजीने उक्त विषयोंका यथातथ्यवर्णन चित्रकूटमें करके अपनी कवित्वशक्ति और परिचयचारुताका परिचय दिया है। किन्तु चित्रकूटमें तो बारहो मास वसन्तकी बहार रहती है। उसका गान बारहों मास वसन्तरागसे गेय है। चित्रकूट वर्णनमें स्वाभाविकता है, आत्मीयता है और है एक अतीतकी ताज़ी स्मृति, जो कविको विह्वल, उन्मत्त बना देती है। काशीवास करते हुए कवि चौंक उठता है और कहता है कि '**अब चित चेति चित्रकूटहि चलु।**' बलिहारी! क्यों न हो! काशीवासी विरक्त महात्माके हृदयमेंभी '**जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी**' का उत्तम भाव अक्षुण्ण है। सिद्धावस्था, विरक्तावस्थामेंभी एक बार पुनः जन्मभूमिके दर्शनको भावुक हृदय अधीर हो उठता है और एकाग्र तपःनिष्ठ मनको चेत कराने लगता है। याद दिलाता है अपने इष्टदेवके विहारस्थलकी आड़से अपने शैशवकी विहारस्थलीका। इतनाही नहीं बाल युवाकी सारी घटनाएँ अनोखे ढंगसे कहकर जन्मभूमिभी सिद्ध करता है 'जगतपति जगजनक' की आड़से। कवि परिचय दे रहा है कि मैंही नहीं, मेरे जनकभी वहीं जनमे हैं। वह मेरी बपौती है और पुण्यभूमि है। कविको गर्व है कि मैं ऐसी पुण्यभूमिमें उत्पन्न हुआ जहाँ विधिहरिहरभी जनमें, रघुबर बसे, पार्थ विगतबिषाद हुए।

तुलसीदासजीका वर्णनही हमें उनके चित्रकूट प्रान्तवासी होनेका परिचय देता है। यदि हम पदके अन्तर्भावोंकी समीक्षा करते हैं तो संदेहकी कोई गुंजाइशही नहीं रह जाती।"

संबंध सूचि

॥ श्रीरूपकलादेव्यैनमः ॥

विनय-पीयूष

[सर्व सिद्धांत समन्वित विनयपत्रिकाका सबसे बृहत् तिलक]

द्वितीय हिलोर

(पद २५ से २९ तक)

लेखक

महात्मा श्री अंजनीनन्दन शरणजी (ज० सु० श० सीतला सहाय सावंत, बी० ए० एल्एल्बी०, भूतपूर्व एडवोकेट, हाईकोर्ट, इलाहाबाद। सम्पादक, "मानस-पीयूष" और "मानसमणि")

प्रथम संस्करण] सन् १९४८ ई० [मू० ३)

प्रकाशक

पं. रामचंद्रदास

साहित्यरत्न, साहित्यालंकार, मानसकेसरी, मॉट्. डिप्., टी. डी.

पीयूष धारालय

विठ्ठलक्रीडाभवन, बड़ौदा।

लेखकद्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित

मुद्रक

पं. मोतीदासजी चेतनदासजी

कबीर प्रिन्टींग प्रेस,

सीयाबाग, बड़ौदा।

श्रीमंत सरकार हुक्म No. (D) 53/44 Date 26-11-45
के आधारपर मुद्रित।

सांकेतिक अक्षरोंका विवरण

हस्तलिखित पोथियाँ	सांकेतिक अक्षर
१ सं. १६६६ की श्रीभगवान् ब्राह्मणकी लिखी प्रति। रामनगर, काशी।	६६
२ १८६९ की श्री चौधरी छुन्नीसिंहकी एक पोथी। रामनगर, काशी।	६९
३ श्रीभागवतदासजीकी प्रतिलिपि।	भा.
४ सं. १८७८ की श्री बेनी कायस्थकी लिखी पोथी। मिरजापूर।	बे.
५ सं. १८७९ की श्री प्रल्हाददासकी लिखी पोथी। राज्यपुस्तकालय, बलरामपुर।	प्र.
६ सं. १८९३ की श्री जमुनादास वैश्यकी लिखी पोथी।	ज.
७ सं. १९१५ की श्री रामदत्तदासकी लिखी पोथी	१५
८ ईजानगर (विजयानगर) के व्यासकी पोथी।	रा.

छपी हुई पुस्तकें

१ मूल, व्यंकटेश्वर प्रेस। सं. १९५१	५१
२ ,, ,, सं. १९५७	
३ मुरादाबाद लक्ष्मीनारायण यंत्रालय।	मु.
४ चरखारी नरेशकी लीथोमें छपी टीका। सन १८७६	च.
५ बाबू शिवप्रकाश (डुमराँव) की टीका। सं. १९४१	डु.
६ श्री बैजनाथजीकी लीथोमें छपी टीका। सं. १९४७	बै.
७ श्रीसीतारामीय बाबा हरिहरप्रसादजीकी टीका। सन १९०४	ह.
८ वीरकवि पं. महावीरप्रसाद मालवीयकी टीका	७४
९ पं. रामेश्वर भट्टजीकी टीका, तीसरा संस्करण सन १९२५	भ.
१० लाला श्रीभगवानदीनजीकी टीका। सं. १९८५	दी.
११ श्री वियोगी हरिजीकी टीका। सं. १९८७	वि.
१२ मास्टर बिहारीलाल, टीकमगढ़की टीका।	टी.
१३ पं. रामकुमारजीके खर्रे	खर्रा, रा. कु.
१४ डु. मु. बै. भ. दी. और वि. का समुच्चय	आ.

पदसूची

॥ श्रीहनुमतेनमः ॥

विनय-पीयूष

२५ [१४] राग-धनाश्री

जयति[1] अंजनागर्भ अंभोधि संभूत बिधु बिबुधकुलकैरवानंदकारी।
केसरीचारुलोचनचकोरकसुखद लोकगनसोकसंतापहारी ॥१॥
जयति बालार्क[2] कपि केलि कौतुक उदित चंडकर मंडल ग्रासकर्त्ता।
राहुरविसक्रपविगर्व खर्वीकरन सरनभयहरन जय भुवनभर्त्ता ॥२॥

---

१ मु०, ७४ में नहीं है। २ रा० में 'जयति बाल कपि'; मु०, भा०, बे०, ५१, बै, डु०, ७४ में 'जयति जय बाल कपि' और ज० में 'जयति रन बाल कपि' है। ६६ में 'जयति बालार्कपि' है। 'बालार्कपि' का कोई अर्थ समझमें नहीं आता और न छन्दही बैठता जान पड़ता है। संभवतः एक 'क' भूलसे छूट गया है और इस तरह 'बालार्क कपि' उसका पाठ जान पड़ता है। यहाँ 'बालार्क' संबोधन हो सकता है। परन्तु उसी अंतरेमें कविने इनको उदित चंडकर मंडलका ग्रासकर्ता कहा है। एक सूर्य दूसरे सूर्यको ग्रास करे यह ठीक नहीं जँचता। इसीसे संभवतः लोगोंने 'बाल कपि' पाठ कर दिया हो और 'अर्क' के बदलेमें 'जय' ये दो अक्षर बढ़ाकर छंदकी पूर्ति की हो। हमको तो ऐसा जान पड़ता है कि यहाँ कविने आर्षकवि श्रीवाल्मीकिजीके उ० सर्ग ३५ के 'बालार्काभि मुखो बालो बालार्क इव मूर्तिमान्। गृहीत कामो बालार्कं प्लवतेऽम्बर मध्यगः। २४।' इस श्लोकके भावकोही यहाँ उद्धृत कर दिया है। श्लोकका अर्थ है कि 'उस समय सूर्यको

शब्दार्थ—जयति = जय हो। यह आशीर्वाद है जो ब्राह्मणादि गुरुजन प्रणामके उत्तरमें देते हैं। परन्तु आशीर्वादके अतिरिक्त इस शब्दका प्रयोग देवताओं वा महात्माओंकी अभिवंदना सूचित करनेके-लियेभी होता है जिसमें कुछ याचनाका भाव मिला रहता है। यही अर्थ यहाँभी है। पुनः, वंदना करनेकी प्राचीन रीति है कि प्रथम 'जय' शब्द उच्चारण करके स्तुति करे। यथा 'जयेति नामोच्चार्य्य ततो स्तोत्रमुदीरयेत्।' अंजना = कुंजरनामक वानरकी पुत्री और केसरीनामक वानरकी स्त्री। कहीं कहीं इनको गौतमकी पुत्रीभी लिखा है। पूर्व जन्ममें यह पुंजिकस्थलानामकी अप्सरा थी जो परम सुंदरी थी। शापवश वही कुंजर वानरकी कन्या हुई। वानरयोनिमेंभी वह इच्छानुसार रूप धारण कर सकती थी। एक बार वह मनुष्यरूप धारण कर माला, आभरण आदिसे विभूषित पर्वतशिखरपर बैठी थीं। पवनदेवने उसपर मोहित हो मनसे उसका आलिंगन किया, जिसके प्रभावसे महाबली, महापराक्रमी, महातेजस्वी और सब प्रकार पवनके समान श्रीहनुमान्जी पवनके औरस और केसरीके क्षेत्रज पुत्र उत्पन्न हुए।* (वाल्मी० कि० सर्ग ६६ में यह

पकड़नेकी इच्छा किये हुए यह मूर्तिमान् बालसूर्यकी तरह बालक हनुमान्-जी आकाशके बीच जा पहुँचे।' इसप्रमाणसे ६६ का पाठ शुद्ध जान पड़ता है और प्राचीनतम तो हैही। दूसरे, चन्द्रमाका रूपक प्रथम अन्तरेमें दिया गया है और इस अन्तरेमें सूर्यको ग्रास करना कहते हैं। चंद्रमाका सूर्यके तेजको ढक लेना कहना योग्य नहीं। अतः इनको यहां 'बालार्क' कहा गया है।

* श्रीहनुमान्जीका जन्म कार्तिक कृ. १४, मंगलवारको स्वाती नक्षत्र और मेष लग्नमें हुआ। 'ऊर्जे कृष्ण चतुर्दश्यां भौमे स्वात्यां कपीश्वर। मेष लग्नेऽञ्जनीगर्भात् प्रादुर्भूत शिवः स्वयम्॥' यह श्लोक जन्मके संबंधमें प्रसिद्ध है। परन्तु कहीं कहीं इनका जन्म अगहन कृ. १४ और कहीं चैत्रकी पूर्णिमाको माना जाता है। किसी एक ग्रंथमें हमने इनका जन्म एकादशीको लिखा देखा था। महीना चैत्र हो या कार्तिक।

कथा जाम्बवान्‌जीने हनुमान्‌जीसे कही है ।) अंभोदि = जलका अधिष्ठान, समुद्र । गर्भ = स्त्रीके पेटके भीतरका वह स्थान जिसमें बच्चा रहता है । संभूत = उत्पन्न, पैदा । बिधु = चंद्रमा । बिबुध = देवता । कुल = समूह, समुदाय । कैरव = कुमुद, कुई, कोकाबेली । इसके विषयमें ऐसा प्रसिद्ध है कि यह चंद्रमाको देखकर खिलता है और सूर्यके प्रकाशमें संपुटित हो जाता है । ठीक इसके विपरीत कमलका हाल है । चकोर यह चंद्रमाका बड़ा भारी प्रेमी है । उसकी ओर एकटक देखा करता है, यहांतक कि आगकी चिनगारियोंको वह चन्द्रमाकी किरण समझ कर खा जाता है । कवियोंने इसके प्रेमका उल्लेख अपनी उक्तियोंमें बराबर किया है । यथा ‘ जूही अपने मित्रहित पावक खात चकोर । जो हरि सुमिरै प्रीति ते क्यों न होइ भल तोर । ’ (विश्राम सागर) पद २ देखिये । चकोरक = चकोरका बच्चा, चकोरका । लोकगन = सभी लोगोंका, समस्त लोकोंका । केलि = क्रीड़ा, विनोद । कौतुक = खेल, सहजही । यथा ‘ कीस कौतुक केलि लूम लंकादहन ’ । (२६) चंडकर = तीक्ष्ण किरणवाला, सूर्य । मंडल = चन्द्रमा या सूर्यके चारों ओर पड़नेवाला घेरा जो कभी कभी आकाशमें बादलोंकी बहुत हलकी तह या कुहरा रहनेपर दिखायी पड़ता है । किसी वस्तुका वह गोल भाग जो अपनी दृष्टिके सम्मुख हो । ग्रास = उतना भोजन जितना कि एक बार मुंहमें छोड़ा जाय, कौर । ग्रहण = पकड़ । ग्रासकर्ता = निगलनेवाले । राहु = नवग्रहोंमेंसे एक ग्रह जो विप्रचित्तिके वीर्यसे सिंहिकाके गर्भसे उत्पन्न हुआ था । यह बहुत बलवान् था । समुद्रमंथनपर जब अमृत निकला और भगवान् मोहिनीरूप धारण कर उसे बाँटने लगे तब इसने, यह देखा कि सब अमृत देवताओंमेंही बँट जायगा, चोरीसे देवताओंके साथ सूर्य और चंद्रमाके बीचमें बैठकर अमृत पी लिया । सूर्य और चंद्रमाने यह चोरी देख ली और भगवान्‌को इशारा कर दिया । भगवान्‌ने चक्रसे उसकी गर्दन काट ली । पर वह अमृत पी चुका था इससे मरा नहीं, वरंच उसका मस्तकभी अमर हो गया । इसी मस्तकका नाम ‘ राहु ’ हुआ और कबंध (धड़) ‘ केतु ’ कहलाया । सूर्य और चन्द्रमाके

इशारेसे मस्तक काटा गया था; इससे वह इन दोनोंसे वैर मानता है और उस मस्तकसेही वह इन दोनोंको समयसमयपर ग्रसता रहता है। इसी ग्रासको 'ग्रहण' कहते हैं। पवि = वज्र, भालेके फलके समान एक शस्त्र जो इन्द्रका प्रधान शस्त्र कहा जाता है। ब्रह्मर्षि अथर्वाके पुत्र श्रीदधीचि ऋषिकी हड्डीसे यह बनाया गया था। पुराणोंमें इसकी उत्पत्तिकी कथाएँ भिन्न भिन्न हैं। गर्ब = गरूर, घमंड। खर्ब्बी = तुच्छ, छोटा। यथा '**खर्ब निसाचर बाँधेऊ नागपास सोइ राम।**', '**महा मत्त गजराज कहं बस कर अंकुस खर्ब।**', **परम बर्बर खर्ब गर्ब पर्वत चढ़यो अज्ञ सर्वज्ञ जनमनि जनावों।**' भर्त्ता = स्वामी।

पदार्थ—(माता) अंजनाके गर्भरूपी समुद्रसे उत्पन्न चन्द्रमा (रूप), देवकुलरूपी कुमुदको विकसित करनेवाले और समस्त लोकोंके शोक संतापके हरनेवाले ! आपकी जय हो। १। वानरी बालविनोदसे उदय हुए सूर्यमण्डलको सहजही ग्रास कर लेनेवाले (मूर्तिमान्) बालसूर्य ! आपकी जय हो। राहु, सूर्य, इन्द्र और वज्रके गर्वको तुच्छ कर डालनेवाले, (नीचा दिखाने वा चूर्ण करनेवाले) शरणागतका भय हरनेवाले, लोकोंके स्वामी !* आपकी जय हो। २।

नोट— यहांसे श्रीहनुमान्‌जीकी विनय प्रारंभ करके ग्यारह पदोंमें उनकी वंदना की गयी है। इनके अतिरिक्त पद ३६ मेंभी इनकी वंदना है। पद ३६ इन्हींकी वंदनासे प्रारंभ होता है। परन्तु आगे चलकर उसमें समष्टि वंदना है। इस तरहसे बारह पद हो सकते हैं। श्रीहनुमान्‌जी एक तो रुद्रावतार हैं। भगवान् शंकरही रामसेवाको सरस जानकर वानररूप हो प्रभुकी नित्य सेवामें रहकर कृतार्थ हुए। दूसरे, श्रीरामजी-तक पहुँचनेकेलिये इनसे बढ़कर दूसरा वसीला नहीं। किसी प्रकारसे ये शिवरूपसे कम नहीं हैं। अतः इनकीभी १२ पदोंमें स्तुति की गयी। †

---

*अर्थान्तर—'भुवनभर्त्ता श्रीरघुनाथजीके शरणागतोंके भयके हरनेवाले।' (वै०) परन्तु 'भुवनभर्त्ता' विशेषण श्रीहनुमान्‌जीकेलिये आगे पद २६ मेंभी आया है। यथा '**केसरीसुवन भुवनैकभर्त्ता।**'

†यह जनश्रुति है कि गोस्वामीजीने श्रीहनुमान्‌जीकी बारह मूर्तियाँ

श्रीभरत, श्रीलक्ष्मण, श्रीशत्रुघ्न और श्रीहनुमान्‌जीमेंसे इनकी वंदना प्रथम क्यों की गयी ? यह बातभी मनमानी घरजानी नहीं है । यहांपरभी आगे जो क्रम वंदनाका है वहभी शास्त्रबद्ध नियमके अनुसार है ।

सभामें प्रवेश करनेकेलिये पूज्य श्री गोस्वामीजीको प्रथम फाटकपर द्वारपाल विघ्नविनाशक श्रीगणेशजीसे, दूसरेपर श्रीसूर्यभगवान्‌से, तीसरेपर श्रीशिवजीसे, चौथेपर श्रीपार्वतीजीसे, पाँचवेंपर श्रीगंगाजी तथा श्रीयमुनाजीसे, छठेपर श्रीकाशीजीसे और सातवेंपर श्रीचित्रकूटसे इस तरह सात ड्योढ़ियोंपर सात द्वारपालोंसे क्रमशः प्रार्थनापूर्वक प्रवेशकी आज्ञा प्राप्त कर भीतर जानेपर श्रीरामजीके सिंहासनके सामने श्रीअंजनीनंदन श्रीहनुमान्‌जी, सामने दाहिने चँवर लिये हुए श्रीभरतजी, पीछे छत्र लिये हुए श्रीलक्ष्मणजी और बाएँ हाथकी ओर व्यंजनधारी श्रीशत्रुघ्नजीका दर्शन होता है । सिंहासनपर श्रीरामजीके वामभागमें जगदंबा श्रीजानकीजी विराजमान् हैं । " **हनूमंतंच श्रोतारमग्रतः स्यत् त्रिकोणकम् । ५० । पश्चिमे लक्ष्मणं धृत्वा धृतच्छत्रंच चामरम् ।५१।** " (श्रीरामतापनीयोपनिषद्) " **वामे भूमिसुता पुरस्तु हनुमान् पृष्ठे सुमित्रासुतः । शत्रुघ्नो भरतश्च पार्श्वदलयोर्वायव्यकोणादिषु ॥ सुग्रीवश्च विभीषणश्च युवराट् तारासुतो जाम्बवान् । मध्ये नीलसरोज कोमलरुचिं रामं भजे श्यामलम् ॥** " शास्त्रका सिद्धान्त है कि राजा, गुरु, आदि श्रेष्ठोंके पास जानेपर प्रथम उनकी परिक्रमा करे, तब उन्हें प्रणामपूर्वक अपनी प्रार्थना सुनावे । यथा ' **पुरीत्य देव देवेशं गुरूं नरपतिं तथा । प्रणम्य कूर्मवच्चैव स्वास्याभीष्टं निवेदयेत् ॥** '* श्रीमद्‌गोस्वामीजीने विनयपत्रिकामें यही नियम पालन किया है । अर्थात् सप्तद्वारपालोंकी कृपासे भीतर सभामें प्रवेश होनेपर श्रीहनुमान्‌जीसे प्रथम भेट होती है ।

स्थापित की थीं । यहभी एक कारण बारह पदोंमें विनय करनेका हो सकता है ।

* सविस्तर वर्णन अमररामायण, भुशुण्डिरामायण, कौशलखण्ड और वसिष्ठसंहिता आदि ग्रंथोंमें मिलेगा ।

फिर प्रदक्षिणा करते हुए क्रमशः श्रीभरत, श्रीलक्ष्मण और श्रीशत्रुघ्नजीसे मिलना होता है। जब बायी ओरसे सिंहासनके अति सन्निकट जाने लगे तब अंबा श्रीजानकीजूकी कृपा प्राप्त कर श्रीसरकारके करकंजोंमें पत्रिका देते हुए आग्रह करते हैं कि '**बिनयपत्रिका दीनकी बाप आपुही बाँचो।**'

टिप्पणी—१ 'जयति अंजनागर्भअंभोधिसंभूत बिधु' इति। अंजनाजीके गर्भमें समुद्रका आरोप करके हनुमान्‌जीमें चन्द्रमा, बिबुधकुलमें कैरव, और केसरीके नेत्रोंमें चकोरका आरोपण किया गया। इस तरह यहां परंपरितरूपक अलंकार है। रूपक निम्न मिलानसे स्पष्ट हो जायगा।

अंजनीके गर्भसे हनुमान्‌जीका जन्म।	१	पृथ्वीके गर्भ समुद्रसे चन्द्रमाका जन्म।

समुद्रमंथनसमय जो १४ रत्न उसमेंसे निकले उसमेंसे एक चन्द्रमाभी है। इसीसे चन्द्रमाका जन्म समुद्रसे कहा जाता है। यथा '**जनम सिंधु पुनि बंधु बिष**' (बा०)

हनुमान्‌जीसे देवकुलको आह्लाद हुआ।	२	चन्द्रमासे कैरव विकसित होता है।

सीताशोध, लंकादहन, निशाचर वध, मेघनादरावणयज्ञविध्वंस, कालनेमिवध और संजीवनीप्राप्तिद्वारा लक्ष्मणप्राणदातृत्व इत्यादि (हनुमान्‌जीके) कर्मोंसे देवताओंको सुख हुआ। वे बंदीखानेसे छूटे और उनके संतप्त हृदय शीतल हुए। यथा, '**उथपैथन थपै उथपन पन बिबुधबृन्द बंदिछोर को। जलधि लंघि दहि लंक प्रबल दल दलन निसाचर घोर को।**' (३१)

ध्वनिसे यहभी सूचित करते हैं कि रावणरूपी सूर्योदयसे देवसमुदायरूपी कुमुद संपुटित हो गये थे। सकुलसदलरावणनाशरूपी सूर्यास्त और श्रीहनुमान्‌रूपी चन्द्रोदयसे वे पुनः विकसित हुए। मिलान कीजिये, "**नारि कुमुदिनी अवध सर रघुमति बिरह दिनेस। अस्त भए बिकसित भई निरखि राम राकेस॥७०॥**" संपत्तिका छिन जाना और रावणसे भयभीत रहनाही यहाँ कुमुदका संकुचित होना है। यथा, '**मुनि सिद्ध सकल सुर परमभयातुर नमत नाथ पदकंजा।** (बा०)

'रबि ससि पवन बरुन धनधारी। अगिनि काल जम सब अधिकारी॥ आयसु करहिं सकल भयभीता। नवहिं आइ नित चरन बिनीता॥'

इनुमान्‌जीको देख केशरीके नेत्रोंको सुख। ३ चन्द्रमासे चकोरको सुख।

चकोरका चन्द्रमासे भारी प्रेम है। वह चन्द्रमाकी ओर एकटक देखता रहता है। वैसेही केसरीका हनुमान्‌जीपर भारी प्रेम है। चकोर चंद्रकिरणको पान करता है। केसरीजी वात्सल्यभावसे अपने पुत्रको देखकर सुखी होते हैं और उनके कीर्त्तिचंद्रकिरणको पान करते हैं।

हनुमान्‌जीने त्रैलोक्यका शोक संताप दूर किया।	४	चंद्रमा लोगोंके शोक संतापको हरता है।

अंधेरी रातमेंही प्रायः चोरों आदिका भय होता है। यथा, '**चोरहिं चंदिनि राति न भावा**'। चन्द्रमा शरदातपको हरता है और उसकी किरणोंसे अन्नादिका पोषण होता है जिससे लोग जीवित रहते हैं। यथा, '**सरदातप निसि ससि अपहरई।**' '**जगहितहेतु बिमल बिधु पूषन।**' (बा०) रावणके अत्याचारसे समस्त लोक शोकातुर और संतप्त थे। यथा, '**निज संताप सुनायेसि रोई। काहू ते कछु काज न होई॥**' '**गगन गिरा गंभीर भइ हरन सोक संदेह।**' (बा०)

२ 'अंजनागर्भ अंभोधिसंभूत विधु विबुधकुलकैरवानन्दकारी' इति। अंजनाके गर्भको समुद्र, श्रीहनुमान्‌जीको चन्द्रमा और सुरवंशको कुमुदिनी-का रूपक देकर आह्लादकत्व विशिष्टगुण प्रदर्शित किया है। माता अंजनाका गर्भ वड़वाग्नि एवं रत्न धारण करनेवाले महोदधिके तुल्य अनन्त, अगाध और प्रशान्त है। तभी तो त्रिभुवनविजयी महावीर हनुमान् जैसा पुत्ररत्न प्रसूत हुआ। जिस प्रकार वड़वाग्निको धारण करनेमें समुद्रही समर्थ है, उसी प्रकार वड़वानलसेभी तीव्रतर हनुमान्‌को गर्भके अन्दर धारण करनेमें माता अंजना पूर्ण समर्थ थी। समुद्रसे चतुर्दशरत्न प्राप्त हुए। माता अंजनाके गर्भसे चतुर्दशभुवनविजयी पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ। समुद्रोत्पन्न विधुरत्न सुधांशु है, अमृत धारण करता है। अंजनागर्भसंभूतरत्न स्वयं अमृत अमर है। सुधांशुमें आल्हादकत्वगुण है किन्तु एकाङ्गी। वह सुखी संयोगी व्यक्तियोंकोही आल्हादित कर सकता है,

विरहियोंको नहीं। मर्यादापुरुषोत्तमकी विरहदशामें उसने उनको आल्हादित न कर व्यथित किया, किन्तु अंजनागर्भसंभूतविधुने उसी विरहावस्थामें उन्हें पूर्ण आल्हादसे विभोर बनाया। 'विधु' पूर्णचन्द्रकी संज्ञा है, पर्यायी है। षोडशकलापूर्णचन्द्रको 'विधु' कहा जाता है। अंजनागर्भसंभूतविधु ज्ञान भक्ति वैराग्यकी समस्त कलाओंसे पूर्ण है। रामरावण युद्धमें भगवान् रामको आड़े और गाढ़े समयमें पूर्ण साहाय्य प्रदान कर भयभीत देवकुलहृदयकुमुदको विकसित करनेमें समर्थ अंजनागर्भसंभूतविधुही थे। (दे० द० शर्माजी)

३ 'केसरी चारु लोचन चकोरक' इति। भक्तशिरोमणि श्रीहनुमान्‌जीके दर्शनसे सुखी होनेसे 'लोचन' को 'चारु' कहा। भागवत और भगवत् दर्शनसे नेत्र सफल होते हैं। इसीसे कहा है, **ज्यों चितई परनारि सुने पातक प्रपंच घर घरके। त्यों न साधु सुरसरि तरंग निर्मल गुनगन रघुबरके।'** (वि०), **'देखु रामसेवक सुनु कीरति रटहि नाम करि गान गाथ।'** (वि०), **'नयनन्हि संत दरस नहिं देखा। लोचन मोरपंख कर लेखा।'** (बा०), और **'हनुमान् देखे जग जीवन को फल भो।'** (बाहुक)। पुनः केसरीजीके नेत्रोंको चारु चकोर कहकर जनाया कि वे हनुमान्‌जीको आँखोंकी ओट नहीं होने देते। प्राकृत चकोर प्राकृत चन्द्रमाको आँखोंसे ओझल हो जाने देता है, अतः वह 'चारु' नहीं है।

४ 'कपि केलि कौतुक उदित चंडकर' इति। (क) श्रीहनुमान्-जीके जन्मकी कुछ कथा अंजनाजीके प्रसंगमें शब्दार्थमें दी गयी है। (ख) सूर्यमण्डलग्रास आदिकी कथा वाल्मीकिजीने कि० सर्ग ६६ और उ० सर्ग ३५ में लिखी है। कि० कांडमें जाम्बवान्‌जीने हनुमान्‌जीसे उनके जन्मादिकी कथा इस प्रकार कही है कि 'तुम्हारा जन्म एक गुहा (पर्वतकी गुफ़ा) में हुआ। उस महावनमें प्रातःकालके समय सूर्यका उदय देख उसे फल समझकर इसे लेनेकी इच्छासे तुम छलाँग मारकर आकाशमें पहुँचे। तीनसौ योजन ऊपर जानेके बाद सूर्यके तेजसे आक्रान्त होनेपरभी तुम्हारे मनमें खेद न हुआ।' उत्तरकांडमें महर्षि अगस्त्यजीने

इनके बालकेलीकी कथा श्रीरघुनाथजीसे इस प्रकार कही है कि 'सुमेरु नामके स्वर्णपर्वतपर इनके पिता केसरी राज्य करते थे। हनुमान्‌जीकी माता अंजना एक दिन फल लानेकेलिये बनमें गयी। उससमय माताके चले जानेसे और भूखकी प्रबलताके कारण बालक हनुमान् बहुत रोये। इतनेमेंही इन्हें जपाकुसुमके समान उदय होता हुआ सूर्य दिखायी दिया। उसे फल समझकर ये उसकी ओर दौड़े। यह देखकर देवता, दानव और यक्षोंको बड़ा विस्मय हुआ। अपने पुत्रको सूर्यकी ओर जाते देख उसे उसकी दाहसे बचानेकेलिये उस समय वायुदेवभी वर्षाके समान शीतल होकर उसके पीछे पीछे चल रहे थे। इस प्रकार बालक हनुमान् कयी हज़ार योजन आकाश पार करके सूर्यके पास पहुँचे। जिस दिन ये सूर्यको पकड़नेकेलिये उछले थे उसी दिन राहुभी सूर्यको ग्रसनेकेलिये चला था। जब इन्होंने सूर्यके रथपर पहुँच राहुको पकडनेकी चेष्टा की तब वह वहांसे भागकर क्रोधमें भरा हुआ इंद्रके पास आकर बोला, 'तुमने मेरी भूख मिटानेकेलिये सूर्य और चन्द्रको मुझे दिया था तब इस समय तुमने उन्हें दूसरेके अधीन क्यों कर दिया? आज मेरा पर्वकाल था, पर वहां तो एक दूसरे राहुने आकर सूर्यको ग्रस लिया। राहुके बचन सुनकर इंद्र घबड़ाकर ऐरावतपर चढ़ राहुको आगे कर वहां पहुँचे। राहुको फल समझ वे सूर्यको छोड़ पुनः उसकी ओर दौड़े तब वह डरकर चिल्लाने लगा, 'इंद्र! मुझे बचाओ।' इंद्रने यह कहते हुए कि 'डरो मत, मैं इसे मारता हूँ,' ऐरावतको बढ़ाया। इन्होंने ऐरावतकोभी एक विशाल फल समझा और ये उसे पकड़ने दौड़े। उस समय कुछ देरकेलिये उनका रूप औरभी भयंकर हो गया। इससे इंद्रकोभी क्रोध हो आया और इन्होंने इनपर वज्रका प्रहार किया। वज्रकी चोट खाकर ये पर्वतपर गिरे जिससे इनकी बायी 'हनु' (ठुड्डी) कुछ टूट गयी। (वाल्मी० रा० उ० सर्ग ३५ श्लो० २२ से ४७ तक)

(ग) 'राहु रवि सक्र पवि गर्ब खर्बीकरन' इति। राहुको गर्व था कि मैंही सूर्यको ग्रस सकता हूँ, सो वहभी इनको देखकर रक्षाकेलिये पुकार करने लगा और भाग गया। सूर्यको अपने तेज और गतिका

गर्व था, सो हनुमान्‌जीके तेज और गतिके आगे जाता रहा। इन्द्रको देवराज, शत्रुशाली होने और अपने वज्रका गर्व था। वह गर्व हनुमान्-जीकी बालकेलीके आगे जाता रहा। वही इन्द्र ऐसे घबड़ा गये कि बालकपरही उन्होंने वज्र चला दिया। शत्रुशाली वज्रभी कुछ न कर सका। केवल कुछ टुड्डीपर चोट आयी। पर साथही वज्रके दाँतही गोठिल हो गये। पद ३१ टि० ४ 'जाकी चिबुक चोट' देखिये।

सूर्यग्रासका आध्यात्मिक रहस्यः–श्रीयुत् रामचंद्र शंकरजी टक्की महाराज लिखते हैं कि, 'श्रीहनुमान्‌जी यह देखकर कि सूर्यरूप ज्ञानको राहुरूप अज्ञान ग्रस रहा है तथा यह जानकर कि ज्ञान और अज्ञान दोनोंही मायानिर्मित हैं, उनपर झपट पड़े। उस समय उनका विरोध करनेकेलिये इन्द्रादिरूप कामादि षड् रिपुओंने अपनी वज्ररूप शक्ति उनके हनुरूप भूमिकापर डाली। किन्तु वह केवल स्पर्श करकेही गेंदकी तरह उछल गयी।' (रामायणाङ्कसे)

'राग धनाश्री' का साभिप्राय प्रयोजनः–पं० देवदत्तशर्माजी लिखते हैं कि गोस्वामीजी आजकलके छायावादी कवियोंकी भाँति निष्प्रयोजन पत्थरमें फूल लिखानेवाले कवि नहीं थे। उन्होंने जो कुछभी लिखा है उसमें उनकी आत्मप्रेरणा, सत्यनिष्ठा निहित है। यही कारण है कि उनके भाव, भाषा और विन्यास अस्त व्यस्त न होकर विशिष्ट आशययुक्त और संगत होते हैं। श्रीहनुमान्‌जीकी स्तुतिमें उनके सच्चे हृदयके खरे भाव तो हैंही, किन्तु कथन और शैलीका सामञ्जस्यभी युक्तियुक्त तथ्यपूर्ण है।

आपने 'राग धनाश्री' द्वारा आञ्जनेयकी बिरुदावली गायी है। 'धनाश्री रागका' प्रयोग सदैव वीररसमें किया जाता है। यह हेमन्तके द्वितीय प्रहरमें गायी जाती है। इस रागमें पांच पदोंद्वारा वीरत्वपूर्ण बिरुदावली ऐसे ढंगसे गायी गयी है कि जिसे पढ़तेही नसनसमें वीरभाव-नाएँ जागृत हो जाती हैं। प्रथम पदमें हनुमान्‌जीके अनेक यशकृत्योंका दिग्दर्शन, स्मरण कराते हुए यह प्रगट किया है कि 'तुम तुलसीदासके

भवभयको नष्ट करनेमें समर्थ हो और जानकीजीवनके साथ सदैव अयोध्यामें निवास करते हो।'

यह प्रसिद्धही है कि हनुमान्‌जीको जबतक उनके पुरुषार्थका परिचय कोई दूसरा न दे तबतक उन्हें आत्मसाहसशक्तिका पताही नहीं रहता। समुद्रोल्लंघनमें जाम्बवान्‌ने परिचय दिया जिसके फलस्वरूप रामचर्चा सुन्दर बनी और रामावतार सफल हुआ। इसी उद्देश्यसे गोस्वामीजीभी उनकी पूर्ण बिरुदावली वीररससे गाकर अपना अभीष्ट सिद्ध करना चाहते हैं।

'युगल सरकारके साथ उन्हींकी राजधानीमें आप उनके विश्वस्त संरक्षक बनकर रहते हैं। उन्हींके निकट विनयपत्र भेजना है। मैं कलि-कल्मषसे क्लान्त हूँ, दीन हूँ। आप स्वयं वीर हैं, समर्थ हैं। युगलसरकारके कृपापात्र हैं। अतः वीरतापूर्वक मेरे दैन्यको नष्ट करनेमें आपही समर्थ है। मुझ पतितकी फ़रियाद राजाधिराजके पासतक आपही पहुँचा सकते हैं और दो शब्द सिफ़ारशके कहनेमें आपही समर्थ हैं। आप जन्मतः विघ्न प्रत्यवायोंको चूर्ण करनेमें समर्थ हैं। अतः मुझे विश्वास है, कि 'बाँहगहेकी लाज' आप अवश्य रखेंगे।'

विशेष भावः–यह पद तुलसीके मुखसे आर्तहिन्दुओंके हृदयकी पुकार है। गोस्वामीजी महात्मा थे। लोककल्याणकी भावनासे ओतप्रोत थे। वे अपने युगके सर्वजनीन, सहृदय राष्ट्रनायक थे। तत्कालीन सत्ताके-प्रति उनके हृदयमें पूर्ण घृणा थी। वे उसको सदय बनकर सत्पथमें लाना चाहते थे। क्रान्ति करना नहीं चाहते थे। भूषण आदिकी भाँति बवण्डर नहीं पैदा करना चाहते थे। उनके हृदयमें एक टीस थी, वेदना थी। फिरभी महात्मा होनेके नाते विरोधियोंको समूल नष्ट करनेकी चेष्टा तो दूर रही, इच्छाभी नहीं थी। विवश होकर यही कहते, '**को करि सोचमरै तुलसी हम जानकिनाथके हाथ बिकाने।**' वे व्यक्तिविरोधी न थे, सिद्धान्तविरोधी थे। व्यक्तिको नष्ट करनेकेलिये वीरकेशरीसे प्रार्थना नहीं करते थे। अपितु जघन्य प्रवृत्तियों और सिद्धान्तोंको समूल नष्ट करनेकेलिये आंजनेयको उकसाते थे। तुलसीदास मानवताके पुजारी थे।

गोस्वामीजीके समयमें देश, धर्म, समाज कुशासनके शिकंजेमें इस प्रकार ग्रस्त था कि विरक्त महात्माका हृदयभी द्रवीत हो उठा और उन्होंने उससे मुक्त होनेकी प्रार्थना संकटमोचनसे की। इसका प्रमाण इस पदका अन्तिम चरण है। 'राहु रवि सक्र पवि गर्ब खर्ब्बी करन सरनभयहरन जय भुवन भर्ता'। 'राहु' और 'सक्र पवि' तत्कालीन शासक और शासनके इशारे हैं। रोटी बेटी छीनी जानेसे भयभीत प्रजाको शरणागत बतलाकर भुवनभर्ता विशेषण देकर औरभी स्पष्ट कर दिया। निःसन्देह यह विनंति गोस्वामीजीने आत्मकल्याणकेलिये नहीं वरं ग्रस्त भारतीय प्रजाकी ओरसे की थी।

गोस्वामीजीका काव्यही रूपक है। यह पद परम्परारूपकका सुन्दर उदाहरण है। चन्द्रमा, सूर्य, राहु आदि साभिप्राय शब्द परम्परितरूपकसे रिक्त नहीं हैं। रामचरितमानसमें भलेही हम चन्द्रमा, सूर्य, राहु और रावणको उनके वाचक अभिधेय मान लें। किन्तु विनयमें तो यवनशासक शासनके अतिरिक्त और कोई भावही नहीं। ऐसेही वर्णन तुलसीकी स्थिति और तत्कालीन सामाजिक दशाके द्योतक हैं।

अनुसंधान [२५]

जयति धीरधुर[३] बीर रघुबीर हित रुद्र अवतार संसारा पाता।
बिप्रसुरसिद्धमुनिआसिषाकर बपुषबिमलगुन बुद्धिबारिधिबिधाता॥३॥
जयति सुग्रीव सिक्षादि रक्षन निपुन बालि बलसालि बध मुख्य हेतू।
जलधिलंघनसिंह सिंहिकामदमथन रजनिचरनगरउत्पातकेतू॥४॥
जयति भूनंदिनी सोचमोचन बिपिन दलन[४] घननाद बस बिगत संका।
लूम [५]लीलानलज्वालमालाकुलित होलिका करन लंकेस लंका॥५॥

---

३ धीर धुर बीर रघुबीर–६६ रा०। धुर धीर रघुबीर रनधीर–भा०, ह०। धर्म धुर धीर रघुबीर रनधीर– बे०। धीर धुर धीर रघुबीर रनधीर–प्र०। रनधीर रघुबीर हित देवमनि–शि०, ५१, ७४, आ०। धर्म धुर धीर पर पीर रघुबीर–ज०। ४ दहन–ह०, ज०। ५. लीला अनल–ब्रि०, ७४, ५१, भ, दी०, वि०। लीलानल–औरोंमें।

शब्दार्थ—धीर = जिसमें धीरज हो; जो संकट या कठिनायी आदि उपस्थित होनेपर घबड़ा न जाय, दृढ़ और शान्त चित्तवाला। धुर = गाड़ी या रथ आदिका धुरा, (वह डंडा जिसमें पहिये पहनाये रहते हैं और जिसपर पहिये घूमते हैं।) भार संभालनेवाला, प्रधान, शिरोमणि। बीर = साहसी और बलवान् योद्धा। हित = लिये। यथा, 'हरि हित हरहु चाप गरु आई' (बा०) भलाई चाहनेवाला, हितैषी। यथा, 'राम सों न मातु पितु स्वामी समरत्थ हित।' अवतार = जन्म, शरीरग्रहण। देवताओंका मनुष्यादि संसारी प्राणियोंके शरीरको धारण करना अवतार कहलाता है। पाता (सं० पातृ) = रक्षा करनेवाला। आसिषाकर = (आसिष+आकर) आशीर्वादोंकी खानि। मंगलकामना-सूचक वचनको आशीर्वाद कहते हैं। आशीर्वादोंका। बपुष (सं० वपुस्) = शरीर, देह। बुद्धि बारिधि बिधाता = पद १ देखिये। सिक्षा (शिक्षा) = उपदेश, मंत्र, सलाह। रक्षन (रक्षण) = आपत्तिसे बचाने, रक्षा करनेमें। निपुन (निपुण) = कुशल, प्रवीण, चतुर, पूरे होशियार। बालि = यह किष्किंधाका राजा और सुग्रीवका बड़ा भाई था। दोनोंके जन्मकी कथा इस प्रकार है कि ब्रह्माकी आँखोंसे गिरे हुए आँसूसे ऋक्षराज नामका एक बानर उत्पन्न हुआ। एक बार अपनी छाया जलमें देखकर वह उसमें कूद पड़ा। जब वहांसे बाहर निकला तो उसका सुन्दर स्त्रीका रूप हो गया। सूर्य और इन्द्र दोनों उसपर मोहित हो गये। सूर्यका तेज उसकी ग्रीवापर पड़ा जिससे सुग्रीव हुआ। इन्द्रका तेज मस्तकपर पड़ा जिससे बाली हुआ। सालि (शालि) = शोभित, पूर्ण भरा हुआ। बलसालि = महाबली। मुख्य=प्रधान, सबसे बड़ा। हेतु = कारण। लंघन = लाँघना, उछलकर पार जाना। सिंह = शेर। यह वीरता और श्रेष्ठतावाचक शब्द है। शेर सरीखे निडर और पराक्रमी। सिंहिका = यह राहुकी माता है। यह स्वेच्छारूप-धारिणी और छायाग्राहिणी थी। रावणकी आज्ञासे यह समुद्रमें रहती थी। 'करि माया नभके खग गहई', जिसमें कोई लंकामें न जा सके। इसका पराक्रम अत्यन्त दुर्धर्ष था। इसकी माया जलमें लगती थी, इसीसे

कोई इसके कार्यमें बाधक न हुआ। यथा, 'सिंहिका नाम सा घोरा जलमध्ये स्थिता सदा। आकाशगामिनां छायामाकृष्याकृष्य भक्षयेत्।' (अध्यात्मे) हनुमान्‌जीने इसका वध किया। मथन = नष्ट वा ध्वंस करनेवाले। रजनिचर = निशाचर, रावण। भूनंदिनी = श्रीजानकीजी। पृथ्वी माताके गर्भसे ये प्रगट हुई थीं; इस कारण भूमिजा, धरणिसुता, भूनंदिनी इत्यादि नाम हुए। विपिन=वन। यहां अशोकवन अभिप्रेत है। यथा, 'तहं असोक उपवन जहं रहई। सीता बैठि सोचरत अहई।' (कि०) 'बन उजारि रावनहिं प्रबोधी' (उ०)। घननाद=मेघनाद। यह रावणका सबसे बड़ा पुत्र था। पैदा होनेपर इसने मेघोंके समान गर्जना की थी। इसीसे मेघनाद नाम हुआ। इन्द्रने जब रावणको बाँध लिया तब इसने अपनी मायासे गुप्त होकर इन्द्रको फाँसकर कैद कर लिया था। उस समयसे उसका नाम 'इन्द्रजित्, पाकारिजित्' हुआ। लूम=पूँछ। लीला=क्रीड़ा, केलि, विलास। वह व्यापार जो केवल चित्तके मनोरंजनकेलिये किया गया हो। ‡ आकुलित=व्याकुल, घबड़ाए हुए व्याप्त, पूर्णयुक्त। होलिका = होली। लकड़ी फूस आदिका वह ढेर जो होलीके दिन जलाया जाता है। वर्षके अंतमें होली जलायी जाती है। इसीसे उसे संवत्सरका जलानाभी कहते हैं।

पद्यार्थ—धीरोंमें श्रेष्ठ और वीर रघुबीर श्रीरामचन्द्रजीके हितैषी, रुद्रके अवतार, संसारके रक्षक,* ब्राह्मण, देवता, सिद्ध और मुनियोंके आशीर्वादोंकी खानि (रूप) शरीरवाले, निर्मल गुणोंके सागर और बुद्धिके विधाता! आपकी जय हो। ३। सुग्रीवजीकी शिक्षा आदि रक्षामें निपुण, महाबली बालिके वधके मुख्य कारण, समुद्रके लाँघनेमें सिंह (के समान

अर्थान्तर—*'रघुबीरकेलिये रुद्रावतार लेकर संसारके रक्षक'। (पं० रा० कु०)। ‡ हु०, वै० ने 'आकुलित' का अर्थ 'व्याकुल' किया है। उनका अर्थ है, 'लूमको घुमाने फिराने आदि कौतुकमें अग्निकी निकली हुई ज्वाला समूहसे व्याकुल रावणकी नगरीको'। भट्टजी और वि० नेभी उन्हींका अर्थ लिया है। परन्तु घबड़ाये हुएको जलानेमें प्रशंसा नहीं है। दूसरे, 'आकुलित' और 'लंकेस लंका' एक दूसरेसे दूर हैं।

निर्भय और पराक्रमी), सिंहिकाके घमंडको चूर्ण कर डालनेवाले, रावणके नगरमें उपद्रव करनेमें केतुरूप (श्रीहनुमान्जी) ! आपकी जय हो ।४। श्रीजानकीजीके सोचको दूर करनेवाले, अशोक वनको ध्वंस (नष्टभ्रष्ट) करनेवाले, मेघनादके वशमें (होकर) भी शंकारहित, अग्निकी ज्वाला-समूहसे युक्त, अपनी पूँछके विलाससे लंकपति रावणकी लंकाको होली करडालनेवाले अर्थात् जला डालनेवाले (श्रीहनुमान्जी) ! आपकी जय हो।५।

टिप्पणी—५ (क) 'धीरधुर बीर रघुबीर हित' इति । 'धीरधुर बीर' रघुबीर और हनुमान्जी दोनोंका विशेषण हो सकता है । किसीभी विकटसे विकट कार्यमें इन्होंने धैर्यका त्याग नहीं किया । आगे 'सिंहिकामदमथन' आदि इनके इस विशेषणके प्रमाण हैं । मानसमें सिंहिकावध प्रसंगमेंभी ये विशेषण आये हैं । यथा, '**ताहि मारि मारुतसुत बीरा । बारिधि पार गएउ मति धीरा ।**' उसको मारनेसे 'वीर' और उसके कपटसे न घबड़ानेसे 'धीर' विशेषण दिये गये । परन्तु 'धीरधुर बीर' को रघुवीरका विशेषण माननेसे हनुमान्जीकी प्रशंसा अधिक होगी कि ऐसे वीरकीभी आपने सहायता की । क्या सहायता की ? यह कि सीता शोध समयही आपने आधी लंका वीरोंसे खाली कर दी, कोटको तहस नहस कर दिया, फिर सेतुबंधन आपकेही बुद्धि देनेसे हुआ, संजीवनी लाकर मेघनादवधके कारण बने, जो कार्य दूसरेसे नहीं हो सकता था वह दुर्गम कार्य करके रावणवधमें सहायक हुए ।

(ख) 'रुद्र अवतार' इति । श्रीहनुमान्जी रुद्रावतार हैं । यथा, दोहावल्याम् '**जानि रामसेवा सरस समुझि करब अनुमान । पुरुखा ते सेवक भए हर ते मे हनुमान ॥**' '**जेहि सरीर रति राम सो सोइ आदरहिं सुजान । रुद्र देह तजि नेह बस बानर मे हनुमान ॥**' '**राम काज लगि तव अवतारा ।**' (किं), '**आर्त्तः संकुचितमुख-कमलः समरसंकटे भगवतो रुद्रावतारस्य मारुतेः साशंकमुख-कमलविकाशं पश्यति ।**' (ह० ना० अंक १३) श्रीरामचन्द्रजी दुःखी होते हुए मलिन मुख कमल होकर रणसंकटमें शंकासे भगवान् रुद्रावतार हनुमान्जीके मुखकमलकी निर्मलताको देखने लगे ।

'मेष लग्नेऽञ्जनी गर्भात्प्रादुर्भूतच्छिवः स्वयम् ।', 'ततो जाम्बवान् देव! रुद्रावतारोऽयंमारुतिः। रुद्रस्तुतिः क्रियताम्।' (ह० ना० अंक ६) जाम्बवान् बोले कि ये हनुमान् रुद्रावतार हैं। इनकी स्तुति कीजिये।

कहा जाता है कि रावणने अपने दस शिरोंसे दस रुद्रोंको प्रसन्न किया। ग्यारहवें रुद्रका अवतार हनुमान्‌जी हैं। यह अनुमान रावणकाभी है। यथा, 'तुष्टः पिनाकी दशभिः शिरोभिस्तुष्टो न चैकादशमो हि रुद्राः। अतो हनुमान्दहतीति कोपात्पंक्तेर्हि भेदो न पुनः शिवाय॥' (ह० ना० ६।२७।)

तंत्रग्रंथों, संहिताओं, सूत्रग्रन्थों और पुराणोंमें अनेक स्थलोंमें हनुमान्‌जीको रुद्र वा महारुद्रावतार माना है। माता श्रीजानकीजीनेभी इन्हें रुद्रावतार माना है। आख्यायिका इस प्रकार प्रसिद्ध है कि एकबार महारानीजीने प्रसन्न होकर अपने हाथोंसे विविध व्यंजनोंका निर्माण करके श्रीहनुमान्‌जीको खिलाना शुरु किया। श्रीहनुमान्‌जीके भोजनकी इति न देखकर उन्होंने उनकी पीठपर 'ॐ नमः शिवाय' लिख दिया। बस उसी समय हनुमान्‌जी तृप्त हो गये। ऐसा करनेका महारानीजीका आशय यही था कि उपस्थित लोग समझ जायँ कि हनुमान्‌जी रुद्रावतार हैं।

(ग) 'रघुबीर हित रुद्र अवतार' इति। इसका एक अर्थ उपर लिख चुके कि 'रघुवीरके हित' हैं। ह० ना० मेंभी कहा है कि लंकामें सुषेणको पहुँचाकर फिर पवनतनयने प्रार्थना की कि 'स्वामिन्! आज्ञा दीजिये, हम सब वीर आपका हित करनेको उपस्थित हैं'। 'देवाज्ञां देहि वीरस्तव हितकरणोपस्थिताः सन्ति सर्वे॥' दूसरा अर्थ यहभी है कि 'रघुवीरकेलिये रुद्रावतार', । यथा, 'राम काज लगि तव अवतारा।'

(घ) 'रघुवीर' इति। त्यागवीरता, पराक्रमवीरता, दयावीरता, विद्यावीरता और धर्मवीरता ये पंचवीरता युक्त होनेसे श्रीरामचन्द्रजीको रघुवीर कहते हैं। यथा, 'त्यागवीरो दयावीरो विद्यावीरो विचक्षणः। पराक्रम महावीरो धर्मवीरो सदास्वतः॥ पंचवीरसमाख्यातः राम एव स पंचधा। रघुवीर इतिख्यातः सर्ववीरोपलक्षणः॥'

(ङ) 'संसारपाता' इति। रुद्ररूपमें तो संहार करते हैं पर 'रुद्रावतार' संसारकी रक्षाकेलिये हुआ। 'संसारपाता' हैं इसीसे इन्हें ऐसी देह मिली जो 'आसिषोंकी मूर्ति' ही है।

६ 'आसिषाकर बपुष' इति। आपका शरीर क्या है मानों समस्त विप्र, सुर, सिद्ध और मुनियोंके आशीर्वादसमूहकी मूर्तिही है। आशीर्वादोंने मिलकर यह शरीर धारण किया है। इसीसे ये 'संसारपाता' हुए। आसिषोंकी कथा इस प्रकार है। अगस्त्यजी कहते हैं कि, 'जब अपने पुत्रको वज्रके आघातसे विह्वल हो गिरते देख वायुदेवने उनको गोदमें लेकर गुफ़ामें घुसकर समस्त प्रजाके भीतरसे अपनी गति समेट ली और सबको प्राणान्त कष्ट होने लगा तब देवताओंको लेकर ब्रह्माजी पवनदेवके पास गये। चरणोंपर गिरते देख वायुको उन्होंने उठाया और बालक हनुमान्परभी हाथ फेरा। वे स्वस्थ हो गये और वायुदेवभी प्रसन्न हो पूर्ववत् सब प्राणियोंमें संचार करने लगे। तब वायुका प्रिय करनेकी इच्छासे ब्रह्माजी बोले, 'इंद्र, अग्नि, वरुण, महेश्वर और कुबेर! आप सब लोग यद्यपि जानते हैं, तोभी मैं आपके हितकी बात कहता हूँ। इस बालकके द्वारा आपके बहुतसे कार्य होंगे। अतः वायुदेवकी प्रसन्नताकेलिये आप सब इसे वर दें। तब इन्द्रने इनके गलेमें सुनहरे कमलोंकी माला डालकर कहा, 'मेरे वज्रसे इसकी हनु टूट गयी थी, इसलिये इस कपिश्रेष्ठका नाम हनुमान् होगा। इसके अतिरिक्त मैं इसको वर देता हूँ कि आजसे यह मेरे वज्रकेद्वाराभी नहीं मारा जा सकेगा।' सूर्यभगवान् बोले कि 'मैं इसे अपने तेजका शतांश देता हूँ और मैं इसे शास्त्रोंका ज्ञान कराऊँगा।' वरुणने वर दिया कि हमारे पाश या जलसे इसकी मृत्यु कभीभी न होगी। यमने अपने दण्डसे अभय किया और निरोगताका वर दिया। कुबेरने वर दिया कि इसे युद्धमें कभी विषाद न होगा और मेरी गदा इसका वध न करेगी। महादेवने वर दिया कि 'यह मेरे और मेरे आयुधोंकेद्वाराभी अवध्य होगा। विश्वकर्माने अपने बनाये समस्त दिव्यास्त्रोंसे अवध्य होने और चिरकालतक जीवित रहनेका वर दिया। अन्तमें ब्रह्माजीने कहा कि 'यह

दीर्घायु, महात्मा तथा सब प्रकारके ब्रह्मदण्डोंसे अवध्य होगा।' फिर पवनदेवसे बोले कि 'तुम्हारा पुत्र शत्रुओंकेलिये भयंकर होगा। इसे कोई न जीत सकेगा। यह इच्छानुसार रूप धारण कर सकेगा और जहां चाहेगा जा सकेगा। इसकी अव्याहत गति होगी। यह बड़ा यशस्वी होगा।'

'इस प्रकार अनेकों वर पाकर उनके प्रभावसे ये बड़े बली हो गये हैं। अपने निजी वेगसे ये साक्षात् समुद्रके समान पूर्ण थे और निर्भय होकर ऋषियोंके स्थानपर उपद्रव किया करते थे। ये शान्तचित्त मुनियोंके यज्ञोपयोगी पात्र फोड़ डालते थे। इसपर भृगु और अंगिरा-वंशीय मुनियोंने इन्हें यह शाप दिया कि, 'अरे वानर! जिस बलके घमंडसे तू हमें कष्ट पहुँचाता है, उसे हमारे शापके प्रभावसे, तू बहुत समयतक भूला रहेगा। जिस समय कोई तुझे तेरे यशका स्मरण दिला-येगा, उसी समय तेरा बल बढ़ेगा। (वाल्मी० रा० उ. ३५)

७ 'विमल गुन बुद्धि बारिधि बिधाता' इति। वाल्मी० उ० में अगस्त्यजी कहते हैं, 'संसारमें ऐसा कौन है जो पराक्रम, उत्साह, बुद्धि, प्रताप, सुशीलता, मधुरता, नीतिअनीतिके विवेक, गंभीरता, चतुरता, शूरवीरता और धैर्यमें हनुमान्से बढ़कर हो। ये अतुलित शक्तिसंपन्न कपिराज व्याकरणका अध्ययन करनेकेलिये सूर्यकी ओर मुख रखकर उनके आगे आगे उदयाचलसे अस्ताचल तक जाते थे। इन्होंने सूत्र, वृत्ति, वार्तिक, भाष्य और संग्रह सभीका अच्छी तरह संग्रह किया है। अन्यान्य शास्त्रोंके ज्ञान तथा छन्द शास्त्रमेंभी इनकी जोड़का कोई दूसरा विद्वान् नहीं है। ये सभी विद्याओंमें और तपस्यामेंभी देवगुरु बृहस्पतिकी बराबरी करते हैं। संग्राममें प्रलयकालीन कालके समान इन हनुमान्जीके सामने ठहरनेकी ताब किसमें है?' गुन बारिधि और बुद्धि बिधाता इस तरह अन्वय करनेसे रूपक और यथासंख्यालंकार होता है।

८ 'सुग्रीव सिक्षादि रक्षन निपुन' इति। (क) श्रीरामलक्ष्मण-जीको पंपासरकी ओरसे आते देखकर जब सुग्रीव अत्यन्त भयभीत हुए 'अति सभीत कह सुनु हनुमाना।' तब उनके अन्य तीन मंत्रीभी जो वहाँ उपस्थित थे भयभीत हो गये। सभी भयभीत होकर भागने

लगे। भगदड़ मच गयी। उस अवस्थामें केवल हनुमान्‌जी निर्भय रहे। बालिके कुचक्रसे शंकित और भयभीत देख बोलनेमें कुशल श्रीहनुमान्‌जीने उनको समझाया, 'आप सब लोग बालिद्वारा अनिष्टकी आशंका न करें'। इस मलय पर्वतपर बाली नहीं आ सकता। अतएव मैं आपके भयका कोई कारण नहीं देखता। आश्चर्य है कि आपका चित्त इतना चंचल हो रहा है जिसके कारण आप अपनेको विचारमार्गपर स्थिर नहीं रख पाते। बुद्धि और विज्ञानसे संपन्न होकर आप दूसरोंकी चेष्टाओंद्वारा उनका मनोभाव समझें और तदनुसार सभी आवश्यक कार्य करें। जो राजा बुद्धिका त्याग कर देता है वह प्रजाका शासन नहीं कर सकता।'* यह 'शिक्षा' है।

इसी तरह जब चतुर्मासा बीत गया, श्रीसुग्रीवजी तारामें आसक्त हो रामकार्यको भूल गये तब फिर हनुमान्‌जीने उनको शिक्षा दी है। यथा, '**इहां पवनसुत हृदय बिचारा। रामकाज सुग्रीव बिसारा॥ निकट जाइ चरनन्ह सिरु नावा। चारिहु बिधि तेहि कहि समुझावा॥**' वाल्मीकीय कि० सर्ग २९ में शिक्षाका विस्तृत वर्णन है। सर्ग ३२ मेंभी शिक्षा है। पाठक वहां देख लें।

(ख) 'रक्षा निपुन' इति। श्रीहनुमान्‌जी बराबर बालीसे इनकी रक्षाका उपाय करते रहे। हनुमान्‌जीही तो श्रीरघुनाथजीको सुग्रीवके पास लाये और उन्हींने तो दोनोंमें मित्रता करायी। यथा, '**नाथ सैल पर कपिपति रहई। सो सुग्रीव दास तव अहई॥ तेहि सन नाथ मइत्री कीजै। दीन जानि तेहि अभय करीजै॥**' '**तब हनुमंत उभय दिसि की सब कथा सुनाइ। पावक साखी देइ करि जोरी प्रीति दृढ़ाइ॥**' (कि०) इसीसे इन्हें 'बालि बलसाली बध मुख्य हेतू' कहा। न ये सुग्रीवकी श्रीरामजीसे मित्रता कराते, न बालीका वध होता।

---

* 'उवाच हनूमान् वाक्यं सुग्रीवं वाक्यकोविदः ॥१३॥ संभ्रमस्त्यज्यतामेष सर्वैर्बालिकृते महान्। मलयोऽयं गिरिवरो भयं नेहास्ति बालिनः ॥१४॥ 'लघुचित्ततयाऽऽत्मानं न स्थापयसि यो मतौ ॥१७॥ बुद्धिविज्ञानसंपन्न इंगितैः सर्वमाचर। नह्यबुद्धिं गतोराजा सर्वभूतानि शास्ति हि ॥१८॥' (वाल्मी० रा० कि० सर्ग २)

(ग) ' बालि बलसालि ' इति। बालीके बलकी कथा सुग्रीवने श्रीरामजीसे स्वयं कही है। वह यह कि, "दुंदुभी राक्षस जो विशाल पर्वताकार भैंसेका रूप धरकर बालीसे लड़ने आया था, उसे बालीने हाथोंपर उठाकर पृथ्वीपर दे मारा और उसके निष्प्राण शरीरको (जिसके समस्त छिद्रोंसे बहुत खून गिरा था) हाथोंपर उठाकर बड़े वेगसे चार कोसपर फेंक दिया। उसकी सूखी हड्डियोंका ढेर पर्वतशिखरके समान जान पड़ता है। मोटे मोटे सालके सात वृक्ष हैं। पूर्वकालमें बालीने सालके इन सातों वृक्षोंको एकएक करके कई बार बींध डाला है। वह बड़े बड़े बलवानोंसेभी बली है। देवताभी उसे नहीं जीत सकते।" मानसमेंभी कहा है **'बालि महाबल अति रनधीरा।'** हनु० ना० अंक ५ श्लोक ४८ में लक्ष्मणजीने श्रीरामचन्द्रजीसे बताया है कि ' इन सातों ताल वृक्षोंका एक बाणसे नाश कर देना योग्य है, नहीं तो ये फिर मारनेवालेकोही मार डालते हैं।' **' एकदैव शरेणैकेनैव भिन्नकलेवराः। म्रियन्ते सप्ततालास्तं घ्नन्ति हन्तारमन्यथा।'**

ऐसाभी कहा जाता है कि उसको वर था कि जो कोई उसके सामने आवेगा तो उसका आधा बल बालीमें आ जावेगा। अतः ' बलशालि ' विशेषण दिया गया।

(घ) ' सिंहिका मद मथन ' इति। इसे मायाबलसे छायाग्राही हो गगनचारीका काम तमाम करनेका घमंड था। इसने ज्योंही हनुमान्‌जीकी छाया पकड़ी त्योंही हनुमान्‌जीको मालूम हुआ कि उन्हें सहसा किसने पकड़ लिया है। फिर नीचे जलमें एक विकृत मुखवाली राक्षसीको देखकर वे समझ गये कि यह वह अद्‌भुत छायाग्राही प्राणी है जिसे सुग्रीवने चलते समय बताया था। हनुमान्‌जी उसके मर्मस्थानोंको देखकर उसके मुँहमें घुसे और तीखे नखोंने उसके मर्मस्थानोंको फाड़कर बड़ी शीघ्रतासे बाहर निकलकर पुनः चल दिये। (वाल्मी०)। अध्यात्म रा० में पैरसे मारना लिखा है। मदभेद होनेसे कविने यहां 'मदमथन' कहा।

'मद मथन' को दीपदेहलीन्यायसे 'रजनिचर' के साथभी ले सकते हैं।

क्योंकि रावण समझता था कि किसीकी मजाल नहीं जो लंकाकी ओर दृष्टि डाल सके। वहाँ पहुँचना और आग लगाना तो स्वप्नमेंभी दूर था।

(ङ) 'रजनिचर नगर उत्पाद केतू' इति। केतू और राहुका संबंध है। यह एक पुच्छलतारा है। इसका उदय जहां होता है वहां उत्पाद, उपद्रव, घोर घटनाएँ, राजाकी मृत्यु, अवर्षण, अकाल और महामारी इत्यादिसे प्रजाको क्लेश इत्यादि अरिष्ट होते हैं। यथा, '**दुष्ट उदय जग आरति हेतू। जथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतू॥**' (उ० १२०) '**उदय सम केतु हित सबहीके।**' (बा०) हनुमान्‌जी उपमेय और केतु उपमानमें पूर्णरूपसे एकरूपता कथन 'समअभेदरूपक' है।

९ 'भूनंदिनीसोचमोन' इति। (क) श्रीजानकीजीको सोच था कि यथा '**जहं तहं गईं सकल मिलि सीताके मन सोच। मास दिवस बीते जो मोहि मारिहि निसिचर पोच॥**' (सुं०) अर्थात् अभी एक मास तक विरह और सहना पड़ेगा। फिरभी एक अधम राक्षसके हाथों मरण होगा। स्वयं जल मरना चाहती हैं तो अग्निभी नहीं मिलती। शूलसमान वाणी सुनना पड़ेगी। उनके इस सोचको हनुमान्‌जीने मुद्रिका देकर, अपना परिचय और विश्वास कराकर, प्रभुका संदेसा देकर, अपना विशाल रूप दिखाकर और लंका जलाकर मिटाया। यथा, '**बूड़त बिरह जलधि हनुमाना। भएउ तात मो कहुं जलजाना।**' '**प्रभु संदेस सुनत बैदेही। मगन प्रेम तन सुधि नहिं तेही।**' (सुं० १४–१६) '**मन संतोष सुनत कपि बानी। भगति प्रताप तेज बल सानी।**' लंकासे चलते समय उन्होंने '**जनकसुतहि समुझाइ करि बहु बिधि धीरज दीन्ह।**' और फिर प्रभुसे इनका समाचार कह उनको तुरंत लंका ले आये।

(ख) 'सोचमोचन' के साथ 'भूनंदिनी' शब्द देनेमें भाव यह है कि पृथ्वीको सोच था कि भू भार कैसे उतरेगा, रावणादिका वध कैसे होगा ? यथा, '**अतिसय देखि धरम कै ग्लानी। परम सभीत धरा अकुलानी॥ निज संताप सुनायेसि रोई। काहू ते कछु काज न होई॥ संग गोतनधारी भूमि बिचारी परम बिकल भय सोका।**'

श्रीजानकीजी ‘ भूमिजा ’ हैं, अतः उनको अपनी माताके कष्टका, भूभार-हरणमें विलंब होनेका ‘ सोच ’ होना उचितही है।

(ग) ‘ सोचमोचन ’ के बाद ‘ बिपिनदलन ’ इत्यादि सब चरित क्रमसे जैसे जैसे वे हुए, कहे गये। जोभी चरित इस चरणमें कहे गये वे सभी ‘ सोच ’ के छुड़ानेवाले कहे। इनसे बताया है कि किस प्रकार ‘ सोच ’ मोचन किया।

(घ) ‘ घननाद बस बिगत संका ’ इति। यह इशारा सुन्दरकांडमें कहे हुए नागपाशवाली कथाकी ओर है। जब मेघनाद छल बल मायासेभी हनुमान्‌जीको न जीत सका और उसे अपने प्राणोंका भय हुआ तब “ **ब्रह्म अस्त्र तेहि साधा कपि मन कीन्ह बिचार। जो न ब्रह्मसर मानिहौं महिमा मिटै अपार॥** ” ब्रह्मास्त्र एवं ब्रह्माके वरदानकी महिमा मिट जायगी, इस विचारसे श्रीहनुमान्‌जी स्वयं मूर्च्छित बन गये। नहीं तो ब्रह्मास्त्र उनका कुछभी न कर सकता था। यथा, “ **प्रभु कारज लगि कपिहि बँधावा।** ” और अपनी पूँछमें आग लगवानेके बाद वे अपने शरीरको छोटा करके पाशसे बाहर निकल आये। इसीसे मेघनादद्वारा बंधन होनेसे इनको भय न हुआ।

(ङ) ‘ बिगत संका ’ इति। जो बाँधा जाता है उसे चित्तमें अनिष्टकी शंका रहती है। इसीसे ‘ घननादबस ’ कहकर ‘ बिगत संका ’ कहा। यथा, ‘ **देखि प्रताप न कपि मन संका। जिमि अहिगन महं गरुड़ असंका॥** ’ निःशंक होनेका कारण इस अर्धालीसे स्पष्ट है। इनको बिलकुल भय नहीं था, यह बात रावणके ‘ **देखउँ अति असंक सठ तोही।** ’ इस वाक्यसेभी प्रगट है।

‘ बिगत ’ यह शब्द जब यौगिक अवस्थामें किसी संज्ञाके पहले आता है तब इसका अर्थ होता है ‘ जिसका नष्ट हो गया है ’। जैसे बिगतज्वर, बिगतनयन, बिगतत्रास।

१० (क) ‘लूम लीला’ इति। यथा, ‘ **बालधी बिसाल बिकराल ज्वाला जरत ज्यों लंक लीलबे को काल रसना पसारी है। कैधों चली मेरु ते कृसानु सरि भारी है।** ’ (क० सुं०)

(ख) 'होलिका करन लंकेस लंका' इति। लंकेस लंका' का भाव कि रावणके विद्यमान् रहते लंका होलीकी तरह जला डाली। यह उसकी राजधानी थी जिससे देवतातक भयभीत रहते थे। मिलान कीजिये, 'देखत तोहि नगर जेहि जारा। कहाँ रहा बल गर्व तुम्हारा॥'

पुनः भाव कि जिस रावणको अपने बल पौरुषका अभिमान था उसकी लंका थी। मानस सुंदरकांडमें हनुमान् रावण संवादमें प्रारंभमें कविने 'लंकेस' पद दिया है। वही शब्द यहां देकर जनाया है कि जिस लंकेशने ऐसी ऐसी गर्वीली बातें की थीं उसीकी यह 'लंका' है।

(ग) 'होलिका करन' इति। यथा 'गोपद पयोधि करि होलिका ज्यों लाई लंक निपट निसंक पर पुर गलबल भो।' (बाहुक) 'उलटिपलटि लंका सब जारी।' 'होलीका करन' में यहभी ध्वनि है कि रावणका संवत्सर अब जल गया और श्रीरघुनाथजीका संवत्सर प्रारंभ हुआ।

अनुसंधान [२५]

जयति सौमित्रिरघुनंदनानंदकर रिक्ष कपि कटक संघट विधाई।
बद्ध सागर[६] सेतु अमरमंगलहेतु भानुकुलकेतु रनबिजयदायी॥
जयति[७] बज्र तनु दसन नख[८] मुख बिकट चंड भुजदंड तरु सैल पानी।
समर तैलिकजंत्र तिल तमीचर निकर पेरि डारे सुभट घालि घानी॥
जयति दसकंठ घटकर्ण बारिदनाद कदनकारन कालनेमि हंता।
अघट घटना सुघट सुघट बिघटन बिकट भूमिपातालजलगगन गंता॥
जयति विश्वबिख्यात बानैत बिरुदावली बिदुष बरनत बेदबिमल बानी।
दास तुलसी त्रासत्रमन सीतारमन संग सोहत[९] राम राजधानी॥

---

६ बद्ध सागर—६६। बद्ध बारिध—रा०, भा०, बे०, ५१, आ०। बाँधि बारिधि—ह०, ७४, ज०। बंधि बारिधि—१५। ७ जयति बज्र—६६, रा०। जयति जय बज्र—भा०, बे०, ह०, ५१, ७४, आ०। जयति बर बज्र—ज०। ८ मुख नख—७४। ९ सोहत—६६। सोभित—औरोंमें।

शब्दार्थ—संघट बिधाई=टि० ११ (ग) देखिये। बद्ध = जिससे बाँधा गया हो। (श० सा०) बद्ध सागर सेतु = जिसके द्वारा सागरमें सेतु बाँधा गया, सेतुबंधनमें सहायक वा सेतुबंधनके करनेवाले। अमर = जिन्होंने अमृत पान किया है, देवता। केतु = पताका, झंडा। लकड़ी आदिके डंडेके एक सिरेपर पहना हुआ तिकोना या चौकोना कपड़ा जिसपर कभीकभी राजा या संस्थाका चिन्ह या संकेत चित्रित रहता है। श्रेष्ठ। विजय = जीत। दसन (दशन) = दाँत। बिकट = भयंकर। यथा '**बिकट वेष रुद्रहिं जब देखा। अबलन्ह उर भय भयेउ बिसेषा।**' (बा०) चंड = बल और साहस भरे हुए, पुष्ट। (वै०) प्रबल एवं दुर्दमनीय। भुजदंड = हाथके ऊपरका भाग जो डंडाकार होता है। पानी (सं० पाणि) = हाथ। तैलिक जंत्र = तिल, सरसों आदिसे तेल निकालनेवाली कल, कोल्हू। तिल इसे सभी जानते हैं। यह दो प्रकारका होता है। एक काला दूसरा सफ़ेद। यह खानेके काममेंभी आता है और इसका तेलभी निकालकर खाने और लगाने दोनों कामोंमें आता है। निकर = समूह। पेरना = दो भारी तथा बड़ी वस्तुओंके बीचमें डालकर किसी तीसरी वस्तुको इस प्रकारका दबाना कि उसका रस निकल आवे। कोल्हूमें तिल डालकर उसका तेल निकालनेकी क्रिया। यथा, '**भूली सूल कर्मकोल्हुन तिल ज्यों बहु बारनि पेरो।**' (वि०) पेरि डारे = पेर डाला, कचूमड निकाल दिया; हाड़मास सब निकाल दिया। घालि = डालकर। यथा, '**स्यंदन घालि तुरत घर आवा**' (लं०) '**सो भुज बल राखेउ उर घालि**' (लं०), '**गएउ तुम्हारेहि कोछे घाली**' (उ०)। घानी=उतनी वस्तु जितनी एक बारमें कोल्हू या चक्कीमें डालकर पेरी या पीसी जाय। यथा, '**सुकृत सुमन तिल मोद बास बिधि जतन जंत्र भरि घानी।**' दसकंठ = दशग्रीव, रावण। घटकर्ण = कुंभकर्ण। बारिदनाद = मेघनाद। कदन=विनाश। कालनेमि = यह वह मायावी राक्षस था जो रावणकी आज्ञासे तपस्वीका वेष धारणकर द्रोणाचलके मार्गमें संजीवनी लेने जाते समय हनुमानजीको छल करके रोकनेकेलिये बैठा था। इसका कपट जाननेपर

हनुमान्‌जीने इसे लांगूलमें लपेटकर पटककर मार डाला। अघट, घटना, सुघट, विघटन = ये चारों शब्द सं० घट् (होना) से बने हैं। घटना =होना; उपस्थित होना। संज्ञाका अर्थ होगा 'कोई बात जो हो जाय, वाक़या, वारदात'। अघट = न हो सकने वाली; कठिन; असंभव। सुघट=सुंदर रीतिसे अर्थात् भलीभाँति बना देनेवाले; सहजही कर देनेवाले, अच्छा बना हुआ। बिघटन=संयोजक अंगोंको अलग अलग करना। तोड़ना, फोड़ना, नष्ट करना। यहां 'वि' उपसर्ग निषेध वा वैपरीत्यका अर्थ दे रहा है। बिघट = नष्ट करनेवाले, न होने-सरीखा कर देनेवाले, बिगाड़ डालनेवाले। गंता=जानेवाले। इसका प्रयोग विशेषतः समस्त पदके अंतमें होता है। जैसे अग्रगंता, गगनगंता। बिख्यात=प्रसिद्ध। बानैत (बाना + ऐत) = बाना धारण करनेवाले, बिरदवाले, यशस्वी योद्धा। बिरुद=बिरद, सुयश, सुकार्योंकी प्रशंसा। बाना = अंगीकार किया हुआ स्वभाव या धर्म। एक हथियार जिसे बानाइत पकड़कर बड़ी फुर्तीसे घुमाते हैं। विदुष=पंडित।

पद्यार्थ—श्रीसुमित्रानन्दन लक्ष्मणजी और श्रीरघुनन्दन रामचन्द्रजीको आनंदित करनेवाले, रीछ और वानरोंकी सेनाको एकत्र करने तथा उसके विधानमें पंडित, समुद्रमें सेतु बाँधनेवाले, देवताओंके मंगलके कारणभूत और रघुकुलमें पताकारूप श्रीरामचन्द्रजीको रणमें विजय दिलानेवाले! आपकी जय हो।६। वज्र (समान दृढ़, कठोर, कड़ी और पुष्ट) शरीर, विकराल दाँतों, नखों और मुखवाले, दुर्दमनीय भुजदंडोंवाले और हाथोंमें वृक्ष और पर्वत धारण करनेवाले! आपकी जय हो। आपने संग्रामरूपी कोल्हूमें निशाचरसमूहरूपी तिलोंकी सुभटरूपी घानी डाल डालकर पेर डाला अर्थात् लंकामें जितने राक्षस थे उनमेंसे जितने उत्तम उत्तम भट थे उनको संग्राममें मार डाला।७। रावण, कुंभकर्ण और मेघनादके नाशके कारण स्वरूप, कालनेमिके मारनेवाले, असंभव कार्यको सहजही कर दिखानेवाले, खूब बने हुएको बिगाड़ डालनेमें, बड़े विकट एवं बने हुए-को बिगाड़नेवाले और विकरालरूप! पृथ्वी, पाताल, जल और आकाशमें (अप्रतिहत, बेरोक) जानेवाले! आपकी जय हो।८। हे जगत्प्रसिद्ध बानावाले!

आपकी जय हो। पंडित और वेद निर्मल वाणीसे आपकी यशावली वर्णन करते हैं। आप श्रीजानकीपति रघुनाथजीकेसाथ श्रीरामराजधानी (श्रीअयोध्याजी) में सुशोभित हो रहे हैं और मुझ तुलसीदासके त्रासके नाशक हैं।

टिप्पणी—११ (क) 'सौमित्रिरघुनन्दनानन्दकर' इति। यथा, "सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनु धारी॥ प्रति उपकार करउँ का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा॥ सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउ करि बिचार मन माहीं॥ पुनि पुनि कपिहि चितव सुरत्राता। लोचन नीर पुलक अति गाता॥" (सुं०)। पुनश्च "कपिसेवा बस भए कनोड़े कहेउ पवनसुत आउ। देबे को न कछू रिनियां हौं धनिक तू पत्र लिखाउ॥" (वि०)

श्रीरघुनाथजीके इन उपर्युक्त बचनोंसेही प्रकट है कि कितना आनन्द हुआ होगा यह कोई कहही नहीं सकता।

स्मरण रहे कि यहां अभी क्रमसे चरित्रका उल्लेख हो रहा है। श्रीजानकीजीका (मुद्रिका देकर) सोच छुड़ाना, अशोकवन उजाड़ना, मेघनादद्वारा नागपाशमें बाँधा जाना और लंकाका जलाना कहे गये। सीताजीका सन्देस देकर आनन्द देना अब कह रहे हैं।

(ख) यहाँ 'सौमित्रि' को प्रथम कहा, यहभी क्रमसे है और साभिप्राय है। समाचार पाकर एवं 'अनुज समेत गहेहु प्रभुचरना' इन बचनोंको सुनकर इनको अतिशय आनन्द हुआ। इस आनन्दका परिचय हमें समुद्रतटपर, बिभीषणजीके सलाह देनेपर कि समुद्रसे विनय कीजिये, मिलता है। उनको देर करना न भाया। जैसा पूज्य कवि स्वयं कहते हैं, 'मंत्र न यह लछिमन मन भावा। राम बचन सुनि अति दुख पावा॥' दूसरे अधिक आनन्दका कारण यहभी है कि सीताहरणमें ये स्वयं अपनेको कारण समझते थे। जैसा कि श्रीरामजीने इनसे कहा है, यथा, 'आयेहु तात बचन मम पेली'। इत्यादि कारणोंसे इनको प्रथम कहा।

(ग) 'कटक संघट बिधाई' इति। 'संघट' शब्द यहाँ 'संगठन' से बना हुआ जान पड़ता है। 'इधर उधर बिखरे, फैले हुएको मिलाकर उपयोगी बनानेकी व्यवस्था' को कटक संघट विधान कहेंगे। पं० रामकुमारजीने 'संघट बिधाई' का अर्थ 'एकत्र करनेमें पंडित' लिखा है। प्रायः टीकाकारोंने भावार्थ करके छोड़ दिया है। बिधाई=विधान करनेवाले, विधि या रीति जाननेवाले। विधान=प्रबंध।

(घ) 'बद्धसागरसेतु अमरमंगलहेतु' इति। सेतुबंधन कहकर अमरमंगलहेतु कहनेका भाव कि देवताओंको सेतुबंधन होनेसे आनन्द हुआ। क्योंकि उनको सन्देह था कि सेना कैसे पार होगी! सेतुबंधन दुष्कर कार्य हुआ, जिसने रावणकोभी दहला दिया था। जैसा 'दसमुख बोलि उठा अकुलाना' (उ०) से प्रगट है। देवताओंको इस कार्यसे बड़ा हर्ष हुआ। यथा, 'लिये सैल साल ताल औ तमाल तोरि तोपे तोयनिधि सुरको समाज हरषा।' (क०)

(ङ) 'भानुकुलकेतु रन विजयदाई' इति। इसमें वही भाव है जो मानसके 'ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भए समरसागर कहं बेरे।' (उ०) इस अर्धालीमें है। भाव कि रावणसंग्रामसागरको इन्होंने छोटी नदी समान बना दिया जिसपर बेड़ाद्वाराही पार हो सकें। श्रीरघुनाथजीको रावणपर विजय पाना सुगम कर दिया। वाल्मीकीय युद्धकांडमें हनुमान्‌जीने कहा है कि हमने सब दुर्गम मार्गों, दुर्गके संक्रमों आदिको नष्ट भ्रष्ट कर दिया। 'शतघ्नः संक्रमाश्चैव नाशिता मे रघूत्तम।' आधीसे ज्यादा सेना तो सीताशोध समयही उन्होंने नष्ट कर दी थी। फिर कालनेमिवध, संजीविनी लाना इत्यादि कार्य करके भगवान्‌को विजय प्राप्त करनेमें सहायक हुए। अतः 'रणविजयदाई' कहा। मिलान कीजिये, "मनको अगम तन सुगम किये कपीस काज महाराजके समाज साज साजे हैं।" "तेरे बल बानर जिताए रन रावन सों तेरे घाले जातुधान भये घरघरके। तेरे बल रामराज किये सब सुरकाज सकल समाज साज साजे रघुबरके॥" (बाहुक)

१२ (क) 'बज्र तनु दसन नख मुख बिकट' इति। आदिमें

'वज्र' और अंतमें 'बिकट' को रखकर बीचके 'तनु, दसन, नख और मुख' सभीको वज्रवत्, पुष्ट और विकराल सूचित किया। यथा, **'बिकट भृकुटि बज्र दसन नख'** (२८) यहां श्रीहनुमान्‌जीके वीर विकराल पर्वताकार रूपका वर्णन है जिस रूपसे उन्होंने राक्षसोंका वध किया है। अंगमें निशाचरमर्दन करते, दाँतोंसे नाक कान काटते, नखसे शरीर विदीर्ण कर आँतें निकालते और मुखसे भेरि, निशान आदिकी ध्वनि रणभूमिमें करते। दाँतोंके वज्र समान होनेका प्रमाण पद्म० पु० पाताल-खण्डमें उग्रदंष्ट्रसे युद्धके समय मिलता है। हनुमान्‌जीने उसके त्रिशूलको अपने दाँतोंसे चूर चूर कर डाला था।

(ख) 'बज्र तनु' इति। वज्रांग और बजरंग आपका नाम है। 'राम' नाम शरणागतकेलिये 'पबिपंजर' कहा गया है। यथा **'सरनागत पबिपंजर नाऊं'**। इनका शरीर 'राम' नामकी मूर्तिही है। आपके रोमरोममें 'रामनाम रमणीय' देदीप्यमान् है और हृदयमें स्वयं श्रीसीतारामजी धनुषबाण लिये हुए सदा विराजमान् रहते हैं। अतः शरीरभर वज्रसमान है जिसमें किसीकेभी अस्त्रशस्त्र कुछभी कारगर नहीं हो सकते। यहां वाचकधर्मलुप्ता अलंकार है।

(ग) 'तरु सैल पानी' इति। राक्षसवधमें तत्पर, एक हाथमें वृक्ष और एकमें पर्वत, मारनेकेलिये वृक्ष और सेना व रथ आदि कुचलने-केलिये पर्वत येही दो आयुध इस युद्धमें आप विशेष काममें लाये हैं। यथा '**गिरि तरु नख आयुध सब बीरा।**' सीताशोधसमय भुजदंड और वृक्षोंसेही आपने सबका काम तमाम किया। यथा, '**रच्छक मर्दि मर्दि महि डारे।**', '**गहि गहि कपि मरदइ निज अंगा।**', '**आवत देखि बिटप गहि तर्जा।**', '**अति बिसाल तरु एक उपारा।**' दूसरे, अशोकवनमें वृक्षकी बहुतायत थी इससेभी पहले 'तरु' कहा, तब 'सैल'।

(घ) 'समर तैलिक जंत्र तिल तमीचर' इति। यहां परंपरित-रूपक अलंकार है। संग्राम (संग्रामभूमि) कोल्हू है, समस्त राक्षस तिल हैं, उसमेंसे जितने सुभट हैं वे घानी हैं। कोल्हूमें तिलकी घानी

पड़नेपर वह उसे पेरकर तेल निकालता है, खली अलग रह जाती है। यहाँ पेर डालनेमात्रका रूपक है। बैजनाथजी कहते हैं कि "तेल निकालना जीवका शुद्ध होकर परधाम जाना है। मृतक देह खलीके समान है जिसे गृध्रादि खाकर तृप्त हुए।"

प्रायः सभी टीकाकारोंने "सुभट रजनीचर तिल हैं" ऐसा अर्थ किया है। परन्तु पदमें 'तमीचरनिकर' को तिल कहकर केवल सुभट-घानीको पेर डालना कहा है। भाव कि ये सुभटोंसे भिड़ते थे, भटोंकेलिये और सेना काफी थी और जो रणमें नहीं आये वे नहीं मारे गये।

१३ (क) 'दसकंठ घटकर्ण बारिदनाद कंदन कारन' इति। यहां किसीके शुद्ध नाम न देनेमें भाव यह है कि आपने प्रथम सबको बिरूप कर दिया, तत्पश्चात् वे सब मारे गये। आपने तीनोंके बलगर्वको चूर्ण कर दिया, सबका तेज और प्रताप हत हो गया, नाम जाता रहा। अतः बिगड़ा हुआ नाम रह गया। कालनेमिको हनुमान्जीने स्वयं मारा; इसीसे उसका नाम वैसाही दिया। मिलान किजिये, 'कुंभकर्न रावन पयोदनाद ईंधन को तुलसी प्रताप जाको प्रबल अनल भो।' (बाहुक)

(ख) 'अघट घटना सुघट' इति। समुद्रलंघन, लंकादहन, संजीविनीप्राप्ति इत्यादि असंभव कार्य समझे जाते थे जिसके अनेक प्रमाण वाल्मीकीय और कवितावली इत्यादिमें मिलते हैं। 'सुघट बिघटन' इति। बाली, सिंहिका, मेघनाद, रावण आदिके बल, तेज, प्रतापकी धाक संसारमें जमी हुई थी। उनके नाशको इन्होंने सुलभ कर दिया।

(ग) 'दसकंठ कंदनकारन' कहकर 'कालनेमिहंता' कहनेका भाव कि कालनेमिका वध इनके नाशमें सहायक हुआ। कालनेमिहंतासे संजीविनीप्राप्तिका पूरा प्रसंग जनाया है। यह कामभी बड़ाही दुष्कर (अघट) था। यथा, "संकट समाज असमंजसमें रामराज काज जुग पूगनि को करतल पल भो।" (बाहुक) बिना इसके मेघनादवध न हो सकता और मेघनादके रहते निशिचरनाश और बिभीषणराज्य असंभव थे। यही असमंजस श्रीरामजीको था। 'कालने-

मिटंता ' कहकर ' अघट घटना सुघट ' कहा, क्योंकि ये सब कार्य दुर्घट थे ।

(घ) ' भूमि पाताल गगनगंता ' इति । रावण जहाँ यज्ञ करने गया था वह पातालगुफ़ा कहलाती थी । उसमें आप घुस गये । अहिरावण और महिरावण पातालमें रहते थे उनको वहां जाकर मारा । सिंहिका समुद्रमें रहती थी, वहां जाकर उसको मारा । समुद्रलंघन आकाशमार्गसेही हुआ और पृथ्वीपर तो हैंही । बालकेलिसे छलाँग मारकर सूर्यको लेने लपके, राहु और इंद्रपर झपटे । सूर्यसे विद्या पढ़ते समय बराबर उनके सम्मुख आकाशमें चलते रहे.। यथा ' **पाछिले पगनि श्रम गगन मन क्रम को न भ्रम कपि बालक बिहार सो** । ' (बाहुक) और द्रोणाचल लाये इत्यादि कार्योंसे जो आकाशमेंही हुए, इनको ' गगनगंता ' कहा ।

नोट—' अघटघटनासुघटसुघटबिघटन भूमिपातालगगनगंता ' से हनुमन्नाटक अंक १३ और गीतावली लंकाकांड पद ८ में कहे हुए श्रीहनुमद्वाक्यका मिलान करनेसे इनके भाव स्पष्ट हो जाते हैं । अतः वे यहां उद्धृत किये जाते हैं । " **हनुमतिकृत प्रतिज्ञे दैवमदैवं यमोप्ययमः । पुनर्देव पश्य । पातालतः सुधारसमानयामि निष्पीड्य चन्द्रममृतं किमुताहरामि ॥ उद्दण्डचण्डकिरणं ननु वारयामि कीनाशपाशमनिशं कीमु चूर्णयामि ॥१६॥** " पुनश्च " **सप्ताम्भोनिधयो दशैव च दिशः सप्तैवगोत्राचलाः पृथ्व्यादीनि चतुर्दशैव भुवनान्येकं नभोमण्डलम् । एतावत्परिमाणमात्रकटके ब्रह्माण्डभाण्डोदरे क्वासौ यास्यति राक्षसो रघुपतै किं कार्मुकं त्यज्यते ॥१२॥** " " **लक्षणां षष्ठिरास्ते द्रुहिणगिरिरितो योजनानां हनूमांस्तैलाग्नेः सर्षपस्य स्फुट नख परस्तत्र गत्वाऽत्रचैमि ।२०।** " अर्थात् हनुमान्‌जी श्रीरामचंदजीसे बोले, " हनुमान्‌के प्रतिज्ञा करनेपर दैव अदैव हो जाता है और यमभी अयम हो जाता है । स्वामिन् ! और देखिये । क्या मैं पातालसे अमृतसरको ले आऊँ ? अथवा चन्द्रमाको निचोड़कर अमृत ले आऊँ ? या प्रचण्ड किरणमाली सूर्यनारायणको वारण कर दूँ ? वा, निरन्तर पाशधारी यमराजकोही चूरचूर कर डालू ? ।१६।

सात समुद्र, दश दिशा, सप्तपर्वत, पृथ्वी आदिके चौदहो भुवन और एक आकाशमण्डल, इतने परिमाणवाले ब्रह्माण्डके उदरमें वह राक्षस रावण कहाँ जायगा ? इतने स्थानोंमें तो जाकर वह बच नहीं सकता। तो फिर, हे रामचन्द्रजी ! आप धनुष क्यों त्यागते हैं ? । १२ । महाराज ! यहांसे द्रुहिणपर्वत साठ लाख योजन है, जितनी देरमें अग्निपर धरे हुए तेलकी ज्वालामें डाले हुए सरसोंके फूलनेकी आवाज़ होती है, उतनीही देरमें मैं वहाँतक जाकर फिर यहाँ आ जाऊंगा।२०। " इसी तरह हनु० ना० अंक ६ सीता खोजके प्रसंगमें हनुमान्‌जीके ऐसेही वाक्य हैं। यथा " वाज्ञापय किं करोमि सहसा लंकामिहैवानये। जम्बूद्वीपमितो नये किमथवा वारान्निधिं शोषये॥ हेलोत्पाटित विन्ध्यमन्दरगिरिः स्वर्णत्रिनेत्राचल। क्षेपक्षुण्णविवर्तमानसलिलं बध्नामि वारान्निधिम्॥ देवज्ञां देहि राज्ञात्वमपि कुलगुरुः शोषये किं पयोधिं। किंवा लंकां सलंकाधिपतिमुपनये जानकीं मानकीर्णाम्। सेतुं बध्नामि मत्तः स्फुटित गिरितटी भूत भंगात्तरंगादुद्भ्राम्यन्नक्र-चक्रोऽपिच मकरकुल ग्राह चीत्कार घोरम् ॥५॥ किं प्राकारविहारतोरणवतीं लङ्कामिहैवानये किंवा सैन्य समुद्धतंच सकलं तत्रैव संपादये। हेलान्दोलित पर्वतोच्चशिखरैर्बध्नामि वारान्निधिं देवाज्ञापय किं करोमि सकलं दोर्दण्डसाध्यं मम ॥६॥"

" स्वामिन् ! आप मुझे आज्ञा दें, मैं क्या करूँ ? क्या जल्दीसे लंकाको यहाँ ले आऊँ या जम्बूद्वीपको वहाँ ले जाऊँ ? अथवा समुद्रको सोख लूँ ? लीलाहीसे उखाड़े हुए विन्ध्याचल, मंदराचल, सुमेरु तथा कैलास पर्वतादिके फेंकनेसे खंडित और मंथित जलवाले समुद्रको बाँध दूँ ?४। हे महाराज रामचन्द्रजी ! मुझे आज्ञा दीजिये कि क्या मैं समुद्रको शोषण कर जाऊँ ? लंकापतिसहित लंकापुरीको यहाँ ले आऊँ ? या पतिव्रता-धर्मोन्नतिको प्राप्त सीताजीहीको ले आऊँ ? अथवा जिस समुद्रमें मेरे उखाड़े हुये पर्वतोंके गिरनेसे जीवोंका नाश है और जिसमें तरंगोंकेद्वारा ऊपरको उछलते हुए नक्र, मकर और ग्राह आदि चित्कार मार रहे हैं उसपर सेतु बाँध दूँ ? ५। क्या मैं प्राकार (शहरपनाह) के विहार और

ध्वजा तोरणोंवाली लंकाको यहाँ ले आऊँ ? अथवा लंकाहीमें वहाँकी संपूर्ण सेना नष्ट कर दूँ ? क्रीड़ासे हिलाये हुए पर्वतोंके शिखरोंसे समुद्रको बाँध दूँ ? देव ! आप मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं क्या करूँ ? मेरे भुजदण्डोंको सभी कुछ साध्य है ।६। ”

गीतावलीमेंभी जाम्ववान्‌के प्रचारनेपर श्रीहनुमान्‌जीने ऐसाही कहा है, “ **तुलसी सुनि प्रभु बचन भालु कपि सकल बिकल हिय हारे। जामवँत हनुमंत बोलि तब अवसर जानि प्रचारे** ।। लं० पद ७ ।।” “ **जो हौं अब अनुसासन पावउँ। तौ चंद्रमहिं निचोरि चैल जिमि आनि अमी सिर नावौं ।। कै पाताल दलौं ब्यालावलि अमृतकुंड महि लावौं। भेदि भुवन करि भानु बाहिरहि तुरत राहु दै तावौं ।। बिबुधवैद्य बरबस आनौं धरि तौ प्रभु अनुग कहावौं। पटकौं नीच मीच मूषक जिमि सबहि पाप को बहावौं ।। तुम्हरी कृपा प्रताप तिहारे नेकु बिलंब न लावौं। दीजै सोइ आयसु तुलसी प्रभु जेहि तुम्हरे मन भावौं** ” ॥ ८ ॥

१४ (क) ‘विश्वविख्यात बानैत’ इति । ‘बानैत’ अर्थात् बाँके वीर होनेका बाना धारण करनेवाले। यथा, ‘ **जाकी बांकी बीरता सुनत सहमत सुर जाकी आँच अजहूं लसत लंक लाहसी। सोई हनुमान बलवान बाँके बानाइत जोहि जातुधान सेना चले लेत थाहसी** ।’ (क०), ‘**बांकुरो बीर बिरुदैत बिरुदावली बेद बंदी बदत पैजपूरो**।’ (बाहुक) ‘विश्वविख्यात’ का भाव कि जो हमने उनकी बाँकी बीरता कही है यह सब सत्य है, विश्वमात्रमें प्रसिद्ध है, सब जानते हैं। यथा बाहुके, ‘ **को है जगजाल जो न मानत इताति है** ।’

(ख) ‘ बिरुदावली बिदुष बरनत ’ इति । विश्वविख्यात बानैते, अर्थात् महाभटशिरोमणि हैं, बंदीछोर बाना है, बांके वीर हैं इत्यादि बिरुदावली है जो वेद गाते हैं। यथा, ‘**बंदीछोर बिरुदावली निगमागम गाई** ।’ (३५), ‘**जयति रुद्राग्रणी बिश्वविद्याग्रणी विश्वविख्यात भट चक्रवर्ती** ।’ (२७), ‘**अघटितघटन सुघट बिघटन ऐसी बिरुदावली नहिं आनकी** ।’ (३०), ‘**बेद पुरान प्रगट पुरुषारथ सकल सुभट सिरमोर को**’ (३१),यह बिरुदावली और बाना है ।

विश्व कैसे जानता है ? यह 'बरनत बेद' से बताया। यह वेदोंमें वर्णित है। यह पंडितों, वेदज्ञोंद्वारा जगत्में प्रसिद्ध हुआ। अथर्ववेदमें कहा है 'ततस्ततारं हनुमानब्धिं लंकां समाययौ। सीतां दृष्ट्वाऽसुरान्हत्वा पुरंदग्ध्वा तथा स्वयमागत्य रामेण सह न्यवेदयत्तत्वतः॥' (श्रीरामतापनीयोपनिषद् ।४४।) 'बिदुष बरनत' इति। यथा, कवित्तरामायणे, 'दासतुलसीके बिरुद बरनत बिदुष बीर बिरुदैत बर बैरि धाँके। नाक नर लोक पाताल कोउ कहत किन कहां हनुमानसे बीर बांके॥'

(ग) 'बिमल बानी' इति। भाव कि वेद भगवान्की वाणी है। यथा, 'जाकी सहज स्वास श्रुतिचारी।' यह कभी असत्य नहीं हो सकती। यह सदा पवित्र और सत्य है। साधारण देवताओंकी वाणी असत्य नहीं होती तब भला वेद वाक्य कब असत्य हो सकते हैं! यहां शब्दप्रमाण अलंकार है।

(घ) 'सीतारमन संग सोहत रामराजधानी।' इति। यहांतक श्रीहनुमान्जीका जन्म, बालकेलि, अवतार और आसिषोंका हेतु, अवतार लेनेपर रामकार्यके पूर्वके चरित, सूर्यसे विद्याध्ययन और गुरुदक्षिणामें सुग्रीवकी शिक्षा रक्षा कहकर रामायणके मुख्य चरित्र बालिवधहेतु, सिंधुलंघन इत्यादिसे रावणवधपर्यन्त सब क्रमशः कहे। 'सीतारमन संग' से लंकासे अवधतक साथ आना और फिर यहीं सेवामें रह जाना कहते हुए यह सूचित कर रहे हैं की अबभी आप यहां श्रीसीतारामजीसहित बिराजमान् हैं और भक्तोंके त्रास शमन करते रहते हैं। यह 'सोहत' वर्तमान्कालिक क्रिया देकर जनाया।

नोट—लाला भगवान्दीनजी कहते हैं कि 'श्रीशिवजी और हनुमान्जीके यशकी प्रशंसा श्रीरघुनाथजीको अतिप्रिय है। इसी हेतु गोस्वामीजीने इनकी स्तुतिमें अधिक रूपक लिखे हैं।' शिवजी कहते हैं, 'गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई। बार बार प्रभु निज गुन गाई।' भक्तमात्रका यश भगवान्को प्रिय है। यथा, 'अगर अनुग गुन बरनते सीतापति नित होयँ बस। हरिसयश प्रीति हरिदासकै त्यों भावै हरि दास यश।' (भक्तमाल) और ये तो भक्ताग्रण्य हैं।

२६ [१५]

जयति[1] मर्कटाधीस मृगराज बिक्रम महादेव मुदमंगलालय कपाली।
मोहमदकोह[2] कामादि खल संकुला घोर संसारनिसि किरणमाली ॥
जयति लसदंजनादितिज कपिकेसरीकस्यपप्रभव जगदार्त्तिहारी[3]।
लोक लोकप कोक कोकनद सोकहर हंस हनुमान कल्यानकारी[4] ॥
जयति सुबिसाल बिकराल बिग्रह बज्रसार सर्वांग भुजदंड भारी।
कुलिसनख दसन बल[5] बसति बालधि बृह[6]द्वैरि शस्त्रास्त्रधरकुधरधारी॥
जयति जानकीसोचसंतापमोचन रामलक्ष्मणनंद बारिज बिकासी।
कीस कौतुक केलि लूम लंका दहन दलन कानन तरुन तेजरासी ॥

शब्दार्थ—मर्कटाधीस=(मर्कट+अधीस) वानरराजा। मृगराज=पशुओंका राजा, सिंह। विक्रम=शक्ति, शौर्य या बलकी अधिकता, पराक्रम। यथा, '**बिपुलबलमूल सार्दुलविक्रम जलदनादमर्दन महाबीर भारी।**' आलय=घर, ताक, स्थान। कपाली = कपाल (खोपड़ी) को हाथमें धारण करनेवाले। †संकुला=भरी हुई, घनी। किरणमाली=सूर्य। 'करमाली' पद २ देखिये। लसदंजनादितिज (लसत् + अंजना + अदितिज) = सुन्दर अंजनारूपी अदितिसे जायमान। ज = जात, उत्पन्न। यह प्रत्यय प्रायः तत्पुरुष समासके पदोंके अंतमें आता है। पंचमी तत्पुरुष आदिमें पंचम्यंत पदोंकी विभक्ति लुप्त हो जाती है। जैसे पादज, द्विज इत्यादि। पर सप्तमी तत्पुरुष 'प्रावृट', 'शरत्', 'काल'

---

१ मु०, ७४ में नहीं है। २ लोभ–शि०। ३ हर्त्ता। ४ कर्त्ता–भा०, बे०, प्र०, ज०, १५, इ०, ७४, शि०, आ०। हरता करता–रा०। हारी, कारी–६६। ५ बल बसति–६६, रा०, ज०, ५१, भ०, बे०। बर लसति–इ०, प्र०, मु०। बर लसत–डु०, वै०, ७४, १५, भ०, दी०, वि०। ६ बृहद्वैरि–६६, रा०; आ०। बृहद्बीर–भा०, बे०, प्र०, इ०, ज०, ५१, १५, मु०, ७४।

† 'संकुला घोर' का पदच्छेद किसी किसीने 'संकुल + आघोर' वा 'संकुला+आघोर' करके 'अघोर' का अर्थ 'परम भयावह' किया है।

और 'द्यु' इन चार शब्दोंके अतिरिक्त शेष स्थलोंमें विभक्तिका लोप विवक्षित होता है। जैसे मनसिज, मनोज, सरसिज, सरोज इत्यादि। अदिति ये दक्ष प्रजाप्रतिकी कन्या और महर्षि कश्यपकी पत्नी हैं। सूर्य आदि देवता इन्हींके पुत्र हैं। ये देवताओंकी माता हैं। कश्यप ये वैदिककालीन ऋषि हैं। ऋग्वेदमें इनसे दर्शित 'ऋषयोमन्त्रद्रष्टारः' इत्यादि अनेक मंत्र हैं। ब्रह्माके पुत्र मरीचिके पुत्र होनेसे ये ब्रह्माके पौत्र हैं। ये प्रजापति और सप्तर्षियोंमेंसेभी एक हैं। भगवान् राम प्रायः इनके पुत्र होते हैं जब ये दशरथ होते हैं। एक कल्पमें इन्हींकी १३ स्त्रियोंसे संपूर्ण सृष्टि हुई। यथा 'कश्यपते भइ सृष्टि सकल श्रुति ऐसे गावत।' (विश्रामसागर)।* प्रभव = उत्पन्न। यथा 'प्रकर्षेण भवः उत्पन्नः प्रभवः'। जगदार्तिहारी = (जगत् + आर्ति + हारी) जगत्के दुःखके हरवानेले। कोक कोकनद लोक=पद २ देखिये। हंस=सूर्य। यथा 'हंस बंस दसरथ जनक रामलखन से भाई।' (अ०)। बज्रसार = हीरा। सर्वांग = सर्व अंग। कुलिस = वज्र (वत्)। बालधि (सं०) = पूँछ। यथा, 'कानन दलि होली रचि बनाई। हठि तेल बसन बालधि बँधाई॥' बृहद्बैरि = बृहत् बैरि। बृहत् (सं०) = बहुत बड़ी, भारी, दृढ और बलिष्ठ। शस्त्रास्त्र = शस्त्र अस्त्र। कुधर (सं० कुध्र) = पर्वत। बारिज = कमल।

पद्यार्थ—वानरोंके स्वामी, सिंहसमान पराक्रमवाले, मुदमंगलके स्थान, मुंडकरडारी, (साक्षात्) महादेव, मोहमदकोह कामादि

---

*कश्यपजीने अपने नामकी व्याख्या इस प्रकार की है कि 'कश्य' नाम है शरीरका। जो उसका पालन करता है उसे कश्यप कहते हैं। मैं प्रत्येक कुल (शरीर) में अन्तर्यामी रूपसे प्रवेश करके उसकी रक्षा करता हूँ, इसलिये कश्यप हूँ। 'कु' अर्थात् पृथ्वीपर 'वम' यानी वर्षा करनेवाले सूर्यभी मेराही स्वरूप हैं। इसलिये मुझे 'कुवम' भी कहते हैं। मेरे देहका रंग काशके फूलकी भाँति उज्वल है। अतः मैं काश्य नामसेभी प्रसिद्ध हूँ।' (महाभा० अनुशासनपर्व वृषादर्भि और सप्तर्षियोंकी कथाके अंतर्गत यातुधानी सप्तर्षिसंवादमें।)

खलोंसे भरी हुई घोर संसाररूपी रात्रिकेलिये सूर्य रूप! आपकी जय हो। १। सुन्दर अंजनारूपी अदितिसे जायमान होकर शोभित, केसरीवानररूपी कश्यपके यहाँ उत्पन्न, जगत्के दुःखके हरनेवाले, लोक और लोकपालोंरूपी चकवा चकई और कमलोंके शोकके मिटानेवाले, (सबका) कल्याण करनेवाले, श्रीहनुमान्‌रूपी सूर्य! आपकी जय हो। २। अत्यन्त विशाल, विकराल (भयंकर) मूर्ति, वज्रसाररूप सर्वांग और भारी भुजदंडवाले, वज्रसमान नखों और दाँतोंवाले! जिनकी बड़ी पुँछमें बलका निवास है, और शस्त्रास्त्रधारी शत्रुओंके (नाशके) लिये पर्वतको (हाथमें) धारण करनेवाले! आपकी जय हो। ३। श्रीजानकीजीके सोच और संतापके मिटानेवाले, श्रीरामलक्ष्मणजीके आनंदरूपी कमलके खिलानेवाले, वानरीक्रीड़ासे खेलहीमें पूँछसे लंकाको जलानेवाले, अशोक वनको उजाड़नेवाले, तरुण तेजकी राशि! आपकी जय हो।४।

नोट—पूर्व पद २५ में चंद्रमाका रूपक देकर हनुमान्‌जीका गुण गान किया गया। इस पदमें सूर्यका रूपक देकर उनका प्रताप वर्णन करते हैं। सूर्यका जन्म कश्यप अदितिसे हुआ। उसीका रूपक यहाँ कहेंगे।

टिप्पणी—१ 'जयति मर्कटाधीस मृगराज विक्रम' इति। (क) 'मर्कटाधीस' इति। श्रीहनुमान्‌जीको सभीने वानरोंका अधीश कहा है। यथा '**वानराणामधीशं रघुपतिवरदूतं वातजातं नमामि।**' (सुं०), '**वन्दे विशुद्ध विज्ञानौ कवीश्वर कपीश्वरौ।**' (बा०), '**कपीशमक्षहन्तारं वन्दे लंका भयंकरम्।**' (मूलरामायण) (ख) 'मुदमंगलालय' इति। आप मुदमंगलके निवासस्थान हैं, मुदमंगलकी प्राप्ति आपकी कृपाकटाक्षसे होती है। (ग) 'कपाली' इति। रुद्रावतार होनेसे शिवजीसे अभेद मानकर 'कपाली' कहा। शिवजी कपाली हैं। ब्रह्माका सिर काटकर हाथमेंलिये रहनेसे शिवजीका नाम 'कपाली' हुआ। यथा '**ततः क्रोधपरीतेन संरक्तनयनेनच। वामाङ्गुष्ठनखाग्रेण शिरश्छिन्नं तदामय॥**' ब्रह्मोवाच '**यस्मादनपरधंमे शिरश्छिन्नं त्वयामम। तस्माच्छाप समायुक्तः कपाली**

त्वंभविष्यसि ।' ब्रह्माण्डपुराणे । युद्धमें राक्षसोंके कपालोंको हाथमें धारण करनेसेभी 'कपाली' कहे जा सकते हैं। (घ) 'मोद-मंगलालय कपाली' का भाव कि कपाली होते हुएभी आनंदमंगलके धाम हैं। (ङ) 'मोहमद कोह कामादि खल' इति। मोहमदादिको खल कहा है। श्रीमुखवचनभी है, 'तात तीन अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ। मुनिबिज्ञानधाम मन करहिं निमिष महं छोभ।' (आ०)। मुनियोंके मनमेंभी क्षोभ उत्पन्न कर देते हैं, इसीसे इन्हें खल कहा। सज्जनोंके हृदयपर डाका डालते हैं। जप तप भजन चुरा लेते हैं। यथा, 'मम हृदय भवन प्रभु तोरा। तहं बसे आइ बहु चोरा॥ अति कठिन करहिं बरजोरा। मानहिं नहिं बिनय निहोरा॥ तम मोह लोभ अहंकारा। मद क्रोध बोधरिपु मारा॥ अति करहिं उपद्रव नाथा। मर्दहिं मोहि जानि अनाथा॥ मैं एक अमित बटपार। कोउ सुनै न मोरि पुकार॥ कह तुलसीदास सुनि रामा। लूटहिं तसकर तब धामा॥' (१२५) इस उद्धृत पदके बटपार, चोर, तसकर, आदि सब भाव 'खल' शब्दमें हैं। (च) 'घोर संसार निसी किरणमाली' इति। चोरोंको घोर अँधेरी रात्रि प्रिय है। इसीसे संसारको रात्रि कहा और रात्रिका अंधकार सूर्यसे दूर होता है इससे हनुमान्‌जीको सूर्य कहा। यह परंपरित रूपक है। किरणमालीरूप कहकर सहजही मोहमदादिका नाशक जनाया। यहां हनुमान्‌जीका 'प्रताप' गुण कहा। शत्रु आगमन समझकर पहलेही भाग जाय, यह प्रताप है। भाव कि आपके स्मरणमात्रसे मोहमदादि नष्ट हो जाते हैं।

२ 'जयति लसदंजनादितिज' इति। ऊपर हनुमान्‌जीको किरण-माली अर्थात् सूर्यरूप कहा है। अब उसीका रूपक देते हैं। सूर्यका जन्म कश्यपजीके यहां अदितिके गर्भसे हुआ वैसेही केसरीके घरमें अंजनाजीके गर्भसे ये पैदा हुए। सूर्योदयसे संसारका दुःख दूर होकर कल्याण होता है। यथा, 'जग हित हेतु बिमल बिधु पुषन।' (बा०), 'दहन दोष दुख दुरित रुजाली॥ कोक कोकनद लोक प्रकासी। तेज प्रताप रूप रस रासी॥' (२) हनुमान्‌जीभी

जगत्के आर्त्तिके हर्त्ता हैं। देवादि सभीके संकट इन्होंने छुड़ाये हैं। सूर्य कोक कोकनदका प्रकाशी है और हनुमान्जी लोक लोकपरूपी कोक कोकनदका शोक हरकर उनको प्रफुल्लित करनेवाले हैं।

यथासंख्यसे लोक कोक और लोकप कोकनद हैं। कोका कोकी आर्त्त वैसेही लोक राक्षसोंद्वारा पीड़ित होनेसे आर्त्त। यथा, 'जहं जहं बिप्र धेनु सुर पावहिं। नगर गाउ पुर आगि लगावहिं॥' लोकपाल कमलवत् संपुटित थे, संपत्तिहीन और सशंकित रहते थे। यथा, 'रबि ससि पवन बरुन धनधारी। अगिनि काल जम सब अधिकारी॥ किन्नर सिद्ध मनुज सुर नागा। हठि सबही के पंथहि लागा॥ (बा०) लोक और कोकनद दोनों जड, लोकप और कोक दोनों चेतन उपमेय उपमान हैं। दोनों 'कल्याणकारी' हैं। तमके नाशसे खलोंका भय गया, लोक सुखी हुए और हनुमान्जीद्वारा देवताओंको पुनः ऐश्वर्य प्राप्त हुआ। यथा, 'बिबुध बंदीछोरको'। 'लसदंजना' में परंपरितरूपकालंकार है।

यहां 'अदितिज' भी कहा और 'कश्यपप्रभव' भी। यह क्यों? इसपर किसीभी टीकाकारने प्रकाश नहीं डाला है। वैजनाथजीने अर्थ किया है कि, 'अंजनीसे उत्पन्न हुए और केसरीरूपी कश्यपसे उपजाये गये।' शब्द-सागरमें 'प्रभव' के अर्थ ये दिये हुए हैं। 'उत्पत्तिस्थान, आकर, जन्म, उत्पत्तिकारण।' अमरकोशमें 'स्याजनाहेतु प्रभवः' अर्थात् 'जन्मका हेतु वा आदिकारण' यह अर्थभी है। एक अर्थ 'पराक्रम' भी है।

केसरीके वीर्यसे तो हनुमान्जीका जन्म हुआ नहीं है। ये तो पवनदेवके प्रसादसे उत्पन्न हुए हैं। संभवतः इसी विचारसे उधर 'अंजनादितिज' और इधर 'कपिकेसरीकस्यपप्रभव' कहा। अंजनाके गर्भसे केसरीके घरमें उत्पन्न हुए। प्रभव=उत्पत्तिस्थान। इसी प्रकार पूर्व पदमें 'केसरी चारु लोचन सुखद' कहा था, उनसे उत्पन्न नहीं कहा।

३ 'जयति सुबिसाल बिग्रह बज्रसार सर्वांग' इति। (क) पद २५ 'बज्र तन दसन नख मुख बिकट चंड भुजदंड' टि० १२ देखिये। वही भाव यहां है। (ख) 'बज्रसारसर्वांग' इति। जैसे बज्रपर घनकी चोट कुछभी

असर नहीं करती वैसेही आपके किसी अंगपर किसीभी अस्त्रशस्त्रका किंचित्‌भी प्रभाव नहीं पड़ सकता। (ग) 'बल बसति बालधि बृहत्' इति। यथा, **'सिर लंगूर लपेटि पछारा'** (कालनेमि प्रसंग। लं०) ' **प्रबल प्रचंड बीरबंड बाहुदंड बीर धाए जातुधान हनुमान लियो घेरिकै। महाबलपुंज कुंजरारि ज्यों गरजि भट जहां तहां पटके लँगूर फेरि फेरिकै** ॥ (क०), **'लूम लपेटि अकास निहारिकै हाँकि हठी हनुमान चलाए। सूखिगे गात चले नभ जात परे भ्रम बात न भूतल आए** ॥ (क० लं० ६७) बड़े बड़े राक्षसोंको पूँछमें लपेटकर पटककर मार डालते या आकाशमें वायुमण्डलसे परे फेंक देते थे। इससे समझ लीजिये कि पूँछ कितनी बड़ी और कैसी बलिष्ठ होगी ? (घ) 'बैरिशस्त्रास्त्रधर कुधरधारी।' इति। तुलसीग्रन्थावलीमें कहीं हनुमात्‌जीका शस्त्रास्त्र धारण करनेका उल्लेख नहीं मिलता। अतएव 'शस्त्रास्त्रधर' वैरिका विशेषण है। नख, दशन, भुजदंड, वृक्ष और पर्वतही वानरोंके आयुध थे और निशाचर शस्त्रास्त्रधर थे। इसके प्रमाण सर्वत्र मिलते हैं। यथा, ' **सर तोमर सेल समूह पबारत मारत बीर निसाचर के। इत तें तरु ताल तमाल चले खर खंड प्रचंड महीधर के ॥ नख दंतन्ह सों भुजदंड बिहंडत रुंड सो मुंड परे झर के** ॥' (क० लं०), **'गहि मंदर बंदर भालु चले'** भुजदंडके काम, यथा, ' **दबकि दबोरे एक बारिधिमें बोरे एक मगन महीमें एक गगन उड़ात हैं। पकरि पछारे कर चरन उखारे एक चीरि फारि डारे एक मींजि मारे लात है** ॥' (क० लं०) पूर्वार्धमें 'बिकराल बिग्रह' कहकर नख, दशनादिकोभी बिकराल जना दिया है।

४ 'जयति जानकीसोचसंतापमोचन' इति। (क) 'भूनन्दिनी सोच मोचन' पद २५ टि० ९ देखिये। (ख) 'रामलक्ष्मणानन्दवारिज बिकासी' इति। 'सौमित्रि रघुनन्दनानन्दकर' पद २५ टि० ११ देखिये। (ग) यहां समअभेदरूपक अलंकार है। (घ) श्रीरामलक्ष्मणानन्दको बारिज (कमल) कहकर उपर्युक्त रूपक 'किरणमाली हंस हनुमान' का निर्वाह यहांतक किया गया। एकही पंक्तिमें 'जानकी सोचसंतापमोचन' और 'रामलक्ष्मणानन्द' कहकर श्रीजानकीशोचमोचन प्रसंगद्वारा आनन्द

देना सूचित किया। हनुमान्‌जीको सूर्य कहा है। उसके संबंधसे 'जानकीसोचसंताप' को अंधकार जनाया जिसे हनुमान्‌रूपी सूर्यने नष्ट कर दिया। ह० नाटक अंक १३।३२ मेंभी ऐसाही कहा है। यथा, **'सीतातंक महान्धकार हरणे प्रद्योतनोऽयं हरिः, संप्राप्तः पवनात्मजः प्रदु महः श्रीकण्ठ वैकुण्ठयोः** ॥ श्रीजानकीजीके भयरूप महा अन्धकारके हरण करनेमें सूर्यके समान, श्रीकण्ठ (महादेवजी) और वैकुण्ठ भगवान् श्रीरामचंद्रजीको महा आनन्द देनेवाले पवनकुमार वानरराज हनुमान्‌जी प्राप्त हुए।

भावार्थान्तर—(१) " रामविरहसे उत्पन्न सोच और रावणके आधीन होनेका सन्ताप! कुशल समाचार देकर सोच मिटाया और रावणवध कराकर सन्ताप मिटाया।" (डु०) (२) "पतिवियोगदुःखसे तर्कना इति सोच, विरहाग्नि, शत्रुवश, कुवचनादि साँसति इत्यादि संपूर्ण प्रकारके ताप, सोचको मुद्रिका और सन्देसा देकर छुड़ाया और संतापको धीरज देकर। भाव कि जानकीजी चकवीवत् वियोगिनी थीं। उनकेलिये सूर्यवत् उदय हो आनन्द दिया और चूड़ामणिसहित खबर देकर रामलक्ष्मणको आनन्द दिया।" (वै०)। (३) " जानकीसोचमोचन, रामसंताप-मोचन, लक्ष्मणानंदवारिज बिकासी " (वीर)।

५ ' कीसकौतुक केलि लूम लंका दहन ' इति। यथा, **'देह बिसाल परम हरुआई। मंदिर ते मंदिर चढ़ि धाई॥ जरइ नगर भा लोग बिहाला। लपट झपट बहु कोटि कराला॥ जारा नगरु निमिष एक माहीं।** (सुं०) सहजही क्षणभरमें कौतुकसा कर दिखाया। यथा, **" हाट बाट कोट ओट अट्टनि अगार पौरि खोरि खोरि दौरि दौरि दीन्ही अति आगि है। बालधी फिरावै बार बार झहरावै झरैं बूँदियाँ सीलंक पघिलाइ पाग पागि है॥"** (क०)

'लंका दहन' और 'दलन कानन' को एक पंक्तिमें कहकर जनाया कि, १ रावणको जितनी लंका प्यारी थी उससे अधिक नहीं तो कमसे कम उतना तो अवश्यही 'अशोकबन' प्यारा था। २ दोनो कामोंके करनेमें

हनुमान्‌जीका मुख तेजोमय और क्रोधसे लाल था। ३ लंकाभी जली और कानन भी जला। ये दोनों काम रावणके रहते किये गये। मिलान कीजिये, "माली मेघमाल बनपाल बिकराल भट नीके सब काल सींचे सुधासार नीरको। मेघनाद ते दुलारो प्रान ते पियारो बाग अति अनुराग जिय जातुधान धीरको। विद्यमान देखत दसाननको कानन सो तहस नहस कियो साहसी समीरको॥" (क०); एवं "बेगि जीत्यो मारुत प्रताप मार्तंड कोटि कालऊ करालता बड़ाई जीत्यो बावनो।" (क०)

६ 'तरुन तेजरासी' इति। सूर्य तेजराशि है। यथा, 'तेज प्रताप रूप रस रासी।' (पद २) हनुमान्‌जीको यहां सूर्य कहाही है, अतः 'तरुण तेजरासी' भी कहा। वे तेजकी राशि हैंही। यथा, 'कनकबरन तन तेज बिराजा। मानहु अपर गिरिन्ह कर राजा।' हनुमान्‌जी ऐसे तेजस्वी थे कि इनका तेज देखकर रवि, राहु एवं इन्द्रतक घबडा गये और भीमसेनभी डर गये। यथा, 'कौनके तेज बलसीम भट भीमसे भीमता निरखि कर नयन ढाँके।' काननदलन और लंका-दहनके साथ 'तरुन तेजरासी' पद देकर जनाया कि इनको जलानेकेलिये प्रलयाग्निसरीखा वा प्रलयके सूर्यके समान इनमें तेज था। यथा, तेजको निधान मानों कोटिक कृसानु भानु नख बिकराल मुख तैसो लाल है।' (क०)

अनुसंधान [२६]

जयति पाथोधि पाषान जल जानकर जातुधानप्रचुरहर्षहाता।
रुष्ट[७] रावण कुंभकर्ण पाकारीजित् मर्मभित्कर्म[८] परिपाकदाता॥
जयति भुवनैकभूषन बिभीषन बरद बिहित कृति[९] रामसंग्राम साका।
पुष्पकारूढ़ सौमित्रि सीतासहित भानुकुलभानु कीरति पताका॥

---

७ रुष्ट–६६, रा०, ज०, ५१। दुष्ट–भा०, बे०, ७४, ह०, आ०। ८ भित्कर्म–६६, ह०, ७४, ड़ु०, बे०। भित कर्म–रा०, भा०, बे०, ज०; मु०, वि०। ९ कृति–६६, रा, ५१, मु०। कृत–

जयति परजंत्रमंत्राभिचार[10] ग्रसन कार्मन[11] कूट कृत्यादि हंता।
साकिनी[12] डाकिनी पूतना प्रेत बैताल भूत प्रमथ जूथ जंता॥
जयति बेदांतबिदबिबिधबिद्या[13] बिसद बेद बेदांगबिद्‌ब्रह्मवादी[14]।
ज्ञान बैराग बिज्ञान भाजन बिभो[15] बिमल गुन गनत सुकनारदादी॥
जयति काल गुन कर्म मायामथन निश्चल ब्रत[16] सत्य धर्म चारी।
सिद्ध सुर बृंद योगेंद्र[17] सेवित सदा दासतुलसी प्रणतभयतमारी॥

शब्दार्थ—पाथोधि = समुद्र। पाषाण = पत्थर। जलजान (जलयान)= जलरथ, जलपरकी सवारी, नाव, जहाज़ इत्यादि। जातुधान (सं०) = निशाचर। प्रचुर = बहुत अधिक; समूह। हाता (सं० हत, हंता)=नष्ट वा चौपट करनेवाले। रुष्ट = क्रुद्ध। पाकारिजित् = पाक दैत्यके शत्रु इंद्रको जीतनेवाले, इन्द्रजित्, मेघनाद। पाक = 'देवासुरसंग्राममें जंभासुरके मारे जानेपर उसके भाईबंधु नमुचि, बल और पाक झटपट रणभूमिमें आ पहुँचे थे। पाकने अपने बाणोंसे मातलि (सारथि) और उसके रथके एक एक अंगको छेद डाला। इंद्रकी सेना रौंद डाली। तब इंद्रने अपने आठ धारवाले बज्रसे बल और पाकका सिर काट डाला।' भा० ८।११। तभीसे इंद्रका नाम 'पाकारि' पड़ा। मर्म=

इ०, ज०, १५, ७४, आ०। १० परजंत्रमंत्राभिचार—६६, रा, आ०, ७४, ५१, बे०। पर मंत्रायंत्राभिचार—इ०। परमंत्रजंत्राभिचारक—भा०, बे०। (हरताल देकर यह पाठ बनाया है।) ११ कार्मन—६६, रा०, ५१, ७४, आ०। कर्मना—भा०, बे०, इ०, प्र०, ज०। १२ साकिनी डाकिनी—६६, रा०, ७४, ५१, आ०। डाकिनी साकिनी—भा०, बे०, इ०, प्र०, ज०। १३—बिद्धि—६६, रा०। बिदबि—बे०, दी०, वि०। बित बि—इ०। बिधि बि—ज०, बे०, मु०, डु०, ७४। बिद (बुद्धि)—भा०। १४ विद्‌ब्रह्म—६६। बिद ब्रह्म इ०, ५१, ज०, ७४, आ०, रा०। १५ बिभव—५१, ७४। १६—यहां पाठमें बड़ी धींगाधाँगी है। ब्रत सत्य—६६। ज्ञान ब्रत सत्य रत—भा०, बे०, इ०, ७४, आ०। ब्रत सत्य रत—शि०। ब्रत तप सत्य—ज०। ज्ञान ब्रत सदा सदा रत—रा०। १७—योगेंद्र—६६, रा०। योगींद्र—इ०, ५१, भा०, बे०, ७४, आ०।

प्राणियोंके शरीरमें वह स्थान जहां आघात पहुँचनेसे अधिक वेदना या मृत्यु होती है। वैद्यकमें मांस, शिरा, स्नायु, अस्थि और संधिके सन्निपात स्थानको मर्म माना गया है और वहां प्राणोंका निवासस्थान लिखा गया है। प्रकृति, स्थान और परिणाम भेदसे मर्म पाँच प्रकारके होते हैं और कुल मर्मोंकी संख्या १०७ मानी गयी है। परिणामके विचारसे सद्यः प्राणहार मर्म १९, कालान्तरमारक ३३, वैकल्यकारक ४४, रुजाकारक ८ और विशल्यघ्न ३ माने गये हैं। मर्मभित् = मर्मभेदी (मर्मस्थानोंको भेदन करने वा छेदनेवाले।) कर्म परिपाक = कर्मका फल। भुवनैक = (भुवन + एक) लोकोंमें एकही। भूषण = वह जिससे किसीकी शोभा बढ़े; अलंकार, गहना। बरद = वर देनेवाले। विहित = जिसका विधान किया गया हो, किये हुए। विदित; उचित। (ड०) कृति = कार्य। साका (शाका) = कीर्तिका स्मारक। कोई ऐसा बड़ा काम जो सब लोग न कर सकें और जिसके कारण कर्ताकी कीर्ति हो। यथा, '**गीध मान्यो गुरु कपिभालु मान्यो मीत कै पुनीत गीत साके सब साहब समरथके।**' विजय=यश। (दी०, वै०) पुष्पक = यह एक दिव्य विमानका नाम है जो कुबेरका यान था जिसे रावण छीन ले गया था। रावणवध होनेपर बिभीषणने इसे श्रीरामजीको अर्पण किया। इसमें घटने बढ़नेकी शक्ति थी। सब सेनापति और मंत्रियों सहित बिभीषण इत्यादि सब इसपर सवार होकर श्रीरघुनाथजीके साथ श्रीअवध आये थे। नगरके बाहरही उतरकर श्री रघुनाथजीने इसे कुबेरके पास जानेकी आज्ञा दी। यह विमान इच्छाके अनुसार स्वयं चलता था। कुबेरने ब्रह्माजीकी बहुत सेवा की जिससे पितामह उनपर बहुत प्रसन्न रहते थे। इसीसे उन्होंने कुबेरको अमरत्व प्रदान किया, धनका स्वामी और लोकपाल बना दिया, महादेवजीसे इनकी मित्रता करा दी, यक्षोंका राजा बना दिया, 'राज राज' की उपाधि दी और यह विमानभी उन्होंनेही दिया था। (महा० वनपर्व) रावणने कुबेरसे जब यह विमान छीन लिया तब कुबेरने उसे शाप दे दिया कि 'यह विमान तुम्हारी सवारीमें नहीं आ सकता। जो युद्धमें तुम्हें मार डालेगा उसीको यह वहन करेगा।'

(वनपर्व) आरूढ़ = चढ़े हुए, सवार। सौमित्रि = सुमित्राजीके पुत्र श्रीलक्ष्मणजी और श्रीशत्रुघ्नजी। दोनो सुमित्राजीके पुत्र हैं। परन्तु 'सौमित्रि' शब्द प्रायः लक्ष्मणजीकेलिये रूढ हो गया है। तुलसीग्रंथोंमें यही अर्थ प्रायः लिया गया है। कीरतिपताका = कीर्तिकी ध्वजाको फहरानेवाले। पर = शत्रु। यंत्र = पद ११ देखिये। मंत्राभिचार = (मंत्र + अभिचार) अथर्ववेदोक्त मंत्रयंत्रद्वारा मारण और उच्चाटन आदि हिंसा कर्म, पुरश्चरण। तंत्रके प्रयोग छः प्रकारके होते हैं। मारण, मोहन, स्तंभन, विद्वेषण, उच्चाटन और वशीकरण। स्मृतिमें इन कर्मोंको उपपातकोंमें माना है। ग्रसन = ग्रास करनेवाले। बुरी तरह पकड़ लेनेवाले कि फिर छूट न सके। कार्मन (कार्मण) = मूल कर्म जिनमें मंत्र और औषध आदिसे मारण, मोहन, वशीकरणादि किया जाता है। मंत्रतंत्रादिका प्रयोग जिससे शत्रुको मारते हैं। कूट = गुप्त बैर, गुप्त प्रयोग। Fallon's New Hindustani Dictionary 1879 में 'कूट' का अर्थ A magic circle traced with sand or ashes भी है। अर्थात् 'बालू या राखसे बनाया हुआ गोल रेखायंत्र वा तंत्र प्रयोग।' यही अर्थ हमें यहाँ संगत जान पड़ता है। कृत्या = तंत्रके अनुसार एक राक्षसी जिसे तांत्रिक लोग अपने अनुष्ठानसे उत्पन्न करके किसी शत्रुको विनष्ट करनेको भेजते हैं। यह बहुत भयंकर मानी जाती है। इसका वर्णन वेदोंमेंभी आया है। दुर्वासाजीने कृत्याको उत्पन्न कर अम्बरीषजीको भस्म करना चाहा था। यही यातुधानीरूपसे सप्तर्षिको खाने आयी थी। (महाभारत वनपर्व) जंता = यातनादंड देनेवाले, जीतनेवाले। (ड्डु०) यदि इसे 'यंत्री' का अपभ्रंश मानें तो अर्थ होगा 'नियंत्रण करने वा बाँधनेवाले। पूतना, प्रेत, शाकिनी, डाकिनी, वेताल, भूत = पद १६ देखिये। प्रमथ=पद ११ देखिये। जूथ = यूथ, झुंड। वेदांत, उपनिषद् और आरण्यक आदि वेदके अंतिम भाग जिनमें आत्मा, परमात्मा और जगत् आदिके संबंधमें निरूपण है। प्रत्येक वेदका अन्तिम अध्याय जिसमें ब्रह्मका प्रतिपादन रहता है। वेदांग=छः शास्त्र वेदोंके अंग माने गये हैं। वह ये हैं, शिक्षा (नासिका

अंग), कल्प (हाथ), व्याकरण (मुख), निरुक्त (श्रवण), ज्योतिष (नेत्र), और छन्द (चरण)। वेदांतविद = वेदान्तके जाननेवाले, वेदान्ती। विविधविद्या = यथा, "**द्वे विद्ये वेदितव्ये इति हस्म यद्ब्रह्मविदो वदन्ति पराचैवापरा च। तत्रा परा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दं ज्योतिषमिति। अथ परा ययतदक्षरमधिगम्यते॥**' मु० उ० १।१।५। पुनश्च, "**पुराणं न्याय मीमांसा धर्मशास्त्रांगमिश्रिताः। वेदाः स्थानानि विद्यानि धर्मस्य च चतुर्दश॥** याज्ञ. स्मृ. १।३।" ब्रह्म = "**सर्वत्र बृहत्वगुणयोगेन हि ब्रह्मशब्दः। बृहत्वंच स्वरूपेण गुणैः यत्रानवधिकातिशयं सोऽस्य मुख्योर्थः।** इति ब्रह्मसूत्रभाष्ये।" स्थूल, सूक्ष्म, व्यक्त, अव्यक्त आदि संपूर्ण जीवोंको अपने कल्याणगुणोंसे नित्य बढ़ानेसे और अपने स्वरूप रूप गुण वैभवसे सदा बढ़नेसे श्रीसरकार श्रीरामचन्द्रजीका नाम ब्रह्म है। ब्रह्मवादी = व्यापक ब्रह्म श्रीरामजीके स्वरूपको मनन करनेवाले और गुण रूपको वर्णन करनेवाले। '**रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि। इति रामपदेनासौ परंब्रह्माभिधीयते।**' (रामतापनीयोपनिषद्) भाजन = पात्र, अधिकारी। यथा, '**लखन कहा जसभाजन सोई। नाथकृपा तव जापर होई॥**' गनत = गिनते हैं, गाते हैं, प्रशंसा करते है, मान प्रतिष्ठा करते हैं। **शुक** = **शुकदेवजी**। ये कृष्णद्वैपायन व्यासके पुत्र थे। इन्होंने राजा परीक्षितको भागवत सुनायी थी। योगेंद्र = योगके प्रवर्तकोंमें श्रेष्ठ, योगिशिरोमणि।

पद्यार्थ—समुद्रपर पत्थरोंको जहाज़ बनानेवाले, (पत्थरोंको जलपर तैराकर सेतु बँधवाकर सेनाको समुद्रपार लंकामें उतारनेवाले) निशाचरके बहुत बढ़े हुए समूहहर्षको चौपट कर देनेवाले, कुपित रावण, कुंभकर्ण और इंद्रजित् मेघनादके मर्मस्थानोंको भेदन करके उनको कर्मोंका परिपूर्ण फल देनेवाले! आपकी जय हो। ५। समस्त लोकोंके अनुपम भूषण, बिभीषणजीको बर देनेवाले, अपने किये हुए कर्मोंसे श्रीरामसंग्रामको शाका* (कीर्तिका स्मारक) बनानेवाले, श्रीलक्ष्मण

*अर्थान्तर—'श्रीरामचन्द्रजीके साथ संग्राममें बड़े बड़े यशपूर्ण काम करनेवाले हो।' (वि०)

सीतासहित पुष्पक विमानपर सवार सूर्यवंशके सूर्य श्रीरघुनाथजीकी कीर्तिके (फहरानेवाले) पताका (रूप)! आपकी जय हो। ६। शत्रुओंके यंत्र, मंत्र और प्रयोगोंको ग्रसनेवाले, कार्मण, कूट† और कृत्या आदिके नाश करनेवाले, शाकिनी, डाकिनी, पूतना, प्रेत, वेताल, भूत और प्रमथगणोंको जीतनेवाले वा यातनादंड देनेकेलिये यंत्ररूप ! आपकी जय हो। ७। वेदान्तके पंडित, अनेक प्रकारकी निर्मल (सतोगुणी) विद्याओं और वेदवेदाङ्गोंके ज्ञाता, ब्रह्मवेत्ता, ज्ञान, वैराग्य और विज्ञानके सत्पात्र, विभो (समर्थ)! आपकी जय हो। आपके निर्मल गुणोंकी प्रशंसा शुकदेवजी, नारदजी आदि (बड़े बड़े महर्षि, देवर्षि) करते रहते हैं। (गुणानुवाद करते रहते हैं। तब औरोंकी क्या कही जाय ?)। ८। काल, (सत्व, रज, तम) गुण, (शुभाशुभ, कायिक वाचिक और मानसिक, संचित, प्रारब्ध और क्रियमान) कर्म और मायाके मथन करनेवाले, सत्य धर्मका अटल व्रत धारण करनेवाले, सिद्धों, देववृन्दों और योगेन्द्रोंसे सदा सेवित और शरणागत तुलसीदासके भयरूपी अंधकारके नाश करनेको सूर्यरूप श्रीहनुमान्‌जी ! आपकी जय हो। ९।

टिप्पणी—७ (क) 'पाषान जलजानकर' इति। गोस्वामीजीका मत यह जान पड़ता है कि श्रीहनुमान्‌जीही सेतुबन्धनमें प्रधान थे। पद २५ मेंभी कहा है, '**बद्ध सागर सेतु अमर मंगल हेतु**'। पद २५ टि० ११ (घ) देखिये।

(ख) 'पाषान जल जानकर' के साथ 'जातुधान प्रचुर हर्ष हाता' उसी पंक्तिमें देकर जनाया कि यह बड़ा दुष्कर कार्य था। इस कार्यके संपन्न होनेसे रावणादि समस्त राक्षसोंका सारा हर्ष जाता रहा। यथा, "**सुनत श्रवन बारिधि बंधाना। दसमुख बोलि उठा अकुलाना।। बाँधेउ बननिधि नीरनिधि जलधि सिंधु बारीस।**

---

†प्रायः और लोगोंने 'कूट' का अर्थ 'गुप्त' या 'गुप्तरीतिसे प्रेरित' करके इसे 'कार्मन' का विशेषण माना है।

सत्य तोयनिधि कंपति उदधि पयोधि नदीस ॥ निज व्याकुलता समुझि बहोरी। बिहँसी गयेउ गृह करि मति भोरी ॥" पुनः प्रहस्तवचन, यथा "जेहि बारीस बँधायेउ हेला।" "सो भनु मनुज खाब हम भाई।" तथा मंदोदरी वचन, यथा 'जेहि जलनाथ बँधाएउ हेला।'

उपर्युक्त उद्धरणोंसे स्पष्ट है कि यह कार्य असंभव था। इसके हो जानेसे सभी राक्षस भयभीत हो रहे हैं और रावण तो सुनकर ऐसा डर गया कि उसके दशों मुखोंसे समुद्रके दश पर्याय शब्द एकसाथ निकल पड़े।

कई कारणोंसे हर्ष 'प्रचुर' था। अमित परिवार और अमित सेना होनेसे, एक एक सारे जगत्को जीत सकता था। ऐसे अमित सुभटोंके होनेसे तथा चारों ओर समुद्ररूपी खाईसे घिरी लंका शत्रुकेलिये स्वाभाविक अगम होनेसे सब प्रकार सुरक्षित होनेका हर्ष था। सब यही समझते थे कि वानरी सेना इस पार आही नहीं सकती।

(ग) 'रावण कुंभकर्ण पाकारिजित् मर्मभित्' इति। श्रीहनुमान्जी इन सबोंके मर्मस्थलोंके भेदी थे। क्रमसे तीनोंके मर्मभेदनके प्रमाण, यथा
'मुठिका एक ताहि कपि मारा। परेउ सैल जनु बज्र प्रहारा॥'
'तब मारुतसुत मुठिका हनेऊ। परेउ धरनि व्याकुल सिर धुनेऊ॥'
'बार बार प्रचार हनुमाना। निकट न आव मरम सो जाना॥'

(घ) 'कर्म परिपाकदाता' इति। भाव कि इसे मर्मभेदन न समझिये। हनुमान्जीने मर्मभेदन जो किया यह वास्तवमें मर्मभेदन न था, वरंच उन राक्षसोंके दुष्टकर्मोंका फल था जो उनको दिया गया। यथा, 'भजहु न रामहिं सो फल लेहू।', 'परद्रोहरत अति दुष्ट। पायो सो फल पापिष्ट॥ (लं०)॥', 'खीझत मँदोवै सविषाद देखि मेघनाद बयो लुनियत सब याही दाढ़ी जार को।' (क० सुं०)। तात्पर्य कि इन दुष्टोंके मर्मभेदनमें आपका कोई दोष नहीं। आप तो परम विशुद्ध विज्ञानी हैं। आपको किसीसे द्वेष नहीं।

८ (क) 'जयति भुवनैक भूषन बिभीषन वरद' इति। 'भुवनैक

भूषन ' हनुमानजी एवं बिभीषणजी दोनोंका विशेषण हो सकता है। बिभीषणजी भक्तशिरोमणि माने गये हैं। क्योंकि ये एक तो राक्षस थे, दूसरे राक्षसकुलमेंही रहते हुए सब प्रतिकूल सामग्रियोंसे घिरे हुए होतेभी इन्होंने भगवद्भजन किया था। यथा **' खलमंडली बसहु दिन राती। सखा धर्मनिबहै केहि भांती ॥ मैं जानौं तुम्हारि सब रीती। अति नय निपुन न भाव अनीती ॥ बरु भल बास नरक कर ताता। दुष्ट संग जनि देहि बिधाता ॥** ' (सुं०), **' सुनहु पवनसुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्ह महं जीभ बिचारी ॥** ' **' धन्य धन्य तैं धन्य बिभीषन। भयउ तात निसिचर कुलभूषन।** ' (कुंभकर्णवाक्य)

(ख) ' बिभीषन बरद ' इति। सीताशोधसमय बिभीषणजीसे भेंट होनेपर उनके **' तात कबहुं मोहि जानि अनाथा। करिहहिं कृपा भानुकुलनाथा ॥** ' इस प्रश्नपर श्रीहनुमान्‌जीने उनसे कहा था कि **' सुनहु बिभीषन प्रभु कै रीती। करहिं सदा सेवक पर प्रीती ॥ कहहु कवन मैं परम कुलीना।** ' येही वचन बिभीषणजीकेलिये वर-दानरूप हैं। जैसा कि इन वचनोंसे सिद्ध होता है, **'श्रवन सुजस सुनि आयेउँ प्रभु भंजन भवभीर।** ' हनुमान्‌जीसेही तो सुना था कि **' करहिं सदा सेवक पर प्रीती।** ' इन वचनोंमें वरदान यह है कि वे तुमपर प्रेम रखते हैं; अवश्य कृपा करेंगे। यहीं आकर तुमको दर्शन देंगे।

(ग) ' बिहित कृति राम संग्राम साका ' इति। ' बिहित ' के जो अर्थ शब्दार्थमें लिखे गये वे सभी यहां लग सकते हैं। जब जो दुष्कर कार्य आ पड़ा आपने उसे उचित रीतिसे कर दिया। वे सब प्रसिद्ध कर्म रामसंग्रामकीर्तिके स्मारक हुए। पुन: 'शाका' कथनका भाव कि सूर्य संवत्सरकी शाका चलाते हैं। हनुमान्‌रूपी सूर्य रामसंग्रामरूपी संवत्सरकी शाका चलाते हैं।

(घ) 'परजंत्रमंत्राभिचारग्रसन कार्मन कूट कृत्यादि हंता ' इति। यथा, **' पूतना पिसाची जातुधानी जातुधान बाम रामदूत की रजाय माथे मानि लेतु हैं। घोर जंत्रमंत्र कूट कपट कुजोग रोग हनुमान आन सुनि छाँड़त निकेत है ॥', 'कर्मण कूट की कि जंत्रमंत्र बूट**

की पराहि जाहि पापिनी मलीन मन मांह की। पाइहै समाय नतु कहत बजाइ तोहि बावरी न होहि बानि जानि कपिनाह की। आन हनुमान की दुहाइ बलवान की सपथ महाबीर की जो रहै पीर बांह की ॥'

(ङ) 'जंता' इति। दासकी समझमें 'जंता' यंत्रका अपभ्रंश है। भक्तिरसबोधिनीमें 'जंत' शब्द यंत्रके अर्थमें आया है। यथा, "संतपति बोले मैं अनंत अपराध किये जिये अब कही सेवो सीत मानि जंत हैं। ३२४।" भाव यह है कि जैसे टोना आदिके लगनेपर यंत्र बाँधनेसे टोना आदिका प्रभाव नष्ट हो जाता है वैसेही श्रीहनुमान्‌जीका नाम शाकिनी आदिसे रक्षाकेलिये यंत्ररूप है। नाम लेतेही, शपथ वा दुहाई सुनतेही ये भाग जाते हैं।

वैजनाथजीने 'यंतासूतः इत्यमरः' इस प्रमाणको लेकर यंताका अर्थ 'सारथी' किया है और यह भाव लिखा है कि "ये सब हनुमान्‌जीके पीछे चलते हैं। प्रतिकूलता नहीं कर सकते।" बाबू शिवप्रकाश और वीरकविजीने 'जीतनेवाला' और भट्टजीने 'दण्ड देनेवाला' अर्थ किया है।

९ (क) 'विज्ञान भाजन' अर्थात् विशुद्ध विज्ञानी हैं। श्रीसीताराम-गुणग्राममें सदा विहार करनेसे इनको विज्ञान भाजन कहा है। यथा, 'सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ। वंदे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वर कपीश्वरौ ॥' (बा०)

(ख) 'विविधविद्या बिसदवेद वेदांगविद्' इति। वाल्मीकीय कीष्किंधाकांड अ० ३ में इसका प्रमाण मिलता है जब सुग्रीवके भेजे हुए ये बटुरूपसे श्रीरघुनाथजीके समीप गये थे। यथा "नानृग्वेद विनीतस्य ना यजुर्वेद धारिणः। ना सामवेद विदुषः शक्यमेवं विभाषितुम् ॥ नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधाश्रुतम्। बहुव्याहरतानेन न किंचिदपशब्दितम् ॥ २९ ॥ ना मुखे नेत्रयोश्चापि ललाटे च भ्रुवोस्तथा। अन्येष्वपि च सर्वेषु दोषः संविदितः क्वचित् ॥ ३० ॥ अविस्तरमसंदिग्धमवलंबित मव्ययम्। उरस्थं कण्ठगं वाक्यं वर्तते मध्यमस्वरम् ॥ ३१ ॥ संस्कारक्रमसंपन्नामद्रुतामविलंबिताम्। उच्चारयति कल्याणीं वाचं हृदय हर्षिणीम् ॥ ३२ ॥"

श्रीहनुमान्‌जीका वाक्य समाप्त होनेपर श्रीरघुनाथजीने श्रीलक्ष्मण-जीसे, यह कहते हुए कि तुम इनसे स्नेहपूर्वक मीठी वाणीमें बातचीत करो। इनके विद्या वेद वेदाङ्गविद् होनेकी प्रशंसा इस प्रकार की है 'जिसे ऋग्वेदकी शिक्षा नहीं, जिसे यजुर्वेदका ज्ञान नहीं और जो सामवेदका विद्वान् पंडित नहीं वह ऐसा वार्तालाप नहीं कर सकता'। २८। निश्चयही इन्होंने समस्त व्याकरणका कई बार स्वाध्याय किया है, क्योंकि बहुत बोलने-परभी इन्होंने कोई ग़लती नहीं की है। २९। मुंह, नेत्र, ललाट, भौंह तथा अन्य प्रसंगोंसे बोलनेके समय इनका कोई दोष प्रकट नहीं हुआ है।३०। इन्होंने जो कुछ कहा है संक्षेपमें कहा है। इनकी कोई बात ऐसी नहीं हुई है जिसमें संदेह हो। रुक रुककर अथवा शब्दोंको तोड़ मरोड़कर इन्होंने उच्चारण नहीं किया है। न तो बहुत ऊँचे न तो बहुत नीचे किन्तु मध्यम स्वरमें इन्होंने अपना अभिप्राय प्रकट किया है।३१। संस्कार तथा उच्चारणकी शास्त्रीय पद्धतिके अनुसार किया हुआ वचन हृदयको प्रसन्न करता है।३२। महर्षि अगस्त्यजीनेभी कहा है कि "इन्होंने सूत्र, वृत्ति, वार्त्तिक, भाष्य और संग्रह सभीका अच्छीतरह अध्ययन किया है। अन्यान्य शास्त्रोंके ज्ञान तथा छन्दः शास्त्रमेंभी इनकी जोड़का कोई दूसरा विद्वान् नहीं है। ये सभी विद्याओं और तपस्यामेंभी देवगुरुकी जोड़के हैं। (वाल्मी० उ०) विमल गुण– पराक्रम, उत्साह, बुद्धि, प्रताप, सुशीलता, मधुरता, नीति अनीति-का विवेक, गंभीरता, चतुरता, धैर्य और शूरवीरता इत्यादि।

१० (क) 'काल गुन कर्म माया मथन' इति। भाव कि कालादि सभीको संतप्त करते हैं। परन्तु हनुमान्‌जीकी शरण होतेही इनका प्रभाव नष्ट हो जाता है। दूसरोंके कालगुणकर्मादिको सुधार देनेको समर्थ हैं। तब भला इनपर स्वयं इनका प्रभाव कब पड़ सकता है? बाहुकमें कहा है कि

"माया जीव कालके करमके सुभावके करैया राम बेद कहैं साँची मन गुनिये। तुम्हते कहा न होइ हा हा सो बुझैये मोहि हौंहूँ रहौं मौनही बयो सो जानि लुनिये॥"

(ख) 'निश्चल व्रत सत्य धर्मचारी' इति। भाव कि प्राकृत धर्मकर्मको सामान्य मानकर आप 'सत्यधर्म' अर्थात् भागवतधर्मका अटल व्रत धारण किये हुए हैं। आप 'सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।' इस परम धर्मके अनुयायी हैं। पद २६ के 'बचन मानस कर्म सत्य धर्म व्रती जानकीनाथ चरणानुरागी' इस वाक्यमें जो भाव है ठीक वही भाव 'निश्चल व्रत सत्य धर्म चारी' का है। वहांके 'बचन मानस कर्म व्रती' का भाव यहाँ 'निश्चल व्रत' शब्दोंसे प्रकट किया है। श्रीजानकीनाथचरणानुरागी होनाही 'सत्य धर्म व्रत' है और सब धर्म असत्य हैं। क्योंकि वे संसारसंबधी हैं, मायिक हैं।

(ग) 'सिद्ध सुरवृंद योगेंद्र सेवितसदा' इति। हनुमान्जीको सूर्य कहा है। सुर मुनि आदि सूर्यकी सेवा करते हैं। यथा, 'करैं मुनि मनुज सुरासुर सेवा॥' (पद २) उसी संबंधसे यहा 'सिद्ध सेवित' कहा।

(घ) 'प्रनत भय तमारी' इति। तमारी=सूर्य। आदिमें 'संसारनिसिकिरणमाली' और अंतमें 'भयतमारी' अर्थात् आदि और अंत दोनोंमें सूर्य रूप जनाया। भयतमारीमें परंपरितरूपक अलंकार है। भय तमारी विशेषण देकर विनय करनेमें भाव कि हमारे त्रासको हरिये।

२७ [१६]

जयति* मंगलागार संसारभारापहर वानराकार विग्रह पुरारी।
रामरोषानल ज्वाल मालामिष ध्वांतचरसलभ संहारकारी[1] ॥१॥
जयति मरुदंजनामोदमंदिर नतग्रीव सुग्रीव दुःखैकबंधो।
जातुधानोद्धत क्रुद्ध कालाग्नि हर सिद्ध सुर सज्जनानंदसिंधो ॥२॥
जयति रुद्राग्रणी विश्ववंद्याग्रणी[2] विश्वविख्यात भट चक्रवर्त्ती।
सामगाताग्रणी कामजेताग्रणी रामहित रामभक्तानुवर्त्ती ॥३॥

---

* मु० में नहीं है। १ संघार—रा०, । ज०, । २ विश्वविद्याग्रणी—रा०, भा०, बे०, ५१, ७४, आ०। १५ में 'वंद्या' का विद्या बनाया गया है। विश्वबंदाग्रणी—ज०। विश्ववंद्याग्रणी—६६, ह०, भ०।

जयति संग्राम जय रामसंदेसहर[3] कोसला कुसल कल्यानभाषी ।
रामबिरहार्क संतप्त भरतादि नरनारि सीतलकरन कल्प साखी ॥४॥
जयति सिंहासनासीन[4] सीतारमन निरखी निर्भर हरष नृत्यकारी ।
राम सम्राज[5] सोभा सहित सर्वदा तुलसि मानस रामपुर बिहारी ॥५॥

शब्दार्थ—मंगलागार=मंगल+आगार (घर)। भारापहर=भार+अपहर। अपहर=पूर्णतया हर लेनेवाले, नाश करनेवाले। 'अप' उपसर्ग जिस शब्दके पहले आता है उसके अर्थमें विशेषताएँ उत्पन्न कर देता है। १ निषेध (अपकार, अपमान), २ दूषण (अपकीर्ति), ३ विकृति (अपांग), ४ विशेषता (अपहरण), ५ 'आप' का संक्षिप्तरूप जो यौगिक शब्दोंमें आता है (अपस्वार्थि)। वानराकार=वानर (बंदर) +आकार (रूप, शक्ल)। रोषानल=रोष(क्रोध)+ अनल(अग्नि)। मिष=बहाना, व्याज। ध्वांतचर=अंधःकारमें चलनेवाले, निशाचर। सलभ (शलभ)=पतंङ्गे, पतिंगे। मरुदंजना=(मरुत्+अंजना) पवनदेव और अंजना माता। मरुत=एक देवगणका नाम है। वेदोंमें इन्हें रुद्र और वृश्निका पुत्र लिखा है और इनकी संख्या १८० मानी गयी है। पर पुराणोंमें इन्हें कश्यप और दितिका पुत्र लिखा गया है जिसे उसके वैमात्रिक भाई इंद्रने गर्भ काटकर एकसे उनचास टुकड़े कर डाले थे। वही उनचास मरुत हुए। यथा, '**हरि प्रेरित तेहि अवसर चले मरुत उनचास।**' (सुं०) वेदोंमें मरुद्गणका स्थान अन्तरिक्ष लिखा है। उनके घोड़ेका नाम पृशित बतलाया है तथा उन्हें इन्द्रका सखा लिखा है। पुराणोंमें इन्हें वायुकोणका दिक्पाल माना गया है। पद्म पु० सृष्टिखण्डमें बताया है कि मरुत्वतीने मरुत्वान्नामक देवताओंको उत्पन्न किया जिनके नाम हैं, अग्नि, चक्षु, ज्योति, सावित्र, मित्र, अमर, शरणवृष्टि, सुवर्ष, महाभुज, विराज, राज, विश्वायु, सुमति, अश्वगंध, चित्ररश्मि, निषध,

---

३ संदेसहर—६६, रा०, भा०, ज०, आ०। संदेहहर—बे०, ह०, ७४, ५१, १५, प्र०। ४ सिंघासन—रा०। ५ सम्राज ६६, ह०, प्र०, ७४, १५, भ०, दी०, वि०। संभ्राज—रा०, भा०, बे०, ज०, ५१, ङु०, मु०, वे०।

आत्मविधि, चारित्र, पादमात्रग, बृहत् और विष्णुसनाभिग। ये सब मरुद्गण कहलाते हैं। मोद=मानसी आनंद। मंदिर= घर। नत= नम्र वा झुकी हुई। नतग्रीव=शोक और चिंतासे जिसकी ग्रीवा झुक गयी हो, चिंतातुर। ग्रीव (ग्रीवा)=सिर और धड़को जोड़नेवाला अंग, गर्दन। समस्त होनेपर 'ग्रीवा'का 'ग्रीव' रह जाता है। दुःखैक=दुखमें एकमात्र। बंधो=सहायक। यह बंधुका संबोधन हैं। जातुधानोद्धत=जातुधान+उद्धत। उद्धत=उग्र, उद्दण्ड, ऐश्वर्य और वरदान पाकर गर्वित। कालाग्नि=प्रलय कालकी अग्नि। प्राकृतिक प्रलयमें अग्नि ऐसी प्रचंड होती है की जलकी सूक्ष्म तन्मात्रा जो रस है उसे वह सब अपनेमें विलीन कर लेती है। स्थूलरुपसे पृथ्वी और जलका नामनिशान नहीं रह जाता। उस कालाग्निको वायुतत्त्व हरण कर लेता है अर्थात् वह अग्नितत्व अपने कारण वायुमें लीन हो जाता है। रुद्राग्रणी=(रुद्र+अग्रणी) रुद्रोंमें श्रेष्ठ। विश्ववंद्याग्रणी= विश्व+वंद्य+अग्रणी। वंद्य=पूजनीय, वंदना करनेयोग्य। चक्रवर्त्ती= सर्वश्रेष्ठ, सम्राट्। सामगाताग्रणी = सामवेदकी ऋचाएँ प्रायः गायत्री छंदमें हैं। यज्ञोंके समय जो उद्गाथादि स्तोत्रादि गाये जाते हैं उन्हीं स्तोत्रोंका इसमें संग्रह है। भारतीय संगीतशास्त्रका आरंभ इन्ही स्त्रोत्रोंसे हुआ। इसका उपवेद गंधर्ववेद है। गाता=गानेवालो (में)। कामजेताग्रणी= (काम+जेता) जीतनेवालोंमें अग्रणी। भक्तानुवर्ती= (भक्त+अनुवर्ती) अनुयायी, अनुगामी, पीछे पीछे चलनेवाले, अनुकूल बर्ताव करनेवाले। हर=ले जाने वा पहुँचानेवाले। हरकारा शब्द इसीसे बना हुआ जान पड़ता है। कोसला=अयोध्याजी। बिराहार्क= (विरह+अर्क) सूर्य। संतप्त=अत्यंत तापको प्राप्त। साखी (शाखी)=वृक्ष। यथा, 'तुलसी दलि रूँध्यो चहै सट साखि सिहो रे।' (पद ८ देखिये) सिंहासनासीन= (सिंहासन+आसीन) बैठे हुए, विराजमान्। सिंहासन=राजाओं या देवताओंके बैठनेका आसन या चौकी। यह प्रायः काठ, सोने, चाँदी, पीतल आदिका बना होता है। इसके हत्थोंपर सिंहका आकार बना होता है। निरखना (सं० निरीक्षण)=देखना। यथा, ' ' बहुतक चढ़ी अटारिन्ह निरखहिं गगन बिमान।' (उ०) नृत्यकारी = नाचनेवाले।

सम्राज=(सं०) सम्राट्, चक्रवर्त्ती राजा जिसके अधीन बहुतसे राजा महाराजा हों। सर्वदा = सदा। रामपुर = श्रीअयोध्याजी। बिहारी = आनंदसे रमने, विचरने वा विहार करनेवाले।

पद्यार्थ :—मंगलभवन संसारभारके विनाशक, वानररूप (में साक्षात्) शरीरधारी त्रिपुरारि शिवजी, श्रीरामचन्द्रजीकी क्रोधाग्निकी ज्वालासमूहके बहाने निशाचररूपी पतिंगोंका संहार करनेवाले (श्री हनुमान्‌जी !) आपकी जय हो ।१। पवनदेव और श्रीअंजनाजीके आनंदके घर (अर्थात् दोनोंको आनंद प्रदान करनेवाले एकमात्र आपही हैं।) दुःखसे नमित, ग्रीवावाले, सुग्रीवके दुःखमें एकमात्र सहायक, उद्धत राक्षसोंके (नाशके) लिये कुपित प्रलयाग्निरूप, * सिद्ध, सुर और सज्जनोंके आनंदसमुद्र अर्थात् उनको अगाध और अपार आनंद देनेवाले, हर ! आपकी जय हो ।२। समस्त रुद्रोंमें अग्रगण्य, संसारके (समस्त) वन्दनीय प्राणियोंमें सबसे श्रेष्ठ, विश्वविख्यात् योद्धाओंमें चक्रवर्तीरूप, सामवेदके गायकों और कामदेवके जीतनेवालोंमें अग्रगण्य अर्थात् सामवेदके गायनाचार्य और सदा उर्द्धरेता, श्रीरामजीके हितकर्ता, और रामभक्तोंके अनुगामी ! † आपकी जय हो ।३। श्रीरामजीका समरविजय संदेश ले जानेवाले और श्रीअयोध्याजीमें कुशल

*अर्थान्तर :—१ भारी निशाचरोंका क्रोध करके उनके लिये कालाग्नि हो और हर अर्थात् 'शिवरूप हो'। (पं० रा० कु०) २ दु०, बै०, भ०, वीर०, दी०, वि० ने 'क्रुद्ध' का अर्थ 'क्रोध' किया है। इन महानुभावोंने अर्थ किया है कि 'उद्दण्ड राक्षसोंके' अथवा 'राक्षसोंके प्रचण्ड' क्रोधरूपी कालाग्निके नाश करनेवाले हो। 'क्रुद्ध' का अर्थ 'क्रोधित' 'कुपित' है। इस तरह यह विशेषणही हो सकता है। अर्थ यहभी हो सकता है कि 'उद्धत राक्षसोंके कुपित कालाग्निके हरनेवाले।', यथा, 'रावन क्रोध अनल निज श्वास समीर प्रचंड' (सुं०) परन्तु विचारनेपर अपर्युक्त अर्थही हमें ठीक जंचता है।

†अर्थान्तर— सब रामभक्त आपके अनुवर्ती हैं अर्थात् आपके आचरण सुन सुनकर वैसाही वर्तते हैं। (दु०)

मंगलसमाचारके कहनेवाले, रामविरहरूपी सूर्य (के ताप) से संतप्त, भरतादि (समस्त अयोध्यावासी) स्त्रीपुरुषोंको शीतल करनेमें कल्पवृक्षरूप! आपकी जय हो। ४। श्रीसीतापति रामचन्द्रजीको राजसिंहासनपर विराजमान् देखकर निर्भर हर्षके मारे नाचने लग जानेवाले (इतना हर्ष हुआ कि हृदयमें समा न सका। बाहर उमड़कर नृत्यमें परिणत हो गया।) श्रीरामजीके चक्रवर्ती महाराज होनेपरकी शोभासहित सदा मुझ तुलसीदासके मनरूपी श्रीअवधपुरीमें विहार करनेवाले श्रीहनुमान्‌जी! आपकी जय हो। ५।

टिप्पणी—१ 'जयति मंगलागार संसार भारापहर' इति। (क) वानर मंगलरूप नहीं है। यथा, 'असुभ होइ जिन्हके सुमिरे ते बानर रीछ बिकारी', 'प्रात लेइ जो नाम हमारा। ता दिन ताहि न मिलै अहारा।' (सुं०) अतएव कहा कि आप साक्षात् शिवही हैं जो रामसेवा तथा संसारभारापहरणके निमित्त वानरशरीरधारी हुए हैं। अतएव मंगलकारी हैं। (ख) 'संसारभारापहर' इति। परद्रोही निशाचर जिनके पापोंसे पृथ्वी बोझल हो रही थी संसारका भार हैं। यथा, 'जय हरन धरनीभार' (लं०), 'गिरि सर सिंधुभार नहिं मोही। जस मोहि गरुअ एक परद्रोही॥' (बा०), 'हरिहौं सकल भूमि गरुआई।' (बा०)। संसारको निशाचररहित करना 'संसारभार हरना' है। पुनः संसारभार = भवभार, आवागमन। जीवोंपर जन्ममरणरूपी भार रहता है। उसे हर लेते हैं अर्थात् शरणागत जीवोंका जन्ममरण छुड़ा देते हैं। अतः 'संसारभारापहर' कहा। (ग) 'बानराकार बिग्रह पुरारी' इति। पद २५ टि० ५ देखिये। (घ) 'रामरोषानलज्वालमाला' इति। गृध्रराज श्रीजटायुजीने रावणसे ऐसाही कहा है और माल्यवान्‌नेभी। यथा, "तजि जानकिहि कुसल गृह जाहू। नाहि त अस होइहि बहुबाहू॥ रामरोषपावक अति घोरा। होइहि सलभ सकल कुल तोरा॥" पुनः यथा, "भूमि भूमिपाल व्यालपालक पताल नाकपाल लोकपाल जेते सुभटसमाज हैं। कहै

मालवान जातुधानपति रावरेको मनहुं अकाज आनें ऐसे कौन आजु है ॥ रामकोह पावक समीरसीयस्वास कीस ईस बामता विलोकु वानरको ब्याजु है। जारत प्रचारि फेरिफेरि सो निसंक लंक जहां बांको बीर तोसों सूर सिरताजु है ॥ क० ॥" यहां परंपरितके ढंगमें समअभेदरूपक है। रामक्रोधाग्निसे राक्षस भस्म हुए। इस बातको 'मिष' में डालकर श्रीहनुमान्‌जीका पुरुषार्थवर्णन 'कैतवापह्नुति अलंकार' है।

क० सुं० के उपर्युक्त उद्धरणसे 'रामरोषानल' का भाव खूब स्पष्ट हो जाता है। वहां माल्यवान् कह रहा है कि 'वानर लंका जला रहा है, ऐसा न समझो। यह तो रामरोषानल है जो सीताजीकी विरह-श्वासरूपी उनचासो पवनोंसे प्रचंड होकर लंकाको जला रहा है, वानरका बहाना है। इसीसे तो वानर ललकार ललकारकर लंकाको जला रहा है।' यहां 'रामरोषानल' को बहाना कहा है। कपिका उत्कर्ष सिद्ध करनेकेलिये ऐसा कहा गया है। मूल रामायणमेंभी कहा है 'यः शोकवह्निं जनकात्मजायाः आदायते नैव ददाह लंका।'

नोट—पूर्व पदों (२५, २६) में हनुमान्‌जीको चन्द्रमा और सूर्य कहा और यहां 'रामरोषानलज्वालमालामिष' से उनको अग्निरूप कहा गया। तेजका उदाहरण सूर्य, चन्द्र और अग्नि इन्हीं तीनसे दिया जाता है। तीनोंका रूपक देकर हनुमान्‌जीमें तीनोंका सामुहिक तेज एकत्रित दिखाया।

२ (क) 'जयति मरुदंजना मोद मंदिर' इति। दोनों आपके चरित देख देखकर एवं सुन सुनकर आनंदमें भरे रहते हैं। उनके 'मोद मंदिर' कहकर जनाया कि उनके बड़े यशस्वी पुत्र हैं।

(ख) 'नतग्रीव सुग्रीव' इति। भाव कि वास्तवमें वे 'सुग्रीव' हैं। उनकी ग्रीव सुंदर (ऊँची और मांसभरी) थीं, परन्तु शोकसे वे नतग्रीव हो गये। यथा, 'बालि त्रास ब्याकुल दिन राती। तनु बहु ब्रन चिंता जर छाती।' 'दुःखैक बंधो' इति। विपत्तिमें

बराबर उचित शिक्षा देकर रक्षा की। श्रीरघुनाथजीसे मित्रता कराके उनके सब शोक दूर कर दिये। मिलान कीजिये, '**सुग्रीव सिक्षादि रक्षा निपुण बालि बलसालि बध मुख्य हेतू।**' पद २५ देखिये। 'बंधो' का भाव कि सगे भाईके समान सहायक हुए। यथा, '**होहिं कुठाय सुबंधु सहाए।**'

(ग) 'जातुधानोद्धत क्रुद्ध कालाग्नि हर' इति। 'क्रुद्ध' विशेषण है। इसका अर्थ 'कोपित', 'क्रोधमें भरा हुआ' होता है। इसीके अनुसार पद्यार्थमें अर्थ दिया गया है। 'क्रुद्ध' का अर्थ 'क्रोध' है। ऐसा प्रयोग हमें कहीं मिला नहीं। यदि ऐसा अर्थ होता तोभी भाव सुंदर निकल आता। परन्तु इस अर्थका प्रमाण न मिलनेसे हमने टीकाकारोंका मत स्वीकार नहीं किया।

३ (क) 'सिद्ध सुर सज्जनानंदसिंधो' इति। ये सब रावणसे पीड़ित थे। इसीसे इन सबोंको आपके चरित्रोंसे आनंद मिला। पुनः, अष्टसिद्धियोंके दाता होनेसे सिद्धोंको, देवबंदीछोर होनेसे देवताओंको और भक्ति देकर सज्जनोंको आनंददाता हुए।

(ख) 'विश्वबंद्याग्रणी' इति। यथा बाहुके, '**सेवक सेवकाई जानि जानकीस मानै कानि सानुकूल सूलपानि नवै नाथ नाक को। देवीदेव दानव दयावने ह्वै जोरैं हाथ बापुरे बराँक और राजा राना राँक को।**', '**करतार भरतार हरतार कर्मकाल को है जगजाल जो न मानत इताति है।**', '**तेरे गुनगान सुनि गीरवान पुलकत सजल बिलोचन बिरंचि हरि हर के।**'

(ग) 'कामजेताग्रणी' इति। ऐसे कि रावणकी परम सुंदरी स्त्रियोंको नंगी देखकरभी ऊर्द्धरेता बनेही रहे। उनके मनमेंभी किंचित् विकार न उत्पन्न हुआ। यथा, '**नहि मे परदाराणां दृष्टिर्विषयवर्तिनी। कामं दृष्टा मया सर्वा विश्वस्ता रावणस्त्रियाः॥ न तु मे मनसा किंचिद्वैकृत्यमुपपद्यते॥** सुं० ११। ४१॥'

(घ) ' भट चक्रवर्ती ' इति । जैसे राजाओंमें चक्रवर्ती राजाधिराज होता है वैसेही योद्धाओंमें ये महायोद्धा हैं। समस्त योद्धाओंके सिरताज हैं। यथा, ' सकल सुभट सिरमोर को ' (३१), ' पंचमुख छमुख भृगुमुख्यभट असुर सुर सर्ब सरि समर समरत्थ सूरो ' । (बाहुक) अकेलेही शिवजी, कार्तिकेयजी, परशुरामजी और समस्त सुरासुरसे लड़नेको समर्थ हैं । पुनः यथा, ' भीषम कहत मेरे अनुमान हनुमान सारिखो त्रिकाल न तिलोक महाबल भो । ' (बाहुक) पद २८ टि० १ (ग) ' बल विपुल ' देखिये ।

(ङ) ' भक्तानुवर्ती ' इति । भक्तोंके पीछे पीछे उनकी रक्षामें तत्पर सदा साथ रहते और उनकी रुचि पालते हैं। यथा, ' रामके गुलामनि को कामतरु रामदूत '। (बाहुक) इस तुकमें उत्तरोत्तर उत्कर्षका वर्णन होनेसे ' सार अलंकार ' है ।

४ ' जयति संग्राम जय राम संदेस हर ' इति । (क) ' संग्राम जय ' का अर्थ टीकाकारोंने यह किया है । १ ' संग्राममें सदा जय होती है जिनकी ऐसे हनुमान्‌जी ' । (वै०) २ ' तुम युद्धके जीतनेवाले हो ' । (भ०) ३ ' संग्राममें जीत कराकर ' । (वीर)

किसीने इसे 'हनुमान्‌जी' का और किसीने ' राम ' का विशेषण माना है । ' संग्राम जय ' का अर्थ हमने ' संग्राममें जय ' अर्थात् ' समरविजय ' किया है । यथा, ' समर विजय रघुबीर के चरित जे सुनहिं सुजान ' । (लं०) यही संदेसा उन्होंने कहाभी है । यथा, ' रिपु रन जीति सुजस सुर गावत ।' (ख) ' संदेस हर ' इति । आगेके ' कोसला ' शब्दके संबंधसे यहां ' संदेस हर ' से ' अयोध्यामें श्रीभरतजीके पास संदेसा ले जाना ' अर्थ विशेष संगत है । तोभी ' संग्राम जय राम संदेश हर ' इतने शब्दोंका अर्थ अलगभी हो सकता है । क्योंकि संग्रामके पश्चात् तुरन्त श्रीजानकीजीके पास संग्रामविजयका संदेसा गया है । यथा, ' पुनि प्रभु बोलि लियेउ हनुमाना । लंका जाहु कहेउ भगवाना ॥ समाचार जानकिहि सुनावहु । ' । (लं०)

और हनुमान्‌जीने जाकर यही कहा है। यथा, 'सब बिधि कुसल कोसलाधीसा। मातु समर जीत्यो दससीसा।' दूसरा संदेसा अवधपुरकेलिये है। यथा 'प्रभु हनुमंतहि कहा बुझाई। धरि बटुरूप अवधपुर जाई॥ भरतहि कुसल हमारि सुनायेहु। समाचार लै तुम्ह चलि आयेहू॥' (लं०) अन्य रामायणोंमें निषादराजकोभी संदेसा कहना पाया जाता है। इस तरह इतने शब्दोंको अलग करनेसे तीनोंको समरविजयका संदेसा पहुँचानेका भाव आ सकता है। (ग) 'कोसला कुसल कल्यान भाषी' इति। अयोध्यावासियोंसे श्रीरघुनाथजीका कुसल कहा। इसी तरह लौटकर भरतादिका कुसल रघुनाथजीसे कहा है। यथा, 'कही कुसल सब जाइ हरषि चलेउ प्रभु जान चढ़ि।' यद्यपि दासकी समझमें मुख्य अर्थ वही है जो पद्यार्थमें दिया गया है तथापि दोनों भाव इन शब्दोंसे निकल सकते हैं।*

५ 'रामबिरहार्कसंतप्त भरतादि कल्पसाखी' इति। (क) सूर्यकी कड़ी धूपसे तपे हुए लोग वृक्षके नीचे पहुँचनेसे शीतल होते हैं। भरतादि रामविरहरूपी सूर्यके तापसे संतप्त थे। उनको शीतल किया। इसीसे हनुमान्‌जीको कल्पवृक्ष कहा। यथा, "रहा एक दिन अवधि कर अति आरत पुर लोग। जहँ तहँ सोचहिं नारि नर कृस तन राम बियोग॥ रहा एक दिन अवधि अधारा। समुझत मन दुख भएउ अपारा॥ बीते अवधि रहे जो प्राना। अधम कवन जग मोहि समाना॥", "रामबिरहसागर महँ भरत मगन मन होत।", "जासु बिरह सोचहु दिनराती।" (ख) 'शीतलकरन कल्पसाखी' इति। यथा, "रघुकुलतिलक सुजन सुखदाता। आयेउ कुसल देव मुनि त्राता॥ रिपु रन जीति सुजस सुर गावत। सीता अनुज सहित प्रभु आवत॥", 'सुनत बचन बिसरे सब दूषा। तृषावंत जिमि

*बैजनाथजी 'हर कोसलाकुसल' का अन्वय 'हर कोसला अकुसल' करके अर्थ करते हैं कि 'अयोध्यामें जो अकल्याण था उसको संदेसा देकर हरनेवाले'।

पाइ पियूषा ॥ " कुशल मंगल कहकर विरह मिटाया। इस संदेशमें 'समर विजय' और 'कुशल' दोनों है। विरह संताप दूर होना कल्पवृक्षकी छायातले शीतल होना है। भरतजीका शीतल होना उपर्युक्त उद्धरणसे सिद्ध हो गया। पुरनरनारिभी शीतल हुए। यथा, 'समाचार पुरबासिन्ह पाए। नर अरु नारि हरषि सब धाए॥' शीतलता तो किसीभी हरेभरे वृक्षकी छायामें प्राप्त हो सकती है। यहाँ कल्पवृक्षकी उपमा दी। यह क्यों? इसलिये कि हनुमान्‌जीने भरतादिको उनके मनोनुकूल परमप्रिय वचन सुनाकर शीतल किया। यथा 'कौसल्यादि मातु सब मन अनंद अस होइ। आयउ प्रभु श्री अनुज जुत कहन चहत अब कोइ॥', 'मोरे जिय भरोस दृढ़ सोई। मिलिहहिं राम सगुन सुभ होई॥ को तुम्ह तात कहां ते आए। मोहि परम प्रिय बचन सुनाए॥' (उ.) मिलान कीजिये, 'रामके गुलामनि को कामतरु रामदूत मोसे दीन दूबरेको तकिया तिहारियै।' (बाहुक)

श्रीवैजनाथजी लिखते हैं कि "प्रभुका आगमन मात्र वचन छाया है जिससे विरह ताप हरा और रणमें विजय पाकर श्रीसीतालक्ष्मणसहित प्रभु प्रसन्न आ रहे हैं इत्यादि वचन अनेक वांछितफलदायक हैं। अतएव कल्पवृक्ष हुए।"

६ 'जयति सिंहासनासीन सीतारमन निरखि' इति। (क) रावणवध करके विभीषणका राज्याभिषेक कर श्रीसीतालक्ष्मणसहित श्रीअवधपुरीमें आनेपर राज्याभिषेक होनेके समय श्रीसीतासंयुक्त दिव्य राज्यसिंहासनपर विराजमान समयका यह ध्यान है। (ख) 'निरखि निर्भर हरष नृत्य कारी' इति। लंकाविजयपरही श्रीहनुमान्‌जीके हर्षका पारावार न था जैसा कि वे स्वयं कह रहे हैं, 'सुनु मातु मैं पायउँ अखिल जग राज आजु न संसयं। रन जीति रिपुदल बंधु जुत पस्यामि राममनामयं॥' (लं०) राज्याभिषेक होनेपर वह हर्ष अत्यधिक हो गया जिससे वे फूले न समाये, नाचने लगे और श्रीरघुनाथ-

जीका प्रताप वर्णन करने लगे* । जो वचन आपने अंबा श्रीजानकीजीसे कहे हैं उनसे स्पष्ट है कि आपके हृदयमें बराबर यह मनोरथ रहा है कि कब हम रावणपर विजय प्राप्त कराके दोनोंको राज्यसिंहासनासीन देखें ।

७ 'राम सम्राज सोभा सहित' इति । इस शोभाका वर्णन रामचरितमानस उत्तरकांड 'करि मज्जन प्रभु भूषन साजे । अंग अनंग देखि सत लाजे ॥' से लेकर 'अंभोजनयन बिसाल उर भुज धन्य नर निरखंतिजे ।' तक है । इसके आगे वक्ता स्वयं कहते हैं कि वह 'सोभा समाज सुख कहत न बनइ खगेस ।'

नोट—१ श्रीवियोगीहरिजी लिखते हैं कि 'रामराज्याभिषेककी शोभा सहित हृदयमें विहार करो ।' कथनका भाव यह है कि 'मुझे तुम्हारे ऐश्वर्यसे कोई प्रयोजन नहीं । मैं तो राममाधुर्योपासक हूँ । मुझे वही छवि, छटा चाहिये ।' 'तुलसी मानस रामपुर बिहारी' में 'सम अभेद रूपक अलंकार' है ।

२ "कैलासो निलयस्तुषार शिखरी विन्दिर्गिरीश. सखा। स्वर्गङ्ग गृहदीर्धिका हिमरुचिश्चन्द्रोपलो दर्पणः ॥ क्षीराब्धिर्नव-पूर्तकं किमपरः शेषस्तु शेवतिवषा। यस्याः स्यादिह राघव क्षितिपते कीर्तेस्तटाकस्तव ॥ ७८ ॥" हे पृथ्वीपति राघव ! कैलास जिसका स्थान है, हिमालय जिसके उपवेशका स्थान है, महादेव जिसके

---

* 'कूर्मः पादोऽङ्ग्यष्टिर्भुजगपतिरसौ भाजनं भूतधात्री। तैला पूराः समुद्राः कनकगिरिरयं वृत्त वर्ति प्ररोहः ॥ अर्चिश्चण्डांशुरोचिर्गगनमलिनिमा कज्जलं दह्यमाना । शत्रु श्रेणी पतंगा ज्वलति रघुपते त्वत्प्रताप प्रदीपः ॥ ७७ ॥' श्रीहनुमान्‌जी कहते हैं कि हे श्रीरामचन्द्रजी ! कूर्मराज जिसके पाद (फतीलसोज़के नीचेकी थाली) हैं, शेष जिसका दण्ड है, पृथ्वी जिसका पात्र है, समुद्र जिसका तेल है, हिमालय गोलबत्ती और सूर्यकी किरणें जिसकी किरणें हैं, आकाशकी श्यामता जिसका कज्जल है और शत्रुओंकी पंक्ति जिसमें जल मरनेवाले पतिंगे हैं ऐसा आपके प्रतापका दीपक प्रज्वलित हो रहा है ।

मित्र हैं, आकाशगंगा जिसके घरकी बावड़ी है, निर्मल कान्तिवाला चंद्रकान्तमणि जिसका दर्पण है, क्षीरसागर जिसका नवीन जलयुक्त खानित देश है और शेषजीकी किरणें जिसकी अंगदीप्तियां हैं ऐसा आपकी कीर्तिका विस्तार है।

३ "**लक्ष्मी तिष्ठति ते गेहे वाचि भाति सरस्वती। कीर्तिः किं कुपिता राम येन देशान्तरं गता॥ ८१॥**" हे राम! लक्ष्मी तो आपके घरमें स्थित है और वाणीमें सरस्वती सुशोभित है। परंतु आपकी कीर्ति न जाने क्यों कुपित होकर देशान्तरोंमें चली गयी?

४ हनु० ना० अंक १४ के श्लोक ७७ से लेकर ८८ तक श्रीहनुमान्जी-द्वारा श्रीरामकीर्ति और प्रतापका वर्णन है। पाठक वहाँ देख सकते हैं। (व्रजरत्नभट्टाचार्यकृत टीकासे।)

२८ [१७]

जयति[1] बात संजात बिख्यात बिक्रम
बृहद्बाहुबल बिपुल बालधि बिसाला।
जातरूपाचलाकार* बिग्रह लसल्लोम[2]
बिद्युलता ज्वालमाला॥ १॥
जयति बालार्क बर बदन पिंगल नयन
कपिस कर्कस जटाजूटधारी।
बिकट भ्रुकुटी[3] बज्र दसन नख बैरि
मद मत्त कुंजरपुंज कुंजरारी॥ २॥
जयति भीमार्जुन ब्यालसूदन गर्बहर
धनंजय रथ त्रान केतू।
भीषण द्रोण कर्णादि पालित
कालदृक सुजोधनचमू निधन हेतू॥ ३॥

---

१ मु०, ७४ में नहीं है। *जातरूपांचलाकार—६६। २ लसल्लोम—६६, रा०, भ०। लसत लोम—भा, बे०, डु०, वै०, मु०, ५१, ह०, ७४, दी०, वि०। लसत् लूम—१५। ३ भ्रुकुटी—६६, ५१, भ०, दी०। भृकुटी—रा०, ह०, डु०, ७४, वि०।

शब्दार्थ—बात (वात) = पवनदेव। वैद्यकके अनुसार वात शरीरके अंदर पक्काशय स्थानपरकी वायुका नाम है जिसके कुपित होनेसे अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। शरीरकी सब धातुओं और मल आदिका परिचालन और श्वास, प्रश्वास, चेष्टा, वेग आदि इंद्रियोंके कार्योंकाभी यही मूल है। पवनके अभिमानी देवता। संजात = उत्पन्न। जातरूपाचलाकार = जातरूप (स्वर्ण) + अचल (पर्वत) + आकार (रूप), सुमेरुपर्वतके आकारका। लसल्लोम = लसत् + लोम। लोम = रोम, रोएँ, शरीरपरके छोटे छोटे बाल। विद्युल्लता (सं०) = बिजली। विद्युल्लता= (विद्युत्+लता) बिजली समूह (डु०), बिजलीकी लताएँ (वै०)। ज्वालमाला = समूह प्रकाश, लहरसमूह (डु०)। कपिश = काला और पीला रंग मिलनेसे जो नीला रंग बनता है। पीलाभूरा, धूम्र वा लालभूरा। 'श्यावः स्यात्कपिशो धूम्र।' इत्यमरः। कर्कस (कर्कश)=कठोर, कड़ा। यथा, 'कपिस केस कर्कस लंगूल खल दल भानन।' (बाहुक) भ्रुकुटी (भृकुटी)=भौंहें, नेत्रके ऊपर हड्डीपर जमे हुए बाल। भीमार्जुन=भीम और अर्जुन। ये दोनों पाण्डुपुत्र और युधिष्ठिरजीके सगे छोटे भाई हैं। व्यालसूदन=सर्पनाशक गरुड़। धनंजय=अर्जुन। त्रान (त्राण)=रक्षा; रक्षाके साधन। केतु=ध्वजा। 'भीषम', 'कर्ण'=इनकी कथाएँ आगेकी टि० में दी गयी हैं। द्रोण=महाभारतके प्रसिद्ध ब्राह्मण वीर जिनसे कौरवों और पांडवोंने शस्त्रास्त्रकी शिक्षा पाई थी। 'द्रोण' नाम होनेका एक कारण यह है कि हरिद्वारके पास भरद्वाज नामक एक ऋषि घृताची अप्सराको नंगी देख कामार्त हुए और उनका वीर्य पात हो गया जिसे उन्होंने द्रोण नामक यज्ञपात्रमें रख छोड़ा। उसीसे ये उत्पन्न हुए थे। इन्होंने परशुरामजीसे अस्त्रशस्त्रकी शिक्षा पाई थी। द्रुपद राजा पृषत्का (जो भरद्वाजके सखा थे।) पुत्र द्रोणके साथ खेला करता था। एक बार बालक द्रुपदका राज्य भीलोंने छीन लिया। द्रोणाचार्यने भीलोंको जीतकर राज्य इनको दे दिया। उस समय द्रुपद आधा राज्य द्रोणको देने लगा किन्तु उस समय द्रोणने राज्य न लिया। थातीवत् राजा द्रुपदकोही समर्पित करके वे वनमें चले गये। कुछ कालके बाद अपने पुत्र अश्वत्थामाकेलिये वे द्रुपदके पास गाय माँगने आये

और मित्र कहकर संबोधन किया। इस पर उसने इनका अपमान किया। तब ये हस्तिनापुर आकर अपने साले कृपाचार्यके यहां ठहरे। एक दिन युधिष्ठिरादिका गेंद कुएँमें गिरा जिसे वे निकालनेमें असफल हुए। उसी समय द्रोणाचार्यजी दैवयोगसे वहाँ पहुचे और उन्होंने (सींकके) बाणोंसे मारमारकर वह बाहर कर दिया। भीष्मजीने यह समाचार पाकर श्रीद्रोणाचार्यजीको शस्त्रास्त्रशिक्षाका गुरू नियुक्त कर दिया। गुरुदक्षिणामें "द्रुपदको बाँधकर पकड़ लाओ" यही उन्होंने माँगा। अर्जुन द्रुपदको जीतकर बाँध लाये और उसे गुरुके सामने खड़ा कर दिया। लज्जित और मानमर्दित होनेसे द्रुपदने इनके मारनेवाले पुत्रकी कामनासे पुत्रेष्टि यज्ञ किया जिससे द्रौपदी और धृष्टद्युम्न पैदा हुए। अश्वत्थामा मारा गया यह सुनतेही द्रोणाचार्यने ब्रह्माण्डमें प्राण चढ़ाये। उसी समय धृष्टद्युम्नने उनका सिर काट लिया। महाभारतमें इनके संबंधमें यह श्लोक कहा गया है। "**मुखाग्रे यस्य वै वेदाः कराग्रे वै धनुश्शराः। उभयो द्रोण सामर्थं शापादपि शरादपि ॥**" द्रोणाचार्यजीकी जिह्वापर सब वेद थे और हाथोंमें धनुष बाण। वे शाप और शर दोनोंहीमें समर्थ थे। कालदृक = कालदृष्टि, मृत्यु वा यमराजकीसी दृष्टिवाली। 'दृग्' शब्द समस्त होनेपर 'दृक्' हो जाता है। सुयोधन = दुर्योधन। गोस्वामीजीने दुर्योधनके बदले 'सुयोधन' नामकाही प्रयोग किया है। दोनोंका अर्थ एकही है। यह धृतराष्ट्रका सबसे बड़ा पुत्र और राजा था। चमू=सेना। नियत संख्याकी सेना जिसमें ७२९ हाथी, ७२९ रथ, २१८७ सस्वार और ३६४५ पैदल होते थे। निधन=नाश।

पद्यार्थ—हे पवनपुत्रजी! आपकी जय हो। आपका पराक्रम प्रसिद्ध है। आपकी बड़ी बड़ी भुजाएँ हैं। भारी बल है और विशाल पूँछ है। सुमेरु-पर्वताकार शरीर है। बिजलीके ज्वालासमूहके समान शरीरके रोम शोभित हैं। १। बाल सूर्यके (उदयकालीन) समान सुन्दर (लाल) मुख, पीले नेत्र, पीलीभूरी कड़ी जटाओंका जूड़ा धारण करनेवाले, टेढ़ी भौंहें और वज्रसमान दाँतों और नखोंवाले, शत्रुरूपी मदोन्मत्त हस्तिसमूहकेलिये सिंहरूप, आपकी जय हो। २। भीमसेन, अर्जुन और गरुड़के गर्वको हरनेवाले, अर्जुन के रथ की रक्षा के लिये [रथ पर की] ध्वजा अर्थात् रथ की पताका पर बैठकर रथ की रक्षा करनेवाले, भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य और कर्ण आदि द्वारा सुरक्षित काल समान दृष्टि वाली दुर्योधन की सेना नाश के कारण स्वरूप [श्रीहनुमान् जी] ! आप की जय हो ॥३॥

टिप्पणी—१ (क) 'जयति वातसंजात बिख्यात बिक्रम' इति। इस पदमें पिताका नाम 'वात' अर्थात पवन बताया। वातजात हैं अतः इनमें पवन समान बल और पराक्रम है, यह जनाया। यथा, 'पवनतनयबल पवन समाना। बुधि बिबेक बिज्ञान निधाना।' (कि०) पवनदेव शीघ्रगामि, समस्त प्राणियोंके प्राण, सर्वगत, जादू टोणा आदिके नाशक, इत्यादि गुणसंपन्न हैं। वैसाही पराक्रम आदि श्री हनुमान्‌जीका है। यह 'वातसंजात' से सूचित किया। (ख) बृहद्‌बाहु अर्थात् आजानबाहु। घुटनेतक लंबी लंबी भुजाओंवाले। (ग) 'बल बिपुल' इति। बाहुकमें कहा है कि आपके बलके संबंधमें त्रिदेवादि अचंभेमें पड़ गये और सोचने लगे कि यह बल है कि वीररस है कि धीरज है कि साहस है या कि वीररस, धैर्य और साहस सभीका सारही है। यथा, "पाछिले पगनि गम गगन मगन मन क्रम को न भ्रम कपिबालक बिहार सो। कौतुक बिलोकि लोकपाल हरिहरबिधि लोचननि चकाचौंधि चितनि खँभार सो॥ बल कैधौं बीररस धीरज कै साहस कै तुलसी सरीर धरे सबनि को सार सो।", "कह्यो द्रोण भीषम समीरसुत महाबीर बीररस बारिनिधि जाको बल जल भो।", "भीषम कहत मेरे अनुमान हनुमान सरीखो त्रिकाल न तिलोक महाबल भो।" पद ३१ 'सकल सुभट सिरमोर' मेंभी देखिये। (घ) 'बालधि बिसाला' इति। विशालताका अनुमान इससे कर लें कि बड़े बड़े राक्षसोंको उसमें लपेटकर पटक देते थे। कहीं ऐसीभी कथा है कि जब ये दूत बनकर रावणके समीप गये थे तब रावणको ऊँचे सिंहासन-पर विराजमान देख इन्होंने अपने पूँछकी पिंडली ऐसी बनायी कि उतनीही उँचाईतक पहुँच गयी। उसीपर आप बैठ गये। भीमसेनके गर्वहरणकी कथामें पूँछकी विशालता और बलका प्रसंग आया है। 'बल बिपुल' दीपदे-हलीन्यायसे 'बाहु' और 'बालधि' दोनोंके साथ है। भुजाओं और पूँछ दोनोंमें असीम बल है। (ङ) 'जातरूपाचलाकार बिग्रह' इति। सुमेरुपर्वतके समान कनकवर्ण, तेजोमय और विशाल शरीर है। यथा, 'कनकबरन तनु तेज बिराजा। मानहु अपर गिरिन्ह कर राजा॥' (कि०) इससे संग्राममें

शत्रुको भयभीत करनेवाला महाबलिष्ठ शरीर जनाया। यथा, 'कनकभूधराकार सरीरा। समर भयंकर अति बल बीरा ॥' (सुं०) (च) 'लसल्लोम विद्युल्लता ज्वालमाला' इति। शरीरमें अगणित रोम होते हैं। इसीसे ज्वालमाला कहा। अर्थात् रोमरोम ऐसा प्रकाशमान है मानों बिजलीसमूहकी ज्वालासमूह हो। ऐसा क्यों न हो ? क्योंकि आपके तो रोमरोममें सबका परम प्रकाशक 'राम नाम रमणीय' विराजमान है। यहां वाचकलुप्ता अलंकार है।

२ (क) 'जटाजूटधारी' कहकर ब्रह्मचारी जनाया। बाबू शिवप्रकाशजी लिखते हैं कि, "वानरस्वरूपवर्णनमें जटा कहना असंगत है। पर शिवरूप होनेसे दोष नहीं है।" समाधान योंभी कर सकते हैं कि जब जैसा चाहें वैसा रूप बना सकते हैं।

देवदत्त शर्माजीका मत है कि 'जटा' शब्दको लेकर ब्रह्मचारी कहना या बहुरूपिया कहना दोनों असंगत है। जटाके अनेक पर्यायी हैं, जिनमें एक अर्थ 'कपिकच्छ' भी होता है। पर दासकी समझमें 'जटाजूट' अनेक स्थलोंमें जटाओंके जूड़ेके अर्थमेंही ग्रंथकारने प्रयुक्त किया है। वही अर्थ यहाँभी है।

(ख) 'वैरि मद मत्त कुंजरपुंज कुंजरारी' इति। 'मद मत्त' दीपदेहली है। रावणादि बलके मदसे मतवाले थे। यथा, **'रन मद मत्त फिरै जग धावा। प्रतिभट खोजत कतहुँ न पावा।'** (रावण), **'जेहि कहं नहिं प्रतिभट जगजाता।'** (कुंभकर्ण), **'भट महं प्रथम लीक जग जासू'** (मेघनाद), **'एक एक जग जीत सक ऐसे सुभट निकाय'** (सुभट)। हाथीभी मदसे मतवाले हो जाते हैं। इसीसे सबको 'मद मत्त कुंजर' कहा। रावणादि बहुत हैं इसीसे 'कुंजरपुंज' कहा। यहां परंपरितरूपक अलंकार है। यहांतक वीर विक्रम स्वरूपका वर्णन हुआ।

३ 'भीमार्जुनव्यालसूदनगर्वहर' इति। भीमसेनके गर्व हरणकी कथा महाभारत वनपर्वमें इस प्रकार है। द्रौपदीजीका प्रिय करनेकेलिये भीमसेन सौगंधिकनामवाले सहस्रदल कमलोंके लानेकेलिये बद्रिकाश्रमसे ईशानकोणकी ओर गये। गंधमादनपर्वतपर कई योजन लंबा चौड़ा एक केलेका

वन उनको मिला। गर्जना करते हुए वे उसके भीतर घुस गये। इसीमें हनुमान्‌जी रहते थे। उनको भीमके आनेका पता लग गया था। अतः वे कदली वनसे होकर स्वर्गको जानेवाले सैंकड़े मार्गको रोककर एक मोटी शिलापर लेट गये। वहाँ लेटे लेटे जँभई लेते हुए जब वे अपनी पूँछ फटकारते थे तो उसकी प्रतिध्वनी सब ओर फैल जाती थी। इससे वह महापर्वत डगमगाने लगता था। उस शब्दको सुनकर भीमसेनके रोएँ खड़े हो जाते थे। ढूँढ़ते ढूँढ़ते वे वहांतक पहुँचे। हनुमान्‌जीको अकेले देख वे उनके पास चले गये। हनुमान्‌जीने उपेक्षापूर्वक उनकी ओर देखा और मुसकराते हुए कहा, "मैं रोगी हूँ, यहां आनंदसे सो रहा था, तुमने मुझे क्यों जगा दिया? तुम्हें जीवोंपर दया करनी चाहिये। तुम्हारी प्रवृत्ति क्रूर कर्मोंमें क्यों होती है? मालूम होता है तुमने विद्वानोंकी सेवा नहीं की। तुम हो कौन और यहां क्यों आये हो? आगे यह पर्वत अगम्य है। तुम यहींसे लौट जाओ।" भीमसेनके अपना परिचय देनेपर हनुमान्‌जीने कहा कि "मैं तो बंदर हूँ। तुम्हें इधर होकर नहीं जाने दूँगा। यहींसे लौट जाओ, नहीं तो मारे जाओगे।" भीमसेन बोले, "तुम्हारी बलासे मैं मरूँ या जिऊँ। मैं तुमसे इस विषयमें तो कुछ पूछता नहीं। तुम ज़रा उठकर मुझे रास्ता दे दो।" हनुमान्‌जी बोले, "मैं रोगसे पीड़ित हूँ। यदि तुम्हें जानाही है तो मुझे लाँघकर चले जाओ।" भीमसेन बोले कि "भगवान् सब शरीरोंमें व्याप्त हैं। इसलिये मैं लाँघकर उनका अपमान नहीं करूँगा। यदि मुझे यह ज्ञान न होता तो मैं तुम्हें क्या, इस पर्वतकोभी लाँघ जाता; जैसे हनुमान्‌जी समुद्रको लाँघ गये थे। मैंभी बल, पराक्रम और तेजमें उन्हींके समान हूँ। इसलिये तुम खड़े हो जाओ और मुझे रास्ता दे दो। यदि मेरी आज्ञा नहीं मानते तो मैं तुम्हें यमपुरीमें भेज दूंगा।" हनुमान्‌जी बोले कि बुढ़ापेके कारण मुझमें उठनेकी शक्ति नहीं है। इसलिये कृपा करके मेरी पूँछ हटाकर निकल जाओ। यह सुनकर भीमसेन अवज्ञापूर्वक हँसकर अपने बाएँ हाथसे पूँछ उठाने लगे, किन्तु वह टससेमस न हुई। तब उन्होंने दोनों हाथ लगाये। फिरभी उसके

उठानेमें असमर्थ रहे। तब उन्होंने लज्जासे सिर नीचा कर लिया और दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम कर अपने कटु वचनोंकेलिये क्षमाप्रार्थी हुए और कहा कि कृपा करके आप अपना परिचय दीजिये कि वानरशरीरधारी आप कौन हैं? श्रीहनुमान्‌जीका परिचय पानेपर भीमसेनने प्रार्थना की कि, "हे वीरवर! समुद्रोल्लंघन समयके आपके अनुपम रूपका मैं दर्शन करना चाहता हूँ।" हनुमान्‌जीने कहा कि 'उस रूपके देखनेको तुम समर्थ नहीं हो। कोईभी उसे देख नहीं सकता। दूसरे युग युगके अनुसार बल विक्रम घटता बढ़ता रहता है। व्यर्थ आग्रह न करो।'

भीमसेनका हठ देखकर हनुमानजीने अपना रूप बढ़ाया। वह विशाल विग्रह देखकर भीमसेन विस्मित हो गये। उनके रोंगटे खड़े हो गये। वह विग्रह तेजमें सूर्यके समान था और सोनेका पर्वतही जान पड़ता था। उसकी विशालताका क्या वर्णन किया जाय? मानों दैदीप्यमान आकाशही हो। उसे देखतेही भीमसेनने आँखें बंद कर लीं। भयानक विशाल देहको देखकर वे डर गये और हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगे कि "अब आप इस अपने स्वरूपको समेट लीजिये। आप मनाकपर्वतके समान अपरिमित और दुराधर्ष जान पड़ते हैं। मैं आपकी ओर देख नहीं सकता।"

भीमसेनकी निर्भयताकी एक कथा जैमिनि भारतमें यह बतायी जाती है कि एकबार दुर्योधनने दुर्वासाको बहुत प्रसन्न किया। वर माँगनेमें यह माँगा कि हमारे भाई वनमें रहते हैं। उनपर कृपा करके उनको किसी दिन दर्शन और साधुसेवाका सुख दीजिये। मैं एक आमकी गुठली देता हूँ, यह उन्हें देकर कहियेगा कि यह आजही लगाया जाय, आजही वृक्ष हो, इसीके फल हम पावेंगे। हाँ, यहभी कहियेगा कि भूमिपर लगाया न जाय। वे गुठली लेकर गये। युधिष्ठिरने आतिथ्य स्वीकार किया, यह सोचकर कि न स्वीकार करेंगे तो ये शाप दे देंगे। दुर्वासा स्नानको गये और इन्होंने सोचा कि हम सब जलकर भस्म हो जायँ; शापसे भस्म न हों। द्रौपदीने ढाढस दिया कि क्यों मरते हो? क्या कृष्ण कहीं गये हैं?

सबने अपने अपने सुकृतोंका बल लगाकर पेड़ सफल तैयार किया। भीमने यह सुकृत बल लगाया था कि 'यदि आजतक हमको कभी किसीभी वीरकी शंका न हुई हो और कभी हमारा पेट न भरा हो तो इसमें अंकुर लग जाय'। इस प्रतिज्ञासे स्पष्ट है कि वे कैसे वीर थे। पर वेभी हनुमान्‌जीकी पूँछ न उठा सके।

श्रीरामायणाङ्कमें श्रीयुत् रामचंद्र शंकरजी टक्की महाराजने 'भीम-गर्वगंजन' की कथा इस प्रकार दी है। "कथा है कि एकबार छोटे बड़े अनेक ऋषि रत्नकी थालियोंमें देवदुर्लभ षट्रस भोजन कर रहे थे। उस समय भीमने ब्राह्मणोंसे इस प्रकार कठोर बचन कहे, 'हे ब्राह्मणो! देखिये, पात्रमें आप कुछभी उच्छिष्ठ न छोड़ सकेंगे। यदि आप ऐसा करेंगे तो मैं उसे आपकी चोटियोंमें बाँध दूँगा। जितना आपके पेटमें अटे उतना माँग लें। थालीमें अधिक लेकर छोड़ देना ठीक नहीं होगा। मेरा स्वभाव आप लोग अच्छी तरह जानतेही हैं।' भीमके डरसे वे अत्यल्प आहार करने लगे, जिससे वे बिचारे दुर्बल हो गये। यह बात श्रीहरि ताड़ गये और भीमसे बोले, 'तुम शीघ्र जाकर गन्धमादनसे ऋषियोंको बुला लाओ। उनकी बड़ी आवश्यकता है। भीमके मनमें अपने बलका बड़ा गर्व था। अतः वे तेज़ीसे ऋषियोंको लाने चले। मार्गमें वृद्ध वानरके वेशमें महान् पर्वतकी तरह अपनी पूँछ मार्गमें अड़ाकर हनुमान्‌जी बैठे थे। भीमने उनसे गर्जकर कहा, 'रे वानर! रास्तेसे पूँछ हटा।' शेषकथा प्रायः महाभारतकीसीही है।

४ अर्जुनके गर्वहरणके संबन्धमेंभी भिन्न भिन्न कथाएँ सुनी जाती हैं। दो एक यहाँ दी जाती हैं। इनको अपनी बाण विद्याका, अप्रतिम धन्वी होनेका भारी अभिमान था।

एक कथा यह है कि अर्जुनने एक बार बातही बातमें श्रीकृष्णजीसे कहा कि 'तुमने रामावतारमें समुद्रपर पुल बाँधनेकेलिये इतना आयोजन क्यों किया? बाणोंसे पुल बाँध देते! बेचारे वानरोंको झूठमूठ परेशान क्यों किया?' भगवान् हँसकर बोले, 'अच्छा, तुम बाणोंसे समुद्रके एक छोटेसे अंशपर पुल बाँधो। मैं तुम्हें बताता हूँ।' अर्जुनने आनन फ़ानन

पुल बाँध दिया। भगवान्‌ने हनुमान्‌जीका स्मरण किया। वे तुरंत पहुँचे और भगवान्‌की आज्ञासे वे बाणोंके उस पुलपर चढ़े। उनके चढ़तेही वह पुल चरचराकर टूटने लगा। तब वे उसपरसे उतर आये। अर्जुनने देखा कि भगवान्‌की पीठपर खून लगा हुआ है। पूछनेपर मालूम हुआ कि यदि भगवान् अपनी पीठ लगाकर उस पुलको न रोक रखते तो वह हनुमान्‌जीको लिये हुए धँस जाता और अर्जुनकी बड़ी हँसी होती। भगवान्‌ने कहा कि वहाँ ऐसे ऐसे अनेकों वानर थे। वे बाणके पुलपरसे कैसे जाते ? इस तरह अर्जुनका गर्व भंग हो गया।

अर्जुनने भगवान्‌की आज्ञासे हनुमान्‌जीकी बड़ी आराधना की। उनके मंत्रोंके पुरश्चरण किये।* हनुमान्‌जीने वर दिया कि, 'मैं सर्वदा

---

* वह मंत्र यह है। "**ॐ हं हनुमते रुद्रात्मकाय हुँ फट्।**" नदी-तीरपर, भगवान्‌के मंदिरमें, निर्जन स्थानमें अथवा किसी पर्वतपर एकाग्रचित्तसे श्रीहनुमान्‌जीका ध्यान करते हुए एक लक्ष मंत्रका जप करना चाहिये। ध्यान यह है, "**महाशैलं समुत्पाट्य धावंतं रावणं प्रति। तिष्ठ तिष्ठ रणे दुष्ट घोर रावं समुत्सृजन्। लाक्षारसारुणं रौद्रं कालांतक यमोपमम्। ज्वलदग्नि लसन्नेत्रं सूर्यकोटिसमप्रभम्॥ अंगदाद्यैर्महावीरैर्वेष्टितं रुद्ररूपिणम्। एवं रूपं हनूमंतं ध्यात्वा यः प्रजपेन्मनुम्॥ लक्षजपात् प्रसन्नः स्यात् सत्यं ते कथितं मया॥**"

विधि—कुशासनपर बैठकर प्राणायाम, अंगन्यास करे। पुनः '**ॐ रां रामाय नमः**' इस मंत्रद्वारा आठ पुष्पांजलि सीतासहित भगवान् श्रीरामको समर्पित करे और फिर '**ॐ हं हनुमते**' उक्तमंत्र द्वारा आठ पुष्पांजलि हनुमान्‌जीको समर्पित कर ताम्रपत्रपर इसी मूलमंत्रको अष्टदल-कमलकी कर्णिकापर लिखकर हनुमान्‌जीका आवाहन पूजन करे। अष्टदल कमलके प्रत्येक दलोंपर पूर्वसे लेकर ईशानकोणतक क्रमसे सुग्रीव, लक्ष्मण, अंगद, नल, नील, जाम्बवान्, कुमुद और केशरीकी पूजा करे। कमलके दाहिनी और बाँयी ओर पवन और माता अंजनीकी पूजा करे। दलोंके अग्र भागमें वानरोंको पुष्पांजलि दे। तदनन्तर जप करे।

तुम्हारी सहायता करूंगा और भावी युद्धमें तुम्हारे रथपर बैठकर तुम्हारी रक्षा करूँगा। '

दूसरी कथा यह है कि अर्जुन कर्ण युद्धमें कर्णके बाणोंसे अर्जुनका रथ जब जब कुछ पीछे हट जाता था तब तब भगवान् कृष्ण कर्णकी ' वाह वाह ' कहकर भूरि भूरि प्रशंसा करते थे। शत्रुकी प्रशंसा अर्जुनसे सही न गयी। वे बोलही उठे कि, ' मेरे बाणोंसे तो कर्णका रथ बहुत पीछे हट जाता है। पर आपने मेरी प्रशंसा कभी न की और शत्रुके बाणोंसे मेरा रथ ज़रासाही हट जानेपर आप उसकी बारंबार भूरि भूरि प्रशंसा करते हैं। यह क्या बात है ? ' भगवान्‌ने कहा, " अर्जुन ! देखिये, तुम्हारे रथकी पताकापर हनुमान्‌जी बैठे हुए हैं। इनके बोझसे तुम्हारा रथ टिका हुआ है। नहीं तो कर्णके बाणोंसे यह न जाने उड़कर कहां जाता ! हनुमान्‌जीके रथपर बैठे रहनेपरभी रथका पीछे हट जाना कर्णकी बहुत बड़ी वीरताका द्योतक है। " कहा जाता है कि भगवान्‌ने हनुमान्‌जीको एक बार रथपरसे ज़रा हट जानेका इशारा किया। वे हट गये। हटतेही इनका रथ कर्णके बाणसे बहुत दूर जा गिरा। भगवान् बोले कि जान पड़ता है कि हनुमान्‌जी रथसे कहीं चले गये हैं। देखते हैं तो सचमुच हनुमान्‌जी वानरी स्वभावसे एक छलाँग मारकर ज़रा ऊपरको उड़ गये थे। यह देखकर अर्जुनका गर्व जाता रहा।

आनंदरामायण मनोहरकांड सर्ग १८ में विष्णुदासके पूछनेपर कि ' अर्जुनका यह नाम क्यों पड़ा ? ' श्रीरामदासजीने यह कथा कही है कि एक बार अर्जुन अकेलेही रथपर चढ़कर शिकार खेलते हुए दक्षिण समुद्रपर पहुँच गये। वहां धनुषकोटितीर्थपर स्नान करके मध्याह्नकी क्रिया कर फिर रथपर बैठकर कुछ गर्वमें भरे हुए समुद्रतटपर घूमने लगे। इसी बीचमें वनमें पर्वतके ऊपर सामान्य वानरके रूपमें हनुमान्‌जीको

अन्तिम दिन महापूजा करनी चाहिये। यह साधन परम पवित्र है। साधकको पवित्र होकर ब्रह्मचर्य व्रत धारण करके यह करना चाहिये। दर्शन होनेपर दृढ़ता धारण करे। आचरणमें त्रुटि होनेसे प्राणभयभी है।

राम राम कहते हुए देखकर पूछा कि 'हे कपि! तुम्हारा क्या नाम है?' हनुमान्‌जीने हँसकर कहा कि जिसकी सहायतासे श्रीरामजीने समुद्रमें सौ योजनतक पत्थरोंसे पुल बाँध दिया मैं वही वायुपुत्र हूँ। हनुमान्‌जीकी यह गर्वोक्ति सुनकर अर्जुनभी गर्वसे हँसकर बोल उठे कि 'रामने सेतु बाँधनेमें व्यर्थ परिश्रम किया। उन्होंने बाणसेही क्यों न पुल बाँध लिया?' इसपर हनुमान्‌जीने कहा कि 'मेरे सरीखे वानरोंके भारसे बाणका सेतु समुद्रमें डूब जाता, यही विचार कर श्रीरामचंद्रजीने समुद्रपर बाणसे पुल नहीं बाँधा।' यह सुनकर अर्जुनने कहा कि 'यदि वानरोंके भारसेही सेतु डूब जाय तो उस धनुर्धारीकी धनुर्विद्याही क्या? मैं अभी तुम्हारे सामनेही बाणोंका पुल बाँधे देता हूँ। तुम उसपर जी भरके उछलो, कूदो। आज मेरी धनुर्विद्याको देखो।' हनुमान्‌जी बोले कि 'यदि मेरे पैरके अंगूठेके भारसेही तुम्हारा सेतु जलमें डूब जाय तो तुम क्या हारते हो?' अर्जुनने कहा, 'यदि तुम्हारे भारसे मेरा बाणोंका सेतु डूब जाय तो मैं अग्निमें प्रवेश कर जाऊंगा। यदि न टूटा तो तुम क्या हारते हो।' हनुमान्‌जीने कहा कि 'यदि मेरे अंगुष्ठ भारसे तुम्हारा सेतु न टूट जाय तो मैं तुम्हारी ध्वजापर रहकर तुम्हारी सहायता किया करूंगा।' अर्जुनने 'तथास्तु' कहकर अपने महान् धनुषका टङ्कार किया और क्षणमात्रमें समुद्रके ऊपर सौ योजन विस्तारवाला बड़ा दृढ़तर और सघन पुल बाँध दिया। उसे देखकर हनुमान्‌जीने अपने अंगूठेकी नोकसे उसको लीलापूर्वक दबा दिया जिससे वह क्षणमात्रमें समुद्रमें डूब गया। उसी क्षण आकाशसे देवता, गंधर्व, किन्नर, उरग, राक्षस, विद्याधर, अप्सराएँ और सिद्ध आदि हनुमान्‌जीके ऊपर पुष्पोंकी वृष्टि करने लगे। अर्जुन उसी समय चिता बनाकर, हनुमान्‌जीके रोकनेपरभी देह छोड़नेको तैयार हो गये। उसी समय भगवान् कृष्ण बटुरूपमें आकर उपस्थित हो गये और अर्जुनके मुखसे दोनोंकी प्रतिज्ञाएँ सुनकर बोले कि बिना साक्षीके तुम दोनोंका कर्म व्यर्थ गया। अब मैं साक्षी हूं। मेरे सामने अपना अपना करतब दिखाओ। तब मैं जानू कि कौन सच्चा है, कौन झूठा? तब अर्जुनने फिर वैसाही बाणोंका सेतु बाँध

दिया । उसी समय श्रीकृष्णजीने अपने चक्रको सेतुके नीचे रख दिया । हनुमान्‌ने अपने अंगुष्ठके भारसे सेतुको दबाया । पर अबकी बार सेतुको दृढ़ देखकर उन्होंने उसे फिर अपने पैर, घुटने और हाथके संपूर्ण बलसे दबाया । परन्तु सेतु हिलाभी नहीं । तब हनुमान्‌जी चुपचाप होकर मनमें विचार करने लगे कि पहले तो यह सेतु मेरे अंगूठेके भारसेही डूब गया था और इस समय हाथपैरके संपूर्ण भार लगानेपरभी क्यों नहीं चलायमान् होता है ? इसका कारण यह बटुही मालूम होता है । यह बटु नहीं है । स्वयं भगवान्‌ही हैं । अब मुझे पूर्वका बरदान याद पड़ता है । मेरे गर्वको हरण करनेलियेही भगवान्‌ने यह कर्म किया है । भला भगवान्‌के सामने मुझ वानरका पुरुषार्थ कितना ? ऐसा विचार कर वे अर्जुनसे बोले कि " इस बटुकी सहायतासे तुमने मुझे जित लिया है । यह बटु नहीं है, स्वयं श्रीकृष्ण हैं जिन्होंने तुम्हारी सहायताके-लिये रूप धारण कर चक्रको सेतुके नीचे रख दिया है । इन्होंने त्रेतामें रामरूपसे मुझे बरदान दिया था कि द्वापरमें तुम्हें मैं कृष्णरूपसे दर्शन दूँगा । उसी वचनको आज उन्होंने सेतुके बहाने यहाँ आकर पूरा किया ।" इतना कहतेही बटुने कृष्णरूप धाकर कर हनुमान्‌जीको आलिंगन दिया और साथही वह सेतुभी जलमें डुबा दिया । तब अर्जुनका गर्व टूट गया और वे समझ गये कि हमारे प्राणोंकी रक्षा श्रीकृष्णहीने की । उन्होंने हमें जीवनदान दिया । श्रीकृष्णजी अर्जुनसे बोले कि तुमने श्रीरामजीकी स्पर्द्धा की, इसीसे हनुमान्‌द्वारा तुम्हारी धनुर्विद्या व्यर्थ की गयी और हनुमान्‌जीसे कहा कि तुमने अपने प्रतापसे श्रीरामजीकी स्पर्द्धा की । इसलिये अर्जुनके सेतुद्वारा तुम्हारा पराजय कराया गया । अब तुम दोनों गर्वरहित होकर निरन्तर मेरा भजन करो । इसके बाद तीनोंने अपनी अपनी राह ली । तभीसे अर्जुनकी ध्वजापर हनुमान्‌जी रहकर उनकी रक्षा करने लगे ।

यह कथा आनंदरामायणकी है । गोस्वामीजीके बाहुकके ' **कमठकी पीठि जाके गोड़निके गाड़े मानो नापके भाजनभरि जलनिधि जल भो । जातुधानदावन परावनको दुर्ग भयो महामीन बास**

तिमि तोमनि को थल भो ॥' इस छन्दसे ज्ञात होता हैं कि इसकी कथा आनंदरामायणकी कथासे कुछ भिन्न है और कहीं किसी पुराणमें अवश्य है। इस छन्दसे यह अनुमान होता है कि भगवान् दोनोंकी प्रतिज्ञा रखनेकेलिये कमठ रूपसे बाणोंके सेतुके नीचे स्वयं विराजमान हुए थे। हनुमान्‌जीके पुलको पैरके अँगूठेसे दबानेपर कच्छप भगवान्‌के कठोर पीठपर बड़ा भारी गड्ढा पड़ गया था और रक्त इतना निकला था कि समुद्रका जल लाल हो गया था। हनुमान्‌जी यह देखकर उतर पड़े थे। भगवान् प्रकट हो गये थे।

५ 'व्यालसूदन (गरुड़) गर्वहर' इति। गरुड़गर्वहरणकीभी कथाएँ कल्पभेदसे कई प्रकारकी कही जाती हैं। दो एक कथाएँ यहाँ दी जाती हैं। श्रीयुत् रामचन्द्र शंकरजी टक्कीमहाराज लिखते हैं कि गरुड़को अपने परम पराक्रमी होनेका महान् गर्व था। यह जानकर भगवान्‌ने उनको आज्ञा दी कि " शीघ्र जाकर बंदरको पकड़ ले आओ। (जो द्वारकाके वनको उजाड़ रहा था।) तुम बड़े पुरुषार्थी हो। त्रैलोक्यमें तुम्हारे समान कोई नहीं है। अकेलेही जाओगे या कुछ सेनाभी ले जाओगे?" ये वचन सुनकर गरुड़ बड़े आवेशमें आकर बोले, 'मैं तो गिरते हुए आकाशकोभी अपने बलसे धारण कर सकता हूँ। मुझे यही आश्चर्य है कि आप मुझे एक साधारण बंदर पकड़नेकेलिये न जाने क्यों भेज रहे हैं?' अच्छा, मैं अभी उसे पकड़े लाता हूँ। यह कहकर वे शीघ्र वनमें पहुँचे और वहां बंदरको (हनुमान्‌जी) अपनी ओर पीठ किये बैठे कौतुकसे फल खाते और रामनामका कीर्तन करते देख बोले, 'रे बंदर! तूने सारा वन नष्ट कर डाला, सारे बनचरोंको भगा दिया और सब फलभी खा डाले। तू बड़ा अन्यायी है। मैं तुझे दंड दूँगा।' हनुमान्‌जीने मुस्कराकर पूछा कि तुम कौन हो, तुम्हारा क्या नाम है और तुमको किसने भेजा है? तब गरुड़ने अपनेको कश्यपपुत्र, श्रीहरिदूत पक्षिराज गरुड़ बताया और कहा कि 'मैंने समस्त देवताओंको परास्त कर अपने पुरुषार्थसे अमृत प्राप्त किया। मेरे भयसे नागराज पृथ्वीके नीचे जा छिपे हैं।' इसपर हनुमान्‌जीने कहा कि 'जो अपने मुँह अपनी प्रशंसा करता

है वह सैकड़ों मूर्खोंसेभी अज्ञानी है। अपनी प्रशंसा करनेवाला वस्तुतः वैसा नहीं होता। ' क्रोधमें आकर गरुड़ने कहा कि ' रे बंदर, मालूम होता है कि तू अब मरणहार है। इसीसे मरते समय तेरी तूती बोलने लगी है। हनुमान्‌जीनेभी वैसाही उत्तर दिया। तब गरुड़ सहसा आकाशमें उड़कर गरजकर एकदमसे हनुमान्‌जीपर टूट पड़े और उन्हें चोंचसे मारने लगे। परन्तु हनुमान्‌जीको उनकी चोटें और उनका भार ऐसा मालूम होता था जैसे पर्वतपर भ्रमरका, बड़े पेड़पर मक्खीका या हाथीके कंधेपर च्यूँटीका भार हो। क्षणभर यह लीला करके हनुमान्‌जीने गरुड़को पैरोंमें दबा कर गर्दन पकड़कर उठाया (जिससे गरुड़ घबड़ा गये, उनकी आँखें निकलने लगीं।) और द्वारकासे साठ हज़ार योजनपर समुद्रमें फेंक दिया जहाँ वे छटपटाकर डूबने लगे। किसी तरह वे ऊपर आये। उन्हें दिशाका भ्रम हो गया। वे इतने भयभीत हो गये कि वे यह सोचकर कि यदि मैं उस वनकी ओरसे जाऊँगा तो वह वानर मुझे फिर पकड़ लेगा, दूसरे मार्गसे द्वारकाके महाद्वारपर पहुँचतेही मूर्छित हो गये। (रामायणांक)

गीताप्रेसके ' आदर्श चरित माला ' के प्रथम पुष्पमें ' भक्तराज हनुमान् ' में जिसके लेखक ' शान्तनुबिहारी द्विवेदीजी ' हैं, यही चरित कुछ परिवर्तित रूपमें ' सत्यभामा, चक्र और गरुड़ ' गर्वहरणके संबंधमें लिखा हुआ मिलता है। वे लिखते हैं कि हनुमान्‌जीने गरुड़को अपनी पूँछमें लपेटकर तनिकसा कस दिया। वे छटपटाने लगे। तब उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णका नाम बताकर कहा कि उनकी आज्ञासे मैं आया हूँ। उन्होंने तुम्हें बुलाया है। हनुमान्‌जीने गरुड़को छोड़कर कहा कि मैं सीतानाथ श्रीरामका उपासक हूँ। मैं श्रीकृष्णके पास क्यों जाऊँ ? ऐसा कहकर मानों उन्होंने भगवान्‌की लीलामें सहयोग दिया।

अभी गरुड़का गर्व टूटा नहीं था। वे सोचते थे कि अगर मैं पकड़ न गया होता तो हनुमान्‌को बलात् ले चल सकता। उन्होंने दुबारा आक्रमण किया। अभिमान अंधा बना देता है। श्रीकृष्णका दूत

समझकर हनुमान्‌जीने उनपर ज़ोरसे आघात नहीं किया पर हल्के हाथसे पकड़ समुद्रकी ओर फेंक दिया। वे श्रीकृष्णके पास आये। सब बात सुनकर श्रीकृष्ण बहुत हँसे। अभी गरुड़के मनमें तेज़ीसे उड़नेका गर्व बाकीही था। वे सोचते थे कि 'उड़नेमें मेरा मुकाबिला वायुभी नहीं कर सकता। भलेही हनुमान् बलमें मुझसे बड़े हों।' भगवान्‌ने उनको फिर भेजा और कहा कि 'इस बार जाकर कहो कि तुम्हारे इष्टदेव भगवान् श्रीराम तुम्हें बुला रहे हैं। शीघ्रही चलो। उन्हें अपने साथही ले आना। अब वे तुम्हें कुछ न कहेंगे, तुम्हारा बड़ा आदर करेंगे।' गरुड़ने जाकर संदेसा कहकर यह भी कहा कि 'यदि मेरे साथही आप चल सकें तो चलें, नहीं तो मेरे कंधोंपर बैठ लें। मैं लेता चलूं।' हनुमान्‌जीने कहा, 'तुम चलो, मैं आता हूँ।' गरुड़को अपने वेगका गर्व तो बहुत था, पर हनुमान्‌जीकी बात काटनेका साहस डरके मारे उनको न हुआ। वे चले गये।

इधर भगवान्‌ने चक्रको फाटकपर पहरा देनेको आज्ञा दी जिसमें कोई भीतर न आ सके। हनुमान्‌जी गरुड़से बहुत पहले द्वारकामें पहुँच गये। उनकी दृष्टिमें वह द्वारका न थी, अयोध्या थी। फाटकपर चक्रने उन्हें जानेसे रोका। तब हनुमान्‌जीने यह कहते हुए कि 'तू भगवान्‌के दर्शनमें विघ्न डालता है, उसे पकड़ कर मुँहमें डाल लिया और जाकर भगवान्‌के दर्शन किये। गरुड़जी बहुत पीछे पहुँचे तो देखते क्या हैं कि हनुमान्‌जी पहलेसेही उपस्थित हैं। इस तरह गरुड़का गर्व नष्ट कर भगवान्‌ने हनुमान्‌जीको द्वारकाके पूर्वद्वारपर पुरीकी रक्षाकेलिये नियुक्त कर दिया।

इस कथामें यह बताया गया है कि गरुड़को यह गर्व हुआ था कि श्रीकृष्णने मेरीही सहायतासे स्वर्गसे पारिजातका हरण किया और इंद्रपर विजय प्राप्त की।'

६ 'धनंजय रथ त्रान केतू' इति। इसके भाव भीम और अर्जुनकी कथाओंमें आ गये हैं। श्रीहनुमान्‌जी भीमकी गर्जनमें अपना गर्जन मिला

देते थे जिससे कौरव सेनापतियोंके हाथसे अस्त्र शस्त्र गिर जाते थे। उनके कलेजे दहल जाते थे जिससे पाण्डव सेना प्रबल पड़ जाती थी। यथा, '**भारथमें पारथ के रथकेतु कपिराज गाज्यो सुनि कुरुराजदल हलबल भो।**' (बाहुक) ये पताकापर दिव्य चित्ररूपसे बैठे रथकी रक्षा करते थे। भीष्म द्रोण कर्णादिके बाणोंके प्रहारसे वह रथ चलायमान नहीं होने पाता था। द्रोण और कर्णके दिव्यास्त्रोंका प्रभावभी इस रथपर इनके सदा बैठे रहनेसे न पड़ सकता था। नहीं तो वह तो कबका भस्म हो गया होता। शल्यपर्वमें बताया गया है कि "दुर्योधन वध हो जानेपर सब पाण्डव दुर्योधनकी छावनीमें जाकर अपने अपने रथोंसे उतर गये। अंतमें श्रीकृष्णजीने अर्जुनसे कहा, 'तुम स्वयं उतरकर अपने अक्षय तरकश और धनुषकोभी रथसे उतार लो। इसके बाद मैं उतरूँगा। ऐसा करनेमेंही तुम्हारी भलाई है।' अर्जुनने वैसाही किया। फिर भगवान्ने घोड़ोंकी बागडोरि छोड़ दी और स्वयंभी रथसे उतर पड़े। उनके उतरनेपर उस रथपर बैठा हुआ दिव्य कपि अन्तर्धान हो गया। तब तो वह विशाल दिव्य रथ, जो द्रोणाचार्य और कर्णके दिव्यास्त्रोंसे दग्धसाही हो चुका था, विना आग लगायेही प्रज्वलित हो उठा। उसके सारे उपकरण, जूआ, धुरी, लगाम और घोड़े सबके सब जलकर राख हो गये। वह राखकी ढेर होकर धरतीपर बिखर गया।" यह उद्धरणभी हमारे कथनको पुष्ट करता है कि वह रथ तो ब्रह्मास्त्रके तेजसे पहलेही दग्ध हो चुका था, केवल इनके पताकापर सदा विराजमान रहनेके कारण भस्म नहीं हुआ था।

७ 'भीष्मद्रोणकर्णादि पालित' इति। यहाँ दुर्योधनकी सेनाको 'कालहक' कहते हुए उसे भीष्म द्रोण कर्ण आदिसे पालित कहकर उसकी दुर्धर्षता इत्यादि दिखायी। दूसरी (पाण्डवोंकी) ओर इनकी जोड़के केवल हनुमान्जीको ('निधन हेतु' शब्दोंसे) इनके नाशका कारण कहकर जनाते हैं कि पाण्डवसेनामें भीष्मादिका मुकाबला करनेवाला एकभी वीर न था। यदि हनुमान्जी न होते तो कौरवोंका पराजय, कौरवसेना और सेनापतियोंका युद्धमें नाश एक स्वप्नकीसी

बात होतीं। हनुमान्‌जीनेही तो भीष्मादिसे भीम और अर्जुनकी रक्षा बराबर की थी। भीष्मादि कैसे सेनापति थे, कैसे दुधर्ष वीर थे, सो सुनिये। उद्योगपर्वमें कहा है कि जब भीष्मपितामहको अपना सेनाध्यक्ष बनानेकेलिये दुर्योधन उनके पास गया तब भीष्मपितामहने स्वयं कहा है कि 'मैं अपनी शस्त्रशक्तिसे एक क्षणमेंही देवता और असुरों-से युक्त इस सारे संसारको मनुष्यहीन कर सकता हूँ। मैं नित्यप्रति पांड-वोंके पक्षके दस हजार योद्धाओंका संहार कर दिया करूँगा। पांडव जब नौ दिनके युद्धके पश्चात् भीष्मपितामहके पास गये और उनसे पूछा कि हम आपको किस प्रकार जीत सकते हैं और किस प्रकार अपना राज्य पा सकते हैं? तब उन्होंने उत्तर दिया था कि, 'कुंतीनंदन ! मैं सत्य कहता हूँ, जबतक मैं जीवित हूँ तबतक तुम विजय नहीं पा सकते। यदि वास्तवमें जीतनेकी इच्छा है तो जितनी जल्दी हो सके मुझे मार डालो। मेरे मर जानेपर सबको मरा हुआ जानो।' युधिष्ठिरजीने कहा है, "जब आप रणमें कोपयुक्त होते हैं तब दंडधारी यमराजके समान जान पड़ते हैं। आपको इन्द्रादि देवता और असुरभी नहीं जीत सकते।"

भीष्मपितामहके पश्चात् द्रोणाचार्यजी दुर्योधनकी सेनाके अध्यक्ष हुए। द्रोणाचार्यजीने स्वयं कहा है कि मैं छहों अंगयुक्त वेद, मनुकथित अर्थशास्त्र, शङ्करप्रदत्त बाणविद्या और अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्र जानता हूँ। इन्होंने दुर्योधनसे कहा कि 'जो काम कहो वह मैं करूं। जो वर मांगो, मैं दूँगा।' दुर्योधनने कहा कि 'युधिष्ठिरको जीता पकड़कर मेरे पास ला दीजिये। उसकी दुरात्माका भाव जानकर उन्होंने प्रतिज्ञा की कि 'यदि अर्जुनने युधिष्ठिरकी रक्षा न की तो युधिष्ठिरको अपने वशमें आया हुआ ही समझो।' द्रोणाचार्यजी कौरवों और पाण्डवोंके शस्त्रास्त्रविद्याके आचार्य ही थे। इन्होंने पाण्डवोंकी सेनाका बड़ा संहार किया।

कर्ण अर्जुनसे किसी प्रकार कम न थे। उनके बाणसे अर्जुनका रथ उड़ जाता यदि उसकी पताकापर श्रीहनुमान्‌जी न होते। श्रीहनुमान्‌जीके रहते हुएभी रथ कुछ हट जाताही था। इनका पराक्रमभी भीष्मके

समान था। ये अपनेको भीष्मपितामहसे कम नहीं समझते थे। इन्होंने यह प्रतिज्ञा कर ली थी कि 'जबतक भीष्म जीवित रहेंगे, मैं युद्ध न करूँगा। उनके मरनेपरही अर्जुनके साथ मेरा युद्ध होगा।' कर्णने शल्यसे कहा है, 'कर्ण दो बार निशाना नहीं साधता। मेरे जैसे वीर कपट पूर्वक युद्ध नहीं करते।' इसी तरह उसने तक्षकके पुत्र अश्वसेनसे कहा था, 'नाग! आज कर्ण दूसरेके बलका आश्रय लेकर विजय पाना नहीं चाहता। यदि तुम्हारा संधान करनेसे मैं सैकड़ों अर्जुनोंको मार सकूं तोभी मैं एक बाणका दो बार संधान नहीं कर सकता। मेरे पास सर्प बाण है, उत्तम प्रयत्न है और मनमें रोषभी है।' उसमें बल ऐसा था कि जब इसके रथका पहिया धरतीमें धस गया तब उसने अपनी दोनों भुजाओंसे पहियेको पकड़ ऊपर उठानेका उद्योग करनेमें सप्तद्विपवाली इस पृथ्वीको पर्वत और वनसहित चार अँगुल ऊपर उठा दिया था।

द्रोणपर्वमें द्रोणाचार्यके वधके उपरांत व्यासजी स्वयं अर्जुनसे शंकरजी-महिमाका वर्णन करते हैं कि "अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कर्ण जैसे धनुर्धर जिस सेनाकी रक्षा करते हैं उसे नानारूपधारी भगवान् महेश्वरके-सिवा कौन रक्षा कर सकता है? भगवान् शंकरही कृपा करके तुम्हारे आगे आगे चला करते हैं। तुम उनको नमस्कार किया करो।" इससे कर्णद्वारा सुरक्षित सेनाकाभी कालरूप संहारिणी कहा जाना युक्तियुक्तही है।

भीष्मपितामह और द्रोणाचार्यको जीतने या मारनेवाला संसारमें कोई न था और न हाथमें शस्त्र रहते हुए उन्हें किसीने माराही। कर्णभी ऐसीही अवस्थामें मारे गये। अर्जुन उसके मुकाबलेके न थे। भीष्मपिता-महने दस दिनमें एक अरब सेनाका संहार किया था।

'आदि' में अश्वत्थामा, कृपाचार्य, शल्य आदि आ गये। अश्व-त्थामानेही तो पांडववंशको अपनी जानमें निर्मूल कर दिया था। उत्तराके गर्भकी रक्षा तो भगवान्ने की। ब्रह्मास्त्रने तो अपना काम कियाही, पर श्रीकृष्ण कृपासे वह जीवित हो गया। इसीसे तो 'परीक्षित' नाम पड़ा।

७ 'कालदृक् सुयोधन चमू' इति। इससे जनाया कि दुर्योधनकी सारी सेना 'कालदृष्टि' के समान संहारकारिणी थी। 'कालदृक्' का भाव कि जिसपर कालकी दृष्टि पड़ती है वह कहींभी जाय बच नहीं सकता। काल दुर्धर्ष और दुरतिक्रम है। यथा, 'तुम्हहिं न ब्यापत काल अति कराल कारन कवन।'

अनुसंधान [२८]

जयति गतराज्यदातार हंतार[४] संसार संकट दनुज दर्पहारी।
ईति[५] भीति ग्रह प्रेत चौरानल ब्याधि बाधा समन घोर मारी ॥४॥
जयति निगमागमब्याकरणकरणलिपि काव्यकौतुक कला कोटि सिंधो
सामगायक भक्तकामदायक बामदेव (श्री)[६] राम प्रिय प्रेम बंधो ॥५॥
जयति धर्मांशु संदग्ध संपाति नव पक्ष लोचन दिव्य देह दाता।
काल कलि पाप संताप संकुल सदा प्रनत तुलसीदास तात माता ॥६॥

शब्दार्थ—गतराज्य=गया हुआ राज्य। दातार=देनेवाले। यथा, 'राजन राउर नाम जस सब अभिमत दातार।' (अ०) हंतार=नाशक। यथा, 'कपीशमक्षहंतारं वंदेऽनिलात्मजम्'। संकट (संकष्ट)=भारी कष्ट, बड़ी विपत्ति। दर्प=घमंड, गर्व, अक्खड़पन। यथा, 'कंदर्प दर्प दुर्गम दवन उमारमन गुनभवन हर।', 'अतिवृष्टिरनावृष्टिर्मूषका शलभा शुकाः। स्वचक्रं परचक्रं सप्तैते ईतयः स्मृतः॥' अत्यंत वर्षा, अवर्षा, मूसों, टीड़ियों, तोतोंके उपद्रव, स्वराज्य और परराज्यकी बाधाएँ हैं। चौरानल=चौर (चोर)+अनल (अग्नि)। चौरा (देवी देवता, मृत महात्मा, वा भूत प्रेतादिका स्थान जहां वेदी या चौरा बना रहता है।)+अनल। ब्याधि=रोग। बाधा=विघ्न, भय, संकट। यथा, 'छुधा ब्याधि बाधा भइ भारी। बेदन नहिं जानै महतारी॥'

---

४ हंतार—६६, भा०, बे०, वै०, ज०, १५, वि०। हरतार—ह०, ५१, मु०, भ०, ७४, दी०। ५ ईति भीति—६६, रा०, भा०, बे०, भ०। ईति अति भीति—ह०, शि०, प्र०, ज०, १५, ५१, ७४, आ०। ६ श्री—५१, ज०, ७४, शि०, आ०। ६६, रा०, भा०, बे०, ह० में 'श्री' नहीं है।

'कहु सठ तोहि न प्रान कै बाधा।' (सुं०) मारी (सं०)=प्लेग, हैजा, चेचक, कालाज्वर इत्यादि छूतकी बीमारियाँ जिनके कारण बहुत लोग (जो रोगीसे संसर्ग रखते हैं।) एक साथ मरते चले जाते हैं। मरी वबाई बिमारी। एक प्रकारका भूत जिसके विषयमें लोगोंका विश्वास है कि यह किसी ऐसी दुष्ट स्वभाववाली स्त्रीकी प्रेतात्मा होती है जो किसी रोग, आघात अथवा किसी अन्य कारणवश पूर्णायुको न पहुँचकर अल्पायुमें मरी हो। यह बड़ी उपद्रवी होती है। व्याकरण=वह विद्या या शास्त्र जिसमें किसी भाषाके शब्दोंके शुद्ध रूपों और वाक्योंके प्रयोगके नियमों आदिका निरूपण होता है। हमारे यहां संस्कृत व्याकरणकी गणना वेदोंमें की गयी है। करण=करनेवाले। लिपि=लिखावट। लिपिकरण=लेखबद्ध करनेवाले, लेखक। काव्य=वह वाक्यरचना जिससे चित्त किसी रस वा मनोवेगसे पूर्ण हो। काव्यभी ६४ कालाओंमेंसे एक कला है। इस कलामें चुने हुए शब्दोंद्वारा कल्पना और मनोवेगोंपर प्रभाव डाला जाता है। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथके अनुसार रसात्मक वाक्यही काव्य है। रस अर्थात् मनोवेगोंका सुखद संचारही काव्यकी आत्मा है। कौतुक=रहस्य। काव्यकौतुक=काव्यके अनेक रहस्य, चित्रकाव्य। (दी०) काव्यके दशांग (वि०)। काव्यके कुतूहल (वीर)। सामगायक='सामगातामग्रणी' पद २७ देखिये। घर्मांशु=घर्म (सूर्यातप, घाम) +अंशु(किरण), तप्त किरणवाला सूर्य। संदग्ध=बहुत जला हुआ। संपाति (संपाती)=गृध्रराज जटायुका बड़ा भाई। दिव्य=देवताओंकासा; प्रकाशमान; सुंदर।

पद्यार्थ—गये हुए राज्यके दिलानेवाले, संसारसंकटके नाशक, (रावण आदि) राक्षसोंके दर्पको हरनेवाले, ईति भीति, (ईतिका भय वा ईति और बड़े बड़े भय) ग्रह, प्रेत, चोर, अग्नि, रोग और भयंकर मरी आदि बाधाओंके शांत करनेवाले! आपकी जय हो। ४। वेद, पंचरात्र, आदितंत्र और व्याकरणको (सूर्यसे पढ़ और अध्ययन करके) लेखबद्ध करनेवाले,*

*अर्थान्तर—१ पंक्तिकी पंक्ति लिखते चले जानेवाले। (च०) २ कानसे सुनकर उसपर टीका टिप्पणी करनेवाले। (वीर) ३ व्याकरणपर भाष्य लिखनेवाले। (दी०)

(भाव, रस, अलंकार, गणादि) काव्यके, कौतुकके (रहस्य) और करोड़ों कलाओंके समुद्र, सामवेदके गाता, भक्तोंकी कामनाओंको पूरा करनेवाले साक्षात् शिव और श्रीरामचंद्रजीके प्रिय और प्रेमके बंधु (अर्थात् रामजीमें प्रेम होनेके कारण स्वाभाविकही निष्काम हितैषी) एवं श्रीरामप्रेमप्रिय जनोंके बंधु ! आपकी जय हो । ५ । सूर्यकी तप्त किरणोंसे जले हुए संपातीको नवीन पखने, नेत्र और दिव्य शरीर देनेवाले, कलिकालके पाप और संतापसे परिपूर्ण शरणागत तुलसीदासके सदा माता पिता (रूपसे रक्षा करनेवाले श्रीहनुमान्जी) ! आपकी जय हो । ६ ।

टिप्पणी-७(क)'गतराज्यदातार' इति । यह समझकर कि मायावीने बालीको मार डाला, मंत्रियोंने सुग्रीवको किष्कंधाका राज्य दे दिया । यथा, '**मंत्रिन्ह देखा पुर बिनु साईं । दीन्हेहु मोहि राजु बरिआईं ॥**' बाली मायावीको मारकर जब लौटा तो सुग्रीवको राजा बना बैठा देख बड़ा क्रोधित हुआ और उसने सुग्रीवको मारकर निकाल दिया । यथा, '**रिपुसम मोहि मारेसि अति भारी । हरि लीन्हेसि सरबस अरु नारी ।**' (कि०) श्रीहनुमान्जीने रघुनाथजीसे मित्रता कराके उनका राज्य उनको पुनः दिलाया । यथा, '**तेहि सन नाथ मइत्री कीजै । दीन जानि तेहि अभय करीजै ।**' और फिर '**पावक साखी देइ करि जोरी प्रीति दृढ़ाइ ।**' बाबू शिवप्रकाश और वैजनाथजी आदि टीकाकारोंने ' गतराज्य ' से ' विभीषणका राज्य ' भी अर्थ किया है । परन्तु दासकी समझमें ' गतराज्य ' में ' गईबहोर ' का भाव है । जिसको राज्य मिलनेपर छिन गया हो वही ' गतराज्य ' है । विभीषणजी ' गतराज्य ' नहीं कहे जा सकते ।

(ख) ' हंतार संसार संकट दनुज दर्पहारी ' इति । ' दनुजदर्पहारी ' से ' संकट ' का अर्थ खुल गया कि जो संकट राक्षसोंद्वारा संसारको हो रहा था उसे मिटाया । यथा, '**सेनसहित तव मान मथि बन उजारि पुर जारि । कस रे सठ हनुमान कपि गयउ जो तव सुत मारि ॥**' (लं०), '**बारिधि नाँघि एक कपि आवा । तासु चरित मन महुं सबु गावा ।**' (प्रहस्तवाक्य), '**देखत तोहि**

अच्छ जेहि मारा । जारि सकल पुर कीन्हेसि छारा ॥ कहाँ रहा बल गर्व तुम्हारा । '

८ ' जयति निगमागम व्याकरण करण लिपि ' इति । निगम वेदका और आगम पंचरात्रका नाम है । शौनकादि महर्षि तथा प्रह्लादादि रामभक्तोंके प्रति शुक्लयजुर्वेदीय रामरहस्योपनिषत्के वक्ता श्रीहनुमान्‌जीही हैं । श्रीरघुनाथजीने आपको अथर्ववेदीय मुक्तिकोपनिषत्का उपदेश किया हैं । मुक्तिकोपनिषत्के प्रवर्तक, (प्रचारक) ऋषि (आचार्य) आपही हैं और व्याकरणके आचार्य तो आप हैंही । नारद पांचरात्रान्तर्गत हनुमत्संहिता, वाल्मीकिसंहिता आदि कई संहिताओंके प्रवर्तक आपही हैं । संगीतशास्त्रमेंभी तो हनुमान प्रसिद्ध है । काव्यादि संपूर्ण विद्याओंके निधि तथा चौंसठ कलाओंके समुद्र तो आप हैंही । चित्रकाव्यके आदि आविष्कर्ताभी आपही कहे जाते हैं ।

' करण लिपि ' शब्दोंसे सूचित करते हैं कि इनपर आपने कुछ लिखा है अथवा प्रथम प्रथम लेखबद्ध आपनेही किया यह जनाया है ।

' काव्य कौतुक कला ' के अर्थान्तर ये हैं । (१) काव्यके रहस्य ओर अनेक कलाओं अर्थात् लौकिक पारलौकिक विद्याओंके समुद्र । (डु०) (२) साहित्य, रस, अलंकार, छंद, प्रबंधादि काव्यके कौतुक (अर्थात् नवीन चीज, उपमा, चित्रादि तमाशा) तथा चातुर्यताकी जो करोड़ों कलाएँ हैं उनके जलपूर्ण समुद्र हैं । (वै०) (३) काव्यकुतूहलकी कलामें असंख्यों समुद्रोंके समान । ' (वीर) (४) चित्रकाव्य और अनेक कलाओंके समुद्र । (दी०)

' काव्य कौतुक कला ' से ' महानाटक निपुण ' काभी भाव ग्रहण किया जा सकता है । पद २९ के " महानाटक निपुण कविकुल-तिलक " का सब भाव इन शब्दोंमें आ जाता है ।

९ (क) ' भक्तकामदायक ' इति । यथा, ' रामके गुलामनिको कामतरु रामदूत ', ' नाम कलि कामतरु केसरी किसोरको । ', ' खल दुख दोषिबेको जन परितोषिबेको माँगिबो मलीनता को

मोदक सुदान भो ', ' नाम लेत देत अर्थ धर्म काम निर्वाण हो '। पद २७ ' रामभक्तानुवर्ती ' भी देखिये। भाव कि मैं आपका भक्त हूँ। मेरी कामना पूर्ण कीजिये। (ख) 'वामदेव' पद ८ देखिये। (ग) ' राम प्रिय प्रेम बंधो ' इति। टीकाकारोंके भावार्थ। (१) जिसको रामजीका प्रेम अतिप्रिय है उसके हितकारी। (छु०) (२) जिनको प्रेम प्रिय है उन श्रीरघुनाथजीको बंधुसमान प्यारे हो। (वै०) (३) श्रीरामचंद्रजीके प्यारे और प्रेमी जनोंके सहायक। (वीर) (४) श्रीरामचंद्रजीके अत्यन्त प्यारे और प्रेमी बंधु। (दी०)

१० ' घर्मांशु संदग्ध संपाति दिव्य देह दाता ' इति। यह कथा रामायणोंमें है। संपातीने समुद्रतटपर यह कथा स्वयं वानरोंसे सीताशोध समय कही है। यथा, ' कहि निज कथा सुनहु कपिबीरा॥ ' हम दोउ बंधु प्रथम तरुनाई। गगन गये रबि निकट उड़ाई॥ तेज न सहि सक सो फिरि आवा। मैं अभिमानी रबि नियरावा॥ जरे पंख अति तेज अपारा। परेउँ भूमि करि घोर चिकारा॥ '

' नवपक्ष दाता ' इति। पक्ष, नेत्र, और शरीर सभी जल गये थे। फिरसे नवीन होनेकी कथाभी उसने कही है। यथा, ' मुनि एक नाम चंद्रमा ओही। लागी दया देखि करि मोही॥ बहु प्रकार तेहि ज्ञान सिखावा। देहजनित अभिमान छुड़ावा॥ त्रेता ब्रह्म मनुज तनु धरिहीं। तासु नारि निसिचरपति हरिहीं॥ तासु खोज पठइहि प्रभु दूता। तिन्हहिं मिले तैं होब पुनीता॥ जमिहहिं पंख करसि जिनि चिंता। तिन्हहिं देखाइ दिहेसु तैं सीता॥ मुनिकै गिरा सत्य भइ आजू। ' ऋषिका उन्हें वरदान था कि रामदूत जो आवेंगे, उनके मिलनेपर शरीर दिव्य और नवीन हो जायेगा।

११ ' तुलसीदास तात माता ' इति। भाव कि मैं आपका बालक हूं। बालककी रक्षा करना मातापिताका सहज कर्तव्य है। बच्चेको मातापिताकाही भरोसा रहता है। वैसेही मुझे एकमात्र आपका भरोसा है। मैं आपसे हठ कर रहा हूँ। आप मेरा हठ रखिये। मेरा मनोरथ पूर्ण कीजिये। यथा, ' मेरे माय बाप दोउ आखर हौं सिसु अरनि अर्‌यो। ' यहां ' तृतीयतुल्ययोगिता अलंकार ' है।

२९ [१८]

जयति[1] निर्भरानंदसंदोह कपि केसरी केसरीसुवन[2] भुवनैकभर्ता।
दिव्य भूम्यंजना मंजुलाकरमणे भक्तसंताप चिंतापहर्ता ॥
जयति धर्मार्थकामापवर्गद विभो ब्रह्मलोकादि वैभव बिरागी।
बचन मानस कर्म सत्य धर्म व्रती जानकीनाथ चरणानुरागी ॥
जयति बिहगेस बल बुद्धि बेगाति मद मथन मन्मथमथन उर्द्धरेता।
महानाटक निपुन कोटि कवि कुल तिलक गान गुन गर्ब गंधर्ब जेता ॥
जयति मंदोदरी केस कर्षण विद्यमान दसकंठ भट मुकुट मानी।
भूमिजा दुःख संजात रोषातकृ[3]ज्ञातना जंतु कृत जातुधानी ॥
जयति रामायण श्रवन संजात रोमांच लोचन सजल सिथिल बानी।
रामपदपद्म मकरंद मधुकर पाहि दास तुलसी सरण सूलपानी ॥

शब्दार्थ—संदोह = समूह। यथा, 'चिदानंदसंदोह मोहापहारी' (उ०) पात्र। (डु०) भूम्यंजनाकरमणे = (भूमि + अंजना + आकर (खानिके) + मणे) अंजनारूपी पृथ्वीकी खानिके मणि। चिंतापहर्ता = (चिन्ता + अपहर्त्ता) पूर्ण रूपसे हर लेनेवाले। धर्मार्थकामापवर्गद = धर्म + अर्थ + काम + अपवर्ग (मोक्ष) + द (देनेवाले)। बिरागी = लौकिक विषयोंका त्याग करनेवाला, अर्थ धर्म काम मोक्षकी भी जिसको चाह नहीं। यथा, 'कहिय तात सो परम बिरागी। तृन सम सिद्धि तीनि गुन त्यागी॥' (आ०) त्रैलोक्यकी विभूतिमें भी राग न होना वैराग्य है। यथा, 'तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा। चंचरीक जिमि चंपक बागा॥ रमा बिलास राम अनुरागी। तजत बमन जिमि जन बड़ भागी॥' (अ०) बिहगेस = (बिहग + ईश) पक्षिराज गरुड़। बेगाति = वेग (शीघ्र गतिका) + अति। मन्मथ = मनको मथनेवाला। कामदेव मनमें बैठकर प्रपंच रचता है। कामोद्दीपन करता है। कामका विकार मनसेही उत्पन्न होता है। यथा, 'उर बसि

१ ७४ में नहीं हैं। २ सुअन—रा०, ह०, ५१, बि०। ३ कृज्ञातना—६६, रा०, ह०, ५१, ७४। कृतजातना—भा०, वे०, प्र०, ज०, १५, आ०।

प्रपंच रचै पंचबान।' इसीसे कामदेवका नाम 'मन्मथ' हुआ। मन्मथके संबंधसे 'मथन' शब्द बड़ा अच्छा पड़ा है। जो प्राणीमात्रके मनको मथ डालता है आप उसीको मथ डालनेवाले हैं। मथन = न्यस्त, व्यस्त, ध्वस्त वा नाश करनेवाले। ऊर्द्ध = ऊपरकी ओर। हिन्दीमें यौगिक शब्दोंमेंही प्रायः यह विशेषण आता है। रेत (सं० रेत्, रेतस्) = वीर्य, शुक्र। ऋग्वेदमें ब्रह्मचारीके दो भेदोंका वर्णन है। एक 'अमोघ-वीर्य' अर्थात् जिसका वीर्य निष्फल नहीं जाता। दूसरा उर्द्धरेतस्। ऊर्द्धरेता = जिसका वीर्य सदा ऊपर ब्रह्मांडमेंही रहता है। जो अपने वीर्यको गिरने नहीं देता। महानाटक = नाटकके लक्षणोंसे युक्त दश अंकोंवाला नाटक। नाटक = दृश्य काव्यका एक भेद नाटक माना गया है। साधारणतः लोग नाटक शब्द दृश्यकाव्यमात्रके अर्थमें बोलते हैं। साहित्यदर्पणके अनुसार नाटक किसी ख्यात वृत्तको (प्रसिद्ध आख्यान, कल्पित नहीं) लेकर लिखना चाहिये। वह बहुत प्रकारके विलास, सुख दुःख तथा अनेक रसोंसे युक्त होना चाहिये। उसमें पाँचसे लेकर दसतक अंक होने चाहियें। नाटकका नायक धीरोदात्त तथा प्रख्यात वंशका कोई प्रतापी पुरुष या राजर्षि होना चाहिये। नाटकके प्रधान वा अंगी रस शृंगार और वीर हैं। शेष रस गौणरूपसे आते हैं। शान्ति, करुणा आदि जिस रूपकमें (दृश्यकाव्य वा उसके एक विभाग) प्रधान हों वह नाटक नहीं कहला सकता। (श० सा०) परन्तु महाकवि भवभूतिने अपने प्रसिद्ध नाटक 'उत्तर रामचरित्र' में करुणारसकीही प्रधानता रक्खी है और महाकवि श्रीहर्षदेवप्रणीत साहित्यसंसारमें विख्यात 'नागा नन्द' नाटकमें शान्ति एवं करुणा रसकीही प्रधानता पायी जाती है। श्रृङ्गाररस गौण है और वीर तो नहींही है। संधि स्थानमें कोई विस्मयजनक व्यापार होना चाहिये। उपसंहारमें मंगलही दिखाया जाना चाहिये। वियोगान्त काव्य संस्कृत शास्त्रके विरुद्ध है। इसीसे उत्तम श्रव्यकाव्य होते हुएभी 'कादम्बरी' साहित्यरसिकोंको खटकता है। क्योंकि उसमें मदलेखाका संयोग नायकसे नहीं कराया गया है। तिलक = श्रेष्ठ, शिरोमणि।

जेता (सं० जेतृ) = जीतनेवाला । विद्यमान = सामने उपस्थित रहते। केश कर्षण = झोंटा पकड़कर खींच वा घसीट लानेवाले । अंतकृत = अंत या विनाश करनेवाले यमराज । मुकुट = सिरताज, शिरोमणि, श्रेष्ठ । यातना = बहुत अधिक पीड़ा जैसे यमलोकमें होती है । रोमांच = आनंदसे रोयोंका खड़े हो जाना, पुलक । संजात रोमांच = जिनके शरीरमें रोमांच उत्पन्न होता है; रोमांचित होनेवाले । सजल = जलसे (प्रेमाश्रु) भरे हुए । शिथिल = सुस्त, ढीली, मंद । गद्‌गद् = जिसके मुखसे स्पष्ट वचन न निकले ।

पद्यार्थ—परिपूर्ण आनंदके समूह, वानरोंमें सिंहरूप अर्थात् श्रेष्ठ पराक्रमी, केसरीके पुत्र, लोकोंके एकमात्र भरण पोषण रक्षण करनेवाले, अंजनारूपी दिव्य (सुंदर) भूमिकी सुंदर खानिके मणि, भक्तोंके संताप और चिंताके पूर्णतया हरनेवाले ! आपकी जय हो । १ । धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके देनेवाले, समर्थ, ब्रह्मलोक आदिके वैभवसेभी (ऐश्वर्य) वैराग्यवान्, वचन, मन और कर्मसे सत्यधर्मका व्रत धारण करनेवाले श्रीजानकीपति रघुनाथजीके चरणोंके अनुरागी ! आपकी जय हो ।२। पक्षिराजके अति बल, बुद्धि और वेगके बड़े भारी मदको चूर चूर कर डालनेवाले, कामदेवका मंथन करनेवाले (अर्थात् ऊर्द्ध्वरेता बालब्रह्मचारी), महानाटक काव्यमें पूरे पंडित, करोड़ों कवि समुदायके शिरोमणि, गानकलामें गंधर्वोंके गर्वको जीतनेवाले ! आपकी जय हो ।३। अभिमानी योद्धाओंमें शिरोमणि, दससिरवाले रावणकी उपस्थितिमें (उसकी पटरानी) मंदोदरीको झोंटा पकड़कर घसीटनेवाले ! आपकी जय हो । पृथ्वीकी कन्या श्रीजानकीजीके दुःखसे उत्पन्न क्रोधसे (क्रोधके आवेशमें) आपने निशाचरियोंको यम यातना जंतु बनाया । (अर्थात् उनको यातनादंड दिया ।) ।४। रामायण सुनते समय पुलकायमान, सजलनयन और गद्‌गद्‌कंठ होनेवाले, श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलके मकरंदरसके भौंरे ! आपकी जय हो । हे शूलपाणि (साक्षात् शिवजी) ! तुलसीदास शरण है, इसकी रक्षा कीजिये ।५।

टिप्पणी—१ (क) 'निर्भरानंदसंदोह' इति। श्रीरामानुजाचार्यजीका

(वृंदावन) मत है कि ' निर्भर ' शब्दको ' आनंदसंदोह ' से पृथक् समझना चाहिये। श्रीजानकीनाथजीके चरणारविन्दमें अपनी शरीरयात्रा तथा आत्मयात्राके निर्वाहके सम्पूर्ण भार अर्पण करनेसे आप ' निर्भर ' हैं। ' निर्भर ' शब्दको हमने आनंदका विशेषण गोस्वामीजीके कुछ प्रमाणोंके अनुसार माना है। यथा, ' निर्भर प्रेम मगन मुनि ज्ञानी। कहि न जाइ सो दसा भवानी ॥ अविरल प्रेमभगति मुनि पाई। अतिसय प्रीति देखि रघुबीरा। प्रगटे हृदय हरन भव भीरा ॥ ' (सुतीक्ष्ण प्रेम। आ०), ' तन पुलक निर्भर प्रेम पूरन नयन मुखपंकज दिये '। (अत्रिजी) निर्भरानन्दसंदोह कहकर भगवद्-गुणानुभवानंदमग्न जनाया।

(ख) ' कपिकेसरी केसरीसुवन ' इति। कपिकेसरीसे सिंहका रूपक दिया गया है। जैसे सिंह जंगलकी रक्षा करता है वैसेही आप समस्त भुवनोंके एकमात्र भर्त्ता अर्थात् धारण पोषण करनेवाले हैं। ' भुवनैकभर्त्ता ' कहनेका भाव कि संसारकी रचना, पालन, पोषण और संहारकेलिये विधि हरि हरके समान समर्थ हैं। यथा, ' रचिबेको बिधि जैसे पालिबेको हरि हर मीच मारिबे को जियाइबे को सुधापान भो। धरिबे को धरनि तरनि तम दलिबेको सोखिबे कृसानु पोषिबेको हिम भानु भो ॥ ' (बाहुक) ' कपिकेसरी ' दीपदेहरी है। हनुमान्‌जी एवं केसरी दोनोंका विशेषण हो सकता है। ' केसरी ' के दो अर्थ हैं। भिन्न भिन्न अर्थ देनेकेलिये दो बार इसका प्रयोग किया जानेसे यहां ' यमकालंकार ' है। वीरकविजी लिखते हैं कि " कपिकेसरी श्लेषार्थी है। क्योंकि दूसरा अर्थ केसरी बंदरकेलिये आप पूर्णानन्दकी राशि हैं " यहभी निकलता है जो कविइच्छित होनेसे ' श्लेषालंकार ' है। मिलान कीजिये, ' केसरी चारु लोचन चकोरक सुखद '। (पद २५) शरण्य, भयहरण, सर्वजगत्‌रक्षक इत्यादि होनेसे ' भुवनैक भर्त्ता ' विशेषण दिया है। यथा, ' सरन भयहरन जय भुवनभर्त्ता ' (२५), ' जगदार्त्तिहारी लोक लोकप सोकहर कल्याणकारी '। (२६)

२ (क) पद २५ में चन्द्रमाका रूपक और २६ में सूर्यका रूपक देकर हनुमान्‌जीके गुणानुवाद किये। अब इस पदमें प्रथम आधे तुकमें सिंहका और पश्चात् चिन्तामणिका रूपक देकर गुणगान करते हैं। मणि खानिसे निकलती है और उससे दरिद्रता आदि दुःखोंकी निवृत्ति होती है। यहां श्रीअंजनामाता दिव्य भूमि हैं। उनका गर्भाशय वा कोख सुंदर खानि है जिससे श्रीहनुमान्‌जीरूपी मणि निकले। चिन्तामणि दिव्य है और देवलोकमें है। इसीसे यहां 'दिव्यभूमि' और 'मंजुल आकार' कहा। भक्तही देवता हैं। श्रीहनुमान्‌रूपी चिन्तामणि भक्तरूपी देवतओंके सन्ताप और लौकिक पारलौकिक सभी चिन्ताओंको दूर कर देते हैं। हनुमान्‌जी रुद्रावतार हैं, अतएव उनकी उत्पत्तिकेलिये दिव्य भूमि होनाही चाहिये। 'संतापचिंतापहर्ता' विशेषणके आधार पर 'चिन्तामणि' अर्थ ग्रहण किया गया है। साधारण मणियोंमें यह गुण नहीं है। यहां 'परंपरित रूपक अलंकार' है।

(ख)'भक्त संताप चिंतापहर्ता' इति। चिन्तामणि दुःख दरिद्र हरती है, अभीष्ट पदार्थ देकर चिंता दूर करती है, अर्थधर्मकाम देती है और स्वयं कुछ नहीं चाहती। वैसेही हनुमान्‌जी रामभक्तोंके त्रयतापों और चिन्ताओंको तो हरतेही हैं, साथही अर्थ, धर्म, काम, और मोक्षभी देते हैं जो चिंतामणिकी शक्तिसे बाहर है। यह सब कहते हैं क्यों? इसका कारण पूर्व पद २७ और २८ में कह आये हैं कि वे 'रामभक्तानुवर्त्ती' और 'राम प्रिय प्रेम बंधु' हैं। भक्तिचिन्तामणिका स्वरूप मानसमें इस प्रकार दिखाया गया है, '**मोह दरिद्र निकट नहि आवा। लोभ बात नहिं ताहि बुझावा॥ प्रबल अविद्या तम मिटि जाई। हारहिं सकल सलभ समुदाई॥ खल कामादि निकट नहिं जाहीं।**' जिसके हृदयमें हनुमान्‌रूपी चिंतामणिका वास है, उसमें ये सब गुण आ जाते हैं। श्रीहनुमान्‌जी सब कुछ देते हैं और स्वयं कुछ नहीं चाहते। यह 'ब्रह्मलोकादि वैभव विरागी' से जनाया। सब कुछ देनेको समर्थ हैं, अतः 'प्रभु' कहा।

३ 'बचन मानस कर्म सत्य धर्म व्रती' इति। 'भक्तसंतापचिंतापहर्ता', 'धर्मार्थकामापवर्गद विभो' कहकर अब उसका कारण बताते हैं कि आप मनबचनकर्मसे श्रीरामपदारविंदानुरागी हैं। अतएव श्रीरामभक्त आपको प्रिय हैं और इसीसे उनके संतापादिको आप हरते और उनको अर्थधर्मादि देते हैं। 'ब्रह्मलोकादिबैभव बिरागी' जो पूर्व कहा था उसका कारण बताते हैं कि 'बचमानसकर्म सत्यधर्मव्रती' हैं। आपका मन वचन और कर्म सदा श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें लीन रहता है। 'जानकीनाथ चरणानुरागी' कहकर जनाया कि आपके समान बड़भागी कोई नहीं। यथा, **हनुमान सम नहि बड़भागी। नहि कोउ रामचरन अनुरागी॥ गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई। बार बार प्रभु निज मुख गाई॥** मिलान किजिये, '**रमाबिलास रामअनुरागी। तजत बमन जिमि जन बड़भागी॥ राजप्रेमभाजन भरतु बड़े न एहि करतूति। चातक हंस सराहियत टेक बिबेक बिभूति॥**' (अ०) पुनः 'ब्रह्मलोकादि बैभव बिरागी' से कदाचित् कोई समझ ले कि ये शान्तरसके उपासक हैं, अतएव उस संदेहकी निवृत्तिकेलिये 'बचनमानस जानकीनाथ चरणानुरागी' कहा।

४ (क) 'जानकीनाथ' का भाव कि (१) आप मायावादियोंकीतरह निर्गुण ब्रह्मके नहीं किन्तु ब्रह्मवादियोंकीतरह सगुण ब्रह्म श्रीजानकीपतिके उपासक हैं। (२)श्रीजानकीजीकी महिमा यह है, '**लोकप होहि बिलोकत जासू। तेहि कि मोह सक बिषय बिलासू॥**' (अ०) और, **सुमिरत रामहिं तजहिं जन तृन सम बिषय बिलास॥**' तब ऐसे श्रीजानकी-नाथके अनुरागीको ब्रह्मलोकवैभव कब लुभा सकता है? (३) आप युगल स्वरूपके उपासक हैं। सारा ऐश्वर्य श्रीजानकीजीकी मायाका रचा हुआ है। उनके तथा उनके पतिके सेवक होनेसे आप उनकी मायासे बचे रहते हैं। यथा, '**हरि सेवकहि न व्याप अविद्या॥**' (४) विनयमें कहा है, '**हरिहरहिं हरता बिधिहिं बिधिता श्रियहि श्रियता जेहिं दई। सो जानकीपति मधुर मूरति मोदमय मंगल मई॥**' (१३५) जिनसे ब्रह्मादिका यह सारा वैभव है उनका वैभव कैसा होगा? उसके आगे समस्त लोकोंका वैभव तुच्छ लगाही चाहे। दूसरे, उन श्रीजानकीपतिकी मोदमय

मंगलमयी माधुरी मूर्त्तिके माधुर्य और आनन्दके रसिक भला ब्रह्मलोकादि वैभवकी ओर कब ताकने लगे? उनके तो मन, वचन और कर्म सब उन्हींमें सदैव आसक्त रहते हैं। (ख) 'चरणानुरागी' कहकर जनाया कि सेवक भावका प्रेम है, निष्काम प्रेमी हैं। यथा, 'सेवक भो पवनपूत साहिब अनुहरत'। (ग) 'सत्यधर्मव्रती' इति। पद २६ 'निश्चलव्रत सत्य धर्मचारी' टि० १० देखिये। 'सत्यधर्मव्रत' क्या है? यह कवि स्वयं बताते हैं कि 'जानकीनाथ चरणानुरागी' होनाही 'सत्य धर्म' है। (घ) 'बचन मानस कर्म' के उदाहरणोंसे मानसके कि० सुं० लं० और उ० कांड ओतप्रोत हैं। (ङ) 'विहगेस बल बुद्धि बेगाति मद मथन' इति। इसकी कथाएँ 'भीमार्जुनव्यालसूदनगर्वहर' पद २८ में दी जा चुकी हैं।

५ (क) 'मन्मथमथन' इति। रुद्ररूपसे तो कामदेवको भस्म कियाही था और स्त्री होते हुएभी योगीश्वर बने रहे। पर कपि आकृति हनुमान्-रूपमें तो आप बालब्रह्मचारी रहे, न तो ब्याहही किया और न वीर्यको कभी ब्रह्माण्डसे नीचे आने दिया। ऐसे जितेन्द्रिय होनेसे मन्मथका मनही मथ गया। कैसे मन्मथके मथनकर्त्ता हैं, यह 'ऊर्द्धरेता' विशेषण देकर स्पष्ट कर दिया।

(ख) 'महानाटक निपुन' इति। "महानाटक ग्रन्थके वक्ता श्रीहनुमान्-जी हैं, इसीसे 'महानाटक निपुन' कहा। श्रीअंजनीकुमारजीने दशअङ्गात्मक महानाटककी रचना की। पीछे किसी समय वाल्मीकिजीसे कुछ विषयमें विवादसा हो पड़ा। महर्षिजी लिखते हैं कि लंकायुद्धमें श्रीराजीवलोचन सरकारके युद्धश्रमसे प्रस्वेद बिन्दु और रावणादि राक्षसोंके बाणसे क्षत श्रीअंगमें रुधिरकण थे। आप बोले कि हम तो बराबर सेवामें रहे। हमने कभी प्रस्वेद और क्षतजबिन्दु श्रीअङ्गमें नहीं देखा। बराबर श्रीदिव्य मंगल विग्रहारविंदका प्रफुल्लितही दर्शन होता रहा। आदिकविजी बोले कि हमारी रामायण कपोल कल्पित नहीं है। लंकाविजयके पश्चात्‌ही शारदान्तर्यामि श्रीराघवेन्द्रने हमारे जिह्वासिंहासनपर बिराज कर स्वयं निर्माण किया है। विवादशान्त्यर्थ यह प्रसंग श्रीसरकारके समक्ष पेश हुआ।

भक्तवत्सल, करुणासागर, ब्रह्मण्यदेवने महर्षि वचनका आदर किया। तब श्रीबजरंगबलीजीने जो अपने नखोंसे शिलापर महानाटक लिखा था उसे समुद्रमें पधरा दिया। महाराज विक्रमादित्यजीने यह कथा सुनकर वराह-मिहिर नामक ज्योतिषीद्वारा गणितसे निश्चय कराके बहुत प्रयत्नसे गोताखोरोंद्वारा मोम चिपकाचिपकाकर उसे प्रकट किया। तत्पश्चात् मधुसूदन पंडितने चम्पू प्रभृति अनेक नाटकग्रंथोंसे संग्रह करके उसे सुसज्जित किया। इस नाटकके प्रत्येक अंकमें अंतिम श्लोक यह आता है, '**वाल्मीकेरुपदेशतः स्वयमहो वक्ता हनूमान् कपिः।**' यह ग्रंथ कलकत्ताके पं० जीवानंद विद्यासागर, बी० ए०, प्रेसमें छपा है और वहीं मिलता है।"

श्रीव्रजरत्नभट्टाचार्यजी (मुरादाबाद) अपने श्रीरामचरितामृतनामक भाषातिलकमें लिखते हैं कि "यद्यपि इस नाटकमें केवल अंकोंके अतिरिक्त विदूषकादिक और कोईभी नाटककी बात नहीं है, तथापि यह आदिनाटक समझा जाता है। इस ग्रंथके कर्त्ताका पता नहीं लगता है। परन्तु '**रचितमनिलपुत्रेणाथ वाल्मीकिनाब्धौ निहितममृतबुद्ध्या प्राङ् महानाटकंयेत्। सुमति नृपतिभोजेनोद्धृतं तत्क्रमेण ग्रथितमेवतु विश्वं मिश्रदामोदरेण॥**' इस श्लोकके अनुसार विदित होता है कि जब महर्षि वाल्मीकिजीने इसको देखा तब महाराज श्रीरामचंद्रजीसे कहा कि 'हे राजन्! हनुमानजीके रामायणके विद्यमान रहते हमारे रामायणका आदर न होगा, कारण कि आपका चरित्र हमको तो ध्यानमें विदित हुआ है और महावीरजीका चाक्षुष प्रत्यक्ष किया हुआ है।' यह सुन रामचंद्रजीने शिलाओंपर लिखा और यह नाटक हनुमान्जीसे कहकर समुद्रमें फेंकवा दिया। राजा भोजने उन शिलाओंको समुद्रसे निकलवाया और श्रीदामोदरमिश्रने इसका संग्रह किया। हम नहीं कह सकते कि यह पुस्तक संपूर्णतः पूर्ण हो। परन्तु हमने अत्यन्त प्राचीन पुस्तकसे शुद्ध करके भाषाटीका कर दिया है। इसमेंके बहुतसे श्लोक वाल्मीकीयरामायण, रघुवंश, अभिज्ञानशाकुन्तल, उत्तररामचरित्र आदि पुस्तकोंमेंभी देखे जाते हैं। न जाने इसका क्या कारण है? अबतक इस ग्रंथके उपर किसीका अनुवाद उपलब्ध नहीं है।

हमारा यह अनुवाद बिल्कुल नवीन है।" (बंबई वैभवयंत्रालयकी छपी पंचमावृत्ति। संवत् १९८१)

श्रीवेणीमाधवदास रचित 'मूलगुसाईं चरित' (सं० १६८७) मेंभी कथा कुछ इसीसे मिलती जुलती है। "**मुनिराज लखे अद्भुत रचना। कपिराज सों कीन्ह इहै जँचना॥ यह गुप्त रहस्य है गोइ धरैं। बिनती हमरी न प्रकास करैं॥**"

(ग) "गानगुन गर्व गंधर्व जेता" इति। कहा जाता है कि महर्षि गौतमने एकबार किसी अवसरपर अपने यहाँ गंधर्वादि देवताओं और श्रीहनुमान्जीकोभी निमंत्रित किया। वहाँ श्रीहनुमान्जीका गाना सुनकर सारा समाज मुग्ध हो गया। गंधर्व किन्नरगण सब दंग रह गये।

६ 'मंदोदरी केस कर्षन विद्यमान' इति। जब रावण संग्राममें लक्ष्मणजीद्वारा व्याकुल होकर पृथ्वीपर गिरा और सारथी उसको रथमें डालकर रणभूमिसे उठा ले गया तब मूर्छा जगनेपर रावण, पातालगुफामें जो महलके अन्दर थी, जाकर यज्ञ करने लगा। बिभीषणजीसे यह समाचार पाकर प्रातःकाल होतेही हनुमदादि सुभट यज्ञ विध्वंस करने भेजे गये। वानरोंने जाकर यज्ञ विध्वंस किया। पर अनेक उपाय करनेपरभी रावण न हटा और न उसने इनकी ओर दृष्टिही डाली। यह देख '**नहिं चितव कपि कोपि तब काटि दसन्ह लातन्ह मारहीं। धरि केस नारि निकारि बाहर तेऽति दीन पुकारहीं।८५।** रामचरितमानसमें 'कपि' शब्द दिया है। नाम नहीं खोला गया। क्योंकि इस संबंधमें मतभेद है। पर यहां कविने नाम स्पष्ट कर दिया है कि यह काम हनुमान्जीका है। मानसमेंभी 'हनुमदादि' में संकेत इसी बातका है पर स्पष्ट करके नहीं कहा गया। कारण कि मानसमें मतभेदके स्थलोंपर पूज्य कविने वही शैली रखकर समस्त ऋषियोंका सम्मान किया है। बाहुकमेंभी यह कर्म (मंदोदरी केशकर्षण) हनुमान्जीकाही बताया गया है। यथा, '**तोरि जमकातरि मंदोदरी कढ़ोरि आनी रावणकी रानी मेघनाद महतारी है।**' रावण आदिके रहते हुएभी निःशंक होकर इन्होंने यह काम किया।

यहां मंदोदरीका केशकर्षण आदिमें कहा और 'जातुधानी' को अंतमें। इसका अन्वय दो प्रकारसे किया जा सकता है। एक तो 'जातुधानी मंदोदरी'। दूसरे 'मंदोदरी एवं अन्य जातुधानी रानियां'। यह अन्वय मानस एवं अध्यात्मरामायणके अनुसार किया जा सकता है। मंदोदरी पटरानी है; इससे इसका नाम स्पष्ट कहा। विशेष 'मानसपीयूष' में देखिये।

वियोगीहरिजी श्रीहनुमान्जीके इस चरित्रके संबंधमें लिखते हैं कि "महावीर हनुमान्जीके विक्रम चरित्रके वर्णनमें एक स्त्रीका केशकर्षण प्रसंग कुछ खटकतासा है। यद्यपि ग्रंथकारने भक्ति प्रेमवशही इसे लिखा है।"

बाबू शिवप्रकाशजी और बैजनाथजी लिखते हैं कि 'इस चरित्रसे उनकी निश्शंक वीरता' दिखायी गयी है। जिस मंदोदरीपर इन्द्रादि दृष्टि नहीं डाल सकते थे उसकी रावणके सामनेही यह दुर्दशा की। भला यह साहस त्रैलोक्यमें किसीको था? विशेष आगे टि० ८ में देखिये।

७ 'भट मुकुट मानी' इति। यह विशेषण रावणका है। यथा, "**पावक पवन पानी भानु हिमवान जम काल लोकपाल मेरे डर डाँवाँडोल हैं। साहिब महेस सदा संकित महेस मोहि महातप साहस बिरंचि लीन्हे मोल हैं॥ तुलसी तिलोक आजु दूजो न बिराजै राजा बाजे बाजे राजनके बेटा बेटी ओल हैं। को है ईस नामको जो बाम होत मोह्रू सो को मालवान रावरे के बावलेसे बोल है॥**", "**भूमि भूमिपाल ब्यालपालक पताल नाकपाल लोकपाल जेते सुभट समाज है। कहै मालवान जातुधानपति रावरेको मनहूं अकाज आनै ऐसो कौन आजु है।**" (क०)

यह विशेषण श्रीहनुमानजीकाभी हो सकता है। इनको श्रीरामजीके दास होनेका अभिमान था। इस बातकी घोषणा ललकारकर उन्होंने लंकामें की है। यथा, "**दासोऽहं कौशलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः। हनुमाञ्छत्रुसैन्यानां निहंता मरुतात्मजः।**" (वाल० सुं०) श्रीरघुनाथजीके दासत्वका अभिमान प्रशंसाकी बात है। इसीसे ऋषि वर माँगते हैं कि, '**अस अभिमान जाइ जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे॥**' परंतु हनुमान्जीका विशेष उत्कर्ष उसे रावणका विशेषण माननेमेंही है।

८ 'भूमिजादुःखसंजात रोषांतकृज्जातना' इति। पूर्वार्धमें मंदोदरी केशकर्षण कहा। परस्त्रियोंपर हाथ चलाना कोई वीरता नहीं है किंतु निंदित कर्म है। उत्तरार्ध तुकमें उस शंकाका समाधान करते हैं। एक तो यह 'सत्य धर्म व्रती जानकीनाथ चरणानुरागी' जो पूर्व कहा गया है उसका उदाहरण है। श्रीहनुमान्‌जी परम धर्मको ग्रहण किये हुए हैं। श्रीजानकीजी और उनके पति आपके इष्ट हैं। इष्टकेलिये भक्त जो कुछ करता है वह परम धर्म है और अनिंद्य है। दूसरा समाधान इस तुकमें हैं। श्रीजानकीजीका दुःख उनके हृदयको जलाता रहा था। उसका बदला अबतक वे रावणसे न चुका सके थे। यथा, 'परम दुखी भा पवनसुत देखि जानकी दीन।' (सुं०) 'देखि परम बिरहाकुल सीता। सो छन कपिहि कलप सम बीता।' इसके पूर्व सुग्रीवके साथ पर्वतपर बैठे हुए इन्होंने कुररीकीतरह विलाप करती हुई सीताजीको ज़बरदस्ती लिये जाते हुए देखा था। यथा, 'मंत्रिन्ह सहित इहां एक बारा। बैठ रहेउँ कछु करत बिचारा॥ गगनपंथ देखी मैं जाता। परबस परी बहुत बिलपाता॥' (कि०) ये सब प्रसंग वे भूल नहीं सकते थे। उस 'मानी भट मुकुट' ने जैसा किया वैसा उसके साथ 'जैसेको तैसा' नीतिका बर्ताव किया गया। यह तो नीति है।

तीसरे, रावण सबको मारने और स्वयं अमर और अजय होनेका उपाय कर रहा था। अपने प्राणोंपर आ बननेवाली आपत्तिको हटानेके-लिये यह कर्म किया गया था। इससे यह अनुचित नहीं कहा जा सकता। दूसरा कोई उपाय रावणको यज्ञशालासे उठानेमें जब कारगर न हुआ तब यह अंतिम उपाय काममें लाया गया था। ऐसे अनेक समाधान इसके हो सकते हैं। पर यहां कविकृत समाधान यह है कि वह काम 'रोष' में किया गया। रोषमें उचितानुचितका विचारही नहीं रह जाता। यथा, 'करहि क्रोध जिमि धर्महि दूरी।' गीतावलीसेभी यह बात स्पष्ट सिद्ध होती है। यथा, "सुवन समीरको धीर धुरीन बीर बड़ोई। देखि गति सियमुद्रिकाकी बाल ज्यों दियो रोई। १। अकनि कटु बानी कुटिल की क्रोध न बिंधि बढ़ोई। सकुचि सम

भयो ईस आयसु कलसभव जिय जोई। २। बुद्धिबल साहस पराक्रम अछत राखे गोइ। सकल समाज साज साधक समउ कहै सब कोइ। ३। " वही दबाया हुआ क्रोध आज निकाला गया।

वाल्मी० सुं० सर्ग २६ श्लोक २० से सर्गके अंततक श्रीजानकीजीके विलापमें हनुमान्‌जीकी अभिलाषाओंका वर्णन है। "यथाहमेवं रुदती तथा भूयो न संशयः। शोषमेष्यति दुर्धर्षा प्रमदा विधवा यथा॥" बस ठीक वैसाही उन्होंने किया।

९ (क) 'भूमिजा दुःख' इति। श्रीजानकीजीका क्या दुःख देखा जिससे रोष उत्पन्न हुआ? शत्रु रावणके अधीन रहने तथा एकमास बीतनेपर राक्षसके हाथों वध किये जानेकी चिन्तासे और रामविरहानलमें सदा जलती रहनेके कारण वे अत्यन्त दुःखी थीं। उसपरभी पिशाचिनी-वृन्द दिनरात सताती रहती थीं। दुःसह वचन कहा करती थीं। ये दुःख तो इन्होंने पेड़पर बैठे बैठे स्वयं आँखों देखा था। वही इनके हृदयको जलाता रहा। आपने श्रीरघुनाथजीसे कहाभी है, 'सीता कै अति बिपति बिसाला। बिनहिं कहे भल दीनदयाला॥ निमिष निमिष करुनानिधि जाहिं कलप सम बीति।' (सुं०)

(ख) 'भूमिजा' नामभी यहाँ सार्थक है। भाव कि पृथ्वीसे उत्पन्न होनेके कारण वे पृथ्वीके समानही क्षमाशील हैं। वे राक्षसियोंको पीड़ा पहुँचाना कब स्वीकार कर सकतीं? वाल्मीकीय रामायण इसका प्रमाण है। रावणवधके पश्चात् जब हनुमान्‌जीने उन निशाचरियोंके चित्रवधकी आज्ञा माँगी कि जिन्होंने उनको निरंतर सताया था, तब उनके ऐसे पोच विचारपर श्रीजगज्जननीजीने उनको कैसा झिड़का है यह पढ़नेही योग्य है। हम यहां केवल दो तीन श्लोक उद्धृत करते हैं। वाल्मी० रा० युद्धकांड ११३ श्लोक ४३–४४। यथा, "न परः पापमादत्ते परेषां पापकर्मणाम्। समयो रक्षितव्यस्तु सन्तश्चरित्र भूषणाः॥ पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणामथापि वा। कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराधयति॥ लोकहिंसाविहाराणां क्रूराणां पापकर्मणाम्।

कुर्वतामपि पापानि नैव कार्यमशोभनम् ॥ " श्रेष्ठ पुरुष दूसरोंकी बुरायी करनेवाले पापियोंके अपराध नहीं ग्रहण करते । वे बदलेमें उनका अहित नहीं करना चाहते । इस उत्तम आचारकी सदा रक्षा करनी चाहिये । क्योंकि उत्तम आचारही सत्पुरुषोंका भूषण है । पापी हो या पुण्यात्मा अथवा वधके योग्य अपराध करनेवालेही क्यों न हो, उन सबोंपर श्रेष्ठ पुरुषको दया करनी चाहिये। क्योंकि ऐसा कोईभी नहीं है जिससे कभी अपराध होताही न हो। जो लोगोंकी हिंसाहीमें सुख मानते और सदा पापकाही आचरण करते हैं, उन क्रूर स्वभाववाले पापियोंकाभी कभी अहित नहीं करना चाहिये। " इससे हमें श्रीजानकीजीके परम विशद क्षमाशील स्वभावका परिचय मिलता है। किसी आचार्यने क्या अच्छा कहा है, " मातर्मैथिलि राक्षसी स्त्वयि तदैवार्द्रापराधास्त्वया । रक्षन्त्या पवनात्मजाल्लघुतरा रामस्य गोष्ठी कृता ॥ काकं तं च विभीषणं शरणमित्युक्तिक्षमौ रक्षतः। स नः सान्द्रमहागसः सुखयतु क्षान्तिस्तवाकस्मकी॥" पुनः, भाव कि रावणादि भूमिपर भार स्वरूप थे। पृथ्वी इनके अत्याचारोंसे दुःखी थी। भूमिजा होनेसे इन्हेंभी माताके दुःखसे दुःख था। अतएव भूमिका भार उतार कर भूमिजाका दुःख हरनेकेलिये ' मंदोदरीकेशकर्षण ' चरित्र हुआ।

(ग) ' अंतकृत जातना जंतुकृत जातुधानी ' इति। इसका अर्थ प्रायः टीकाकारोंने इस प्रकार किया है, ' जैसे यमराज कर्मफलभोगहेतु जीवजंतुओंको निर्दयी होकर दुःख देते हैं वैसेही हनुमान्‌जीने राक्षसियोंको दुःख दिया।' (वै०) पं० श्रीरामवल्लभाशरणजी कहते हैं कि ' यातनामें जो यंत्र बनता है वैसा बनाकर उनको कष्ट दिया '। ' यमयातना जंतु ' अर्थात् नरकका प्राणी वा नरकका कीड़ा। ' यमयातनाजंतु बनाया ' का भाव यह है कि उनको वैसा दंड दिया जैसा यमराज नरकके प्राणियोंको देते हैं।

(घ) यहां यह शंका हो सकती है कि " राक्षसियोंको उन्होंने कब दंड दिया ? क्योंकि उन्होंने तो जब दंड देनेकी आज्ञा माँगी तभी महान्

करुणाकी मूर्ति श्रीजानकीजीने उनको बहुत फटकार दिया था ? " इसका समाधान यह किया जा सकता है कि उनके पतियों पुत्रों इत्यादिको मारकर उनको विधवा बना दिया जिससे उनको यमयातनाकासा कष्ट हुआ। मिलान कीजिये, ' जानत हौं मोहि दीन्ह बिधि यहु जातना सरीर। ' (अ०) ' यातुधानी ' से ' मंदोदरी ' काही अर्थ कर लें। (टि० ६ देखिये।)

१० ' जयति रामायण श्रवन संजात रोमांच ' इति। (क) महाभारत वनपर्वमें हनुमान्‌जीने भीमसेनसे स्वयं कहा है कि मैंने भगवान् रामचन्द्रजीसे यह वर प्राप्त कर लिया है कि मुझे निरंतर आपका चरित सुननेको मिले। गंधमादन पर्वतपर देवांगनाएँ और गंधर्व आपको रामचरित सुनाते रहते हैं। जहां जहांभी आपका आवाहन होता है वहां वहां आप कथा सुनने जाया करते हैं। यथा, " गोष्पदीकृत वारीशं मशकीकृतराक्षसम्। रामायण महामाला रत्नं वन्देऽनिलात्मजम्॥ " (मूलरामायण मंगलाचरण)। पुनश्च; यथा, " यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं तत्र तत्र कृत मस्तकाञ्जलिम्। बाष्पवारि परिपूर्ण लोचनं मारुतिं नमत राक्षसान्तकम्॥ " गोस्वामीजीको स्वयं इस बातका साक्षात् परिचयभी मिल चुका है जो इनके जीवनचरित्रका एक प्रधान अंग है। मूल गुसाइं चरितमें बाबा वेणीमाधवदासजीनेभी लिखा है।

(ख) ' संजात रोमांच ', ' लोचन सजल ', ' शिथिलबानी ' इन विशेषणोंसे उनको श्रीरामचरितका मन कर्म वचनसे अनन्य प्रेमी जनाया। प्रेम हृदयमें नहीं समाता, बाहर अश्रु और रोमांचादि रूपसे प्रकट हो जाता है। आगे ' रामपदपद्ममकरंद मधुकर ' विशेषण देकर बताते है कि आप चरितकेही प्रेमी नहीं हैं, श्रीरामजीके रूपमाधुरीकेभी अनन्य रसिक हैं। श्रीराम पद ' कमल ' है, अनुराग उसका 'मकरंद' है, जिसे अन्य भ्रमरकी तरह पान करते हैं।

११ (क) ' रामपद पद्म मकरंद मधुकर ' इति। चरणकमलके मकरंदरसके रसिक भौंरे कहनेका भाव कि आप श्रीरघुनाथजीके चरणोंका चिंतवन अहर्निशि निरंतर किया करते हैं। (ख) ' शरण शूलपानी '

इति। 'शूलपाणि' नाम महादेवजीका है। अंतमें यह नाम देकर हनुमान्‌जीका रुद्रावतार होना जनाया। पुनः, शूलपाणि संबोधन देकर कवि अपने समस्त शूलोंसे वा त्रयः शूलसे आपकेद्वारा अपनी रक्षा चाहते हैं। यथा, 'त्रयः शूल निर्मूलिनं शूलपाणिं।' अथवा, यहां 'शूल' हाथमें लिये हुए हनुमान्‌जीके किसी विग्रहविशेषकी वन्दना है, इससे 'शूलपाणी' संबोधन दिया।

३० [१३] राग–सारंग

जाके गति है हनुमान की।
ताकी पैज[1] पूजि आई यह रेखा कुलिस पषान की॥
अघटित घटन[2] सुघटबिघटन[3] ऐसी[4] बिरुदावलि[5] नहिं[6] आनकी।
सुमिरत संकट सोच बिमोचनि[7] मूरति मोदनिधान की॥
ता पर सानुकूल गिरिजा हर लखनु रामु अरु जानकी।
तुलसी कपि की कृपा बिलोकनि खानि सकल कल्यान की॥

शब्दार्थ—गति = पद ३ और पद १३ देखिये। पैज (सं० प्रतिज्ञा। प्रा० पतिज्ञा। पइजा)=प्रतिज्ञा, प्रण, टेक। पूजि आई=पूजना, (अकर्मक क्रिया है) पूरा होना, सम्मानित वा आदृत होना, पूरी होती आई। 'आई' से भूत और वर्तमान् दोनोंके साथसाथ भविष्यकामी बोध कराया है। रेखा = लकीर। रेखा कुलिस पषानकी = वज्रलेप (लिपि) एवं पत्थरकी लकीर अर्थात् अमिट, सदा सच्ची बनी रहनेवाली बात। वज्ररेख = अत्यंत दृढ़ और पुष्ट सिद्धान्त। अघटित घटन सुघट बिघटन =

---

१ पयज—रा०, ङु०। २ घटनि। ३ बिघटनि—भा०, बे०, ज०, भ०। घटन, बिघटन—औरोंमें। ४ अस—मु०, ७४। असि—ज०। ऐसी (ऐसी) – औरोंमें। ५ विरुदावलि—६६, रा०, भा०, बे०, मु०, दी०, वि०। बिरुदावली—ङु०, भ०, वै०, ७४, ज०। ६ नहिं—६६, रा, भा०, बे०, मु०, दी०, वि०, ङु०, वै०, भ०। न—ज०, ७४। ७ विमोचनि—६६, रा०, भा०, बे०, भ०। बिसोचन—इ०, ज०, १५, ५१, ७४, आ०। (भ०) 'मूरति सोचबिमोचनी' है यह अन्वय होगा। 'मूरति' के संबंधसे 'बिमोचनि' ही शुद्ध है।

यथा, 'अघट घटना सुघट बिघटन।' पद २५ देखिये। बिरुदावलि = यशावली। पद २५ देखिये। बिलोकनि = कटाक्ष, चितवन, दृष्टिपात, देखनेकी क्रिया। खानि = खदान, उत्पत्तिस्थान, खज़ाना।

पद्यार्थ— जिसको (एकमात्र) श्रीहनुमान्‌जीकाही आशा भरोसा है, उसकी प्रतिज्ञा पूरी होती आयी यह सिद्धांत वज्र और पत्थरकी लकीरके समान अमिट है। १। जो न होनेवाली बात है उसको कर दिखानेवाले और जो खूब बना बनाया है, जिसके बिगड़नेकी संभावनाभी नहीं उसको बिगाड़ देनेवाले अर्थात् असंभवको संभव और संभवको असंभव कर देनेवाले, ऐसी बिरदावली दूसरेकी नहीं है। आनंदनिधानमूर्ति (श्रीहनुमान्‌जीकी) स्मरण करतेही (वह) संकट और सोचको छुड़ा देनेवाली है। २। जिसको हनुमान्‌जीकी गति है और जो उनका स्मरण करता है, *उसपर श्रीपार्वतीजी, श्रीशंकरजी, श्रीलक्ष्मणजी, श्रीरामचन्द्रजी और श्रीजानकीजी प्रसन्न रहते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि कपिकी (श्रीहनुमान्‌जी) कृपादृष्टि समस्त कल्याणोंकी खानि है अर्थात् उनकी कृपासे सम्यक् प्रकारके कल्याणोंकी प्राप्ति हो जाती है। ३।

टिप्पणी—१ (क) 'ताकी पैज पूजि आई०' इति। यथा हनुमान् बाहुके 'देवी देव दानव दयावने ह्वै जोरैं हाथ बापुरे बराँक और राजा राना राँक को। जागत सोवत बैठे बागत बिनोद मोद ताकै जो अनर्थ सो समर्थ एक आँक को॥ सब दिन रूरो परै पूरो जहां तहां ताहि जाके है भरोसो हिय हनुमान् हाँक को।' 'पूजि आई' यह त्रैकालिक क्रिया है। भूत और वर्तमानके साथ साथ भविष्यमेंभी पूरी होनेकी सूचना दे रही है। सदा पूरी हुई, इस समयभी हो रही है और आगेभी पूरी होगी। 'ताकी' शब्दसे जनाते हैं कि प्रतिज्ञाभी उन्हींके

*अर्थान्तर—१ 'ऐसी शक्ति कहते है कि मोदनिधान हनुमान्‌जीकी जो मूर्ति है उसपर'। (वैं०) २ 'इनपर'। (वि०) ३ 'उनको स्मरण करनेवाले पर'। (दी०) ४ 'सब प्रकारके कल्याणोंकी खान श्रीहनुमान्‌जीकी कृपादृष्टि जिसपर है उसपर'। (पोद्दारजी)

भरोसे की गयी हो। इसका सम्बंध 'जाके गति है हनुमानकी' से है। (ख) 'रेखा कुलिस पषानकी' इति। इसका अर्थ इस प्रकारभी कर सकते हैं कि यह पत्थरपरकी वज्रलीक है वा यह वज्रसे खींची हुई पत्थरपरकी लकीर है। दीनजीने 'कठिन पत्थरकी रेखाके समान अमिट है' यह अर्थ किया है। 'कुलिश' से 'कठिन' का भाव ग्रहण किया है। (ग) 'रेखा कुलिस' की कहकर आगे उसका कारण बताते हैं 'अघटित घटन'। ऐसे बानेवाला कोई दूसरा देखने सुननेमें नहीं आता। क्योंकि ऐसा कोई दूसरा हैही नहीं।

२ (क) 'मूरति मोद निधानकी' इति। भाव कि हनुमान्‌जी आनंदका लयस्थान हैं, आनंदका आश्रय हैं, आधार हैं, आनंदसे परिपूर्ण भरे पात्र हैं, स्वयं आनंदरूप हैं और दूसरोंकोभी आनंद देनेवाले हैं। यथा, 'जयति निर्भरानंदसंदोह कपिकेसरी' (२९) 'सिद्ध सुर सज्जनानंद सिंधो।' (२७), बिबुधकुल कैरवानंदकारी', और 'सौमित्रि रघुनंदनानंदकर। (२५) (ख) 'सुमिरत संकट सोच बिमोचनि' इति। भाव कि जहां आनंदही आनंद हैं उस आनंदसमुद्रमें प्रवेश करतेही प्राणी आनन्दमय हो जाता है। तब संकट सोच रहही कैसे सके? श कृत, हिंसक पशु पक्षियोंकृत, शरीरव्याधिकृत इत्यादि प्रकारकी आपत्ति 'संकट' है।

३ (क) 'तापर सानुकूल गिरिजा हर' इति। भाव कि आपके कृपा-पात्रको ये सब बातें प्राप्त हो जाती हैं। बाहुकमेंभी यही बात कही है। यथा, 'सानुग सगौरि सानुकूल सूलपानि ताहि लोकपाल सकल लखन राम जानकी। बालक ज्यों पालि हैं कृपाल मुनि सिद्धताको जाके हिय हुलसति हाँक हनुमानकी॥' जिसको हनुमान्‌जीका आशाभरोसा है उसपर सबकृपा करते हैं। यहाँ 'तृतीय तुल्ययोगिता' अलंकार है। (ख) माताकी दया पिता आदिसे अधिक होती है। इसीलिये 'गिरजा' और 'जानकी' को आदि अन्तमें रक्खा। जिनपर ये अनुकूल हों उनका लोक और परलोक दोनों बना बनायाही है। भगवान् शङ्कर लौकिक समस्त वैभवके दाता हैं और अपनी पुरीमें श्रीरामपदप्राप्तिभी देते हैं। यही क्रम बाहुकमेंभी है जो यहां है। पद ३१, ३२ भी देखिये।

गोस्वामीजीके गेय अमर काव्य और जीवन काव्योंमें (जीवनचरित) श्रीहनुमान्‌जीकी प्रधानता है। उन्हींकी कृपा और भरोसेका अवलंबन तुलसीदासजीको सदैव रहा। उनको (तुलसीदासजी) हनुमान्‌जीका पूर्ण भरोसा था, यह उनकी जीवनीसे स्पष्ट है। बालक 'रामबोला' (तुलसी) को अनाथावस्थामें माता पार्वती और शिवका साहाय्य प्राप्त होना श्रीहनुमान्‌जी-की कृपाका फल है। श्रीरामजानकीजीके समयसमयपर दर्शन उन्हींकी कृपासे हुए। इन सब बातोंको तुलसीदासजीने कृतज्ञतापूर्वक इस पदमें स्वीकार किया है। (दे० द० शर्मा)

पद ३० और पद ३१ में श्रीहनुमान्‌के अनन्याश्रित होनेका फल आश्रितकी महिमाका तथा हनुमान्‌जीके नाम, रूप और यशके स्मरण एवं गानका प्रभाव गाया गया है।

३१ [१२] राग-सारंग [गौरी ७४]

ताकिहै तमकि ताकी ओर को।
जाकें[1] है सब भाँति भरोसो कपि केसरी किसोर को ॥१॥
जनरंजन अरिगनगंजन मुखभंजन खल बर[2] जोर को।
बेद पुरान प्रगट पुरुषारथु सकल सुभट सिरमोर को ॥२॥
'उथपै थपन[3] थपै उथपन' पन[4] बिबुध बृंदबंदिछोर[5] को।
जलधि लँघि दहि लंक प्रबल दल[6] दलन निसाचर घोर को ॥३॥

---

१ जाकें—६६, रा०। जाके—भा०, बे०, ह०, प्र०, ज०, १५, दी०। जाको—५१, ७४, आ० (दी०)। २ बल—शि०, मु०, भ०। ३ उथपै थपना—६६। उथपे थपन—प्रायः औरोंमें। थपै उथपन—६६। थपे उथपन—रा, भ०, बे०, प्र०, ह०, भ०, दी०, वि०,। थप्यौ उथपन—डु०, टी०। थप्यो उथपन—वै०, मु०, ७४। थप्यो थापन—५१। उथपै=उथपे हुएको। थपै=थपे हुएको। ४ पन—६६, रा०, भा० (मूलमें 'करि' है, हाशियेपर 'पन' है। आ०। करि—बे०, प्र०, ज०, ७४। थिर—ह०। ५ ७४ में 'बिबुधन्ह बन्दीछोर' पाठ है। औरोंमें उपर्युक्त पाठ है। ६ बल—रा०, मु०।

जाको बालबिनोद समुझि दिन[7] डरत दिवाकर भोर को।
जाकी चिबुक चोट चूरन कियो[8] रद मद कुलिस कठोर को ॥४॥
लोकपाल अनुकूल बिलोकिबो चहत बिलोचन कोर को।
सदा अभय जयमय[9] मंगलमय जो सेवकु रनरोर को ॥५॥
भगतकामतरु नामु राम परिपूरन चंद चकोर को।
तुलसी फल चारयो[10] करतल जसु गावत गईबहोर को ॥६॥

शब्दार्थ—ताकि है = ताकेगा, देखेगा। तमक = जोश, तेहा, क्रोधभरी दृष्टि। तमकना = क्रोधका आवेश दिखाना, क्रोधके मारे उछल पड़ना। किसोर (किशोर) = बच्चा, बालक, पुत्र। बरजोर (बल+जोर) = प्रबल, ज़बरदस्त। यथा, 'ते रन रोर कपीस किसोर बड़े बर जोर परे फग पाए।' (क०) सिरमोर = शिरोमणि, सिरमोर, सिरताज। यथा, 'सहज सलोने राम लखन ललित नाम जैसे सुने तैसेई कुवँर सिरमोर हैं।' मौर=यह एक प्रकारका शिरोभूषण है जो ताड़पत्र या सुखड़ी आदिका बनाया जाता है। यह साधारणसे लेकर बहुत लागततकका बनता है। पन्ना, पन्नी, मुक्तामणि जटितभी बनता है जो बड़े आदमियों, राजाओं महाराजाओंकेलिये बनाया जाता है। विवाहमें वर (दूलह) सिरपर धारण करता है। यह विवाहसमयका मुकुट है।

---

७ दिन–६६, रा०, ज०। जिय–भा०, बे०, इ०, ५१, ७४, १५, आ०। दिन=नित्यप्रति। यथा, 'दिन देत दयें बिनु बेद बड़ाई मानी।' ८ कियो–६६, रा०, प्र०, इ०। किय–मु०, भा०, बे०, ७४, भ० बै०। किये–डु०, टी०। ९ मय ६६, रा०, इ०, १५ ('मय' का 'मुद' बनाया है।) मुद —७४, आ०, १५। भा० में 'सदा सो अभय मोद' पाठ है और बे० में 'सदा अभय जय मुद' था, उसका 'सदा सु अभय मोद' बनाया गया है। ज० में 'सदा अभय जै जै' है। १० चारयो–६६, रा०। चरिउ–प्र०, १५। चारो–भा०, बे०, ज०, ५१, ७४, आ०। चारयो–चारोही।

गंजन = नाशक । पुरुषारथु (पुरुषार्थ) = पराक्रम । इसका अर्थ 'प्रेमाभक्ति' भी है । यथा, 'पुरुषैरर्थ्यते प्राप्यते इति पुरुषार्थः फलम्' अर्थात् सब साधनोंका अंतिम फल । उथपना (सं० उत्थापन) = उठाना, उखाड़ना, उजाड़ना । उथपै = उखड़े वा उजड़े हुएको। उथपन = उखाड़ने या उजाड़नेवाले । यथा, 'तेरे थपे उथपै न महेस थपै थिर को कपि जे घर घाले।' (बाहुक), 'उथपै तेहि को जेहि राम थपै थपिहै पुनि को जेहि वै टरि हैं।' थपना (सं० स्थापन) = स्थापित करना, जमाना । थपन = स्थापन करनेवाले । बंदि (सं० बंदिन्) = क़ैद, कारागारनिवास, क़ैदी । लंघि = फलाँग-मारकर पार करके, लाँघकर । बालविनोद = बालकेलि; बच्चोंका खेल वा दिल बहलावा । पद २५ 'कपिकेलि' देखिये । दिन = प्रति दिन । भोरको = प्रातःकालके । चिबुक = ठोढ़ी । चोट = प्रत्याघात । रद = दाँत । यथा, 'रदपट फरकत नयन रिसौं हैं'। चूरन = चूर्ण करना, धूलमें मिला देना, दूर करना । कुलिस रद = अंकुरकी तरह निकली हुई नुकीली वस्तु जो बहुतोंके साथ एक पंक्तिमें हो जिसे दाँत या दंदाना कहते हैं, जैसे आरी, कंघी, इत्यादिमें होते हैं । इनसे आक्रमण करने, पत्थर आदिको तोड़ने इत्यादिका काम लिया जाता है । वज्र पर्वतोंको चूर्ण कर डालता है । यही उसका 'मद' है कि मैं कठोरसे कठोर वस्तुकेभी टुकड़े टुकड़े कर डालता हूं । बिलोकिबो = दृष्टि । अनुकूल बिलोकिबो = कृपादृष्टि, प्रसन्न चितवन, कृपावलोकन । कोर (सं० कोण) = किनारा, कोना । रनरोर (रण + रोर) कोलाहल, रौला मचानेवाले, दुर्दमनीय, रणमें क्रूर स्वभाव एवं दुर्दमनीय । यथा, 'देव बंदीछोर रनरोर केसरी किसोर जुग जुग जग तेरे बिरद बिराजे हैं।' (बाहुक) यथा, 'वैं रन रोर कपीस किसोर बड़े बरजोर परे फँग पाए।' (क०), 'कुलिस कठोर तन जोर परे रोर रन करुनाकलित मन धारमीक धीरको' (बाहुक)। परिपूरन (परिपूर्ण) = पूर्णिमाका चन्द्रमा जो सोलहो कलाओंसे युक्त होता है । चारयो = चारोही । करतल = हथेली ।

गईबहोर = गई (खोई हुई) वस्तुको बहुरा देनेवाले। बहुराना, बहोरना = लौटवा देना; फिरसे दिलवा देना।

पद्यार्थ—जिसको सब प्रकार केसरी वानरके पुत्रका (श्रीहनुमान्‌जी) भरोसा है, उसकी ओर तेहेसे कौन ताक सकता है? किसीकी मजाल नहीं जो ऐसा कर सके। १। भक्तोंके आनंददाता, शत्रुवृंदके विनाशक और बलवान दुष्टोंके मुखोंके तोड़नेवाले, समस्त सुभटोंके सिरताज श्रीहनुमान्‌जीका (यह) पुरुषार्थ§ वेदोंपुराणोंमें विख्यात है। २। 'उथपै थपन थपै उथपन पन†' (उजड़े हुएको बसाना और बसे हुएको उजाड़ देना) देववृंदबंदीछोर श्रीहनुमान्‌जीका यह प्रण है। एवं 'उथपै थपन थपै उथपन' प्रणवाला और देव वृन्दको कैदसे छुड़ानेवाला कौन है? समुद्रको लाँघकर लंकाको जलाकर भयंकर निशाचरोंके प्रबल दलका नाश करनेवाला कौन है?* अर्थात् हनुमान्‌जीही तो हैं। ३। जिसकी बालकेलिको सोच सोचकर आजभी नित्यप्रति प्रातःकालके सूर्य डरते रहते हैं, जिसके ठयोढ़ीके प्रत्याघातने कठोर वज्रके दातोंके मदको नष्ट कर दिया। ४। लोकपाल (जिसके) नेत्रके कोरकी कृपावलोकनकी चाह करते हैं, (ऐसे) रणमें दुर्दमनीयका (श्रीहनुमान्‌जी) जो सेवक है, वह सदा निर्भय, जयमय (अर्थात् जयका रूप, सदा विजयी) और मंगलमय है। ५। श्रीरामरूपी पूर्णचन्द्रके चकोर (अर्थात् अनन्य प्रेमी) श्रीहनुमात्‌जीका नाम भक्तोंकेलिये कल्पवृक्ष है। तुलसी-

§'पुरुषार्थ' का दूसरा अर्थ 'प्रेमाभक्ति' लें तो अर्थ होगा कि 'हनुमान्‌जीके हृदयमें श्रीरामप्रति जो प्रेमाभक्ति है वह वेदपुराणमें प्रकट है।' पर यहां वास्तवमें वीरताका प्रकरण चल रहा है। इससे उपर्युक्त अर्थ विशेष संगत है।

†'पन' का अन्वय तीनोंके साथ करकेभी अर्थ कर सकते हैं।

*'को' का अर्थ 'कौन' करनेसेभी अर्थ ठीक बन जाता है। 'बरजोर' को हमने 'खल' का विशेषण माना है। ऐसा करनेसे हनुमान्‌जीके पराक्रमकी उत्कृष्टता बढ़ जाती है।

दासजी कहते हैं कि गईबहोर श्रीहनुमान्‌जीका यश गान करनेसे चारोंही फल हथेलीमें आ जाते हैं । ६ ।

टिप्पणी—१ 'ताकि है सब भाँति भरोसो' इति । कोई तिरछी क्रोधभरी दृष्टिसे देख नहीं सकता । पर इसकेलिये शर्त यह है कि 'सब भाँतिसे' उनका भरोसा हो । यह नहीं कि फिर अन्य देवादिकाभी भरोसा हो, औरोंकोभी मनाता फिरे, 'सब भाँति' का भाव कि अनन्यगति हो, एकमात्र हनुमान्‌जीका आशा भरोसा रखता हो, मन कर्म वचनसे इन्हींकी शरण रहे । यथा, '**लोक परलोकको बिसोक सो तिलोक ताहि तुलसी तमाहि कहि कहा बीर आनकी । केसरीकिसोर बंदीछोरके निवाजे सब कीरति बिमल कपि करुनानिधानकी ॥ बालक ज्यों पालिहैं कृपाल मुनि सिद्ध ताको जाके हिय हुलसति हाँक हनुमानकी ॥**' कोई ताक नहीं सकता, यह कहकर उसका कारण उत्तरार्धमें बताते हैं कि उसे "कपि केसरीकिसोरका भरोसा है" । 'केसरी' शब्द श्लेषालंकारसे दो अर्थ दे रहा है । केसरीकिशोर = केशरी वानरके पुत्र और सिंहकिशोर । आपको सिंहकिशोर कहकर आश्रितके शत्रुओंको 'गजगण' जनाया । गजगणको देखकर सिंहके बच्चेको उनके मस्तक विदीर्ण करनेका अधिक चाव होता है । यथा, '**मनहु मत्त गजगन निरखि सिंहकिसोरहि चोप ।**' (बा०) । मिलान कीजिये, '**बारिदनाद अकंपन कुंभकरन्नसे कुंजर केहरि बारो ।**' (बाहुक) आगेके चरणोंमें औरभी कारण बताते हैं । '**जाके है सब भाँति भरोसो**' । इसका संबंध सब तुकोंसे है ।

२ (क) 'मुखभंजन खल बरजोरको' इति । शत्रुभी उनकी प्रशंसा करते हैं । यथा, '**बड़ो बिकराल बेष देखि सुनि सिंहनाद उठ्यो मेघनाद सबिषाद कहै रावनो । बेग जीत्यो मारुत प्रताप मार्तंड कोटि कालऊ करालता बड़ाई जीत्यो बावनो ।**' (क०) मिलान कीजिये, "**कौनकी हाँक पर चौंक चंडीस बिधि चंडकर थकित फिरि तुरंग हाँके । कौन के तेज बल सीम भट भीमसे भीमता निरखि कर नयन ढाँके ॥ दास तुलसीसके बिरुद बरनत बिदुष बीर बिरुदैत बर बैरि धाँके । नाक नर लोक पाताल कोऊ**

कहत किन कहां हनुमान से बीर बाँके ॥" (क०) '**मुखभंजन**', इति। यथा, '**अच्छबिमर्दन कानन भानि दसाननआनन भाननिहारो**।' (बाहुक) यह मुहावरा है।

(ख) 'सकल सुभट सिरमोर को' इति। यथा, '**पंचमुख छमुख भृगुमुख्यभट असुर सुर सर्व सरि समर समरत्थ सूरो। बाँकुरो बीर बिरुदैत बिरुदावली बेद बंदी बदत पैज पूरो ॥**' (बाहुक) रामाश्वमेधयज्ञमें जब वीरमणिके पुत्र चंपकने घोड़ा पकड़ लिया तब वीरमणि और अश्वरक्षक शत्रुघ्नजी तथा उनकी सेनासे घोर युद्ध हुआ। उससमय वीरमणिकी सहायताकेलिये स्वयं शिवजी सारे परिवार और गणोंसहित युद्ध करने आये थे। श्रीहनुमान्‌जीने सबसे युद्ध किया। अन्तमें जय इन्हींकी हुई। पद २७ टि० ३ (ग) में 'भटचक्रवर्ती', पद २८ टि० १ (ग) में 'बलबिपुल' देखिये। औरभी मिलान कीजिये, '**लोक परलोकहू तिलोक न बिलोकियत तो सो समरत्थ चख चारिहू निहारिये। कर्मकाल लोकपाल अग जग जीव जाल नाथ हाथ सब निज महिमा बिचारिये ॥**' '**बाँकी बिरुदावली बिदित बेद गाइयत रावन सो भट भयो मुठिका के घायको।**' (बाहुक)

३ (क) 'उथपै थपन थपै उथपन पन' इति। पद २५ टि० १३ (ख) एवं शब्दार्थमें 'अघट घटना सुघट बिघटन' में देखिये। दोनोंके एकही भाव हैं। 'उथपै थपन' का भाव बाहुकके "**तेरे थपे उथपै न महेस थपै थिर को कपि जे घर घाले। तेरे निवाजे गरीबनिवाज बिराजत बैरिनके उर साले।**' इस पदमेंभी है। भाव कि जिसको आप एक बार स्थापित कर देते हैं, जिसपर आपकी कृपा हो जाती है उसको फिर शिवजीभी नहीं उजाड़ सकते, उसका अनिष्ट नहीं करते और जिस बने बनाये घरको आपने उजाड़ा फिर किसीका सामर्थ्य नहीं कि उसे पुनः जैसाका तैसा कर दे।

प्रथम 'उथपै थपन' कहा, तब 'थपै उथपन।' क्योंकि बिगड़ेको बनानेमें अधिक यश है। बनेको बिगाड़नेमें वह यश नहीं है। दूसरे चरित्रक्रमानुसार यहां तीनों बातें कही गयी हैं। पहले सुग्रीवजी 'गत-राज्यदातार' हुए। वे उजड़े हुए। यथा, '**रिपु सम मोहि मारेसि**

अति भारी। हरिलीन्हेसि सर्बसु अरु नारी ॥ ताके भय रघुवीर कृपाला। सकल भुवन मैं फिरेउँ बिहाला ॥ इहाँ साप बस आवत नाहीं। तदपि सभीत रहौं मन माहीं ॥' (कि०) बालिका बध कराके इनको स्थिर जमा दिया। फिर बने हुए रावणको नष्ट करके देवताओंको छुड़ाया।

यहांतक उपरके संबंधकी कड़ी वा लड़ी चली आयी। ऐसे कपिकेसरीकिशोरके आश्रितपर कोई क्रूर दृष्टिसे नहीं ताक सकता। आगे कहते हैं कि इनका सेवक सदा निर्भय, जयमय और मंगलमय है।

(ख) 'बिबुधबृंदबंदिछोर' इति। देववृंद रावणके बंदीखानेमें थे। यथा, "बेद लोक सबै साखी काहूकी रती न राखी रावनकी बंदि लागे अमर मरन।", "साहसी समत्थ तुलसी को नाह जाकी बाँह लोकपालनीको फिरिफिरि थिर थल भो।" (बाहुक) "पन बिबुधबृंद बंदिछोरको।" 'बिबुधबृंद बंदीछोर' आपका बिरद है। यथा, "बंदिछोर बिरुदावली निगमागम गाई।" (३५) देववृन्द बंदिछोर येही हैं, ऐसा कहनेका कारण आगे कहते हैं कि ये न होते तो 'जलधि लंघि' यह कौन कर सकता?

(ग) 'प्रबल दल दलन निसाचर घोर को' इति। यथा, "जे रजनीचर बीर बिसाल कराल बिलोकत काल न खाये। ते रन रोर कपीस किसोर बड़े बरजोर परे फँग पाए।" (क०) इससे उनका प्राबल्य और करालता स्पष्ट हो जाती है।

(घ) "बालबिनोद" इति। यहाँ बालविनोदसे जन्मतेही जो बालकेलिसे सूर्यको लाल फल समझकर लेनेको लपके थे, उस चरितकी ओर संकेत है। उससमय पृथ्वीसे सूर्य मण्डलतकका रास्ता आपकी एक फलाँगसेभी कम निकला। वहाँतक एक फलाँगसे कममें पहुँचना, सूर्यके तेजको ढक लेना, फिर राहुको पकड़नेको दौड़ना और ऐरावतपर झपटना इत्यादि वानरस्वभावका आपका खेल था। यथा, "बानर सुभाय बालकेलि भूमि भानु लगि फलगु फलागहू ते घाटि नभतल भो", "तेरी बालकेलिबीर सुनि सहमत धीर भूलत सरीर सुधि सक्र रबि राहुकी।" (बाहुक)

(ङ) 'दिन डरन' इति। भाव कि उस बालविनोदका इतना गहरा भय हृदयमें समा गया है कि उदय होते समय अबतक डरते रहते हैं कि कहीं हनुमान्‌जी ग्रास करने तो नहीं आते। इससे हनुमान्‌जीका तेज और प्रताप दिखाया कि 'तेजप्रतापरूपरसराशि सूर्यभी आपका स्मरण आतेही काँप उठता है।' इसीका नाम प्रताप है।

४ 'जाकी चिबुक चोट चूरन कियो रद मद' इति। वज्रभी आपका कुछ न कर सका। उलटे आपकी ठयोढ़ीके प्रत्याघातसे उसकेही दाँत कुंठित हो गये, झड़ गये। उसका शत्रुशालन अभिमान मिट्टीमें मिल गया। आपने उसके दाँत खट्टे कर दिये। पद २५ टि० ४ (ग) '**राहु रबि सक्र पबि गर्ब खर्बीकरन**' देखिये। तात्पर्य यह है कि आपका शरीर जन्मसेही वज्रसेभी अधिक कठोर और पुष्ठ था। आपको किसी शत्रुसे आघात नहीं पहुँच सकता और न अपनी रक्षाकेलिये दूसरेकी सहायताकी आवश्यकताही आपको कभी हो सकती है।

५ (क) 'लोकपाल अनुकूल बिलोकिबो चहत' इति। बिलोचन कोर अनुकूल बिलोकिबो' का भाव कि किंचित्‌ही कृपाकटाक्ष चाहते हैं। उतनेसेही उनका काम बन जायगा। तब जो उनका सेवक है, जिसपर उनकी स्वतः कृपा है, उसके 'सदा अभय जयमय मंगलमय' होनेमें संदेहही क्या? दूसरा अर्थ यहभी हो सकता है कि "रणरोर हनुमान्‌जीके सेवकके कृपाकटाक्षकी चाह लोकपालतक करते हैं।"

(ख) 'भगतकामतरु नाम' इति। यथा, '**बामदेव रूप भूप रामके सनेही नाम लेत देत अर्थ धर्म काम निर्बान हो।**' (बाहुक)

(ग) 'रनरोर' इति। श्रीखाकी बाबा (मारीताल, प्रान्त बलिया निवासी)का कहना है कि "मारीतालके महावीर श्रीगोस्वामीजीके पधराये हुए हैं जिनका नाम 'रणरोर' है। यह बंदना उन्हीं हनुमान्‌जीकी है।"

श्री देवदत्तशास्त्रीजीका मत है कि "यह पद उस समयका परिचायक है जब दिल्लीके अधीश्वरके पार्षदोंने तुलसीदासको शाही दरबारमें सम्मानित होनेका प्रलोभन दिया था। उसके जवाबमें श्रीअञ्जनीनंदन-शरण तुलसीदासजीने निर्भय निस्पृह होकर कहा था कि 'हम हैं चाकर

रामके पढ़ौ लिख्यौ दरबार तुलसी अब का होहिंगे नर के मनसबदार ॥' संभव है इसको सुनकर गोसाईंजीके श्रद्धालुओंमेंसे अकबरके कृपापात्र मानसिंहने कुछ विभीषिकाकी आशंका बतलायी होगी। तभी महावीरसेवीके मुँहसे यह स्पष्ट ध्वनि निकल गयी होगी कि 'ताकि है तमकि ताकी ओर को।'

३२ राग बिलावल

ऐसी तोहि न बुझिए हनुमान् हठीले।
साहेब[1] कहूँ न राम से[2] तोसे[3] न उसीले[4] ॥ १ ॥
तेरे देखत सिंघ[5] के सिसु मेंढुक लीले।
जानत हौं कलि तेरेउ[6] मनु[7] गुनगन कीले ॥ २ ॥
हांक सुनत दसकंध के भये[8] बंधन ढीले।
सो बलु गयो किधों भये[9] अब गर्व गहीले ॥ ३ ॥
सेवक को परदा फटै तू[10] समरथ सीले।
अधिक आपुतें आपनो सुनि[11] मानि[12] सहीले ॥ ४ ॥

१ साहिब–रा०, मु०। साहब–डु०, वै०। साहेब–प्रायः औरोंमें। २-३ से तोसे–५१, आ०। सो तोसे–रा०। सो तोसो–ज०। से तुमसे–भा०, बे०, ह०, ७४, प्र०। ४ उसीले–रा०, भा०, बे०, ह०, भ०, वि०। वसीले–डु०, वै०, ७४, मु०, दी०। ५ सिंघ–रा०, भा०, बे०, भ०। ६ तेरेउ–रा०, ज०। तेरेऊ–भ०, मु०, ७४, दी०, भा०, बे०, ह०, १५, ५१। तेरोऊ–डु०, वै०, टी। ७ मनु–रा०, मु०, भ०, डु०, वै०, ज०, दी०। मनो–भा०, बे०, ह०, १५। उर महं–५१। ८ होत–रा०, ज०। भये–औरोंमें। ९ भये–ह०, डु०, वै०, ७४, दी०, वि०। भय–१५। भयो–रा०, भा०, बे०, ज०, मु०, भ०। १० तू–रा०, ज०, आ० (मु०)। तुम–भा०, बे०, मु०, प्र०, ७४। तुं–ह०, १५। ११ सुनि–रा०, भा०, बे०, ज०, ७४, आ०। १२ मानि–रा०, भा०, ह०। मान–बे०, ज०, आ०। ह० में, 'सनमानि' है, प्र० में, 'सनमान' है और ७४ में 'सुनि मानस हीले' है। वीरकविजीने 'स' को 'मान' के साथ मिलाकर यह पाठ

सासति तुलसीदासकी देखि[13] सुजस तुही ले।
तिहूँ काल तिन्हको भलो जे[14] राम रँगीले ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—बूझिए = चाहिये। यथा, 'सपनेहु बूझिय बिपति कि ताही।' (सुं०) हठीले = दृढ़ प्रतिज्ञा। संकल्पको पूरा करनेवाले; हठी। उसीले (वसीला) = ज़रिया, बीचमें पड़नेवाला, सही सिफ़ारिश करनेवाला। मेढुक (सं० मंडूक) = एक जलस्थलचारी जंतु जो तीन चार अंगुलसे लेकर एक बालिश्ततक लंबा होता है। मेंढक, दादुर। कीले = कीलना, किसी मंत्रद्वारा किसी अन्य मंत्रकी शक्ति तथा उसके प्रभावको संकुचित करना, कुंठित करना, बाँध देना, मंत्रित यंत्रित करना। लीलना = निगलना; बिना दाँतोंसे कुचले खा जाना। हाँक (हुंकार) = लड़ाईमें धावा या आक्रमण करतेसमय गर्वसूचक चिल्लाहट, ललकार या गर्जन। यथा, 'भूमि परे भट घूमि कराहत हाँकि हने हनुमान हठीले' (क०), 'रजनिचर घरनि घर गर्भ अर्भक स्रवत सुनत हनुमानकी हाँक बाँकी।' बंधन = शरीरका संधिस्थान अर्थात् वह स्थान जहाँ दो या अधिक हड्डियाँ आपसमें मिलती हों, जोड़, जैसे कुहनी, घुटना, पोर आदि। सुश्रुतके अनुसार सारे शरीरमें सब मिलाकर दो सौ दस संधियाँ हैं। मोटी नसें जिनके कारण दो अवयव आपसमें जुड़े रहते हैं। भये बंधन ढीले = बहुत मार पड़नेसे एवं बहुत घबड़ा जानेसे शरीरके अंग अंगके जोड़ ढीले पड़ जाते हैं। उनसे कुछ कार्य करते नहीं बनता। जोड़ोंके ढीले पड़ जानेसे इन्द्रियाँ शिथिल पड़ जाती हैं, पुरुषार्थ घट जाता है। 'बंधन ढीले हो गये' अर्थात् उसका पुरुषार्थ जाता रहा, हिम्मत पस्त हो गयी, हवास

स्वीकार किया। प्रायः औरोंने 'मान (वा, मानि) सही ले' (सही मान ले) पाठ स्वीकार किया है। मानस हीले = मन हिल (दहल) जाता है। 'अधिक आपु तें आपनो' के साथ मानस हिलनेकी बात संगत नहीं जान पड़ती। १३ देखि—रा०, भा०, बे०, प्र० ज०, ह०, डु०, टी०। लखि—मु०, ७४। सुनि—५१, आ० ९ (डु०, मु०) १४—जो —७४, ज०।

उड़ गये, वह हार मान गया। गहीला = श० सा० में इसे हिंदी ' गहेला ' से बना हुआ माना है और ' गर्वीला, घमंडी, मदोन्मत्त ' इसके अर्थ दिये हैं। पं० रामकुमारजी और बाबू शिवप्रकाशजी आदिने 'ग्रहण कनेवाला' यह अर्थ किया है। इस तरह 'गर्वगहीले' गर्व ग्रहण करनेवाले, गर्वीले। गर्वगहीले भए=घमंड आ गया। 'गहीले' को 'गहरीले' का अपभ्रंश मान लें तो "गहरीला (भारी) गर्व हो गया" ऐसा अर्थ होगा। परदा=कपड़ा, टट्टी आदि कोई आड़ करनेवाली वस्तु जिससे सामनेकी वस्तु कोई देख न सके। परदा फटना यह मुहावरा है। छिपे हुए दोषोंका प्रकट हो जाना, बनी बनायी प्रतिष्ठाका जाता रहना, छिपे भेदका खुल जाना, इज्ज़त अब्रूका जाना। समरथ (समर्थ) = शक्तिमान्। आपु ते=अपने (अपनी आत्मा) से। आपनो=जो अपना हो; स्वजन; जिसमें अपना अपनपौ हो, सेवक। मानि सहीले=सही (सत्य) मान लों। मान लेना, स्वीकार करना। रँगीले=रंगे हुए। अनुरागी यह शब्द 'रज रंगे' धातुसे बना हुआ है।

पद्यार्थ— अरे हठीले हनुमान्! तुझे ऐसा न चाहिये† । न तो कहीं श्रीरामचन्द्रजीकासा (कोई) स्वामी (ही) है और न तुझसा सिफ़ारिश करनेवाला (ही कोई है)।१। तेरे देखते सिंहके बच्चेको मेढक (वा, मेंढकका बच्चा) निगले! (कैसे आश्चर्यकी बात है!) मुझे ऐसा जान पड़ता है मानो कलियुगने तेरेभी गुणगणोंको कील दिया है (उनके प्रभावको कुंठित कर दिया है।)।२। (तेरी) ललकार सुनतेही दशकंधरके (रावण) हवास उड़ गये थे। क्या वह बल कहीं चला गया? या कि अब भारी गर्व हो गया?।३। सेवकका परदा फट रहा है, तू समर्थ है, उसे सी ले,* अपनेसे अपना (सेवक आश्रित) अधिक होता है, यह (बात) सुनकर सही

---

†अर्थान्तर—१ तेरी ऐसी समझ तो न चाहिये। (वि०) २ ऐसा आपको न समझना चाहिये।

*'समरथसीले' (अर्थात् सामर्थ्यशील) को एक शब्द मानकरभी अर्थ कर सकते हैं। परन्तु 'फटने' के सम्बन्धसे 'सी ले' अर्थही उत्तम जँचता है।

मान लो* ।४। जो रामरंगमें रंगे हुए हैं, उनका तीनों कालोंमें भलाही है। (हम रामसेवक हैं तो रामजी हमारा भला करेंगेही। पर मुझ तुलसीदासका कष्ट देखकर उसे दूर करनेका) सुयश तूही ले ले। (नहीं तो मेरा भला तो होगाही नहीं, पर तुमको यश न मिलेगा।) ।५।

टिप्पणी—१ इस पदसे स्पष्ट है कि श्रीमद्‌गोस्वामीजी हनुमान्‌जीके कैसे मुँह लगे भक्त थे। कली सता रहा है। आप विनयपर विनय करते जाते हैं। पर सुनवाई नहीं होती। अत; बिगड़कर 'तुकार' और 'रे' कारसे

---

*अर्थान्तर—१ "अपनेसे अधिक अपने दासका मान श्रीराम दरबारमें होता सुनकर आप सह लेते रहे हैं। क्योंकि आप भागवतशिरोमणि हैं। नहीं तो साधारण प्राकृति जीवोंका स्वभाव ऐसा नहीं होता। वे तो ईर्ष्या डाह करने लगते हैं। परन्तु आप सदा अपने आश्रितोंका अधिक सत्कार सुनकर परमानन्दको प्राप्त होते हैं। आपका यह स्वभाव लोक और वेदमें विदित है।" (डु०) २ "अपने सेवकका अपनेसे अधिक मान सुनकर सह लेते थे। कैसाभी नीच हो पर यदि वह सेवक है, शरणमें आया है तो आप उसे अधिक मान, बड़ायी देते रहे है। यही जानकर मैंभी शरणमें आया हूँ (पर मेरा परदा फट रहा है।)" 'सहीले' का 'सह लेते थे' अर्थमें प्रयोग मुझे कहीं देखनेमें नहीं आया। ३ "पहले तेरा यह स्वभाव था कि अपने सेवकको अपनेसे अधिक सुनता, मानता और सहता था। पर अब क्या हो गया"? (भटजी) ४ "अपनेसे अपने सेवकको आप अधिक मानते हैं, उनका दुःख सुनकर मन चंचल हो जाता है।" (वीर) ५ "पहले तेरा स्वभाव था कि तू अपने सेवककी सुनता और मानता था।" (वि०) पंडित रामकुमारजी एवं दीनजीनेभी वही अर्थ किया है जो हमने किया है। मान सही ले अर्थात् सही मान ले। ६ "आपसे अपने अधिक हैं। मेरी विनय सुनि सही मान ले।" (पं० रा० कु०) ७ "क्योंकि यह बात सत्य है, इसे मान ले कि, स्वयं अपने डीलसे अपना सेवक अधिक होता है। अपनी अपेक्षा सेवककी प्रतिष्ठा रखना अधिक उचित है।" (दी०)

संबोधित करने लगे। परम भक्त श्रीनरसीजीनेभी ऐसाही किया है। यथा, "विमुख प्रसन्न भए तब तो उराहने दै नये नये चोज हरि सनमुख भाषियै। जाने ग्वालबाल एक माल गहि रहे हिये जिये लाग्यो एही रूप कह्यो लाख लाखियै॥ नारायण बड़े महा अहो मेरे भाग लिख्यो करै कौन दूर छबिपूर अभिलाषियै। मेरो कहा जाय आइ परसे कलंक तुम्हें राखिये निसंकहार भक्त मारि नाखियै॥" (भक्तिरसबोधिनीटीका भक्तमाल) गोस्वामीजी अब तीन पद अपने कष्टके संबंधमें यहां लिखते हैं। ऐसे वचन एकांगी भक्त स्वामीका अपमान देखनेपर कहही डालते हैं, यह स्वाभाविक है।

बाबू शिवप्रकाशजी लिखते हैं कि, "बहुत काल भजन करते बीत गया। अपने विषयमें श्रीमहाबीरजीका आविर्भाव न देख पड़ा। अतः कहते हैं कि तुम्हें ऐसा न चाहिये।" श्रीवैजनाथजी लिखते हैं कि "ऐसा स्वार्थी और कवियोंका सहज स्वभाव होता है। समर्थ उदार जानकर बहुत गुणगान किया। जब परिपूर्ण दान न पाया तब कूट सहित प्रशंसा करते हैं।" श्रीभट्टजी लिखते हैं कि "इस भजनसे यह स्पष्ट होता है कि गुसाईंजीको जब सेवा करते करते बहुत दिन हो गये और काम, क्रोध, लोभ, मोह अधिक सताने लगे और किसी भाँति चित्तकी शान्ति न हुई तब उन्होंने तंग होकर हनुमान्‌जीकोभी दो चार बुरी भली सुना दीं।"

पं० देवदत्तशर्मांजी लिखते हैं कि (पद ३१ के अन्तिम नोटसे संबद्ध) "अन्ततः आशंका सत्य हुई। गोस्वामीजी करामत दिखानेकेलिये बुलायेही गये और इन्कार करनेपर बंदीगृहके अतिथि हुए। उस समय एकनिष्ठ सेवकके भाव उबल पड़ते हैं, अपना नहीं अपने स्वामीके अपमानको समझकर खीस उठते हैं और कुछ खरी खोटीभी सुनाते है कि "ऐसी तोहि न बूझिए।" लेकिन् यह फटकार क्रोधावेशकी नहीं, भावावेशकी थी जिसमें वाणीका पूर्ण संयम था। तभी तो आगे कहते हैं, 'जानत हौं कलि तेरेउ मनु गुनगन कीले।' हनुमान्‌जी अपने पराक्रमको स्वयं नहीं जानते। यह जानकर दसकंधरके बंधन ढीले होनेका स्मरण दिलाते हैं। दसकंधरने स्वामीको बाँधा था और कलियुगी

दसकंधरने अब सेवकको बाँध रक्खा है। तुलसीदासजी सार्वभौम सम्राट् श्रीरामके राज्यमें विचरण करनेवाले स्वतंत्र प्राणी थे। उन्हें बन्धन खल गया और खीझकर वे संकटमोचनसे कहते हैं, '**तेरे देखत सिंघके सिसु मेंढुक लीले।**' इतनाही नहीं लोगोंकी दृष्टिमें परदा फट रहा है। उसे तू सी दे। कुछ चमत्कार दिखा दे। मेरी बातमें बट्टा न लगे। तू हर प्रकार समर्थ है। मैं तो सांसतिमें पड़ा हूँ। उसे दूर करनेका सुयश तूही ले ले। नहीं तो दीनानाथ भगवान् राम तो बंधन काटेंगेही।

तुलसीदासजीकी यह आर्तवाणी है। इसमें पूर्ण स्वाभाविकता टपकती है। आर्त मनुष्य क्या नहीं कह सकता! वस्तुतः तुलसीदासजी हनुमान्‌जीके विनयी एकनिष्ठ भक्त थे, मुँहलगे नहीं। इस आर्तवाणीका प्रायश्चित्त आगेके पदोंमें स्पष्ट किया गया है। '**अति आरत अति स्वारथी।**' यह भक्तकी 'अपनहाई' का बहुत सुन्दर नमूना है।

२ 'हनुमान हठीले' इति। श्रीहनुमान्‌जी अपनी बातके पक्के हैं और धीर हैं। 'हठीले' विशेषण कवितावलीमें उनकेलिये अनेक बार आया है। यथा, "**तुलसी गजसे लखि केहरि ज्यौं झपटै पटकै सब सूर सलीले। भूमि परे भट घूमि कराहत हाँकि हने हनुमान हठीले।२२।**" "**जे रजनीचर बीर बिसाल कराल बिलोकत काल न खाये। लूम लपेटि अकास निहारि कै हाँकि हठी हनुमान चलाये।३७।**" "**लक्खमें पक्खर तिक्खन तेज से सूर समाज में गाज गने हैं। ते बिरुदैत बली रन बाँकुरे हाँकि हठी हनुमान हने हैं।३९।**" भाव यह है कि शरणागत एवं जगत्मात्रका संकट हरनेको आप सदा तैयार रहते हैं, यह आपका विरद है। यथा, "**आरत की आरति निवारिबे को तिहूँ पुर तुलसी को साहिब हठीलो हनुमान भो।**" (बाहुक) अपना वह बिरद त्याग करना आपको उचित नहीं है। कलिसे मेरी रक्षा कीजिये।*

---

*भावार्थान्तर—१ "हठीले" संबोधनका भाव कि आपका स्वभाव हठी है, आप दूसरेके दुःखको किंचित् नहीं देखते समझते, अपना हठ तुम्हें प्रिय है।" (डु०) २ हठीले अर्थात् कैसाभी दुर्घट कार्य आ

३ (क) 'साहिब कहूं न राम से तोसे न उसीले' इति। भाव कि यदि कहो कि हम नहीं सुनते तो अन्यत्र चले जाओ। तो उसपर कहते हैं कि मैं जो बारंबार बिनंति कर रहा हूँ वह इसीसे कि 'साहिब कहूँ न'। यदि कहीं और ऐसा स्वामी और ऐसा वसीला (सिफ़ारशी) देख पड़ता तो अवश्य उसकी शरण लेता। पर ऐसा है ही नहीं; इससे लाचार हूँ।

(ख) 'तेरे देखत सिंघ के सिसु मेंडुक लीले' इति। अर्थात् तुम्हारे रहते ऐसा न होना चाहिये, इससे तुम्हारी अपकीर्ति होगी। मिलान कीजिये, 'तोहि जियत दसकंधर मोरि कि असि गति होइ' [(आ०) शूर्पणखावचन] पुनः, भाव कि आपके इस कर्त्तव्यसे, आनाकानीसे मुझे बड़ी ग्लानि लगती है। यथा, "तोसे समरथ को निवाजो आजु सीदत सुसेवक बचन मन काय को। थोरी बाहु पीरकी बड़ी गलानि तुलसी को कौन पाप कोप लोप प्रगट प्रभाउ को॥" (बाहुक), "तोसो समरथ सुसाहिब सेइ सहै तुलसी दुःख दोष दवा से। बानर बाज बढ़े खल खेचर लीजत क्यों न लपेटि लवा से॥" यहां ललित अलंकार है। यहां श्रीरामजी सिंह हैं। †कलि वा कलिजनित पीड़ा वा सांसारिक सतानेवाले प्राणी मेंढक हैं। गोस्वामीजी सिंहके बच्चे हैं जो शिशुदास हैं। यथा, 'बड़ो बिकराल कलि-को को न बिहाल कियो माथे पग बली को निहारि सो निवारिये।' यहां 'असिद्ध विषया हेतूत्प्रेक्षा' अलंकार है। क्योंकि मेंढकका सिंहके बच्चेको निगलना असिद्ध आधार है। कलि हनुमान्‌जीके गुणगण कीलनेको समर्थ नहीं। यह अहेतुको हेतु ठहराया है।

४ (क) 'जानत हौं कलि तेरेउ मनु गुनगन कीले' इति। 'तेरेउ' का भाव कि औरोंको तो कील डाला है, पर तुम्हारे गुणगणोंको न कील सका था। अब अवश्य संदेह होता है कि आपकोभी नहीं छोड़ा।

पड़ा आपने उसे बिना किये न छोड़ा। ऐसे उदार दयावंत होकरभी मेरे लिये सूम बने है। ऐसी समझ तुमको उचित नहीं। (वै०)

† 'हनुमान्‌जी सिंह है'। (वै०)

'मनु' अर्थात् मानों। भाव कि वास्तवमें ऐसा है नहीं, हमारा अनुमान वा संदेह मात्र है।

(ख) 'गुनगन कीले' इति। आपके गुणगणके प्रभावसे किसीका सामर्थ्य नहीं कि पास फटक सके, पर इतना गुणगान करनेपरभी कुछ प्रभाव आपपर नहीं पड़ रहा है, इसीसे अपना अनुमान कहते हैं। आशय यह है कि कलिकालमें किसी यंत्र मंत्रका प्रभाव नहीं चलता। पर आपके गुणगणके संबंधमें यह प्रसिद्ध है कि कलियुग कुछ नहीं कर सकता। परन्तु मुझे तो ऐसा जान पडता है कि कलिने आपके गुणगण-कोभी कील दिया है। क्योंकि मेरे इतनी विनय करनेपरभी आपने कुछ न सुना। मिलान कीजिये "सकृदपि स्मरतां तव पापिनां व्रजति पाप चय क्षयमित्यहम्। प्रतिदिनं निपिवामि वचोऽमृतं रघुपते वद किंतद् पार्थकम्॥" (भक्तकल्पद्रुम)

'गुणगण' जैसे कि 'तेजराशि, प्रतापी, रणरोर, रामभक्तरक्षक, शरणागतवत्सल, महाबल' इत्यादि जो पूर्व कह आये हैं, एवं 'हाँक सुनत' इत्यादि जो आगे कह रहे हैं।

वैजनाथजी लिखते हैं, "बनमें कोल किरातादि हिंसक जीवोंको कील देते हैं जिससे वे बेबससे हो जाते हैं, अपना स्वभाव भूल जाते हैं। वैसेही आप सिंह हैं। क्या आपको कलीकालने कील दिया है जिससे आप अपना बल और बानि भूल गये? आपकी उदारता, दयालुता, वात्सल्य, सामर्थ्यपर छाप लगाकर मुहरबंद कर दिया कि ये काममें न लाये जावें!"

५ 'हांक सुनत दसकंध के भये बंधन ढीले' इति। हनुमान्‌जीको भृगु और अंगिरावंशीय ऋषियोंका शाप था कि जिस बलसे उन्मत्त होकर तू हमें कष्ट पहुँचाता है, वह तू बहुत कालतक भूला रहेगा। जब कोई तुझे तेरे बलका स्मरण करावेगा उसी समय तेरा बल बढ़ेगा।' (वाल्मी० उ०) पद २५ टि० ६ देखिये। इसीसे सीताशोधकेलिये सिंधुपार जानेकी समस्या आ पड़नेपर जाम्बवन्तजीने उनको उनके बलका स्मरण कराया था। वैसेही गोस्वामीजी यहां याद दिला रहे हैं कि एक दिन वह था कि आपकी ललकार सुनकर रावणके बंधन ढीले हो गये, उससे कुछ करते धरते न बना

जैसा कि लंकादहनसमय एवं लक्ष्मणजीको शक्ति लगनेपर उठानेके समय इत्यादि प्रसंगोंसे स्पष्ट है। यथा, "जारत प्रचारि फेरि फेरि सो निसंक लंक जहां बाँको बीर तोसो सूर सिरताज है।" "बडो बिकराल बेष सुनि सिंहनाद उठ्यो मेघनाद सविषाद कहै रावनो।" "गाज्यो कपि गाज ज्यों बिराज्यौ ज्वालजालजुत भाजे बीर धीर अकुलाइ उठ्यो रावनो। ढकनि ढकेलि पेलि सचिव चले लै ठेलि नाथ न चलैगो बल अनल भयावनो॥," "महाभटमुकुट दसकंध-साहस सैलशृंगबिद्दरनि जनु बज्र टाँकी। रजनिचर घरनि घर गर्भअर्भक श्रवत सुनत हनुमान की हाँक बाँकी।" (क० लं०); "कौनकी हाँक पर चौंक बीर बिरुदैत बर बैरि धाँके।," एवं "देखि पवनसुत धायेउ बोलत बचन कठोर।" "मुठिका एक ताहि कपि मारा। परेउ सैलु जनु बज्र प्रहारा॥ अस कहि कपि लछिमन कहं ल्यायो। देखि दसानन बिसमय पायउ॥" (लं०)

'हाँक सुनत' से जनाते हैं कि आप कैसे भारी निःशंक वीर हैं। आपकी ललकारमात्रकी यह धाक रावण ऐसे बाँके मानी वीरके हृदयमें जम गयी थी कि वह अकुला उठा, विषादयुक्त हो गया, उसका साहस टूट गया, तब आपके वास्तविक बल पुरुषार्थकी कोइ तुलनाही नहीं हो सकती।

६ (क) 'सो बल गयो कि धौं भये अब गर्व गहीले' इति। भाव कि बल रहते आप मेरी दुर्दशा कैसे देख सकते! 'प्रणतपाल' आपका विरद है। बल रहते आप अपना बाना न छोड़ देते। अतः अनुमान होता है कि आप बूढ़े हो गये हैं और आपके शरीरमें बल नहीं रह गया। अथवा, यदि बल है तो रक्षा न करनेका दूसरा कारण यह हो सकता है कि कलियुगका राज्य है। इससे कलिकालका प्रभाव आपपरभी पड़ा है। आपको अपने बलका इतना भारी मद हो गया है कि अब आप दीनदुखियोंकी पुकारकी पर्वा नहीं करते। सोचते होंगे कि क्या करना है? अब नाम तो अपना होही चुका! इसमें व्यंग्यार्थ वाच्यार्थके बराबर तुल्यप्रधान गुणीभूत व्यंग है।

(ख) 'हाँक सुनत' कहकर 'सो बल गयो' कहनेका भाव कि आपके सेवकको उसी बलका भरोसा है। क्योंकि यह विख्यात है कि 'सब

दिन रूरो परै पूरो जहां तहां ताहि जाके है भरोसो हिय हनुमान हांक को। ' मिलान कीजिये ' बुढ़ भये बलि मेरीही बार कि हारि परे बहुतै नतपाले। ' दोनोंमें बहुत कुछ भावसाम्य है।

(ग) ' अब ' अर्थात् कलियुगमें अथवा मेरी बारी आनेपर। भाव कि तब (त्रेतायुगमें) त्रेतायुगके प्रभावसे समर्थ थे, शीलवान् थे, बिरदकी लज्जा रखनेवाले थे और अब कलियुगमें कलिके प्रभावसे गर्व आ गया है।

७ ' सेवकको परदा फटै तू समरथ सीले ' इति। भाव कि समर्थशील स्वामीके विद्यमान् रहते उसके सेवककी इज्जत अब्रू कोई ले तो स्वामी और सेवक दोनोंकी नामोसी है, भद्द है, रुसवाई है। जैसे रावणके रहते उसका नगर जला डाला गया, अक्षयकुमार और प्रहस्त मारे गये, मन्दोदरी झोटा पकड़ घिस लायी गयी, इत्यादिसे रावणकी रुसवाई हुई, वैसेही आपके बल भरोसेपर मैं कलियुग एवं संसारके किसी प्राणीकोभी न डरता था, परन्तु अब मेरी लाज जाती है। सब कहेंगे कि हनुमान्के बल भरोसेपर बहुत बड़बड़ाते थे, इतराते थे, सो क्या कर लिया ? सारा जहान जानता है कि मुझपर तुम्हारी कृपा है। पर इस समय चुप साध लेनेसे सब जानेंगे कि अब वह कृपा नहीं रह गयी। सभी मेरी दुर्दशा करनेपर उतारू हो जायेंगे। अतएव अब शीघ्र आप मेरी रक्षा कर मुझे सनाथ कीजिये। यथा, " तुलसी के माथे पर हाथ फेरो कीसनाथ बूझिये न दास दुखी तोसे कनिगर के। " यही समर्थशीलता है और यही परदेका सी लेना है। यहाँ ललित अलंकार है। परदा सी लेनेसे फिर कोई हमारी तरफ आँख उठाकर न ताक सकेगा। हमारी प्रतिष्ठा बनी रह जायगी।

भावार्थान्तर—(क)"कलिकालरूपी राजाके भृत्य कामक्रोधादि परदारूप मेरे ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, क्षमा, करुणा आदिको फाड़ते हैं। अर्थात् कामादिके वेगका प्रहार कर ज्ञानादिको दूर कर मुझको जगत्का नाच नचाया चाहते हैं, सो ऐसा न होना चाहिये। इसका कारण आगे कहते हैं। " (कु० टी०)

(ख) "मेरे द्वारा श्रीरामनाम और रामयशका लोकमें प्रचार होनेसे मेरी मर्यादा बढ़ी है। सुधर्मे ज्ञानादिही मेरी वह मर्यादा है। कलियुग कामक्रोधादिको लगाकर इस मर्यादाको नष्ट करना चाहता है। यही परदाका फटना है। आप समर्थ हैं, सी सकते हैं। आपके सी लेनेसे कलियुग उसे पुनः न फाड़ सकेगा। भाव कि कलियुगको डाँट दीजिये और मुझपर कृपा बनाये रखिये जिसमें कामक्रोधादिका वेग न व्याप सके। यहाँ रक्षा धागा है, कृपा सुई है, परदा फटना मर्यादाका नष्ट होना है।"(वै०)

(ग) "अद्यावधि संसारमें ऐसा विख्यात था कि महावीरके आश्रित जनको संसारादिकी दुर्गति नहीं होती, शास्त्रमेंभी ऐसाही प्रकट है। अब उस यशको त्यागकर ऐसी ख्याती होगी कि महावीरके दासोंकी कलिकाल फ़ज़ीहत करता है और वे तमाशगीर होकर कौतुक देखते हैं।" अथवा, "व्यंग है कि जैसे मृतकपर दस खाँची मट्टी गिरी वैसेही दो खाँची और सही। वैसेही कलिकालरूपी राजाने कामादि अपने सेवकों-द्वारा नाना कष्ट देकर यश लियाही है, अब तुम खड़े तमाशा देखकर सुयश ले लो"। (हु०, टी०) इसीको "रामदासजीने इस प्रकार लिखा है कि, "मृतक तुलसीपर काल मजूरने कामादिरूपी मृत्तिका छोड़ दी है, आप तमाशा देखते हैं। अर्थात् दो खाँची आप अपनी ओर छोड़ दीजिये"। (हु०, बक्सर)

(घ) "मर्यादा जाती है। ऐसी दुर्दशा होनेसे कौन हमको रामदास कहेगा। इसे 'सी लो' अर्थात् मर्यादाकी रक्षा करो।" (पं० रा० कु०)

च० और हु० ने 'समरथसीले' को एक शब्द माना है और पं० रा० कु०, वीर, और वै० ने 'सी ले' को क्रिया माना है। भाव साम्यपर मिलान किजिये, 'चेरो तेरो तुलसी तू मेरो कह्यो रामदूत ढील तेरी बीर मोहि पीगते पिगति है।,' 'जानत जहानजन हनुमानको निवाज्यो मन अनुमानी बलि बोलि न बिसारिये। सेवा जोग तुलसी कबहुं कहूं चूक परी साहिब सुभाउ कपि साहिब सँभारिये॥', 'तो सो समत्थ सुसाहिब सेइ सहै तुलसी दुख दोष दवा से। बानर बाज बढ़े खल खेचर लीजत क्यों न लपेटि लवासे॥'

"देखी सुजस तुही ले" इति। इसमें लक्षणमूलक अगूढ़ व्यंग है कि इस मौकेको (अवसर) हाथसे न जाने दीजिये। 'सुजस तुही ले। तिहूं काल तिन्हको भलो।' पद्यार्थमेंही इसका भाव लिखा जा चुका है। और भाव यहां लिखे जाते हैं। १ सबसे विनंति करके हार चुका अब तुमसे विनंति करता हूँ। तुम्ही सुनकर रक्षा करनेका यश लो। रामभक्तोंकी रक्षा करना तुम्हारे योग्यही है। २ इस साँसतिके दूर करनेका कष्ट श्रीरघुनाथजीको क्यों दिया जाय जब कि आप सरीखे उनके 'पायक' हैं जो सब प्रकार समर्थ हैं और जो द्वारके भीतर प्रवेश करतेही प्रथमही मिल गये हैं! अतएव कलिसे मेरी रक्षा करनेका सुयश आपही क्यों न ले लें! यह सुयश दूसरोंको क्यों मिले? ३ जो रामानुरागी हैं उनका तीनों कालोंमें मंगल कल्याणही होता है। (हमारा कष्ट निवारण करके) यह सुयश तुम्ही ले लो। सेवकको अपने स्वामीका यश बढ़ाना चाहिये। मेरा दुःख दूर करनेसे तुम्हाराभी यश होगा और तुम्हारे स्वामीकाभी। नहीं तो सब इसके विपरीत यही आगे कहेंगे कि 'रामानुरागियोंका सदा अमंगल होता है।' (बु०) ४ किसीका मत है कि यहां 'सुयश' में व्यंग्यसे विपरीत अर्थ है। कष्ट देखकर तूही सुयश ले अर्थात् यह सुयश लो कि 'हनुमान्का सेवक होकर साँसति सह रहा है।' यदि कहो कि तुममें रामभक्ति नहीं है इससे कष्ट हो रहा है। तो इसमें आपका एहसानही क्या? राम प्रेम होगा तब तो श्रीरामजी स्वयंही कष्ट हरेंगे!'

भट्टजी लिखते हैं कि "गुसाईंजीके जीवनचरित्रमें लिखा है कि इनके अनेक सिद्धाईके काम सुनकर दिल्लीपति बादशाहने बुलाकर कहा कि हमेंभी चमत्कार दिखाओ। आपने उत्तर दिया कि मैं तो केवल रामनाम जानता हूँ, मेरे पास कोई चमत्कार नहीं है। यह सुनकर बादशाहने कहा कि हमें रामदर्शनही कराओ। इनकार करनेपर इनकी धृष्टता और अपना अपमान समझ उसने इन्हें जेलखानेमें बन्द कर दिया। उस समय यह पद बनाया था। इस भजनका दूसरा और चौथा पद बादशाहके पक्षमें लगता है।" प्रायः अन्य महानुभावोंका मत यह नहीं

है। कलिकालकी डांट फटकारके संबंधमें यह पद भी है। पंडित रामकुमारजी बाहुपीरका सम्बन्ध इन पदोंमें कहते हैं।

श्रीरामविनयावली सं० १६३१ और १६६६ के बीचमें किसी समयकी है। रामविनयावली कलियुगके कोपसे रक्षाके निमित्त लिखी गयी थी। मूलगुसाईं चरितसे दिल्लीपतिवाली घटना विनयके पश्चात्की है। हो सकता है कि गोस्वामीजीने इसी पदका पाठ वहाँ किया हो। श्रीप्रियादासजीनेभी भक्तमालकी भक्तिरसबोधिनीटीकामें इस घटनाकी चर्चा की है। कहा जाता है कि उस समयके इतिहासमें इस घटनाका उल्लेख नहीं है। मालूम नहीं क्यों?

३३

समरथ सुअन[1] समीरके रघुबीर पियारे।
मोपर कीबें[2] तोहिजो करि लेहि भिया रे॥ १॥
तेरी महिमा ते चलैं[3] चिंचिनी चिआ[4] रे।
अंधियारो[5] मेरी बार को[6] त्रिभुवन उँजियारे॥ २॥
केहि करनी जनु जानि कै सनमान किया रे।
केहि अघ औगुन आपनो करि डारि[7] दिया रे॥ ३॥
खाई खोंची मांगि मैं[8] तेरो[9] नामु लिया रे।
तेरे बल बलि आजु लौं[10] जग जागि जिया रे॥ ४॥

---

१ सुअन–रा०, ह०। सुवन—भा०, बे ज०, ७४। (पद १ देखिये।) २ कीबें—रा०। कीबे—ह०, ५१, ७४, मु०, डु०, बै०, दी०। कीबी—भा०, बे०, ज०, १५, भ०, बि०।३ चलैं—रा०, ह०, भा०, बे०, मु०, भ०, वि०। चलै—१५, बै०, दी०, ७४। चले—डु०, ज०।४ चियां-डु०, ह०, ७४। चिआ—रा०, ज०। चिंया—भा०, बे० भ०। चिंया-बे०, मु०, दी०, वि०। तुकांतके अनुसार 'चिया' उत्तम है। ५ अंधियारो-रा०, भा०, बे०, ह०, मु०, डु०, ७४, बि०, टी०। अँधियारे-भ०, दी०। अँधियारी—वै०। ६ कों—रा०, भा, बे०, प्र०, १५। को—ह०, ५१। क्यों—आ०, ७४। कै—ज०।७ छाड़ि—७४।८कै–ह०, ज०।के–१५। ९ तुव—७४। तव—मु०। १० लों—रा०, ज०। लौं—प्रायः औरोंमें।

जौं[11] तो सों होतो फिरो मेरो[12] हेतु हिया रे।
तौ[13] क्यों बदन देखावतो कहि बचन इया रे[14] ॥ ५ ॥
तो सो ज्ञाननिधान को सरवज्ञ बिया रे।
हौं[15] समुझत सांइ दोह[16] की गति छार छिया रे ॥ ६ ॥
तेरे स्वामी राम से[17] स्वामिनी सिया रे।
तहं तुलसी के[18] कौन को[19] काको तकिया रे ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—समीर = पवन। पियारे (प्यारे) = प्रिय, प्रेमपात्र। कीबें = करनेको। यथा, 'कीबे को बिसोक लोक लोकपाल हेतु सब कहूं कोऊ भो न चरवाहो कपिभालु को।', 'कीबे कहा पढ़िबे को कहा फल बूझि न बेदको भेद बिचारै।' (क० उ०) भिया (भैया) = भाई, भ्राता। चिंचिनी चिंया = [चिंचिनी (सं० तिंतिड़ी = पेड़ वा फल) + चिया (सं० चिंचा = बीज)] इमलीका बीज। चलै=सिक्केकी तरह (हीरा, जवाहिर, सोना इत्यादिके मोलभावमें) चलता है। कों = के लिये। आपनो करि = अपनाकर; अपना दास बना या स्वीकार करके। डारि दिया = डाल दिया, परित्याग किया; खोज खबर न ली; भुला दिया। यह मुहावरा है। खोंची = वह थोड़ा अन्न, फल, तरकारी आदि जो दूकानदार मंडी या बाजारमें छोटी छोटी

११ जो–रा०, ह०, ज०, मु०, दी०, वै०, भ०। जौं–७४। जौ–भा०, बे०, डु०। १२ मम–मु०, ७४। १३ तौ–बे०, ह०, डु०, वै०, भ०, भा०, वी०। तो–रा०, ज०। १४ हिया–प्र०, ह०। १५ हों–रा०, मु०, भा०, बे०, डु०, भ०। हौं–प्रायः औरोंमें। ७४ में नहीं है। १६ सांइदोह–रा०। सांइद्रोह–भा०, बे०, ज०, मु०। साईंद्रोह–दी०। साईंद्रोह–भ०, डु०, वै०, ७४, वि०। १७ सो–रा० भा० बे०, प्र०, ज०। से–ह०, ५१, ७४, आ०। १८ के कोन–रा०। के कौन–बे०, ५१, डु०, टी०, भ०, मु०, वि०। कहँ कौन–भा०, बे०, (कहँ पर 'को' बनाया है), ह०, ७४। कह कौन–दी०। को कौन–वै०। १९ की–भा, बे०। को–प्रायः औरोंमें।

सेवाएँ करनेवाले या भिखमंगोंको दिया करते हैं, उतना अन्न वा भिक्षा जो एक मुट्ठीमें आ जाय। चुटकी, मुठिया। जागि = प्रतिष्ठापूर्वक; प्रसिद्ध होकर। पद २ 'बेद पुरान प्रगट जसु जागै देखियो'। हो तो फिरो = फिरा होता। 'फिर जाना' मुहावरा है जिसका अर्थ है पलट जाना, बदल जाना, मनका उचट वा हट जाना, विपरीत या क्रुद्ध हो जाना। हेतु = प्रेम। यथा, 'हरषे हेतु हेरि हर ही को। किय भूषन तिय भूषन तीको।' (बा०) हिया (हिय) = हृदय। इया=ऐसे, इतने, (पं० रामबल्लभाशरण) यहां (दी०)। बिया=दूसरा। यह प्रान्तिक प्रयोग है। केवल पद्यमें आता है। (सं० द्वि) गति = अंतिम फल या दशा, परिणाम। छार (क्षार) = राख, भस्म, धूल। यथा, 'गति तुलसीस की लखै न कोऊ जो करति पब्बै ते छार छार पब्बै सोउ पलकही।', 'तुरतहि काम भयेउ जरि छारा' (बा०) छिया = जिसे देख लोग छी छी करें अर्थात् घृणा प्रकट करें, घिनौनी वस्तु, मल, विष्ठा।

पद्यार्थ—हे पवनके समर्थ पुत्र! हे रघुवीरके प्यारे! मुझपर जो कुछ तुझे करनेको हो सो अरे भैया! (तूभी) कर ले। १। तेरे प्रभावसे इमलीकी चियाँभी (चाँदी, सोने, तांबे, पीतल इत्यादिके सिक्कोंकी तरह बहुमूल्य सिक्का होकर) चल सकती हैं। तीनों लोकोंमें तो उजाले अर्थात् प्रकाशरूप और मेरी दफ़ाको (मेरी बारी आनेपर) अँधेरा? अर्थात् तुम सारे जगत्के क्लेश हरण करनेवाले हो और हमारा क्लेश हरण करनेकी बारी आयी तब चुप साध ली, यह बड़े आश्चर्य एवं दुःखकी बात है!। २। अरे! मेरी किस करनीसे मुझे दास जानकर मेरा सम्मान किया था और अब किस अघ अवगुणसे मुझे अपनाकर परित्याग कर (गोदसे ज़मीनपर गिरा) दिया?। ३। मैंने तेरा नाम लिया और खोंची माँगकर खायी। (अर्थात् भिक्षा पाकर पेट भरता था और तेरा नाम लिया करता था।) तेरे बलकी बलिहारी जाता हूँ। तेरेही सहारे आजतक जगत्में प्रतिष्ठापूर्वक जीता रहा (जीवनके दिन सुखपूर्वक बिताये)। ४। जो तुमसे मेरा प्रेम, मेरा हृदय, फिर गया

होता तो ऐसा बचन कहकर तुम्हें मुँह क्यों दिखाता ? (अर्थात् तुमसे सहायताकेलिये प्रार्थना क्यों करता ? दूसरे स्वामीके पास न चला गया होता ?) । ५ ।* (यदि कहो कि तुम झूठ कहते हो तो उत्तर देते हैं कि) अरे ! तुझसा ज्ञाननिधान और सर्वज्ञ दूसरा कौन है ? अर्थात् झूठ कहूंगा तो आपसे छिपा थोड़ेही रह सकता है । (उसपरभी) मैं स्वामि-द्रोहताकी गति स्वयं समझता हूँ कि भस्म और विष्ठा है (अर्थात् जलकर भस्म हो जाना और लोकमें छी छी होना, यही स्वामीसे द्रोह करनेका फल वा परिणाम है । सो मैं ' छार छिया ' होना कब चाहूँगा जो आपसे द्रोह करूँ ? बस इसीसे समझ लीजिये कि मैं साईंद्रोही नहीं हूँ, आर्तिवश मैंने कड़वे बचन कहे हैं ।) । ६ । अरे ! राम सरीखे तो तेरे स्वामी हैं और श्रीसीताजी स्वामिनी हैं, वहाँ तुलसीदासका कौन है ? (भला) कौन किसका सहारा है ? अर्थात् कोई किसीका सहारा नहीं, सई सिफ़ारश करनेवाला नहीं है और मेरेलिये तो निश्चयही उस दरबारमें आपके सिवा कोई वसीला नहीं है । ७ ।

टिप्पणी—१ (क) 'समरथ सुअन समीर के ' इति । भाव कि पवनपुत्र और श्रीरघुवीरके प्रेमपात्र होनेसे तुम्हारा सामर्थ्य सबको विदित है । यथा 'पवनतनय बल पवन समाना ।' और सीताशोध आदि अनेक उपकारके कर्म करनेसेही तुम श्रीरघुवीरके प्यारे हुए। यथा "सुनु कपि तोहि समान उपकारी । नहि कोउ सुर नर मुनि तनुधारी ॥ प्रति उपकार करउँ का तोरा । सनमुख होई न सकत मन मोरा ॥ कपि उठाई प्रभु हृदय लगावा ॥" (सुं०) ऐसे समर्थ और परोपकारी होकर

---

*अर्थान्तर—वै० वि० ने 'हेतु' का अर्थ 'कारण' लिखा है और यों अर्थ किया है, १ "जो मैं तुमसे मुँह फेर लेता तो मेरा हृदय उसमें कारण होता, गवाही देता और आपसके दोस्तोंकीसी भली बुरी बात कहकर तुम्हारे आगे क्यों अपना मुँह दिखाता ? " (वि०) २ "यदि मेरा हृदय कारण मात्र आपसे फिरा होता, कारणमात्र मेरा हृदय विमुख होता तो यारकेसे ढीठ बचन कहकर मुँह न दिखाता।" (वै०) ३ (जो कहें कि

उचित तो यही था कि मेरा उपकार करते, मेरा संकट दूर करते। खैर!

(ख) 'रघुबीर पियारे' इति। 'रघुबीर' शब्दसे श्रीलक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नजीकाभी ग्रहण हो सकता है। सीताशोधसे श्रीहनुमानजी श्रीलक्ष्मणजीकोभी प्राणप्रिय हो गये थे। यथा, 'सीय सोच समन दुरित दोष दमन सरन आए अवन लखन प्रिय प्रान सो।' (बाहुक) लंकाविजयकी खबर देकर हनुमान्‌जी भरतजीको प्राणप्रिय हुए और वीरमणिके युद्धमें शंकरद्वारा मारे जानेपर शत्रुघ्नजीको जिलाकर वे उनके प्राणप्रिय हुए। इसतरह भाव यह हुआ कि सबके संकटमें काम आनेसे इन सबोंके प्रिय हुए। परन्तु 'रघुबीर' शब्द प्रायः श्रीरामजीकेलिये रूढसा हो गया है और यहांभी विशेषकर उन्हींकेलिये यह शब्द प्रयुक्त हुआ है। 'रघुबीर पियारे' का भाव कि पंचवीरतायुक्त जो श्रीरघुनाथजी हैं उनके प्रिय होनेसे यह निश्चय है कि आपभी वीर हैं। ऐसे 'साहसी समीर के दुलारे रघुबीरजू के' प्यारे होते हुएभी हमारा दुःख नहीं हरते?

(ग) 'मोपर कीबें तोहि जो करि लेहि' इति। भाव कि आप कृपा करते नहीं। क्लेश हमसे अब सहा जाता नहीं और हमारी दुर्दशा करानाही आपको प्रिय लगता है। यथा "साँसति सहत दास कीजे पेखि परिहास। चीरी को मरन खेल बालकनि को सो है।" (बाहुक) अतएव मरना तो अब हैही। तुमभी कुछ उठा न रक्खो। जो क्लेश और पहुँचाना हो सो भरसक तुमभी पहुँचा लों। हमतो मरतेही हैं। तुमभी हाथ चला लो। हमें मार डालो। यह मुहावरा है। तुम्हेंभी जो करना हो कर लो, अरमान न रह जाय। अत्यन्त कष्टमें खीझसे ये शब्द निकलते हैं। समर्थ शरणपालका शरणागतकी रक्षा न करना उसे मारनेके समान

पहले तेरी प्रीति हममें थी अब नहीं है तो) मेरा प्रेम, मेरा मन विमुख हो गया, तुम होते तो मैं क्यों मुँह दिखाता और क्यों ऐसी बुरी भली बातें सुनाता? (भ०) डु०, वै० और वीर, ने 'इयारे' को एक शब्द मानकर "यार वा मित्रकेसे मीठे" अर्थ किया है। वि० ने 'इया' का अर्थ 'यार, मित्र' लिखा है। दिनजीने 'इया' का अर्थ 'यहाँ' 'ऐसा' किया है।

है। 'जौ सभीत आवा सरनाई। रखिहौं ताहि प्रान की नाईं॥' यह शरणागतपालकका धर्म है।

चरखारी टीकाकार और वीर कविजी यह भावार्थ लिखते हैं, "जो तुमको मेरी सहायता (मुझपर अनुग्रह) करनी हो तो हे भैया! कर लो। अब इससे बढ़कर संकट कौन आवेगा!" परन्तु यहाँ गोसाईंजी फरियाद (पुकार) की दाद न पानेसे खीझकर ये सब बचन कह रहे हैं। इसलिये मेरी समझमें यह अर्थ विशेष संगत नहीं है।

२ 'तेरी महिमा ते चलैं चिंचिनी चिआ' इति। (क) यदि कहो कि तुम्हारे कष्टनिवारणका सामर्थ्य हममें नहीं है तो यह बात प्रतीत करनेकी नहीं है। क्योंकि आपकी महिमा यह है कि 'चलैं चिंचिनी'। इमलीके बीज जवाहरोंके मोल चल जाते हैं। मंद जीव चियांके समान तुच्छ हैं सो आपकी कृपासे जवाहररूप भगवद्भक्त हो जाते हैं, जिन्हें भगवान्‌रूपी जाहरी ग्रहण करते हैं। भाव कि यदि आप मुझपर कृपा करें तो मुझेभी भगवान् अपना लेंगे। अपने प्रभावसे रावणादिका वध कराके आपने तीनों लोकोंमें चन्द्रवत् शीतल प्रकाश किया तब मेरी बारी आनेपर अमावस्याकी रात्रिके समान अँधेरे होते हो! अर्थात् कलियुगकृत दुर्गति देखकर आँखें बंद कर लेते हो!' (भट्टजीनेभी यही भाव लिखा है।)

(ख) 'इमलीका बिया रुपया, अशर्फ़ी और रत्नके भावपर चलता है। सुकर्मी रुपया है, ज्ञानी अशर्फ़ी है और भक्त रत्न है। आपकी कृपासे साधन पुरुषार्थहीन लघु जीव सुधर्मी, ज्ञानी और भक्त हो जाते हैं। यह प्रभाव त्रैलोक्यमें सूर्यप्रभावत् प्रकाशित है। (वै०)

(ग) "चिंचिनी सूर्य रश्मयः" रहस्य-शब्दार्णवके प्रमाणसे यह अर्थ हुआ कि तुम्हारी महिमारूपी सूर्यकिरण प्रकाश किये रहती है। सो त्रिभुवनमें उजाला हो रहा है। एक किरण अँधियारी पड़ गयी यह आश्चर्य है। अथवा, जब सूर्यको ग्रास लिया था तब आपकी महिमासे त्रिभुवनमें उजाला हो गया और फिर तुम्हारीही कृपासे सूर्यका अविर्भाव

हुआ। यह आपकी महिमा हमारे अँधियारेपनको अर्थात् मोहादि अज्ञानको नहीं नाश करती, यह आश्चर्य है। भाव यह कि कलिको देखकर मेरी ओरसे आँख क्यों बंद करते हो? श्रीरामदासजी (बक्सर) [चिंचिनीका अर्थ सूर्यकिरण लिया है पर आपने 'चिंया'का अर्थ नहीं किया है। 'महिमाते चलैं चिंचिनी' का अर्थ महिमारूपी सूर्यकिरण कैसे हुआ?]

(घ) "इमलीके बीज अर्थात् जड़ पदार्थ जो तुच्छ हैं वहभी आपकी महिमासे चलने लगते है अर्थात् चैतन्य हो जाते हैं।" (चरखारी) मिलान कीजिये, '**जो चेतन कहं जड़ करै जड़हि करै चैतन्य। अस समर्थ रघुनायकहिं भजहिं जीव ते धन्य॥**'

'यहाँ कहना तो यह है कि सुग्रीव, बिभीषण इमलीके चिंयाकी तरह मारे मारे फिरते थे सो बहुमूल्य हुए अर्थात् उन्होंने राजपद पाया। आप दीनकी पुकार सुनतेही सहायता करनेवाले हैं, मेरी बार इतना बिलंब क्यों करते हैं? इसे घुमाकर कहनेसे 'ललित अलंकार' है और व्यंगार्थके द्वितीय विषम अलंकारकी ध्वनि है।' (वीरकवि) (ङ)

यहां गोस्वामीजी अपनेको चिंयाँसमान तुच्छ कहते हैं। चिंयाँ बेमोलकी चीज़ है। प्रायः इसे लोग फेंक देते हैं। आपका प्रताप ऐसा है कि चिंयाँसी तुच्छ, फेंक दी जानेवाली वस्तुभी बहुमूल्य सिक्केकी तरह चलती है। आप चाहे तो मेरा क्लेश दूर करके त्रैलोक्यमें मेरा सिक्का जमा दें, मेरी धाक बँध जाय।

३ 'अँधियारो मेरी बार कों त्रिभुवन उजियारे' इति। भाव कि आपका बाँका बिरद, निर्मल कीर्ति जगत्में जगमगा रही है। पर मेरी बार आपका वह प्रताप सूर्य न जानें क्यों अस्त हो गया है! यथा, '**दूत राम राय को सपूत पूत बायको समत्थ हाथ पायको सहाय असहाय को। बाँकी बिरुदावली बिदित बेद गाइयत रावन सो भट भयो मुठिका के घाय को॥ एते बड़े साहिब समत्थको निवाजो आजु सीदत सुसेवक बचन मन काय को। थोरी बाहु पीर की बड़ी गलानि तुलसीको कौन पाप कोप लोप प्रगट प्रभाय को॥**' (बाहुक)

पद २५ और २६ में चन्द्रमा और सूर्यका रूपक बाँधकर श्रीहनुमान्-जीकी विनय की गयी। सूर्य और चन्द्रमाका प्रकाश संसारमें होता है। वैसेही हंस हनुमानका प्रताप प्रकाश और चंद्र हनुमान्की कीर्ति चाँदनी त्रैलोक्यमें छा रही है। 'त्रिभुवन उँजियारे' इति। यथा, '**मोह मद कोह कामादि खल संकुला घोर संसार निसि किरनमाली॥ जयति लसदंजनादितिज कपि केसरी कस्यप प्रभव जगदार्तिहारी। लोक लोकप कोक कोकनद सोकहर हंस हनुमान कल्यानकारी॥** (२६) आशय यह है कि संसारमात्रका आपने शोक संकट दूर किया। सबका कल्याण किया। तब मेरा संकट क्यों नहीं हरते?

कलिकालद्वारा उपस्थित हुए शोक संकट आदिका न हरण करना, मेरे सताये जानेकी किंचित् पर्वा न करना, कलिको दंड देनेमें अपनी असमर्थता दिखाना, खड़े तमाशा देखना इत्यादि सब भाव 'अँधियारो मेरी बार कों' में आ जाते हैं। यथा, '**कलि आयेउ राति कृपान लिये। मुनि कहँ बहु भाँति सो त्रास दिये॥ मुनि ध्यान धरेउ हरि हेतु तबै॥ हनुमंत कहेउ कलि ना मनिहै। मोहि बरजत बैर महा करिहै॥**' (मूल गुसाईं चरित) इसीकी ओर कविका संकेत है। कलिजनित पापसंतापको तम कहा है। यथा, '**काल कलि पाप संताप संकुल सदा प्रनत तुलसीदास तात माता।**' (२८) '**पाप ताप तिमिर तुहिन बिघटन पटु सेवक सरोरुह सुखद भानु भोर को।**' (बाहुक)

४ (क) 'केहि करनी जनु जानिकै सनमान किया' इति। भाव कि मुझमें पहलेभी कोई गुण या सुकृत न थे जिनपर आप रीझते। आपने अपनी अनिर्हेतुकीय कृपाकाही परिचय मुझे अपनाकर दिया है। यथा, '**बालक बिलोकी बलि बारे ते आपनो कियो दिनबंधु दया कीन्ही निरुपाधि न्यारियै।**' (बाहुक)

(ख) 'केहि अघ अवगुन आपनो करि डारि दिया।' इति। भाव कि अघी अवगुणी तो अपनानेके पूर्वभी था, वैसाही अबभी हूँ। मैं तो जैसा पूर्व था वैसाही अबभी हूँ। तब बताइये तो सही कि पूर्व क्या

जानकर अपनाया था और अब क्या जानकर परित्याग किया ? अथवा, आपने 'जो जेहि भाव नीक तेहि सोई' इस लोकोक्तिके प्रतिकूल अपना स्वभाव क्यों बदल दिया ? स्वामीका कर्तव्य यह नहीं है कि एक बार अपना लें, फिर अपनाये हुएको त्याग दें ! यथा, 'सरनागत कहुं जे तजहिं निज अनहित अनुमानि । ते नर पामर पापमय तिन्हहिं बिलोकत हानि ॥' (सुं०) अभिप्राय यह है कि आप अपनी वही कारणरहित कृपालुता, करुणामय स्वभाव और दीनबंधुताको स्मरण कर मुझपर कृपा कीजिये, मुझे अभयदान दीजिये । यथा, 'टूकनि को घर घर डोलत कँगाल बोलि बाल ज्यों कृपाल नतपाल पालि पोसो है । कीन्ही है सँभार सार अंजनीकुमार बीर आपनो बिसारिहैं न मेरेहू भरोसो है ॥ (बाहुक) मिलान कीजिये "जानत जहान जन हनुमान को निवाजो मन अनुमानी बलि बोलि न बिसारिये । सेवा जोग तुलसी कबहुँ कहूँ चूक परी साहिब सुभाउ कपि साहिब सँभारिये ॥ " पुनः, अघ पूछनेका दूसरा भाव कि दोष जान लेनेसे फिर वह अपराध पुनः न होने पावेगा ।

(ग) परित्याग करनेका कोई कारण विशेष जान नहीं पड़ता । इस बातके प्रमाणमें आगे अपना जीवन व्यापार बताते हैं, 'खाई खोंची' अर्थात् नाम लेकर भिक्षा माँग खाना और नामही जपना, यही प्रतिदिनकी चर्या है । नामबलसेही जगत्में प्रसिद्धि हुई । सब जानते हैं कि आपकी मुझपर कृपा है । जो जो प्रतिज्ञाएँ मैंने कीं वह सब आपकी कृपासे पूरी पड़ीं । पुनः, 'खाई खोंची मांगि मैं तेरो नाम लिया रे ।' का भाव कि भीख माँग कर शरीरकी रक्षा करता था और तुम्हारा नाम लेता था । मैंने कभी कोई शरीरसंबंधी वस्तु आपसे नहीं माँगी, निष्काम उपासना करता रहा । भाव कि तेरा गुलाम प्रसिद्ध हूँ क्योंकि तेराही नाम लेकर चुटकी माँग खाता था । 'तेरो नाम लिया रे' में यहभी भाव है कि अन्य देवी देवादिकी उपासना मैंने नहीं की । आपकाही अनन्य सेवक हूँ । स्मरण रहे कि ऐसाही शिवजीसेभी कहा था । यथा, 'गाँव बसत बामदेव मैं कबहूं न निहोरे । अधिभौतिक बाधा भई ते किंकर तेरे' ॥ (८)

५ (क) 'तेरे बल बलि आजु लों जग जागि जियारे' इति। (क) 'तेरे बल' इति। यथा, 'लोक परलोक ते बिसोकि सपने न सोक तुलसीके हिये है भरोसो एक और को। रामको दुलारो दास बामदेव को निवास नाम कलि कामतरु केसरी किसोरको॥' (बाहुक)

(ख) वह बल कौन है ? वही जो ऊपर बता आये । अर्थात् हुंकारमात्र सुनकर रावणके अंजरपंजर ढीले हो जाते थे। उस हुंकारका बल, जिस बलसे श्रीरामचन्द्रजीने सब देवकार्य किया और बिभीषणको लंकाका राज्य दिया, उसी बलका भरोसा हमकोभी है।

(ग) तेरे बल आजतक जीवित रहा। कथनका भाव यह है कि मुझे सदा तुम्हारीही गति रही है और अबभी तुम्हाराही भरोसा है। आप अपने बलको स्मरण कीजिये और हमारे कष्टको निवारण कीजिये। यथा, " उथपे थपन थिर थपे उथपनहार केसरीकुमार बल आपनो सँभारियै। रामके गुलामनि को कामतरु रामदूत मोसे दीन दूबरे को तकिया तिहारियै॥ साहिब समत्थ तोसो तुलसी के माथे पर सोऊ अपराध बिनु बीर बाँधि मारियै। पोखरी बिसाल बाहु बलि बारिचर पीर मकरी ज्यों पकरी कै बदन बिदारियै॥" (बाहुक) " रावरो भरोसो तुलसीको रावरोई बल आस रावरीयै दास रावरो बिचारियै।" " पाप ते साप ते ताप तिहूं ते सदा तुलसी कहं सो रखवारो। "

(घ) 'बलि' इति। यह शब्द देकर अपने मनकी बात जनायी कि जो कठोर वचन कये गये, जो तू, तैं, तेरे, रे आदि शब्दोंसे संबोधन किया वह केवल आर्त्त होनेसे। नहीं तो अंतःकरणसे तो मैं तुम्हारी बलैयाँ लेता हूँ। मुझे विमुख न जानिये। (डु०, वै०)

(ङ) ' जग जागि जिया रे' इति। अर्थात् प्रसिद्ध होकर, मान प्रतिष्ठा और नामवरीके साथ जीवन बीताया। यथा ' होहुं कहावत सब कहत राम सहत उपहास।' (बा०), ' जानत जहान जल हनुमानको निवाजो हौं सरनाम गुलाम राम को '। इत्यादि।

मुर्दे को जिला देने, हत्यारेकी हत्या छुड़ाने, लड़कीको लड़का बना देने इत्यादिसे श्रीमद्गोस्वामीजी जगत्मात्रमें प्रसिद्ध हो रहे थे।

६ 'जो तोसो होतो फिरो मेरो हेतु हिया रे।' इति। (क) पूर्व कड़वे वचन कहे। अब, पुनः चेतकर कि अरे, स्वामीको हमने क्या कह डाला, क्षमाहेतु उस कथनका समाधान करते हैं। (ख) 'तो क्यों बदन देखावतो' इति। भाव कि धृष्ठताके बचन कह कर बिनती करता गया पर आपको छोड़ अन्यत्र न गया। इससे निश्चय जान लीजिये कि मेरा हृदय और मेरा प्रेम वा मेरा हार्दिक प्रेम आपसे नहीं हटा और न स्वप्नमेंभी मुझे दूसरेका भरोसा है। कटु वचनोंसे विमुखताका अर्थ न लगा लीजिये। अति कष्टके कारण ऐसे कठोर और कटुवचन मुंहसे निकल गये।

७ 'साइंदोह की गति छार छिया रे' इति। अपने स्वामीसे द्रोह करनेसे 'छार छिया' वाली गति होती है। स्वामिद्रोहीको क्षार और विष्ठाका नरक प्राप्त होता है। यथा भागवते "अथ च यस्त्विहवा **आत्मसंभानेवनेन स्वयमधमो जन्म तपो विद्याचार वर्णाश्रमवतो वरीयसो न बहु मन्येत स मृतक एव मृत्वा क्षारकर्दमे निरयेऽवाक् शिरा निपातितो दुरंता यातना ह्यश्नुते।"**

८ 'तेरे स्वामी रामसे स्वामिनी सिया रे।' इति। भाव कि ऐसे बड़े आपके स्वामी और स्वामिनी हैं। वहां तक विना बड़े वसीलेके किसीकी पहुँच कैसे हो सकती है? मैंभी उन्हींको अपना स्वामी और स्वामिनी मान चुका हूँ और आपकोही वसीला मानता हूँ। यथा, **'साहिब कहूँ न राम से तोसे न उसीले।'** (३२) क्योंकि वे आपपर सदा सानुकूल रहते हैं। यथा **'रामगुलाम तुही हनुमान गुसाइं सदा अनुकूलो'** (बाहुक) **'सानुकूल कोसलपति रहहु समेत अनंत।'** (लं०)। पुनः, दोनों आपको पुत्रवत् मानते हैं। यथा, **सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं'** (श्रीरामवाक्य), **'सुनु सुत सदगुन सकल तव हृदय बसहु हनुमंत।'** (लं०), **'अजर अमर गुननिधि सुत होहू।'** अतएव वे आपकी बात कभी नहीं टालते। ऐसा वसीला और कोई नहीं, ऐसा ममत्व श्रीसीता-

रामजीका कीसीपर नहीं। तब भला यदि आपही मुझे त्याग देंगे तो मैं कहींकाभी न रहूँगा। वहांतक मैं कब पहुँच सकता हूँ ?

९ 'तुलसी के कौन को काको ताकिया रे' इति। यहांपरभी जितनी टीकाएँ उतनेही अर्थ हैं। मेरी समझमें अन्वय सीधा और सरल है, 'तुलसीके कौन ? को काको ?'

अर्थान्तर—१ "तहां तुलसीके कौन अर्थात् दूसरा कौन है ? को अर्थात् कौन पूछे ? एक तुमको छोड़कर काको अर्थात् किसका आसरा है ?" (डु०) २ "तुलसीके कौन स्वामिनी है और दूसरा 'को' स्वामी है ? अर्थात् जानकीजीही मेरी स्वामिनी हैं और श्रीरघुनाथजी मेरे स्वामी हैं। और उनकी शरणमें पहुँचानेवाला इस दरबारमें किसका भरोसा है ?" (वै०) ३ "वहां तुलसीके 'कौनको' अर्थात् कौन पदार्थका और 'काको' अर्थात् किस पुरुषका आश्रय है।' वा, स्वामी स्वामिनी कह आये इससे 'कौन' और 'काको' यथासंख्यसे लगाकर अर्थ कर लें।" (पं० रा० कु०) ४ "तहां आपही कहो कि तुलसी कौन है, किसका है और किसको तकके रहे अर्थात् किसका सहारा पकड़े।" (च०) ५ "वहांतक पहुँचनेकेलिये यह बतला दो कि तुलसी किसका है और किसका सहारा रखता है। अर्थात् रामके दरबारतक पहुँचानेमें तूही समर्थ है, तुलसी तेरा दास है और तेराही आसरा रखता है। अतः नहीं-नहीं न कर, दरबारतक पहुँचा दे।" (दी०) ६ "वहां तुलसीको कौन पूछता है और उसका कौन है और उसको किसका सहारा है ?" (भ०) ७ "तुलसीकी खबर करनेवाला कौन है और उसको किसका सहारा है" ? (वीर) ८ "तुलसीदासका और कौन बैठा है, उसे और किसका सहारा है ?" (वि०) वीरने 'को' का अर्थही छोड़ दिया है।

३४

अति आरत अति स्वारथी अति दीन दुखारी।
इन्ह को बिलग न मानिये बोलहिं न बिचारी ॥१॥
लोक रीति देखी सुनी व्याकुल नर नारी।
अति बरषे अनबरषेहूं[1] देहिं दैवहिं गारी ॥२॥

---

१ अनबरषेहुँ—रा०, इ०, मु०, वे०, डु०, ५१, दी०, वि०,७४।

नाकहि आयें[2] नाथ सों सासति[3] भयें भारी।
कहि आयो[4] कीबी छमा निज ओर निहारी ॥३॥
समय सांकरे सुमिरिये समरथ हितकारी।
सो सब विधि ऊपर[5] करै अपराध बिसारी ॥४॥
बिगरी सेवक की सदा साहिबहि[6] सुधारी।
तुलसी पर तेरी कृपा निरुपाधि निनारी[7] ॥५॥

शब्दार्थ—अति = जो सीमा या हदसे बाहर हो गया हो; जिससे अधिक न हो सके। आरत (आर्त्त) = चोट खाया हुआ, व्याकुल, पीड़ित। स्वारथी = स्वार्थपरायण, मतलबी, खुदग़रज। बिलग = द्वेष या और कोई बुरा भाव, रंज, दुःख, बुरा। यथा, 'स्वामिनि अबिनय छमबि हमारी। बिलगु न मानब जानि गँवारी ॥' (अ०), 'देवि करउँ कछु बिनय सो बिलगु न मानव।' इन्हको = इनके वचनोंका, इनके कहनेका, इनका। अनबरषेहूँ = बिना वर्षाभी; वर्षा न होनेपरभी; अवर्षण होनेपरभी। दैव = विधाता, ईश्वर। यथा, 'दैव दैव आलसी पुकारा' (सुं०) नाकहि आयें = 'हो आयउँ नकवानी' पद ५ देखिये। सों = सौगंध, क़सम, शपथ। सांकरे (सं० संकीर्ण) = तंग, कष्टमय, दुःखमय, संकटके। ऊपर

अनबरषेउ—भा०, बे०। अनबरषेउं—भ०। अनबरषेहु–ज०। २ आयें–रा०। आये–ह०, भा, बे०, ('उ' बढ़ाया गया है), आ० (भ०)। आयो–भ०।३ सों भये–रा०। सों भये–५१। सो भय–मु०, भ०, दी०, वि०, बे० (बै०),। सो भय–डु०। सो भये सांसति—भा०, बे०। सो भय सांसति–ह०, १५। सो भई–ज०। सों भइ—७४। ४ आयो–रा०, ह०, आ०, ७४। आये भा०, बे०। ५ ऊपर करै—रा० भा०, ह०, ५१, आ० (वि०, मु०)। उपकार करै—भा० (मूलमें) प्र०, १५। ७४, मु० में 'कर' है। ऊबर—वि०। ६ साहिब—रा०। ७ निनारी—रा०, भा०, बे०, ह०, ५१, वै० (टीकामें)। निरारी—७४, आ० (वै०)। निआरी–१५। निहारी—ज०। डु० में 'निनारी' है पर टीकामें 'निरारी' है। अतः उसका मूल 'निनारी' ही होगा।

करना = उपर बाँत खींचना, तरफ़दारी करना। (दी०) क्लेशसे निकाल लेना (डु०)। उँचा कर देना। सब विधि ऊपर करै = सब विधान (जैसा शास्त्रोंमें कहा हैं, सब उपाय) बढ़ चढ़कर करता है। निरुपाधि = निर्विघ्न, एकरस। निनारी (प्रा० निन्निअड़, निन्नियर। हिंदी० निन्यार, निनर) = न्यारी, विलक्षण।

पद्यार्थ—जो अति आर्त्त हैं (अर्थात् जिनके हृदय कष्टसे अत्यन्त चुटियल हो गये हैं।) जो अत्यन्त स्वार्थी (अर्थात् स्वार्थान्ध) हैं और अत्यंत दीन दुखी (अर्थात् महादरिद्र, कंगाल, पापफलभोग व्याधि आदिसे दुखी) हैं, उन का (के वचनों) बुरा न मानना चाहिये। * (क्योंकि) ये विचारकर नहीं बोलते। १। लोकमें यह रीति देखी सुनी जाती है कि अत्यंत बर्षा होनेपर और बिल्कुल वर्षा न होनेपरभी (अर्थात् दोनों हालतोंमें) व्याकुल स्त्री पुरुष दैवहीको गालियाँ देते हैं। २। नाथकी शापथ! अर्थात् आपकी सौगंध खाकर सत्य कहता हूँ। भारी संकट पड़नेसे नाकों दम आ जानेपर (जो अनुचित) कह डाला है § उसे अपनी ओर देखकर क्षमा कीजिये। ३। संकटके समय समर्थ हितकारीका स्मरण किया जाता है। वह (समर्थ स्वामी) अपराधोंको भुलाकर सब प्रकार (विशेष कृपा करके) संकटसे निकाल लेता है।४। सेवककी बिगड़ी हुईको सदा स्वामीहीने सुधारा है और तुलसीदासपर तो आपकी उपाधीरहित न्यारीही कृपा है।५। (पूर्व जो कठोर बचन कहे हैं उन्हींकेलिये क्षमाप्रार्थी हैं।)

---

*अर्थान्तर—१ इनके कथनको सुनकर महात्मा भेद अर्थात् उद्वेग नहीं मानते। (डु०) २ इनको अपनेसे भिन्न कर न मानिये। अर्थात् कुवचन सुन विमुख न मान लेना चाहिये। (वै०)। ३ इनकी भिन्नता न माननी चाहिये। (वीर)

§अर्थान्तर—१ ऐसी भारी साँसति हुई कि नाथसे कहते कहते नाकपर दम आ गया। (पं० रा० कु०) २ भारी साँसति होनेसे नाथसे 'ना कहि आये' अर्थात् कह न आया, कहते न बना। (रामायणीजी) ३ प्रायः आधुनिक टीकाकारोंने 'नाथ सों' का अन्वय दूसरे चरणके 'कहि आयो' के साथ किया है।

टिप्पणी—१ ' अति आरत अति स्वारथी अति दीन दुखारी। ' इति। (क) आर्त्त, स्वार्थी, दीन और दुखियोंके चित्त आर्त्ति, स्वार्थ, दीनता और संकटवश होनेसे विचारशक्तिविहीन हो जाते हैं, चित्तमें चेत रहही नहीं जाता। उन्हें तो यह पड़ जाती है कि हमारा संकट कैसे दूर हो, हमारा स्वार्थ कैसे सधे ? स्वार्थमें लोग अंधे हो जाते हैं, ' अपना हित, अपना लाभ कैसे हो ' यह छोड़ उन्हें और कुछ सूझता-नहीं। वे विचार करही नहीं सकते, जड़ हो जाते हैं, उनका मन मलिन हो जाता है, बुद्धि जड़ हो जाती है जिससे जोही कुछ उनके मनमें आया वे बक डालते हैं। यथा, ' **कहउँ बचन सब स्वारथ हेतू। रहत न आरतके चित चेतू॥** ' ' **आरत कहहिं बिचारि न काऊ। सूझ जुआरिहि आपन दाऊ॥** ' ' **कह मुनि राम सत्य तुम्ह भाषा। भरत सनेह बिचारु न राखा॥** ', ' **बिबुध बिनय सुनि देवि सयानी। बोली सुर स्वारथ जड़ जानी॥** ' ' **लोचन सहस न सूझ सुमेरू।** ' ' **सुर स्वारथी मलीन मन** '। ये जो न कह डालें सो थोड़ाही है। यथा, ' **आरत काह न कहहिं कुकरमू।** ', ' **स्वामिधरम स्वारथहि बिरोधू। बयरु अंध प्रेमहि न प्रबोधू॥** ', ' **सुर स्वारथी मलीन मन कीन्ह कुमंत्र कुठाटु। रचि प्रपंच माया प्रबल भयभ्रम अरति उचाटु॥** ' (अ०)

(ख) ' अति आर्त्त, अति स्वार्थी, अति दीन ' का भाव कि आर्त, स्वार्थी इत्यादि चाहे सँमलभी जायँ पर जो ' अति आर्त ' हैं वे कदापि नहीं सँभल सकते। आर्त आदिके वचन चाहे क्षम्य न हों पर अति आर्त, अति स्वार्थी, अति दीन दुखारी अवश्य क्षम्य है। विचार-शक्तिहीन हो जानेके कारण इनके वचन क्षम्य हैं। विचारवान् सज्जन इनका बुरा नहीं मानते। प्रमाण यथा, ' **अबिनय बिनय जथा रुचि बानी। छमिहि देव अति आरत जानी॥** ' भाव यह है कि मैंने जो कठोर वचन कहे, जो तूकार रेकारसे संबोधन किया, वह सब आर्त्ति और स्वार्थवश। क्योंकि अतिसंकटापन्न होनेसे मैं दीन हो रहा हूँ, कष्टके मारे मुझमें विचार रहही नहीं गया कि मैं क्या कह रहा हूँ। जो कह

रहा हूँ वह उचित है या अनुचित। अतएव आप मेरी अविनय विनयको क्षमा करें।

(ग) यहां 'अति' शब्दमें पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार है।

२ 'लोक रीति देखी सुनी' इति। (क) अब उदाहरण देते हैं कि अति वर्षा या अनावृष्टिसे अत्यन्त घबड़ाकर लोग ईश्वरकोही गाली देने लगते हैं। पर ईश्वर इनको अति आर्त्त जान इनकी गालीका बुरा नहीं मानता। उनकी गाली सह लेता है और उनके लालन पालनमें त्रुटी नहीं करता। वैसेही आपभी मेरे कठोर वचनोंका बुरा न मानिये। यह न समझिये कि मैं विमुख हो गया हूँ। मेरे कुवचनोंपर ध्यान न देकर मेरी रक्षा कीजिये।

(ख) 'देहिं दैवहिं गारी' इति। भाव कि ईश्वर तो अन्यायी है नहीं। वह तो सब कार्य न्यायसंयुक्तही करता है। पर लोग स्वार्थवश जब व्याकुल हो जाते हैं तब उसेभी अन्यायी कहने लगते हैं। यथा, "सीयमातु कह बिधि बुधि बाँकी। जो पय फेनु फोर पबि टाँकी॥ सुनिय सुधा देखिय गरल सब करतूति कराल। जहँ तहँ काक उलूक बक मानस सकृत मराल॥ सुनि ससोच कह देवि सुमित्रा। बिधि गति बड़ि बिपरीत बिचित्रा॥ जो सृजि पालै हरै बहोरी। बाल केलि सम बिधि मति भोरी॥ कौसल्या कह दोसु न काहू। करम बिबस दुखसुख छति लाहू॥ कठिन करमगति जान बिधाता। जो सुभ असुभ सकल फलदाता॥ देवि मोह बस सोचिय बादी। बिधि प्रपंच अस अचल अनादी॥" (अ०) यदि ईश्वर उनकी बातका बुरा मानता, उनके वचनोंपर ध्यान देता, तो सृष्टिका कार्यही तमाम हो जाता।

३ (क) 'नाकहि आयें नाथ सों सासति भयें भारी' यह कटुवचनका कारण बताया। पहले कहा कि अति आर्त्तके बचनोंका बुरा नहीं माना जाता और अब कहते हैं कि हम अति आर्त्त और अति दुखी थे। अतएव हमारे वचन क्षम्य हैं। इनको क्षमा कीजिये।

(ख) 'निज ओर निहारी' इति। यह कहकर जनाया कि मेरे

अपराधके विचारसे तो वे बचन क्षमा नहीं किये जा सकते। पर अपने प्रभुपनेको देखियेगा तो क्षमा हो सकते हैं। अतः कहते हैं कि 'निज ओर निहारी'। अपनी ओर देखिये, अर्थात् कृपा, दया, करुणा, शरणपालकता, भक्तवात्सल्य, क्षमा, दीनबंधुता आदि अपने गुणोंपर दृष्टि डालिये। मेरे अवगुणोंको, मेरी करनीको न देखिये। आप मुझे पूर्व अपना चुके हैं। मैं आपका हूँ। बुरा भला जो कुछभी हूँ मुझे तुम्हारीही गति है, इसे विचारिये। समर्थ हितकारी ऐसाही करते हैं। वे सेवक वा शरणागतके अपराधोंको नहीं देखते। आशय यह है कि यदि मेरी करनीकी ओर देखियेगा तो मेरा निस्तार कभी होही नहीं सकता। यथा, '**जो करनी समुझहिं प्रभु मोरी। नहि निस्तार कलप सत कोरी।**' स्वामी अवगुणोंपर ध्यान नहीं देते। यथा, '**जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीनबंधु अति मृदुल सुभाऊ॥**' वैसेही आप अपने अहेतुकी कृपालु स्वभावसे मेरा भला कीजिये।

४ (क) 'समय सांकरे सुमिरिये समरथ हितकारी' इति। भाव कि संकटमें उसीको सुमिरा जाता है कि जिसमें ये दोनों गुण हों। इनमेंसे केवल एक गुणवालेको कोई संकटमें नहीं पुकारता। क्योंकि जो समर्थ हैं पर कृपाल नहीं हैं वे पुकार सुनकरभी कभी सहायता न करेंगे और जो दयावंत हैं पर जिनमें इतना सामर्थ्य नहीं कि रक्षा कर सकें वेभी सहायता नहीं कर सकते। यथा, **प्रभु अकृपाल कृपाल अलायक जहँ जहँ चितहिं डुलावों**'। अतः 'समर्थ' और 'हितकारी' दोनों कहे।

(ख) 'अपराध बिसारी' इतिं। इससे जनाया कि यह गाढ़में स्मरण करनेवाला वही है जिसने पूर्व उस समर्थ हितकारीका अपराध किया है। तबभी वह समर्थ स्वामी उसके दोषपर दृष्टि न डालकर अपने 'स्वामीपनेके' स्वभावका प्रतिपालन कर उसकी रक्षा करता है। यह 'समर्थ हितकारी' की व्याख्या है।

५ (क) 'बिगरी सेवककी सदा साहिबहि सुधारी' इति। सेवककी बिगड़ी हुईको स्वामीही सुधारते आये हैं। यथा, '**हौं तो**

बिगरायल ओर को बिगरो न बिगरिये। तुम्ह सुधारि आए सदा सबकी सबही बिधि अब मेरियो सुधरिये।', ' सो मैं सब बिधि किन्हि ढिठाई। प्रभु मानी सनेह सेवकाई। कृपा भलाई आपनी नाथ कीन्ह भल मोर।' (अ०)

(ख) ' साहिबहि सुधारी ' का भाव कि एक तो मैं आपका सेवक हूँ, दूसरे आपका अत्यन्त कृपापात्र हूँ। अतएव मेरी बिगड़ी हुई आपहीके बनाये बनेगी। व्यङ्गार्थ वाच्यार्थ बराबर होनेसे यहां ' तुल्य प्रधान गुणीभूत व्यंग्य ' है।

(ग) ' तुलसीपर तेरी कृपा निरुपाधि निनारी ' इति। इन शब्दोंसे पूर्वकी वह सब कृपाएँ सूचित कर दीं जो हनुमानजीने की। यथा, 'बालक बिलोकि बलि बारे ते आपनो कियो दीनबंधु दया कीन्ही निरुपाधि न्यारियै।' (बाहुक) ' निरुपाधि निनारी ' का भाव कि मैंने आपका कोई पूजापाठ, जप, अनुष्ठान आदि नहीं किया। यह सब करता तबभी निर्विघ्न इनका होना कठिन था। आपको प्रसन्न करना कुछ सहल बात है? केवल प्रेतके बतानेपर आपके चरण पकड़ लेनेमात्रसे आपने प्रथम दर्शनपरही अपनी ओरसे असीम कृपा की, श्रीरघुनाथजीके दर्शन कराये और तबसे बराबर अहेतुकीय कृपा करते आये। तात्पर्य कि मुझे आपकी उसी कृपाका भरोसा है। अपना कोई बल नहीं हैं।

पं० देवदत्तजी कहते हैं कि ' अति आरत ' यह वाक्य वास्तविक स्थितिका द्योतक है। ' अति आरत ' से स्पष्ट ' राजदण्ड ' लक्षित होता है। राजदण्डसे मुक्त होनेपर गोस्वामीजीने इस पदद्वारा विनय की।

३५

कटु कहिये गाढ़े[१] परे सुनि[२] समुझि सुसाईं।
करहिं अनभलेहु[३] को भलो आपनी भलाईं॥ १॥

---

१ गाढ़ो–रा०। गाढ़ौ–ह०, मु०। गाढ़े–भा०, बे०, ज०, ७४, आ० (मु०) २ सुनि–रा०, भा०, बे०, प्र०, ज०, ७४। सुन–आ० (दी०), ह०। सुनु–दी०। सुनि–(वै० टीकामें)। ३ अनभलेहु–रा०, भा०,। अनभलेउ–भ०, वि०। अनभले–ह०, ज०, ५१, प्र०, ७४,

समरथ सुभी जो पावई[४] बीर पीर पराई।
ताहि तकैं सब ज्यों नदी बारिधि न बुलाई ॥ २ ॥
अपनो[५] अपने को भलो चहै लोग लोगाई।
भावै जो जेहि तेहि भजै सुभ असुभ सगाई ॥ ३ ॥
बांह बोल दै थापिये जो निज बरिआई।
बिनु सेवा सो पालिये सेवक की नाई ॥ ४ ॥
चूक चपलता मेरिऐ तू बड़ो बड़ाई।
होत आदरे ढीठ है अंत[६] नीच निचाई ॥ ५ ॥
बंदिछोर बिरुदावली निगमागम गाई।
नीको तुलसीदासको तेरिऐ[७] निकाई ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—कटु = कडुवे, मनको बुरा लगनेवाले। गाढ़ (सं०) = संकट। यथा, 'जहं जहं गाढ़ परै संतन्ह पर सकल काम तजि होहु सहाई।', 'एक परे गाढ़े एक डाढ़तही काढ़े एक देखत हैं ढाढ़े कहैं पावक भयावनो।' (क०) गाढ़े परे = संकट पड़नेपर, संकटसमय। गाढ़े = गाढ़ के। अनभले = बुरे। भलो = भला, हित। भलाई = भले स्वभावसे, भलपनसे। सुभी (शुभी) = शुभ (मंगल, कल्याण) करनेवाला। पीर = दर्द, दुःख, पीड़ा। पराई = दूसरेकी। पराई पीर पाना = दूसरेका दुःख देखकर स्वयं दुःखका अनुभव करना,

---

डु०, बै०, मु०, दी०। ४ सुभी जो पाइए–रा०, वै०, इ०। सुभी जो पावै–टी०, डु०। सुभी जो पावई–१५, दी०, मु० (पावही)। सुभ जो पावई–भा०, भ०। सुभ जो पाइये–५१, वि०। सुभ जो पावहीं–७४। सुभ ज्यों पावहीं–बे०। ५ अपनो–रा०, भा०, वे०, ज०, दी०। अपने–प्र०, इ०, ५१, ७४, आ० (दी०)। ६ हैं अंत–रा० (है पर किसीने 'ा' बढ़ाया है।) हौं अति–भा०, बे०, प्र०, ५१, भ०। (हों), ज० (हो), ज० (हो), दी। हे अति–७४, डु०, बै०, मु०, वि०। ७ तेरिही–रा०, ५१ मु०, डु०, दी, बे०। तेरीही–ज०। तेरियै–भा०, बे०, इ०, ७४, भ०, वि०।

हमदर्दी, दया, करुणा या सहानुभूति करना। पराये दुःखसे दुखी होना और उसपर करुणाका उत्पन्न होना। यथा, 'करुनामय रघुबीर गुसाईं। बेगि पाइयहि पीर पराई॥' (अ०) तकै = ताकते हैं। तकना = शरण या आश्रय लेना। यथा, 'आवत रावन सुनेउ सकोहा। देवन्ह तके मेरु गिरि खोहा॥' (बा०) अपनो=अपना, निजका। अपने को = जो अपना है उसका। अपना = आत्मीय, स्वजन, संबंधी। लोग = मनुष्य। लोगाई = स्त्रियाँ। हिंदीमें 'लोग' शब्दका प्रयोग सदा बहुवचनमें और मनुष्योंके समूहकेलियेही होता है। लोग लोगाई, स्त्रीपुरुष, जनसमुदाय। यथा, 'जिन्ह बीथिन्ह बिहरहिं दोउ भाई। थकित होंहिं सब लोग लोगाई॥' (बा०) भावै=अच्छा वा प्रिय लगे। भजै = सेवा करे। भज् सेवायाम धातुसे। सुभ असुभ = शुभाशुभ, भला बुरा। सगाई = संबंध, नाता। यथा, 'जहं लगि जगत सनेह सगाई' (अ०), 'मातु पिता प्रिय लोग सबै सनमानि सुभाय सनेह सगाई॥ संग सुभामिनि भाई भलो दिन द्वै जनु औंधहु ते पहुनाई।' (क०) बांह बोल दे = रक्षा वा सहायताका वचन देकर; सहायताका एकरार करके। यथा, 'लाज बांह बोल की नेवाजेकी सँभार सार साहिब न राम सों बलैया लीजै सील की।' (क० लं०) बोल = वचन, करार, वादा। बांह देना=शरणमें लेना, सहारा देना। बरिआई = हठ करके, जबरदस्ती। यथा, 'मंत्रिन्ह पुर देखा बिनु साइ। मो कहं दीन्ह राज बरिआइ॥ (कि०) नाई = समान, तुल्य। यथा, 'समरथ कह नहिं दोष गोसाई। रबि पावक सुरसरि की नाई॥' (बा०) चूक = भूल, ग़लती, कसूर। चपलता = चंचलता, ढिठाई, उतावली, स्वार्थसाधनमें उद्यत होनेका भाव। मेरियै=मेरीही। तेरियै=तेरीही। आदरे (सं० आदृत=सम्मानित) = सम्मानित होनेसे, आदर होने वा किये जानेसे। ढीठ (सं० धृष्ठ)=बड़ोंका संकोच या डर न रखनेवाला, बड़ोंके सामने अनुचित स्वच्छन्दता प्रकट करनेवाला, गुस्ताख, शोख। यथा 'बिनु पूछे कछु कहौं गुसाई। सेवक समय न ढीठ ढिठाई॥' (अ०) निकाई = नेकी, भलाई।

पद्यार्थ—गाढ़ पड़नेपर जो कटु वचन कह दिये जाते हैं उन्हें सुन-समझकर उत्तम स्वामी अपने भलप्पन (के स्वभाव) से उस बुरेकाभी भला (ही) करते है। १। हे वीर समर्थ हितकारी ! जो पराई पीर पाता है † उसीको सब ताकते है (अर्थात् उसीकी शरण सब ताकते हैं) जैसे नदी समुद्रको। कुछ समुद्रने उसे नहीं बुलाया। अर्थात् जैसे नदियाँ बिना बुलाये अपनेसे समुद्रकी शरण दौड़ी जाती हैं, वैसेही दयावान्के पास सभी बिना बुलाये दौडे जाते हैं।२। अपना और अपने आत्मीय संबंधी (स्त्री, पुत्र, माता, पिता, प्रिय, सेवक, आश्रित इत्यादि) का भला सभी स्त्रीपुरुष चाहते हैं। शुभ सम्बंध हो वा अशुभ जिसे जो भाता है वह (प्रेमके नातेसे) उसीको भजता है, उसीकी सेवा करता हैं।३। अपनी हठसे जिसको 'बांह बोल' देकर बसाइये उसे बिना सेवाकेभी (अर्थात् वह कुछ सेवा न करे तबकी) सेवककी तरह पालनाही चाहिये।४। (हे स्वामी!) चूक और ढिठाई मेरीही (औरसे हुई) हैं (आपकी ओरसे नहीं)। आप तो अपनी बड़ाईसे बडे हैं। आदर पानेसे नीच अपनी नीचतावश आखिर ढीठ होही जाता है। (भाव कि मैंभी आदर पानेसे ढीठ हो गया और आपके बड़प्पनका कुछ लिहाज न कर मैंने आपको कटुबचन कह डाले। आखिरको मैं नीचही तों हूँ, नीचताका स्वभाव कैसे छूटे ?)।५। आप 'बंदि-छोर' हैं (बंधनसे छुड़ानेवाले हैं), वेद और आगम (पंचतंत्र, तंत्रशास्त्र) में आपकी यह विरुदावली गायी है। (अतः मुझे विश्वास है कि मुझ) तुलसीदासकाभी भला आपकीही भलाई (भलेपन) से होगा।६।

---

†अर्थान्तर-१ 'हे वीर ! जो समर्थ हितकारी पराई पीर पाता है।' एवं 'हे समर्थ हितकारी वीर ! जो पराई पीर पाता है' इस तरहभी अर्थ हो सकता है। २ वै०आदि कई टीकाकारोंने "पीर पराई" का अर्थ "तो उसकी सब पीड़ा भाग जाती है" ऐसा किया है। ३ सच्चा शुभेषी तों वही है जों सामर्थ्यवान् होकरभी दूसरेकी पीड़ाको अपनीही पीड़ा समझे। (दी०)। ४ जो समर्थ, भला करनेवाला और वीर स्वामी होता है वह पराई पीडाको अपनीही समझता है। (भ०) ५ सर्वशक्तिमान् अच्छे और पराक्रमी स्वामी को पाकर कष्ट भाग जाते हैं।

१ टिप्पणी—'कटु कहिये गाढ़े०' इति। भाव कि मैंने जो बुराभला कहा, खरी खोटी सुनाई, वह सब संकटापन्न होनेसे। आप सुस्वामी हैं, आप ऐसा समझकर अपने भलपनेके स्वभावसे मुझ बुरे सेवकका भला करैं। आप वीर हैं, मंगल कल्याणकर्त्ता और समर्थ हैं, करुणामय आपका स्वभाव है, यही जानकर मैं संकटमें आपकी शरण आया हूँ। आप मेरे आश्रयदाता बनें। जैसे समुद्रके पास जानेपर वह नदियोंका आश्रय होता है; नदियाँ वहाँ पहुँचकर अचल हो जाती हैं, यथा, 'सरिता जल जलनिधि महँ जाई। होहि अचल जिमि जिव हरि पाई॥' (कि०) वैसेही मुझे आश्रय दूजिये, मेरा संकट दूर करके मुझे शान्त कर दीजिये। 'ज्यों नदी बारिधि न बुलाई' में उदाहरण अलंकार है।

२ 'सुनि समुझि सुसाईं' इति। यहां 'सुस्वामी' की व्याख्या है। सुनकर हृदयके भावको समझकर काम करना सुस्वामीका कर्त्तव्य है। पुनः, 'सुसाईं' का भाव कि जो कुस्वामी हैं अथवा साधारण प्राकृत स्वामी हैं वे इसे नहीं समझ सकते। इसीसे वे कुसेवकका भला नहीं करते। 'सुनि' अर्थात् कटु वचन सुनकर। 'समुझि' अर्थात् यह समझकर कि यह बहुत कष्टमें है, बहुत व्याकुल है, इसीसे कटुवचन कह रहा है जिसमें संकट शीघ्र हर लिया जाय; ये उसके अन्तःकरणसे निकले हुए वचन नहीं हैं; हृदयमें तो इसके प्रेमही है। मिलान किजिये, 'हृदय प्रीति मुख वचन कठोरा। बोला चितइ राम की ओरा॥' (कि०)

३ (क) 'आपनी भलाई' इति। अपने क्षमा, दया, करुण, वात्सल्य आदि गुणमय सहज स्वभावसे। (वै०) यथा, 'कृपा भलाई आपनी नाथ कीन्ह भल मोर।' (भरतजी) (ख) समरथ सुभी' इति। पूर्व पद ३४ में जो 'समरथ हितकारी' कहा, वही यहाँ 'समरथ सुभी' है। शुभ करनेवाला समर्थ। केवल समर्थ होनेसे काम नहीं चलता। विशेष पद ३४ में देखिये। (ग) 'अपनो अपने को भलो चहै' इति। इन चरणोंमें दृष्टांतके तौरपर लोकरीति दिखा रहे हैं। (घ) 'ताहि तकैं सब ज्यों नदी बारिधि न बुलाइ' इति। मिलान कीजिये "रिधि सिधि संपति नदी सुहाई। उमँगि अवध अंबुधि कहुँ आई॥"

" सरिताजल जलनिधि महुँ जाई। होइ अचल जिमि जिव हरि पाई ॥", " जिमि उदार गृह जाचक भीरा ।"

४ 'भावै जो जेहि तेहि भजै सुभ असुभ सगाई' इति । पं. रा० कु०— " अपना और अपने संबधी (स्त्रीपुत्रादि) का भला सभी स्त्रीपुरुष चाहते हैं। इससे जो जिसको भाता है सो तिसको भजता है । सगाई अर्थात् नाता करनेमें शुभ अशुभका विचार नहीं करते कि यह भजने लायक है है या नहीं । यह लोकरीति दिखायी । तात्पर्य कि हमको तुमही भाते हो, अपनी भलाईकेलिये हमने तुमको ताका है । "

रा० त० बो०—" यदि कहो कि और प्राणीभी तो हैं और जो अन्य देवीदेवताओंका आश्रय लेते हैं, तुमभी वहीं जाओ, तो उसपर कहते हैं कि अपना और अपने आश्रितका भला सभी चाहते है । इसी कामनासे जो जिसको प्रिय लगता है वह उसीको भजता, सेवा करता है । शुभ कामना स्वर्गादि अशुभ कामना मारण मोहन उचाटनादिके संबंधसे । अर्थात् जिसकी जैसी कामना होती है उसीके अनुकूल वह उपासना करता है ।" अर्थात् यह उपासना शुभ और अशुभके नातेसे देखी जाती है' (वि०)

चरखारी–" १ जो जिसको भावे है वह उसको भजता है, चाहे शुभ संबंध हो, चाहे अशुभ । वा, २ शुभ संबंधमें वा अशुभ संबंधमें जो जिसे भावे वह उसे भजता है । वा, ३ सगाई (संबंध) जीवका जीवसे होता है वही भावता है, चाहे शुभ दशामें हो चाहे कष्टमें वह उसीको भजता है " अर्थात् जिसका जिससे संबंध हो जाता है वह उसीको भजता है ।

वैजनाथजी–उत्तम स्वामीकी रीति कह चुके; अब लोकरीति कहते हैं कि सब अपने अपने सेवकका भला चाहते हैं; बल अनुमान हित करते हैं । और, देवताओंकी यह रीति है कि जो देवता जिसको भावै उसीको शुभ या अशुभ सम्बंधसे भजै तो देवताभी मनोरथ अनुकूल फल दे देता है । अर्थात् मारण आदि अशुभ संबंधीकामी मनोरथ देवता पूर्ण कर देता है और स्वर्ग आदि चाहनेवाले शुभसबधीकामी मनोरथ वह देवता पूर्ण कर देता है । तथा मैं आपको भजता हूँ आप मेरा मनोरथ पूर्ण करें ।

मेरी भलाई बुराई सब आपहीपर निर्भर है। (वि०) जो जिसको भाता है वह उसेही भले या बुरे संबंधसे भजता है। (दीनजी) सब अपनी अपनी भलाई चाहते हैं। उसकेलिये भले बुरेका संबंध जो जिसको अच्छा लगता है वह उसीकी सेवा करता है। (वीरकवि)

नोट—१ 'महादेव अवगुनभवन बिष्नु सकल गुनधाम। जाकर मन रमु जाहि सन तेहि तेही सन काम' गिरिजावाक्य है। इसके अनुकूल पं० रामकुमारजीका अर्थ बिलकुल ठीक उतरता है। भाव कि हमारा नाता तो आपसे जुड़ गया है जैसा आगेभी कहते हैं। आपको छोड़ मैं दूसरेके पास नहीं जानेका। दूसरेकी खुशामद नहीं करनेका। भले हों या बुरे, मेरी भलाई आपहीपर निर्भर है। 'जो जेहि भाव नीक तेहि सोई'। यही चरखारी टीकाकारकाभी मुख्य भाव जान पड़ता है। प्राय: सब टीकाकारोंने ' अपने अपने. सगाई ' का एकहीसा अन्वय किया है। केवल बैजनाथजीने दोनों चरणोंको अलग अलग कर दिया है। परन्तु 'अपनो' पाठमें दोनों चरण एकसाथही रहेंगे, अलग नहीं। दोनों चरणोंका संबंध टूट नहीं सकता।

२ रा० त० बो० और वि० ने अर्थ किया है कि शुभाशुभके नातेसे उपासना की जाती है। शुभ कामनाकेलिये शुभ देवता, अशुभकेलिये अशुभ देवताभी उपासना करते हैं। मेरी समझमें यह अर्थ भावको शिथिल कर देता है। चाहे कामना शुभ हो चाहे अशुभ, जो जिसको भा गया वह उसी देवताकी उपासना करता है। उसीसे अपनी सब भलाई चाहता है। सब कामनाओंकी सिद्धि उसीसे चाहता है। जिससे नाता जुड़ गया उससे जुड़ गया। इस भावमें विशेषता प्रकट है।

५ (क) ' बाह बोल दै थापियै० ' इति। भाव कि पहले आपने अपनी ओरसे ज़बरदस्ती मुझे शरणमें लिया। मैं अपनी ओरसे शरण नहीं हुआ था, अब मैं बुरा हूँ या भला, आपका भजन करता हूँ या नहीं ! सुस्वामी होकर आपको तो मेरा पालन करनाही कर्त्तव्य है। इसीमें आपको यश है। यथा, 'भलो भलाइहि पै लहइ लहइ निचाई

नीचु। सुधा सराहिय अमरता गरल सराहिय मीचु।' (बा०) (ख) "निज बरिआई" का भाव निम्न उद्धरणोंसे स्पष्ट हो जाता है। "टूकनि को घर घर डोलत कँगाल बोलि बाल ज्यों कृपाल नत-पाल पोसो है। कीन्ही है सँसार सार अंजनीकुमार बीर आपनो बिसारि है न मेरेह भरोसो है॥"; "पाल्यो तेरे टूक को परेहू चूक मूकिये न कूर कौड़ी दूको हौं आपनी ओर हेरिये॥ भोरा-नाथ भोरे हौ सरोष होत थोरे दोष पोषि तोषि थापि आपनो न अवडेरिये॥ अंबु तू हौं अंबुचर अंब तू हौं डिंभ सौ न बुझिये बिलंब अबलंब मेरे तेरिये। बालक बिकल जानि पाहि प्रेम पहि-चानि तुलसीके माथेपर लाँबी लूम फेरिये॥"; "कालकी करा-लता करम कठिनाई कि धौं पाप के प्रभाउ की सुभाय बाय बावरे। बेदन कुभाँति सो सही न जाति राति दिन सोई बांह गही समीर-डावरे॥ लायो तरु तुलसी तिहारो सो निहारि बारि सींचिये मलीन भो तयो है तिहूँ ताव रे। भूतन की आपनी पराई है कृपानिधान जानियत सबहीकी रीति राम रावरे॥" "खोटे खोटे आचरन आचरत अपनायो अंजनीकुमार सोध्यो राम पानि पाक हौं।" इन उद्धरणोंसे स्पष्ट है कि श्रीहनुमान्‌जीने इनकी बांह पकड़कर और वचन देकर इनको अपनाया। बालपनेमें शिवरूपसे सहायता की थी। यह बात 'मूल गुसाईं चरित' सेभी स्पष्ट है। वाल्मीकि शरीरमेंभी श्रीहनुमान्‌जीने वचन दिया है।

६ 'चूक चपलता मेरियै तू बड़ो बड़ाई।' इति। (क) पूर्व कह आये हैं कि आप ज्ञाननिधान हैं, सर्वज्ञ हैं, सुजान हैं, सुस्वामी है। यथा, 'तो सो ज्ञाननिधानको सर्वज्ञ बिया रे।' (३३), 'कटु कहिये गाढ़े परे सुनि समुझि सुसाईं'। ऐसे स्वामीको नीति बताना, शिक्षा देना, बहुत कहना दोष है। यथा, 'सुहृद सुजान सुसाहिबहि बहुत कहब बड़ि खोरि।' (अ०) अतः अब उसकेलियेभी क्षमाकी प्रार्थना करते हैं।

(ख) 'चूक चपलता मेरियै' इति। स्वामीका संकोच न हुआ, उल्टा-सीधा जो मनमें आया बक डाला, यही धृष्ठता है। यथा, 'नाथ निपट

मैं कीन्ह ढिठाई। स्वामिसमाज सकोच बिहाई॥ अविनय विनय जथा रुचि बानी। छमिहि देव अति आरत जानी॥' (अ०)

७ 'तू बड़ो बड़ाई' इति। मानता हूँ कि मैं आपकी सेवाके योग्य नहीं हूँ। मुझसे चूक हुईही चाहे। पर आप तो सुस्वामी हैं। इस अपनी बड़ाईका विचारकर मेरी चूकको सुधार लीजिये। यथा 'सेवा जोग तुलसी कबहुँ कहू चूक परी साहिब सुभाउ कपि साहिब संभारिये।' (बाहुक) मिलान कीजिये "जद्यपि जनम कुमातु तें मैं सठ सदा सदोसु। आपन जानि न त्यागि हैं मोहि रघुबीर भरोसु॥ जद्यपि मैं अलभल अपराधी। मोहि कारन भइ सकल उपाधी। तदपि सरन सनमुख मोहि देखी। करिहहिं मोपर कृपा बिसेषी॥" पूर्व पदमें जो 'सब विधि ऊपर करै' कहा है और यहाँ जो 'तू बड़ो बड़ाई' कहा है वह यही है। पुन:, ऊपर हनुमान्‌जीको 'सुसाईं' कहा है, उसीके संबंधसे यहां 'चूक चपलता' रूपी दोष अपनाही कहा। यथा, 'राम सुस्वामि दोष सबु जन हीं। मोरे सरन रामकी पनहीं॥"

८ 'होत आदरे ढीठ है अंत नीच निचाई' इति। नीच आदरसे ढीठ हो जाता है। यथा, "रज मग परी निरादर रहई। सबकर पग प्रहार नित सहई॥ मरुत उड़ाइ प्रथम तेहि भरई। पुनि नृप नयन किरीटन्हि परई॥ सुनु खगपति अस समुझि प्रसंगा। बुध नहिं करहिं अधम कर संगा॥ उदासीन नित रहिय गुसाईं। खल परिहरिय स्वान की नाईं॥" (उ०)। नीच कुत्तेके समान है। जैसे कुत्तेका आदर करो तो वह मुँहभी चाटने लग जाता है, स्वामीको अशुद्ध करता है पर स्वामी उसे मारता नहीं बल्कि और दुलराता है। वैसेही मैं आपके यशमें बट्टा लगानेवाला हूँ, आप मेरी इस नीचतापर ध्यान न दीजिये। मेरा आदर करनेसे मैंभी ढीठ हो गया। यथा, 'आरति मोरि नाथ कर छोहू। दोउ मिलि कीन्ह ढीठ अति मोहू॥' (श्रीभरतवाक्य श्रीरामप्रति) मिलान कीजिये, "आसन बसन हीन विषम बिषाद लीन देखि दीन दूबरो करै न हाय हाय को। तुलसी अनाथ सो सनाथ रघुनाथ कियो दियो

फल सीलसिंधु आपने सुभाय को ॥ नीच यहि बीच पति पाइ भहराइ गयो विहाय प्रभु भजन बचन मन काय को। ताते तन पेखियत घोर बरतोर मिश फटि फूटि निकसत है लोन राम राय को ॥ " (बाहुक)

श्रीबैजनाथजी लिखते हैं कि यहां कुसेवक होनेका कारण बताते हैं कि आप सुस्वामी हैं। सेवकका आदर करना आपकी उत्तमताकी प्रशंसा है। अतएव यह कहना उचित नहीं कि आपने मुझे ढीठ बना दिया। यह दोष मेराही है कि मैं ढीठ हो गया। क्यों कि मैं अति नीच हूँ, कुसेवक हूँ। पुनः भाव कि आप कुस्वामी होते तो मुझे दंडका भय सदा बना रहता, मेरी नीचता दबी रहती, मैं ढीठ न हो जाता। एवं यदि मैं सुसेवक होता तोभी आदर पाकर ढीठ न हो जाता।

यह पदभी उसी खरी खोटी आर्त्तवाणी कहनेके प्रायश्चित एवं कारण स्वरूपमें लिखा गया है। इस पदमें पूर्वोक्त कल्पना तुलसीके वचनोंद्वारा सत्य स्वीकृत हुई। उन्होंने स्पष्ट स्वीकार किया। 'बंदिछोर बिरुदावली निगमागम गायी।' इस पदमें तुलसीदासजी परम कृतज्ञके रूपमें प्रगट हुए। (दे० द० शर्मा)

१० 'नीको तुलसीदासको तेरिऐ निकाई' इति। अर्थात् मेरा भला दूसरी तरह नहीं होनेका। मेरा भला जब होगा तब आपकीही कृपा भलाईसे होगा। सबका भला आपनेही किया है। अतएव हमाराभी अवश्य करेंगे। मिलान कीजिये, "होइहहि जब तब तुम्हही ते तुलसी को भलेरो।", "राम निकाई रावरी है सबही को नीक। जौं यह साँची है सदा तौ नीको तुलसीक ॥", "मेरो भलो कियो राम आपनी भलाई। हौं तो सांइदोहौ पै सेवकहित साईं ॥"

आशय यह है कि मेरे इस ढिठाई दोषकोभी दूर करके मेरा भला कीजिये। यथा, "यहु बड़ दोष दूरि करि स्वामी। तजी संकोच सिखइय अनुगामी ॥" (अ०), "साहिब सुभाय कपि साहिब सँभारिये।"

११ यहांतक ग्यारह पदोंमें हनुमान्जीकी विनय है । श्रीहनुमान्जी ग्यारहों रुद्रोंके सम्मिलित अवतार हैं । अर्थात् अलग अलग रहनेवाले ग्यारहों रुद्र मिलकर एक हनुमद्रूपसे प्रगट हुए हैं । हनुमान्जी ग्यारहों रुद्रोंके कारण अर्धनारीश्वररूप महारुद्र महाशंभुके अवतार है । पद १० देखिये । तभी तो बाहुकमें कहा है कि '**पंचमुख छमुख भृगुमुख्य भट असुर सुर सर्व सरिसमर समरत्थ सूरो ।**' अतः एकादश पदोंसे वन्दना की गयी । आगे एकही पदमें बहुतोंकी समष्टिवंदना है । उसमेंभी इनके साथ 'मंगल मूरति' विशेषण देकर इनको आदिमें रक्खा है जिसमें आगे मंगलही मंगल हो ।

शिववंदनामें बारह पद कहे और ये उन्हींके अवतार हैं । तथा दोनोंही रूप श्रीरामजीके अनन्यभक्त हैं । दोनोंही रामभक्तिके कोठारी हैं, भण्डारी हैं । शिवजीके सम्बंधमें श्रीवचनामृत है कि, '**जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी । सो न पाव मुनि भगति हमारी ।**' और श्रीहनुमान्का तो कहनाही क्या ? उन्होंने तो '**अपने बस करि राखे रामू**' । श्रीसीतारामजीही नहीं किंतु सारा परिवार उनका ऋणी है । यथा, '**सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं ।**', '**प्रति उपकार करउँ का तोरा । सनमुख होइ न सकत मन मोरा ॥**' इसीसे गोस्वामीजी कहते हैं कि '**तोसे न उसीले**' । संभव है कि इसीसे बारह पदोंकी संख्याकी पूर्तिकेलिये आगे समष्टिवंदनामेंभी इनका नाम दिया गया हो ।

यहांतक एक रुद्री हुई । इसके पाठसे मनोकामनाकी पूर्ति होती है ।

प्रथम (२५ वें) पदके अंतमें '**जयति विश्वविख्यात बानैत बिरुदावली बिदुष बरनत वेद बिमल बानी**' कहा है और यहाँ अंतमें '**बंदिछोर बिरुदावली निगमागम गाई**' उसका उपसंहार है ।

१२ ग्यारह मुख्य पदोंमेंसे दो 'अति आरत अति स्वारथी' और 'कटु कहिये गाढ़े परे' को छोड़कर शेष नौ पदोंमेंसे प्रत्येकमें इनका रामसंबंध, रामभक्ति, रामप्रेम तथा इनकी वीरता और इनका पराक्रम वर्णन किया गया है । अन्य कोई बात ऐसी नहीं है जो सबोंमें

पाई जावे। ऐसा करके जनाया गया है कि ये दो गुण इनमें सर्वोपर हैं। एक तो रामप्रेम, दूसरे 'अघट घटना सुघट सुघट बिघटन 'का सामर्थ्य।

श्रीशिवजीकी वन्दनामेंसे बारह पदोंमेंसे तीन 'बावरो रावरो' (५) 'मागिऐ गिरजापति' (६) और 'देव बड़े दाता' (८) को छोड़कर अन्य ९ पदोंमें कामसंबंधी कोई न कोई नाम शिवजीका या कामकाही कोई नाम आया है। यथा, '**कामरिपु (३,७), मयनरिपु (९), कामारी (१०), मर्दन मयन (११), काममदमोचन (१२), मयनमर्दन (१३), मारि कै मारु (४)** और **उरबसि प्रचंच रचे पंचबान। (१४)**'

इस प्रकार शिवजीकी वन्दना करनेका मुख्य कारण यह अनुमानित होता है कि उनसे कामके नाशकी प्रार्थना है। कामको शिवजीहीने भस्म किया है, यह जगत्‌विख्यात् है। इसीसे वहां आदिमें उपक्रम है। '**देहु कामरिपु रामचरनरति**' और अंतमें इसीसे उपसंहार किया है। '**करि कृपा हरिअ भ्रमकंदु कामु। जेहिं हृदय बसहिं सुखरासि रामु**'॥

३६ [११] राग-गौरा [गौरी]

मंगल मूरति मारुतनंदन। सकल अमंगल मूल निकंदन॥१॥
पवनतनय संतन हितकारी। हृदय बिराजत अवधबिहारी॥२॥
मातु पिता गुर गनपति सारद। सिवा समेत संभु सुक नारद॥३॥
चरन बंदि बिनवौं सब काहू। देहु रामपद नेहु निबाहू॥४॥
बंदौं राम लखन बैदेही। ते तुलसी के सहज सनेही॥५॥

नोट—इस पदके कोष्टकान्तर्गत चरण कुछ पोथियों (अर्थात् ह०, ५१, ज०, १५, ७४, आ०) में उपर्युक्त स्थानपर लिखे या छपे हुए पाये जाते हैं। पर ये दोनों चरण ६६, रा०, भा, बे० आदि प्राचीन पोथियोंमें नहीं हैं। इन चरणोंके न रहनेपरभी कोई त्रुटि नहीं देख पड़ती। इसीसे हमने उन्हें कोष्टकमें दे दिया है। इसमें प्रायः वही सब भाव हैं जो मानसके '**प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ज्ञानघन। जासु हृदय आगार बसहिं राम सरचापधर॥**' इस दोहे (बालकांड दो०

१७) में हैं। खलवनपावक होनेसे 'संतनहितकारी' कहे गये। 'अवध-बिहार' कहकर जनाया कि सगुण रूपकाही ध्यान सदा करते हैं, सगुणोपासक हैं।

शब्दार्थ—निकंदन = विनाश करनेवाले। बिनवौं = विनय करता हूँ। सिवा (शिवा) = पार्वतीजी। यथा, '**सुमिरि सिवा सिव पाइ पसाऊ। बरनउ रामचरित चित चाऊ**॥' (बा०) सब काहू = सब किसीसे, सबसे। निबाह (सं० निर्वाह) = किसी स्थिति संबंध आदिका लगातार बना रहना, लगातार साधन, निरंतर व्यवहार। सनेही (स्नेही)= प्रेमी, जिसके साथ स्नेह किया जाय।

अब समुदायकी एकही पदमें वंदना करके श्रीरामचन्द्रजीकी परिक्रमा करेंगे।

पद्यार्थ—मंगलकी मूर्त्ति, पवनदेवके आनंद देनेवाले अर्थात् पुत्र, समस्त अमंगलोंको जड़से उखाड़ डालनेवाले, पवनपुत्र, संतोंका हित कर-करनेवाले, जिनके हृदयमें अवधमें बिहार करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी विराजते हैं; माता, पिता, गुरु, गणेशजी, सरस्वतीजी, भवानीजी समेत शिवजी, शुकदेवजी और नारदजी (इत्यादि) आप सबके चरणोंकी वन्दना करके मैं सबसे विनय करता हूँ कि श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें मुझे प्रेम और (उस प्रेम नेम, प्रीति रीतिका) निर्वाह अर्थात् प्रेम और उसकी रहनी दीजिये। १, २, ३, ४। श्रीराम, लक्ष्मण और श्रीजानकीजीकी वंदना करता हूँ। वे (मुझ) तुलसीदासके सहज स्नेही हैं।५।

टिप्पणी—१ मंगलमूर्त्ति और अमंगलमूलनिकंदन विशेषण देकर जनाया कि श्रीहनुमान्‌जी प्रसन्न हो गये और गोस्वामीजीकी वंदना अंगीकृत हुई। समस्त अमंगलोंका नाश हुआ। 'मंगलमूरति' अर्थात् जिनके दर्शन वा स्मरणमात्रसे मंगल होता है। 'मारुतनंदन' पदसे अमंगलके नाशक प्रकार दिखाया। जैसे टोना, टोटका, भूत, प्रेत, यंत्र, मंत्र फूकद्वारा हटाये जाते हैं वैसेही आपने सब अमंगल इस प्रकार विनष्ट कर दिये मानों फूँककर सबको उड़ा दिया। 'मूल निकंदन' का भाव कि

अमंगलकाही नाश नहीं किन्तु उसके जड़ या कारणकाही नाश कर दिया जिसमें अब अमंगल होनेही न पावे ।

२ 'सब काहू' इति । अर्थात् जिन्हें ऊपर गिना आये इनके अतिरिक्त औरभी जिन भक्तों या देवताओंकी वन्दना नहीं की है उनकाभी ग्रहण इस शब्दसे हो गया । 'सब काहू' का भाव यह है कि समष्टिवन्दना किये देते हैं। नहीं तो ग्रंथ बढ़ जायगा । प्रधान अंगोंकी वन्दना करही चुके। अन्य सब जिनकी मानसमें वंदना की गयी है, उनकोभी 'सब काहू' से जना दिया । सबसे विनय करते हैं जिसमें 'सब मिली करहिं छाडि छल छोहू सबसे समष्टि वरदान माँगते हैं। क्योंकि जो वर चाहते है, वह अलभ्य है। उसका मिलना बहुत कठिन है । वह है "रामपदनेह और उसका आजीवन निर्वाह ।" इस कठिन प्राप्तिकी संभावना सबकी कृपासेही हो सकती है । 'निबाह' से प्रीति रीतिका निर्वाह अभिप्रेत है। यथा, 'का सेवा सुग्रीवकी प्रीति रीति निर्वाह, ॥ 'नामसों निबाहु नेहु दीन को दयाल देहु दास तुलसीको बलि बड़ो बरु है ।' इत्यादि ।

३ 'नेहु निबाहू' इति । इन दोनों शब्दोंमें उकारांत होनेसे नेह और निर्वाह दोनोंका वरदान सूचित किया गया है । प्रेम होभी जाय पर यदि वह एकरस न स्थित रहा तो वह प्रेम प्रेम नहीं । इसीसे प्रीति रीतिका निरंतर एकरस निर्वाहभी माँगते हैं। निबाहका भाव यह है कि चातकवत् एकांगी हो। चाहे श्रीरामजीका स्नेह हमपर रहे या न रहे, पर हमारी ओरसे त्रुटि न हो, कसर न रहे। यथा, 'तुम चाहो न चाहो हमें चित सो हमे नेहको नातो निबाहनो है । ' (दीनजीकृत)

४ 'सहज सनेही' इति । स्वाभाविक स्नेह करनेवाले जैसे माताका बच्चेपर, बँदरियाका अपने बच्चेपर, इत्यादि । निस्वार्थ, कारण रहित प्रेम करनेवाले । यथा, 'सहज सनेही राम सों तैं कियो न सहज सनेहु', 'एक सनेही साँचिलो केवल कोसलपाल । प्रेम कनोड़ो राम सों नहिं दूसरो दयालु ।' (१९०, १९१) पुनः, 'सहज सनेही' का भाव कि जिनकी अबतक वंदना कर आये वे सबभी स्नेही

हैं। पर श्रीसीतारामलक्ष्मणजी हमारे सहज स्नेही हैं। हमारे इष्टदेव हैं। 'स्नेही' का दूसरा अर्थ है, 'जिसके साथ स्नेह किया जाय'; प्रेमपात्र।

५ अब अन्तरंगमें प्रवेश करनेकेलिये इनका मंगल कर रहे हैं। सातवे द्वारके भीतर प्रवेश करनेपर परिक्रमा करते हुए श्रीलक्ष्मणजीसे प्रथम भेट होती है।

६ 'शुक नारद' को कहकर समस्त उत्तम भक्ति और मुनियोंकी वन्दना सूचित कर दी। मानसके "**सुक सनकादि भगत मुनि नारद। जे मुनिवर बिज्ञान बिसारद॥ मनवौं सबहिं**" मेंसे आदिके 'शुक' और अन्तके 'नारद' शब्दोंको यहाँ रखकर अन्य सभीको सूचित कर दिया है। श्रीशुकदेवजी और देवर्षि नारद दोनोंही परम भक्त हैं और दोनोंका शिवजीसे सम्बन्ध है। इसीसे शिवजीके साथ साथ इनकोभी कहा। शुकदेवजीने शुकशरीरमें श्रीरामतत्व श्रीशिवजीसे पाया था और उसीके प्रसादसे ब्रह्मसुखभोगी और चिरजीवी हुए। और '**नारद जानेउ नाम प्रतापू। जग प्रियहरि हरि हर प्रिय आपू॥**' (बा०) आनंदरामायणमें लिखा है कि देवर्षि नारदजी एकान्तमें सदैव '**राघव पालय मां दीनम्**' '**राघव पालय मां दीनम्**' यही गाया करते हैं। ये गानविद्यामें निपुण हैं और सदैव रघुपतिगुणगान वीणापर किया करते हैं। इनकी अव्याहत गति हैं। ये श्रीरामजीके प्रिय कृपापात्र है और यह ग्रन्थभी संगीतपर रचा गया है तथा ग्रन्थकारको इसे श्रीरघुनाथजीके पास पहुँचाना है। निकटवर्तीसेही यह कार्य सफल हो सकता है। इसीसे मुनियोंमेंसे इनकी वंदना की।

७ पं० श्रीदेवदत्तशर्माजी लिखते हैं की इस पदसे हनुमान्‌जीकी विनयका उपसंहार होता है। माता, पिता, गुरु, गणेश, शिव, पार्वती, शारदा, शुक और नारदकी स्तुति प्राथमिक नहीं है। किन्तु प्राधान्यतया और लाक्षणिकरूपसे इन सबोंकी वन्दना प्रारंभमें कर चुके हैं। यथा, "**पाहि भैरवरूप रामरूपी रुद्र बंधु गुरु जनक जननी बिधाता। यस्य गुनगन गनति बिमल मति सारदा निगम नारद प्रमुख ब्रह्मचारी॥**" प्रमुख ब्रह्मचारीसे शुकदेवजीकाही ग्रहण है। पुनः, नामोच्चारणद्वारा वन्दना

करना विधानसम्मत है। यह उत्तरपूजाकी पद्धति है। स्मार्त्त वैष्णवोंमें इसी विधानका प्रचलन है। पूर्व स्मरण किये हुए वन्दनीयोंको पुनः स्मरण करनेके बाद आगे वन्दनीयोंके स्मरणकी सूचना राम लषण वैदेहीकी वन्दनासे करते हैं। यहभी लोकवेदसम्मतपद्धति तो हैही। साहित्यिक दृष्टिसे उत्कृष्ट योजना है जो एक महाकाव्यके प्रणयनमें प्रयुक्त होती है।

३७ राग—केदार

लाल[1] लाडिले लखन हित हो[2] जनके।
सुमिरे संकटहारि[3] सकल सुमंगलकारि[4]
पालक कृपाल अपने[5] पन के ॥१॥
धरनी धरनहार[6] भंजनभुवनभार
अवतार साहसी सहसफन के।
सत्यसंध सत्यव्रत परमधर्मरत
निर्मल करम बचन (अरु[7]) मन के ॥२॥
रूपके निधान धनुबानपानि तून कटि
महाबीर बिदित जितैया (बड़े[8]) रन के।
सेवकसुखदायक सबल[9] सब लायक
गायक जानकीनाथ गुनगन के ॥३॥

---

१ यह पाठ रा०, ह०, ५१, छु०, वै०, भ० दी०, वि० में है। भा०, बे०, मु०, प्र०, ज०, ७४ में 'लाडिले लखनलाल' है। २७८ मेंभी 'लाललखन दीन की' पाठ है। २ हो—रा०, छु०, मु०। हौ—औरोंमें। ३ हारि—रा०, ह०, ५१, मु०, ७४। हारी—औरोंमें। ४ मंगलकारि—रा०, ७४। मंगलकारी—ह०, छु०, भा० ('सु'पर हरताल है।) सुमंगलकारी—बे०; प्र०, ज०, १५, आ० (मु०)। सुमंगलकारि—मु०। ५ अपने—भा०, बे०, ५१, आ०। अपने के—रा०। आपने के—ह०, ७४, ज०, १५ ('के' पर हरताल)। ६ धरनिहार—रा०, ज०। ७ अरु—प्र०, भा०, ७४, वि०, हा०। 'वचन' और 'मन' के बीचमें रा०, आ० (वि०) में 'अरु' नहीं है। ८ रा० में नहीं है। औरोंमें 'बड़े' है,। ९ प्र०, ज०, १८, ह० में नहीं है।

भावते भरत के सुमित्रा सीता के दुलारे
चातक चतुर राम स्याम घन के।
बल्लभ उर्मिलाके सुलभ सनेह बस
धनी धन तुलसी से निर्धन के ॥४॥*

शब्दार्थ—लाडिले=लाडला, जिसका बहुत लालन, प्यार वा दुलार किया जाय, दुलारे। लाड़ (सं० लालन)=बच्चोंका दुलार। छोटे और प्रिय बालकको 'लाल' वा 'लालन' इत्यादि कहकर पुकारते हैं। इसका प्रयोग प्रायः कविता और बोलचालमें किसी प्रिय व्यक्तिकेलिये सम्बोधनके रूपमें होता है। सुमिरे=स्मरण करनेसे। धरनीधरनहार=पृथ्वीको धारण करनेवाले। भुवनभार='संसारभारापहर' पद २७ देखिये। साहस=वह मानसिक गुण या शक्ति जिसकेद्वारा मनुष्य यथेष्ट बलके अभावमेंभी कोई भारी काम कर बैठता है या दृढ़तापूर्वक विपत्तियों तथा कठिनायों आदिका सामना करता है। हिम्मत हियाव। साहसी=दिलेर। फन (फण)= साँपका सिर उससमय जब कि वह अपनी गर्दनके दोनों ओरकी नालियोंमें वायु भरकर उसे फैलाकर छत्रके आकारका बना लेता है। सहस फण, सहसशीश, सहसवदन, सहसमुख, सहस्रजिह्व ये सब शेषनागके नाम हैं। कद्रूके जो एक हजार नाग पैदा हुए थे वे सब सहस्र मस्तकवाले थे। परन्तु प्रायः सहसशीश, सहसफन आदि नाम शेषजीकेलिये रूढ हो गये हैं। सुरसा एक हजार सर्पोंकी जननी हुई। संध=स्थिति, प्रतिज्ञा। सत्यसंध=प्रतिज्ञा वा वचनको पूरा करनेवाला। यथा, 'सत्य संध प्रभु सुर हितकारी। भरत राम आयसु अनुसारी ॥' सत्यव्रत=सत्यका व्रत अर्थात् नियम पालन करनेवाला। यथा, 'राम सत्यव्रत धरमरत सब कर सील सनेह।' जो व्रत लिया है उसको सत्य कर दिखानेवाले। निर्मल=विकाररहित। भावते=अच्छे लगनेवाले, प्रिय। यथा, ' सरद चंद निंदक मुख नीके। नीरज नयन भावते जी के॥' दुलारा=लाड़ला। बल्लभ=पति। उर्मिला=जनकमहाराजकी कन्या जो

* ह० में यह पद श्रीजानकी विनयके पश्चात् है और संख्या ३९ है।

लक्ष्मणजीको व्याही गयी थी। धनी=महाजन, स्वामी। निधन=धनहीन, कंगाल।

पद्यार्थ—हे दुलरुवा लाल लक्ष्मणजी ! आप भक्तोंका हित करनेवाले हैं। स्मरण करतेही संकटके हरनेवाले, समस्त सुंदर मंगलोंके करनेवाले और अपने प्रणके कृपाल पालक हैं।१। आप पृथ्वीको धारण करनेवाले, संसारके भारको दूर करनेवाले, साहसी शेषनागके साहसी अवतार, अपने वचनको सत्य करनेवाले, सत्यव्रत, भगवत भागवत धर्मपरायण, कर्म वचन और मनके निर्मल सौंदर्यके निधान अर्थात् नखशिखसे परम रूपवान्, हाथोंमें धनुषबाण लिये सेवकोंको सुख देनेवाले, बलवान, सब प्रकारकी योग्यतावाले अर्थात् सभी कुछ कर सकनेवाले और श्रीजानकीपतिके गुणगणोंके गानेवाले हैं।२, ३। भरतजीके प्रिय, श्रीसुमित्राजी और श्रीसीताजीके लाडले, श्रीरामघनश्याम अर्थात् श्रीरामरूपी श्याममेघके चतुर चातक, श्रीउर्मिलाजीके पति, प्रेमके वश सहजही प्राप्त होनेवाले और तुलसी सरीखे निधनके धन और धनी (दोनोंही) है।४।

टिप्पणी—१ 'लाल लाडिले लखन हित हो जन के।' इति। (क) 'लाल लाडिले' का भाव कि आप परिवारके दुलरुवा हैं। यथा, **'लालन जोग लखन लघु लोने। भे न भाई अस अहहिं न होने॥ पुरजन प्रिय पितु मातु दुलारे। सिय रघुबीरहिं प्रान पियारे॥', 'जोगवहिं प्रभु सियलखनहिं कैसे। पलक बिलोचन गोलक जैसे॥'** (अ०) भीतरी आशय यह है कि आप सबके दुलारे हैं इससे मेरी सिफ़ारिश व्यर्थ न जायगी। (ख) यहां माधुर्य वर्णन है। इसीसे 'लखन' नाम दिया जो माधुर्य एवं प्यारका नाम है। पुनः आगेके 'हितहो जन के' के साहचर्यसे 'लखन' शब्दमें यह अभिप्रायभी भरा हुआ है कि आप हमारे मनोरथके, हमारे हितको लखनेवाले हैं, मुझे कहनेकी आवश्यकता नहीं है। (ग) 'हित हो जनके' इति। भाव कि आप भक्तोंका हित करते हैं। यथा, **'सीतल सुखद भगत सुखदाता'**। मैं आपका दास हूँ, मेराभी हित कीजिये। (घ) 'सुमंगलकारि' इति। 'सु' यहां अत्यन्त और सुंदर दोनों अर्थका वाचक है। आप भक्तोंका अत्यन्त मंगल

करते हैं एवं सुंदर मंगलोंके कर्त्ता है। 'सु' (सुंदर) में भाव यह है कि मंगल असुंदरभी होते है, तामसिक। मलिन मंगल असुंदर हैं। 'सुमंगलारि' कहकर जनाया कि मलिन करनेवाले, जीवका परलोक बिगाड़नेवाले मंगल नहीं देते, किन्तु उसकी मलिनता दूरकर उसका अत्यन्त कल्याण करते हैं। मरण मोहनादि कुत्सित कर्मोंद्वारा जो बाह्य मंगल आनंद जीवको होता है वह सुमंगल नहीं है। क्योंकि इसका परिणाम बुरा है।

२ (क) 'पालक कृपाल अपने पन के' इति। 'सियरामलखन पालक कृपाल' (२३), 'बिश्वनाथ पालक कृपाल' पद २२ देखिये। (ख) 'अपने पनके' इति। अपना पन क्या है? जनका हित करना। इस प्रणका पालन आप कृपापूर्वक करते हैं। एवं औरभी जो प्रण करते हैं उनके पालनकी शक्तिभी रखते हैं, जैसे कि मेघनादवधकी प्रतिज्ञा की थी सो उसे पूरी की। (ग) 'धरनी धरनहार' इति। शेषजी अपने एक सिरपर पृथ्वीको धारण किये है। इनको 'अनंत' भी कहते हैं। भगवान् क्षीरसागरमें इन्हींपर शयन करते हैं। ये सर्पों और नागोंके एवं पातालके राजाभी माने जाते हैं। लक्ष्मणजी क्षीरशायी श्रीमन्नारायण, चतुर्व्यूहात्मक संकर्षण और शेषजीकेभी अवतार होते हैं। यथा, '**वैकुण्ठेशस्तु भरतो क्षीराब्धीशस्तु लक्ष्मणः। शत्रुघ्नस्तु स्वयंभूमा रामसेवार्थमागता।**' (ना० पं० रा०), '**अकाराक्षरसंभुतः सौमित्रिर्विश्वभावनः**' (अथर्वश्रुति)। 'धरनीधरहार' कहकर 'भंजन भुवन भार' और फिर 'अवतार साहसी सहसफनके' क्रमसे कहनेका भाव कि पृथ्वी आपही थामे रहती हैं। जब उसपर पापका बोझा बहुत लद जाता है तब उस भारको उतारनेकेलिये आप अवतार लेते हैं। यथा, '**सेष सहस्र सीस जग कारन। सो अवतरेउ भूमि भय टारन॥**' (बा०), **जो सहससीस अहीसु महि धरु लखन सचराचर धनी। सुरकाज धरि नरराजतनु चले दलन खल निसिचर अनी॥**' (अ०) अवतार कहकर, अवतारमें जो गुण धारण किये उनका एवं भुवनभारहरणकी उपयोगिताका वर्णन है। इसतरह अवतारका कारण, अवतार और अवतारका कार्य यहाँ कहा।

३ 'अवतार साहसी' इति। साहसी ऐसे कि मेघनादकी शक्तिसे एक बार घायल होनेपरभी दुबारा, प्रतिज्ञा करके, उससे लड़ने गये और उसका वध किया। इसीतरह रावणने अपने प्राण बचानेकेलिये ब्रह्मदत्त शक्ति इनपर चलाकर इनको मूर्छित कर दिया था। फिरभी ये मूर्छासे जागतेही अत्यन्त उतावलीसे रावणसे लड़ने गये। उससमय आपने इतनी शीघ्रता की कि रावण अभी रणभूमिहीमें था कि आप उसके सम्मुख पहुँच गये और उसको बाणोंसे पृथ्वीपर गिरा दिया। यथा, "आतुर बहोरि बिभंजि स्यंदन सूत हति ब्याकुल कियो। गिर्‌यो धरनि दसकंधर बिकलतर बान सत बेध्यो हियो॥" (लं०) पुनः, 'साहसी' इससेभी कह सकते हैं कि देखनेमें 'मृदु-मूरति सुकुमार सुभाऊ' हैं। साहसीको 'सहसफन' काभी विशेषण मान सकते हैं।

४ 'सत्यसंध सत्यव्रत परमधर्मरत' इति। (क) जो जो प्रतिज्ञाएँ आपने की उनके पालनको आप समर्थ थे। आपका बचन अन्यथा नहीं हो सकता। जैसे कि धनुषयज्ञमें "नाइ रामपदकमल सिर बोले गिरा प्रमान।" "जौं न करउँ प्रभुपद सपथ कर न धरउँ धनु माथ॥" एवं मेघनाद वधके पूर्व "बोले घन इव गिरा गँभीरा॥ जौं तेहि आज बधे बिनु आवौं। तौ रघुपति सेवक न कहावौं॥ जौं सत संकर करैं सहाई। तदपि हतौं रघुबीर दुहाई॥"

(ख) 'सत्यव्रत', इति। यथा, "गुर पितु मातु य जानउं काहू। कहउँ सुभाउ नाथ पतियाहू॥ जहं लगि जगत सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई॥ मोरे सबुइ एक तुम्ह स्वामी। दीनबंधु उर अंतरजामी॥ धरम नीति उपदेसिय ताही। कीरति भूति सुगति प्रिय जाही॥ मन क्रम बचन चरन रत होई। कृपासिंधु परिहरिय कि सोई॥" यह लक्ष्मणजीका व्रत है। इस व्रतको आपने पालन करके उसकी सत्यताका परिचय संसारको दिया है। इस व्रतका निर्वाह अंततक आपने किया है। आप ऐसे सत्यव्रती और परमधर्मरत थे कि श्रीरघुनाथजीका अपमान कदापि नहीं सह या देख सकते थे। जिसकोही रामविमुखी

जानते उसका वध करनेको तत्पर हो जाते थे चाहे वह सगा भाई, बाप, गुरुही क्यों न हो। परशुराम गर्वहरणप्रकरण और चित्रकूटमें भरतका ससैन्य आगमन सुननेपर 'जौं सहायकर संकर आई। तौ मारउं रन रामदुहाई॥' इत्यादि वचन इसके प्रज्वलंत उदाहरण हैं।

(ग) 'परमधर्मरत' इति। अहिंसा परम धर्म कहा गया है। यथा, 'अहिंसा परमो धर्मः।', 'परम धरम श्रुति बिदित अहिंसा।' (उ०) भगवदाज्ञाका पालनभी परम धर्म है। यथा, 'सिर धरि आयसु करिय तुम्हारा। परम धरम यह नाथ हमारा॥' (बा०) भगवतभागवतधर्म 'परमधर्म' है। अहिंसा लौकिक धर्म है और भागवत धर्म पारलौकिक धर्म है। यहां 'परमधर्म' से भागवतधर्म, श्रीरामचरणानुराग वा रामभक्ति अभिप्रेत है। यथा, 'सखा परम परमारथ एहू। मन क्रम बचन रामपदनेहू॥', 'सखा समुझि अस परिहरि मोहू। सिय रघुबीर चरन रत होहू॥' (अ०) यह उपदेश लक्ष्मणजीका निषादराजप्रति है। जो उपदेश दे रहे हैं उसीपर आपभी तत्पर हैं। भागवतधर्ममें हिंसाभी अधर्म नहीं है। क्योंकि वहां तो सब कर्म निष्काम्य एवं भगवदर्पण हैं। गीताका चरम उपदेशभी यही है। 'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।'

(घ) 'निर्मल करम वचन अरु मन के' इति। जो प्रेम स्वार्थके लिये हो वह निर्मल नहीं है। चतुराई और कपटछलरहित प्रेम जिसे 'सहज प्रेम', 'निष्केवल प्रेम', या 'प्रेमहीकेलिये प्रेम' कहते हैं वैसा प्रेम आपका है। यह 'निर्मल' शब्दसे सूचित किया। पुनः, 'निर्मल' से यहभी जनाया कि राग, रोष, ईर्ष्या, मद, मोह आदि समस्त विकारोंसेरहित होकर श्रीरामजीकी सेवा मन, कर्म, वचनसे करते हैं। श्रीसुमित्रा अंबाजीका आपको यही उपदेश था। यथा, 'राग रोष इरिषा मद मोहू। जनि सपनेहु इन्हके बस होहू॥ सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई॥' (अ०) इस आदेशका पालन आपने पूर्णतया किया है, यह बात 'निर्मल' शब्दसे इंगित कर दी है।

श्रीलक्ष्मणजी मन कर्म वचनसे श्रीरामभक्तिमें रत हैं यह उनके वचनोंसे स्पष्ट है। यथा, 'तौ रघुपति सेवक न कहावउं।', 'मन क्रम बचन चरन रत होई। कृपासिंधु परिहरिय कि सोई।' इसकी साक्षी वे स्वयं रघुनाथजीको दे रहे हैं। 'दीनबंधु उर अंतरजामी।' श्रीसुमित्राजीके वचनभी इसकी पुष्टि करते हैं। 'भूरि भाग भाजन भयेहु। जौ तुम्हरे मन छांड़ि छलु कीन्ह रामपद ठाउं।'

५ (क) 'रूप के निधान' इति। 'रूप' पद २ देखिये। लक्ष्मणजी ऐसे सुंदर थे कि शूर्पणखाभी मोहित हो गयी थी। यथा, 'देखि विकल भइ जुगल कुमारा।' मगवासियोंनेभी सौंदर्यकी प्रशंसा की है। यथा, 'राजकुअँर दोउ सहज सलोने। इन्ह तें लहि दुति मरकत सोने॥ स्यामल गौर किसोर बर सुंदर सुखमा ऐन। सरद सरबरीनाथ मुख सरद सरोरुह नयन॥ कोटि मनोज लजावनिहारे।' (अ०) जनकपुर धनुषयज्ञशालामें दोनों भाइयोंके सौंदर्यका वर्णन इस प्रकार किया गया है। 'सुंदर स्यामल गौर तनु बिश्वबिलोचन चोर॥ सहज मनोहर मुरति दोऊ। कोटि काम उपमा लघु सोऊ॥' नगरदर्शन, पुष्पवाटिका इत्यादि कतिपय स्थलोंपरभी सुंदर नखशिख वर्णित है।

(ख) 'धनुष बान पानि' अर्थात् दाहिने हाथमें बाण है और बाँयेमें धनुष। इससे खलवधनिरत और जनरक्षणमें सदैव तत्पर दिखाया। यही आगे कहतेभी हैं। नहीं तो धनुषको हाथमें लिये न कहते।

(ग) 'महाबीर बिदित जितैया बड़े रन के' इति। ऊपर जो 'भंजन भुवनभार' कहा था उसीके संबंधसे यहां धनुष, बाण और तरकश धारण किये होना कहा। और बीर बानाही केवल नहीं है किन्तु वास्तवमें वे 'महावीर' हैं यह बताया। कैसे जाना कि महावीर हैं? 'जितैया बड़े रन के' होनेसे। बड़े रणको जीता है इसीसे 'महावीर' विख्यात् हुए। 'बड़े रण' इससे कहा कि मेघनाद इन्द्रजित् था। उसको कोई दूसरा मार न सकता था ऐसाही उसको वरदान था। (मानसपीयूष देखिये।) उसकेही वधसे देवताओंने जय और अपना निस्तार समझ लिया यद्यपि रावण

अभी जीवित था। यथा, 'जय अनंत जय जगदाधारा। तुम्ह प्रभु सब देवन्ह निस्तारा ॥' (लं०) उसके वधको अगस्त्यजीने बड़ा भारी काम बताया है। वाल्मीकीय उत्तरकांडमें इस कथाका विस्तृत उल्लेख है और मानसमें मेघनाथयुद्धमेंभी बिभीषणजीने यही बात कही है। दूसरा बड़ा रण रावणसे हुआ जिसमें उसके प्राणोंपर बन आयी थी। आप महावीर हैं, इससे रावण जब आपके बाणोंसे घायल होकर मूर्छित हो गिर गया तब आपने उसको न मारा। 'धरनी धरनहार' में ऐश्वर्य और 'सेवक सुखदायक' में ऐश्वर्यमाधुर्यमिश्रित वणन है।

६ (क) 'सेवक सुखदायक'। मेघनादादिपर विजय होना कहकर 'सेवक सुखादायक' कहा। इस विजयसे सेवकोंको सुख दिया। पुनः, 'सेवक' का भाव कि रामचन्द्रजीके सेवकोंको सब प्रकारका सुख देनेवाले हैं। यथा 'बंदउँ लछिमन पद जलजाता। सीतल सुभग भगत सुखदाता ॥ सदा सो सानुकूल रह मोपर ' (बा०)

(ख) 'सुखदायक' कहकर 'सबल' और 'सब लायक' कहनेका भाव कि सुख देनेकेलिये सामर्थ्यभी उनमें है और सब प्रकारका सुख देने योग्य हैं। कोईभी ऐसा पदार्थ नहीं जो वे न दे सकते हों। रामजीके पास सिफ़ा-रिश करके पहूँचभी सकते हैं। और ऐसा हुआभी। विनयपत्रिका आपनेही पेश की। 'मारुति मन रुचि भरत की लखि लखन कही है'। (पद २७९) रघुनाथजीसे ज्ञान भक्ति आदिके प्रश्न करके आचार्यरूपसे सेवकोंको सुख दिया। उपासनाभी इनकी आचार्यरूपसे की जाती है।

(ग) 'गायक जानकीनाथ गुनगनके' इति। 'सब लायक' कहकर उसका कारण यह बताया। 'सेवक सुखद' कहकर अब यह बताया कि वे निरंतर रामगुणगान किया करते हैं। शेष रूपसेभी और लक्ष्मणरूपमेंभी। निषादराजके साथ एक रातका प्रमाण तो मानसमें है और इसी तरह निरंतर समझ लिया जाय। 'कहत रामगुन भा भिनुसारा।

७ 'भावते भरतके' इति। यथा, सोक समाज राजु केहि लेखे। लखन राम सिय पद बिनु देखे ॥' ,'जीवन लाहु लखन भल पावा। सबु तजि राम चरन मनु लावा ॥' ,'पूछत सखहिं सोठाउँ दिखाऊ।

नेकु नयन मन जरनिजुड़ाऊ ॥ जहँ सिय रामु लखनु निसि सोये। कहत भरे जल लोचन कोये ॥', 'लालन जोग लखन लघु लोने। भे न भाइ अस अहहिं न होने ॥ पुरजन प्रिय पितु मातु दुलारे ॥ सियरघुबीरहिं प्रान पियारे ॥ मृदु मूरति सुकुमार सुभाऊ। ताति बाउ तन लाग न काऊ ॥ ते बन सहहिं बिपति सब भाँती। निदरे कोटि कुलिस एहि छाती ॥' (अ०), 'अहह धन्य लछिमन बड़भागी। रामपदारबिंद अनुरागी ॥' (उ०), 'लछिमन भरत मिले तब परम प्रेम दोउ भाइ।' इत्यादि उद्धरणोंसे लक्ष्मणजीके प्रति जो भरतजीका प्रेम है वह स्पष्ट झलक रहा है।

८ 'सुमित्रा सीताके दुलारे' इति। सुमित्रा और सीता दोनोंको एकसे प्यारे कहा तथा दोनोंको एक साथ कहनेका भाव यह है कि सुमित्राजीके उदरसे तो जन्म हुआ। इस तरह वे माता हैं और परम धर्मके नाते श्रीसुमित्राजीने लक्ष्मणजीको जो उपदेश दिया है कि तुम मुझे अपनी माता न जानो, तुम्हारी माता सीता हैं। यथा, 'तात तुम्हारी मातु बैदेही। पिता राम सब भाँति सनेही ॥' उसके संबंधसे 'सीता' जी आपकी माता हैं। गीतावलीमें श्रीसुमित्राजीके वचन है कि 'सिया रघुबर सेवा सुचि होइहौ तब जानिहौं सही सुत मेरो।' अर्थात् मैं तुम्हें अपना पुत्र तब जानूंगी जब तुम श्रीसीतारामजीकी सेवामें सरस उतरोगे। वनसे लौटनेपर उन्होंने लक्ष्मणजीको 'रामचरणरत' जानकर भेंटा है। यथा मित्रा रामचरन रत जानि।' (उ०)

श्रीजानकीजीभी इनका दुलार प्रिय पुत्रकी तरह करती हैं। यथा, रामलखन सीता सहित सोहत परन निकेत। जिमि बासव बस अमरपुर सची जयंत समेत ॥ जोगवहिं प्रभुसिय लखनहिं कैसे। पलक बिलोचन गोलक जैसे ॥' (औ०) कवितावलीमें लक्ष्मणजीकेलिये बारबार प्यारके वचनोंका प्रयोग पाया जाता है। यथा, 'जलको गये लक्खन हैं लरिका परिखो पिय ठाढ़ि घरिक दुइ छाहैं'। लक्ष्मण जल लाने गये हैं, वे लड़के है, थक गये होंगे, एक दो घड़ी छायामें बैठ उनकी राह देख लीजिये, उन्हें आ जाने दीजिये, इत्यादि।

'दुलारा' शब्द प्रायः लाड़ले बेटेके अर्थमें आता है। इसीसे यही शब्द यहां वही नाता दरसानेके विचारसे दिया गया।

९ 'चातक चतुर राम स्याम घनके' इति। चातक कहकर श्रीराम-घनश्यामका अनन्य प्रेमी जनाया। ये दूसरेको स्वप्नमेंभी नहीं जानते, मानते। मानसमेंभी कहीं किसी देवीदेवतादिको इनका प्रणाम या पूजा सेवा नहीं देखी जाती। बल्कि ये परम भागवत श्रीशंकरजीकाभी अनादर करते पाये जाते हैं।

चातककी अनन्यतापर पद १६ 'रामनाम नव नेह गेहकी मनु हठि होहि पपीहा।' देखिये। पद १५ 'देहि मा मोहि पनु पेमु यहु नेमु निज राम घनश्याम तुलसी पपीहा' भी देखिये।

चातकका प्रेम स्वातीके श्याम मेघोंसे है। स्वातिबुंदकेलिये वह श्याम मेघोंको देखकर रट लगाये रहता है। किस मेघसे उसे स्वातिबुंद मिलेगा यहभी वह नहीं जानता। प्रेमी होकरभी वह मेघकी कोई सेवाभी नहीं करता। वह ऐसेका प्रेमी है कि जो प्रीतिकी रीतिभी नहीं जानता, जो 'प्रेमपथ कूर' है। इन कारणोंसे चातक 'चतुर' नहीं हैं। श्रीलक्ष्मणजी ऐसे स्वामीके प्रेमी हैं कि जो सेवकका आदर करते हैं, सेवककी सेवा समझते हैं। पुनः, वे सब प्रकारसे प्रभुका ऐश्वर्य और माधुर्य जानते हैं और माधुर्यमें उनकी सेवाभी जैसी कुछ चाहिये करते हैं। अतः इनको 'चतुर चातक' कहा।

१० श्रीभरत, श्रीसुमित्रा और श्री उर्मिलाजीकोही यहां कहा और किसीको नहीं, यह क्यों? इसलिये कि भरतजीपर इन्होंने क्रोध प्रगट किया था और कैकयीजीकोभी बुरा भला कहा था। इससे संभव था कि भरतजीको वे अच्छे न लगते। अतः उनका प्रेम कहा। दूसरे, भरतजी स्वयं श्रीरामजीके अद्वितीय प्रेमी हैं। उनकेभी प्रिय कहकर इनके विशेष रामचरणानुरागकी अतिशय प्रशंसा सूचित की। तीसरे, 'भरत भावते' कहकर इनके हृदयको विकाररहित जनाया।

श्रीसुमित्रा और श्रीउर्मिलाजीका निःस्वार्थ प्रेम है। उन्होंने राम-बनवासमें अपना स्वार्थ त्यागकर इनके परमधर्मकी रक्षा की। ऐसी

माताएँ और धर्मपत्नीयाँ भूरि भूरि सुकृत होनेपरभी कदाचित् कहीं मिलती हैं। इसलिये इन तीनोंको सबोंसे अधिक रामप्रेममय जानकर इन्हींका प्रेम लक्ष्मणजीपर दिखाया गया। रामसंबंधसेही ये सबको अतिशय प्रिय हैं, यह बात 'गायक जानकीनाथ गुणगणके' कहकर तब 'भावते भरतके' इत्यादि कहनेसेभी प्रगट होता है। विशेष पद ३८ के अंतिम नोटमें लिखा गया है।

'राम सुहाते तोहि जो तू सबहि सुहातो' को इन्होंने सत्य कर दिखाया। अब प्रश्न होता है कि 'सुमित्राजी तो सीताजीकोहीं इनकी मां कह चुकी हैं, तब उनके दुलारे क्यों कहा?' उत्तर यह कि उनके वचन तो ये भी हैं कि 'पुत्रवती जुवती जग सोई। रघुपति भगत जासु सुत होई॥ नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी।' एवं 'भूरि भाग भाजन भयेहु मोहि समेत बलि जाऊँ। जो तुम्हरे मन छांडि छल कीन्ह रामपद ठाऊँ॥' अतएव सच्ची पुत्रवती और सच्चा प्रेम जानकर उनका संबंधभी दिया गया। दूसरे, सीताजीको माँ तो कहा है और 'सुमित्रा सीता के दुलारे' ये वचन कविके हैं न कि सुमित्राजीके। तीसरे, यदि पाठक 'दुलारे' का 'प्यारे' अर्थ केवल ले लें तो यह शंकाही न रह जाय।

११ 'धनी धन तुलसीसे निर्धनके' इति। निर्धन अर्थात् ज्ञान, भक्ति आदि दैवी संपत्तिरहित।

३८ राग-धनाश्री

जयति[1] लक्ष्मणानंत भगवंत भूधर भुजगराज भुवनेस [2]भूभारहारी।
प्रलय पावक महाज्वालमाला बमन समन संताप लीलावतारी॥
जयतिदासरथि[3]समर[4]समरथसुमित्रासुअनसत्रुसूदनराम[5]भरतबंधो।
चारु चंपक बरन बसन भूषन धरन दिव्य तर भव्य लावन्यसिंधो॥
जयति गाधेय गौतम जनक सुखजनक विश्वकंटक कुटिल कोटि हंता।
बचन चय चातुरी परसुधर गर्बहर सर्बदा रामभद्रानुगंता॥

---

१ जयति-मु०, ७४ में नहीं है। २ भू-रा०, ह०, १५, ५१ ७४, आ०। भुव-भा०, बे०, ज०। ३ दासरथि-ह०, ५१, ७४, आ०। दासरथी-भा०, बे०, १५। दासरथ-रा०, ज०। ४ रा०, ह०, ज०, १५ में नहीं है। समर-भा० बे०, ५१, ७४, आ०। ५ भरत राम-७४।

जयति सीतेससेवासरस विषयरस निरस निरुपाधि धुर धर्मधारी।
बिपुल बलमूल सार्दुल बिक्रम जलदनादमर्दनु महाबीर भारी ॥
जयति संग्रामसागरभयंकर तरन[६] रामहितकरन[७] बर बाहु सेतू।
उर्मिलारवन[८] कल्यान मंगलभवन दास तुलसी दोष दवन[९] हेतू ॥

शब्दार्थ—भुजगराज=सर्पराज। अनंत=जिसके आदि अंतका पार न हो। यह शेषजी और लक्ष्मणजीका एक नाम है। यथा, 'जय अनंत जय जगदाधारा। तुम्ह प्रभु सब देवन्ह निसतारा।' (लं०) भूभार हारी=पद ३७ 'भंजनभुवनभार' भी देखिये। बमन=मुंहसे उगलनेवाले। लीलावतारी=लीला+अवतारी। लीला=मनुष्योंके मनोरंजनकेलिये किये हुए ईश्वरावतारोंका अभिनय। चित्तके उमंगसे जो व्यापार केवल मनोरंजनार्थ किया जाय। अवतारी=अवतार लेने वा शरीर धारण करनेवाले। दासरथि (दाशरथि) = दशरथजीके पुत्र। सत्रुसूदन=शत्रुके नाशक, शत्रुघ्नजी। चंपक=पद १४ देखिये। दिव्य भव्य=पद १५ (२) 'दिव्य पट भव्य भूषन बिराजै' देखिये। लावण्य = सौंदर्य। गाधेय = गाधिराजाके पुत्र विश्वामित्रजी। यथा, 'गाधितनय मन चिंता ब्यापी। बिनु हरि मरिहि न निसिचर पापी।', 'गाधिसुनु कह हृदय हँसि मुनिहि हरिअरइ सुझ।' (बा०) गौतम=सप्तर्षिमेंसे एक येभी हैं। ये बड़े तेजस्वी थे। रावणादि सब राक्षस इनसे डरते थे। दण्डकराजाका राज्य इनके शापसे भस्म होकर भयावन हो गया था और उसमें राक्षस रहने लगे थे। यथा, 'दंडकवन पुनीत प्रभु करहू। उग्र साप मुनिवर कर हरहू।' शापके विषयमें कथाए भिन्न भिन्न हैं। (मानस-पीयूष देखिये।) ये बड़े इंद्रियजित् थे। ब्रह्माजीने अहल्याको उत्पन्न किया। इंद्रादि सभी देवता उसके रूपपर मोहित हो गये। ब्रह्माजीने उसे गौतमजीके पास धरोहर रख दिया। बहुत काल बीत जानेपर ब्रह्माजीने आकर अपनी धरोहर मांगी। उन्होंने

---

६ बचन। ७ कर–रा०। ८ रमन–ह०, १५, वै०, दी०। रवन–औरोंमें। 'भवन' 'दवन' के साहचर्यसे 'रवन' उत्तम जान पड़ता है।
९ दमन–ह०, ज०। दवन–प्रायः औरोंमें।

दे दिया। ब्रह्माजीने इनके ब्रह्मचर्यसे प्रसन्न होकर अहल्या इन्हींको दे दी। महाराजा जनकजीके पुरोहित श्रीसतानंदजी इन्हींके पुत्र हैं। इंद्रने अहल्याका धर्म बिगाड़ा। इसीसे गौतमजीने दोनोंको शाप दे दिया। अहल्या पत्थर हो गयी। श्रीरामजीके चरणरजके स्पर्शसे उसका उद्धार हुआ। जनक=मिथिलाप्रदेशके राजा, श्रीजानकीजी और श्रीउर्मिलाजीके पिता, श्रीसीरध्वजजी ये बड़े भारी ज्ञानी, योगी और रामभक्त थे। वात्सल्यरसके उपासक थे। परमहंस श्रीशुकदेवजी आदि बड़े बड़े महर्षि आपसे ज्ञानकी दीक्षा लिया करते थे। आप योगी श्रीयाज्ञवल्क्यजीके शिष्य थे। विशेष मानस-पीयूषमें देखिये। कथा प्रायः सब जानते हैं। सुखजनक = सुखके उत्पन्न करनेवाले। कंटक = काँटा, विघ्नकर्ता। चय = पद १७ एवं आगे टि० ८ में देखिये। बचन चातुरी = वचन-रचनामें प्रवीणता। परसुधर = फरसा धारण करनेवाले, परशुराम। रामभद्रानुगंता = (रामभद्र + अनुगंता) श्रीरामचंद्रजीके अनुगामी। रामभद्र = रामचंद्रजी। यथा, '**कहहिं लहेउ एहि जीवन लाहू। भेंटेउ रामभद्रभरि बाहू॥**' भद्र = कल्याणस्वरूप। अनुगंता = आज्ञाकारी, सेवक, पीछे पीछे चलनेवाला। सीतेस (सीता+ईश) = सीतापति। सरस = भावपूर्ण, प्रसन्नचित्त, सहृदय, आनंदप्रेमयुक्त, (सेवा बिधिमें) निपुण, अनुरागयुक्त। बिषयरस = विषयका आनंद वा मज़ा। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध ये पाचों पंचज्ञानेन्द्रियोंके विषय हैं। श्रवणका विषय शब्द, त्वचाका स्पर्श, नेत्रका रूप, जिह्वाका रस और नासिकाका गंध है। विषयरस अर्थात् भोगविलास, विषयमाधुरी। यथा, '**राम पुनीत विषयरस रूखे। लोलुप भूमि भोगके भूखे॥**' (अ०) निरस = रसरहित, रूखा, विरक्त। यथा, '**रे मन जग सों निरस ह्वै सरस राम सों होहि। भलो सिखावन देत है निसदिन तुलसी तोहि॥**' (दोहावली) धुर धर्म धारी = पद २५ देखिये। शार्दूल = अमरकोषमें शार्दूल व्याघ्रका पर्यायवाची दिया है। यथा, '**शार्दूल द्वीपिनौ व्याघ्रे।**' (अ० को० २।५।१) गंधहस्तीके मारनेवाले व्याघ्रको शार्दूल कहते हैं। साधारणतया इसका अर्थ लोग

सिंह करते हैं। जलदनाद = जलद, मेघ, वारिद, घन ये सब पर्याय हैं। गोस्वामीजीने जलदनाद, मेघनाद, वारिदनाद और घननाद ये सभी नाम प्रयुक्त किये हैं। तरन (तरण) = पार करनेवाले, नाव, जहाज, पार करनेकेलिये। पद ११ देखिये। रवन टि० १६ में देखिये।

पद्यार्थ—अनंत, षडैश्वर्यसंपन्न, पृथ्वीको धारण करनेवाले, सर्पराज, लोकोंके स्वामी, पृथ्वीका भार हरनेवाले, (प्रलयके समय) प्रलयाग्निकी भारी ज्वालासमूहोंके उगलनेवाले, (भक्तोंके) संतापके शान्त करनेवाले और लीलासे एवं लीलाकेलिये अवतार लेनेवाले (श्रीलक्ष्मणजी)! आपकी जय हो। १। समरमें समर्थ, श्रीसुमित्राजीके पुत्र, शत्रुओंके नाश करनेवाले, (एवं शत्रुघ्न), राम और भरतके भाई, सुंदर चंपाके पुष्पके समान गौरवर्ण, अत्यन्त दिव्य (देवताओंकेसे, अलौकिक) और प्रकाशमान शुभ वस्त्र और भूषण धारण करनेवाले, शोभासौंदर्यके समुद्र, दशरथजीके पुत्र आपकी जय हो। २। गाधिपुत्र श्रीविश्वामित्रजी, गौतमजी और श्रीजनकजीको सुख उत्पन्न करनेवाले, संसारके कंटकरूप, करोड़ों कुटिल राक्षसोंके मारनेवाले, वचनोंकी चातुरीसे परशुरामजीका गर्व हरनेवाले, सदैव श्रीरामचंद्रजीके अनुगामी! आपकी जय हो। ३। श्रीसीतापति रामचद्रजीकी सेवामें सरस, (अनुराग आनंदयुक्त और निपुण) विषयरससे विरक्त, धर्मकी धुरीको निर्विघ्न धारण करनेवाले, भारी और बहुत बलके मूल अर्थात् महाबली, शार्दूलसमान पराक्रमवाले, मेघनादका वध करनेवाले, भारी महावीर! आपकी जय हो। ४। संग्रामरूपी भयंकर समुद्रको पार करनेवाले और श्रीरामचंद्रकेलिये (इस भयंकर संग्राम-सागरसे पार उतारने) अपनी श्रेष्ठ भुजाओंको सेतु बनानेवाले, (अर्थात् जैसे समुद्रपर सेतुबंधन होनेसे लोग सहजही पार हो जाते हैं वैसेही श्रीलक्ष्मणजीकी श्रेष्ठ भुजाएँही राम रावण संग्रामरूपी भयंकर समुद्रको सुगमतासे पार करनेमें सेतुरूप साबित हुईं। इन्होंने मेघनादवध करके समरविजय वा रावणवधको सुगम कर दिया।) श्रीउर्मिलाजीके पति, कल्याण और मंगलके धाम, और तुलसीदासके दोषोंके नाश करनेमें कारणस्वरूप (श्रीलक्ष्मणजी)! आपकी जय हो। ५।

टिप्पणी—१ इस पदमें विशेषतः ऐश्वर्य स्वरूपकी वन्दना है। इसीसे भगवंत, अनंत, लक्ष्मण आदि ऐश्वर्यद्योतक नाम और विशेषण दिये गये हैं। 'लक्ष्मण' ऐश्वर्यसूचक नाम है। श्रीरामचरितमानसमें जहां ऐश्वर्यका संबंध है वहां यही नाम दिया गया है। यथा, 'लच्छन-धाम राम प्रिय सकल जगत आधार। गुर बसिष्ठ तेहि राखा लछिमन नाम उदार॥' (बा०) यह 'लक्ष्मण' शब्दका अर्थ है।

२ (क) 'अनंत' अर्थात् आपका पार किसीने न पाया। आपके गुण, चरित, रूप, प्रताप आदिका अंत नहीं। यथा, 'तात प्रताप प्रभाउ तुम्हारा। को कहि सकइ को जाननिहारा॥' (देववाक्य। अ०) पुनः 'अनन्त' से देशानवच्छिन्न, कालानवच्छिन्न और वस्त्वनवच्छिन्न जनाया। 'भूधर', 'भुजगराज' और 'भुवनेस' से 'जगत् आधार' (जगदाधार) सूचित किया। 'भूभारहारी' से अवतार और अवतारका कारण एवं भुवनोंके पालनपोषणकर्ता जनाया। मेघनादवधपर ऐसेही विशेषणोंसे देवताओंने आपकी स्तुति की है। यथा, 'जय अनंत जय जगदाधारा। तुम्ह प्रभु सब देवन्ह निसतारा॥' उस स्तुतिके सब भाव इस तुकमें सूचित कर दिये हैं। (विशेष 'मानस-पीयूष' में देखिये।) भगवंत कहकर आपको उत्पत्ति, पालन और संहारकेलिये समर्थ जनाया। भुवनका रक्षण करनेसे 'भुवनेस' कहा। इसी तरह श्रीहनुमान्‌जी एवं श्रीशिवजीको 'भुवनभर्ता' (२५), 'भुवनैकभर्ता' (२९), 'लोकनाथ' (१२) विशेषण दिये गये हैं।

(ख) 'प्रलय पावक' इति। इससे जनाया कि आप प्रलयके करनेवाले हैं। प्रलय करनेलिये अग्निकी विकराल ज्वालाएँ अपने सहस्रोंमुखोंसे उगलकर ब्रह्माण्डका नाश करते हैं। यथा, 'जुग षट भानु देखे प्रलय कृसानु देखे सेषमुख अनल बिलोके बार बार हैं।' (क०) ये मेघोंके बचन हैं। प्रत्येक प्रलयमें ऐसा होता है। उस अग्निको प्रलयके बादलभी नहीं बुझा सकते। इसीसे 'महाज्वालमाला' कहा।

(ग) 'समन संताप' इति। पद २५ (१) लोकगन सोक संतापहारी' देखिये। इसकेलिये अवतार लेना कहा। एवं यह बताया कि जिनका यह अवतार है वे कैसे ऐश्वर्यवाले हैं।

(घ) 'भुजगराज, महाज्वालमाला वमन' से विषधर, क्रोधमय, विकराल प्रतीत होते हैं। अतः 'समन संताप' कहकर जनाया कि वे परम कृपालुभी हैं। भक्तोंके संताप मिटाते हैं। उसीसे माधुर्यलीलामें नरशरीर धारण करते हैं। ये दोनों विरोधी गुण होनेसे निश्चय नहीं होता कि कठोर स्वभाव करालरूप हैं या कृपामय कोमल स्वभाव सुभग सौम्य-रूप हैं ? इनका अंत कोई नहीं पाता ! अतः 'अनंत भगवंत' कहा।

३ 'लीलावतारी' इति। वे० भू० पं० रामकुमारदासजी कहते हैं कि शास्त्रोंमें श्रीलक्ष्मणावतारकेलिये तीन तरहके प्रमाण विशेषरूपसे पाये जाते हैं। यथा, '**तत्र ज्ञानबल द्वान्द्वाद्वयं संकर्षणं हरेः। भगवान-च्युतोऽपीत्थे षड्गुणेन समे धिताः। बल ज्ञान गुणौ तस्य स्फुटौ कार्यवशान्मुने ॥**' (तत्त्वत्रयभाष्ये) प्रमाणोंसे चतुर्व्यूह रूपोंमें ज्ञान तथा बलयुक्त संकर्षण रूपभी ब्रह्मका एक रूप हैं जिसे विश्वभी कहते हैं। '**अकाराक्षर संभूतः सौमित्रिविश्वभावनः।**' (अथर्ववेद) इस श्रुतिमें '**विश्वभावन संकर्षण**' नामक व्यूहका अवतार लक्ष्मणजीको कहा गया। नारदपांचरात्रमें '**क्षीराब्धीशस्तु लक्ष्मणः**' से शेषशायी श्रीमन्नाराय-णका अवतार लक्ष्मणजीको कहा गया। '**शेषस्त्वभूल्लक्ष्मणः।**' (पाद्मे) और '**अवतार साहसी सहसफनके**' से लक्ष्मणजीको शेषावतार कहा गया। कल्पभेदसे तीनोंही ठीक हैं। व्यूहात्मक संकर्षण तथा शेषशायी श्रीमन्नारायणको एक विशेषणसे विशेषित किया जा सकता है। क्योंकि ब्रह्मके विग्रहमें आकारभेद हुआ करता है। स्वरूपसे ब्रह्ममें (कितनेभी उसके रूप हों) कोई भेद नहीं। शेषको उन विशेषणोंसे इसलिये विशेषित नहीं कर सकते कि वे नित्यमुक्त जीवोंमेंसे एक जीव विशेषही हैं। इसीलिये सर्वशास्त्रज्ञ श्रीगोस्वामीजीने पद ३७ में लक्ष्मणजीको शेषावतार कहा और यहाँ पद ३८ में प्रथम चरणमें नारायणावतार

कहकर तब लीलावर्णन करते हैं। 'अनंत' शब्द शेषमें रूढ़ि है। किंतु भगवंत शब्दभी गौणरूपसे शेषकेलिये कह सकते हैं। अनंतत्व ब्रह्मका गुण एवं विशेषण है। † अतः अनंत और भगवंत शब्द ब्रह्मके विशेषण हैं। 'भुवनेश' के साथका ईश शब्द समास करनेसे भूधर और भुजगराज तथा भवन तीनोंके साथ संघटित होता है। इस उत्तरार्धका अर्थ यह है कि "प्रलयपावक महाज्वालमालावमन, समन संताप' आदि जिनकी लीला है उन शेषके आप अवतारी अर्थात् कारण हैं।'

४ 'जयति दासरथि समर समरत्थ' इति। (क) लीलावतारी कहकर अब बताते हैं कि कहां अवतार लिया और किस रूपसे? 'दाशरथि' कहकर रघुकुलमें चक्रवर्ती महाराज दशरथके यहाँ जन्म लेना बताया जिसमें ऐश्वर्य छिपा रहे। दशरथके पुत्र तो औरभी हैं? इसलिये 'सुमित्रा-सुवन' कहकर रानी सुमित्राजीके गर्भसे जन्म बताया। 'सुमित्रासुवन' कहकर यहभी जनाया कि सुमित्राजी इनकी माता होनेसे अपनेको पुत्रवती मानती हैं। (ख) 'सत्रुसूदन राम भरत बंधो' इति। शत्रुसूदन 'राम' का विशेषणभी हो सकता है और स्वतंत्ररूपसे शत्रुघ्नजीकाभी अर्थ दे सकता है। असमंजस केवल यह हो जाता है कि नाम क्रमसे नहीं रह जाते। राम भरत शत्रुघ्नके भाई कहनेका भाव यह होगा कि दशरथगृहमें आप इन तीनोंके भाईरूपसे जन्म लेते हैं। इससे यहभी जनाते हैं कि दशरथजीके यहां आकाशवाणीके अनुसार ब्रह्म अंशोंके सहित इन चार रूपोंसे प्रकट हुआ है। पुनः, भाव कि आप भगवान् राम, परमभागवत भरत और भागवत भक्त शत्रुघ्न तीनोंके बंधु हैं।

५ 'चारु चंपक' यह रूपका वर्णन है। चंपाके सदृश पीत (तप्त स्वर्ण सदृश) वर्ण, दीप्तिमान, मृदुमूर्ति, देखनेमें सुकुमार पर बहुत पुष्ट, और सुगंधित शरीर जनाया। ये सब गुण चंपामें हैं। 'दिव्यतर भव्य' का भाव कि अवतारके साथ आपके भूषण वस्त्रकाभी अवतार होता है

†ईश्वरके स्वरूप, रूप, गुण और चरित्रादि सब अनंत हैं। यथा, 'सत्यं ज्ञानमनतं ब्रह्म' (तै० ब्रा० १), 'नित्यं विभुं सर्वगतं सु-सूक्ष्मम्'।

जो कभी मलिन नहीं होते। नित्य एकसे बने रहते हैं। 'लावण्यासिंधो' पद ३७ टि० ५ 'रूपके निधान' में देखिये। पुनः भाव कि वह समुद्र खारे जलका है और आप परमाशोभारूपी जलभरे समुद्र हैं। आपके सौंदर्यकी थाह नहीं। जो देखता है वह उसीमें डूब जाता है। 'सोभासींव सुभग दोउ बीरा।' 'सिंधु' कहकर जनाया कि इनके समान यही हैं। 'यह छबि सखि पटतरिय काही।', 'कहहु सखी अस को तनुधारी। जो न मोह यहु रूप निहारी (बा०)

६ 'जयति गाधेय गौतम जनक सुखजनक' इति। ऐश्वर्य स्वरूप, उसके अवतारका हेतु, अवतार और अवतारशरीर कहकर अब अवतारका कार्य कहते हैं। पूर्व दाशरथी समर समरथ कहा। अब समर सामर्थ्यके उदाहरण देते हैं। 'गाधेय गौतम जनक सुखजनक' इति। ये तीनों बड़े तेजस्वी, वीर, प्रतापी और सामर्थ्यवान् थे। इनकीभी चिन्ताओंको हरकर इनके सुखके कारण हुए। दाशरथी कहकर जनाया था कि जैसे दशरथजी इन्द्रके सहायक होते थे वैसेही उनके पुत्र लक्ष्मण इंद्रावतार गाधिके पुत्र गाधेयके सहायक हुए। पुनः 'गाधेय'का भाव कि ऋषियोंको चिन्ता न होनी चाहिये। ये राजाके पुत्र हैं। अतः चिंता हुई थी कि निशिचर वध कैसे हो? इसी संबंधमें मानसमें कविने दिया है। यथा, "बिश्वामित्र महामुनि ज्ञानी। बसहिं बिपिन सुभ आश्रम जानी॥ जह जप जग्य जोग मुनि करहीं। अति मारीच सुबाहुहि डरहीं॥ देखत जग्य निसाचर धावहिं। करहिं उपद्रव मुनि दुख पावहिं॥ गाधितनय मन चिंता ब्यापी। हरि बिनु मरिहि न निसिचर पापी" विश्वामित्रजी स्वयं बड़े पराक्रमी और समर्थ थे। दूसरा स्वर्ग और ब्रह्मांड रचनेकी जिनमें शक्ति थी, जिन्होंने शापसेही वसिष्ठजीके सौ पुत्रोंको तुरत भस्म कर दिया, बड़े बड़े कार्य जिनके हैं, जो क्षत्रिय-शरीरमेंही ब्रह्मर्षि हो गये, जो पद सिवाय ब्राह्मणके और कोई प्राप्त न कर सका ऐसे महात्माकेभी सुखके हेतु लक्ष्मणजी हुए। अपने सहायक जानकर मुनिने लक्ष्मणजीकोभी दशरथमहाराजसे माँगा था। यथा, गी० ४१ 'चहत महामुनि जाग जयो। नीच निसाचर देत दुसह दुख

कुस तन ताप तयो॥ सापे पाप नये निरंतर खल तब यह मंत्र ठयो।' पुनः, "प्रभु अवतरेउ हरन महि भारा। 'करी बिनती आनउँ दोउ भाई॥" 'अनुज समेत देहु रघुनाथा। निसिचर बध मैं होब सनाथा॥' एवं "पुरुषसिंह दोउ वीर हरषि चले मुनि भय हरन॥" श्रीरामजीके साथ साथ इन्होंनेभी निशाचरोंका संहार किया। रामजीने सुबाहुको मारा और 'अनुज निसाचर कटक सँघारा॥ मारि असुर द्विज निर्भयकारी। अस्तुति करहिं देवमुनि झारी'॥ निर्भय करना यही 'सुख' का देना है जैसा 'स्तुति' करनेसे प्रगट है।

जनकसे उनके कहे हुए बचनोंने उनका सुख झलक रहा है। यथा, 'ताड़का सँहारि मख राखि नीके पाले ब्रत कोटि कोटि भट किये एक एक घायके। एक बान बेगही उड़ाने जातुधान जात सुखि गये गात हैं पतौअ भये बायके'; 'मम हित लागि नरेस पठाये॥ मख राखेउ सब साखि जग जिते असुर संग्राम॥'

(ख) 'गौतम सुखजनक' इति। बाबू शिवप्रकाशजी लिखते हैं कि "यद्यपि अहल्याका उद्धार श्रीरामजीने किया तथापि उनकी कर्तव्यता श्रीलक्ष्मणजीसे भिन्न वा पृथक् नहीं है। विना इनके श्रीरामजी अयोध्यासे अकेले जातेही कब? विश्वामित्रजी इसे भली भाँति जानते थे। इसीसे उन्होंने दशरथजीसे 'अनुज समेत' रघुनाथजीको माँगा और दोनोंको साथ लेकर गये। श्रीमद्गोस्वामीजी इनके विषयमें लिखते हैं, "रघुपति कीरति बिमल पताका। दंड समान भयेउ जसु जाका॥"

श्रीरघुनाथजीकी किर्ति पताकाको ऊँचा करने और जगत्में फहरानेके-लिये आप 'दंड' (डंडे) के समान हैं जिसपर पताकाका आधार है। संभव है कि लक्ष्मणजीनेही शिलाको देखकर श्रीरघुनाथजीसे प्रश्न करके उनकी दृष्टि उधर आकर्षित की हो या शिलाकी तरफ़ इशारा किया हो। तब उन्होंने विश्वामित्रजीसे पूछा हो कि यह क्या है? नगर दर्शन प्रकरणमेंभी ऐसाही देख पड़ता है। लक्ष्मणजीको उत्कण्ठा होती है और भगवान् रामचन्द्रजी उनको दिखाते हैं।

महर्षि गौतम महान् तेजस्वी थे। उनके वचनकी रक्षाकेलिये अहल्या-जीको शापसे मुक्त करानेमें आप सहायक हुए। पति पत्नीका पुनर्संयोग

होनेसे सुख हुआ। उनको इतना सुख हुआ कि वह स्वयं आकर उसी समय अहल्याजीको अपने साथ ले गये।

(ग) 'जनक सुखजनक' इति। श्रीजनकजी महाराजको बड़ी चिंता और ग्लानी थी कि "हमने विवाहकेलिये धनुष तोड़नेकी प्रतिज्ञा कर दी है। देवता, दैत्य, राक्षस कोईभी उसे अपनी जगहसे हटाभी न सका। विवाह कैसे होगा? यद्यपि राम सब प्रकार सीताके योग्य वर हैं तथापि प्रतिज्ञा तोड़कर उनके साथ विवाह कर नहीं सकते। ऐसा करें तो उसमेंभी हँसी है? यथा, "**कुँअरि मनोहरि बिजय बड़ि कीरति अति कमनीय। पावनिहार बिरंचि जनु रचेउ न धनु दमनीय॥ सुकृत जाइ जौ पन परिहरउं। कुँअरि कुँआरि रहउ का करउँ॥ जौ जनतेउं बिनु भट भुइं भाई। तौ पन करि होतेउँ न हँसाई॥**" पुनः, '**मेटहु तात जनकपरितापू**' विश्वामित्रजीके इन वचनोंसेभी श्रीजनकजीका दुखित होना स्पष्ट है। इसी तरह गीतावलीमेंभी श्रीजनकजीको दुखित और अधीर कहा है। यथा, "**बोले जनक बिलोकि सिया तन दुखित सरोष अधीर। डग्यो न धनु जनु बीर बिगत महि किधौं कहुं सुभट दुरे॥**" (पद ९०) जनकमहाराजके '**बीर बिहीन मही मैं जानी।**' '**जनु बीर बिगत महि**' इत्यादि वचन लक्ष्मणजी न सह सके। ये वचन उनको बाणसे लगे और वे सकोप वचन बोले। यथा, "**रघुबंसिन्ह महं जहं कोउ होई। तेहि समाज अस कहै न कोई॥ जनक कही जसि अनुचित बानी। बिद्यमान रघुकुलमनि जानी॥ तोरउँ छत्रक दंड जिमि तव प्रताप बल नाथ। जो करऊँ प्रभुपद सपथ कर न धरउँ धनु भाथ॥**" इन वचनोंको सुनकर जनकजी सकुचा गये और सभीको सुख हुआ। यथा, '**सिय हिय हरष जनक सकुचाने॥ गुर रघुपति सब मुनि मन माहीं। मुदित भये पुनि पुनि पुलकाहीं॥**' न ये बोलते न मुनि श्रीरामजीको धनुष तोड़नेकी आज्ञा देते और न जनक महाराजका दुःख मिटता। क्योंकि ये तो धनुष तोड़ते नहीं और तोड़तेभी तो केवल कौतुक और बल दिखानेकेलिये। यथा, '**कौतुक करऊँ बिलोकिय सोऊ।**' कारण कि ये तो सीताजीको माता

मानते थे। गीतावलीमें कहा है, 'मेरो अनुचित कहत लरिकाई सब पन परमित आन भांति सुनी गई है। नतरु प्रभु प्रताप उतरु चढ़ाइ चाप दैत्यों पै दिखाइ बल फल पापमइ है' ॥८३॥ गीतावलीमेंभी इस अवसरपर जनकका हर्ष वर्णन किया गया है। यथा, 'हरषे पुरनरनारि सचिव नृप कुँवर कहे कल बैन।' श्रीरामचरितमानसमें परशुराम गर्वहरणके पश्चात् श्रीजनकजी स्वयं अपना हर्ष अपने वचनोंमें प्रगट कर रहे हैं। यथा, 'मोहि कृत्यकृत्य कीन्ह दोउ भाई।' अतएव लक्ष्मणजीको 'जनक सुख जनक" कहा।

७ 'विश्वकंटक कुटिल कोटि हंता' इति। चरित प्रसंगका जो क्रम चल रहा है उसके अनुसार यहां यज्ञ रक्षण चरित अभिप्रेत जान पड़ता है। यथा, 'कोटि कोटि भट किये एक एक घायके'। (गीतावली)

८ 'बचन चय चातुरी परसुधर गर्बहर' इति। यहाँ गर्वहरणमें 'परशुधर' नाम कहा। यह स्वयं निरादर वा अपमानसूचक है। लक्ष्मणजी रामप्रति इनके वाक्य सुनकर प्रथमही इनका अपमान करते हुए बोले और अंततक अपमानही करते रहे। मानसमें कविने इनकी वार्ताका प्रारंभ 'परसुधर' हीसे कियाभी है। 'बोले परसुधरहिं अपमाने'। दूसरे, इनसे वाक्यवादमें परशुरामने बारंबार अपने फरसेका नामभी लिया है। यथा, 'बोले चितइ परसकी ओरा', 'परसु बिलोकु महीपकुमारा', 'परसु मोर अति घोर'। परशुरामजीको बड़ा गर्व था कि मैंने सहस्त्रार्जुनका वध किया। २१ बार पृथ्वी निःक्षत्रिय कर दी। कोई मेरा सामना करनेवाला नहीं है। इत्यादि गर्वित वचनोंके उत्तरमें लक्ष्मणजीने कहाभी है, 'अहो मुनीस महाभट मानी'। अतः 'परसुधर गर्बहर' कहा अर्थात् उनको जो अपने फरसेका बड़ा भारी अभिमान था वह दूर कर दिया। यथा, 'तासु गर्व जेहि देखत भागा'।

'बचनचयचातुरी' पर पूरा प्रसंग मानसपीयूषतिलकमें पढ़ने योग्य है। शत्रु स्वयं पराजित होकर वचनकी प्रशंसा करता है। 'जयति बचन रचना अति नागर'। वचनही वचनसे पराजित हो गये। अंतमें गर्वहरण होनेपर उन्होंने क्षमा माँगी है। 'छमहु छमामंदिर दोउ भ्राता'।

कवितावलीमें परशुरामगर्वहरणप्रसंग थोड़ेहीमें खूब कह दिया गया है। यथा, " भूपमंडली प्रचंड चंडीस कोदंड खंड्यो चंड बाहुदंड जाको ताही सों कहतु हौं। कठिन कुठार धार धारिबेको धीर ताहि बीरता विदित ताको देखिये चहतु हौं ॥ तुलसी समाज राज तजि सो बिराजै आजु गाज्यौ मृगराज गजराज ज्यों गहतु हौं। छोनीमें न छांड्यौ छप्यौ छोनिप छौना छोटो छोनिपछपन बांको विरुद बहतु हौं ॥ ' इति परशुरामगर्वः। अब लक्ष्मणजीका उत्तर सुनिये। " सुजस तिहारो भरो भुवननि भृगुनाथ प्रगट प्रताप आपु कहो सो सबै सही। टूट्यो सो न जुरैगो सरासन महेस जू को रावरी पिनाकमें सरीकता कहा रही ॥ " इसका उत्तर न देते बना तब कौसिकजीसे बात करने लगते है। यथा, " गर्भके अर्भक काटन को पटु धार कुठार कराल है जाको। सोइ हौं बुझत राजसभा धनु को दल्यो हौं दलिहौं बल ताको ॥ लघु आनन ऊतरु देत बड़ो लरि है मरि है करि है कछु साको। गोरो गरूर गुमान भरो कहौ कौसिक छोटो सो ढोटो है काको ॥"

' चय ' के औरभी अर्थ ये हैं। किला, शहरपनाह (परकोटा) और नींव (बुनियाद)। ये सभी अर्थ यहां घट सकते हैं। वचन किला या नींव है जो बड़ी चतुराईसे दृढ़ बनायी गयी हैं कि हिल न सके, परशुरामजी उसको तोड़ न सके। मानस मुखबंदमें ' बर बानी ' को घाट और परशुरामजीके क्रोधको ' घोर धार ' कहा है। यथा, ' घोर धार भृगुनाथ रिसानी। घाट सुबद्ध राम बर बानी ॥ ' (बा०)

प्रायः सभी टीकाकारोंने ' समूह ' अर्थ किया है। वीर कविजीने ' वचनोंकी अपार चतुराई ' और वि० ने ' चतुराई भरी बातोंसे ' ये अर्थ किये हैं।

९ परशुरामजी और विश्वामित्रजी राजा जन्हुके पुत्र अज, अजके बलाकाश्व और बलाकाश्वके कुशिक हुए। कुशिकने पुत्रप्राप्तिकेलिये कठिन तपस्या की, जिससे इंद्र स्वयं उनके पुत्र हुए। पुत्रका नाम गाधि था। ये कन्नौजके राजा थे। गाधि महाराजने संतान प्राप्तिकी इच्छासे

वनमें रहकर यज्ञानुष्ठान किया। यज्ञसे उन्हें एक अनुपम सुंदरी कन्या प्राप्त हुई जिसका नाम सत्यवती हुआ। ऋचीक महर्षिने उसकेलिये राजासे याचना की। तब राजाने उनसे शुल्कमें चन्द्रमासमान कान्तिवाले और वायुसमान वेगवान् एक हजार घोड़े माँगे जिनके एक कान श्यामवर्णके हों। मुनिने वरुणसे वैसे घोड़े माँगे। वरुणने कहा कि जहाँ आपकी इच्छा होगी वहीं ऐसे एक हज़ार घोड़े प्रकट हो जायँगे। तब मुनिने कन्नौजके पास गंगातटपर आकर उन घोड़ोंका चिंतवन किया और वे प्राप्त हो गये। महर्षि ऋचीकने वे घोड़े राजाको दे दिये। तब शापके भयसे राजाने अपनी कन्या उनको दे दी। (महाभारत अनुशासनपर्व)

एक बार महर्षिने सत्यवतीपर अत्यंत प्रसन्न हो वर माँगनेको कहा। जब उसे यह मालूम हुआ कि पति मुझपर प्रसन्न हैं और वर देना चाहते हैं तो उसने यह समाचार मातासे कहा। माताने उससे कहा, 'बेटी! तुम्हारे पतिको मुझपरभी कृपा करनी चाहिये। उनसे कहो कि वे मुझेभी पुत्र प्रदान करें। वे सब कुछ करनेमें समर्थ हैं। सत्यवतीने पतिके पास जाकर माताकी बात कही। उन्होंने कहा, 'मेरी कृपासे तुम दोनोंको गुणवान् पुत्र प्राप्त होगा। तुम्हारी माता ऋतुस्नानके बाद पीपलके वृक्षका आलिंगन करें और तुम गूलरका। मैंने दो मंत्रपूत चरू तैयार किये हैं। यह तुम खा लेना, दूसरा माँको देना' ।*

*१ महाभा० शान्तिपर्वमें कथा इस प्रकार है कि एक बार पत्नीपर बहुत प्रसन्न होकर महर्षि ऋचीकने सत्यवती और गाधिको पुत्र देनेके-लिये दो चरू बनाये और अपनी पत्नीको बुलाकर दोनों चरू उसे देकर उससे कह दिया कि 'यह तुम खा लेना'। पत्नीको समझाकर मुनि वनमें तपस्या करने चले गये। उसीसमय राजा गाधि पत्नीसहित आश्रमपर आये। सत्यवती बड़ी प्रसन्नताके साथ चरु लिये हुए माताके पास आयी और मुनिकी कही सब बात कह दी। माताने भूलसे अपना चरु सत्य-वतीको दे दिया।

सत्यवतीने सब बात माँसे कह दी। माँने कहा, 'बेटी! तुम्हारे स्वामीने मंत्रसे अभिमंत्रित करके जो चरू तुम्हारेलिये तैयार किया है वह मुझे दे दो और मेरा तुम ले लो। इसीप्रकार हम लोग वृक्षोंमेंभी अदल बदल कर लें। मैं तुम्हारी माँ हूँ। यदि मेरी बात माननेयोग्य समझो तो ऐसाही करो।' (भीष्मवाक्य युधिष्ठिरप्रति) इस प्रकार सत्यवतीने माँ-वाला और माँने कन्यावाला चरू खा लिया। दोनों गर्भवती हुईं।

मुनि जब वनसे लौटे तो सत्यवतीकी अवस्था देख वे उससे बोले, 'चरूके बदल जानेसे तुम्हारा पुत्र क्षत्रिय होगा। ब्राह्मण होते हुएभी वह क्षत्रियोंके आचरण करेगा।' यह सुनकर वह काँप उठी और बारंबार प्रार्थना करने लगी कि 'मुझे ब्राह्मणरहित पुत्र होनेका आशीर्वाद न दीजिये। आप समर्थ हैं। मुझे शान्त और सरल पुत्रही दीजिये। मेरा पौत्र भलेही उग्र स्वभावका हो।' तब मुनिने कहा कि ऐसाही होगा। इस तरह सत्यवतीके महर्षि हुए और जमदग्निजीके प्रसेनजित् राजाकी बेटी रेणुकासे पांच पुत्र हुए जिनमेंसे सबसे छोटे परशुरामजी थे। (शान्तिपर्व)

परशुरामजीने गंधमादनपर्वतपर जाकर शिवजीको प्रसन्न कर उनसे अनेकों दिव्य अस्त्र और अत्यंत तेजस्वी परशु प्राप्त किया। परशुरामजीने इस परशुसे सहस्त्रार्जुनको कुलसहित काटकर पिताका बदला चुकाया और उसी कोपसे उन्होंने एक्कीस बार पृथ्वीको निःक्षत्रिय किया।

गाधिराजाके पुत्र विश्वामित्र हुए। कुशिकवंशीय होनेसे वे कौशिक और गाधिपुत्र होनेसे गाधेय कहलाये। कई बार वसिष्ठजीसे हारनेपर

---

२ वनपर्वमें परशुरामजीके शिष्य अकृतव्रणने यह कथा इस प्रकार कही है कि 'सत्यवतीके साथ ऋर्चीकका विवाह हो जानेपर महर्षि भृगुजी आये और पुत्रको सपत्नीक देख प्रसन्न हो उन्होंने सत्यवतीसे कहा, 'सौभाग्यवती वधू! तुम वर माँगो। तुम्हारी जो इच्छा होगी वही मैं दूंगा।' उसने अपने और अपनी मांकेलिये पुत्रकी याचना की। आगेकी कथा प्रायः वैसीही है जैसी ऊपर दी गयी है। केवल 'ऋचीक' की जगह 'भृगु' हैं।

इन्होंने क्षत्रियबलको तुच्छ मान तपस्या कर महर्षि पदवी प्राप्त की। विश्वामित्र और परशुराम दोनों बहुत प्रसिद्ध हैं।

१० 'सर्वदा रामभद्रानुगता' इति। अनुगंतामें दोनों भाव हैं। सेवक हैं और सदा साथ साथ रहते हैं। आपने कभी साथ नहीं छोड़ा। सब कार्योंमें सदा हाथ बटाते रहे हैं।

११ (क) 'जयति सीतेस सेवा सरस' इति। 'सीतेस' का भाव कि जो सीता पराशक्ति हैं, जो '**उमा रमा ब्रह्माणि बंदिता। जगदंबा संततमनिंदिता॥ जासु कृपाकटाच्छ सुर चाहत चितवन सोइ।**' है; '**जासु अंस उपजहिं गुनखानी। अगनित उमा रमा ब्रह्मानी।**' और जो श्रीरामजीसे अभिन्न हैं, परम करुणामयी और कृपाल हैं, उनके पति। पुनः, 'सीतेस सेवा' का भाव कि सीताजी जैसी सेवा अपने स्वामीकी करती हैं। यथा, "**पति अनुकूल सदा रह सीता। सोभा खानि सुसील बिनीता॥ जानति कृपासिंधु प्रभुताई। सेवति चरण कमल मन लाई॥ जेहि बिधिकृपासिंधु सुख मानइ। सोइकर श्री सेवा बिधि जानइ॥**" उ०

इसी प्रकार उनकी प्रभुता जानकर इनकी सब प्रकार प्रेमपूर्वक सेवा करते हैं। पुनः, 'सीतेस सेवा' कहकर जनाया कि आप श्रीसीताजी और उनके पति, दोनोंकी सेवामें मन, कर्म और बचनसे अत्यंत अनुरक्त रहते हैं।

(ख) 'सेवा सरस' इति। भाव कि सेवाधर्म परम कठिन है। यथा, '**सबते सेवक धरम कठोरा।**' आप इस परम कठिन धर्मको सरसतासे करते हैं। अत्यन्त अनुराग बढ़ाकर मन कर्म वचनसे सब प्रकारकी सेवा करते हैं। अंबा श्रीसुमित्राजीका उपदेश है कि, "**सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई॥ तुम्ह कहँ बन सब भाँति सुपासू। सँग पितु मातु राम सिय जासू॥ जेहि न राम बन लहहिं कलेसू। सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू॥ उपदेसु यहु जेहि जात तुम्हरे राम सिय सुख पावहीं। पितु पातु प्रिय परिवारु पुर सुख सुरति बन बिसरावहीं॥**" एवं '**सिय रघुबर सेवा सुचि हो रहौ तौ जानिहौं सही सुत मेरो।**' (गीतावली) और ऐसी सेवा इन्होंने कीभी है। दिनमें सब सेवा करतेही

थे और रात्रिमें बराबर जागते, पहरा देते थे। न दिनमें सोये न रात में। यह बात ग्रन्थकारने मानसमें उनकी एक दिनकी चर्या लिखकर प्रकट कर दी है। शृङ्गवेरपुरमें यह सब सेवा दिखायी है। फिर चित्रकूटमें भी सेवाकी रीति दिखायी है। यथा, '**सेवहिं लखन सीय रघुबीरहिं। जिमि अबिबेकी पुरुष सरीरहिं॥ सेवहिं लखन करम मन बानी। जाइ न सीलु सनेहु बखानी॥**' दुःखमें 'सुबंधु' और 'सुहृद' होकर धिरज देते थे, रणमें अपने प्राणतक दे दिये थे, रात्रिमें बराबर पहरा देते थे।

'सीतेश सेवा सरस' में उपर्युक्त उद्धरणोंके सब भाव भरे हुए हैं। आपने सदा सानुकूल रहकर सेवा की है। अपना मत विरुद्धभी हुआ तबभी किया वही जो स्वामीको सुखद था। क्योंकि वे जानते थे कि ये 'सीतेश' हैं, ब्रह्माण्डनायक हैं, जगत्पति हैं। उनके भाव वे ही जान सकते है। हम सब नहीं जान सकते।

सेवा सरसताका सबसे बढ़कर उदाहरण चित्रकूटमें भरतागमनके अवसरपर हमें दिखायी पड़ता है। "**बंधु सनेह सरस एहि ओरा। उत साहिब सेवा बर जोरा॥ मिलि न जाइ नहि गुदरत बनई। सुकबि लखन मन की गति भनई॥ रहे राखि सेवा पर भारू। चढ़ि चंग जनु खैंच खेलारू॥**"

१२ 'विषय रस निरस' इति। जो भगवत् सेवामें सरस होगा, उसे विषयोंके चिन्तवनका समयही कहाँ? भोग तो बहुत दूर है। मिलान कीजिये, '**राम प्रेम पथ पेखिये दिये बिषय तन पीठि। तुलसी केंचुरि परिहरे होत साँपहू डीठि॥**' दो० ८२ '**तुलसी जौलों बिषयकी सुधा माधुरी मीठि। तौलों सुधा सहस्र सम राम भगति सुठि सीठि॥**' दो० ८३।

आप 'विषयरस रूखे' हैं। आपका सारा चरितही इसका उदाहरण है। स्मरण रखनेकी बात है कि लक्ष्मणजीको वनवास हुआ नहीं था। वे चाहते तो घरही रह जाते, वनको न जाते। परंतु ये सेवाका मर्म जानते थे। अतएव इन्होंने सब प्रकार कष्ट स्वीकार किया। आप श्रीरामप्रेममें ऐसे पगे हुए थे कि शरीरका मोह न था। कहांतक कहा जाय? ये

श्रीसीतारामजीके साथकेलिये ऐसे उतावले थे कि स्त्री तकसे न मिले। मातासेभी मिले तो रघुनाथजीके आदेशानुसार वनगमनकी आज्ञा लेनेके-लिये। श्रीरघुनाथजीनेभी तो यही देखकर कि ये तो 'देह गेह सब सों तृन तोरे' हुए हैं, इनको साथ न ले जायेंगे तो ये प्राणही छोड़ देंगे, इनको अपने साथ लिया था। माताने कहाभी है कि बनवासमेंही तो तुम्हें पूर्ण सेवाका लाभ प्राप्त होगा। यथा, "तुम्हरेहि भाग राम बन जाहीं। दूसर हेतु तात कछु नाहीं॥" (अ०), "कीजेहु इहै बिचार निरंतर राम समीप सुकृत नहिं थोरे॥" (गीतावली) अध्यात्मरामायणके अनुसार मेघनादका वध उसीके हाथ हो सकता था जिसने बारह वर्ष न कुछ खाया पिया हो, न सोया हो, न विषय भोग किया हो। श्रीलक्ष्मणजी चौदह वर्ष सब सुख, निद्रा, भोजन, स्त्री इत्यादि त्याग रहे थे। यद्यपि यह मत वाल्मीकीय तथा मानसके अवतार-वाले कल्पका नहीं जान पड़ता। 'मानस-पीयूष' में देखिये।

१३ 'निरुपाधि धुर धर्म धारी' इति। 'सीतेस सेवा सरस' और 'विषयरस निरस' कहकर तब 'निरुपाधि धुर धर्म धारी' कहनेका भाव कि सेवक स्वामि धर्म और वैराग्यमें आप अत्यंत श्रेष्ठ हैं, शुद्ध शरणागति धर्मके पालक हैं। आपका रामप्रेम निरुपम है। गीतावलीमें इस परम धर्मका एक उदाहरण स्वयं इनके वचनोंमें मिलता है। "हृदय घाव मेरे पीर रघुबीरै। पाइ सजीवन जागि कहत यों प्रेम पुलक बिसरै सरीरै॥ मोहि कहा पूछत पुनि जैसे पाठ अरथ चरचा कीरै। सोभा सुख छिति लाहु भूप कहं केवल कांति मोल ही हीरै। तुलसी सुनि सौमित्रि बचन धरि न सकत धीरौ धीरै। उपमा राम लखनकी प्रीति की क्यों दीजै छीरै नीरै॥' पद २५ देखिये।

वैजनाथजी 'निरुपाधि' का भाव यह लिखते हैं, 'उपाधिना धर्मचिंता' इत्यमरः। माता पिता कुलगुरु देवविप्रादि यावत् धर्म है। उनकी चिन्ता त्याग उपाधिरहित श्रीरामस्नेहरूप जो भारी सेवक धर्म है उसका बोझा।

१४ 'बिपुल बलमूल सार्दूल बिक्रम जलदनादमर्दन' इति। 'बिपुल बलमूल सार्दूल बिक्रम' को जलदनादका विशेषण मान लेनेसे श्रीलक्ष्मणजीके बलकी अत्यन्त उत्कृष्टता और पराकाष्ठा सिद्ध होती है। वाल्मीकीयमें स्वयं मेघनादने बिभीषणसे अपने बलपराक्रमके संबंधमें कहा है, 'त्रिलोकनाथो ननु देवराजः शक्रो मया भूमितले निविष्टः। मयार्पिताश्चापि दिशः प्रसन्न सर्वेतदा देवगणः समग्राः॥ ऐरावतो निःस्वनमुन्नदत्सन्नि पातितो भूतितले मयातु। विकृष्य दन्तौ तु मया प्रसह्य वित्रासिता देवगणास्समग्राः॥ सोऽहं सुराणामपि दर्पहंता दैत्योत्तमानामपि शोकहर्त्ता। कथं नरेन्द्रात्मजयोर्नशक्तो मनुष्ययोः प्राकृतयोः सुवीर्यः।' मैंने त्रैलोक्यके स्वामी महान् पराक्रमी इंद्रकोभी अपनी शक्तिसे बशमें कर कैद कर लिया और जोरसे चिल्लाते चिंघाड़ते हुए ऐरावतके दोनों दाँतोको उखाड़कर उसको पृथ्वीपर पटक दिया जिससे सब देवता भयभीत हो गये थे। देवताओंके गर्वको हरनेवाले और श्रेष्ठ दैत्योंकेभी शोकके हरनेवाले मुझ ऐसे श्रेष्ठ वीरके सामने साधारण मानव राजकुमार क्या चीज़ है कि मैं उनको न मार सकूंगा? रावणको अपने इस पुत्रके बलका बड़ा भरोसा और अभिमान था। यथा, 'करिहौं बहुत कहौं का थोरा॥ सुनि सुत बचन भरोसा आवा।' (लं०)

इसे मेघनादका विशेषण और 'महावीर भारी' को लक्ष्मणजीका विशेषण माननेसे 'महाबीर भारी' का भाव होगा कि मेघनाद महावीर था और ये भारी महावीर हैं। 'महाबीर भारी' को भी 'जलदनाद' का विशेषण ले सकते हैं।

१५ 'जयति संग्राम सागर भयंकर तरन' इति। (क) संग्रामको सागर कहनेका भाव कि राम रावण संग्राम अनुपमेय हैं। वाल्मीकिजी कहते हैं कि जैसे सागरकी उपमा सागरही है और गगनकी उपमा गगनही है वैसेही राम रावण समरकी उपमा रामरावणसमरही है। हनुमान्नाटकमेंभी वही बात कही गयी है। यथा, "गगनं गगनाकारं सागरं सागरोपमम्। राम रावणयोर्युद्ध राम रावणयोरिव॥" (ह० न० १४।१८) ऐसा घोर भयंकर संग्राम कोई न हुआ है और

न होगा। यहां परंपरित सहित सम अभेद रूपक अलंकार है। श्रीबैजनाथजी संग्रामसागरका रूपक यह देते हैं कि, "रावणकुम्भकर्ण दोनों तट हैं। अतिकाय, अकंपन और महोदरादि मगर, घड़ियाल आदि जलजंतु हैं। निशाचरसेनासमूह जल है। मेघनाद कहर (क्रोध) धारा है।" इस रूपकका विस्तार इस तरहभी कर सकते हैं कि रावणकी बीस भुजाएँ बीस समुद्र हैं, अतुलभुजबल जल हैं, (रावणका बड़ा बल मेघनाद था अत: वह जल है, ऐसाभी कह सकते हैं), राम रावण संग्राम 'भयंकर' सागर है। लक्ष्मणजीने मेघनादको मारकर रावणका बलरूपी जल सोख लिया।

(ख) ' बर बाहु सेतु ' इति। श्रीरघुनाथजीने स्वयंभी लक्ष्मणजीको अपना 'बाहु' कहा है। गीतावलीमें श्रीमुखवचन हैं, "**मेरो सब पुरषारथ थाको। बिपति बटावन बंधु बाहु बिनु करउँ भरोसो काको॥ सुनु सुग्रीव साँचहू मोपर फेरो बदन बिघाता। ऐसे समय समर संकट हौं तज्यौ लखन से भ्राता॥ गिरि कानन जैहैं साखामृग हौं पुनि अनुज सँघाती। ह्वै है काह बिभीषन की गति रही सोच भरि छाती॥**"

(ग) 'बाहु' का भाव है 'सब काममें सहायक, साथी, विपत्ति बँटाने वाला।' जैसे शरीरमें 'बाहु' न हो तो मनुष्य अपनेसे कुछ नहीं कर सकता। गीतावलीका उपर्युक्त पद 'बाहु' की व्याख्याही समझिये।

(घ) 'करन बर बाहु सेतू' इति। समर सागरसे पार उतारनेकेलिये सेतुरूप हुए। यथा, '**आनि पहार जुहारे प्रभु कियो बैद्य उपचार। करुनासिंधु बंधु भेंटयो मिटि गयो सकल दुखभार॥ मुदित भालु कपि कटक लह्यो जनु समर पयोनिधि पार। तुलसिदास सुधि पाइ निसाचर भये मनहु बिनु प्रान॥ परि भोर ही रोर लंकगढ़ दई हाँक हनुमान॥**" (गीतावली) भाव कि आपने अपनी भुजाओंके बलसे सबको समरसागर पार उतार दिया है। इनके मुर्छासे जगनेपर सारी सेना ऐसी प्रसन्न हुई मानों समरसागरके पार हो गयी। इनके बलका सबको ऐसाही भरोसा रहा है। आप रावणको कुछ समझतेही न थे। उसे डाँटा

ललकाराभी है। 'रे खल का मारसि कपि भालू। मोहि बिलोकु तोर मैं कालू ॥' मंदोदरीनेभी रावणसे कहा है ' रामानुज लघु रेघ खँचाई। सोउ नहिं नाँघेहु असि मनुसाई ॥'

१६ (क) 'उर्मिलारवन' इति। इससे शक्तिसहित वंदना कर भावभी सूचित होता है। (ख) 'कल्यान मंगलभवन' से पारलौकिक और लौकिक दोनों मंगल गिनाये। आपके स्मरणसे मंगल और कल्याण होता है। यथा, 'ललित लखन मूरति मधुर सुमिरहु सहित सनेह। सुख संपति कीरति बिजय सगुन सुमंगल गेह ॥' दो २१० ॥ सुख, संपत्ति, कीर्त्ति और विजय आदि मंगल हैं और सुमंगल कल्याण है।

१७ श्रीदेवदत्तशास्त्रीजीने श्रीलक्ष्मणजीकी स्तुति दो पदोंद्वारा की है। पहले पदसे गोस्वामीजीने लाड़िले लखनलालजीको अपना सर्वस्व मान कर खूब अपनपौ दिखाया है। यह जनश्रुति प्रसिद्ध है कि गोस्वामीजीकी तपश्चर्याकी वृद्धिको देखकर कुछ लोगोंने उनके वैभव (धनसम्पत्ति) की वृद्धिका अन्दाज लगाया और एक रात चोरी करनेको घुसे। किन्तु वहाँ देखते हैं कि दो सुन्दर राजकुमार धनुषबाण लिये पहरा दे रहे हैं। चोर निस्तब्ध गतिहीन हो गये। और दिन निकलनेपरभी टससेमस न हुए। गोस्वामीजीके पूछनेपर उन्होंने सारी कथा कह सुनायी। तब तो गोस्वामीजी प्रेमविभोर हो गये। रहा सहा असबाब लुटा दिया और एकमात्र धन तथा धनी श्रीरामचंद्रजी और लखनलालजीकोही मान लिया।

तुलसीदासजीके इस पदसे उल्लिखित घटनाका संघटन पूर्णतया प्रतीत है। उन्होंने प्रारम्भमेंही निर्भर प्रेममगन होकर कहा, ' हे लाड़िले लखनलालजी ! तुम जनके (भक्त) हित हो। पदके अन्तिम चरणमें कहते हैं, 'हे उर्मिलाके बल्लभ! तुलसीसे निर्धनके सुलभसनेह बस धनी और धन तुम्हीं हो।' तात्पर्य यह कि यह पद उपर्युक्त घटनाके संस्मरणरूप स्वाभाविकरूपसे वाग्धारामें प्रवाहित हुआ है।

दूसरे पदमें श्रीलक्ष्मणजीका सांगोपांग परिचय दिया है। अन्वीक्षणशक्ति सम्पन्न, समीक्ष्यकारी महाकविने लक्ष्मणजीकी स्तुति करते हुए ग़ज़ब कर दिया। पूर्व जन्मसे लेकर इस जन्मतकका पूर्ण परिचय अलौकिक

वैभवका गान छोटेसे पदमें करके गागरमें सागरही भरा है। विशेष-भाव गोस्वामीजी लक्ष्मणजीकी स्तुतिके प्रथम पदके अन्तिम चरणमें श्रीलखनलालजीको 'वल्लभउर्मिलाके' लिखते हैं। द्वितीयपदमें 'उर्मिला रवन' लिखते हैं। वस्तुतः ये दोनों विशेषण दोनों पदोंके मुख्य भाव और वैशिष्ट्यकेही द्योतक हैं। वल्लभ और रमण दोनोंके शब्दार्थ तो पतिही हैं, किन्तु भावमें अन्तर है। 'वल्लभ' शब्दमें अतिप्रियता, स्वाभाविकता, सात्विकता और समवाद सम्बन्ध निहित है। 'रमण' में रजोगुणमयी विलासिता, दाम्पत्यप्रेम ओर शिष्टाचारकी कृत्रिमता रहती है।

प्रथम स्तुतिमें स्वार्थत्यागपूर्वक लोकप्रियता और लाड़िलापन छलकता है जिसमें स्वाभाविकता और स्नेहका पुट है। इस पदसे अपनापनहीं है। कृतिमता या आदाब अलकाबकी कोइ बू नहीं है। तुलसीदासजीने आत्मविभोर होकर छगनमगनकी सात्विकता और स्वाभाविकताका स्मरण करकेही प्रार्थना की। द्वीतीयपदमें रजोगुणात्मक वैभव बिरुदावलीका वर्णन है। अतः क्रान्तदर्शी कविने तदनुरूप रमण शब्दसे स्मरण किया। इन दोनों विशेषणोंसे उर्मिला और लक्ष्मणकी एकता तथा आत्मीयताका परिचय दिया है। जब पतिका लाड़िलापन दिखाया तो अर्द्धांगिनीका परिचयभी उन्हींके अनुरूप दिया। जब वैभव वर्णन करते है तो वैभवशालिनी रमणीके रूपमें स्मरण करते हैं।

३९ [१७४]

जयति[1]भूमिजारमनपदकंजमकरंदपरसरसिकमधुकरभरतभूरिभागी।
भुअनभूषन भानुबंसभूषन भूमिपालमनि रामचंद्रानुरागी[2]॥
जयति बिबुधेस धनदादि दुर्लभ महाराज सम्राट[3]पद[4] सुख बिरागी।

---

१ मु०, ७४ में नहीं है। २ रामचरनानुरागी–ज०। ३ सम्राट–६६। सम्राज–५१, भ०, बक्सर, ७४, दी०। संम्राज–इ०, १५, वि०। संभ्राज–रा०, भा०, बे०, मु०, डु० (टीकामें सम्राज है), वै०। ४ सुख पद–रा०, भा०, बे०, १५, इ०, ५१, ७४, डु०, वै०, मु०। सुखप्रद–भ०, दी०, बि०। पद सुख–६६।

खड्गधाराव्रत[5] प्रथम रेखा प्रगट सुद्ध मति जुवति पति[6] पेम पागी ॥
जयति निरुपधि[7] भक्ति भाव जंत्रित हृदय बंधुहित चित्रकूटाद्रिचारी ।
पादुका नृप सचिव पुहुमि पालक परम धर्म[8] धुर धीर बर बीर भारी ॥
जयति संजीवनी समय संकट हनूमान धनु बान महिमा बखानी ।
बाहुबल बिपुल परमिति[9] पराक्रम अतुल गूढगति जानकी जानि[10] जानी ॥
जयति रन अजिर गंधर्बगन गर्ब्बहर फेरि[11] किये रामगुनगाथ[12] गाता ।
मांडवी चित्तचातक नवांबुद बरन[13] सरन तुलसीदास अभय दाता ॥

शब्दार्थ—रसिक=रसग्राही, रस लेनेवाले, प्रेमी । भूरि=बहुत बड़ा, समूह । भागी=भाग्यवाले । रामचंद्रानुरागी=रामचंद्र+अनुरागी । भुवन=भूषन—पद २६ देखिये । बिबुधेस [बिबुध (देवता) + ईश] इंद्र । धनदादि=धनद (कुबेर) + आदि । सम्राट (सं० सम्राज) = चक्रवर्त्ती महाराज । पद २७ 'राम सम्राज सोभा सहित' देखिये । पद=अधिकार । खड्गधाराव्रत='खड्ग' प्राचीनकालका एक अस्त्र है जैसा आजकल पशुबलिमें काममें लाया जाता है। तलवार इसीकी एक किस्म है । खड्गधारा=तलवारकी धार अर्थात् अत्यन्त कठीन । जैसे तलवारकी धारपर पैर रखकर चलना कठिन है, पैरही कट जायगा, वैसा (व्रत) । यथा 'ज्ञान क पंथ कृपान कै धारा । परत खगेस होई नहिं बारा ॥ (उ०) ' 'एहि कर नाम सुमिर संसारा । तिय चढ़िहहिं पतिव्रत असि धारा ॥'(बा० ६६) प्रथम रेखा=प्रथम गणना । यथा, 'पतिदेवता सुतीय महं मातु प्रथम

---

५ व्रत—६६, रा०, बे०, ह० । व्रतं—भा० । व्रति—१५ । व्रती—५१, ७४, आ० । ६ पति—६६, १५, ५१, ७४, आ० । वत—भा० प्र०, ह० । ७ निरूपाधि—औरोंमें । ८ धर्म धुरधीर बर—६६, रा०, ५१, आ० । धीर गंभीर बर—भा०, बे०, प्र०, ज०, ह०, ७४ । धुरधीर गंभीर—१५ । ९ परमिति—६६, रा०, दी०, वि० । परमित—५१, ह०, भा०, बे०, ७४, ज०, मु०, १५ । १० जानि—६६, भा०, बे०, मु०, भ०, वि० । जान—डु०, बे०, ज०, १५, ७४ । ११ फिरि—५१ । फिर—वै०, मु०, वि० । १२ गान—ज० । १३ चरण—बे० ।

तव रेख।' (बा०) पेम=प्रेम। पागना=शीरा अर्थात् मीठी चाशनीमें सानना वा लपेटना। यथा, 'आखर अरथ मंजु मृदु मोदक प्रेम पाग पागि है।' प्रेम रसमें पागना=प्रेममें अत्यंत डूब जाना, तन्मय हो जाना। प्रेम पागी=प्रेममें डूबी रहती है, सदा संयोग किये रहती है। भाव=भावना, विचार। विषयोंको छोड़कर बार बार ध्येय वस्तुका ध्यान करना 'भावना' है। जंत्रित=(यंत्रित) ताला लगा हुआ; बंद किया या बाँधा हुआ, जकड़ा हुआ (दी०)। यथा, 'लोचन निजपद जंत्रित प्रान जाहिं केहि बाट।' (सुं०) भक्तिभाव जंत्रित = जिसपर भक्तिभावका ताला हुआ हो। भक्तिभावसे परिपूर्ण (हृदय)। चित्रकूटाद्रिचारी=चित्रकूट+अद्रि (पर्वत)+चारी (चलनेवाले)। पादुका=खडाऊँ। सचिव=मंत्री। पुहुमि (सं० भूमि। प्राकृत० पुहवी)=पृथ्वी। धुर=धुरा, केंद्र। संजीवनी=यह एक बूटीका नाम है जो लक्ष्मणजीको जिलानेकेलिये लानेको हनुमानजी द्रोणागिरि भेजे गये थे। इससे शरीरपर लेप करतेही सब घाव पुर जाते हैं और शरीर स्वस्थ हो जाता है तथा इसको सुँघानेसे मूर्छा जाती रहती है। विशेष 'मानसपीयूष' में देखिये। बखानना=प्रशंसासहित वर्णन करना। परमित=सीमा। परमिति [पर (परे, बाहर, आगे बढ़ा हुआ) + मिति (परिमाण, सीमा)] हदसे बाहर, अपरिमिति। पराक्रम=पुरुषार्थ, सामर्थ्य, शक्ति। अतुल=जिसकी तौल या अंदाज न हो सके। गूढ़ गति=हृदयका गंभीर भाव, गुप्तरहस्य एवं कठिन दशा। जानि = भार्या, स्त्री। यथा, 'सो मय दीन्ह रावनहि आनी। होइहि जातुधानपति जानी।' (बा०) जानकीजानि=जानकीजी जिनकी स्त्री है। अजिर=आँगन। रन अजिर=रणांगन,रणभूमि। नवांबुद=(नव+अंबुद) नवीन श्याम मेघ। बरन (वर्ण)=रूप। फेरि=फिर, पुनः। यथा, 'दास इते पर फेरि बुलावत यों अब आवत मेरी बलैया।', 'हरे हरे हरे हेरि हँसि फेरि फेरि कहत कहानीकी लगत।' (देव०) पुनः, फेरि=फेरफार अर्थात् विमुखसे सम्मुख करके। (डु०, वै०, दी०) मांडवी=श्रीकुशध्वज महाराजकी कन्या जो श्रीभरतजीको ब्याही गयी थीं।

पद्यार्थ—श्रीजानकीरमण श्रीरामजीके चरणकमल (के अनुरागरूपी) मकरंदरसके लोभी भौरे†, अतिशय बड़भागी, त्रैलोक्यके भूषण, सूर्य कुल-भूषण (अर्थात् सूर्य कुलको भूषित करनेवाले, उसकी शोभा बढ़ानेवाले) पृथ्वीका पालन करनेवाले राजाओंमें शिरोमणि श्रीरामचन्द्रजीके अनुरागी (श्रीभरतजी) की जय हो ।१। देवराज इंद्र और धनके अध्यक्ष कुबेरजी आदिकोभी दुर्लभ (ऐसे) 'चक्रवर्ती महाराज' पदके सुखसे वैराग्यवान्, खड्गधारा समान कठिन व्रत (धारण करने) में जिनकी प्रथम लीक प्रसिद्ध है और जिनकी निर्मल बुद्धिरूपिणी कामिनी (स्त्री) श्रीराम-प्रेमरूपीपतिमें पगी हुई है, उन भरतजीकी जय हो। उपाधिरहित भक्तिभावसे परिपूर्ण जकड़े हुए हृदयवाले, भाईकेलिये चित्रकुट पर्वतपर (पैदल) जानेवाले, श्रीरामचन्द्रजीकी चरणपादुकारूपी राजाके मंत्री (रूपसे) पृथ्वीका पालन करनेवाले, परम धर्मकी धुरा और धीरोंमें श्रेष्ठ एवं परम धर्मकी धुरा धारण करनेमें बड़े धीर और भारी वीरोंमें श्रेष्ठ श्रीभरतजीकी जय हो।३। संजीवनी लायी जानेवाले संकटके समयमें श्रीहनुमान्जीने जिनके बाणकी महिमा बखान की है, भारी बाहुबल और अतुलित पराक्रमकी सीमा, जिनकी गूढ़ गतिको श्रीजानकीपति श्रीराम-जीहीने जाना है, उन भरतजीकी जय हो।४। जिन्हे रणांगण (लड़ाईके मैदान) में गंधर्वगणका गर्व हरकर फिर उनको रामगुणगाथाका गानेवाला बनाया, श्री मांडवीजीके चित्तरूपी चातकको नवीन श्याम मेघरूप और शरणागत तुलसीदासको अभय देनेवाले (श्रीभरतजी) ! आपकी जय हो।५।

टिप्पणी—१ "जयति भूमिजारमन पदकंजमकरंद रस रसिक मधुकर" इति (क) श्रीसीताजीको 'भूमिजा' लिखनेका यह अभिप्राय है कि उनको मानवीसृष्टि योनिजसृष्टिसे कहीं अधिक पवित्र और गौरवशालिनी प्रतीत

---

†परंपरित रूपक। दूसरा अर्थ—'स्वामीके प्रेममें पगी हुई रहती है।' यहाँ सम अभेद रूपक हैं। तीसरा अर्थ—"पतिपरायणा निर्मल बुद्धिरूपिणी स्त्रीने 'खड्गधाराव्रत' की श्रेष्ठ रेखा प्रकट की।"

होती थी। (ख) 'रमन' इति। ऐसी अलौकिक (आदिशक्ति) रमणीके रमण भी अलौकिक (ब्रह्म) होनेही चाहिये। क्योंकि भूमिजाके रमण समस्त ऐश्वर्योंसे संपन्न समस्त शक्तियोंसे युक्त होंगेही। ऐसे दशरथनंदन मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामही हैं जिनकी उत्पत्ति भूमिजाकी भाँति अलौकिक और उनसे कहीं अधिक पवित्र एवं आश्चर्ययुक्त है। भगवान् राम योनिज नहीं है, उत्पन्नभी नहीं हुए। वे तो प्रगट हुए, बालरूपसे नहीं, निजरूपसे। 'भये प्रगट कृपाला परम दयाला' इत्यादि। अतः भूमिजारमण साङ्गोपाङ्ग यथार्थ एवं युक्तिसंगत है। (दे० द० शर्मा)

(ग) 'भूमिजारमणपदकंज' इति। (पृथ्वीकी कोखसे उत्पन्न हुई सीताजीके पति) से जनाया कि श्रीभरतजी सगुण ब्रह्म रामके उपासक हैं। भूमिजा-रमणसे भूमिजा (आदिशक्ति) सहित भगवान् रामके उपासक जनाया और पदकंजमकरंदरस रसिक' से सेवक भाव अर्थात् दास्यरसके उपासक जनाया। यथा 'सिरभर जाऊँ उचित अस मोरा। सब ते सेवक धरम कठोरा।', 'आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा।'

(घ) 'पदकंजमकरंद रस रसिक मधुकर' इति। यह पद आत्मसम-र्पणकी उत्कृष्ट भावनाका द्योतक है। भ्रमर कमलके मकरंदको चखकर आत्मविस्मृत हो जाता है। उसे आत्मअनात्मका ज्ञान नहीं रहता। वह पागलप्रेमी यहां तक आत्मविभोर बन जाता है कि खिले हुए पंकज-कोशमें दिनभर मकरन्द पान करता है। सूर्यास्त होनेपर, कोशके संकुचित होनेपरभी हटनेकी इच्छा नहीं करता और अन्तमें पंकजकोशके अंदरही बन्दी बनकर रहनेमें सुखी रहता है। यही उसके जीवनकी क्रीड़ा है, लीला है और भक्तिभावयंत्रित हृदयकी क्रियाकी पराकाष्ठा है। श्रीराम-चरणचंचरीक महात्मा भरतजी भूमिजारमणके पदकंजमकरंदके लोभी हैं, रसीले रसिक हैं। वे तो लौकिक भ्रमरसे कहीं अधिक प्रगतिशील हैं। लौकिक भ्रमर अनेक फूलोंका मकरंद पीता है। उसकी बुद्धि व्यभिचारिणी होती है। किन्तु भैया भरत एकनिष्ठ भोले भक्त हैं। इनकी अवस्थामें सदैव त्याग और अनुरक्तिकी पराकाष्ठाही दिखायी पड़ती है। इन्होंने

जिन पदपंकजोंके मकरंदरसिक बनकर आत्मसमर्पण किया, वह इन्हींके योग्य है। तभी तो 'भूरिभागशाली' बने। (दे० द० शर्मा)

(ङ) कमलमें मकरंद होता है जिसे उसका लोभी भौंरा पान करता है। श्रीरघुनाथजीके पदकमलका मकरंद अनुराग है। भरतजी अनुरागरूपी मकरंदरस ('रस'का अर्थ जल और प्रेम दोनोंही है।) के रसिक हैं। उसीको निरन्तर पान करते रहते हैं, उनके प्रेममें मग्न रहते हैं।

२ (क) 'भूरिभागी' इति। चरणानुरागी होनेसे 'भूरिभागी' कहा। यथा, '**भूरि भाग भाजन भएहु मोहि समेत बलिजाउँ। जौं तुम्हरे मन छाड़ि छल कीन्ह रामपद ठाउँ॥**' (अ०), '**अतिसय बड़ भागी चरनन्हि लागी**' (अहल्या), '**अहह धन्य लछिमन बड़भागी। राम पदारबिंद अनुरागी॥**' (उ०), '**परेउ लकुट इव चरनन्हि लागी। प्रेम मगन मुनिबर बड़भागी॥**' (सुतीक्ष्णजी), इत्यादि। तथा, '**सकल सुमंगलमूल जग रघुबर चरन सनेहु॥ सो तुम्हार धनु जीवनु प्राना। भूरिभाग को तुम्हहिं समाना॥**' (श्रीभरद्वाजवाक्य, श्रीभरतजीप्रति।)

(ख) 'भुवन भूषन', 'भानुबंसभूषन' और 'भूपालमनि' ये सब श्रीरामचंद्रजीके विशेषण हैं जो अगणित स्थलोंपर उनकेलिये आये हैं। इन विशेषणोंसेभी भरतजीको सगुण ब्रह्म रामका उपासक होना जनाया जो रघुकुलमें अवतीर्ण होकर चक्रवर्त्ती महाराज और भुवनमात्रके भूषणरूप हुए।

(ग) 'बिबुधेस धनदादि दुर्लभ' इति। इस चक्रवर्त्ति राज्यके ऐश्वर्य, भोगविलास और संपदाको देखकर इंद्र, कुबेर आदि सिहाते थे कि जिनके समान भोगविलास और धनसंपत्ति संसारमें नहीं है। कुबेर धनाध्यक्षही हैं। भोगविलासकेलिये इंद्रकी उपमा दी जाया करती है। यथा, '**सत सुरेस सम बिभव बिलासा।**' '**सुनासीर सत सरिस सो संतत करइ बिलासा**' (लं०), '**अमरावति जसि सक्र**

निवासा।' (बा०) परन्तु श्रीदशरथजी महाराजके राज्यसुखके विषयमें कहा गया है कि ' अवधराज सुरराज सिहाहीं। दसरथ धनु सुनि धनद लजाहीं।" ऐसे राज्यके चक्रवर्त्तिपद और उसके सुखकाभी त्याग श्रीभरतजीने किया है। ऐसे राज्यकोभी उन्होंने 'शोक-समाज' समझा है। यथा, ' चलत पयादेहि खात फल पिता दीन्ह तजि राज।', ' सोक समाज राज केहि लेखे। लखन राम सियपद बिनु देखे।', ' बादि मोरि सब बिनु रघुराई।' जो राज्यको शोकसमाज समझेगा वह उसे कब ग्रहण करेगा ? इसी तरह संसारको अनित्य और शोकका घर समझ कर लोग उससे विरक्त हो जाते हैं। श्रीभरतजी ऐसे दुर्लभ राज्यके चक्रवर्ती राजाके पदके सुखसे उदासीन हो गये। यथा, " भूषन बसन भोग सुख भूरी। मन तन बचन तजे तिनु तूरी॥ तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा। चंचरीक जिमि चंपक बागा॥" ' भूरि भागी ', ' रामचंद्रानुरागी ' कहकर ' सम्राटपदसुख बिरागी ' कहनेका भाव कि ' रामानुरागी ' हीके ये लक्षण हैं। यथा, ' रमाबिलास राम अनुरागी। तजत बमन इव जन बड़भागी॥' (अ०)

३ ' खड्गधाराव्रत प्रथम रेखा प्रगट ' इति। इस विशेषणको देकर श्रीभरतजीकी उपासनाका अनन्य पातिव्रत्य दिखाया। सती स्त्रियोंके पातिव्रत्य धर्मकोभी खड्गधाराव्रत कहा है। यथा, ' एहि कर नाम सुमिरि संसारा। त्रिय चढ़िहहिं पतिव्रत असि धारा॥' (बा०) वैसेही यहाँ ' खड्गधाराव्रत ' पद देकर अनन्य उत्तम उपासना धर्मव्रतको परम सतीके पातिव्रत्यके समान जनाया। इस व्रतके धारण करनेवालोंमें ये श्रेष्ठ हैं। ऐसे कठिन भागवत ' सेवक स्वामी ' धर्मको सुखपूर्वक, प्रसन्नतापूर्वक निबाह ले जानेमें इनके समान येही हैं। मानसमें कविने कहाभी है, " सुनि व्रत नेम साधु सकुचाही। देखि दसा मुनिराज लजाहीं॥" श्रीरामप्रेमको पति और इनकी बुद्धिको स्त्री कहकर उत्तम पतिव्रताके समान जनाया। गीतावलीके " निगम अगम मूरति महेस मति जुवति बराय बरी।" इस पदसे मिलान कीजिये। विशेष 'भक्ति

भाव जंत्रित हृदय ' टि० ४ में देखिये। श्री हनुमान्जीभी मुक्तकंठसे श्रीभरतजीके संबंधमें (गीतावलीमें) ऐसाही कह रहे हैं, "**होतो नहिं जौ जग जनम भरतको। तौ कपि कहत कृपानधारा मग चलि आचरन चरत को ॥** " 'मति जुवति पति पेम' अर्थात् जैसे पतिव्रता मन कर्म बचनसे अपने पतिके प्रेममें पगी रहती है वैसेही इनकी शुद्ध बुद्धि श्रीरामप्रेममें पगी रहती है। 'प्रथम रेखा प्रगट' को दीपदेहरी मानकर इसका अर्थ योंभी कर सकते हैं, "जितनी पतिप्रेमपागी (अर्थात् पतिव्रता) शुद्ध बुद्धिरूपिणी स्त्रियाँ हैं, उनमें इनकी शुद्ध मति युवतिकी प्रथम गिनती है।" प्रथम रेखा, श्रेष्ठ गणना यह मुहाविरा है। " खड्गधारा व्रत प्रथम रेखा प्रगट सुद्ध मति जुवति पति प्रेम पागी " इति। प्रायः सभी टीकाकारोंने इस पदांशकी टीकामें भरतजीकी शुद्धमति युवतीको श्रीरामचन्द्रजीमें (पति) अनुरक्त लिखा है। यहाँ पातिव्रतका आदर्श बताया है। गीतावलीमें आये हुए " **निगम अगम मूरति महेस मतिजुवति बराय बरी** " परभी हमने विचार किया। किन्तु टीकाकारोंके ऐसे अर्थपर कुछ न कुछ सन्देहकी गुंजाइश रहही जाती है। भरतजीकी शुद्ध बुद्धि है। वह एक युवती नायिकाके तुल्य है। श्रीरामजी श्रीभरतजीके ज्येष्ठ भ्राता है। उनके सर्वस्व है सही; किन्तु लोकव्यवहारमें छोटे भाईकी युवती मति यदि बड़े भाई या अन्य किसी इष्टपर आसक्त हो तो क्या उचित है ? पातिव्रत्यधर्म तो तब कहा जायगा, जब वह जिसकी हो उसीपर आसक्त हो। दूसरेको पति मानकर उसपर दूसरेकी नायिकाको आसक्त कहकर पातिव्रत धर्मकी परिभाषा बदलना है। महाभाष्यमें महर्षि पतञ्जलिने लिखा हैं, **यद्यपिशास्त्रं लोकविरुद्धं नाचरणीयम्** ' अर्थात् शास्त्र यदि लोकविरुद्ध समझ पड़े तो उसे लोकमें आचरण न करना चाहिये। धर्मशास्त्रमेंभी लिखा है, ' **बहिरुभयथा स्मृतेराचाराच्च** ।

इसके अतिरिक्त साहित्यिक दृष्टिसेभी यह महान् दोष है। यदि यह कहा जाय कि 'यह भक्ति मार्गकी पद्धति है, सखीभावके उपासक भगवान्को अपना पति मानकर स्वयं स्त्रीकी कल्पना करते हैं'।

ऐसी दशामें समष्टि और व्यष्टिरूपसे विचार करना पड़ेगा। सखी भावका उपासक कुछभी बन जाय। ऐसे भक्तकी आलोचनाका यहाँ प्रसंग नहीं है। क्योंकि वह सर्व तो भावसे अपने स्त्रीत्वका अनुभव करता है। पुरुषत्व भावना रहतीही नहीं। किन्तु यहां भक्त भरतमें पुरुषोचित, वीरोचित सभी भाव विद्यमान् हैं। उनकी शुद्ध बुद्धिको उनकी पत्नी बतलाया गया है। निःसन्देह रूपक लाजवाब है। किन्तु शद्ब निरुक्तिपरभी दृष्टिपात करना चाहिये। सर्व प्रथम हम 'बुद्धि' परही विचार करें। वेदान्तशास्त्रके अनुसार अन्तःकरणकी दो वृत्तियाँ होती हैं। एक बुद्धि, दूसरा मन। निश्चयात्मक अन्तःकरण वृत्तिका नाम बुद्धि है और संकल्पविकल्पात्मक वृत्तिका नाम मन है। चित्त और अहंकार दोनोंही बुद्धि और मनके अन्तर्गत दो वृत्तिमात्र हैं।गोस्वामीजीने श्रीभरतजीकी बुद्धिको शुद्ध कहकर निश्चयात्मक वृत्तिका संकेत किया है। उनकी बुद्धि शुद्ध थी, सात्विक थी और थी अव्यभिचरिणी।भक्तवर श्रीभरतके हृदयकी अनुगामिनी बुद्धि थी, अतः पति प्रेम पागी थी। सारांश यह कि बुद्धिपर भरतजीका अंकुश था, भरतपर बुद्धिका नहीं।

'युवती'से परमोत्कृष्टता, सौन्दर्य और निर्मलता तथा लोकप्रियता टपकती है।

बुद्धिका यौवन ज्ञान है। उसकी सुन्दरता निर्मलता हैं। भक्तवर भरत ज्ञानी भक्त थे। वे समय कुसमय विचारकरही कार्य करते थे। उनके ज्ञानी होनेका प्रबल प्रमाण चित्रकूटदरबारमें प्राप्त होता है। जब मर्यादा पुरुषोत्तम सारा निर्णय उन्हींके उपर रख देते हैं, तब समस्त पुरवासी अभीष्ट सिद्धि समझ हर्षित होते हैं कि भरत भगवान्को लौटानेही आये हैं, अब काम बना किन्तु ज्ञानसम्पन्ना भरतकी बुद्धि नीरक्षीरविवेक करके नया रेकार्ड कायम करती है।

अस्तु, अब खड्गधाराव्रतकीभी संगतिपर विचार कीजिये। यह वेदान्त प्रिय और प्रयुक्त वाक्य है। खड्गधारासे ज्ञानके पन्थका सादृश्य दिया जाता है। गोस्वामीजीनेभी 'ज्ञानके पंथ कृपानकी धारा' लिखा

है। ज्ञान बुद्धिजन्य विचार है। भरतजी ज्ञानी थे। अतएव उनकी बुद्धिको शुद्ध और युवती कहा हैं। अब अर्थभी देखिये। 'बिबुधेस धनदादिदुर्लभ महाराज सम्राटपद सुखविरागी (भरत) जयति। (जिनकी) पतिप्रेमपागी शुद्धिमति युवति खड्गधारा व्रत (की) प्रथम रेखा प्रगट (की)।' अर्थात् 'श्रीभरतजीकी जय हो जिनकी अनुरागिणी पति परायणा निर्मल बुद्धि रूपी युवतीने (कामिनी) ज्ञानमार्गके अनुष्ठानकी श्रेष्ठरेखा (गणना) प्रगट की।' (देवदत्त शर्माजी)

पं० देवदत्तशास्त्रीजी लिखते हैं 'भरतजीको स्तुतिमें प्रधानतया सुयोग्य शासक होनेकी स्पष्ट झलक है। तुलसीदासजीके जीवनकालमें सुयोग्य शासनका सर्वथा अभाव रहा जिसके कारण धर्म और समाज अव्यवस्थित था। तुलसीदासजी धार्मिक और सामाजिक कवि भक्त थे। वे भारतीय समाजमें रामराज्यकी अभिलाषा रखते थे। इसलिये विश्वभर्त्ता भरतसे दीनार्त्त होकर अभय और सुव्यस्थित होनेकी कामना करते हैं।'

४ 'जयति निरुपधि भक्ति भाव जंत्रित हृदय' इति। (क) निरुपधि, बाधारहित अर्थात् गुरु, माता, पिता आदिकी तथा लोकपरलोक धर्मकी चिन्तारूपी बाधासे रहित। यथा, 'गुरु अवमान दोष नहिं दूषा।', 'डरु न मोहि जगु कहइ कि पोचू। परलोकहु कर नाहिन सोचू॥', 'नाहिंन डरु बिगरइ परलोकू।', 'जानहु राम कुटिल करि मोही। लोग कहउ गुर साहिब द्रोही॥ सीतारामचरन रति मोरे। अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरे॥' जितनीभी बाधाएँ संसारमें प्रेम छुडानेकेलिये हो सकती हैं उन सबसे रहित निष्काम भक्ति, प्रेमकेहीलिये प्रेम 'निरुपधि भक्ति भाव' है।

(ख) ये सब चरित क्रमसे कहे गये, जैसे-जैसे हुए हैं। भरतजीका हृदय 'भक्तिभाव यंत्रित' है यह प्रथम प्रथम श्रीअवधकी सभामें प्रगट हुआ। ऐसे 'भक्तिभाव यंत्रित हृदय' से वचन निकले। इसीसे वे 'भरत बचन सब कहुं लागे। राम सनेह सुधा जनु पागे॥' इस भक्तिभावका विशेष परिचय उनके अंतिम वचनोंमें मिलता है।

"डरु न मोहि जगु कहइ कि पोचू। परलोकहु कर नाहिंन सोचू॥ आपनि दारुन दीनता कहउं सबहिं सिरु नाइ। देखे बिनु रघुनाथ पद जियकै जरनि न जाइ॥ आन उपाइ मोहि नहिं बुझा। को जिय कै रघुबर बिनु बुझा॥ एकहि आंक इहै मन माहीं। प्रात-काल चलिहउं प्रभु पाहीं॥ आपन जानि न त्यागिहहिं मोहि रघुबीर भरोस॥" इन बचनोंमें आत्मनिवेदन, रक्षामें विश्वास आदि शरणागतिके लक्षण और प्रेमही प्रेम भरा हुआ है। 'प्रेम भरा मन निज गति छूछा।' इसीपर सबके सब भरतजीको कहते हैं कि 'रामप्रेम मुरति तनु आही'। यही 'भक्तिभाव जंत्रित हृदय' है।

भरद्वाजजीकाभी यही मत है। यथा, 'तुम्ह तौ भरत मोर मत एहू। धरे देह जनु रामसनेहू॥' उनका हृदय भक्तिभावसे ऐसा यंत्रित है कि सभीकी बुद्धि यंत्रित हो जाती है। यथा, 'सभा राउ गुर महीसुर मंत्री। भरत भगति सबकै मति जंत्री॥ (अ० ३०२)

(ग) अवधकी सभामें प्रातःकाल चित्रकूटको प्रस्थान करना निश्चय हुआ, इसीसे 'भक्तिभावजंत्रित हृदय' कहकर उसके बाद 'बंधुहित चित्रकूटाद्रिचारी' अर्थात् श्रीरामजीको मनानेकेलिये जाना कहा। आगे पैदल और नंगे पैर चले हैं, यह 'चारी' से जनाया। यथा, 'चलत पयादेहि खात फल पिता दीन्ह तजि राजु। जात मनावन रघुबरहिं भरत सरिसको आजु॥' वहांसे चरणपादुका लेकर लौटे, उनको सिंहासनपर पधराया और आप चँवर लेकर सेवा करने लगे। जो कार्य आ पड़ता उसे आज्ञा लेकर करते थे। अतः 'पादुका नृप सचिव' कहा। इस तरह चौदह वर्षतक प्रजाका पालन किया। पादुकाको राजसिंहासनपर पधराकर आप तपस्वी वेषसे नंदिग्राममें कठिन व्रत धारण कर रहने लगे जिसका कुछ वर्णन श्रीरामचरितमानसमें है।

५ 'परम धर्म धुर धीर' इति। यथा, 'सिर भरि जाउं उचित अस मोरा। सब ते सेवक धरम कठोरा।' इस परम धर्मके धारण करनेमें इनके समान येही हैं। इनका पूरा चरित्र सेवककेलिये 'उपदेश' है। श्रीभरद्वाजजी इनको इस धर्मका आचार्य मानते हैं। यथा, "तुम्ह कहं

भरत कलंक यह हम सब कहं उपदेसु। रामभगति रस सिद्धि हित भा यह समउ गनेसु ॥" "रामभगत अब अमिय अघाहू। कीन्हेहु सुलभ सुधा बसु धाहू ॥" आपके उपदेशका सारांश यह है, 'स्वामि-धरम स्वारथहि बिरोधू। बइरु अंध प्रेमहि न प्रबोधू ॥' 'जो सेवक साहिबहि सकोची। निज हित चहइ तासु मति पोची ॥' 'सेवक हित साहिब सेवकाई। करइ सकल सुख लोभ बिहाई ॥' तथा 'आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा।'

श्रीजनकमहाराज श्रीभरतजीके संबंधमें अपना मत प्रकट करते हुए कहते हैं, 'साधन सिद्धि रामपग नेहू। मोहि लखि परत भरत मत एहू ॥', 'परमारथ स्वारथ सुख सारे। भरत न सपनेहुं मनहुं निहारे ॥' 'खड्गधाराव्रत', 'पादुकानृप सचिव पुहुमिपालक', 'परमधर्म धुर धीर बर'। इति। यह प्रसंग विशेषकर 'आयसु होइ त रहउं स नेमा' अ० ३२२ से लेकर कांडकी समाप्तितक है और गीतावलीमें इसका वर्णन निम्नपदमें है। "जब ते चित्रकूट ते आए। नंदिग्राम खनि अवनि डासि कुस पर्नकुटी करि छाए ॥ अजिन बसन फल असन जटा धरि रहत अवधि चित दीन्हे। प्रभुपद प्रेम नेम व्रत निरखत मुनि नमित मुख कीन्हे ॥ सिंहासन पर पूजि पादुका बारहि बार जुहारे। प्रभु अनुराग माँगि आयसु पुरजन सब काज सँवारे ॥ तुलसी ज्यों ज्यों घटत तेज त्यों त्यों प्रीति सवाई।' मानसमें कहा है, 'सिंहासन पर प्रभु पादुका बैठारे निरुपाधि।' 'नित पूजन प्रभु पांवरी प्रीति न हृदय समाति। माँगि माँगि आयसु करत राजकाज बहु भाँति ॥" श्रीरघुनाथजीने कहा था कि 'पालेहु पुहुमि प्रजा रजधानी।' अतः कविने वही 'पुहुमि' शब्द यहां दिया है।

६ यहां यह शंका लोग करते हैं कि ऐसे प्रेमीके कहनेपरभी रघुनाथजी न लौटे, पादुकाएँ दीं। यह यशमें न्यूनता आती है। पर यह समझकी भूल है। भरतजीकी रुचिही रघुनाथजीने रक्खी है। भरतजीने कहा है, 'मोरे सरन रामकी पनहीं'। अतएव 'पनही' अर्थात् पादुका उनकी रक्षाकेलिये दीं। भगवानके सब वस्त्रभूषण दिव्य हैं, चेतन हैं, भगवद्रूपही हैं। पादुकासे बराबर आज्ञा मिलती थी, जैसे मुद्रिकाने सीताजीसे

सब हाल पूछनेपर कहा है और हनुमान्जीके रूपके अनुसार वह छोटी बड़ीभी हो जाती रही है। दूसरे भरतजी अपना सेवकका परम धर्म यही मानते हैं कि जिसमें स्वामीका धर्म रहे, स्वामीको संकोच न हो, स्वामीकी जो मर्ज़ी हो वही करना और यही उन्होंने रामजीसे कहाभी है और इसीमें वे प्रसन्नभी हैं। पादुका पानेपर उन्हें वही सुख हुआ जो रामजीके लौटनेसे होता।

७ 'धीर बर' 'बर बीर भारी' इति। (क) ऐसे कठिन धर्मके धारण करनेमें टिक जाना सबका काम नहीं। एवं विपत्ति पड़नेपर श्रीअवध और चित्रकूटमें ऐसा भाषण ऐसे बड़े समाजमें कौन कर सकता कि जिसको सुनकर "**सभासहित मुनि भयउ बिदेहू**"॥ "**भरतमहामहिमा जलरासी। मुनिमति ठाढ़ि तीर अबला सी॥ गा चह पार जतनु हिय हेरा। पावति नाव न बोहित बेरा॥ अउर करहि को भरत बड़ाई। सरसी सीपि कि सिंधु समाई॥**", "**सोकमगन सब सभा खभारू**"। "**भरत बचन सुनि सुनि सुर हरषे। साधु सराहि सुमन सुर बरषे॥ असमंजस बस अवधनिवासी। प्रमुदित मुनि तापस बनबासी॥ चुपहि रहे रघुनाथ सँकोची।**" "**भरत बचन सुनि देखि सुभाऊ। सहित समाज सराहत राऊ॥ सुगम अगम मृदु मंजु कठोरे। अरथु अमित अति आखर थोरे॥ ज्यों मुख मुकुट मुकुरु निज पानी। गहि न जाइ अस अद्भुत बानी॥**' (अ. २९३), **भरत बिनय सुनि देखि सुभाऊ। सिथिल सनेह सभा रघुराऊ॥ रघुराउ सिथिल सनेह साधु समाज मुनि मिथिलाधनी। मनमहुँ सराहत भरतभायप भगतिकी महिमा घनी॥ भरतहिं प्रसंसत बिबुध बरषत सुमन मानस मलिन से।**" तथा "**सभा राउ गुर महिसुर मंत्री। भरतु भगति सब कै मति जंत्री॥**" अत:'धीर बर' कहा।

(ख) इस चरितके बाद श्रीभरतजीका दूसरा चरित्र तब देखनेमें आता है जब मेघनादकी शक्तिसे लक्ष्मणजीके घायल होनेपर हनुमान्जी विशालरूप धारण किये हुए विशाल पर्वत अर्द्धरात्रिके पश्चात् लिये हुए श्रीअवधके ऊपरसे निकले थे। गीतावली और हनुमन्नाटकमें से चरित्र

विशेषरूपसे दिया है। उससमय श्रीसुमित्राजीके घोर स्वप्नकी शांतिकेलिये घृतका हवन मुनि करा रहे थे और भरतजी उस समय धनुषबाण धारण करके (मुनिकी आज्ञासे) बैठे होम कर रहे थे। पूर्णाहुतीके ठीक अवसानपर वे वहाँ पहुँचे थे। यह मानकर कि कोई राक्षस पुरीके नाशकेलिये पर्वत लेकर आया है, हो न हो दुःस्वप्नका मूलही होगा; अनुमान मात्र है धोखेमें कोई और न मारा जाय भरतजीने बिना फलका बाण चलाया। औरभी अनेक कारण बिना फलके बाण चलानेके हैं जो 'मानसपीयूष' में दिये गये हैं। **'देखा भरत बिसाल अति निसिचर मन अनुमानि। बिनु फर सायक मारेउ चाप श्रवन लगि तानि॥ लं० ५७॥'** यह वीरताका चरित्र है। अत: 'बीर भारी' कहा। क्योंकि हनुमान्‌जी ऐसे वज्रांग महाबलीकोभी इनका बाहुबल मानना पडा। अतः 'भारी' कहकर वह चरित आगे कहते हैं।

'संजीवनी समय संकट' इति। संकटसमयका बल यह है कि भरतजीके बिना फलवाले बाणसे बाण लगतेही हनुमान्‌जीको मूर्छा हो गयी। **'परेउ मुरछि महि लागत सायक। सुमिरत राम राम रघुनायक॥'** (लं०) पुनश्च यथा हनुमन्नाटके, (१३।२५) **"तदा भरतबाणेन भिन्नो हनुमान् भरत दोर्दण्डमुक्तकांड प्रचंडप्रहारमूर्छितो। विधिलिखिताक्षरपंक्ति लोपात्प्राणान्परित्यक्तुमिच्छन्। पुंखावशेष भरतेषु ललाटपट्टो हा राम लक्ष्मण कुतोऽहमति ब्रुवाणः॥ संमूर्छितो भुवि पपात गिरिं दधानो लांगूल शेखरुहेणसकेसरेण॥"** उससमयभी भरतजीके बाणसे घायल होकरभी हनुमान्‌जी भरजीके भुजदंडोंसे युक्त हुए धनुषके प्रचंड प्रहारसे मूर्छित हो गये और प्रारब्धके लिखे हुए अक्षरपंक्तिके नाशसे प्राण त्यागनेकी इच्छा करने लगे। पुंखमात्र शेष बचे हुए भरजीके बाणसे ललाटपट्टमें विंधे हुए हनुमान्‌जी, 'हा राम! हा लक्ष्मण! मैं कहाँ हूँ', यह कहते हुए, केसरसहित लांगूलके अग्रभागमें द्रोणाचलको धारण करते हुए, मुर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पडे। पुन: यथा गीतावल्याम्, **"परयो कहि राम पवन राख्यो गिरि पुर तेहि तेज पियो है।"** उस बाणने उनका सब तेज पी लिया।

श्रीहनुमन्नाटकके मतानुसार भरतबाहुबलकी जिज्ञासाके निमित्त अब हनुमान्‌जीने उनसे कहा कि मैं थक गया हूँ, मुझे पर्वत समेत वहाँ पहुँचाओ। उनके वचन सुनकर भरतजीने प्रत्यंचा आरोपण कर पर्वत सहित उनको बाणपर चढ़ाकर प्रत्यंचा धनुषमें लगा जब छोड़कनेकेलिये (धनुषको) थामा तभी झट कानतक खींचा जिससे भगवान् मारुति (सफलतासे) सन्तुष्ट और (पराक्रम देख) परम विस्मित हुए। बाणसे कुशलपूर्वक उतरकर उन्होंने भरतके बाहुबलकी प्रशंसा और कृतज्ञताद्वारा (मानसिक) पूजा की। श्रीहनुमान्‌जी (अवधसे लंकामें अपने) शिविरको ऐसे वेगसे पहुँचाये कि जैसे दरिद्रका मन (मनोरथ करते हुए) दिग् दिगन्तको पहुँच जाता है।*

गीतावली लं० ११ मेंभी अभिमानसे तीरपर चढ़ना कहा है। यथा, "**कुधर सहित चढ़ो बिसिष बेगि पठवौं सुनि हरि हिय गर्ब गूढ़ उपयो है ॥३॥ तीर ते उतरि जस कह्यो चहै गुन गनन जयो है।**" हनुमन्नाटकके श्लोकका ऐसाभी अर्थ किसी किसीने किया है और मानसमें तीरपर चढ़ना नहीं कहा है। अभिमान आतेही वहीं दब जाता है।

९ यह बल 'संकट समय' का है। जब भरत और पुरवासी दुःस्वप्नके कारण शोचमें पड़े थे ऐसे समयका यह पराक्रम है और जब स्वस्थचित्त होगा तबका पराक्रम कौन जाने? रामजीही जानते हैं। 'समय संकट' का यहभी अर्थ ले सकते हैं। यह पद श्लेषार्थी है। हनुमान्‌जीके मूर्च्छित होनेपर भरतजी बहुत दुःखी हुए। फिर सीताहरण और शक्तिका हाल सुनकर तो प्रेमवश अत्यन्तही दुःखी हो गये। ऐसेमेंभी धीरज रखकर इनको बाणपर चढ़ाकर रघुनाथजीके पासही पहुँचानेका काम किया।

---

*" श्रुत्वेति तस्य वचनं भरत शराग्रे साद्रि कपिं समधिरोप्य गुणे नियोज्य। मोक्तुं दधे झटिति कुंडलिनं चकार तुष्टावतं परम विस्मयमागतः सः ॥२९॥ उत्तीर्य बाणात्कुशलं गृहीत्वा संपूज्यबाहुं भरतस्य वाग्भिः। मनो दरिद्रस्य यथा दिगन्तं तथा हनूमाञ्छिबिरं जगाम ॥१३।३०॥"

अतः 'धीर बर' और 'बीरभारी' कहा। 'जानि कुअवसर मन धरि धीरा। पुनि कपि सन बोले बलवीरा ॥'

बाबू शिवप्रकाशने 'संकट समय' का अर्थ यह किया है कि इस समय श्रीरामविरहके कारण अत्यंत क्लेश है, शरीर दुर्बल हो गया है। 'देह दिनहि दिन दूबरि होई' सब भोग छूटे हुए हैं। उससमयका यह बल 'सींक बाणका है।

१० 'धनुष बान महिमा बषानी' इति। यथा, 'सपूज्यबाहुँ भरतस्य वाग्मिः'। 'श्रान्तोऽहमित्यथ गिरिं नयतं कुमारं वाक्यं जगाद हनुमान्भरतं सरोषः।' (हनु० १३।२७) मैं थक गया, पहुँचनेको असमर्थ हूँ। 'भरत बाहुबल सील गुन प्रभुपदप्रीति अपार। मन महुँ जात सराहत पुनि पुनि पवनकुमार॥' लं० ५६॥, एवं गी० लं० ११ यथा, 'तीर ते उतरि जस कह्यो चहै गुन गगन जयो है। धन्य भरत करत भयउ मगन मौन रह्यो मन अनुराग रयो है। यह जलनिधि खन्यो मथ्यो लंघ्यो बाँध्यो अचयो है। तुलसीदास रघुबीर बंधु महिमा को सिंधु तरिको कपि पार गयो है॥

इस प्रसंगमें बाहुबल और पराक्रम वा प्रतापका वर्णन है। जैसे मारीचको बिना फरका बाण मारा गया था उसपर मंदोदरी कहती हैं, 'बान प्रताप जान मारीचा' यह प्रताप है। वही यहाँ 'धनुषबानमहिमा' के 'महिमा' शब्द से सूचित किया है। इसीको अगले चरणमें 'पराक्रम अतुल' कहा है। बाणपर श्रीहनुमान्‌जीको चढ़ाकर पर्वतसहित उन्हें उठाकर लंका निमिषमात्रमें पहुँचा देना, यह बाहुबल और पराक्रम दोनों हैं। यही नहीं किन्तु 'पठवहुँ तोहि जहँ कृपानिकेता' यह अतुल महिमा और अपरिमित पराक्रम है। अतः 'महिमा बषानी' कहकर 'बाहुबल अतुल' कहा। इनके अतुल बल पराक्रमको तो किसीने देखाही नहीं और न जाना। उसे तो केवल रघुनाथजीही जानते हैं, वेभी कह नहीं सकते। बाणपर चढ़नेकी बात कहते समय कविने इनको 'बलबीर' कहा हैं। 'पुनि कपिसन बोले बलबीरा'। और हनुमान्‌जीने 'तव प्रताप उर राखि प्रभु जैहौं नाथ तुरंत ॥' यह स्वयं भरतजीसेही कहा है।

पाश्चात्य एवं अमरीकाके महाअस्त्रोंके निर्माणमें भी जानसे लगे हुए लोगोंको श्रीभरतजीके विना फलके बाणकी महिमापर विचार करना चाहिये। V 2 (वी टु) वेपन इसके सामने हेच है।

११ 'गूढ़ गति जानकी जानी' इति। इसके प्रमाण ऊपर बहुत आ चुके हैं। श्रीजनकमहाराज, गुरु श्रीवशिष्ठजी, देवता, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सरस्वती इत्यादिभी उनको नहीं जान सकते। दूसरा कौन जानेगा? एकमात्र रघुनाथजी जानते हैं। 'हरिहरहि हरता बिधिही बिधिता श्रियहि श्रियता जेहिं दई सो जानकीपति' (पद १३५)। श्रीजनकजी कहते हैं कि "भरत अमित महिमा सुनु रानी। 'जानहिं राम न सकहिं बखानी' और श्रीरामजीका बचन है, 'तात तुम्हहिं मैं जानऊँ नीके। करउँ काह असमंजस जीके"। कविभी कहते हैं कि "आगम सनेह भरत रघुबर को। जहँ न जाइ मन. बिधि हरि हरको॥" (अ०) और स्वयं भरतजीके वचन हैं कि 'आन उपाउ मोहि नहिं सूझा। को जिय कै रघुबर बिनु बूझा (अ०)

श्रीभरत, श्रीलक्ष्मण और श्रीसीताजीकी गतिके विषयमें दोहावलीमें कवि कहते हैं "हित उदास रघुबर बिरह बिकल सकल नरनारी। भरत लषन सिय गति समुझि प्रभुचष सदा सुबारि॥२०१॥' 'जानी राम न कहि सकै भरत लषन सिय प्रीति। सो सुनि गुनि तुलसी कहत हठत सठता की रीति॥२०३॥' 'सब बिधि समरथ सकल कह सहि साँसति दिन राति। भलो निबाह्यो सुनि समुझि स्वामिधरम सब भाँति॥'

दासकी समझमें गतिमें बल, पराक्रम एवं 'भरत रहनि समुझनि करतूति। भगति बिरति गुन बिमल बिभूती' इत्यादि सबकी दशाओंका समावेश है जिसे 'बरनत सकल सुकबि सकुचाहीं। सेस गनेस गिरा गमु नाहीं' (अ०) *

---

*'गूढ़ गति' के भावार्थान्तर—१ रा० त० बो० अर्थात् हृदयका गुप्त अभिप्राय जनकादिकोंभी अगम्य है।

२ वै० पराक्रम अर्थात् शक्ति और बल बुता जैसा अन्तरमें गुप्त है सो रघुनाथजीही जानते हैं।

'महिमा बखानी' और 'गुढ़गति जानकी जानि जानी' इति। गीतावलीमें हनुमान्‌जीका तीरसे उतरनेपर महिमाका बखान इस प्रकार वर्णित है, 'हो तो नहि जौ जग जनम भरतको। तौ कपि कहत कृपानधार-मग चलि आचरन चरतको ॥१॥ धीरज धरम धरनिधर धरहु ते गुरु धुर धरनि धरतको। सब सद्गुन सनमानि आनि उर अघ औगुन निदरतको ॥२॥ सिवहु न सुगम सनेह रामपद सुजननि सुलभ करतको। सजि निज जस सुरतरु तुलसी कहुँ अभिमत फरनि फरतको ॥३॥ (गी० लं०)

१२ 'नर अजिर गंधर्वगनगर्बहर' इति। वाल्मी रा. उ. सर्ग १००-१०१ में यह कथा इस प्रकार पायी जाती है कि एक बार भरतजीके मामा केकयनरेश युधाजितने एक अपने गुरु गर्गकुलमें उत्पन्न अङ्गिराजाके पुत्रको भेट सहित श्रीरामचंद्रजीके पास भेजा और यह संदेशभी कहला भेजा कि "गंधर्वदेश जो सिंधुनदके दोनों तटोंपर बसा हुआ है, फल मूलोंसे शोभित है। उसकी रक्षा युद्धविशारद शस्त्रधारी गंधर्व करते हैं जो शैलूषनामक गंधर्वकी संतान हैं और तीन करोड हैं। उनको परास्त कर उस देशको अपने राज्यमें मिला लीजिये। किसी दूसरेका सामर्थ्य नहीं कि उस सुंदर देशकी सर कर सके। यदि आप इसे पसंद करें तो करें। हम आपका अनभल नहीं चाहते।" संदेश सुनकर श्रीरघुनाथजी प्रसन्न होकर बोले, 'महर्षे ! आपका मंगल हो। ये दोनों राजकुमार तक्ष और पुष्कल अपने कर्त्तव्यमें सावधान रहकर वहां जायेंगे और मामाकी रक्षामें वहीं रहेंगे। भरतजी इन दोनों कुमारोंके साथ बहुतसी

---

३ चरखारी—गुढ़गति यह कि जब भरतजीने हनुमान्‌जीको बाण मारा तब वे शिथिल हो गये। सो यह बात रामचंद्रजीनेही जानी कि इनका अहंकार अब दूर हो गया। जो रामजीकी गुढ़गति है वह तुमही जानते हो।

४ वि०—गुढ़गति यह है 'सगुन छीर अवगुन जल ताता। मिलइ रचइ परपंच बिधाता ॥ भरत हंस रबिबंस तड़ागा। जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा'।

सेना ले जाकर उन गंधर्वपुत्रोंको मारकर वहाँ दो नगर बसावेंगे। उन श्रेष्ठ नगरोंको आबाद कर अपने पुत्रोंका वहांका राज्य सौंप महात्मा भरत शीघ्र मेरे पास लौट आवेंगे।" यह कहकर भरतजी और दोनों कुमारोंको उन्होंने आज्ञा दी। शुभ नक्षत्र और योगमें गार्ग्य महर्षिको आगे कर वे सेना सहित रवाना हुए और डेढ़ मासमें कैकय देश पहुँचे।

यहांसे युधाजितभी सेना साथ लेकर भरतजीके साथ गंधर्व नगरको गये। सात दिन सात रात बड़ा भयंकर रोमहर्षणकारी युद्ध गंधर्वोंसे हुआ। तोभी किसी पक्षकीभी हार जित न हुई। चारों ओर रक्तकी नदियां बह निकलीं। तब भरतजीने संवर्त नामक अस्त्र गंधर्वोंपर चलाया जिससे वे तीन करोड़ गंधर्व विदीर्ण हो क्षणमात्रमें कालके हवाले हो गये। ऐसा घोर युद्ध जिसमें इतने गंधर्व पलभरमें कट गये देवताओंकी स्मृतिमेंभी कभी नहीं हुआ था।

'चित चातक नवांबुद बरन' इति। श्रीभरतजीभी श्याम वर्ण हैं जैसे रामजी। यथा, 'भरत रामही की अनुहारी। सहसा लखिन सकहिं नरनारी।' श्याम वर्ण होनेसे श्याम मेघकी उपमा बडीही सुंदर है। 'अंबुद' का भाव कि मेघ स्वातीकी वर्षा करनेवाले हैं जिसकी चाह चातकको होती है। सब मेघ जल नहीं बरसते। पर ये 'अंबु' (जलके) 'द' (देनेवाले) हैं। चातकका प्रेम मेघपर, वैसाही इनका प्रेम अपने पति श्रीभरतजीपर।

'माण्डवी' कोभी कहकर शक्तिसमेत वन्दना सूचित की एवं यह जनाया कि पत्नीभी आपके अनुकूल और गुणवती मिली जिससे धर्ममें बाधा न हो सकती थी। "कुसकेतु कन्या प्रथम जो गुनसील सुख-सोभामई"

'अभयदाता' इति। इन्होंनेभी सिफारिश की है। पद २७९ देखिये। इसीसे अभयदाता विशेषण दिया।

संबंध सूची